भारतीय तंत्र विद्या

Q2:23.44
152N25

Q2:23.44 8-611
152N2S

Shukla, Satrughnalal
Bharatiya Tantra vidya

Q2:23.44
152N25

8611

S.J.V.J. PRATISHTHAN
LIBRARY

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

* * *

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

भारतीय तन्त्र विद्या

(आध्यात्म साधना का अनुपम पावन ग्रन्थ)

●

विशेष दृष्टव्य :

इस ग्रन्थ में श्रद्धेय शुक्लजी कृत रहस्यमयी गुप्त विद्याएं
श्री तन्त्रम्, मनोकामना पूरक मन्त्र, अलौकिक
शक्तियों की साधना, शक्ति तन्त्रम्, नवग्रह
अनुकूलन तन्त्र आदि सभी पुस्तकों
का सार संचय दिया
गया है।

●

ग्रन्थ-रचयिता :

आचार्य पं. शत्रुघ्नलाल शुक्ल

☎ : 406633

हिन्दी सेवा सदन, मथुरा.

प्रकाशक :
हिन्दी सेवा सदन
हालन गंज, मथुरा–281001 (उ० प्र०)

●

Q2:23.44
152N2S

ग्रन्थ प्रणेता :
आचार्य पं. शत्रुघ्नलाल शुक्ल

●

कृति-स्वाम्य :
प्रकाशक

S.J.V.
Jangamawadimath, Varanasi
Acc. No

●

प्रथम संस्करण :
अप्रेल 1992

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No..........86.11....................

●

मूल्य : 125/–

●

मुद्रक :
भाषा भवन प्रेस,
मथुरा.

आत्म-निवेदन

ध्वनि (नाद) विज्ञान के गहन अध्ययन एवं समाधि द्वारा तत्त्व चिन्तन की अनुभूति के फलस्वरूप ही तन्त्र-शास्त्र का प्रादुर्भाव-प्राकट्य हुआ है, यह एक सर्व-स्वीकृत तथ्य है। ध्वनि विज्ञान की सत्ता-महत्ता को विश्व के सभी विद्वज्जन एकमत से स्वीकार करते हैं। आकाशवाणी और दूरदर्शन के आविष्कार ने ध्वनि विज्ञान की महत्ता को सर्वसामान्य के हृदय में भी प्रतिष्ठित किया है, इसमें सन्देह नहीं। इससे तन्त्र-विज्ञान को अवैज्ञानिक और ऊट-पटाँग मानना एक भ्रान्तिपूर्ण विचार ही सिद्ध होता है।

यदि प्रत्यक्ष प्रमाण को आधार बनाकर देखें तो यह तथ्य स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है कि वास्तविक और सच्चे (तन्त्र-साधना के बहाने कपट-जाल फैलाकर श्रद्धालुजनों को ठगने वाले वंचकों व धूर्त्त, पाखण्डियों का नहीं) साधकों का मानसिक, सामाजिक, शारीरिक एवं घरेलू परिवेश आध्यात्मविहीन व्यक्तियों की तुलना में उदात्त, सौम्य और व्यवस्थित-संतुलित होता है।

अस्तु इस परम सत्य को स्वीकार करके कि तन्त्र-साधना (भजन ध्यान, पूजा, स्तुति, जप) परम वैज्ञानिक व प्रभावशाली तथ्य है, शारीरिक-मानसिक शुचिता के साथ ही हृदय को दम्भ के स्थान पर आस्था से परिपूर्ण करके यथा-साध्य साधना, नियमित रूप से प्रत्येक सुधीजन का आवश्यक कर्त्तव्य होना चाहिए—ऐसा मेरा मत है। किन्तु आध्यात्मिक वाङ्मय के अध्ययन-मनन एवं तदनुसार साधना का पवित्र उद्देश्य परम-तत्त्व के सायुज्य का अनुभव करते हुए परमानन्द प्राप्त करना है। जो सज्जन सिद्ध बनकर पाखण्ड प्रदर्शन करते हुए श्रद्धालुजनों से अर्थ-शोषण करना चाहें उन्हें इस सात्त्विक साधना से कोई लाभ न होगा। वे वंचक अपने कपटाचरण में वृद्धि करने के उद्देश्य से इस ग्रन्थ को न पढ़ें, यही सुकर है। 'सभी सुखी हों।'—इस हार्दिक शुभकामना के साथ—

—शत्रुघ्नलाल शुक्ल

विषयानुक्रमणिका

क्रमसंख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
	अध्यात्म की धरोहर :	18 से 23
	ध्वनि शक्ति के चमत्कार :	26 से 32
1.	**अध्यात्म के आयाम :** विषय प्रवेश, वाणी और विधि, अध्यात्म का अस्तित्व, अध्यात्म की प्रभावशीलता, आध्यात्म के अंग, अध्यात्म: उद्देश्य और उपलब्धि, आत्म-ज्ञान, मोक्ष, सिद्धि, निष्कर्ष ।	33 से 42
2.	**तन्त्र का विकास-क्रम :** मन्त्र, मन्त्र: अर्थ और परिचय, यन्त्र, यन्त्र की परिभाषा, यन्त्र की आवश्यकता, यन्त्र का आविर्भाव, यन्त्र: रचना और साधना, यन्त्र में मन्त्र की अनिवार्यता, तन्त्र, तन्त्र के जन्मदाता, उत्तरोत्तर विकास, तन्त्र की उपादेयता, तन्त्र की परिभाषा, तन्त्र में मन्त्र का महत्त्व, तन्त्र साधना का पराभव, पराभव क्यों ? सारांश ।	43 से 64
3.	**तन्त्र-क्षेत्र और सीमाएं :** लालसा : मानव-जीवन की धुरी, कामनाओं का वर्गीकरण, दश-कर्म निरूपण, शान्ति-कर्म, पुष्टि-कर्म, आकर्षण-कर्म, मोहन-कर्म, वशीकरण-कर्म, जृम्भण-कर्म, उच्चाटन-कर्म, स्तम्भन-कर्म, विद्वेषण-कर्म, मारण-कर्म, षट्कर्म, साधना का वर्गीकरण, सात्त्विक-साधना, तन्त्र की व्यापकता ।	65 से 77
4.	**तन्त्र साहित्य :** तन्त्र का उद्भव और विकास, तन्त्र-साहित्य, तन्त्र-शास्त्र के ग्रन्थ, वैष्णव-तन्त्र के ग्रन्थ, शैव-तन्त्र के ग्रन्थ, जैन-तन्त्र के ग्रन्थ, बौद्ध-तन्त्र के ग्रन्थ, शाक्त-तन्त्र के ग्रन्थ, रथक्रान्त-वर्ग के ग्रन्थ,	

क्रम संख्या **विषय** **पृष्ठ संख्या**

विष्णुक्रान्त वर्ग के ग्रन्थ, अश्वक्रान्त वर्ग के ग्रन्थ, कुछ विशिष्ट शब्द । 78 से 91

5. **नियम और निषेध :**
नियम क्यों ?, नियम-विरुद्ध साधना से अनर्थ, आध्यात्म और नियम, समयगत प्रभाव, मुहूर्त्त, गुरु अथवा मार्ग-दर्शक, आध्यात्मिक-गुरु, श्रेष्ठ गुरु के लक्षण, कुपात्र-गुरु, दीक्षा और मुहूर्त्त, महीना, पक्ष, बार, तिथि, नक्षत्र, लग्न, अपवाद, लग्न का महत्त्व । 92 से 108

6. **साधना, साधन और साधक :**
साधना के उद्देश्य, प्रमुख प्रयोजनीय वस्तुएं, चन्दन, पुष्प, दीपक, हवन-साग्री, आसन, माला, माला में 108 दाने क्यों ?, माला का वस्तुगत परिचय, जप-फल में माला का प्रभाव, स्थान और उसका प्रभाव, शुभ-स्थान, निषिद्ध-स्थान, तन्त्र में त्याज्य, साधक के अनिवार्य गुण, दीक्षा-साधना के लिए अयोग्य व्यक्ति । 109 से 133

7. **तन्त्र से कामना पूर्त्ति :**
देवोपासना के तान्त्रिक-प्रयोग, बगलामुखी-तन्त्र, रोग-निवारक तन्त्र, भय-निवारक तन्त्र, प्रेत-निवारक तन्त्र, व्यापार-वर्द्धक तन्त्र, आकर्षण-वशीकरण तन्त्र, स्मम्भन-तन्त्र । 134 से 145

8. **वनस्पति तन्त्र :**
वनस्पति क्या है ? वनस्पतियों का प्रभाव, वनस्पति तन्त्र की उपयोगिता,
   1. **बाँदा**—सामान्य परिचय, बाँदा : एक भ्रान्ति भी, बाँदा-तन्त्र में मुहूर्त्त का महत्त्व, जाति-भेद से बाँदा प्रयोग, बदरी-बांदल (बेर का बाँदा), वहुवार का बाँदा, बरगद का बाँदा, हारसिंगार का बाँदा, शिरीष का बाँदा,

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
	थूहर का बाँदा, उदुम्बर-बाँदल, कुश का बाँदा, आम का बाँदा, अनार का बाँदा, वड़ का बाँदा, कपित्थ-बाँदल, सम्हालू का बाँदा, अनार का बाँदा (2), बिदारी कन्द का बाँदा, कपास का बाँदा, रोहित का बाँदा, शाखौट-बाँदा का प्रयोग (1) शाखौट बाँदा का प्रयोग (2), वच का बाँदा, विल्व बाँदाल, अशोक का बाँदा, नीम का बाँदा, ऑवल वृक्ष का बाँदा, मुलहठी का बाँदा, पीपल का बाँदा, बाँदा तिलक ।	146 से 165
2.	**श्वेतार्क**—सामान्य परिचय, तान्त्रिक प्रयोग के आधार, समय-मुहूर्त्त, श्वेतार्क प्राप्ति विधि, श्वेतार्क तन्त्र में प्रयोज्य :—गणेश जी के जप मन्त्र, पूजन विधि, श्वेतार्क-गणपति, विविध प्रयोग, स्वास्थ्य, सुरक्षा, वशीकरण तिलक, सौभाग्य वृद्धि, कामना-पूर्त्ति, गृह रक्षा, सम्भोग-सुख, सुवर्ण निर्माण ।	166 से 180
3.	**रुद्राक्ष**—सामान्य परिचय, रुद्राक्ष की प्रजातियाँ, मुखभेद से वर्गीकरण, एकमुखी रुद्राक्ष, रुद्राक्ष का शोधन, मुखानुसार, विवरण, रुद्राक्ष के तान्त्रिक प्रयोग, शिवजी कृपा-प्राप्ति हेतु, दैनिक बाधाओं के निवारण हेतु, उदर विकार नाशक प्रयोग, बाल रोग पर रुद्राक्ष, बन्ध्यत्त्व-निवारण प्रयोग ।	180 से 198
4.	**शंख**—सामान्य परिचय, पौराणिक संदर्भ में शंख, शंख की उत्पत्ति, शंख : पवित्रता का प्रतीक, शंख : त्याज्य कब ? दक्षिणावर्ती शंख, सर्वश्रेष्ठ दक्षिणावर्ती शंख, दक्षिणावर्ती शंख की पूजन-विधि, पूजन मन्त्र ।	198 से 206
5.	**हाथाजोड़ी**—सामान्य परिचय, वस्तुगत	

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
	परिचय, हाथाजोड़ी की पूजन विधि, हाथाजोड़ी का प्रभाव, मन्त्र, प्रयोग-भेद, वशीकरण के लिए, सम्मोहन के लिए, औषधीय प्रयोग, मलावरोध, प्रसव सुविधा, गर्भ निवारण, मूत्रावरोध निवारण, मासिक स्राव-शोधन।	
6.	**गोरोचन**—सामान्य परिचय, पर्यायवाची, कल्याणकारी प्रयोग, ग्रहदोष निवारक प्रयोग, प्रेतवाधा-निवारण, धन-समृद्धिकारी प्रयोग, वशीकरण प्रयोग, सौन्दर्य-प्रसाधन के रूप में, अपस्मार नाशक, कृशता निवारण।	206 से 213
7.	**गुञ्जा**—सामान्य परिचय, गुञ्जा-मूल, मूल प्राप्ति का मुहूर्त्त, गुञ्जा के तान्त्रिक प्रयोग, कलहकारी विद्वेषण प्रयोग, विष निवारक प्रयोग, सम्मानदायी प्रयोग, पुत्रदाता प्रयोग, शत्रुदमन प्रयोग, अलौकिक शक्ति-दर्शन, ज्ञान-बर्द्धक प्रयोग, पुन्सत्त्व-वर्द्धक प्रयोग, गुप्त धन दर्शन, मृत-चैतन्य प्रयोग, सुरक्षाकारी प्रयोग, आतंककारी प्रयोग, मारण प्रयोग, कुष्ठ निवारक प्रयोग, अन्धत्त्व-निवारण प्रयोग।	213 से 220
8.	**सियारसिंगी**—सामान्य परिचय।	220 से 223
9.	**एकाक्षी नारियल**—सामान्य परिचय, दुर्लभ एकाक्षी नारियल, तान्त्रिक प्रयोग, पूजन-विधि (तान्त्रिक साधना), प्रभाव; मन्त्र, निषेध।	223 से 228
10.	**निर्गुण्डी**—सामान्य परिचय, निर्गुण्डी के तान्त्रिक प्रयोग, स्वर शोधक प्रयोग, कृशता निवारक प्रयोग, रक्त-शोधक प्रयोग, निर्गुण्डी कल्प, शान्ति दायक तन्त्र।	288 से 233
11.	**कुश**—सामान्य परिचय, प्रभाव, आध्यात्म	

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
	के क्षेत्र में, कुश तन्त्र, आसन, पवित्री, कुशमूल की माला, धन-बर्द्धक प्रयोग, कुशग्रन्थि (कुश का बाँदा)।	233 से 237
12.	**हरिद्रा**—सामान्य परिचय, तान्त्रिक प्रयोग, पुखराज का पूरक, पुखराज की माला, गणेश पूजा में हरिद्रा माला, धन-बर्द्धक तन्त्र, विघ्न-निवारक प्रयोग, लक्ष्मी-निवास तन्त्र, बृहस्पति का मन्त्र, कृष्ण हरिद्रा, कृष्ण हरिद्रा के तान्त्रिक प्रयोग, उन्माद-नाशक तन्त्र, अदृश्य बाधा-नाशक तन्त्र, धनबर्द्धक-तन्त्र, सौन्दर्य-साधना, वशीकरण प्रयोग।	237 से 241
13.	**नागकेसर**—सामान्य परिचय, तान्त्रिक प्रयोग, समृद्धिदायी, शिवपूजन, नागकेसर पोटली, मन्त्र, नागकेसर और वशीकरण।	242 से 245
14.	**कमल**—सामान्य परिचय, भारतीयता का प्रतीक, कमल के पर्याय, तन्त्र साधना में कमल।	245 से 248
15.	**लवंग**—सामान्य परिचय, सामान्य प्रयोग, तान्त्रिक प्रयोग, वशीकरण हेतु, श्री-समृद्धि के लिए, भुज-युग्म-साधना में, जम्बुकी साधना में, प्रेतबाधा निवारण, दन्त-पीड़ा नाशक प्रयोग, स्वरभंग निवारण।	248 के 252
16.	**कपूर**—सामान्य परिचय, उत्पत्ति की अद्भुत मान्यता, कपूर के तान्त्रिक प्रयोग, धन-वृद्धि के लिए, मस्तक पीड़ा में, दुर्गन्ध और कीटाणु-निवारण के लिए, सौभाग्य-वर्द्धन हेतु, हवन सामग्री में, मृतात्माओं के आह्वान में, यन्त्र-निर्माण की स्याही।	252 से 255
17.	**सिन्दूर**—सामान्य परिचय, तान्त्रिक प्रयोग।	255 से 257
18.	**श्रीफल**—सामान्य परिचय, तान्त्रिक प्रयोग,	

दूकान में रखें, वक्स में रखें, गोलक में रखें, अन्न भण्डार में रखें। 257 से 259
19. **नागदमन**—सामान्य परिचय, पर्यायवाची शब्द, तान्त्रिक प्रयोग, मेधा-शक्ति बढ़ाने के के लिए, सम्मान और विजय-प्राप्ति के लिए, ग्रह-दोष निवारण, धन समृद्धि के लिए। 259 से 261
20. **उदुम्बर**—सामान्य परिचय, तान्त्रिक प्रयोग, दत्त-साधन में, धन बर्द्धक-प्रयोग, सन्तान-सुख, प्रेम और सम्मोहन के लिए, सुख-शान्ति के लिए, दत्त साधना। 261 से 264
21. **पीपल**—सामान्य परिचय, तन्त्र-साधना में पीपल का महत्त्व, दरिद्र-निवारण के लिए, हनुमानजी के दर्शन। 264 से 267
22. **बरगद**—सामान्य परिचय, तान्त्रिक प्रयोग, धन वृद्धि के लिए, बरगद का बाँदा, अन्य प्रयोग। 268 से 270
23: **विजया**—सामान्य परिचय। 270 से 272
24. **सहदेवी**—सामान्य परिचय। 273 से 274
25. **अपामार्ग (ओंगा)**—सामान्य परिचय। 274 से 276
26. **मुण्डी**—सामान्य परिचय। 276
27. **बहेड़ा**—सामान्य परिचय। 278
28. **लक्ष्मणा**—सामान्य परिचय, तान्त्रिक प्रयोग 279
9. **नवग्रह साधना :**
नवग्रह और मन्त्र, मन्त्र और उसका प्रयोग, गुरु की अनिवार्यता, साधना के सूत्र, कुछ विशिष्ट पारिभाषिक शब्द, भौतिक-विज्ञान में नवग्रह, सूर्य, वैज्ञानिक विश्लेषण, चन्द्रमा, वैज्ञानिक विश्लेषण, मंगल, वैज्ञानिक विश्लेषण, बुध, वैज्ञानिक विश्लेषण, बृहस्पति (गुरु), वैज्ञानिक विवेचन, शनि, वैज्ञानिक विवेचन, राहु और केतु, अरुण, वरुण, यम, कुबेर और इन्द्र। 281 से 299

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	**सूर्य**—पौराणिक परिचय, स्थिति ज्ञान, मण्डल, माप, प्रभाव क्षेत्र, गोत्र, वर्ण, राशि-मण्डल में स्वामित्त्व, वाहन, सूर्य-मन्त्र, मन्त्र साधना की विधि, सूर्याष्टक, सूर्य की ध्यान-स्तुति, सूर्य स्तवन, सूर्य मण्डलाष्टकम्, सूर्य पीड़ा का प्रभाव, सूर्य यन्त्र, रचना विधान, सूर्य रत्न ।	299 से 311
2.	**चन्द्रमा**—पौराणिक सन्दर्भ, चन्द्र ग्रह का सामान्य परिचय, स्थिति–स्थान, मण्डल, प्रभाव क्षेत्र, गोत्र, वर्ण, राशि मण्डल में स्वामित्त्व, वाहन, चन्द्रोपासना के मन्त्र, प्रतिकूल चन्द्रमा, चन्द्र, मन्त्र, साधना विधि, चन्द्र रत्न, रचना विधान ।	311 से 321
3.	**मंगल**—पौराणिक सन्दर्भ, स्थिति ज्ञान, मण्डल, माप, प्रभाव क्षेत्र, गोत्र, वर्ण, राशि स्वामित्त्व, वाहन, मंगल-पीड़ा का प्रभाव, मंगल मन्त्र, साधना-विधि, मंगल यन्त्र, रचना विधान, मंगल रत्न ।	321 से 329
4.	**बुध**—पौराणिक–संदर्भ, स्थिति-स्थान, मण्डल, माप, प्रभाव क्षेत्र, गोत्र, राशि, स्वामित्व, वाहन, विपरीत प्रभाव, बुध मन्त्र, साधना विधि, दान द्रव्य, बुध यन्त्र, बुध रत्न ।	329 से 335
5.	**बृहस्पति**—पौराणिक–सन्दर्भ, स्थिति स्थान, मण्डल, माप, प्रभाव क्षेत्र, गोत्र, वर्ण, राशि स्वामित्त्व, वाहन, गुरु का विपरीत प्रभाव, बृहस्पति मन्त्र, साधना विधान, बृहस्पति-यन्त्र, बृहस्पति-रत्न ।	335 से 345
6.	**शुक्र**—पौराणिक सन्दर्भ, स्थिति-स्थान, मण्डल, माप, प्रभाव-क्षेत्र. गोत्र, वर्ण,	

क्रम संख्या विषय पृष्ठ संख्या

राशि-स्वामित्व, वाहन, विपरीत प्रभाव, शुक्र-मन्त्र, वैदिक-मन्त्र, साधना विधान, शुक्र यन्त्र, शुक्र-रत्न, विकल्प । 345 से 362

7. **शनि**—पौराणिक-सन्दर्भ, स्थिति-स्थान, मण्डल, माप, प्रभाव क्षेत्र, गोत्र, वर्ण, राशि-स्वामित्व, वाहन, शनि का विपरीत प्रभाव, शनि मन्त्र, वैदिक मन्त्र, साधना विधि, शनि यन्त्र, शनि रत्न । 362 से 376

8. **राहु**—आधुनिक-विज्ञान के मत से, पौराणिक सन्दर्भ, स्थिति-स्थान, मण्डल, माप, प्रभाव क्षेत्र, गोत्र, वर्ण, वाहन, राहु का विपरीत प्रभाव, राहु मन्त्र, साधना विधान, राहु यन्त्र, राहु रत्न । 376 से 384

9. **केतु**—सामान्य-परिचय, स्थिति-स्थान, मण्डल, माप, प्रभाव क्षेत्र, गोत्र, वर्ण और वाहन, विपरीत प्रभाव, दोष-निवारक दान, केतु-मन्त्र, साधना-विधि, केतु-यन्त्र, केतु रत्न । 384 से 388

नव-ग्रहों की सफलतम साधना, अन्य प्रयोग, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु । 389 से 396

10. **देवोपासना :** 397 से 463

साधना-विधान, सामान्य नियम, देवोपासना

(क) श्री गणेश स्तवन, गणेश-स्तुति, बारह नामों से श्री गणपति-स्तुति,

(ख) भगवान शिव, भगवान शिव-स्तुति, वेदसार स्तवन, शिवाष्टक स्तोत्र, पञ्चाक्षर स्तुति, श्री तुलसीदास जी कृत रुद्राष्टक, श्री विश्वनाथ अष्टक, बारह ज्योतिर्लिंगों की स्तुति ।

क्रम संख्या विषय पृष्ठ संख्या

(ग) भगवान विष्णु, विष्णु-स्तुति, अष्ट विंशति-स्तुति,
(घ) भगवान श्री रामचन्द्र, श्री राम रक्षा-स्तोत्र, श्री राम स्तवन, श्री राम चन्द्राष्टक, श्री राम स्तुति, श्री दशावतार स्तुति,
(ङ) भगवान श्री कृष्ण, अच्युत स्तुति, श्री कृष्णाष्टक (कृष्ण स्तुति), श्री गोविन्द-दामोदर स्तोत्र, श्री गोविन्दाष्टक, परमात्मा स्वरूप कृष्ण स्तुति, श्री नन्द कुमार स्तुति, श्री लक्ष्मी नृसिंह स्तुति ।
(च) भगवान दत्तात्रेय, श्री दत्तात्रेय स्तुति ।
(छ) श्री हनुमानजी, श्री हनुमत स्तुति, श्री हनुमत-स्तोत्र,
(ज) भगवान सूर्य, श्री सर्यदेव स्तुति, सूर्याष्टक
(झ) नवग्रह, नवग्रह स्तुति
(ञ) श्री भैरव नाथ, भैरव स्तुति

11. देव्योपासना : 464 से 539

साधना, गुरू का विकल्प, साधना का समय, प्रयोज्य वस्तुऐं, साधना विधि, साधना के नियम, वाधा निवारण, निषेध, नैवेद्य के विभिन्न प्रयोग, दिवस क्रम से नैवेध योग्य फल, नैवेद्य में प्रयोग अन्न-मिष्ठान, काल खण्ड (करण) के अनुसार, तिथि के अनुसार, नैवेद्य-क्रम, नक्षत्र-क्रम के आधार पर नैवेद्य ।

(क) देवी उपासना के विविध आयाम, नवार्ण मन्त्र-साधना, मूल नवार्ण-मन्त्र, साधना विधि, नवार्ण मन्त्र के विशिष्ट प्रयोग, विधि, विनियोग, ध्यान, मन्त्र-जप, सर्वांग-सिद्धि का नवार्ण-मन्त्र, नवार्ण मोहन मन्त्र, नवार्ण वशीकरण मन्त्र, नवार्ण उच्चाटन मन्त्र, नवार्ण स्तम्भन मन्त्र, नवार्ण विद्वेषण

क्रम संख्या विषय पृष्ठ संख्या

मन्त्र, नवार्ण मारण मन्त्र, विशेष विधि

(ख) सिद्ध दुर्गा मन्त्र साधना, सिद्ध दुर्गा मन्त्र, साधना विधि, विशेष

(ग) जय दुर्गा मन्त्र साधना, परिचय, मूल मन्त्र, साधना विधि, करन्यास, ध्यान स्तुति

(घ) दरिद्रता नाशक दुर्गा मन्त्र-साधना, परिचय, मूल मन्त्र, साधना विधि, विनियोग, ऋष्यादिन्यास, करन्यास, ध्यान-स्तुति

(ङ) महिष-मर्दिनी-दुर्गा मन्त्र साधना, मूल महिष-मर्दिनी दुर्गा मन्त्र, करांग्न्यास

(च) श्री लक्ष्मी साधना, पौराणिक मान्यता, लक्ष्मी उपासना, महालक्ष्मी मन्त्र, विनियोग ध्यान-स्तुति, जप-मन्त्र, सिद्ध लक्ष्मी मन्त्र, ध्यान स्तुति, जप मन्त्र, वसुधा लक्ष्मी, विनियोग, ध्यान-स्तुति, जप-मन्त्र, ज्येष्ठा-लक्ष्मी मन्त्र, विनियोग, ध्यान स्तुति, जप-मन्त्र, द्वादशाक्षर लक्ष्मी मन्त्र, विनियोग, ध्यान स्तुति, जप मन्त्र, दशाक्षर लक्ष्मी मन्त्र, विनियोग, ध्यान स्तुति, जप मन्त्र, चार अक्षरों का लक्ष्मी मन्त्र, विनियोग, ध्यान स्तुति, जप मन्त्र, एकाक्षर लक्ष्मी मन्त्र (बीज मन्त्र) विनियोग, ध्यान स्तुति, जप मन्त्र, लक्ष्मी स्तोत्र, परिचय, विधि

(छ) श्री सरस्वती-साधना, उपासना की आवश्यकता, उपासना की सरल विधि, सरस्वती मन्त्र, विनियोग

(ज) श्री वाणी देवी का मन्त्र, परिचय, जप मंत्र

(झ) विद्यादेवी का मंत्र

(ञ) नील सरस्वती मन्त्र, श्री सरस्वती मन्त्र, श्री सरस्वती का एकाक्षर मन्त्र, परिचय, जप मन्त्र

(ट) श्री काली जी का मन्त्र साधना; परिचय, काली जी, मूल काली मन्त्र, साधना विधि; विनियोग, ऋष्यादिन्यास, करांन्यास, षडंगन्यास, वर्णन्यास, तत्त्वन्यास, बीज-न्यास,

(ठ) सिद्ध महाकाली मन्त्र, मूल महाकाली-सिद्ध मन्त्र, साधना विधि, महाकाली मन्त्र, कालीजी के कुछ अन्य मन्त्र, विनियोग, ध्यान स्तुति, पञ्चाक्षर काली-मन्त्र, श्मशान काली मन्त्र, भद्र काली मन्त्र, दक्षिण काली-मन्त्र ।

देवी के अन्य विशिष्ट मन्त्र :

(क) श्री तारिणी मन्त्र साधना, मूल तारिणी-मन्त्र साधना विधि

(ख) श्री वाग्वादिनी मन्त्र साधना, परिचय, मूल मन्त्र, साधना विधि, ध्यान स्तुति

(ग) श्री सर्वमंगला मन्त्र साधना, परिचय, मूल मन्त्र, साधना विधि, ध्यान स्तुति,

(घ) श्री भुवनेश्वरी मन्त्र साधना, परिचय, मूल मन्त्र, साधना विधि, ध्यान स्तुति, विशेष दृष्टव्य

(ङ) श्री शूलिनी दुर्गा-मन्त्र साधना, साधना विधि, करन्यास, ध्यान स्तुति

(च) श्री बज्रेश्वरी मन्त्र साधना. परिचय, जप-मन्त्र, साधना विधि

(छ) श्री दैन्यभेदिनी मन्त्र साधना; परिचय, जप-मन्त्र, साधना-विधि, ध्यान स्तुति, मन्त्र ।

(ज) श्री अन्नपूर्णा मन्त्र साधना, परिचय, मूल-मन्त्र, ध्यान स्तुति, साधना-विधि

(झ) श्री वनदुर्गा मन्त्र-साधना, परिचय, मूल मन्त्र, साधना विधि, ध्यान स्तुति

(ञ) श्री कुमारी मन्त्र साधना, परिचय, वय क्रमानुसार कुमारी के रूप, कुमारी पूजन का प्रभाव, कुमारी पूजन विधि, मन्त्र

12. यन्त्राराधना : 540 से 596

कुछ विशिष्ट यन्त्र, श्री यन्त्र, विधि, मन्त्र, श्री महालक्ष्मी यन्त्र, विधि, जप मन्त्र

(क) श्री महा लक्ष्मी सर्वतो भद्र, यन्त्र,

(ख) व्यापार बर्द्धक लक्ष्मी यन्त्र

(ग) श्री महालक्ष्मी सम्पुट यन्त्र, विधि

(घ) श्री गणेश यन्त्र, श्री गणेश स्तुति

(ङ) श्री लक्ष्मी यन्त्र, श्री लक्ष्मी स्तुति, श्री सरस्वती मन्त्र, श्री सरस्वती स्तुति

(च) श्री सिद्ध सरस्वती (सर्व सिद्धि) यन्त्र, विधि, ध्यान स्तुति, जप मन्त्र

(छ) गायत्री यन्त्र, विधि, जप मन्त्र

(ज) श्री दुर्गा सप्तशती यन्त्र, विधि, मन्त्र

(झ) श्री लक्ष्मी-बिशांक यन्त्र, विधि

(ञ) श्री लक्ष्मीदाता श्री शिव-यन्त्र, ध्यान-स्तुति, जप-मन्त्र

(ट) श्री चण्डिका यन्त्र

(ठ) श्री हरिद्रा गणेश सिद्धि यन्त्र

(ड) श्री विष्णु बिशांक यन्त्र

(ढ) श्री विष्णु षोड्श यन्त्र

(ण) श्री राम यन्त्र

(त) श्री सिद्ध गोपाल यन्त्र

(थ) श्री हनुमत्पूजन यन्त्र

(द) श्री दत्तात्रेय यन्त्र

क्रम संख्या विषय पृष्ठ संख्या

(ध) श्री सूर्य यन्त्र
(न) श्री महामृत्युञ्जय यन्त्र
(प) श्री नवग्रह यन्त्र
(फ) श्री सिद्ध महेश्वर यन्त्र
(ब) श्री कुबेर यन्त्र
(भ) श्री सर्वसिद्धि यन्त्र
(म) श्री बेंकटेश यन्त्र

(ॐ शुभम्)

यन्त्र साधना के इच्छुक साधक

इसे अवश्य पढ़ें !

●

यद्यपि पुस्तक के 'यन्त्र-प्रयोग' अध्याय में प्रत्येक यन्त्र के साथ यह संकेत दिया गया है कि यन्त्र में जहाँ……………बिन्दुओं द्वारा रिक्त-स्थान छोड़ा गया है अथवा जहाँ 'देवदत्त' लिखा गया है, वहाँ मन्त्र में उस व्यक्ति का नाम लिखना चाहिए—जिसे प्रभावित करने के लिए मन्त्र-साधना की जा रही है।

फिर भी कुछ क्लिष्ट-साधना भी हैं, जहाँ केवल उतने संकेत मात्र से बात स्पष्ट नहीं हो पाती।

अतः नीचे एक मन्त्र की आकृति देकर अपने मन्तव्य को और भी सुस्पष्ट किया जा रहा है।

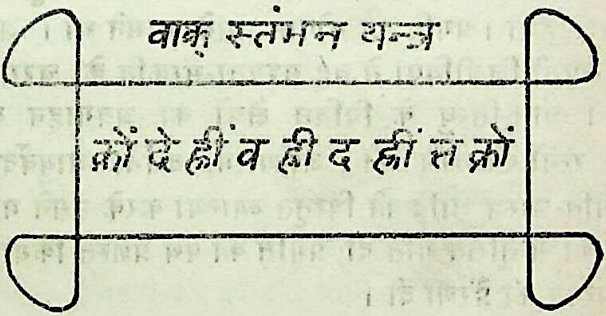

इस यन्त्र की रचना में यद्यपि स्पष्ट नहीं है किन्तु इसमें भी 'देवदत्त' का प्रयोग है। इसी प्रकार यदि गङ्गाराम नामक व्यक्ति के लिए यन्त्र-प्रयोग करना है, तो यन्त्र-रचना का स्वरूप यह होगा—'क्रों गं ह्रीं गा ह्रीं रा ह्रीं म क्रों।

इसी प्रकार चार अक्षर से बड़े या छोटे नाम में—प्रत्येक अक्षर के बाद ह्रीं रहेगा तथा मन्त्र के आदि और अन्त के अक्षर 'क्रों' रहेंगे।

।। ॐ गं गों गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा ।।

अध्यात्म की धरोहर

प्रस्तावना :

समय सदा से ही परिवर्त्तनशील रहा है । सृष्टि के आदि से कालचक्र निरन्तर गतिमान है और उसने धरालोक पर मानव-जीवन के अगणित उत्थान-पतन देखे हैं । अतीत के गर्भ में समय-शिला के नीचे न जाने कितने युग, सभ्यता-संस्कृति के न जाने कितने आयाम दबे पड़े हैं । समय ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है, सम्पर्क में आई घटनाएं, वातावरण, व्यक्ति और स्थान सब पीछे छूटते जाते हैं । मानव की बौद्धिक-संचेतना द्वारा यदि उनमें से कुछ का सङ्कलन होता है, तो वही इतिहास का निर्माण करते हैं ।

आज का मानव विज्ञान के युग में चल रहा है । एक दिन वह बर्बर-युग में था । कालान्तर में सभ्यता की सीमा पर पहुँचकर ज्ञान के क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ । प्रगति का सोपान उसके सामने था । अन्ततः अपने प्रयासों से, अपनी जिजीविषा से वह सभ्यता-संस्कृति के चरम-शिखर पर जा पहुँचा । ज्ञान-सिन्धु के विविध क्षेत्रों का अवगाहन करके उसने अनेकाअनेक रत्नों की खोज की । आध्यात्म, दर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष, साहित्य, नीति-शास्त्र आदि की विस्तृत व्याख्या करके उसने मानव-जीवन को, समाज को सन्तुलित गति दी, प्रगति का पथ प्रशस्त किया और सृष्टि के साथ समन्वय की प्रेरणा दी ।

सध्यता और बौद्धिक-संचेतना का वह प्रारम्भिक युग आध्यात्म-प्रधान था । प्रत्येक विषय को धर्म और नैतिकता के प्ररिप्रेक्ष्य में देखा-परखा जाता था । इन दोनों का सम्मिलित (संयुक्त) रूप ही 'ईश्वर था । उनके लिए ईश्वर सर्वव्यापी था, अर्थात् धर्म और नैतिकता के रूप में वे सर्वत्र ईश्वर का दर्शन पाते थे । उनकी समस्त विचारधारा-क्रियाकलाप, चिन्तन-मनन सब कुछ अध्यात्ममय था–ईश्वरमय था । उससे पृथक् होकर,

उसकी उपेक्षा करके वे जीवित नहीं रह सकते थे। अध्यात्म उनका तन था, मन था और प्रेरणा था।

समय का एक दीर्घ धरातल पार करके आध्यात्म के अनेक आयाम उजागर हुए। भारतीय-मनीषियों ने दृश्य और अदृश्य, प्रत्यक्ष और काल्पनिक सभी का सूक्ष्म विवेचन करके प्रकृति के अनेकानेक रहस्यों—गुप्त-शक्तियों का उद्घाटन किया। परन्तु, चूँकि बौद्धिक-दृष्टि से सभी व्यक्ति समान रूप में सम्पन्न-समर्थ नहीं होते, अतः मर्मज्ञों ने अपने आविष्कारों का ज्ञान गिने-चुने अति विश्वसनीय शिष्यों को, जो वस्तुतः मेधावी होने के नाते उस थाती को सँभालने में सक्षम थे, दिया। इसी गोपनीयता के आधार पर उन विषयों को 'गुप्त-विद्या' की संज्ञा दी गई उन गुप्त-विद्याओं के अन्तर्गत मुख्यतः ये विषय आते थे—मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र और ज्योतिष। और फिर,

शताब्दियों का अन्तराल पार करते-करते समय का द्रुतगामी-यान उस युग में प्रविष्ट हुआ, जहाँ अध्यात्म की सीमा समाप्त होती थी और भौतिक-विज्ञान के लौह-दुर्ग का सिंह-द्वार खुलता था।

वर्त्तमान-युग वही भौतिक-विज्ञान का युग है, जिसमें रहते हुए मानव यान्त्रिक-कर्कशता के आवेष्ठित भौतिक-सुख-साधनों की, फिर उन सुख-साधनों की प्रतिक्रिया से उत्पन्न अशान्ति, अतृप्ति, अस्थिरता और अनिश्चय के सन्त्रास से व्याकुल होकर फिर उसी आध्यात्मिक-युग की शान्ति की और तज्जन्य सुविधा-सुरक्षा की लालसा कर रहा है। यद्यपि उसे बोध है कि इस लालसा की पूर्त्ति दिवा स्वप्न ही है, फिर भी वह लक्ष्य-प्राप्ति के लिए प्रयास-रत है। कारण कि उसका पौरुष, उसकी जिजीविषा आंशिक रूप में ही सही, आज भी कहीं न कहीं चेतन है। निराशा और निश्क्रियता मानव के सबसे बड़े शत्रु हैं, ये किसी भी क्षण उसका अस्तित्त्व समाप्त कर देते हैं, यही अन्तर्बोध आज भी मानव को संघर्ष-रत रहने की प्रेरणा दे रहा है और संघर्ष का अन्तिम परिणाम विजय होता है, यह तो निश्चित है ही, भले ही इस विजय का रूप सामान्य से भिन्न हो।

आज के बड़े-बड़े भौतिक विज्ञान-वेत्ता भी अध्यात्म का महत्त्व स्वीकार करने लगे हैं। कारण कि प्राचीन इतिहास की प्रामाणिकता ने उनके नास्तिकता-प्रधान दम्भ को झकझोर दिया है। उनकी बौद्धिकता इस

सत्य को मुक्त-कण्ठ से स्वीकार करने लगी है कि आज भले ही जड़-विज्ञान की उपासना सर्वत्र प्रचलित है, पर आर्य-संस्कृति का मूल आधार आध्यात्म है। इस देश में विदेशियों के प्रवेश-पूर्व, यहाँ के मनीषी अध्यात्म का चिन्तन करते थे। आध्यात्मिक-साधना के द्वारा उन्होंने ऐसी अद्‌भुत् शक्तियाँ अर्जित करली थीं, जिन्हें आज हम 'अलौकिक' कहकर अविश्वसनीय और काल्पनिक बताते हैं।

वास्तविकता भी यही है। उस समय जीवन के विभिन्न (लगभग सभी क्षेत्रों में आवश्यकता-पूर्त्ति के लिए विभिन्न प्रकार की साधनाओं के विधान थे। साधना के अनेक अङ्ग और नियम उपनियम थे। आध्यात्म-सम्बन्धी प्रत्येक साधना का सर्वाधिक प्रभावशाली, पूरक और अपरिहार्य अङ्ग था—मन्त्र। मन्त्र का क्षेत्र इतना विस्तृत और व्यापक था कि इसको लेकर अनेक ग्रन्थ रचे गये। इस विषय को मन्त्र-विद्या', 'मन्त्र-शास्त्र' और 'मन्त्र-साहित्य' कहकर विवेचित किया गया।

मन्त्र-शक्ति का प्रभाव अपरिमित है। उसका वर्णन सहज-साध्य नहीं है। विविध ग्रन्थों तत्र-यत्र वर्णित मन्त्र-प्रभाव के प्रसङ्गों का सङ्कलन एक पृथुलाकार-ग्रन्थ की रचना कर सकता है। यह एक कठोर, किन्तु सुखद-सत्य है कि भारतीय-जन-जीवन में वैदिक-युग से आज के जड़-विज्ञान युग तक मन्त्र-साधना का अस्तित्त्व लुप्त नहीं हुआ। साधकों की संख्या भले ही कम हो, पर साधना लुप्त नहीं हुई। कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में वह सदैव प्रचलित रही है। जहाँ भौतिक-विज्ञान परास्त, पंगु, मूक और विवश हो जाता है, वहाँ मन्त्र-शक्ति का चमत्कार आज भी अपनी प्रामाणिकता से बुद्धि के ठेकेदारों को अवाक् कर देता है।

अमरत्त्व और और प्रामाणिकता :

भारतीय-मनीषी, वैदिक-संस्कृति और आध्यात्मिक-सम्पदा की जड़ें इतनी पुष्ट हैं कि काल के क्रूर-प्रहरी भी उसे सर्वथा नष्ट नहीं कर सके। ज्ञान का कल्पवृक्ष क्षत-विक्षत होकर भी निर्मूल नहीं हुआ। भारतीय-साधक और मनीषी उसका पोषण कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में अवश्य ही करते रहे हैं। यहाँ तक कि जब राजनीतिक-कुत्सा, सामाजिक-विघटन और विदेशी-संस्कृति के घातक-प्रभाव से उनकी साधना में विघ्न पड़ने

लगा, तब वे जन-सामान्य से परे जाकर, सुदूर एकान्त में गिरि-कन्दरावासी हो गये—जहाँ सहसा कोई जाने की कल्पना भी नहीं कर सकता था।

यवन-संस्कृति के प्रवेश (सिकन्दर के आक्रमण) के साथ ही भारतीय अध्यात्म-जगत् में अस्थिरता का जन्म हुआ। कालान्तर में यह और अधिक बढ़ी। मुगल-शासन में भारतीय-धर्म-कर्म और तन्त्र-मन्त्र को बहुत क्षति उठानी पड़ी। इनके प्रचार-प्रसार की बात तो दूर रही, प्रतिबन्ध द्वारा उन्हें समाप्त करने के प्रयास भी किये जाते रहे। मुस्लिम-युग के बाद आँग्ल-युग आया—भारत में ब्रिटिश-शासन स्थापित हुआ। उस शासन ने लगभग दो-सौ वर्ष तक इस देश की अस्मिता को पद-दलित किया। निष्पक्ष रूप से कहा जाय तो ब्रिटिश-सत्ता, मुस्लिम-शासन से भी (एक-दो अपवादों को छोड़कर) अधिक दुःखद थी।

ब्रिटिश-शासक बड़े क्रूर, कुटिल और दूरदर्शी थे। उन्होंने भारत में पैर जमाने के बाद न केवल यहाँ की भौतिक-सम्पत्ति का हरण किया, बल्कि यहाँ की बौद्धिक-संचेतना, यहाँ की मानसिकता को भी विकृत करने का पूरा प्रयत्न करते रहे। उन्होंने यहाँ की सभ्यता-संस्कृति, धार्मिक-आस्था और नैतिक-मान्यताओं को नष्ट करने के लिए भी अनेक प्रकार के कुत्सित-षड़यन्त्र रचे। उनका सर्वाधिक निर्मम और घातक प्रहार यहाँ की आध्यात्मिक-चेतना पर हुआ। भारतीय आस्थावाद को समाप्त करने के लिए उन्होंने यहाँ बहु-विध उपाय किये। इस देश में नास्तिकता के परानुगमन को जितना प्रचार-प्रोत्साहन अँग्रेजी-शासन में मिला, उतना कभी नहीं। ईसाई- मिशनरियों और अँग्रेज-शासकों की कुटिल-नीति का परिणाम यह हुआ कि यहाँ के लोग अपनी पुरातन-संस्कृति के प्रति विरक्त होकर पाश्चात्य-चकाचौंध, भौतिक सम्पन्नता, आडम्बर-प्रदर्शन, पद-लिप्सा और दासत्व की ओर उन्मुख हो गये। मुगल-शासन के अन्तिम दिनों की दुर्व्यवस्था का सन्त्रास भारतीय-जन मानस को अँग्रेजों का दास बनाने में विशेष सक्रिय रहा। शताब्दियों से लगातार चली आ रही राजनीतिक-अस्थिरता ने समाज को इतना असन्तुलित, शङ्का-ग्रस्त और निस्तेज कर दिया था कि वह अपने गत-गौरव को लगभग भुल-सा चुका था। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत की वे प्राचीन विद्यायें, जिनमें इस देश की गौरव-गरिमा, अस्मिता, विशिष्टता, आध्यात्मिक-चेतना और सांस्कृतिक-सम्पन्नता की आधार-शिला छिपी हुई थी, लुप्तप्राय: हो गई।

ज्योतिष, आयुर्वेद, व्याकरण-अध्यात्म (योग और मन्त्र-तन्त्र) जैसे विषय तो उस सीमा-रेखा तक जा पहुँचे, जिसके आगे अस्तित्त्व-समाप्त का क्षेत्र माना जाता है।

अपवाद सर्वत्र होते हैं। भारतीय-संस्कृति को नष्ट अथवा विकृत करने वाले ब्रिटिश-शासकों के सन्दर्भ में, कुछ ऐसे विद्वानों के नाम भी उभरते हैं, जिनकी मानसिकता एक-देशीय न होकर, विश्व-स्तर की थी। वे समस्त भू-मण्डल को एक देश मानते थे और इस नाते प्रत्येक क्षेत्र (देश) की अपनी गौरव-गरिमा—उसकी विशिष्टता के प्रशंसक थे, उसके उन्नयन के समर्थक थे। उस दासता-प्रधान युग में भी, जबकि श्रमिक-स्तर का अँग्रेज भी स्वयं को इस देश का स्वामी समझकर यहाँ का सब कुछ हड़प लेने का सपना देख रहा था, कई एक अँग्रेज-विद्वान् यहाँ की सांस्कृतिक-रक्षा करने, यहाँ के ज्ञान-दीप को प्रदीप्त करने में उदारता-पूर्वक सहयोग करते रहे। वस्तुतः वह राजनीति-पोषक और शासक नहीं थे—ये विद्या-प्रेमी, ज्ञानानुरागी, संस्कृति-पोषक और मर्मज्ञ-विद्वान् थे। विलियम जोन्स और मैक्समूलर जैसे महापण्डित हम भारतीयों के श्रद्धा-पात्र थे। उन्होंने हमारे कितने ही धार्मिक-सांस्कृतिक दुर्लभ और नष्टप्रायः ग्रन्थों की खोज करके उनका संरक्षण-सम्पादन किया है।

समय-समय पर कितने ही विदेशी-पर्यटकों ने इस ऐतिहासिक-सत्य का प्रतिपादन किया है कि भारतीय मनीषी योग-साधना, तपस्या, प्राणायाम और तन्त्र-मन्त्र के द्वारा असम्भव कार्यों को भी सम्भव कर दिखाते थे। मेगस्थनीज, फाहियान, ह्वानसाङ्ग, इब्नबतूता, वास्कोडिगामा, टामस मुनरो, पाल, बेण्टन और विश्वविख्यात ज्योतिर्विद् कीरो आदि ने यहाँ की आध्यात्मिक उपलब्धियों से चकित होकर, उनकी विश्वसनीयता को परख कर अपने यात्रा-वृत्तान्तों में भारतीय धर्म-दर्शन, योग-साधना और तन्त्र-मन्त्र की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मन्त्र-शक्ति के प्रभाव और उनकी उपयोगिता का बखान करते हुए उन्होंने तत्कालीन शासकों से इस विद्या के संरक्षण एवं पुनर्प्रचार हेतु संस्तुति भी की थी।

समय-परिवर्त्तन के साथ-साथ राजनीतिक-परिस्थितियों में भी ज्वार-भाटा आया। काल-क्रम ने ब्रिटिश-शासन को समाप्त करके भारत में 'स्वाधीनता' का सूर्योदय किया और देश वर्त्तमान यान्त्रिक-सभ्यता के साथ-साथ अपनी प्राचीन आध्यात्मिक-गरिमा का भी स्मरण हुआ। फलतः

आध्यात्मिक-चेतना ने अँगड़ाई ली और उन प्राचीन-विद्याओं के पुनरुद्धार तथा सम्बर्धन का प्रयास होने लगा, जो लुप्तप्राय: जैसी प्रतीत हो रही थीं। आज हम योग, ज्योतिष और अध्यात्म की जो हलचल देख रहे हैं, यह उसी नव-चेतना का फल है—अध्यात्म की धरोहर, जो समय के अन्तराल में खो गई थी, अब प्रकाश में आ गई है और जो अति बुद्धिवादी-जन उसे नितान्त काल्पनिक कहते थे, आज उसके अस्तित्व में सादर प्रणति अर्घ्य दे रहे हैं।

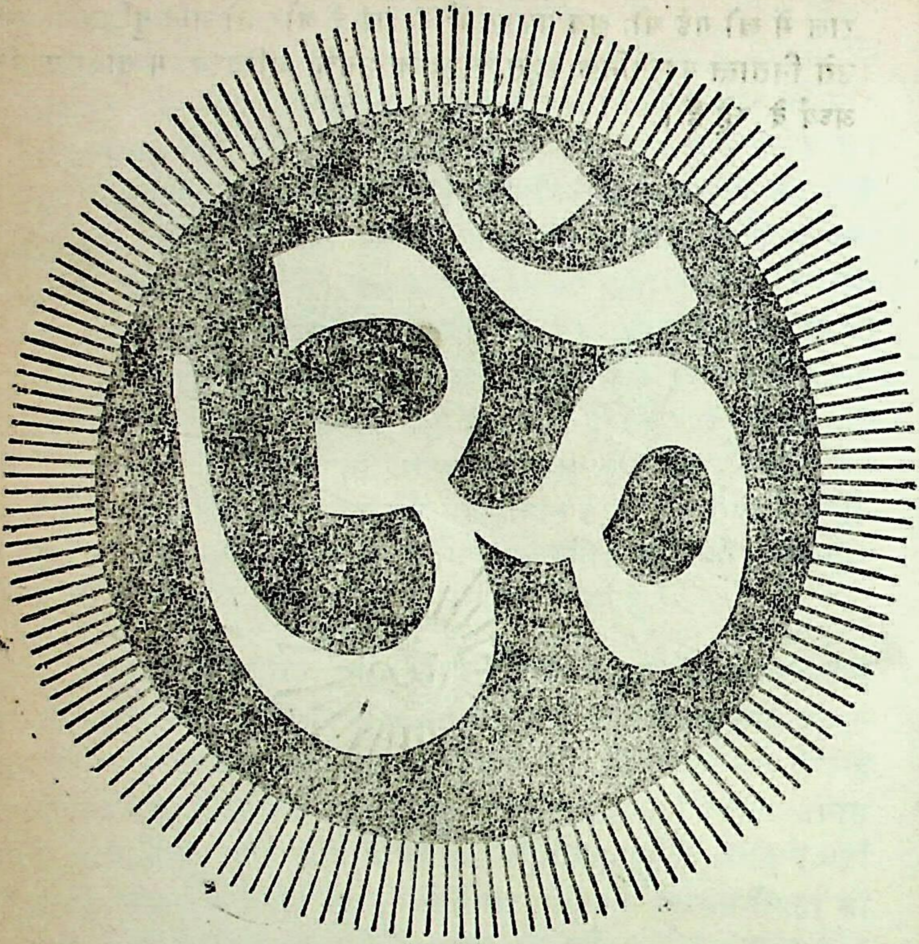

भारतीय तन्त्र विद्या

ध्वनि-शक्ति के चमत्कार

ध्वनि कितनी सूक्ष्म और व्यापक ?

ध्वनि संसार की सर्वश्रेष्ठ शक्ति और सत्ता है। कितने ही मनीषियों ने तो विश्व-ब्रह्माण्ड को ध्वनि में समाहित माना है। उनके कथनानुसार, 'ध्वनि अखिल विश्व-ब्रह्माण्ड का संक्षिप्त रूप है।' कुछ ऐसा ही भाव 'नाद-ब्रह्म' शब्द से भी प्रकट होता है।

जिस प्रकार किसी ठोस अथवा द्रव पदार्थ से, रासायनिक-प्रक्रिया द्वारा उसमें निहित तत्त्वों को पृथक् करके उनका विश्लेषण किया जाता है, उसी प्रकार विशेषज्ञों ने ध्वनि में अन्तर्निहित शक्तियों की खोज करके, उनके प्रयोग द्वारा, विभिन्न प्रभावों का विश्लेषण किया था। अपने परीक्षणों से आश्वस्त होकर उन्होंने उन प्रयोगों को 'सिद्धान्त' की संज्ञा दी। आगे चलकर दूसरे विद्वानों ने उन सिद्धान्तों को विकसित किया।

आज का चरम-विकसित विज्ञान भी स्वीकार करता है कि ध्वनि की क्षमता अद्भुत है। इसके नियमित-प्रयोग का प्रभाव सूक्ष्मतम उपकरणों को भी परास्त कर देता है। परीक्षण से आश्वस्त होकर वैज्ञानिकों ने ध्वनि-प्रभाव के अस्तित्त्व और उसकी सार्थकता को बड़े विस्तार से विवेचित किया है। इसी ध्वनि का एक अङ्ग 'सङ्गीत' है, जिसके प्रभाव की व्यापकता सर्वविदित है। यह भी ध्वनि का ही प्रभाव है कि आज विकसित देशों में शोर और उसकी प्रतिक्रिया को 'ध्वनि-प्रदूषण' नाम देकर इस समस्या के निराकरण हेतु विविध प्रकार के उपाय खोजे जा रहे हैं। 'सङ्गीत' की भाँति 'मन्त्र' भी इसी ध्वनि का एक रूप है। सङ्गीत का रूप स्थूल है—विस्तारपूर्ण, किन्तु 'मन्त्र' सूक्ष्म होता है। और, विचित्र तथ्य यह है कि जो मन्त्र जितना ही सूक्ष्म है, वह उतना ही अधिक शक्ति-सम्पन्न और प्रभावशाली है। कितने ही एकाक्षरी-मन्त्र ऐसे हैं कि उनका

विधिवत प्रयोग किया जाय, तो ऐसा चमत्कारी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है कि उसके आगे नाभिकीय ऊर्जा भी तुच्छ प्रतीत होती है।

प्रामाणिक-प्रयोग :

ध्वनि के विश्लेषण में एक विद्वान ने लिखा है :—

"........जब शब्दों का उच्चारण होता है, तब उनसे वायु में कम्पन उत्पन्न होती है। यह कम्पन (तरंगें) वायुमण्डल में व्याप्त ईथर-तत्त्व के माध्यम से कुछ ही क्षणों में ब्रह्माण्ड की परिक्रमा कर डालती हैं। इस परिक्रमा के दौरान जहाँ उन्हें अनुकूल तरंगें प्राप्त होती हैं, वे उनसे मिल जाती हैं और इस प्रकार संयुक्त होने पर उनका एक पुञ्ज बन जाता है। वह पुञ्ज बहुत ही शक्तिशाली होता है और उसके प्रभाव से साधक की इच्छित घटना अथवा कार्य का मूर्त्तरूप सुलभ हो जाता है। किन्तु यह सब इतनी शीघ्रता और सूक्ष्मता से होता है कि हम सोच भी नहीं पाते कि यह चमत्कार कैसे हुआ ?"

ध्वनि का प्रभाव सङ्गीत में सर्वाधिक स्पष्ट होता है। सङ्गीत के मेघ, मल्हार और दीपक, हिंडोले जैसे रागों तथा उनके प्रभाव का वर्णन अनेक ग्रन्थों में मिलता है। सङ्गीत के ही एक पूरक अङ्ग (वाद्य-ध्वनि) के माध्यम से आज भी अनेक क्षेत्रों में चमत्कारपूर्ण कार्य सम्पादित हो रहे हैं। तञ्जौर के एक विद्यालय में वनस्पति-शास्त्रियों ने ध्वनि-प्रभाव के माध्याम से वानस्पतिक उत्पादन (पैदावार) में वृद्धि के सफल प्रयोग कर दिखाये हैं।

ध्वनि-प्रभाव के द्वारा पशु-पक्षियों को सम्मोहित करने के कितने ही प्रसङ्ग इतिहास में प्राप्त होते हैं। सम्राट् विक्रमादित्य, उदयन, बाबा हरिदास, बैजू-बाबरा और तानसेन सङ्गीत क्षेत्र में देवताओं की भाँति पूज्य हैं, कारण कि उन्होंने अपनी ध्वनि-शक्ति के प्रयोग में सिद्धि प्राप्त करली थी। जङ्गली जानवर भी सङ्गीत से प्रभावित होते हैं। मृग का 'वीणा-प्रेम' विख्यात है। समुद्री-जीवों में डोल्फिन और सील जाति की मछलियाँ सङ्गीत से मुग्ध होकर अपनी रक्षा करना भी भूल जाती हैं। यही नहीं, अनुभवों से पता चलता है कि साँप, चूहे तथा अन्य जीव-जन्तु भी ध्वनि से प्रभावित—स्तब्ध, भ्रमित, भयभीत अथवा वशीभूत हो जाते हैं। पशु-मनोविज्ञान के प्रकाण्ड-पण्डित जार्ज केरविन्सन का कथन है—

"पियानो की ध्वनि में मुग्ध होकर चूहे दिन में भी परम निर्भय होकर पास आ जाते हैं। कुत्ते, उल्लू और गरुड़ भी सङ्गीत से प्रभावित होते हैं।" इसी प्रकार नार्वे के विद्वान डॉ. हन्सन ने बताया है कि ध्वनि का आनन्द लेने में शहद की मक्खी का स्थान सर्वोच्च है।

जड-पदार्थों को भी ध्वनि से प्रभावित होते देखा गया है। आस्ट्रेलिया के मेलबोर्न नगर में एक बार बिना अन्य किसी साधन (पेट्रोल, बिजली, डीजल) के, केवल ध्वनि-प्रयोग द्वारा ही, एक मोटरकार को चलाने और इच्छानुसार रोकने का अद्भुत प्रदर्शन किया गया था। 'ग्राहम' और 'नील' नाम के दो वैज्ञानिक, जो इस ध्वनि-चमत्कार के प्रदर्शक थे, आज भी मेलबोर्न के गौरव माने जाते हैं।

प्रथम विश्व-युद्ध (1914-1919) के समय जर्मन में भी एक अद्भुत ध्वनि-यन्त्र बनाया गया था, जिसकी शक्ति मृत्यु-किरण जैसी घातक थी। उस यन्त्र से एक ऐसी विशिष्ट ध्वनि उत्पन की जाती थी और उसे ऐसे ढङ्ग से वायुमण्डल में प्रसारित किया जाता था कि इच्छित जन-समूह, उसके संस्पर्श मात्र—केवल सुनने से ही—चेतना-शून्य होकर अन्ततः निष्प्राण हो जाता था। किस्से कहानियों में जिस 'मौत की आवाज' को हम काल्पनिक समझते हैं, जर्मन-वैज्ञानिकों ने उसे प्रत्यक्ष कर दिखाया था।

चिकित्सा क्षेत्र में ध्वनि का प्रभाव सर्वविदित हो चुका है। विभिन्न प्रकार के दुस्साध्य-दोषों के शमन में, जैसे—घाव, नेत्र-विकार, स्नायुदोष, विक्षिप्तता तथा अन्य मस्तिष्क-रोगों में, ध्वनि-प्रयोग ने अद्भुत प्रतिक्रिया दिखाई है। यहाँ तक कि ध्वनि का सम्बल लेकर ऑपरेशन जैसे जटिल कार्य भी सफलतापूर्वक सम्पन्न किये गये हैं। चिकित्सा-जगत् का नवीनतम आविष्कार 'अल्ट्रा-साउण्ड' ध्वनि-विज्ञान पर ही आधारित है। इतना ही नहीं, अब तो वातानुकूल (शीत-ताप नियन्त्रण) की प्रक्रिया में ध्वनि की उपादेयता स्वीकृत हो चुकी है।

ध्वनि-चमत्कार : कुछ विशिष्ट प्रसंग :

पिट्सवर्ग (अमेरिका) में रारेन्स ह्रीथ नामक चिकित्सक ने ध्वनि-चिकित्सा-प्रणाली को विकसित करने के लिए एक संस्था का सृजन किया है। यह संस्था (चिकित्सालय) सङ्गीत-ध्वनि के द्वारा असाध्य-

रोगों का उपचार करती है। हजारों व्यक्ति, जो विभिन्न व्याधियों से ग्रस्त रहते हैं, प्रतिवर्ष वहाँ जाकर स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त कर रहे हैं। पोलियो, पक्षाघात, स्नायुदोष एवं मूकता जैसे जटिल और असाध्य-रोग प्राय: वहाँ केवल ध्वनि-प्रयोग से दूर किये जाते हैं। उस संस्था का नाम है—'रिकार्डिङ्ग फॉर रिलेक्जेशन, रिस्पॉन्स एण्ड डिस्कवरी।' संकेत रूप में 'आर फॉर आर' कहा जाता है।

भारत में भी ध्वनि के माध्यम से व्याधि-शमन होता रहा है। प्राचीन-काल के सन्दर्भों को भले ही हम कपोल-कल्पित कह लें, पर मध्य-युगीन इतिहास को कैसे नकार सकेंगे ? इतिहास में स्पष्ट रूप से वर्णित है कि रियासत रामपुर के नवाब लकवा-रोग से पीड़ित थे और उन्हें इस रोग से मुक्त करने के लिए उस्ताद सिराज खाँ (सूरजखाँ) द्वारा राग 'जय-जयवन्ती' की ध्वनि-तरंगों का सफल प्रयोग किया गया था। चंकेरी-नरेश राजा राजसिंह अनिद्रा-रोग से आक्रान्त थे। अकबर-कालीन गायक बैजूबावरा ने उन्हें 'पूरिया' राग की ध्वनि-तरङ्गों से स्पर्श द्वारा निद्रा-मग्न कर दिया था। चंकेरी-नरेश रोग-मुक्त होकर सहज-स्वाभाविक निद्रा में सोने लगे थे।

लन्दन की एक महिला ने भी उस क्षेत्र में संसार को चमत्कृत किया है। वहाँ की एक चित्रशाल 'लिटन आर्ट गैलरी' में मिस वाट्स ह्यूज नामक सङ्गीतज्ञ-स्त्री ने (जिसकी एक पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है—वायस फीगर्स) विभिन्न स्वर-लहरियों के द्वारा अनेक चित्र बना दिये थे। इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि उस वाद्य-यन्त्र का निर्माण भी उसी ने किया था। जब वह अपने बाजे से विभिन्न प्रकार की स्वर निकालती, तो कैनवेश पर बिखरे सूखे रङ्गों के कण एक क्रम से एकत्र होकर समुद्री जीव-जन्तुओं, प्रस्तर-खण्ड, शैल-शिखर, सरिता-तट और वृक्ष आदि के चित्रों का रूप धारण कर लेते थे।

मियामी विश्वविद्यालय (अमेरिका) के डॉ॰ रिचर्डस का नाम संगीत-प्रेम के क्षेत्र में प्रसिद्ध है। उनकी उपलब्धि भी चकित करने वाली थी—वे संगीत-ध्वनि से मुग्ध करके मछलियाँ पकड़ा करते थे। शिकारी लोग जाल का सहारा लेते थे, परन्तु डॉ. रिचर्डस नाद का आश्रय लेकर वह असम्भव जैसा कार्य सम्भव कर देते थे।

विद्युतीय-उपकरणों की श्रेणी में, इधर कॉलबेल की तरह एक ऐसा यन्त्र बना है, जो शटर दबाते ही सितार की तरह मीठी झन्नाहट उत्पन्न करता है। उस झन्नाहट में कुछ ऐसा आकर्षण है कि आस-पास के सारे पतंगे, बाजे के ऊपर मँडराने लगते हैं— ठीक उसी प्रकार, जैसे वे दीपक की लौ पर मँडराते हैं।

फ्रान्स देश भी जो अपने वैभव-विलास के लिए यूरोप में चिर-काल से प्रसिद्ध है, इस क्षेत्र में पीछे नहीं रहा। वहाँ पेरिस की एक महिला (मैडम किनलाङ्ग) सङ्गीत के प्रति पूर्णतया समर्पित थी। वह भी वाद्य-ध्वनि के सहारे विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ बना देती थी। यहाँ तक कि वह किसी अन्य गायक के गीत पर भी सङ्गत करके अपनी वाद्य-ध्वनि से चित्र-निर्माण कर दिखाती थी। एक बार उसने इस प्रणाली से, दूसरे गायक के गीत पर अपना बाजा बजाते हुए, मरियम और ईसा का चित्र बना दिया था। वह चित्र धार्मिक था—रोमन कैथोलिक ईसाई-समाज के उस गीत का जैसा भाव था, ठीक वह उस चित्र में दृश्यमान हो गया था। उन दिन पेरिस में एक भारतीय युवक पढ़ रहा था। महिला (किनलाङ्ग) की ख्याति सुनकर वह भी उसके पास गया और ध्वनि-चमत्कार देखने की इच्छा प्रकट की। महिला के कहने पर उसने संस्कृत भाषा में एक छन्द गाया। वह छन्द 'भैरवाष्टक' का अङ्ग था। युवक गाने में तन्मय था और महिला अपना वाद्य-यन्त्र बजाने में ! कुछ मिनटों बाद ही लोगों ने देखा कि कैनवेश पर बिखरे हुए कण किसी क्रम से एकत्र होने लगे हैं। थोड़ी देर में उस छन्द के देवता कालभैरव का स्पष्ट चित्र अङ्कित हो गया। भैरव देवता अपनी जिस भयङ्कर मुद्रा के लिए प्रसिद्ध हैं, वह उस चित्र के चेहरे पर प्रत्यक्ष थी। यही नहीं, उनका वाहन कुत्ता भी पास खड़ा था।

नितान्त जड़-पदार्थ भी ध्वनि से सम्वेदित होते हैं, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण इङ्गलैण्ड का एक विख्यात दर्शनीय स्थल है—स्टोनहेञ्ज ! यहाँ प्राकृतिक रूप से परस्पर जुड़े हुए पत्थरों के टुकड़े विभिन्न प्रकार की आकृतियों में खड़े हैं। न जाने कैसा रहस्य है कि वायु में उत्पन्न कोई भी स्वर-लहरी उन पत्थरों को सम्वेदित देती है और वे थरथराने लगते हैं। उस समय यही प्रतीत होता है कि बस, अब ये सारे पत्थर लड़खड़ाकर गिर जायेंगे। अति मद्धिम स्वर में कोई स्वर-लहरी वहाँ अविराम-गति से

गूँजती रहे. तो निश्चित है कि सारे पत्थर बिखर जायेंगे। कई बार के प्रयोगों से जब सत्य प्रामाणित हो गया, तब वहाँ गाने-बजाने, किसी भी प्रकार की सङ्गीत-ध्वनि उत्पन्न करने को पूर्णतया निषेध कर दिया गया। इस कानून को वहाँ बड़ी कठोरता से लागू किया गया है और सैलानियों के मध्य रक्षक-वर्ग घूम-घूमकर निकरानी करता रहता है। पत्थरों में सम्वेदनशीलता और ध्वनि-प्रभाव के चमत्कार का यह अद्भुत उदाहरण है।

स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की शक्ति को आज के भौतिक-विज्ञान भी स्वीकार करते हैं। बारूद और उसकी गैस की प्रभाव-भिन्नता सर्वविदित है। ठीक यही सिद्धान्त मन्त्र-विज्ञान में भी चलता है। ध्वनि-स्थूल है और मन्त्र उसके रूप होने के कारण सिद्धान्ततः अत्यधिक शक्तिशाली होते हैं। भारतीय-मनीषियों ने कई पीढ़ियाँ बिताकर अपने अनुभवों को समुन्नत सुनिश्चित किया और उन्हें 'मन्त्र' के रूप में उपादेय घोषित किया था। मन्त्र-विद्या के विकास का यही वैज्ञानिक आधार रहा है कि ध्वनि (शब्द) की शक्ति अन्य भौतिक-पदार्थों की शक्ति से कहीं अधिक सूक्ष्म और विभेदक होती है। आज के अणु-सिद्धान्त की उत्पत्ति में यही ध्वनि-सिद्धान्त मुख्य आधार रहा है। ध्वनि-तरङ्गों के माध्यम से किसी भी व्यक्ति अथवा वस्तु को, वह कहीं भी हो, प्रभावित किया जा सकता है। मन्त्र द्वारा सूक्ष्मता से ध्वनि-प्रेषण करके, अखिल ब्रह्माण्ड में कोई भी स्थिति उत्पन्न करने की क्षमता भारत के प्राचीन मन्त्र-मर्मज्ञों ने अर्जित करली थी। परन्तु, इसका भौतिक-लाभ उन्होंने कभी नहीं उठाया। वे सदैव अध्यात्म के उपासक थे। 'बहुजन हिताय—बहुजन सुखाय' उनका जीवन-दर्शन था, इसलिए अपनी अद्भुत क्षमता का, अपनी अलौकिक-शक्ति का उपयोगवे कभी अपने लिए नहीं करते थे। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, कलह और छल-छद्म से वे सर्वथा अछूते थे। व्यक्तिगत स्वार्थों की क्षुद्रता उन्हें स्पर्श नहीं कर पाती थी। वे मन्त्र-विद्या का उपयोग केवल अध्यात्म-साधना और लोक-कल्याण के लिए ही करते थे।

हम देखते हैं कि विद्युतगति को भी परास्त करके ध्वनि, अखिल विश्व में व्याप्त हो जाती है। आज का रेडियो-यन्त्र वायुमण्डल में समाहित ध्वनियों को पकडने का सशक्त-साधन है। अपनी यान्त्रिक-रचना के आधार पर वह हजारों मील दूर बोले गये शब्द को तत्क्षण पकड़कर हमें सुना देता है। वायुमण्डल में ध्वनि के अस्तित्व और उसकी गतिशीलता

का यह प्रबल प्रमाण है यह भी निश्चित हो चुका है कि ध्वनि कभी नष्ट नहीं होती, वह वायुमण्डल में विलीन होकर सदैव विद्यमान रहती है। रेडियो के ध्वनि-ग्राहक सिद्धान्त को कुछ और विकसित करने के प्रयास में कई एक वैज्ञानिक यहाँ तक कृत निश्चित हैं कि वे एक दिन विभिन्न देशों के ऐतिहासिक-महापुरुषों—राम, कृष्ण, अर्जुन, ईसा, मरियम, सीजर, विक्रमादित्य, पृथ्वीराज, अकबर और नैपोलियन के वाक्य जन-सामान्य को सुना देंगे। और, यह तो निश्चित है ही कि यदि हो सका, तो बाल्मीकि, व्यास, कालिदास, होमर, मिल्टन, तुलसीदास और सूर का काव्य भी उन्हीं के कण्ठ स्वर में सुना जा सकेगा।

1

अध्यात्म के आयाम

विषय प्रवेश :

साहित्य किसी देश की सभ्यता, संस्कृति और प्रगति का मापदण्ड होता है। यहाँ 'साहित्य' शब्द का आशय केवल काव्य, नाटक अथवा गद्य-ग्रन्थों से ही नहीं, अपितु वाङ्मय के विभिन्न स्वरूपों और बौद्धिक-विकास के अनेक आयामों से है। इस प्रकार, ज्ञान के लगभग सभी क्षेत्रों का, साहित्य के माध्यम से स्पर्श किया जा सकता है। अध्यात्म, व्याकरण, काव्य, दर्शन, राजनीति, चिकित्सा, विधि और प्रौद्योगिकी जैसे समस्त विषयों को 'साहित्य के आयाम' स्वीकार किया गया है। उक्त सभी विषयों का अपना-अपना साहित्य है। वाणी द्वारा उच्चारित शब्दावली अथवा वाणी के माध्यम से वायुमण्डल में, जो कुछ भी प्रसारित किया जाता है, वह सब प्रकारान्तर से साहित्य का स्वरूप (अथवा अङ्ग) माना जाता है।

वाणी और विधि :

मानव सभ्यता के आदि-चरण में, भाव-सम्प्रेषण का एक मात्र आधार संकेत था। संकेतों से ही व्यक्ति परस्पर विचार-विनिमय करता था। उसके बाद ध्वनि-विकास को वाणी का स्वरूप प्राप्त हुआ। कालान्तर में वाणी के विकास ने लिपि को जन्म दिया। लिपि का आविष्कार होने पर महर्षियों द्वारा प्रणीत सूत्र, उपदेश, कथन, यहाँ तक कि बड़े-बड़े काव्य, नाटक तथा अन्य विधाओं के ग्रन्थ भी, लिपिबद्ध किये जाने लगे।

लिपिबद्धता ने साहित्य को सुरक्षा, प्रामाणिकता और दीर्घ-जीवन प्रदान किया है। कल्पना कीजिए, यदि लिपि न होती तो आज सभ्यता, ज्ञान और बौद्धिकता की क्या स्थिति होती ? अस्तु, स्मरण-शक्ति शिथिल हो जाने पर, अथवा सुपात्र, मेधावी शिष्य न मिलने पर आचार्यों का ज्ञान मात्र उन्हीं तक सीमित रह जाता था। लिपि के आविष्कार ने

उसे सर्वसुलभ और स्थायी बना दिया। आज भी विविध प्रकार का साहित्य उपलब्ध है, इसका प्रमुख आधार लिपि ही है।

विश्व में ज्ञान की लिपि को साहित्य रूप में उपलब्ध कराने का श्रेय उन मनीषियों को है, जिन्होंने लिपि का आविष्कार किया। लिपि ही वह एक मात्र माध्यम है, जो व्यक्ति और उसके विचारों को स्थायित्व प्रदान करता है। किन्तु यह समझना कि लिपि का आविष्कार और प्रचार तथा प्रयोग एकबारगी हुआ होगा, भ्रम है। आविष्कार, सुधार, परिमार्जन, संशोधन--यह सब प्रगति के सोपान हैं। बिना इन्हें पार किये, किसी को पूर्ण-विकास प्राप्त नहीं हो सकता।

लिपि को भी विकास के अनेक सोपान पार करने पड़े हैं। सांकेतिक चिह्नों (प्रतीकों) के बाद वर्णमाला का आविष्कार हुआ, और तब शब्दों के योग से वाक्य-रचना की स्थिति आयी। लिपि की आधार-भूमि में विभिन्न वस्तुओं का प्रयोग होता रहा है। पत्थरों (शिला-खण्डों) पर, ताड़-पत्रों पर, भोजपत्रों पर और धातु-पत्रों (ताम्र, रजत, स्वर्ण आदि) पर चलते-चलते आज साहित्य बहुरंगे कागजों पर तैर रहा है।

विकास की वह यात्रा शताब्दियों की नहीं सहस्राब्दियों की रही है। ज्ञान-विज्ञान और मानव-मस्तिष्क की चेतना—पता नहीं, इसे आगे किस कौतुकमय शिखर पर पहुँचा दे? जो भी हो, यह निर्विवाद है कि साहित्य और लिपि सभ्यता का संरक्षण करने वाले दो प्रमुख आधार हैं। इसके प्रभाव में ज्ञान के अस्तित्त्व और विकास की कल्पना ही व्यर्थ है।

अध्यात्म का अस्तित्व :

भारतीय वाङ्मय में अध्यात्म को सर्वाधिक प्राचीनता और महत्त्व प्राप्त है। अन्वेषण से पता चलता है कि साहित्य का मूल स्वरूप आध्यात्मिक-ग्रन्थों में ही निहित है। उन्हीं से काव्य कथा जैसी अन्य विद्याएं विकसित हुई। अध्यात्म का सम्बन्ध ब्रह्म-विद्या से है। आत्मा-परमात्मा के भेद, सम्बन्ध और विवेचन के द्वारा मानव-जीवन को शान्तिपूर्ण, सुखमय बनाने के उद्देश्य से आध्यात्मिक-साहित्य का प्रणयन हुआ। और, वह इतने विपुल, परिमाण में, इतने गम्भीर ज्ञान के परिवेश में हुआ कि रचनाकारों के पाण्डित्य, उनकी स्मरण-शक्ति और व्यावहारिकता को अलौकिक—अति मानवीय कहा जाने लगा।

अध्यात्म की प्रभावशीलता :

भारतीय-सभ्यता, संस्कृति और सामाजिक-जीवन का प्रत्येक क्षेत्र अध्यात्म से कहीं-न-कहीं अवश्य प्रभावित है। वैसे, पश्चिमी-सभ्यता संस्कृति के प्रभाव के पूर्व तो यहाँ का समस्त जीवन, सारा परिवेश अध्यात्ममय रहा है। यह भारतीय अध्यात्म की प्रभावशीलता ही है कि आज भौतिक-विज्ञान के चरम-शिखर पर पहुँचे हुए पश्चिम-देश, यहाँ की सभ्यता, संस्कृति धार्मिक-मान्यताओं का अनुकरण करने में स्वयं को गौरवान्वित समझते हैं। जहाँ तक भारतीय-समाज की बात हैं, भले ही हम पश्चिमी जड़-विज्ञान और अर्थसत्ता के अन्ध-समर्थक हो गये हैं, तथापि अध्यात्म हमारे मन-प्राण में, रक्त-मांस में और चेतन-अवचेतन कुछ इस प्रकार समाविष्ट है कि हम जाने-अनजाने आज भी किसी-न-किसी रूप में उसकी (अध्यात्म की) पगडण्डियों पर चलते रहते हैं।

अध्यात्म के इस सम्मोहन का, उसकी इस अद्भुत शक्ति का रहस्य क्या है! वह रहस्य है, उसकी शाश्वतता, लोक-हितैष्णा और सत्यं शिवम् के धरातल पर मानव-जीवन को सुन्दरम् बनाने की प्राणवत्ता।

प्रत्यक्ष न देख पाने के कारण हम वायु के अस्तित्त्व को भले ही नकार दें, परन्तु इससे वह समाप्त नहीं हो जाती। वह है, और रहेगी। वस्तुत: हमारी प्राण-शक्ति और चेतना वही है। हम उसे पहचानते नहीं. पहचानना भी नहीं चाहते। वायु ही नहीं, प्रकृति के समस्त तत्त्वों की भी हम उपेक्षा कर रहे हैं। किन्तु यह केवल हमारा दम्भ है—शुद्ध अज्ञान, है और कुछ नहीं।

अध्यात्म के अंग :

आत्मा-परमात्मा, प्रकृति-ईश्वर, परलोक-पराभनोविज्ञान, अतीन्द्रिय-शक्ति और अलौकिकता—यह सब अध्यात्म के वर्ण्य-विषय हैं। वैसे, सामान्य रूप में पूजा-पाठ, जप-तप, धर्म-दर्शन, उपासना-पूजा, देव-स्मरण और ईश्वर-चिन्तन को ही अध्यात्म का क्षेत्र माना गया है। जहाँ कहीं धर्म-कर्म, पूजा-पाठ और कर्मकाण्ड का प्रसङ्ग आता है, व्यवहारिक-दृष्टि से लोग इसी को अध्यात्म मानते हैं।

जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है, आत्मा और परमात्मा, जीव और ईश्वर, माया और ब्रह्म के मध्य सामञ्जस्य स्थापित करने वाली विद्या ही अध्यात्म है। यह चिन्तन-परक और कर्मकाण्ड तथा विधि-

विधान समर्थक विषय है । ईश्वरोपासना और धर्म-चिन्तन ही इसका मुख्य बिन्दु है । इस दृष्टि से वेद, शास्त्र, पुराण, स्मृतियाँ, आरण्यक, उपनिषद् तथा अन्य सभी धर्म-ग्रन्थ अध्यात्म के अङ्ग माने जाते हैं । देवी-देवताओं के श्री-विग्रहों की पूजा से लेकर निराकार-ब्रह्म के चिन्तन और वैदिक-ऋचाओं, सूक्तों के अध्ययन-मनन तक सब कुछ अध्यात्म का विषय माना जाता है । यह एक ऐसा महासागर है कि इसके किसी भी तट पर खोज की जाय, तो इसके तल में ज्ञान के रेतीले-कण अवश्य प्राप्त होंगे ।

मानव-जीवन में श्रद्धा, आस्था, मानवता सदाचार, लोकहित, न्याय, दया और नैतिकता जैसे गुणों का समावेश करने में अध्यात्म बहुत सहायता कर रहा है । इसके अभाव में क्या होता ? यह सोचकर ही रोमाञ्च हो जाता है । निश्चय ही उस स्थिति में, अध्यात्म के अभाव में, मानव-सृष्टि बर्बर, हिंसक, असभ्य, मलिन-मना और पशुवत् होती । पशु चूँकि फिर भी पशु है, अतः उसकी पशुता स्वाभाविक होती है । किन्तु किसी मनुष्य में पशुता का आविर्भाव उसे घोर विकृति से आक्रान्त कर देता है । अध्यात्म के कारण ही यह असाध्य-रोग मानव-समुदाय को छू नहीं पाया ।

अध्यात्म : उद्देश्य और उपलब्धि :

आध्यात्मिक-क्षेत्र में साधकों का उद्देश्य अथवा लक्ष्य क्या होना चाहिए, इस पर मतैक्य नहीं है । सांसारिक माया-मोह और भौतिक-सुखों की कामना रखने वाले जन अध्यात्म की ओर मात्र इसलिए उन्मुख होते हैं कि उसके द्वारा उन्हें धन-धान्य, वैभव-सम्पदा तथा शरीर और परिवार का सुख प्राप्त हो । इसके विपरीत, विवेकीजन जो संसार की क्षण-भंगुरता से परिचित हैं । आत्म-ज्ञान, ब्रह्म-सायुज्य और मोक्ष की कामना से इस क्षेत्र में प्रविष्ट होते हैं ।

आत्मज्ञान एक पक्ष है और मोक्ष इससे सर्वदा भिन्न दूसरी स्थिति है । साधना का एक आयाम और है—सिद्धि-प्राप्ति, जो आत्मज्ञान तथा मोक्ष से बहुत दूर की बात है । वस्तुतः यह सांसारिक-कामनाओं की पूर्त्ति करने वाली स्थिति है, जो साधक को भौतिक सम्पन्नता तो देती है, परन्तु ब्रह्मज्ञान, वैराग्य, निस्पृहता और मुक्ति जैसी उपलब्धियाँ उसके लिए स्वप्नवत् ही रहती हैं । जैसे सिद्धि-कामना वाला व्यक्ति कभी मुक्ति

नहीं पा सकता, इसी प्रकार आत्मज्ञान और ब्रह्म-दर्शन भी उसके लिए सुलभ नहीं हो पाता। आध्यात्मिक-क्षेत्र में सिद्धियाँ पहले मिलती हैं। सामान्य-साधक उनकी चकाचौंध से विचलित हो उठते हैं और लक्ष्य की ओर नहीं बढ़ पाते। वास्तव में सिद्धियाँ—मार्ग के विश्राम-स्थल हैं, लक्ष्य अथवा गन्तव्य-स्थल नहीं।

प्रसङ्ग-पूर्त्ति के लिए यहाँ आत्मज्ञान, मोक्ष और सिद्धियों का संक्षिप्त-परिचय (परिभाषित रूप में) दिया जा रहा है, इससे पाठकों को विषय के प्रति वाञ्छित जानकारी पाने में सुविधा रहेगी।

आत्म-ज्ञान :

आत्म-ज्ञान अथवा आत्म-लाभ दोनों का आशय एक ही है। इसका अर्थ है—व्यक्ति को अपनी आत्मा में परमात्मा की उपस्थिति की प्रतीति होना। कोई साधक स्वयं को परमात्मा का अंश समझ ले, यही उसका आत्मज्ञान अथवा आत्म-लाभ है। किन्तु यह आत्मज्ञान अर्थात् परमात्म-भाव सहज सुलभ नहीं है। इसी को ब्रह्मज्ञान भी कहा जाता है। और, ब्रह्मज्ञान (रूप की प्राप्ति) कितना दुर्लभ है, सभी जानते हैं। बड़े-बड़े योगी-यती भी इसमें सफल नहीं हो पाते।

अस्तु, परमात्म-भाव अर्थात् आत्म-बोध प्राप्त करने के अनेक मार्ग (साधन अथवा माध्यम) हैं। योग-साधना इसका प्रमुख मार्ग है। किन्तु देखने-सुनने में सरल और व्यवहारिक प्रतीत होने पर भी यह बहुत दुर्गम पथ हैं। तत्त्व-दर्शी और सिद्ध-साधक बन पाना बहुत कठिन है। फिर आज के भौतिक-गुग में तो वह और भी जटिल हो गया है। दूसरा मार्ग है—भक्ति। भक्ति-साधना के द्वारा भी आत्म-लाभ प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु आज का कोलाहलमय जगत्, माया-मोह से इस तरह आक्रान्त है कि भक्ति-भावना की स्थिरता को प्रतिक्षण चोट पहुँचती रहती है। योग-साधना वेद-सम्मत है, जिसमें मन्त्र, यम-नियम और इन्द्रिय-दमन को अनिवार्य-अङ्ग के रूप में स्वीकार किया गया है भक्ति-साधना में अटूट निष्ठा, अहम्-मुक्ति, समर्पण-भाव, सहिष्णुता और अपरिग्रह को वरीयता दी जाती है। समस्त कामनाओं से तटस्थ होकर, केवल इष्ट के प्रति समर्पण-भाव रखने वाला साधक ही भक्ति-मार्ग पर सफल हो सकता है। किन्तु आज के समय में निष्काम साधना की कल्पना ही व्यर्थ है। आज जो कुछ भी होता है—सकाम होता है।

मोक्ष :

प्राणी का आवागमन (बार-बार विभिन्न योनियों में जन्म लेने और मरने का क्रम) से मुक्त हो जाना ही मोक्ष है । मोक्ष अर्थात् मुक्ति की स्थिति में प्राणी की आत्मा परम स्वतन्त्र हो जाती है । यह सर्व-स्पर्शी, सर्वगामी और सर्व-समर्थ होकर परम निर्द्वन्द भाव से, बिना किसी विघ्न-व्याघात के, ब्रह्म का सायुज्य प्राप्त करके, दु:ख-शोक, हर्ष-विषाद और पीड़ा-प्रपञ्च से परे, सच्चिदानन्द की स्थिति में पहुँच जाती है । किन्तु वह उपलब्धि अत्यन्त दुर्लभ होती है । कदाचित् ही कोई महान तपस्वी-साधक इस स्थिति (मोक्ष) को प्राप्तिकर पाता है ।

सिद्धि :

सिद्धि शब्द का सामान्य अर्थ है—सफलता । साधक जब किसी मार्ग पर अग्रसर होता है, तो उसे साधना प्रभाव से उत्पन्न अनेक प्रकार की शक्तियाँ-सुविधाएं प्राप्त होने लगती हैं । इन्हीं को सिद्धि कहते हैं । यद्यपि सिद्धियों का बाह्य रूप बड़ा आकर्षक प्रतीत होता है, किन्तु मोक्ष-कामी के लिए वे प्रकारान्तर से अवरोध बन जाती हैं । सिद्धियों के द्वारा प्राप्त होने वाले लाभ को ठुकराकर जो साधक आगे बढ़ते रहते हैं, अन्ततः वही आत्म-लाभ और मोक्ष की सीमा तक पहुँच पाते हैं । सिद्धियों के व्यामोह में दिग्भ्रमित होकर रह जाने वाला साधक समाज में भले ही सिद्ध, और चमत्कारी या अलौकिक पुरुष के रूप में ख्याति प्राप्ति करले किन्तु वह आवागमन और सांसारिक माया-मोह से किसी न किसी रूप में अवश्य ही आक्रान्त रहता है ।

उपलब्धि और प्रभाव-भेद के आधार पर सिद्धि-शक्ति के दो भेद माने गये हैं ऋद्धि और सिद्धि । आर्ष-ग्रन्थों में, इनका विस्तृत उल्लेख मिलता है । उनसे यह भी प्रमाणित होता है कि ऐसे भी साधक हो गये हैं, जिन्होंने ऋद्धि-सिद्धि, निधि और आत्मज्ञान सब कुछ प्राप्त कर लिया, फिर भी सांसारिक प्रलोभन में नहीं पड़े और महान् योगी की भाँति मोक्ष प्राप्त करके, अजर-अमर रूप में आज भी सर्व-कामी हैं । इस कोटि के साधकों में आञ्जनेय हनुमानजी का नाम अग्रगण्य है । वे इन समस्त गुणों के आधार हैं ।

योग-साधना द्वारा प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ (अलौकिक शक्तियाँ) आठ प्रकार की मानी गयी हैं । इन्हें अष्ठ-सिद्धि कहते हैं । इनका क्रम

इस प्रकार है--1. अणिमा, 2. महिमा, 4. लघिमा, 5. प्राप्ति, 6. प्राकाम्य, 7. ईशत्त्व, 8. वशित्त्व ।

तन्त्र-साधना के क्षेत्र में, सिद्धियों का प्रभाव इस प्रकार बताया है कि—

- **ज्ञान-सिद्धि**—विलक्षण स्मृति, अद्‌भुत धारणा-शक्ति, निकट अथवा दूर की तथा भूत और भविष्य की बात (घटना) जान लेने की क्षमता—यह सब ज्ञान-सिद्धि के रूप हैं ।

- **कार्य-सिद्धि**—नभोगमन (आकाश में उड़ना) जल की सतह पर खड़े-खड़े चलना, अग्नि पर चलना, लेटना, बिना कुछ खाये-पीये दीर्घकाल तक उपवास करते हुए साधना-रत रहना, कठोर तपस्या की क्षमता आदि की गणना कार्य-सिद्धि में होती है ।

- **काय-सिद्धि**—काया अर्थात् शरीर को इच्छानुसार रूप में परिवर्तित कर लेना, छोटा-बड़ा या भारी-हल्का बना लेना—काय-सिद्धि के अन्तर्गत आता है । इसी प्रकार किसी अङ्ग विशेष को अथवा सर्वाङ्ग (सारे शरीर को) मनोनुकूल कठोर या कोमलतम बना लेना भी काय-सिद्धि का एक रूप है ।

- **अन्नपूर्णा-सिद्धि**—इस प्रकार की सिद्धि प्राप्त कर लेने वाला साधक नाममात्र के पदार्थ से ही भारी जन-समूह की आवश्यकताएं पूरी कर देता है । रामायण में भारद्वाज मुनि और महाभारत में श्रीकृष्ण द्वारा प्रदर्शित इस सिद्धि का वर्णन मिलता है । शाक्त-ग्रन्थों में देवी के द्वारा अनेक अवसरों पर ऐसा चमत्कार किये जाने की कई घटनाएं वर्णित हैं ।

सामान्यत: योग-साधना के फलस्वरूप प्राप्त इन चार सिद्धियों को सांसारिक क्षेत्र में विशेष सम्मान प्राप्त है ।

ऋषियों को अनेक विद्वान् पृथक् शक्ति मानते हैं, किन्तु बहु-संख्यक साधक इस मत का समर्थन करते हैं कि तन्त्र के प्रमुख देवता गणेश की आठ पत्नियों में से चार ऋद्धियाँ हैं और चार सिद्धियाँ । योग-साधना से प्राप्त पूर्व वर्णित अष्ट सिद्धियों का क्षेत्र पृथक् है और गणेश-पत्नी के रूप में विख्यात ऋद्धि-सिद्धि का महत्त्व उनसे भिन्न और अधिक हैं । जो भी हो, ऋद्धि-सिद्धि यह सब योग-तप द्वारा अर्जित दिव्य शक्तियाँ ही हैं, जो लाखों साधकों में से कदाचित् ही किसी एक को आंशिक रूप में प्राप्त हो पाती हैं । हाँ, संसार से वीतराग, निस्पृह, ईर्ष्या-द्वेष से परे,

जितेन्द्रिय साधु-महात्माओं को ये अवश्य सुलभ हो जाती हैं। जगत्गुरु आदि शङ्कराचार्य, दक्षिण के महान् सन्त ज्ञानेश्वर और शिरड़ी के साईं बाबा जैसी दिव्य विभूतियों को ये सिद्धियाँ प्राप्त थीं। परन्तु उन्होंने इनका कोई प्रयोग अपने लिए, अथवा चमत्कार-प्रदर्शन के लिए नहीं किया। आवश्यकता पर लोकहित के लिए भले ही कभी कोई प्रयोग किया हो, परन्तु स्वयं उससे असम्पृक्त ही रहे। सिद्धि-सम्पन्न होने के बावजूद भी आत्मज्ञान और मोक्ष-प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर रहना—उनके जीवन का लक्ष्य था। अस्तु, चार सिद्धियों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है, अब चार ऋद्धियों का परिचय प्रस्तुत है—

● **सर्वोषध ऋद्धि**—जन-साधक इच्छा मात्र से, केवल दृष्टिपात द्वारा, स्पर्श द्वारा अथवा किसी शब्द के उच्चारण मात्र द्वारा अभीष्ट वस्तु तत्क्षण प्राप्त कर लेता है, या किसी का रोग, विकार, सङ्कट को दूर कर देता है, तो उसकी इस अद्भुत क्षमता को सर्वोषध-ऋद्धि कहते हैं।

● **बाल-ऋद्धि**—आवश्यकतानुसार तत्काल ही मन, वाणी अथवा काया में असीम शक्ति उत्पन्न कर लेना बाल-ऋद्धि है। इस शक्ति से सम्पन्न साधक का शरीर तो दृढ़-बलिष्ठ हो ही जाता है, उसकी इच्छा-शक्ति भी अजेय हो जाती है। वाणी और स्मृति से वह इतना सबल हो जाता है कि वेद-शास्त्र तथा अन्य आर्ष-ग्रन्थों के विषय में, निमिष मात्र में पर्याप्त विवरण प्रस्तुत कर देता है। वह विना देखे-पढ़े ही बड़े-बड़े ग्रन्थों के सन्दर्भ मौखिक रूप में देता है।

● **रस-ऋद्धि**—रस-ऋद्धि के प्रभाव से सम्पन्न साधक की वाणी में, स्पर्श में और दृष्टि में अद्भुत क्षमता उत्पन्न हो जाती है। ऐसा साधक दृष्टि मात्र से किसी को भी भस्म कर सकता है, मृतक को जिला सकता है। वाणी अथवा स्पर्श के द्वारा भी ऐसे कार्य कर सकता है। भोजन का रूप, गुण, स्वाद परिवर्तित कर देना उसके लिए सरल होता है। किसी को क्षुधार्त्त अथवा तृप्त कर देना उसकी इस शक्ति का एक छोटा-सा-प्रभावांश होता है। पौराणिक-प्रसङ्गों में शिवजी, दुर्वासा-मुनि, भारद्वाज के चरित्र ऐसी घटनाओं के प्रमाण हैं। नाथ-सम्प्रदाय के अनेक साधकों-बौद्ध-तन्त्राचार्यों में कई विभूतियाँ ऐसी हो गयी हैं, जो इस प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि शक्ति से सम्पन्न थीं। गुरु गोरखनाथ का नाम और तपोबल किसने नहीं सुना? बीसवीं सदी के महान् औघड़ सन्त बाबा कीनाराम भी ऐसी शक्तियों—ऋद्धि-सिद्धि-से सम्पन्न थे।

● **विक्रिया-ऋद्धि**—इस शक्ति का प्रभाव साधक को काया-परिवर्त्तन में सहज सक्षम कर देता है। बहु-रूपिये केवल रूप बदल सकते हैं, जब कि विक्रिया ऋद्धि-प्राप्त साधक इच्छा मात्र से तत्क्षण पशु, पक्षी, जीव-जन्तु कुछ भी बन सकता है।

● **क्षेत्र-ऋद्धि**—यह शक्ति साधक को काया-सङ्कोच अथवा विस्तार में समर्थ बनाती है। अपने शरीर से तेज-पुञ्ज उत्पन्न करके उससे तत्काल अपना एक छोटा-सा प्रतिरूप निर्मित कर देना (तेज-काया) इस शक्ति का प्रमुख प्रभाव है। भक्त को दर्शन देने में प्राय: देवगण इसी शक्ति का प्रयोग करते हैं।

किन्तु, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, आत्म-लाभ और मोक्ष की कामना रखने वाले साधक इन सिद्धियों की प्राप्ति से भ्रमित नहीं होते। उनकी दृष्टि में ये सब तुच्छ होती हैं। वे सदैव अपने लक्ष्य की ओर ही अग्रसर रहते हैं—ईश्वर से सायुज्य की ओर।

जहाँ तक सिद्धि-प्राप्ति का प्रश्न है, वह सबके लिए सुलभ नहीं होती। व्यक्ति के पूर्वजन्म के कर्म और संस्कार भी इसमें प्रमुख कारक होते हैं। साधना तो मुख्य मार्ग है ही, साथ में अन्य स्थितियाँ और उपादान भी सहायक होते हैं। व्यक्ति का सदाचारी, परोपकारी और सहिष्णु-संयमी होना--साधना की प्रथम सीढ़ियाँ हैं। इनके बाद प्रयास और साधनों से भी उसे सहायता मिलती है। भारतीय-संस्कृति में महर्षि पतञ्जलि का 'योग-सूत्र' सर्वमान्य ग्रन्थ है। उसमें उल्लेख मिलता है कि इस प्रकार की अलौकिक-शक्तियाँ (अष्ट-सिद्धि, नव-निधि आदि) प्राप्त होने में साधक को चार माध्यम सहायक होते हैं—1, जन्मजात-प्रभाव अर्थात् पूर्वजन्म के सुकर्मों का पुण्य-परिणाम। 2. औषधि-सेवन अर्थात् तान्त्रिक-विधि से पदार्थगत-प्रभाव की प्राप्ति। 3. तपश्चर्या अर्थात् जप-तप और मन्त्र-सिद्धि तथा 4. योग-साधना। किन्तु सूक्ष्म विवेचन से ज्ञात होता है कि ये चारों साधन किसी-न-किसी रूप में परस्पर अन्योन्याश्रित हैं, और इनमें से एक भी कम हो, या न हो, तो सिद्धि-प्राप्ति सम्भव नहीं है।

निष्कर्ष :

अध्यात्म-साधना के मुख्य दो लक्ष्य हैं—ब्रह्म-दर्शन (आत्म-लाभ, मोक्ष-प्राप्ति) तथा सिद्धि प्राप्ति (भौतिक समस्याओं के शमन हेतु

उपयुक्त साधनों की उपलब्धि), अर्थात् पारलौकिक और लौकिक (सांसारिक) सुखों की कामना पूर्ति । इन दोनों लक्ष्यों की प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं—जप, तप, योग, मन्त्र यन्त्र और तन्त्र की साधना । प्रस्तुत पुस्तक सम्पूर्ण मन्त्र को आधार बनाकर लिखी गयी है, अतः इसमें तन्त्र के सभी पक्षों—(तन्त्र, मन्त्र यन्त्र) पर विचार किया गया है ।

तन्त्र-साधना में समय, स्थान, प्रयोज्य-पदार्थ और वातावरण का बहुत महत्त्व रहता है, अतः साधक के लिए आवश्यक है कि वह इनकी ओर विशेष रूप से ध्यान दे ।

यों, तन्त्र-साधना में षट्चक्र-भेदन, कुण्डलिनी-जागरण और विभिन्न प्रकार के अन्य क्रिया-कलापों को वरीयता दी गयी है । ब्रह्म-दर्शन, अनाहत-नाद, समाधि की अवस्था, मोक्ष और देव-सायुज्य जैसे विषय बहुत जटिल हैं । उनका बोध केवल पुस्तक पढ़कर नहीं हो सकता । इसके सम्बन्ध में सम्यक् ज्ञान और दक्षता पाने के लिए किसी सुयोग्य गुरु, सिद्धि, सन्त-महात्मा की कृपा, उसकी समीपता आवश्यक है । मन्त्र-साधना का एक पक्ष और है—भैरवी-चक्र अर्थात् कोलाचार-साधना । किन्तु आज के युग में वह सब न तो साध्य है और न व्यवहारिक ही । अतः उन समस्त जटिल और दुर्बोध-विषयों को छोड़कर, इस पुस्तक के तन्त्र खण्ड में प्रमुख रूप से पदार्थगत तन्त्र-साधना का उल्लेख किया गया है ।

2 | तन्त्र का विकास-क्रम

मन्त्र :

आजकल कितनी ही ऐसी पुस्तकें बिक रही हैं, जिनसे सहजता के नाम पर मन्त्र रहित यन्त्र और तन्त्र के प्रयोग बताये गये हैं। किन्तु वास्तव में यह उन पुस्तकों के लेखकों का अज्ञान और भ्रम है। अध्यात्म-साधना में मन्त्र ही तो प्राणतत्त्व है, उसके अभाव में किसी साधना की सफलता की आशा करना दिवा-स्वप्न ही कहा जायेगा।

मन्त्र : अर्थ और परिचय :

मन्त्र शब्द बहुत व्यापक है। यह मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को (कम-से-कम भारतीय संस्कृति-परिवेश के सम्बन्ध में तो अवश्य ही) प्रभावित करता है। वह ज्ञान (साहित्य) का द्वार है और साथ ही, समस्त दैवी-शक्तियों का वायव्य रूप भी। शब्दकोषों में मन्त्र की व्याख्या करते हुए उसके ये अर्थ बताये गये हैं—

मन्त्र— गुप्त-वार्ता, कान में कही जाने वाली बात, सलाह, मन्त्रणा, परामर्श, वेद का संहिता-भाग, कार्य-सिद्धि का गुरु, शब्द या शब्द-समूह— जिसके द्वारा किसी देवता की सिद्धि या अलौकिक-शक्ति की प्राप्ति हो।

सहजता की दृष्टि से यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि मन्त्र-ध्वनि-प्रधान साधना है। इसमें ध्वनि-विज्ञान के गूढ़ और सूक्ष्मतम सिद्धान्त निहित हैं। 'नाद-ब्रह्म' की उक्ति का अर्थ यही है कि 'नाद' अर्थात् ध्वनि ही 'ब्रह्म' है। इसे इस प्रकार ही कह सकते हैं कि ईश्वर (संसार की सर्वोच्च सत्ता) का अव्यक्त रूप ध्वनि है। यही ध्वनि अथवा नाद 'ब्रह्म' है, अर्थात् 'मन्त्र' ही 'ब्रह्म' है।

हमारे मुँह से जो भी ध्वनि उच्चारित होती है, प्रत्येक स्थिति में कोई-न-कोई प्रभाव अवश्य उत्पन्न करती है। प्रागैतिहासिक-काल के मूर्धन्य मनीषियों ने उच्चारण-भेद के आधार पर समस्त ध्वनियों का वर्गीकरण करके उन्हें 'स्वर' और 'व्यञ्जन' दो वर्गों में विभक्त करके वर्ण-

माला के अक्षरों का निर्धारण किया था। उन्हीं वर्णों (अक्षरों) में से कुछ को, उद्देश्य और प्रभाव-भेद के आधार पर एक विशेष क्रम से प्रयुक्त करके मन्त्रों की रचना की गयी है। प्रकृति की विभिन्न (समस्त) शक्तियों को भारतीय अध्यात्म में देवी-देवताओं के रूप में परिकल्पित किया गया है। उन शक्तियों की अनुकूलता पाने के लिए उनसे सम्बन्धित मन्त्रों की रचना हुई। एक अक्षर (वर्ण) से लेकर दस, बीस, पचास और अधिक अक्षरों (वर्ण समूह) तक के मन्त्र रचे गये। साधक उनमें से अपनी आवश्यकता और श्रद्धानुसार किसी भी मन्त्र का जप करके लाभ उठा सकता है।

मन्त्रों की रचना का मूल आधार 'ध्वनि' है। ध्वनि का प्रभाव हम प्रत्यक्ष देखते हैं—भारी आवाज के वाद्य-यन्त्रों का शोर हमारे मन-मस्तिष्क में प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। सितार, सारङ्गी और जलतरङ्ग जैसे वाद्य-यन्त्रों का स्वर मधुरता और सम्मोहन की सृष्टि करता है। ढोल और नगाड़े उत्तेजना बढ़ाते हैं। इसी प्रकार शंख, घण्टा, घण्टी, झाँझ, मञ्जीरे जैसे बाजों का ध्वनि-प्रभाव भी एक दूसरे से भिन्न होता है। आँधी-तूफान की आवाज रोमाञ्च और भय उत्पन्न करती है। रुदन, चीत्कार और विलाप की आवाज के करुणा उत्पन्न होती है, जबकि जय-जयकार की ध्वनि—हर्ष, उत्साह और आशा का सञ्चार करती है। करतल-ध्वनि (ताली बजाने) का प्रभाव अलग है। गोली-गोला चलाने का, या बम-विस्फोट की ध्वनि का प्रभाव कभी-कभी प्राणघातक हो जाता है। भारी विस्फोट की ध्वनि तो बड़े-बड़े महलों को हिलाकर धराशायी कर देती है। यही नहीं, उस ध्वनि से, या उसकी धमक से प्रभावित होकर बर्त्तन तक फूट जाते हैं, शीशे चटक जाते हैं, प्राणी (मनुष्य और पशु) अचेत अथवा मृत हो जाते हैं। हृदय की धड़कन, नेत्रों की ज्योति और श्रवण-शक्ति को ऐसी भीषण ध्वनि से भारी हानि पहुँचती है। गर्भस्थ शिशु मर जाते हैं। गर्भपात, हृदयावरोध, मस्तिष्क-छिन्नता, उन्मत्तता और मृत्यु जैसे उपद्रवों की उत्पत्ति में विस्फोट-जन्य ध्वनि का बहुत हाथ रहता है। आशय यह कि ध्वनि-किरणों से ही सृष्टि का समस्त कार्य-व्यापार नियन्त्रित है।

मन्त्रों के मूल में, देवताओं का आह्वान, उनसे वार्तालाप, निवेदन, स्तुति और याचना करने की विधि-भावना निहित रहती है। लेकिन यह प्रयास (मन्त्र-साधना) तभी सफल होता है, जब मन्त्र-जप की ध्वनि

सन्तुलित हो और जप-सम्बन्धी अन्य नियमों का विधिवत् पालन किया जा रहा हो। नियमों की उपेक्षा करके किसी भी कार्य में सिद्धि नहीं पायी जा सकती।

'मन्त्र' शब्द के संयोग से बनने वाले कुछ अन्य शब्द भी हैं, जो अध्यात्म साधन के क्षेत्र में प्रयुक्त होते हैं। वस्तुतः इसका सीधा सम्बन्ध मन्त्र और उसके महत्त्व से है। वे शब्द यह हैं—

मन्त्रकार, मन्त्र-दृष्टा, मन्त्रदर्शी, मन्त्रपूत, मन्त्रधारी, मन्त्रजिह्व, मन्त्रबीज, मन्त्रमूल, मन्त्र-शक्ति, मन्त्र-स्थान, मन्त्र-सिद्धि, मन्त्रोदक, मन्त्रोच्चार, मन्त्र-बिद्ध, मन्त्रवेत्ता और मन्त्र-साधना इत्यादि।

मन्त्र के संस्कार-प्रकरण में बताया गया है कि मन्त्र-साधना में सफलता के लिए आवश्यक है कि साधना के पूर्व मन्त्र को निम्नलिखित 10 संस्कारों द्वारा पुष्ट कर लिया जाय। संस्कारित-मन्त्रों की साधना से सिद्धि का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। वैसे, अन्य नियमों का पालन भी आवश्यक रहता है। मन्त्र के 10 संस्कार इस प्रकार हैं—

1. जनन, 2. जीवन, 3. ताडन, 4. बोधन, 5. अभिषेक, 6. विमलीकरण, 7. आध्यायन, 8. तर्पण, 9. दीपन, 10. गोपन।

अस्तु, मन्त्र की परिभाषा अथवा परिचय में सारांशतः यही कहना उपयुक्त है कि—

"मन्त्र वह वर्ण-समूह (अथवा—वर्ण—क्योंकि कितने ही मन्त्र मात्र एकाक्षरी होते हैं) है, जिसके विधिवत् निरन्तर उच्चारण (जप) से, उसके ध्वनि-प्रभाव द्वारा आध्यात्मिक-शक्ति अर्जित की जाती है।"

मन्त्र-जप के द्वारा अर्थात् मन्त्रोच्चारण की विशिष्ट ध्वनि-तरङ्गों से स्पर्श (टकराव) से अभीष्ट शक्ति-विशेष (दैवी-शक्ति—देवी-देवता) को प्रभावित करके अपने अनुकूल किया जाता है। और, इस प्रकार उनकी अनुकूलता (कृपा) से वाञ्छित-लक्ष्य (कामना) की पूर्ति की जाती है। मन्त्र-साधना में जप (ध्वनि-विशेष के उच्चारण) की प्रधानता रहती है। वह ध्वनि कई प्रकार की हो सकती है—मौन स्वर, मन्द-स्वर या मुखर-स्वर। इसी को जप-विधान में वाचिक, उपांशु, मौन और सस्वर कहा जाता है।

मन्त्र-शास्त्र में, साधकों की कामनानुसार, उद्देश्य-भेद से विभिन्न दैवी-शक्तियों के अनुकूलन हेतु भिन्न-भिन्न प्रकार के मन्त्रों की रचना की

गयी है। आकार में छोटे और बड़े, एकाक्षरी से लेकर—श्लोक, छन्द और स्तुति जैसे मन्त्र भी प्राप्त होते हैं। मन्त्रों की रचना अत्यधिक प्राचीन-काल (वैदिक-सभ्यता के युग) में हुई थी। सर्वप्रथम ऋगवेद में ही मन्त्रों का सङ्कलन प्राप्त होता है। कालान्तर में उनकी संख्या बढ़ती रही। फिर तो प्रायः समस्त आर्ष-ग्रन्थों में मन्त्रों का उल्लेख किया गया।

यन्त्र :

मन्त्र-साधना केवल ध्वनि पर आधारित है। भले ही यह ध्वनि मौन या मन्द-स्वर में हो, पर साधना का विधान मन्त्र-जप ही रहा। बाद में सुबोधता, प्रचार और प्रभाव की परख के लिए यन्त्रों का सृजन किया गया। मन्त्रों के द्वारा देवता की आराधना में केवल शब्दोच्चारण की प्रधानता थी, किन्तु यन्त्र-साधना में देव-प्रतिमा के प्रतिरूप में यन्त्रों की रचना की गयी। यन्त्र को देव-प्रतिमा माना गया, और मन्त्रों को उनमें समाहित कर दिया गया। जहाँ मन्त्र केवल ध्वनि-परक थे, वहाँ यन्त्र चित्रात्मक हो गये। यन्त्र-रचना करके मन्त्र द्वारा उसकी पूजा को विशेष प्रभावी माना गया। यह भी सिद्ध हुआ कि यन्त्र की विधिवत् रचना और पूजा करके उसे कहीं स्थापित कर दिया जाय, तो वह देव-विग्रह के समान प्रभावशाली हो जाता है। उसके दर्शन और स्पर्श मात्र के बड़े-बड़े कार्य सफलता से निष्पन्न हो जाते हैं। चित्रात्मकता के कारण यन्त्रों का प्रचार अपेक्षाकृत अधिक हुआ। भारतीय-अध्यात्म में ही नहीं, विश्व के अनेक समुदायों, सम्प्रदायों और धर्म-समाजों में यन्त्रों का अस्तित्त्व पाया जाता है। साधना-विधि में भले ही अन्तर हो, परन्तु उनकी रचना का उद्देश्य और प्रभावान्विति सर्वत्र लगभग समान ही है। यहाँ तक कि असभ्य कही जाने वाली वन्य-जातियों में भी यन्त्र-साधना प्रचलित है।

यन्त्र की परिभाषा :

'यन्त्र' शब्द आज के युग में, जब कि भौतिक-विज्ञान प्रगति की चरम-सीमा पर है, मशीन के अर्थ में सर्वत्र प्रचलित है। मशीन, औजार, कई पुर्जों के सङ्गठन से निर्मित कोई नयी वस्तु—यह सब यन्त्र कहलाते हैं। किन्तु शब्द-कोष में इसके अर्थ पर विस्तृत रूप में प्रकाश डाला गया है। शब्दकोष के अनुसार—

यन्त्र—अक्षरों (वर्णों) अथवा अङ्क-संख्याओं से संयुक्त कोष्ठक का

आकार विशेष, जो वस्तुतः देव-स्थान (मन्दिर) का प्रतीक होता है, और जिसमें देवता वास करते हैं, जन्तर, औजार, कल, मशीन, कल-पुर्जों का सम्मिलित रूप, ढ़ाँचा, अल्प-अवधि में अधिक कार्य करने वाली वस्तु, ताला, वीणा बाजा आदि।

अध्यात्म के क्षेत्र में यन्त्र का आशय वही अङ्क-वर्ण संयुक्त कोष्ठकाकृति है, जिसकी विधि-विशेष से संरचना करके, नियमानुसार देवता की भाँति पूजा की जाती है। यन्त्रों की सिद्धि पाने के लिए—मन्त्र-जप भी आवश्यक होता है। वैसे संरचना के बाद नियमानुसार मन्त्रों द्वारा अभिषिक्त यन्त्र इतने प्रभावी होते हैं कि उनका दर्शन मात्र कर लेने से साधक को बहुत कुछ तुष्टि मिल जाती है।

यन्त्रों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। विभिन्न जातियों और संस्कृतियों के यन्त्र अपने प्रभाव के लिए विश्व-विख्यात हैं। यहाँ विस्तार-भय और प्रसङ्ग-परिवर्त्तन के सङ्कोच से उन सबका उल्लेख सम्भव नहीं है। अतः उनकी चर्चा अन्यत्र की जायगी।

यन्त्र की परिभाषा :

प्रत्येक उत्पत्ति, प्रत्येक आविष्कार के मूल में कोई अभाव, कोई आवश्यकता, कोई प्रयोजन अथवा उद्देश्य अवश्य निहित रहता है। इसी आधार पर यह कथन आज लोकोक्ति की भाँति प्रचलित है—'आवश्यकता आविष्कार की जननी है।'

अध्यात्म के क्षेत्र में हम जितनी भी शाखाएँ, उद्भावनाएँ, और परम्पराएँ देखते हैं, वे सब किसी-न-किसी लक्ष्य की पूर्त्ति से सम्बन्धित हैं। जड़ता मृत्यु का पर्याय है और गतिशीलता जीवन का प्रतीक है। धर्म, सिद्धान्त, नियम, विचार, आचरण, भाषा, व्यवहार अथवा अन्य किसी भी क्षेत्र में देखें, कुछ न कुछ परिवर्त्तन, नवीनता, विस्तार, और परिवर्द्धन अथवा संशोधन अवश्य दृष्टिगोचर होता है। ऐसा न होता, तो वे सीमाबद्ध होकर या तो समाप्त हो गये होते, या फिर पंगुता से ग्रस्त होकर उपहास, उपेक्षा और अविश्वास के बिषय बनते। यन्त्र की उत्पत्ति में भी वही प्रगतिवादी-कारण निहित था। मन्त्र-साधना का विकसित और परिवर्द्धित रूप ही यन्त्र के उद्भव का आधार बना।

यन्त्र का आविर्भाव :

तन्त्र साधना एक लम्बे युग तक चली। किन्तु बाद में सांसारिकता के विस्तार और साधकों में धारणा-शक्ति के ह्रास ने महर्षियों को प्रेरणा दी कि साधना की कोई अन्य सरल, सहज-साध्य और प्रभावी प्रणाली खोजी जाय, ताकि जन-मानस में मन्त्रों की जटिलता और स्मरण-शक्ति के ह्रास से उत्पन्न निराशा का निराकरण हो सके। इसी अन्त:प्रेरणा से मनीषी-समुदाय ने यन्त्र-साधना प्रचलित की।

मन्त्र-साधना में केवल जप को ही वरीयता दी जाती है, कारण कि यह साधना ध्वनि-प्रधान होती है। निरन्तर एक निश्चित शब्द-समूह (मन्त्र) का उच्चारण (वह उच्च, मन्द, मौन—किसी भी स्वर में हो एक विशिष्ट प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करता है। यह ध्वनि वायु-तरङ्गों को कम्पित करके उनमें ऐसा विक्षोभ जगाती है, जो साधक के अभीष्ट देवता को सम्वेदित करता है।

हिन्दू-धर्म और भारतीय-संस्कृति में कितने ही देवी-देवताओं की उपासना की जाती है। नवधा-भक्ति के अन्तर्गत अनेक प्रकार से उनकी आराधना के नियम हैं। चाहें जैसे भी हो, उपासना का एकमात्र लक्ष्य होता है—इष्ट की कृपा, अनुकूलता और सायुज्य प्राप्त करना। मन्त्र-साधना इस उद्देश्य-पूर्त्ति का सर्वाधिक सफल और प्रभावी अवलम्ब था। कालान्तर में, उसकी जटिलता और दु:साध्यता को देखकर यन्त्र-साधना का उद्भव हुआ।

आज सब तो नहीं, तो भी सैकड़ों यन्त्र उपलब्ध हैं, जो इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि एक समय यन्त्र-साधना चरम विकसित होकर विश्व के अनेक सभ्य देशों तक प्रसार पा चुकी थी। बड़े-बड़े नृवंश शास्त्री, पुरातत्त्वज्ञ और शोधक यह देखकर विस्मय-विमूढ़ हो जाते हैं कि भारतीय देवी-देवताओं की मूर्त्तियाँ—चीन, जापान, थाईलैण्ड, रूस के ढूहों-खण्डहरों में भी प्राप्त होती हैं। क्रिस्टोफर कोलम्बस को अमेरिका का शेष संसार से सम्पर्क जोड़ने का श्रेय दिया जाता है। परन्तु इस सत्य को कौन झुठला सकता है कि अमेरिका में भी कई ढूहों-खण्डहरों और प्राचीन स्थलों की खुदाई के दौरान वहाँ भारतीय-संस्कृति के अवशेष, देव-प्रतिमाएँ और पात्रादि प्राप्त हुए हैं। जिस युग में भारतीय-सभ्यता ने वहाँ पहुँच कर स्वयं को प्रतिष्ठित किया था, कोलम्बस तो

क्या, उसके पूर्वज भी धराधाम पर नहीं आये थे। ऐसी स्थिति में भारतीय सभ्यता-संस्कृति का विदेशों तक पहुँचना इतिहासकारों और अन्वेषकों की उपलब्धियों को संदिग्ध बना देता है। अस्तु, भारतीय-अध्यात्म की जड़ें बहुत गहरी हैं और खोजने पर वे विश्व के सभी क्षेत्रों तक फैली हुई मिलेंगी।

इस्लाम के प्रवेश ने भारतीय-अध्यात्म को गहरी ठेस पहुँचायी थी। रही-सही जीवन्तता को पश्चिमी-सभ्यता के सम्पर्क ने धराशायी कर दिया। तो भी वह निष्प्राण नहीं हुआ, अनेक साधक और मर्मज्ञ, जो गृहस्थ न होकर तपस्वी-जीवन व्यतीत करते थे, वन्य-प्रदेशों और पर्वतीय-गुफाओं में चले गये। इस प्रकार म्रियमाण होते-होते भी भारतीय-अध्यात्म और मन्त्र-विद्या का अस्तित्त्व सुरक्षित रहा।

यन्त्र : रचना और साधना .

यन्त्र में मन्त्र को रूपाकार दिया जाता है। रेखाओं और बिन्दुओं के द्वारा विभिन्न प्रकार के चक्र, वृत्त, कोण, त्रिभुज अथवा अन्य उपाकृतियाँ बनायी जाती हैं। उनमें कुछ वर्ण, शब्द अथवा मन्त्र भी अङ्कित किये जाते हैं। इस रूपाङ्कन को 'यन्त्र' कहते हैं।

यन्त्र-रचना के लिए विशेष प्रकार की सामग्री का विधान होता है। भोजपत्र, काष्टपीठ, विभिन्न वनस्पतियों के पत्ते, वस्त्र-खण्ड अथवा धातु-पत्र पर यन्त्रों की रचना की जाती है। इसी प्रकार उनके लेखन में प्रयुक्त होने वाली मसि (स्याही) और लेखनी की रचना में भी कुछ विशेष वस्तुएं प्रयुक्त होती हैं। यथा, प्रयोजनानुसार स्याही के लिए—लाल चन्दन या अष्टगन्ध या पञ्चगन्ध या यक्षकर्दम या हल्दी का रस अथवा अन्य किसी निर्दिष्ट वस्तु का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार लेखनी के लिए—अनार की लकड़ी, चन्दन की लकड़ी, उदम्बर काष्ठ, अर्कशाखा, अस्थि-खण्ड जैसी वस्तुएँ प्रयोजन-भेद से प्रयुक्त होती हैं।

यन्त्र-रचना में आकर, मन्त्र-लेखन, पदार्थ-प्रयोग के अतिरिक्त साधक के लिए भी कुछ विशेष नियमों का पालन अनिवार्य होता है। जैसे—संयम, एकान्त-वास मौन-धारण, उपवास अथवा फलाहार (एकाहार), एकान्त-शयन और नियमित संख्या में मन्त्र का जप आदि। साधना में अन्य कई वस्तुएं भी प्रयुक्त होती है, यथा—केसर, चन्दन, कस्तूरी, अक्षत, पुष्प, अगर, कुशासन, माला, ताम्रपत्र, लाल वस्त्र आदि।

उद्देश्य-भेद से साधना के नियम भिन्न-भिन्न हैं। तदनुसार प्रयोजनीय पदार्थों, उनके प्रयोग और नियमों का पृथक्-पृथक् निर्देश प्राप्त होता है।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यन्त्र परम प्रभावी होते हैं। यदि विधिपूर्वक उनकी रचना, प्राण -प्रतिष्ठा और पूजा की जाय, तो वे साधक ही नहीं, दर्शक के लिए भी सिद्धिदायक, कल्याणकारी और परम हितकर होते हैं।

यन्त्र में मन्त्र की अनिवार्यता .

आध्यात्मिक-साधना के क्षेत्र में सर्वप्रथम मन्त्रों की रचना की गयी थी। कालान्तर में, सामाजिक परिस्थितियों के कारण जब व्यक्ति अधिक व्यस्त, अशान्त, क्लान्त और बहुविध विषयों से प्रभावित होने लगा, तो सुविधा के लिए महर्षियों ने यन्त्र-साधना का आविष्कार किया।

मन्त्र से यन्त्र इस रूप में भिन्न होते हैं कि जहाँ मन्त्रों में केवल ध्वनि का प्राधान्य और उच्चारण-पद्धति का महत्त्व होता है, वहाँ यन्त्रों में कुछ विशिष्ट आकारों को वरीयता दी जाती हैं। ये आकार देखने में बिल्कुल सादे होते हैं, पर वस्तुतः इनकी रचना विज्ञान-सम्मत और ज्यामिति-शास्त्र के आधार पर होती है। कुछ आड़ी-तिरछी रेखाएँ, बिन्दु, वर्ग, वृत्त, चतुर्भुज, षट्भुज या अष्टभुज क्षेत्र, त्रिभुज अथवा अन्य किसी आकृति को स्थापित करते हुए, यन्त्र की रचना की जाती है। और, यह सब एक क्रम, शास्त्रीय-निर्देश के अनुसार होता है। ये यन्त्र देव-शक्तियों के प्रतीक होते हैं। इनमें स्थान-स्थान पर कुछ विशिष्ट वर्णों—अक्षरों का अङ्कन करके उन्हें प्राणवन्त बनाया जाता है। वे अक्षर उस यन्त्र से सम्बन्धित मन्त्र होते हैं। बिना मन्त्र का यन्त्र निष्फल रहता है।

अपवाद-स्वरूप कुछ ऐसे यन्त्र भी देखने में आ जाते हैं, जिनमें केवल रेखाङ्कन या आकृति-रचना है, उनमें कोई वर्ण-मन्त्र नहीं लिखा होता। लेकिन ऐसे यन्त्रों को मन्त्र-रहित मानना भ्रम है। उनका वह रेखाङ्कन ही प्रतीक रूप में किसी वर्ग की आकृति धारण किये होता है। अस्तुः यन्त्र को मन्त्र का साकार रूप कहना चाहिए—आकृति संयुक्त। किन्तु प्रत्येक यन्त्र किसी न किसी रूप में मन्त्र द्वारा पूरित अवश्य होता है। बिना मन्त्राक्षर अङ्कित किये, वह यन्त्र प्रभावशाली नहीं बन पाता, भले ही उसकी रचना श्रेष्ठतम विधि-विधान से की गयी हो। जिस प्रकार प्राणवायु रहित शरीर शव के रूप में सर्वथा त्याज्य होता है, उसी

प्रकार मन्त्राङ्कन रहित यन्त्र भी निष्प्रयोजन होता है। जिस शरीर में प्राण न बोले, जो सजग, सचेत, सक्रिय न हो, उसकी उपयोगिता ही क्या? ठीक उसी प्रकार, जिस यन्त्र में, जिस रेखाङ्कन अथवा आकृति में मन्त्राक्षर न हो, कोई ध्वनि-संकेत न हो, किसी देव-शक्ति के स्मरण-आह्वान का प्रतीक-चिह्न न हो, वह यन्त्र, वह चित्र सर्वथा शव तुल्य होता है।

तन्त्र :

जिस प्रकार मन्त्र-साधना की जटिलता और दुरूहता ने सरलता का मार्ग निर्मित करने के लिए यन्त्र साधना की पृष्ठभूमि तैयार की थी, ठीक उसी प्रकार यन्त्र-साधना का सरलीकरण तन्त्र के द्वारा सम्भव हुआ। निरन्तर बढ़ती जन-संख्या, सामाजिक-परिवेश, नियमों-मान्यताओं के परिवर्त्तन, सुविधा-भोग की लालसा और दीर्घकाल तक कठोर संयम पूर्वक साधना करने की अनिच्छा के कारण यन्त्र और मन्त्र-साधना के मार्ग में कुछ अवरोध आ गया था। बढ़ती हुई भौतिक-लालसाएँ व्यक्ति को अस्थिर, अधीर और सांसारिक बनाती जा रही थीं। मोक्ष, अपवर्ग और ब्रह्म की प्राप्ति को उद्देश्य बनाकर अध्यात्म-साधना करने वालों की संख्या दिनोंदिन घटती जा रही थी। और, इन सबसे भी सशक्त कारण यह था कि समाज में वर्गवाद, जाति-भेद, पाखण्ड, आडम्बर, शोषण और दमन बहुत बढ गया था। जो मन्त्र-यन्त्र कभी सर्वसुलभ थे, वे अब सामाजिक-आर्थिक कारणों से दुर्लभ-दुस्साध्य हो चले थे। फलतः साधना के रूप में तन्त्र-साधना का प्रचलन हुआ। यह एक बहुत बड़ी क्रान्ति थी। अध्यात्म के क्षेत्र में तन्त्र-साधना का उद्भव युगान्तरकारी सिद्ध हुआ।

तन्त्र के जन्मदाता .

विश्व-ब्रह्माण्ड की उस अदृश्य, किन्तु सर्वव्यापी और सर्व-समर्थ शक्ति का नाम ईश्वर है, जो इसके अणु-अणु का नियन्त्रण करती है। उसके अस्तित्त्व और वैचित्र्य को विश्व के सभी धर्माचार्यों, मनीषियों और विचारकों ने स्वीकार किया है। 'वह अद्भुत है, अलौकिक है, सर्व-स्पर्शी है, सम्वेदनशील है और समय-समय पर अपने अस्तित्त्व का प्रमाण देती रहती है'—'ऐसा सबने मुक्त-कण्ठ से स्वीकार किया है। देश, जाति, धर्म और भाषा के प्रभाव से उनके शब्दों में थोड़ा अन्तर भले ही हो, भाव सभी का एक है—ईश्वर के अस्तित्त्व को मानना। तुलसीदासजी ने उसकी व्यापकता और रहस्यमयता को इन शब्दों में बताया है—

JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No. 8611

पग बिनु चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु वाणी वक्ता बड़ जोगी।।

भारतीय-अध्यात्म की स्वीकृति है कि ईश्वर की अपनी एक व्यवस्था है, और तदनुसार वह विश्व के नियन्त्रण हेतु समय-समय पर रूपाकार धारण करके धराधाम पर अवतीर्ण होता है। इस प्रकार उसके अवतीर्ण होने को 'अवतार' की संज्ञा दी गयी है। अधिकांश अवतार मानव रूप में हुए हैं, किन्तु अपवाद-स्वरूप कहीं-कहीं पशु-योनि में भी ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं। ऐसे अवतारों में तीन रूप सर्वाधिक प्राचीन और समर्थ हैं। इन्हें ईश्वर का साक्षात् प्रतिरूप माना जाता है—ब्रह्मा, विष्णु, और महेश (शिव)। ये तीनों अवतार आदि-देव के रूप में सर्व-स्वीकृत हैं। कालान्तर में इन्हीं की शक्तियों ने विभिन्न रूप धारण करके अनेक अवतारों और पौराणिक सन्दर्भों की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की।

ब्रह्मा को सृजन का अधिपति माना गया है, वह सृष्टि-कर्त्ता हैं। संसार में जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह सब ब्रह्मा का ही कृतित्त्व है। कारण चाहे जो भी रहा हो, ब्रह्मा के अवतारों की संख्या बहुत कम है। उनके प्रतिरूप और पुनरावतार के प्रसङ्ग यदा-कदा ही दीख पड़ते हैं। सृष्टि-रचना इतना जटिल कार्य है कि संसार में लाखों जातियों के करोड़ों जीवों की प्रतिदिन रचना करने वाला वैज्ञानिक चाहे जितना मेधावी हो, दूसरी ओर सोचने का समय निकाल ही नहीं सकता।

पालन-पोषण की व्यवस्था विष्णु के अधीन है। उनका क्षेत्र अधिक व्यापक है। सामाजिक समस्याओं की लम्बी शृङ्खला उनके सामने रहती है। अतएव उनका लीला-विलास, क्रिया-कलाप, जन-सम्पर्क और नियन्त्रण-निर्देशन सबसे अधिक है। यही कारण है कि विष्णु के अवतारों (प्रतिरूपों) की संख्या भी सर्वाधिक है।

उत्पत्ति और पालन के पश्चात् तीसरा पक्ष समापन का होता है। सृष्टि के समापन की व्यवस्था करने वाली तीसरी ईश्वरीय-शक्ति का नाम 'शिव' है। 'ब्रह्मा' और 'विष्णु' की भाँति इस तीसरी शक्ति को 'शिव' की संज्ञा से अभिहित किया गया। शिव के अन्य अनेक नाम भी हैं—शङ्कर, शम्भु, महादेव, कपर्दी, महेश्वर, महेश, त्रिलोचन, कापालिक, भूतेश अदि। सृष्टि का अन्तिम आयाम (समाप्ति) शिव के द्वारा नियन्त्रित होता है। शिव स्वयं में अनादि हैं, अनन्त हैं और मृत्युञ्जयी हैं, इसलिए

वह संसार—विश्व-ब्रह्माण्ड की समापन-व्यवस्था देखने में सहज सक्षम हैं।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—यह तीनों देवता अखिल सृष्टि के नियामक हैं। उत्पत्ति, पालन और समापन व्यवस्था क्रमशः इन्हीं के हाथों सञ्चालित है। विचारकों ने सृष्टि के अन्तर्गत अनेक विषयों के तीन आयाम परिकल्पित किये हैं। यह परिकल्पना कोई मनोरञ्जन अथवा वाणी-विलास का रूप नहीं, वरन् वैज्ञानिक-तथ्यों पर आधारित, सत्यानुभूतियों की साक्षी और विभिन्न आध्यात्मिक-लौकिक अनिवार्यताओं की पृष्ठभूमि है। संसार का अस्तित्त्व तभी तक साकार है, जब तक सृष्टि है। सृष्टि के अन्तर्गत मानव, जीव-जन्तु और वनस्पति ही नहीं, पृथ्वी पर अवस्थित सब कुछ—नदी, समुद्र, पर्वत और नगर-वन भी—आ जाता है। संसार में दृश्य के अतिरिक्त बहुत कुछ अदृश्य भी है। वह सब दैवी-शक्तियों से निरन्तर प्रभावित रहता है।

सृष्टि के तीन आयाम हैं—उद्भव, विकास और समाप्ति। संसार के नियामक भी तीन हैं, जो इन आयामों के नियन्त्रक-प्रबन्धक हैं—ब्रह्मा, विष्णु और शिव। संसार में सारभूत तीन विशेषताएँ अन्तर्निहित हैं—सत, रज, तम। इन्हें गुण कहा गया है—सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। जीवन-क्रम और गुणों की परिव्याप्ति के आधार पर उनकी प्रभावान्विति भी इसी रूप में निर्धारित हुई—सात्त्विकता, राजसिकता और तामसिकता। तीन देवता, सृष्टि का जीवन-क्रम और तीन गुणों के अनुरूप तीन लोकों की उद्भावना भी सर्व-स्वीकृत हुई–आकाश-लोक (ब्रह्मलोक), भूलोक (नरलोक) अथवा (मर्त्यलोक), पाताल-लोक (असुर अथवा नागलोक)। उपरोक्त तीन गुणों को इन लोकों से इस प्रकार प्रतिबद्ध माना गया—आकाश अथवा ब्रह्मलोक—सतोगुण (सात्त्विकता) से, मर्त्यलोक—रजोगुण (राजसिकता) से, पाताल-लोक—तमोगुण (तामसिकता से।

मन्त्र-साधना पूर्ण-रूपेण सात्त्विक-उद्देश्यों पर आधारित थी। यों, कालान्तर में मन्त्रों के माध्यम से सात्त्विक के अतिरिक्त राजसिक, तामसिक कार्य भी सम्पन्न किये जाने लगे, किन्तु मन्त्रों के उद्भव-काल में मूल उद्देश्य सात्त्विक—ईश्वर-सायुज्य की प्राप्ति ही था। इस आधार पर मन्त्र-साधना को सात्त्विकता-प्रधान अथवा सात्त्विक-साधना कहा गया।

यन्त्र-साधना परवर्ती-काल की उपलब्धि है, जो तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित जन-समूह के कल्याणार्थ प्रचलित की गयी।

तन्त्र-साधना का प्रचलन यन्त्र-साधना के बाद हुआ। मन्त्र-साधना को सरल और सुबोध बनाने के लिए जहाँ चित्रात्मकता के आधार पर यन्त्रों की रचना की गयी थी, वहीं यन्त्रों को और अधिक सरल बनाने, यन्त्रों के अभाव में केवल पदार्थ के आधार पर ही सिद्धि प्राप्त करने की पृष्ठभूमि तन्त्र-साधना के रूप में प्रस्तुत की गयी।

ऐसी मान्यता है कि सृष्टि के आरम्भ में ही त्रिदेवों ने उसके नियमन हेतु कुछ सूत्र निर्धारित कर लिये थे। ब्रह्मा ने ध्वनि-विज्ञान के मूल सूत्र को लेकर 'ॐ' की रचना की। यही ओंकार बाद में विभिन्न मन्त्रों का जनक बना। वस्तुतः ॐ में ही विश्व का समग्र रूप समाहित हैं। ब्रह्मा द्वारा ॐ की रचना से जहाँ मन्त्र-सृजन का आरम्भ हुआ, वहीं विष्णु ने चित्रात्मकता के द्वारा यन्त्रों की रूपरेखा निर्मित की। रूप-सज्जा, विस्तार और फल-प्राप्ति के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित करना विष्णु के अधीन है। उदाहरण के लिए, मानव-जीवन को देखें---गर्भाधान के पश्चात् शिशु का जन्म होने तक की व्यवस्था ब्रह्मा की है। शिशु का जन्म होने के पश्चात् उसके सम्वर्द्धन, पोषण, विकास और संरक्षण की व्यवस्था विष्णु देखते हैं। उस मानव शरीर को कब कैसे समाप्त होना है, यह कार्य शिवजी देखते हैं।

ब्रह्मा द्वारा मन्त्र और विष्णु द्वारा यन्त्र की सृष्टि हो चुकने पर शिवजी ने तन्त्र को जन्म दिया। उन्होंने अपनी पत्नी पार्वती से कभी सहज वार्त्तालाप के समय सृष्टि की उत्पत्ति, पोषण और लय की विवेचना करते हुए ब्रह्मा कृत मन्त्र और विष्णु कृत यन्त्र के विषय में बताया। इस पर शिव-शक्ति पार्वती ने अनुरोध किया कि प्रभु! आप इन दोनों से भी अधिक सरल कोई ऐसी साधना-प्रणाली प्रचलित करें, जो सर्व-सुलभ हो। जिसके द्वारा समस्त मानव-समाज लाभान्वित हो सके। शिवजी अपनी दयालुता, सहज सरल जीवन-पद्धति और त्वरित निर्णय के लिए प्रसिद्ध हैं ही, उन्होंने तुरन्त 'एवमस्तु' कहकर 'तन्त्र' के मूलभूत आधार-सिद्धान्त और प्रयोग-परिणाम विवेचित कर दिये। आगे चलकर मनीषियों ने उसी शिव-पार्वती सम्वाद को व्याख्या सहित प्रस्तुत करके तन्त्र-

ग्रन्थों की रचना की। उमा-महेश्वर सम्वाद, शिव पार्वती सम्वाद, भैरव-भैरवी सम्वाद और भैरव-भवानी सम्वाद—यह सब उसी शिव-पार्वती वार्त्तालाप के रूप हैं, जिसके आधार पर विविध तन्त्र-ग्रन्थों की रचना हुई। परवर्ती मनीषियों-महर्षियों ने उसमें बहुत कुछ परिवर्त्तन-परिवर्द्धन भी किया। ऐसे प्रक्षिप्त अंशों को जोड़ देने से तन्त्र-साहित्य का देश-व्यापी विस्तार और प्रचार हुआ। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उसका प्रयोग होने लगा। शिवजी ने पार्वती को अपने प्रवचन में मूलतः आध्यात्मिक-शान्ति और लौकिक-जीवन की सुख-समृद्धि के सिद्धान्त बताये थे। उन्हीं सिद्धान्तों को आगे चलकर विभिन्न विद्वानों ने अनेक रूपों में प्रतिपादित करके 'तन्त्र' की अनेक शाखाओं को जन्म दिया।

उत्तरोतर विकास

निम्न वर्ग के लोगों (जन सामान्य) की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति, कष्ट-निवारण और अन्य भौतिक उपलब्धियों के लिए तन्त्र-साधना बहुत ही सरल, सहज-साध्य और शीघ्र-प्रभावी अवलम्ब सिद्ध हुआ। इस कारण उसका प्रचार अपेक्षाकृत अधिक हुआ। बौद्ध-युग में तन्त्र-साधना विकास के चरम शिखर पर पहुँच गयी थी। यह बात अलग है कि विकास का वही चरम-शिखर उसके पतन का बिन्दु भी प्रमाणित हुआ। किन्तु यह तन्त्र का नहीं, तान्त्रिकों का दोष था। वे शक्ति का दुरुपयोग करने लगे थे। साधना की ओट में भ्रष्टाचार का पोषण करते थे। चारित्रिक-पतन, असंयम और अभिचार-कृत्यों की वृद्धि से सामान्य जनता त्रस्त हो उठी थी। तान्त्रिक और अघोरी लोक-कल्याण की उपेक्षा करके घोर वासना और दुराचरण के पोषक हो गये थे। उनके इसी अतिचार ने तन्त्र के प्रति विद्रोह औ वितृष्णा को जन्म दिया। फलतः तान्त्रिकों का सम्मान, विश्वास और सामीप्य त्यागकर लोग साधना के अन्य विकल्प खोजने लगे। मन्त्र-यन्त्र जटिल थे, वे सामाजिक-परिवेश से पूरा अनुकूलन नहीं कर पा रहे थे, इसलिए आस्तिकता से दूसरे आयाम खोजे जाने लगे, यथा— जप-तप, कथा, कीर्त्तन और चिन्तन आदि। संसार में सब कुछ सीमाबद्ध है। अति का परिणाम सदैव ही घातक होता है। साधना-प्रयोग भी, वह चाहे भौतिक हो, अथवा आध्यात्मिक, एक सीमा के भीतर रहते हुए ही शाश्वत और कल्याणकर हो पाता है। महान् विचारक और नीतिज्ञ महर्षि कौटिल्य (विष्णुगुप्त चाणक्य) ने कहा है—

'अति रूपेण वै सीता, अति गर्वेण रावणः।
अति दानात् बलिर्बद्धो, ह्यति सर्वत्र वर्जयेत् ॥'

साधना के असन्तुलित प्रचार, सिद्धि के दुरुपयोग और अतिचार के कारण ही तन्त्र का पराभव हुआ, तो भी वह निष्प्राण नहीं हुआ। उसके मूल सिद्धान्त और प्रयोग सुरक्षित रहे। मर्मज्ञ-जन, संसार के कौतूहल से विरत होकर एकान्तवासी के रूप में, आध्यात्मिक-सिद्धि के लिए तन्त्र-साधना करते रहे। उनकी छाया में लौकिक सिद्धि की साधनाएँ भी परोक्ष में पोषित और पल्लवित होती रहीं। यही कारण है कि उत्थान-पतन की प्रचण्ड झंझा सहकर भी तन्त्र-साधना सर्वथा विलुप्त नहीं हुई। आज भी उसके मर्मज्ञ-साधक विद्यमान हैं। मैंने स्वयं ऐसे कई साधकों के प्रभाव की अनुभूति की है, जबकि मेरी सीमाएँ और साधन अति सीमित हैं। खोज करने पर इस विषय के दिग्गज-विद्वान् और सिद्धजनों के दर्शन-प्रवचन प्राप्त हो सकते हैं।

तन्त्र की उपादेयता :

भारतीय-संस्कृति में साधना का मूल उद्देश्य आध्यात्मिक लाभ की प्राप्ति ही रहा है। सात्त्विक रूप में लौकिक (भौतिक) आवश्यकताओं की पूर्त्ति हेतु भी इसका अवलम्ब लिया जाता था। कारण कि सभी तो विरक्त सन्यासी या ब्रह्मवादी चिन्तक नहीं होते थे, अधिकांश संख्या गृहस्थों की थी। अतः उनके दैनिक-जीवन में आयी बाधाओं के शमनार्थ मन्त्र-यन्त्र का सहारा लेना अनुचित नहीं था।

देश की बढ़ती जन-संख्या, सामाजिक चेतना, वैचारिक-परिवर्त्तन और विदेशी-संस्कृतियों के सम्पर्क ने साधना-पद्धति को प्रभावित किया। फलस्वरूप, जहाँ मन्त्र-साधना सात्त्विकता-प्रधान थी, और यन्त्र-साधना में राजसिकता (लौकिकता) बढ़ी, वहीं तन्त्र-साधना में तामसिकता (भौतिकता) को प्रश्रय मिला। यह स्वाभाविक भी था। सामाजिक-जीवन में शान्ति के स्थान पर कोलाहल, सन्तोष की जगह पर लालसा, वैभव-विलास की पूर्त्ति हेतु किये जा रहे प्रयासों के फलस्वरूप उत्पन्न पर्यावरण में परिवर्त्तन आ गया था। राजनीतिक हलचलों ने सिद्धान्तों और नीति नियमों के प्रति व्यक्ति की निष्ठा डिगा दी थी। स्वार्थ, षड्यन्त्र, कूटनीति और लिप्सा-पूर्त्ति का विस्तार होने लगा था। ऐसे वातावरण में मन्त्र-

यन्त्र की साधना, जिसमें शान्त, एकान्त-निवास और चिन्तन अनिवार्य होता है—दुष्कर हो चली थी। इन सब स्थितियों ने तन्त्र के उद्भव और विकास में भरपूर योगदान किया।

तन्त्र साधना में यान्त्रिक-क्रिया का रूप संक्षिप्त हो गया था और यान्त्रिक-रचना विधान के लिए भी वैसी जटिलता आवश्यक नहीं रह गयी थी। इसमें तो प्रमुख रूप से पदार्थों का प्रयोग होता था। हाँ, यह अवश्य था कि पदार्थों को सशक्त, प्रभावी और अनुकूल बनाने के लिए उन्हें मन्त्र-यन्त्र द्वारा पुष्ट किया जाता था। इस पुष्टीकरण की क्रिया में विभिन्न शास्त्रों के सूत्र अपनाये जाते थे। यथा—वनस्पति संग्रह के लिए आयुर्वेद और ज्योतिष-शास्त्र के नियम-निर्देशों का पालन अनिवार्य था। इसी प्रकार भौतिकी और रसायन-विज्ञान के सिद्धान्त भी अपरिहार्य होते थे। बिना इन सभी नियमों का निर्वाह किये, साधना में सफलता नहीं मिलती थी। सिद्धि के लिए ये सभी सिद्धान्त व्यावहारिक रूप में पूरी निष्ठा और संयम के साथ स्वीकार करने पड़ते थे।

इसके अतिरिक्त तन्त्र-साधना का एक पक्ष और भी था, बल्कि वही मुख्य था—ब्रह्म का साक्षात्कार, आत्म-ज्ञान की प्राप्ति, ईश्वरीय-सत्ता से सायुज्य और जागतिक सुख-दुःख से परे अलौकिक ब्रह्मानन्द की अनुभूति। इसके लिए तन्त्र-साधना में योग की विभिन्न क्रियाएँ, आसन, मुद्रा और परिवेश प्रमुख रूप से मान्य थे।

तन्त्र की परिभाषा :

शब्दकोष में 'तन्त्र' शब्द का अर्थ इस प्रकार किया गया है—

तन्त्र—'तन्तु' ताँत कौटुम्बिक-नृत्य, सिद्धान्त, औषधि, प्रधान, जुलाहा, वस्त्र, वेद की एक शाखा, हेतु, राष्ट्र, राज्य, सेना, प्रबन्ध, शासन-प्रबन्ध, शासन की विशिष्ट प्रणाली, समूह, सुख, शपथ, धन, गृह, व्यवहार, सजावट, नियम, कुल, परिवार का भरण-पोषण, नीति का एक अङ्ग, करघा, अधीनता, वैज्ञानिक-सिद्धान्त, सत्ता, नियम, शैली, विशिष्ट संरचना, रचना का अध्याय, शिव-शक्ति की पूजा, अभिचार आदि का विधायक शास्त्र, आगम, वीणा का तार, टोना और टोटका।

किन्तु प्रस्तुत पुस्तक में 'तन्त्र' शब्द का जो विशेष अर्थ प्रयुक्त हुआ है, वह इस अर्थ-समूह से परे, केवल एक विषय से सम्बन्ध रखता है—मन्त्र-शास्त्र के परिवर्तित रूप से, जो वस्तुतः अध्यात्म-साधना का एक अङ्ग है।

प्रकारान्तर से तन्त्र का एक रूप हमें आयुर्वेद में प्राप्त होता है। यों, आयुर्वेद के अनुसार, कोई भी जड़ी-बूटी लाकर प्रयोग करें, उसका प्रभाव दृष्टिगोचर होगा। परन्तु यदि उसको विधिवत् शास्त्रीय-पद्धति से, ज्योतिष और अध्यात्म के निर्देशार शुभ-मुहूर्त्त में, उपयुक्त (वाञ्छित) मन्त्र का जप करते हुए लाकर औषधि-निर्माण किया जाय, तो निश्चय ही उसका प्रभाव कई गुना बढ़ जाता है। आशय यह है कि मन्त्र की उपयोगिता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। इसी कारण अध्यात्म-साधना में, यन्त्र की भाँति तन्त्र के प्रयोगों में भी, उसे अनिवार्य-तत्त्व की भाँति स्वीकृत किया गया है।

तन्त्र में मन्त्र का महत्त्व .

जैसा कि प्रारम्भ में उल्लेख किया गया है, मन्त्र-साधना, ध्वनि-प्रधान होती है, और यन्त्र-साधना में मन्त्रों के साथ उनका चित्रात्मक रूप भी प्रयुक्त होता है। यह चित्रात्मकता ही (रेखाङ्कन) यन्त्र का मूल आधार है। रेखाङ्कन, अथवा चित्राकृति (कोई भी प्रतीक) के अभाव में यन्त्र-रचना की कल्पना ही नहीं की जा सकती। ठीक उसी प्रकार, तन्त्र भी मन्त्र-साधना का ही एक रूप है, परन्तु यह यन्त्र की भाँति चित्र-प्रधान न होकर वस्तु (पदार्थ) प्रधान होता है। किन्तु पदार्थ-प्रयोग की अनिवार्यता पूरी तन्त्र-साधना में रहती है।

एक तरह से देखा जाय तो स्पष्ट है कि तन्त्र-साधना आयुर्वेद और भौतिक विज्ञान का प्रारम्भिक रूप है। यों आयुर्वेद एक स्वतन्त्र विषय (शास्त्र) है, तो भी वह तन्त्र के पर्याप्त निकट, उसका अभिन्न और नाम-मात्र का परिवर्तित रूप है। हाँ, इतना अवश्य है कि जिस प्रकार यन्त्रों की प्राणवत्ता, उनकी सिद्धि के लिए मन्त्र-प्रयोग आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार तान्त्रिक-प्रयोगों में भी मन्त्रों को अनिवार्यता प्राप्त है। यद्यपि कुछ लोग केवल पदार्थ-प्रयोग को ही तन्त्र-साधना मानते हैं, और उसका कुछ लाभ भी उठा लेते हैं, परन्तु सत्य यह है कि बिना मन्त्र-प्रयोग के तन्त्र-साधना अधूरी रहती है। परिणाम-स्वरूप तज्जन्य प्रतिफल (सिद्धि) में भी अपूर्णता आ जाती है।

वातावरण और वस्तुओं पर मुहूर्त्त अर्थात् समय का प्रभाव प्रारम्भ में लिखा जा चुका है। ठीक वैसा ही प्रभाव ध्वनि से भी उत्पन्न होता है।

बल्कि ध्वनि-जनित प्रभाव में अधिक शक्ति (प्रतिक्रिया) निहित रहती है। अतएव जिस पदार्थ को ध्वनि-जनित प्रभाव में अधिक शक्ति (प्रतिक्रिया) निहित रहती है। अतएव जिस पदार्थ को ध्वनि (मन्त्र-प्रयोग) द्वारा प्रभावित कर लिया जावे, उसको तान्त्रिक अथवा अन्य किसी भी रूप में प्रयुक्त करने पर विशेष फल की प्राप्ति होती है। तान्त्रिक-प्रयोगों (तन्त्र-साधना) में जहाँ किसी वस्तु के प्रयोग का फल हमें विशिष्ट रूप में प्राप्त करना है, वहाँ मन्त्र प्रयोग अनिवार्य है। उदाहरण के लिए देखें—

'दक्षिणावर्ती शंख घर में रखने से श्री-समृद्धि होती है।'

यह एक तान्त्रिक-प्रयोग है। किन्तु इसे पूर्ण नहीं कहा जा सकता है। इसका फल भी अधूरा ही रहेगा। कारण कि यह प्रयोग तन्त्र-सम्मत होकर भी, मन्त्र रहित है। यदि इसमें मन्त्र का प्रयोग भी कर दिया जाये, तो साधना चमत्कारी फल देगी। इसके लिए आवश्यक होगा कि--

● शंख किसी शुभ-मुहूर्त्त में लाया जाय। यदि अचानक ही कहीं प्राप्त हो रहा है, तो भी उसे लाकर तुरन्त प्रयुक्त न करके, किसी उत्तम मुहूर्त्त में पूजनोपरान्त, किसी पवित्र, सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिए। प्रारम्भिक पूजन के दिन से नित्य, जब भी उसका दर्शन-पूजन करें— मन्त्र-जप करना आवश्यक रहता है। मन्त्राभिषिक्त करके, नित्य उसी मन्त्र द्वारा स्तवन करने (मन्त्र-जप) पर ही शंख का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। मन्त्र के अभाव में शंख का प्रभाव नाम-मात्र ही रहेगा।

इसी प्रकार औषधियों, धातुओं और अन्य पदार्थों को तन्त्र साधना में प्रयुक्त करने के पूर्व उन्हें विधिवत् मन्त्र द्वारा अभिषिक्त कर लेना चाहिए। अपवाद-स्वरूप कुछ ऐसे प्रयोग भी मिलते हैं, जिनमें मन्त्र-प्रयोग की अनिवार्यता नहीं है, अथवा नाममात्र है फिर भी यह ध्रुव सत्य है कि मन्त्र का प्रयोग तन्त्रोक्त पदार्थों के गुणों की वृद्धि कर देता है।

प्रसङ्ग-पूर्त्ति और पाठकों की सुविधा के लिए, आगे विभिन्न तान्त्रिक-प्रयोगों के सन्दर्भ में, उनसे सम्बन्धित मन्त्रों का उल्लेख किया जा रहा है। आस्थावान साधक यदि विधिवत् मन्त्र-संयुक्त कोई तान्त्रिक-प्रयोग करेंगे, तो उसमें अवश्य ही सफल रहेंगे।

बहुधा देखने में आता है कि लोग इधर-उधर की पुस्तकों में छपे प्रयोगों को आजमाने लगते हैं, और असफल होने पर आध्यात्म की निन्दा करते हैं। वास्तविकता यह है कि या तो उन पुस्तकों में छपे हुए प्रयोग

और निर्देश अपूर्ण होते हैं, या फिर अशुद्ध छपे होते हैं। ऐसी स्थिति में में साधना का आधार ही भ्रष्ट हो जाता है। और यह तो प्रमाणित है ही कि जब तक कोई प्रयोग-पद्धति शुद्ध और पूर्ण न हो—उसका लाभ नहीं प्राप्त होता। अतः साधकों को बहुत सावधानी, तन्मयता और नियम-पालन के साथ ही किसी साधना में प्रवृत्त होना चाहिए।

जहाँ तक मन्त्र-प्रयोग की बात है, अनेक तान्त्रिक-प्रयोगों में मन्त्र की अनिवार्यता नहीं है। तो भी मन्त्रों से उनकी शक्ति बढ़ायी जा सकती है, यह निर्विवाद है। यन्त्र और सङ्गीत दोनों ही ध्वनि-विज्ञान के आयाम हैं। सङ्गीत का प्रभाव देखकर आज के भौतिक-विज्ञानी भी चकित हैं। उन्होंने स्वीकार किया है कि सङ्गीत के प्रभाव से वनस्पतियों को अधिक स्वस्थ, प्रफुल्ल और दीर्घजीवी बनाया जा सकता है। फूल और फल की उत्पत्ति में भी सङ्गीत की ध्वनि चमत्कारी प्रभाव दिखलाती है। अच्छी फसल के लिए सङ्गीत को विदेशों में एक बहुत लोकप्रिय उपकरण का स्थान प्राप्त है। दुधारू-पशुओं का दूध बढ़ाने में भी सङ्गीत बहुत सफल रहा है। अमेरिका में बड़े-बड़े डेयरी-फार्मों पर गायें दुहते समय पियानो बजाया जाता है। उस तन्मयता की स्थिति में वे आत्म-विसुध रहती हैं और दूध को छिपाने, दबाने की बात ही भूल जाती है। उस तन्मयता में उनका सारा दूध आसानी से उतर आता है।

ध्वनि का दूसरा प्रायोगिक-परिणाम हम इस रूप में भी देख सकते हैं कि कोई बात हम किसी से कहें, तो आरोह-अवरोह और स्वराघात के अनुसार उसकी भिन्न प्रतिक्रिया होती है। ठीक यही स्थिति तन्त्र-साधना में मन्त्र की उपयोगिता की है। किसी भी यन्त्र, वनस्पति अथवा अन्य भौतिक-पदार्थ को तान्त्रिक-प्रभाव से युक्त करने के लिये उससे सम्बन्धित मन्त्र का जप आवश्यक होता है।

गाय, बैल, भैंस, घोड़ा, कुत्ता, बिल्ली आदि जानवरों को पुचकारिये, मीठे स्वर में उन्हें सम्बोधित कीजिए या फिर उन्हें रूखे और ऊँचे स्वर में धिक्कारियें, डाँटिये, या गालियाँ दीजिए—दोनों व्यवहारों की उन पर भिन्न प्रतिक्रिया दिखाई पड़ेगी। जहाँ वे मधुर-स्वर सुनकर प्रसन्न होंगे, वहीं कर्कश-स्वर उन्हें उदास, उग्र और विद्रोही बना देगा। यह ध्वनि-प्रभाव का एक छोटा सा उदाहरण है। आशय यह है कि मन्त्र-जप के द्वारा ध्वनिगत प्रभाव से तान्त्रिक-साधना की वस्तुओं को सशक्त बनाया जा सकता है। लाभ के लिए ऐसा अवश्य करना चाहिए।

तन्त्र-साधना का पराभव .

कालान्तर में साधकों के दो वर्ग बन गये—दक्षिण-मार्गी (सरल सात्त्विक उपासक) और वाममार्गी (जटिल और तामसिक उपासक) साधक। दक्षिणमार्गी-साधक स्नान, शुचिता, स्वच्छता और सात्त्विकता-पूर्वक जप-तप करते थे। इसके विपरीत--वाममार्गी साधकों ने बाह्य-शुचिता-स्वच्छता के स्थान पर जान-बूझकर गन्दगी, मलिनता, मांस-मदिरा, अशोभन-वेश, भक्ष्याभक्ष्य आदि ऐसे उपादानों को वरीयता दी, जो सामान्यत: सामाजिक-मान्यताओं के विपरीत (वाम) थे। ऐसी वाम-पक्षीय विचारधारा और चिन्तन-प्रणाली के कारण वे वामाचारी अथवा वाम-मार्गी कहे गये।

आरम्भ में वाममार्गी-साधना का बाह्य-स्वरूप मलिन और जटिल होने पर भी अन्तस् में सात्त्विक, शोभन और शिवत्त्व से पूर्ण था, किन्तु बाद में, वह मलिनता और वाममार्गी विचारधारा उनके जीवन का अङ्ग बन गयी। जो कुछ पहले साधना में प्रतीक-स्वरूप प्रयुक्त होता था, वह आगे चलकर परम्परा के रूप में रूढ़ हो गया। मूल-तत्त्व को छोड़कर साधक इधर-उधर विचलित होने लगे। फलत: आध्यात्मिक-शुचिता और लोकहित के स्थान पर वे लौकिक-प्रदूषण (माया-मोह) और स्वार्थ-लिप्सा से ग्रस्त हो गये। इसका परिणाम यह हुआ कि वाममार्गी-सम्प्रदाय में 'पञ्चमकार' की ओट में अनेक प्रकार की विकृतियाँ पनपने लगीं। मांस, मदिरा, मैथुन का प्रयोग धड़ल्ले से होने लगा और इस अतिचार ने समाज में एक प्रकार की वीभत्सता व्याप्त कर दी। मुक्त यौनाचार के अड्डों के रूप में, कितने ही साधना-केन्द्र लाञ्छना और उपद्रव के जन्मदाता स्थल बन गये। नारी की पावनता, उसकी चारित्रिक-गरिमा, साधक-समुदाय के संयम और ब्रह्मचर्य को भी इस 'पंचमकार' ने प्रभावित किया। समकालीन राजनीति और प्रशासन भी इसकी संक्रामक-परिणति से अछूता न रह सका। अन्तत: चतुर्दिक अव्यवस्था, अनिश्चय और आतङ्क का वातावरण व्याप्त हो गया। लोग तन्त्र और तान्त्रिकों से डरने लगे। उन्हें यह साधना-समुदाय आसुरी प्रतीत हुआ। वे इसका विरोध करने लगे। आगे चलकर यह विरोध इतना उग्र हो उठा कि वामाचारियों के विरुद्ध सभी वर्ग-सम्प्रदाय एक स्वर से अपना आक्रोश प्रकट करने लगे।

पेड़ की जड़ पर कुल्हाड़ी का एक प्रहार भी क्षतिकारी हो जाता

है। फिर जिस पेड़ पर अनवरत-गति से प्रहार होने लगें, उसके परिणाम की कल्पना सहज ही की जा सकती है। यही वामाचार के साथ भी हुआ। जनमत द्वारा उठाये गये प्रचण्ड विद्रोह ने अन्ततः वाममर्गी-साधकों को हतोत्साह कर दिया। सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों की अनुकूलता ने उनकी प्रगति का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। स्वयं उनके अपने समाज में ही—वर्ग-भेद, अधिकार-लिप्सा, प्रतिस्पर्द्धा और दलगत-कूटनीति ने विघटन उत्पन्न कर दिया। यह सब कारक परस्पर मिलकर इतने सशक्त हो गये कि फिर वामाचार उनके सामने ठहर न सका। पराजित-योद्धा की भाँति वह रणक्षेत्र से, संघर्ष से पलायन कर गया।

बौद्ध-युग में, विकास और प्रभाव के चरम-शिखर पर पहुँची हुई वाममार्गी तन्त्र साधना का पतन भी, अन्ततः उसी युग में प्रारम्भ हो गया। अगली शताब्दी तक वह अध्यात्म से इतनी दूर चला गया कि लुप्तप्रायः जैसा प्रतीत होने लगा। लेकिन यह पराभव तन्त्र-साधना का नहीं, वरन् उस वाममार्गी-सम्प्रदाय का था, जो तन्त्र-साधना के नाम पर घोर अनैतिकता, पाखण्ड, कदाचार, मुक्तभोग, वीभत्सता और अभिचार कर्मों को वरीयता देकर समाज में सात्त्विकता, शान्ति, संयम का उन्मूलन कर रहा था।

इस सन्दर्भ में यह तथ्य ध्यान में रखने योग्य है कि सभी वाममार्गी-साधक भ्रष्ट नहीं थे। उनमें कई एक ऐसे सिद्ध सन्त थे, जिनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य विश्व-कल्याण ही था, पर उनकी संख्या अत्यल्प थी—नगण्य। जैसे भारतीय-राजनीति में समकालीन महापुरुषों में गाँधी केवल एक थे, वैसे ही वामाचारियों में भी सात्त्विक-साधना के पक्षधर इनेगिने ही थे—मात्र अपवाद-स्वरूप।

सारांश यह है कि मन्त्र और यन्त्र की भाँति तन्त्र भी स्वयं में आध्यात्मिक-साधना का एक मार्ग अथवा आयाम है। किन्तु इस सामान्य सिद्धान्त के अनुसार, कि जो जितनी तीव्र गति से उसका पतन भी होता है। सर्वसुलभ और सर्वसाध्य हो जाने के कारण बौद्ध-युग में प्रचार-विस्तार के शिखर पर पहुँचा हुआ तन्त्र, अन्ततः बौद्धयुग में प्रचार-विस्तार के शिखर पर पहुँचा हुआ तन्त्र, अन्ततः बौद्ध-युग में ही पतनशील हो गया था। उसके पतन के अनेक कारणों में एक और प्रमुख कारण यह था कि बौद्ध-सन्यासियों (तान्त्रिकों) का आचरण तामसिकता की

सीमा पर पहुँच गया था। वामाचार, वाममार्गी-साधना और पंचमकार के प्रयोग ने समाज में परम्परागत चले आ रहे—सन्तुलन और मर्यादावाद को आघात पहुँचा था। साधना-केन्द्र व्यभिचार के अड्डे बन गये थे और आध्यात्मिक-शक्ति का—राजनीति में दुरुपयोग होने लगा था। सांसारिक-मायामोह और ईर्ष्या-द्वेष में लिप्त हो जाने के कारण तन्त्र (वामाचार) बुद्धिजीवी वर्ग की दृष्टि में उपेक्षित हो गया। आर्य-संस्कृति और हिन्दू-धर्म की सुधारवादी सात्त्विकता ने फिर से करवट बदली। उसके अँगड़ाई लेते ही बौद्ध-तान्त्रिक इधर उधर भागने लगे। अन्ततः तन्त्र का पराभव हो गया और वह गिनेचुने सात्त्विक-विचारधारा वाले मनीषियों तक ही सीमित रहकर गहन-वनों और गिरि-गह्वरों में जा छिपा। उसका आसुरी रूप और धुआँधार प्रचार लुप्त हो गया। रह गया केवल तन्त्र का आदि रूप—शैव और शाक्त-तन्त्र का समन्वित शास्त्र। किन्तु जन-सामान्य की शङ्का, उपेक्षा और तिरस्कार के कारण वह भी बहुत दिनों तक परित्यक्त जैसा समाज से दूर ही पड़ा रहा।

पराभव क्यों ?

सहज जिज्ञासा होती है कि जिस विद्या ने ऐसा देश-विदेश व्यापी प्रसार पाया, जिसके विकास में शताधिक-ग्रन्थों की रचना हुई, जो दो हजार वर्षों तक धर्म और साधना के रूप में समाज के प्रत्येक क्षेत्र में व्यवहृत होती रही। वह इस प्रकार लुप्तप्रायः क्यों हो गयी कि आज उसके मर्मज्ञ खोजने पर भी सरलता से नहीं मिलते।

उत्तर में यह कहना पर्याप्त होगा कि तन्त्र-विद्या के पराभव का कारण इसका दुरुपयोग ही माना जायेगा। मूलतः तन्त्र साधना ब्रह्म से साक्षात्कार ब्रह्मानन्द, परमात्मा की प्राप्ति के लिए की जाती थी। योग से इसका घनिष्ट सम्बन्ध था। किन्तु भैरवी-चक्र, कौलाचार, पञ्चमकार जैसी पद्धतियों के प्रयोग ने इसे जन-सामान्य की दृष्टि में शङ्काजनक, भयद, भ्रष्टकारी, अपावन और वीभत्स बना दिया। बाद में बौद्ध-तान्त्रिकों ने तन्त्रार्जित शक्तियों का दुरुपयोग करके राजसत्ता लोभ, मांस-मदिरा सेवन, मुक्त-यौनाचार को जिस प्रकार प्रश्रय दिया, वह भारतीय-संस्कृति और सामाजिक-मान्यताओं के लिए घातक था। फलतः कुछ विचारकों ने विद्रोह किया और जनमत उनके साथ हो गया। राजनीतिक-उथल-पुथल भी समाज में अस्थिरता उत्पन्न कर रही थी। अतः तन्त्र-साधना की प्रगति में अवरोध आ गया।

सारांश .

यन्त्र-साधना के व्यापक प्रचार की चरम परिणति ने तन्त्र को जन्म दिया। जहाँ मन्त्र केवल ध्वनि-परक था, और यन्त्र में उसके साथ चित्रात्मकता आ गयी थी, वहाँ तन्त्र में पदार्थ-प्रयोग को वरीयता दी गयी। वैसे, इसमें भी मन्त्र प्रधान आधार है, और चित्रात्मकता को भी स्वीकार किया गया, किन्तु उनमें विशिष्ट वस्तुओं के प्रयोग की अनिवार्यता हो गयी। आगे चलकर तन्त्र का इतना अधिक प्रचार हुआ कि वह मन्त्र और यन्त्र से कई गुना अधिक लोक-व्यापी हो गया। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी कुछ तन्त्र के माध्यम से प्राप्त किया जाने लगा। किन्तु जहाँ मन्त्रों का प्रयोग सात्त्विकता-प्रधान था, वहाँ यन्त्र—राजसिकता-प्रधान हुए और तन्त्र को तामसी-साधना का चरम रूप माना गया।

देश की सामाजिकता तथा राजनीतिक-परिवर्त्तनशीलता से प्रभावित जन-समुदाय में, अपनी विशेषताओं के कारण तन्त्र इतना सर्वव्यापी, सर्वसुलभ हो गया, उसके प्रयोग-भेद इतने अधिक और सरल हो गये कि लोग राह चलते हुए भी तान्त्रिक चमत्मकार करने लगे। इस अति ने तन्त्र की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचायी और यह निन्दनीय माना जाने लगा। ऐसी स्थिति बौद्धयुग में हुई थी—जब तन्त्र के माध्यम से आध्यात्मिक-सिद्धि के नाम पर—कुटिल-राजनीति, मुक्त-यौनाचार, तामसिक-प्रयोग, पशु-बध, मांस-मदिरा-वेश्या के उपभोग को चिन्तनीय-स्तर का बढ़ावा मिल गया था।

अस्तु, यह सब साधकों के निजी स्वार्थ के कारण हुआ, तन्त्र की मूल भावना में ऐसा कोई दुष्कृत्य स्वीकृत नहीं है। यह तो शुद्ध आध्यात्मिक-साधना है, और इसके द्वारा दैविक, दैहिक और भौतिक सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। यह शास्त्र, यह साधना—निन्दनीय नहीं है, बल्कि साधक की भावना और उसके द्वारा शक्ति को दुरुपयोग को निन्दनीय कहा जा सकता है।

●

3

तन्त्र : क्षेत्र और सीमाएं

लालसा मानव-जीवन की धुरी :

मानव-जीवन का क्षण-क्षण, पल-पल आवश्यकताओं से घिरा हुआ है। कहना चाहिए— मानव-जीवन आवश्यकताओं का आगार है। आवश्यकताएं ही जीवन है। साहित्यक-भाषा में आवश्यकताओं को ही—कामना लालसा, इच्छा, उद्देश्य और लक्ष्य की संज्ञा दी गई है। वस्तुतः लालसा ही मानव-जीवन की धुरी है।

संसार का प्रत्येक व्यक्ति, वह रागी-विरागी, ज्ञानी-मूर्ख, त्यागी-गृहस्थ, साधक-सन्यासी, राजा-रङ्क, चाहे जो भी हो—किसी न किसी आवश्यकता से प्रतिक्षण प्रभावित, प्रेरित और सक्रिय रहता है। आध्यात्मिक-साधना में भी कम से कम एक लालसा अवश्य ही निहित रहती है—इष्टदेव का दर्शन, सामीप्य, सायुज्य अथवा मोक्ष-प्राप्ति। लौकिक-जीवन तो पूरी तरह आवश्यकताओं से आच्छादित है। किसी को धन चाहिए, किसी को सन्तान। किसी को रोग-मुक्ति, किसी को शत्रु-पराभव। मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र की समस्त साधना का यही उद्देश्य है—अभीष्ट की प्राप्ति। इन तीनों प्रकार की साधनाओं में, अपेक्षित उपासना, पूजा, विधि-विधान और फल-प्राप्ति का विवेचन करते हुए—मनीषियों ने भौतिक दृष्टि से मानव-जीवन की आवश्यकताओं—कामनाओं—का वर्गीकरण करके तदनानुसार प्रत्येक आवश्यकता की पूर्त्ति हेतु तत्सम्बन्धी साधनाओं को भी श्रेणीबद्ध कर दिया है। लोकहित की दृष्टि से उन्होंने ऐसी व्यवस्था और नियम-निर्देश कर दिया है कि कोई भी व्यक्ति मात्र थोड़े अध्ययन-अवधान से अपनी कामनानुसार अनुकूल साधना-मार्ग का अवलम्ब ले सकता है। वैसे यह बहुत आवश्यक रहता है कि मात्र पुस्तकीय-ज्ञान पर आधारित न रहकर, सम्बन्धित-विषय (मन्त्र-तन्त्र) के किसी सुयोग्य विद्वान् के निर्देशन में उसकी व्यवहार-विधि समझ ली जाये।

कामनाओं का वर्गीकरण :

प्रत्येक व्यक्ति की कोई न कोई आवश्यकता (कामना या लालसा) अवश्य होती है । उसकी पूर्त्ति हेतु किया गया प्रयास कर्म कहलाता है । तन्त्र-साधना में, जीवन की समस्त आवश्यकताओं को दस बिन्दुओं पर केन्द्रित करके उनकी पूर्त्ति हेतु उपाय बताये गये हैं । कामना-पूर्त्ति हेतु कर्म (क्रिया) आवश्यक है, अत: अर्थ-बोध की सुविधा के लिए उन सभी बिन्दुओं को कर्म की संज्ञा दी गयी और प्रयोजन-भेद के आधार पर उनका नामकरण (वर्गीकरण) भी किया गया । इस प्रकार जीवन की समस्त आवश्यकताओं के बोधक दस बिन्दुओं को 'दश-कर्म' संज्ञा दी गयी ।

दश-कर्म निरूपण :

जिन दश कर्मों के अन्तर्गत मानव-जीवन की समस्त कामनों को सन्निहित माना गया है, उनके नाम इस प्रकार हैं—

1. शान्ति कर्म, 2. पुष्टि कर्म, 3. आकर्षण कर्म, 4. मोहन कर्म, 5. वशीकरण कर्म, 6. जृम्भण कर्म, 7. उच्चाटन कर्म, 8. स्तम्भन कर्म, 9. विद्वेषण कर्म, 10. मारण कर्म ।

विचार करके देखें, तो स्पष्ट है कि मानव की समस्त समस्याएं और कार्य-उद्देश्य इन्हीं दस कर्मों के अन्तर्गत आ जाते हैं । जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति इन्हीं में से किसी या किन्हीं कर्मों की पूर्त्ति हेतु प्रयास-रत रहता है । स्पष्टता के लिए इन्हें इस प्रकार व्याख्यायित कर सकते हैं—

शान्ति-कर्म—

मायामोह के कोलाहल से परे, जब व्यक्ति आध्यात्मिक-चिन्तन की कामना करता है, तो इस प्रयास में उसके द्वारा किये जाने वाले धार्मिक-कृत्य—पूजा-पाठ, जप-तप, व्रत-उपवास, मन्त्रानुष्ठान आदि—शान्ति-कर्म कहलाते हैं । इन कर्मों के पीछे साधक का कोई भौतिक लाभ-लोभ न होकर शुद्ध धार्मिक-चिन्तन रहता है । ऐसा साधक मात्र दैवी-कृपा, देव-दर्शन, प्रभु-सान्निध्य और ज्ञान-भक्ति अथवा मोक्ष-प्राप्ति के उद्देश्य से साधना करता है । यह साधना किसी भी क्षेत्र की हो सकती है—मन्त्र, यन्त्र अथवा तन्त्र के क्षेत्र में । रोग, शोक, दारिद्रय, भय, विद्रोह जैसे सांसारिक क्लेशों को दूर करने की कामना से किये गये प्रयास भी शान्ति-कर्म माने जाते हैं ।

पुष्टि कर्म—

पुष्टि का अर्थ है—पोषण करना। जब कोई साधक अपनी किसी उपलब्धि को सुरक्षित रखने, उसके सम्वर्द्धन के लिए प्रयास करता है, तो उसे पुष्टि-कर्म कहते हैं। आध्यात्मिक-दृष्टि से—ज्ञान, भक्ति विवेक, आस्था और सिद्धियों को सुरक्षित रखने, उन्हें उत्तरोत्तर बढ़ाने के लिए की गयी साधना पुष्टि-कर्म के अन्तर्गत आती है। इसी प्रकार भौतिक दृष्टि से सांसारिक-समृद्धि—घर, परिवार, वैभव, सम्पदा, मान-श्री, शक्ति-प्रभाव और आयु-स्वास्थ्य आदि की सुरक्षा और वृद्धि की लालसा से किया जाने वाला कृत्य (साधना) पुष्टि-कर्म में गिना जाता है।

वस्तुत: शान्ति और पुष्टि-कर्म में कोई विशेष भेद नहीं है। दोनों लगभग समानार्थी और समोद्देश्य हैं। एक के द्वारा दूसरे की पूर्ति हो ही जाती है। यह दोनों ही सात्त्विक-साधना के प्रमुख अङ्ग हैं।

आकर्षण कर्म—

कर्ष का अर्थ है—खिंचाव। इसी से कर्षण क्रिया निष्पन्न हुई है, जिसका भाव है—खींचना या खींचने की क्रिया। 'आ' उपसर्ग के द्वारा इसके अर्थ-भाव में विशेषता उत्पन्न करदी गयी है। 'आकर्षण' का अर्थ होता है—अपनी ओर खींचना। इसके विभिन्न उद्देश्य हो सकते हैं—अनुकूलन, दासता, सम्मोहन, वशीकरण, मैत्री-भाव, द्वेष-निरोध, प्रणय, सहयोग और सङ्गठन आदि। मुख्य रूप से किसी विरक्त, विरोधी, पृथकतावादी, अपेक्षापूर्ण, निर्मम, रुष्ट, असन्तुष्ट, भ्रमित अथवा भ्रमग्रस्त व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए, जो साधक से विरत और दूर रहता है, की गयी साधना आकर्षण-कर्म कहलाती है। स्मरण रहे कि आकर्षण का अर्थ—उस व्यक्ति को केवल अपनी ओर आकर्षित करना ही है। उसकी मानसिकता को अपने प्रति सौहार्दपूर्ण, अपनत्त्वयुक्त, सामीप्य की कामना से पूरित बनाना ही आकर्षण-कर्म का मूल उद्देश्य है। सम्मोहन और वशीकरण कर्म इससे बहुत भिन्न होते हैं। इस सूक्ष्म भेद को समझ न पाने से प्राय: लोग भ्रमवश आकर्षण, सम्मोहन और वशीकरण को समानार्थी अथवा एक ही मान लेते हैं। आकर्षण का प्रयोग मुख्यत: दूरस्थ को बुलाने, समीप लाने की भावना से किया जाता है।

मोहन कर्म—

वह कर्म जिसके उद्देश्य में किसी को अपने प्रति मुग्ध करने का

भाव निहित हो, मोहन-कर्म कहलाता है। मोहन अथवा सम्मोहन यह दोनों एक ही भाव प्रदर्शित करते हैं। जहाँ आकर्षण दूरस्थ प्राणी को साधक के समीप ले आता है, वहीं मोहन समीपस्थ को साधक के प्रति मुग्ध, मोहमय बनाता है। जैसा कि मोह को ममत्त्व, प्रेम, अनुराग, स्नेह माया और सामीप्य-लालसा का बोधक माना गया है, मोहन-कर्म की यही सब प्रतिक्रियाएं होती हैं। निष्ठुर, विरोधी, विरक्त, प्रतिद्वन्दी अथवा अन्य किसी को भी अपने अनुकूल, प्रणयी और स्नेही बनाने के लिए मोहन-कर्म की साधना की जाती है। इसका दुरुपयोग भी हो सकता है—किसी को मुग्ध करके उसकी दिनचर्या अथवा सामाजिक-पारिवारिक स्थिति में व्यतिक्रम उत्पन्न किया जा सकता है। इस कारण स्थिति विशेष को छोड़कर (जिसके उद्देश्य में सात्त्विकता निहित रहती है) मोहन-कर्म को कुछ निन्दनीय भी माना गया है। सारांश यह कि मोहन-साधना के द्वारा किसी को अपने प्रति सम्मोहित किया जाता है। किन्तु यदि यह प्रयास दुर्भावनापूर्ण है, तो उसे निन्दित कहा जायेगा।

वशीकरण कर्म—

जैसा कि इस शब्द से बोध होता है, इसका अर्थ है—वश में करना। वह कर्म, जिनके द्वारा साधक अभीष्ट प्राणी को अपने वशीभूत कर लेता है, 'वशीकरण' कहलाता है। वस्तुतः यह आकर्षण का चरम-विकसित और अत्यधिक प्रभावी रूप है। आकर्षण में केवल अपनी ओर खींचने, पास ले आने का भाव निहित रहता है, जब कि मोहन में उससे कुछ अधिक, उक्त प्राणी को विमुग्ध और अपनी स्वयं की अस्मिता के प्रति विस्मृत-सा कर दिया जाता है। इसमें मोहित व्यक्ति की चेतना और विवेक मन्द हो जाते हैं। वशीकरण में इन दोनों से अधिक प्रभाव रहता है। मोहन (सम्मोहन) का प्रयोग आज भी हिप्नोटिज्म के रूप में देखा जाता है। वशीकरण की प्रतिक्रिया इनसे भी अधिक सशक्त स्थायी और प्रचण्ड रूप में, स्वत्त्व-बोध को कुण्ठित करने वाली होती है। वशीकृत व्यक्ति को अपने प्रति उचित, अनुचित, देश, काल, स्वीकृति, वर्जना, हानि, लाभ और हित-अनहित का विवेक नहीं रहता। वह मानसिक (बौद्धिक) रूप में साधक के अधीन, उसके प्रति पूर्णतया समर्पित हो जाता है। वह साधक की इच्छानुसार, उसके संकेतों, आदेशों का पालन करने लगता है। इस मानसिक-दासता की स्थिति में वह साधक के हाथ की कठपुतली बन जाता है।

प्रायः साधक ऐसी स्थिति का दुरुपयोग करते हैं । अनेक विवरणों से पता चलता है कि लोग अपने निकृष्ट उद्देश्यों की पूर्त्ति हेतु बड़े सम्पन्न घरों की महिलाओं और बच्चों को वशीभूत करके उनसे अनुचित लाभ उठाते थे । धनी परिवारों, राजघरानों, सेनाधिकारियों तथा अन्य ऐसे ही महत्त्वपूर्ण स्थानों के किसी व्यक्ति को वशीभूत करके उसे अपना दास बना लेना, उससे अनेक प्रकार के कायिक-भौतिक सुख प्राप्त करना तान्त्रिकों के लिए सरल हो गया था । अनन्ततः वे इसे अपनी अदम्य-शक्ति मानकर इसका दुरुपयोग करने लगे थे । फलतः सामाजिक-चेतना ने उन्हें त्याज्य, वहिष्कृत और निन्दनीय घोषित कर दिया । अध्यात्म के अन्तर्गत तन्त्र-मन्त्र के प्रति लोगों में उपेक्षा, भय, शङ्का, अविश्वास और निन्दा का भाव उत्पन्न होने में यह भी एक कारण था ।

जृम्भण कर्म –

जृम्भण भी वशीकरण का एक रूप है । दोनों में बहुत सूक्ष्म भेद है । वशीकृत व्यक्ति साधक की इच्छानुसार सब कुछ करता रहता है । वह उस मानसिक-दास हो जाता है । अपने घर की सम्पदा तक लाकर वह साधक को अर्पित कर देता है । ठीक यही स्थिति जृम्भण-कर्म में भी होती है । इसका मुख्य उद्देश्य धन-वैभवादि भौतिक-वस्तुओं की प्राप्ति न होकर, क्रियात्मक-दासता का होता है । साधक इसके द्वारा अपने प्रभावित व्यक्ति से इच्छानुसार कार्य कराता है । अपनी अस्मिता और स्वत्त्व-बोध को सर्वथा भुलाकर वह व्यक्ति साधक की इच्छा, उसके निर्देशानुसार कुछ भी करने को प्रस्तुत रहता है । ऐसी मनोदशा में वह उचित-अनुचित, सम्भव-असम्भव, पीड़ा, क्लान्ति, परिणाम और अपने हित-अहित की बात तनिक भी नहीं सोच पाता । उसकी सेवा (आज्ञा-पालन) की भावना बहुत प्रबल और उत्तेजित रहती है, जब कि वशीकरण में वह सभी प्रकार से साधक पर न्यौछावर रहता है ।

उच्चाटन कर्म—

वह क्रिया-साधना, जिसके द्वारा अभीष्ट व्यक्ति का जी उचट जाय, उच्चाटन-कर्म कहलाता है । इसका मुख्य लक्ष्य होता है—मानसिक-स्थिरता को नष्ट करना । इसके प्रभाव से व्यक्ति में संशय, भ्रम, भय, अविश्वास, अनास्था, ऊब, विरक्ति और अनिश्चित की भावना जग उठती है । उसका बुद्धि-सन्तुलन नष्ट हो जाता है । वह स्थिर-चित्त

होकर न तो कहीं बैठ सकता है, न कोई काम कर सकता है, न किसी विषय पर क्रमिक-व्यवस्थित रूप में विचार या वार्त्ता कर सकता है। उसकी विचार-शृंखला छिन्न-भिन्न हो जाती है। वह क्षण-क्षण पर अपने निश्चय, विचार और वार्त्ता-क्रम को बदलता रहता है। एक स्थान पर लगातार कुछ देर तक बैठना या काम करना उसके लिए सम्भव नहीं रह जाता। वह पारे की तरह चलायमान—अस्थिर और असन्तुलित हो जाता है। तान्त्रिक-प्रयोग द्वारा उच्चाटन-कर्म सम्पन्न करके साधक लोग किसी की भी प्रगति अवरुद्ध कर देते हैं। यह बहुत अनिष्टकारी क्रिया है। आरम्भ में इसका प्रयोग शत्रु-सेना पर होता था, पर बाद में व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष की पूर्त्ति के लिए भी होने लगा। इसी कारण इसे एक निन्दित कर्म माना गया है।

स्तम्भन कर्म—

इस क्रिया का सीधा प्रभाव मस्तिष्क पर होता है। बुद्धि को जड़, निष्क्रिय, हतप्रभ करके व्यक्ति को विवेक-शून्य, वैचारिक रूप में पंगु, असमर्थ बनाकर उसके क्रियाकलाप को रोक देना, स्तम्भन-कर्म की प्रमुख प्रतिक्रिया है। बौद्धिक-पंगुता के पश्चात् इसका त्वरित प्रभाव व्यक्ति के शरीर पर भी होता है। वह 'स्तम्भ' (खम्भे) की भाँति, अचल, अक्षम, किंकर्त्तव्य-विमूढ़ और आत्म-विस्मृत जैसा हो जाता है। स्तम्भन अनेक प्रकार का होता है—बौद्धिक, शारीरिक, आर्थिक, गत्यात्मक, भावात्मक और क्रियाशीलता आदि के विपरीत। मुख्य रूप से स्तम्भन का प्रभाव प्राणी की किसी गतिविधि पर होता है, और उसकी वह गति (क्रिया) विशेष रुक जाती है। वह चाहते हुए भी, विवश जैसी स्थिति में आकर, उसे सम्पन्न नहीं कर पाता। स्तम्भन के कुछ अन्य प्रयोग भी होते हैं, जैसे—जल-स्तम्भन, अग्नि-स्तम्भन, वायु-स्तम्भन, प्रहार-स्तम्भन, गति-स्तम्भन, वाक्-स्तम्भन और क्रिया-स्तम्भन आदि।

आज पश्चिमी-सभ्यता और भौतिक (जड़) विज्ञान की चकाचौंध में हम दिग्भ्रमित हो गये हैं। योग और अध्यात्म (मन्त्र-तन्त्र) आदि पर न तो हमारी आस्था रह गयी है और न किसी साधना को करने का धैर्य ही हमारे पास है। किन्तु पाँच-सौ साल पूर्व तक यह देश आध्यात्मिक-साधना और क्रियाकलाप से सम्पन्न था। मुस्लिम शासन-काल तक अनेक सिद्ध-सन्तों, योगियों का सामीप्य जन-सामान्य को सुलभ था।

वैसे, भारत भूमि साधकों से रहित नहीं है, आज भी वे अध्यात्म की उपासना कर रहे हैं, किन्तु विज्ञापन, जन-सम्पर्क और इस मायावी आपाधापी से परे, नितान्त एकान्त-स्थलों में। सभ्यता, विकास, जागरण और प्रगति जैसे मोहक-भ्रामक शब्दों का जाल उन्हें आकर्षित नहीं कर पाता। इतिहास बताता है कि द्वापर में—महाबली भीमसेन से परास्त होकर दुर्योधन ने एक सरोवर में शरण ली थी। वह जल-स्तम्भन के रहस्य से परिचित था। त्रेता के महान् पराक्रमी और अजेय-योद्धा हनुमानजी प्रकाण्ड विद्वान और योग-अध्यात्म के ज्ञाता थे। वह अग्नि-स्तम्भन, वायु-स्तम्भन और जल-स्तम्भन की क्रियाओं में निष्णात थे।

अस्तु, स्तम्भन-क्रिया के माध्यम से वायु के प्रचण्ड वेग को स्थिर किया जा सकता है, अग्नि की ज्वालाओं को भी निष्क्रिय बनाया जा सकता है। अथाह जल को (उसकी गहराई को) अक्षम बनाकर सरलता से उसे पार किया जा सकता है। इसी प्रकार भागते हुए व्यक्ति को, आक्रमणकारी शत्रु अथवा हिंसक-पशु को, लगी हुई आग को, अदम्य वेग से चल रहे आँधी-तूफान को स्तम्भन-क्रिया द्वारा तत्क्षण निष्क्रिय किया जा सकता है। शस्त्र-प्रहार को निष्प्रभावी, मुखर-व्यक्ति को मौन और कार्यरत को जड़वत् बना देना—स्तम्भन साधक के लिए बहुत ही सरल होता है। आरम्भ में इसका प्रयोग आपदा-निवारण के लिए ही होता था, किन्तु परवर्त्ती-काल में स्वार्थ और ईर्ष्या-द्वेष की भावना से प्रेरित होकर इसका दुरुपयोग होने लगा था। इसी कारण स्तम्भन को भी निन्दित-कर्म घोषित कर दिया गया।

विद्वेषण कर्म—

किसी की प्रगति और समृद्धि को देखकर मानसिक-पीड़ा का अनुभव करना—व्यक्ति की मलिनता और दुष्ट-स्वभाव का सूचक होता है। ऐसे व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं; एक तो वे, जो दूसरे की प्रगति को देखकर दुःखी होने के बाद स्वयं को भी वैसा बनाने की कामना-चेष्टा करते हैं। किसी को देखकर उसकी समता करने की यह भावना 'ईर्ष्या' कहलाती है। इससे ग्रस्त मन-स्थिति वाले व्यक्ति ईर्ष्यालु कहलाते हैं। दूसरे लोग वे हैं, जो किसी की समृद्धि को देखकर मानसिक-पीड़ा के कारण उसकी प्रगति में अवरोध उत्पन्न करने को सन्नद्ध हो जाते हैं। दूसरे लाभ में अवरोध उत्पन्न करने की यह भावना 'द्वेष' कहलाती है। इससे ग्रस्त व्यक्ति द्वेषालु की संज्ञा पाता है। वैसे तो दोनों ही निन्दनीय

हैं, किन्तु द्वेष की अपेक्षा ईर्ष्या फिर भी श्रेयष्कर होती है। यह कम से कम किसी का अनिष्ट तो नहीं करती, जब कि द्वेष दूसरों का विनाशक होता है।

इसी द्वेष-भावना का क्रियात्मक रूप 'विद्वेषण' कहलाता है। इसका मुख्य उद्देश्य होता है—दो (या किन्हीं) व्यक्तियों के मध्य फूट, विद्रोह, उपद्रव, अविश्वास और शत्रुता के भाव उत्पन्न करके उनका विघटन करना। प्रारम्भ में इसका प्रयोग शत्रु के विरुद्ध किया जाता था। उसकी सेना को विघटित करने, मानसिक रूप से विद्रोही, अकर्मण्य, असहयोगी और निर्बल करने के लिए विद्वेषण का अवलम्ब लेकर, स्वयं की रक्षा की जाती थी। किन्तु ऐसे प्रयोग उन्हीं आक्रमणों-युद्धों में होते थे, जो दो भिन्न देशों—संस्कृतियों अथवा धर्मों के मध्य छिड़ते थे। एक देश अथवा जाति के मध्य होने वाले युद्धों में ऐसी क्रियाओं का प्रयोग नहीं होता था। उसमें विजय-वर्चस्व के लिए बाहुबल और शस्त्र-बल ही पर्याप्त माना जाता था।

कालान्तर में तन्त्र का प्रचार इतना अधिक हो गया कि लोग व्यक्तिगत अथवा सामाजिक-जीवन में भी विद्वेषण का प्रयोग करने लगे। और तब इसके घातक-परिणाम और दुरुपयोग को देखकर मनीषियों व धर्माचार्यों ने इसके सार्वजनिक रूप में प्रयोग को वर्जित और निन्दनीय घोषित कर दिया।

बौद्ध-युग में, जब कि तन्त्र-साधना अपने चरम-बिन्दु पर पहुँच गयी थी, साधक-जन निहित स्वार्थ के वशीभूत होकर विद्वेषण-प्रयोगों के द्वारा किन्हीं भी परिवारों, समुदायों, सङ्गठनों और समाजों अथवा मित्रों के बीच—विघटन, अविश्वास, विद्रोह और विनाश के बीज बोकर उनको निर्बल या क्षति-ग्रस्त बना देते थे।

मारण कर्म—

जैसा कि इस शब्द के अर्थ से स्पष्ट है, किसी को मार डालना ही मारण-कर्म है। मार डालने का अर्थ है—किसी की मृत्यु आहूत करना, किसी की जीवनी-शक्ति को समाप्त करके उसके पार्थिव-शरीर को निष्प्राण और सर्वथा अनुपयोगी बना देना। मृत्यु के पश्चात् प्राणी की कोई अस्मिता अथवा प्रयोजनीयता नहीं रह जाती। वह चाहे कोई मनुष्य हो, अथवा पशु। जीव-जन्तु कीट पतङ्ग सभी जीवित-अवस्था में

ही सक्रिय और प्रभावकारी रहते हैं। मृत्योपरान्त वे सर्वथा नगण्य—हवा में उड़ रही धूल के सदृश हो जाते हैं। सामान्य भिखारी और श्रमिक से लेकर बड़े-बड़े सम्राट् और साधु-सन्त—केवल जीवित अवस्था तक ही सक्रिय, सदोद्देश्य और समाज-सम्पर्कित रहते हैं। मृत्यु उन्हें सदा के लिए समाप्त कर देती है। उसके अस्तित्व और तज्जन्य सारी सम्भावनाओं को निर्मूल करके भावी-पीढ़ी को भी प्रभावित करती है। मृत्यु के इसी नाशक और अनिष्टकर प्रभाव को देखते हुए शास्त्रों में मारण को निन्दित-कर्म कहा गया है। हिंसा-हत्या को सामाजिक-मान्यता इसीलिए नहीं दी गयी, कारण कि वह जीव मात्र के लिए एक विनाशकारी और सृष्टि-विरोधी कार्य सिद्ध होता है।

मानव समस्त प्राणियों में सर्वाधिक चेतन, सङ्गठित, तर्क-विवेक से युक्त और क्रियाशील है, इसलिए उसके समुदाय (समाज) में रक्षात्मक दृष्टि से हिंसा-हत्या (मारण) को वर्जित माना गया है। अपवाद की स्थिति अलग है। उसमें भी कहीं न कहीं आत्म-रक्षा या परायी-रक्षा का उद्देश्य निहित रहता है। युद्ध और आक्रमण की स्थिति में मारण-कर्म अनिवार्य हो जाता है, कारण कि उस समय सामूहिक रूप में समाज की रक्षा के लिए, यदि कुछ विरोधियों, आताताइयों, आक्रमणकारियों की हत्या करनी पड़े, तो वह निन्दनीय नहीं रहता। कारण कि वह कुछ लोगों द्वारा एक बड़े समुदाय की हत्या रोकने का प्रयास होता है। इसी प्रकार हिंसक-पशु, अनाचारी, अपराधी व्यक्ति या हत्या के लिए सन्नद्ध आक्रमणकारी के विरुद्ध मारण-कर्म को निन्दनीय नहीं माना गया।

किन्तु आज की स्थिति भिन्न है। लोग क्षुद्र स्वार्थ के लिए, ईर्ष्या-द्वेष की पूर्त्ति के लिए, अथवा अविवेक की प्रेरणा से धन-सन्तान जैसी भौतिक-उपलब्धियों के लिए किसी को मार डालने में सङ्कोच नहीं करते। समाचार-पत्रों में आये-दिन छपता रहता है—'सन्तान पाने की लालसा में अबोध-बाल की बलि, पैसे के लालच में वृद्ध की 'हत्या', 'दहेज न देने पर नव-वधू जलाकर मार डाली गयी', 'डकैती द्वारा लूट और हत्या''''आदि'।

अस्तु, किसी भी उद्देश्य से किया गया मारण-कर्म, चाहे वह शास्त्रीय आधार (तन्त्र-मन्त्र) के द्वारा हो, अथवा शस्त्र द्वारा—सर्वथा

निन्दनीय होता है। अपवाद की स्थिति भिन्न है, किन्तु आज की कानूनी-राजनीति उसे भी छूट नहीं देती। सारांश यह है कि मारण-कर्म सदैव ही वर्जित, त्याज्य एवं घृणित माना गया है।

षट्कर्म :

उपरोक्त दस कर्मों की विवेचना से स्पष्ट होता है कि इनमें कई एक ऐसे हैं, जिनमें परस्पर नाममात्र का, बहुत ही सूक्ष्म भेद है। आदि मनीषियों की इस व्यवस्था को परवर्ती आचार्यों ने जन-साधारण की सुविधा और साधना को अपेक्षाकृत सरल बनाने के उद्देश्य से संशोधित करके संक्षिप्त कर दिया। उन्होंने दस कर्मों के स्थान पर छः कर्मों (षट्कर्म) की व्यवस्था दी। मानव-जीवन की समस्त आवश्यकताओं समस्याओं और प्रश्नों को उन्होंने जिन छः बिन्दुओं पर केन्द्रित किया, उन्हें षट्कर्म की संज्ञा दी। उन्होंने कोई नया नामकरण न करके कुछ कर्मों को परस्पर समाहित करके उनकी संख्या घटा दी। इस प्रकार षट्कर्म-साधना के अन्तर्गत ही दसकर्म-साधना का प्रचलन किया। आगे चलकर यह व्यवस्था बहुत लोकप्रिय हुई और तन्त्र-मन्त्र की साधना में षट्कर्म के आधार पर ही नियम-निर्धारण होने लगा।

पूर्व नियोजित दस कर्मों के स्थान पर जिन षट्कर्मों की प्रधानता स्वीकृत हुई, वे इस प्रकार हैं—

1. शान्ति-कर्म, 2. आकर्षण-कर्म, 3. वशीकरण कर्म, 4. उच्चाटन कर्म, 5. स्तम्भन कर्म, 6. मारण कर्म।

शेष जिन 4 कर्मों को इनमें समाहित किया गया, वे इस प्रकार रहे—

पुष्टिकर्म शान्तिकर्म में, मोहन वशीकरण में, जृम्भण भी वशीकरण में और विद्वेषण उच्चाटन में। किन्तु यह परिवर्त्तन केवल चार कर्मों को छः के अन्तर्गत समाहित करने तक ही रहा, साधना-विधि में कोई परिवर्त्तन नहीं किया गया। वह यथावत ही रही—वे ही नियम, वे ही सिद्धान्त और वे ही जप-तप के विधान।

साधना का वर्गीकरण .

उद्देश्य के आधार पर मनीषियों ने साधना के तीन भेद निर्धारित किये और इस प्रकार प्रत्येक वर्ग के लिए की जाने वाली साधना के नियमों, सिद्धान्तों और प्रयोगों का निरूपण किया। साधना के तीन भेद इस प्रकार माने गये—

1. सात्त्विक साधना, 2. राजसिक साधना, 3. तामसिक साधना।

सात्त्विक साधना—

आत्म-ज्ञान, ब्रह्म-बोध, सांसारिक-माया-मोह से परे, निस्पृहः भाव से ईश्वर (परमात्मा) का सायुज्य, देवी-देवताओं की शरणागति, वैराग्य, मोक्ष, अपवर्ग, कैवल्य आदि की प्राप्ति हेतु किया गया जप-तप, चिन्तन-मनन तथा एतत्सम्बन्धी अन्य कार्यकलाप— यह सब सात्त्विक-साधना के अन्तर्गत आते हैं।

राजसिक साधना—

सांसारिक वैभव-विलास, धन-सम्पदा, पद-प्रतिष्ठा और घर-परिवार का सुख पाने की लालसा से किये गये आध्यात्मिक प्रयत्नों को राजसिक-साधना में गिना जाता है। जहाँ सात्त्विक-साधना पूर्णरूप से वैराग्य-पूर्ण, मोह-ममता से सर्वथा परे, मात्र देव-चिन्तन और ब्रह्म-प्राप्ति के निमित्त की जाती है, वहीं राजसिक-साधना का मुख्य उद्देश्य सांसारिक-भौतिक सुख-साधनों की प्राप्ति होता है। यह बात अलग है कि कोई विवेकी-साधक राजसिक-साधना में भी सात्त्विकता को वरीयता देता रहे। वस्तुतः उन्हीं की राजसिक-साधना सफल भी होती है। क्योंकि चाहे जैसे भी, चाहे जिस रूप में भी हो, ईश्वर की सत्ता प्रत्येक क्षेत्र में—ब्रह्माण्ड के अणु-अणु में—व्याप्त है। अतः अध्यात्म का अवलम्ब लेकर चलने वाले साधक, चाहे वे पूर्णतया सात्त्विक-उपासक हों अथवा राजसिक, अवश्य ही सुरक्षित और सफल रहते हैं। इसके विपरीत सात्त्विकता की उपेक्षा कहीं न कहीं, कभी न कभी साधक के पतन और विनाश का कारण बन जाती है। अस्तु, सात्त्विकता का सामीप्य-सम्पर्क जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में श्रेयस्कर होता है। और, यही कारण है कि बौद्धिक रूप से सक्षम साधक जन राजसिक-साधना के साथ परोक्ष रूप में सात्त्विकता का अवलम्ब लिये रहते हैं।

तामसिक साधना—

भौतिकता की दृष्टि से यह साधना सर्वाधिक प्रचलित हुई। इसमें दैनिक-जीवन की छोटी-बड़ी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति और विघ्न-बाधाओं के निवारण की कामना ही एकमात्र उद्देश्य होती है। तन्त्र में इसका अवलम्ब मुक्त रूप से लिया गया। वस्तुतः तन्त्र का उद्भव तामसिक-साधना के रूप में ही हुआ है। तन्त्र और तामसिक-साधना एक दूसरे के पर्याय हैं। सात्त्विता से लगभग विरत, राजसिकता के कुछ समीप,

तामसिक-साधना पूर्णरूपेण भौतिक-उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए प्रचलित हुई। अखिल सृष्टि में व्याप्त तीन गुणों—सत्त्व, रज तम—की, जीवन में प्राप्ति और पूर्त्ति के लिए ही मनीषियों ने साधना की भी तीन पद्धतियाँ प्रचलित कीं। ताकि प्रत्येक गुणवर्ग के साधक अपने मनोनुकूल, अपनी आस्था और रुचि के अनुसार, आध्यात्मिक-साधनों का अवलम्ब लेकर जीवन को पूर्ण व्यवस्थित कर सकें।

तन्त्र की व्यापकता :

जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है, सात्त्विक-साधना का लक्ष्य—केवल ईश्वरीय-सत्ता का बोध और उसके सामीप्य की प्राप्ति है, जबकि राजसिक-साधना के द्वारा व्यक्ति भौतिक सुख-समृद्धि के लक्ष्य की ओर की ओर अग्रसर होता है। तामसिक-साधना में प्रायः विघ्न-निवारण को प्रधानता दी जाती है। विभिन्न प्रकार के सङ्कट, पीड़ा, आपदा, भय, व्यवधान और अन्य भौतिक-बाधाओं के निवारण को तन्त्र में बरीयता दी जाती है। वैसे, तन्त्र-शास्त्र को पूर्णरूपेण केवल तामसिक लक्ष्यों का पूरक नहीं कहा जा सकता। इसमें भी एक सम्प्रदाय (साधना-भेद) ऐसा है, जो योग के अत्यधिक निकट है और ब्रह्म का चिन्तन-दर्शन उसका प्रमुख लक्ष्य होता है। ऐसे तन्त्र-साधक कुण्डलिनी-जागरण में सिद्ध होकर अलौकिक-शक्तियों के स्वामी बन जाते हैं। स्वर (श्वास)-साधना, प्राणायाम, ध्यान-धारणा, मुद्रा, चिन्तन और यौगिक-क्रियाएँ इनकी साधना के प्रमुख अङ्ग होते हैं। भारतीय-संस्कृति के इतिहास में कितने ही महापुरुषों (देवताओं) और ऋषि-मुनियों के प्रसङ्ग मिलते हैं, जिन्होंने योग-तन्त्र की साधना के द्वारा अद्भुत-अलौकिक कार्य कर दिखाये थे। भगवान शिव, जो तन्त्र के प्रणेता हैं, स्वयं में महान् योग-साधक हैं। आशीष या शाप द्वारा किसी को कुछ भी दे देने में समर्थ ऋषि-मुनियों की वाक्-सिद्धि का मूल रहस्य—उनका योग-तन्त्र में पारङ्गत होना ही रहा है।

भारद्वाज, विश्वामित्र, जाबालि, याज्ञवल्क्य, गौतम, कपिल, कणाद जैसे दिग्गज विद्वान वस्तुतः योग और तन्त्र की साधना के द्वारा ही इतने सक्षम हुए थे। जिन हनुमानजी की आज घर-घर पूजा होती है, वे भी योग और तन्त्र के प्रकाण्ड-मर्मज्ञ हैं। ये सभी महापुरुष अपनी शक्ति को सदैव सात्त्विता की ओर उन्मुख रखते थे। राजसिक या भौतिक सुख-समृद्धि पाने की इन्होंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की। हाँ, किसी पीड़ित

पर दयार्द्र होकर इसे भले ही धन-वैभव दे दिया हो, पर स्वयं आजीवन उससे विरत रहे हैं।

प्रागैतिहासिक (पौराणिक) युग के बाद भी योग-तन्त्र का पर्याप्त प्रचलन रहा। नाथसिद्ध परम्परा के प्रवर्त्तक और महान योगी गुरु मत्स्येन्द्रनाथ तथा गोरखनाथ के नाम आज भी समादृत हैं। बौद्ध-काल में तन्त्र को बहुत व्यापाकता प्राप्त हुई। किन्तु वही व्यापकता उसके पतन का कारण भी बनी। बौद्ध-तान्त्रिकों के एक सम्प्रदाय नें सात्विकता के विकास-प्रयास में तन्त्र-साधना की प्रणाली और नियमाचारों में विकृति उत्पन्न कर दी। उन्होंने ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए योग की क्रियाओं में मैथुन (पर-स्त्री-गमन) को वरीयता दे दी और सामूहिक सहवास को साधना का अनिवार्य अङ्ग घोषित कर दिया। तत्कालीन सामाजिक और शासकीय परिस्थितियों में उनका यह यौनाचार-प्रचार खूब चला। पञ्च-मकार-साधना में मांस-मदिरा, मुद्रा और मैथुन मुख्य हो गये। इन्हें सिद्धि-सोपान की संज्ञा दे दी गयी। मुक्त यौनाचार के पोषण हेतु सामूहिक-साधना, कौलाचार, भैरवी-चक्र आदि की प्रणाली विकसित हुई, जिसके माध्यम से अधिकांश बौद्ध-बिहारों (उपासना-गृहों) को मुक्त भोग, सामूहिक-सहवास और स्वच्छन्द यौन-प्रशिक्षण के केन्द्र बना दिया। बस, यही अतिचार उसके विनाश का कारण बना और समाज में जागरूप-जनों, बुद्धि-जीवियों ने तन्त्र (बौद्धों का वामाचार) का विरोध करना आरम्भ कर दिया।

जो भी हो, तन्त्र का का साधनात्मक-पक्ष योग के निकट है और भौतिक-पक्ष प्रयोग के समीप है, जिसमें विधि-विशेष (तान्त्रिक-प्रयोगों) के द्वारा किन्हीं वस्तु के उपयोग से उसका विशिष्ट लाभ उठाया जा सकता है।

●

4 | तन्त्र-साहित्य

तन्त्र का उद्‌भव और विकास :

तन्त्र-शास्त्र के आदि-प्रणेता भगवान शिव हैं। वह देवता तो हैं ही, महान योगी, नाद-शास्त्री, वनस्पत्ति-वेत्ता, मन्त्र-दृष्टा और अलौकिक शक्तियों के आगार हैं। साहित्य और व्याकरण की उत्पत्ति भी प्रकारान्तर से उन्हीं के द्वारा हुई है। उनकी महानता का एक अकाट्य और सर्वसुलभ प्रमाण यह है कि विश्व में जितनी अधिक संख्या में शिवजी के मन्दिर प्राप्त होते हैं, उतने और किसी भी देवता के नहीं मिलते।

शिवजी ने अपनी पत्नी पार्वती से समय-समय पर सम्भाषण करते हुए ज्ञान के विविध विन्दुओं की चर्चा की थी। वे चर्चा-बिन्दु ही आगे चलकर भाष्यकारों द्वारा व्याख्यायित होकर बड़े-बड़े ग्रन्थों के रूप में उपलब्ध हुए। चूँकि आरम्भ में मुद्रण-कला प्रकाश में नहीं आयी थी, इसलिए शताब्दियों तक सभी प्रकार के उपदेश, प्रवचन, सम्वाद और विवरण मौखिक रूप में ही रहे। विद्वज्जन (गुरु) अपने अनुगतों को वार्त्ता के रूप में सुनाते थे, और श्रोता उसे कण्ठस्थ कर लेते थे। उस युग में मानव की (उन विद्वानों की) स्मरण-शक्ति कितनी प्रबल थी, इसका अनुमान केवल इतने से ही लगाया जा सकता है कि पीढ़ियों तक ज्ञान का हस्तान्तरण मौखिक-रूप में होता रहा, और गुरु द्वारा सुनाया गया प्रवचन-उपदेश श्रोता को सदा के लिए याद हो जाता था। आगे चलकर वह अपने किसी योग्य उत्तराधिकारी को वह समस्त ज्ञान-राशि इसी प्रकार मौखिक रूप में सौंप देता था।

गुरु-शिष्य परम्परा में ज्ञान का यह हस्तान्तरण—आदान-प्रदान, शताब्दियों तक चलता रहा। बाद में ज्यों-ज्यों आध्यात्मिक-शक्ति कम होने लगी, मानव का मस्तिष्क भी शिथिल होने लगा। कारण कि भौतिकता के प्रभाव ने उसमें प्रच्छन्न रूप से प्रदूषण उत्पन्न कर दिया था। उस स्थिति में, स्मरण-शक्ति की क्षीणता की पूर्त्ति हेतु, गुरु से प्राप्त ज्ञान-सूत्रों

को लिपि-बद्ध करना आरम्भ हुआ। सूत्र रूप में—ताड़पत्र, भोजपत्र और शिला-खण्डों पर उन्हें अङ्कित किया जाने लगा।

आरम्भ में, तन्त्र-मन्त्र के विभिन्न ग्रन्थ—'उमा-महेश्वर सम्वाद' अथवा 'शिवा-शिव सम्वाद' के रूप में निर्मित हुए थे। बाद में, उन्हीं के आधार पर परवर्ती विद्वानों ने अनेक ग्रन्थों की रचना की।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, धारणा-शक्ति की क्षीणता के कारण, ग्रन्थ-लेखन की प्रणाली का आविष्कार हुआ। चूँकि ग्रन्थों के मूल-सूत्र जटिल और दुरूह होते थे, इसलिए उन्हें सर्वसुलभ, सरल, सुबोध और सर्वग्राह्य बनाने के उद्देश्य से व्याख्या, टीका, विवेचना और भाष्य आदि के नाम पर अनेक विद्वानों द्वारा विस्तार से, परिवर्द्धित रूप में प्रस्तुत किया गया।

जहाँ तक ग्रन्थ-रचना का विषय है, सर्वप्रथम वेद की रचना हुई—ऋग्वेद की। बाद में तीन वेद और रचे गये—यजुर्वेद, सामवेद और अथर्व वेद। यह चारों महाग्रन्थ एक साथ नहीं, शताब्दियों के अन्तर से रचे गये हैं। भारतीय-संस्कृति, अध्यात्म, ज्ञान और व्यावहारिकता के ये महासागर हैं। ऐसा कोई विषय नहीं है, जो किसी न किसी सूत्र संकेत के रूप में, इनमें वर्णित न हो। हाँ, यह अवश्य है कि आज की जैसी प्रचण्ड भौतिकता उस समय नहीं थी, इसलिए आज का सामाजिक-परिवेश और असन्तुलन उनमें नहीं मिलेगा। तो भी, आध्यात्मिक तथा लौकिक जगत के लगभग सभी विषयों पर उनमें पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है।

वेदों में जो कुछ सूत्र रूप में मिलता है, वही आगे चलकर परवर्ती-ग्रन्थों में विस्तार से विवेचित हुआ है। इस क्रम में कहा जा सकता है कि वेदों का भाष्य उपनिषदों में हुआ। स्मृति और संहिता वर्ग के ग्रन्थ भी इसी श्रेणी में माने जाते हैं। बाद में पूर्णतया लौकिक-परिवेश में पुराणों की रचना हुई। पुराणों में बड़े विस्तार से उपमा-दृष्टान्त के साथ वेद-विहित मूल सूत्रों को कथा के रूप में प्रस्तुत किया गया। उनमें जप, तप, स्तुति, कर्मकाण्ड, प्रभाव और निषेध सभी कुछ वर्णित हुआ।

वेदों को आगम कहा जाता है। कालान्तर में विस्तार और कुछ रूप परिवर्त्तन के साथ आगम से ही निगम और पुराणों का सृजन हुआ। शास्त्रीय-दृष्टि से समस्त आध्यात्मिक क्षेत्र तीन खण्डों में विस्तृत किया गया—आगम, यामल और तन्त्र। वैसे, यह समस्त वर्गीकरण और विवे-

चन मूलत: वेदों में वर्णित विषयों की व्याख्या ही है। काल-क्रम, पद्धति, प्रस्तुति और विस्तार के आधार पर इसके पूर्वोक्त समस्त भेद ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, संहिता, पुराण आदि—महर्षियों द्वारा प्रस्तुत हुए हैं। इन विभिन्न वर्ग के ग्रन्थों की रचना में शताब्दियाँ बीती हैं। आध्यात्मिक-साहित्य के इस सृजन-काल की कल्पना से ही रोमाञ्च हो आता है। और, तब हम दिग्मूढ़ हो जाते हैं, यह सोचकर कि भारतीय सभ्यता-संस्कृति कितनी प्राचीन है !

आगम—आगम-ग्रन्थों में अध्यात्म-विवेचन के अन्तर्गत इन विषयों का उल्लेख मिलता है--ब्रह्माण्ड की रचना, सृष्टि, देवताओं की उपासना (सूर्य, वायु, अग्नि, जल आदि), मन्त्र-साधना, पुरश्चरण, ध्यान-योग तथा षटकर्मों (विस्तृत रूप में दस कर्मों की साधना।

यामल—यामल-ग्रन्थ जिन विषयों की विवेचना करते हैं, उनमें सृष्टि-तत्त्व, ज्योतिष, नित्यकर्म, सूत्र, सामाजिक-विवेचन (वर्ण तथा जाति के आधार पर समाज का वर्गीकरण) तथा (समकालीन कर्त्तव्य युग-धर्म) आदि प्रमुख हैं।

तन्त्र—उपरोक्त दोनों आध्यात्मिक क्षेत्रों की अपेक्षा तन्त्र का क्षेत्र अत्यधिक सरल, सुगम, व्यावहारिक और लोकोपयोगी है। इस कारण इसका विषय-क्षेत्र और विवेचन-क्षेत्र दोनों ही अत्यधिक विस्तार पा गये हैं। तन्त्र में वह सब कुछ निहित है, जो विश्व में है। धर्म, अर्थ, काम, की प्राप्ति हेतु तन्त्र सबसे सरल मार्ग है। दैहिक, दैविक, भौतिक समस्त प्रकार की समस्याओं के समाधान में तन्त्र पूर्णतया सक्षम है। इस कारण उसमें लौकिक पारलौकिक सभी विषयों का समावेश हो गया है। तन्त्र-शास्त्र के अन्तर्गत सृष्टि (जगत की उत्पत्ति), प्रलय, मन्त्र-विवेचना (किसे, कब, कौनसा मन्त्र उपयुक्त है), देवताओं की अवस्थिति, साधना-पीठ, तीर्थ वैदिक-दृष्टि से निर्धारित मानव-जीवन के चारों आश्रम, धर्म, ब्राह्मण वर्ग, वायव्य-आत्माएं (भूत-प्रेतादि) यन्त्र-साधना, पदार्थ-प्रयोग, वनस्पति-विवेचन, ज्योतिष का परिचय और प्रभाव, औषधीय-प्रयोग (कल्प), पौराणिक-सन्दर्भ, व्रत-उपवास, शुद्धि और अशुद्धि का विवेचन, स्त्री-पुरुष के संरचनागत तथा गुण-प्रधान भेद (कोकशास्त्र की भाँति) राजनीति, दान-पुण्य, व्यावहारिक-नीति, सामाजिक-समस्याएं, लौकिक-

विषय आदि की इतनी विशद-विवेचना की गयी है कि उसे ज्ञान का विश्व-कोश कहना भी अपर्याप्त होगा।

तन्त्र-साहित्य :

तन्त्र-विषय पर अनेक ग्रन्थों के नाम प्राप्त होते हैं। यद्यपि वे सब आज उपलब्ध नहीं हैं, तो भी इनकी अस्मिता और प्रामाणिकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। सुरक्षा के अभाव में कितने ही ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं, कितने ही अपूर्ण, जीर्ण, जर्जर रूप में मिलते हैं और कितने ही हमारी उपेक्षा के कारण विदेशी-पुस्तकालयों में जा छिपे हैं।

तन्त्र का उद्‌भव ईसवी सन् प्रारम्भ होने के कई शताब्दी पूर्व ही हो चुका था, जो उत्तरोत्तर विकसित होता रहा। बौद्ध-युग तन्त्र के चरम-विकास का युग था। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि भारत ही नहीं, इस देश की सीमाएं पार करके सुदूर देशों तक प्रचलित हुआ। दक्षिण-पूर्व के कई देशों तक (जहाँ भारतीय-संस्कृति के रूप में बौद्ध-धर्म सर्वमान्य हो हो चुका था) तन्त्र ने अपनी पताका फहरायी। तिब्वत तो पड़ोसी-देश था ही, चीन, मङ्गोलिया, थाईलैण्ड, वर्मा, कम्बोज, जावा, सुमात्रा, बाली और जापान तक इसका प्रचार हुआ, किन्तु सर्वाधिक संरक्षण इसे तिव्वत में ही मिल सका। आज भी तिब्बत– विश्व का एकमात्र ऐसा देश है, जहाँ तान्त्रिक-सिद्धियों के स्वामी-साधक निवास करते हैं। यह बात अलग है कि राजनीतिक-वितण्डा के कारण वे सामाजिक-सम्पर्क में न आकर, दुर्गम गुफाओं, घाटियों में रहते हैं। वैसे भी, आध्यात्मिक-साधना और सिद्धि के लिए साधक को भौतिक-कोलाहल से दूर, एकान्त-सेवी होना चाहिए। तभी वह निर्विघ्न रूप में अपनी साधना पूरी कर पाता है।

किसी न किसी रूप में--प्रकट या प्रच्छन्न—तन्त्र का प्रचार भारत में लगभग दो हज़ार वर्षों तक रहा। ईसा के सात-सौ वर्ष पूर्व से ईस्वी सन् की तेरहवीं सदी तक तन्त्र का पर्याप्त प्रभाव रहा। बाद में यवन-संस्कृति के प्रवेश और राजनीतिक अस्थिरता के कारण यह पंगु होने लगा। यवन-शासकों में कितने ही ऐसे थे, जो धर्म-संस्कृति के नाम पर भारतीयता के घोर विरोधी थे। उन्होंने खोज-खोजकर यहाँ की आध्यात्मिक-सम्पदा को क्षति पहुँचायी--मन्दिर तोड़े गये, साधना-स्थल भ्रष्ट किये गये, उपासकों को उत्पीड़ित किया गया, धर्मग्रन्थ जलाये गये, मूर्त्तियाँ

तोड़ी गयीं और बलात्, धर्म-परिवर्त्तन की ओट में जन-समुदाय की मानसिकता विकृत की गयी।

यह एक कठोर सत्य है कि राजनीतिक-अस्थिरता के कारण, जहाँ तन्त्र अपनी जन्म-भूमि भारत में, जो सब प्रकार से साधना-सम्पन्न देश है, मुमूर्ष हो गया, वहीं तिब्बत जैसे निर्धन, पहाड़ी और बाह्य-जगत् से लगभग असम्बद्ध देश में वह खूब फूला-फला। वहाँ तन्त्र-साहित्य का सृजन इतने बड़े परिमाण में हुआ कि—जानकर ईर्ष्या होती है। भले ही, आज वहाँ भी समस्त तन्त्र-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं, तो भी उनका विवरण तन्त्र-शास्त्र की यशोपताका फहराने में सक्षम है।

एक विवरण के अनुसार, समस्त तन्त्र-साहित्य 78 खण्डों में विभक्त है और इसके प्राप्त-अप्राप्त कुल ग्रन्थों की संख्या 2640 है। एक अन्य विद्वान ने लिखा है कि पूरा तन्त्र-शास्त्र एक लाख श्लोकों का है, बाद में उन्हीं के आधार पर एक-सौ निन्यानवें ग्रन्थों की रचना हुई, जिनके श्लोकों का योग नौ लाख होता है। 'वाराही-तन्त्र' एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके विवरण को प्रमाणिक माना जाता है। उस ग्रन्थ में उल्लेख मिलता है कि तन्त्र साहित्य में 199 ग्रन्थों की रचना हुई थी और उनके श्लोकों का योग बहुत बड़ा था—957950 श्लोक। सम्भव है कि यह संख्या मूल-श्लोकों की हो और नौ लाख वाली संख्या इन्हीं के विस्तार की हो। अस्तु इतना तो असंदिग्ध रूप में मानना ही पड़ेगा कि तन्त्र-साहित्य सम्पन्न था। उसके विद्वानों, ग्रन्थों, पाठकों और साधकों की संख्या उसके युग-व्यापी होने को प्रमाणित करती है।

तन्त्र-शास्त्र के ग्रन्थ :

तन्त्र-ग्रन्थों की सर्वाधिक रचना भारत और तिब्बत में हुई है। भारतीय-ग्रन्थ शिव-प्रणीत हैं और तिब्बती-ग्रन्थ बुद्ध-प्रणीत। भले ही इन ग्रन्थों का रचनाकार (लिपिकार) कोई भी रहा हो, परन्तु उसने स्वयं को लेखक न कहकर प्रस्तोता के स्थान पर ही रखा है। भारत के सभी तन्त्र-ग्रन्थ 'शिव उवाच' में हैं और तिब्बत के ग्रन्थ 'बुद्ध उवाच' में। अर्थात् मूल साहित्य शिव अथवा बुद्ध द्वारा सृजित हुआ था और परवर्ती-विद्वानों ने उसे ग्रन्थ का रूप दिया। अस्तुः इन सभी तन्त्र-ग्रन्थों में अनेक प्रकार के गोपनीय (गोप्य)—कर्मकाण्ड, क्रियाकलाप, उपदेश, साधना, स्तुतियाँ, मन्त्र और पूजन-विधान, सङ्कलित हैं।

भारतीय-तन्त्र मुख्यत: दो शाखाओं में विभक्त है—

1. शैव-तन्त्र, 2. शाक्त-तन्त्र।

शैव-तन्त्र—पुरुष-प्रधान उपासना के रूप में शिव को प्रमुखता देकर जिन तन्त्रों (ग्रन्थों) की रचना की गयी है, वे शैव-तन्त्र कहलाते हैं।

शाक्त-तन्त्र—शिव की शक्ति (प्रकृति) को प्रधान मानकर की जाने वाली साधना शाक्त-तन्त्र का विषय है।

शैव-तन्त्र में प्राय: शिव के विभिन्न स्वरूपों, अवतारों तथा उनसे सम्बन्धित अन्य देवताओं की उपासना का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार शाक्त-तन्त्रों में—शिव की शक्ति के विभिन्न स्वरूपों को आराध्य माना गया है।

पुरुष-प्रधान सभी तन्त्रों—भैरव, शिव, बटुक, नृसिंह, दत्त, यम, वरुण, दिग्पाल, कुबेर आदि की उपासना शैव-तन्त्र के अन्तर्गत आती है। शाक्त-तन्त्र में शिव की शक्ति (अर्धाङ्गिनी) पार्वती तथा उनके प्रतिरूप—दुर्गा, चण्डी, काली, तारा, छिन्नमस्ता, भैरवी, यक्षिणी आदि परिगणित होते हैं। चूँकि शिव में ही ब्रह्मा और विष्णु ही समाहित हैं, यथा उनकी शक्तियाँ—सरस्वती और लक्ष्मी, दुर्गाजी में अन्तर्निहित रहती हैं। इसलिए शिव की साधना के अन्तर्गत सभी वर्गों के पुरुष-प्रधान तन्त्र (देवोपासना के सन्दर्भ में) आ जाते हैं और शाक्त-तन्त्र के अन्तर्गत—लक्ष्मी, सरस्वती दुर्गा, काली आदि सभी देवियों की उपासना सिद्धिदायी मानी गयी है।

जैन तन्त्र—बौद्ध-सम्प्रदाय की भाँति जैन-सम्प्रदाय में भी तन्त्र को बड़ी आस्था के साथ स्वीकार किया गया। कितने ही जैनाचार्यों ने तन्त्र-साहित्य भी रचा। जैन-सम्प्रदाय में तन्त्र-ग्रन्थों की रचना—ईसा की दूसरी शताब्दी से प्रारम्भ होकर नवीं शताब्दी तक तीव्र गति से होती रही। जिस प्रकार बौद्ध-तन्त्र में शाक्त-तन्त्र की तारा, दुर्गा, काली. चण्डी आदि को श्रद्धापूर्वक स्वीकार किया गया है, उसी प्रकार जैन-तन्त्र में भी चक्रेश्वरी, पद्मावती, अम्बिका जैसी देवियों के रूप में शाक्त-तन्त्र को मान्यता दी गयी। इतना ही नहीं, जैन-सम्प्रदाय में मन्त्र-यन्त्र को भी बहुत विस्तार-प्रचार प्राप्त हुआ था। अनेक जैन-तान्त्रिकों ने अद्भुत सिद्धियाँ भी प्राप्त करली थीं। सारांश यह कि किसी भी क्षेत्र में देखा जाय—तन्त्र-शास्त्र का गौरवपूर्ण स्थान गोचर होता है। सभी सम्प्रदायों में इसके ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

वैष्णव तन्त्र—यह समझना कि भारतीय तन्त्र-साहित्य केवल शैव-शाक्त, या बौद्ध-जैन-तन्त्र तक ही सीमित है, निरा भ्रम है। तन्त्र वास्तव में मन्त्र और यन्त्र का परिष्कृत-सरलीकृत और सहज-साध्य स्वरूप है, अतः थोड़े भेद से यह वैष्णवों में भी स्वीकृत है और इसकी कुछ क्रियाओं (मांस, मदिरा, मैथुन आदि) को त्यागकर उन्होंने भी सात्त्विक-सिद्धान्तों के आधार पर वैष्णव-तन्त्र की रचना की और वैष्णव-तन्त्र में अध्यात्म के श्रेष्ठ एवं सात्त्विक रूप का प्रतिपादन किया गया है। विष्णु के उपासक वैष्णव-सम्प्रदाय में हिंसा और अभिचार कर्म स्वीकृत नहीं है। वहाँ श्रद्धा, भक्ति, स्तवन, जप और मुक्ति को प्रमुखता दी गयी है। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि 'वैष्णव-तन्त्र' नाम का प्रचार अपेक्षा-कृत कम हुआ है।

वैष्णव-तन्त्र को व्यावहारिक रूप में 'संहिता' कहा गया है। शैव-तन्त्र को 'आगम' की संज्ञा दी गयी है और शाक्त-तन्त्र का 'तन्त्र' के नाम से प्रचलन हुआ है। किन्तु यह नाम-भेद केवल कुछ नियमों-सिद्धान्तों के आधार पर ही है, मूल-तत्त्व सबका एक है—मन्त्र-यन्त्र के संयुक्त रूप को पदार्थ-प्रभावित बनाकर उद्‌देश्य (आध्यात्मिक अथवा लौकिक) की पूर्त्ति करना।

'आगम' शब्द बहुअर्थी है, इसलिए कहीं-कहीं इसके प्रयोग से भ्रम हो जाता है। सामान्यतः इसको पवित्र ग्रन्थ, वेद-उक्ति, आर्ष-वचन, आध्यात्मिक-साहित्य अथवा धार्मिक-ग्रन्थ के रूप में ही लेना चाहिए।

वैष्णव-तन्त्र के ग्रन्थ :

वैष्णव-तन्त्र में सामान्य षट्कर्मों को वरीयता न देकर, धर्म, दर्शन, वर्णाश्रम, योग-साधना और यन्त्र-मन्त्र को प्रमुखता से प्रतिपादित किया गया है। इन विषयों में वैष्णव-तन्त्र के अन्तर्गत ये ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं—ईश्वर-संहिता, पौष्कर-संहिता, ज्ञानामृत-संहिता (प्रपञ्चरात्र) आदि।

शैव-तन्त्र के ग्रन्थ :

शैव-तन्त्र में विपुल साहित्य का सृजन हुआ था। शिव के विभिन्न नाम-रूपों के आधार पर कितने ही भेद-प्रभेद किये गये, यथा—सिद्धान्त-शैव, वीर-शैव, जङ्गम-शैव, पाशुपत, रौद्र, वाम, कापालिक, भैरव आदि। इन पर रचित तन्त्र-ग्रन्थों में सात्त्विक-आगम (तन्त्र-ग्रन्थ) दस हैं, और रौद्रागमों की संख्या 18 तथा भैरवागमों की संख्याया 64 है। शैव-तन्त्र

में रुद्रयामल, शारदा-तिलक, वामकेश्वर-तन्त्र, ताण्डव-तन्त्र आदि बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

जैन-तन्त्र के ग्रन्थ :

जैन-सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा प्रणीत ये ग्रन्थ तन्त्र-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं—रहस्य कल्पद्रुम, सिद्धशान्ति कल्प, विद्यानुशासन, चन्द्र-प्रज्ञप्ति, विद्याकल्प, वर्धमान कल्प, विजय पहुत कल्प, ह्रींकार कल्प, नवकार मन्त्र कल्प, लोगस्स कल्प, नवग्रह स्तोत्र, ज्वालामालिनी कल्प, तन्त्र लीलावती, भक्तामर स्तोत्र, स्वयंभू स्तोत्र, विशापहर स्तोत्र, निर्वाण-कालिका, उड्डामरेश्वर-तन्त्र इत्यादि। इनके अतिरिक्त आर्ष विद्यानुशासन, तन्त्र-प्रकाश, कोष्ठक-चिन्तामणि, पञ्च नमस्कृति, दीपक, ऋषिमण्डल (यन्त्र-प्रधान ग्रन्थ) भी बहुत प्रसिद्ध हैं। कक्षकुटी एक ऐसा विख्यात ग्रन्थ है, जिसमें तान्त्रिक चमत्कारों का विशाल संग्रह प्राप्त होता है।

इस सन्दर्भ में यह तथ्य स्मरणीय है कि इन ग्रन्थों में कुछ तो प्राप्त होते हैं, किन्तु अधिकांश अनुपलब्ध हैं। उनका जो विवरण प्राप्त ग्रन्थों में मिलता है, वही उनके पूर्वास्तित्त्व की प्रामाणिकता का आधार है।

बौद्ध-तन्त्र के ग्रन्थ :

तन्त्र को बौद्ध सम्प्रदाय में सर्वाधिक आश्रय मिला था। फलतः वहाँ भी अनेक तन्त्र-ग्रन्थ रचे गये। यथा—मंजुश्री मूल कल्प, गुह्य-समाज तन्त्र, ज्ञान-सिद्धि, गुह्य-सिद्धि, अद्वैत-सिद्धि, कालचक्र-तन्त्र, श्री सम्पुट मूल तन्त्र, पञ्चक्रमसेकोद्‌देश्य आदि।

शाक्त-तन्त्र के ग्रन्थ :

कारण चाहे जो भी रहा हो, पर यह अकाट्य-सत्य है कि तन्त्र-शास्त्र का सर्वाधिक विकास शाक्त-सम्प्रदाय में हुआ था। अध्यात्म के क्षेत्र में शिव और शक्ति की प्रधानता है, और चूँकि समस्त तन्त्र शिव-पार्वती सम्वाद से ही उद्‌भूत हैं, अतः यह स्वाभाविक था कि शक्ति की उपासना विशेष रूप से की जाती। एक कारण और भी माना जाता है--देवी (शक्ति) ने समय-समय पर अनेक रूपाकार धारण करके लीलाएं की हैं; अतः उन सभी रूपाकारों को उपास्य मानकर उनके सम्वन्ध में साहित्य-सृजन किया गया।

शाक्त-तन्त्र की संख्या आश्चर्यजनक है। विषय-भेद की दृष्टि से सम्पूर्ण शाक्त-साहित्य को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक वर्ग को 'क्रान्त' की संज्ञा दी गयी है। इस प्रकार शाक्त-तन्त्र साहित्य तीन खण्डों (क्रान्तों) में विभाजित है। ये खण्ड इस प्रकार हैं—1. रथक्रान्त, 2. विष्णुक्रान्त, 3. अश्वक्रान्त। इन तीनों खण्डों में अनेकानेक ग्रन्थ हैं, जिनमें तन्त्र-साधना के अन्तर्गत आने वाली विभिन्न पूजा-पद्धतियाँ, स्तुतियाँ, प्रयोग, नियम, निषेध आदि वर्णित हैं। पाठकों की जानकारी के लिए शाक्त-तन्त्र के ग्रन्थों की नामावली भी प्रस्तुत है। प्रत्येक ग्रन्थ को तन्त्र कहा गया है, किन्तु सुविधा के लिए हम केवल उसके मूल नाम का उल्लेख कर रहे हैं, उसके आगे 'तन्त्र' शब्द जोड़कर पूरा नाम समझना चाहिए, जैसे देवडामरु का अर्थ होगा—देवडामरु तन्त्र तथा प्रपञ्चसार का अर्थ—प्रपञ्चसार तन्त्र।

रथक्रान्त वर्ग के ग्रन्थ :

1. चिन्मय, 2. मातृकोदय, 3. महानीला, 4. देवडामरु, 5. वासुदेव-रहस्य, 6. छायानिल, 7. गरुड़, 8. पुरश्चरण चन्द्रिका, 9. पिच्छला, 10. नगर-दीप, 11. योगसार, 12. यक्षिणी, 13. आकाश-भैरव, 14. सारस, 15. कङ्काल मालिनी, 16. सरस्वती, 17. शक्ति-कागम सर्वस्व, 18. चीनासार, 19. शोध, 20. कुल सद्भाव, 21. काल-भैरव, 22. भूत-भैरव, 23. मत्स्य-सूक्त, 24. हंस-महेश्वर, 25. महा निर्वाण, 26. विजय चिन्तामणि, 27. बृहद् गौतमीय, 28. बृहद् योनि, 29. वर्ण-विलास, 30. पुरश्चरण सोल्लास, 31. प्रपञ्चसार, 32. नव-स्तेश्वर, 33. दक्षिणामूर्त्ति, 34. स्वरोदय, 35. राजराजेश्वरी, 36. इन्द्र-जाल, 37. कालोत्तम, 38. शारदा, 39. सम्मोहिनी, 40. षडाम्नाय, 41. महा-लक्ष्मी, 42. सिद्धितद्धरी, 43. उड्डामरेश्वर, 44. महिष-मर्दिनी, 45. मेरु, 46. भूतडामर, 47. एकजटा, 48. वर्णोद्धृति, 49. ब्रह्मज्ञान, 50. बालाविलास, 51. पञ्चदशी, 52. परमेश्वर, 53. नागर्जुन, 54. योग स्वरोदय, 55. ज्ञान-भैरव, 56. रेवती, 57. कृकलास दीपक, 58. यक्षधर्म, 59. शक्ति-सङ्गम, 60. अचारसार, 61. करलालभैरव, 62. कैवल्य, 63. कीर्त्तिसार, 64. महाकाल।

विष्णुक्रान्त वर्ग के ग्रन्थ :

1. सिद्धेश्वर, 2. नित्त्या, 3. ज्ञानार्णव, 4. कुलार्णव 5. देव्यागम,

6. फेत्कारी, 7. सिद्धि यामल, 8. श्री क्रम, 9. सिद्धि सारस्वत, 10. सिद्धिसार, 11. गणेश विमर्शिणी, 12. योगिनी, 13. चामुण्डा, 14. शिवागम, 15. निरुत्तर, 16. हंसमहेश्वर, 17. गन्धर्व, 18. देवी कल्प, 19. स्वतन्त्र, 20. निबन्ध, 21. ललिता, 22. तन्त्रराज, 23. रुद्र-यामल, 24. मालिनी, 25. सुकुमुदिनी, 26. गवाक्ष, 27. समयाचार, 28. मालिनी विजय, 29. भैरव, 30. योगिनी-हृदय, 31 तन्त्रान्तर, 32. योनि, 33. भाव चूड़ामणि, 34. कुल चूड़ामणि, 35. कामधेनु, 36. मुण्डमाला, 37. यामल, 38. कुल प्रकाशक, 39. महाकाल, 40. क्रियासार, 41. कुब्जिका, 42. सम्मोहन, 43. माया, 44. राधा, 45. काली, 46. वृहत् श्री क्रम, 47. नील, 48. विशुद्धेश्वर, 49. उत्तरा, 50. भैरवी, 51. मत्स्य-सूक्ति, 52. सनत्कुमार, 53. वाराही, 54. नवरत्नेश्वर, 55. देवप्रकाश, 56. ब्रह्मयामल, 57. कामाख्य, 58. विश्वसार, 59. कुमारी भूतडामर, 60. कुलोड्डोश, 61. कुलामृत, 62. वाणी-विलास, 63. यन्त्रचिन्तामणि ।

अश्वक्रान्त वर्ग के ग्रन्थ :

1. वृहद्सार, 2. गुप्तदीक्षा, 3. क्रियासार, 4. वर्णसार, 5. तत्त्वसार, 6. भूत-शुद्धि, 7. शिवा, 8. जय राधामाधव, 9. लीलावती, 10. यन्त्र चूड़ामणि, 11. योगार्णव, 12. महा निरुत्तर, 13. गोप-लीलामृत, 14. तीक्ष्ण, 15. चूड़ामणि, 16. समीकरण, 17. कामिनी, 18. वृहद् मोक्ष, 19. सम्बर, 20. महायोगिनी, 21. मोक्ष, 22. धर्मक तन्त्र, 23. सारात्सार, 24. सिद्ध-तन्त्र, 25. बृहद् तोडला, 26. धूमावती, 27. कुरञ्ज, 28. भुवनेश्वरी, 29. मन्त्र चिन्तामणि, 30. गायत्री, 31. कामरत्न, 32. चीन, 33. गोप्य, 34. महावीर, 35. भूतलिपि, 36. मोहन, 37. महामोक्ष, 38. महामालिनी, 39. शिवार्चन, 40. बिन्दु-तन्त्र, 41. योग-तन्त्र, 42. शिव-तन्त्र, 43. बृहद् कङ्कालिनी, 44. गुप्तसार, 45. विशुद्धेश्वर, 46. उज्जासक, 47. वृहद् चीन, 48. विद्युल्लता, 49. भैरण्डा, 50. भूतेश्वर, 51. ब्रह्मानन्द, 52. मङ्गला, 53. गुरु अर्चन, 54. कामकेशर, 55. मोहिनी, 56. गोपी-तन्त्र, 57. वृहद् मालिनी, 58. शूलिनी, 59. बृहत् योगिनी, 60. तत्त्व-चित्तामणि, 61. गौरी-तन्त्र, 62. कालतन्त्र, 63. वृहद् निर्वाण, 64. गुप्त-तन्त्र ।

कुछ विशिष्ट शब्द :

ज्ञान के सभी क्षेत्रों में कुछ विशिष्ट शब्दों की रचना की गयी है, जो एक विशेष अर्थ के लिए प्रयुक्त होते हैं। इन्हें पारिभाषिक शब्द कहा जाता है। इनके सम्यक्-बोध के अभाव में विषय का प्रतिपादन और मनन सम्भव नहीं होता। आज के विकसित युग में भी लगभग सभी क्षेत्रों में सम्बन्धित विषय की एक विशिष्ट शब्दावली प्रचलित है। प्रशासन, व्यवसाय, पत्रकारिता, यान्त्रिकी, चिकित्सा, कृषि और शिल्प की भाँति अध्यात्म के क्षेत्र में भी हम कुछ विशिष्ट शब्दों का प्रयोग देखते हैं। जैसे—पञ्चगव्य, अष्टगन्ध, नैवेद्य आदि। पूजा-पाठ, जप-तप, ध्यान-धारणा, व्रत-उपासना और मन्त्र-तन्त्र की साधना में, ऐसे शब्दों का अर्थ समझे बिना भ्रम और त्रुटि की यह स्थिति कभी-कभी साधना को तो खण्डित कर ही देती है, साधक के स्वास्थ्य और जीवन के लिए भयङ्कर सङ्कट भी आ खड़ा होता है। अतः सम्बन्धित विषय के पारिभाषिक शब्दों (विशिष्ट शब्दावली) का परिचय अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिए। इसके लिए अध्ययन और सत्सङ्ग ये दो प्रमुख साधन हैं। पाठकों की सुविधा के लिए मन्त्र-तन्त्र जैसे आध्यात्मिक (पूजा-साधना) विषय से सम्बद्ध कुछ अति प्रचलित शब्द तथा उनके अर्थ यहाँ प्रस्तुत हैं :—

अद्वैत—जड़-चेतन अथवा जीव-ब्रह्म को परस्पर अभिन्न (भेद-रहित) मानना, जगत का मूल तत्त्व एक समझना।

अध्यात्म—आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान।

अनहद— हठ-योग में हृदय-चक्र, योग-साधना में अपने आप उत्पन्न एक ध्वनि-विशेष सुनाई पड़ना, (अनहद-नाद) ओंकार की प्राकृतिक गूँज।

आसन—किसी विशेष स्थिति में बैठना। आसन्दी, वह आधार अथवा बिछाने की वस्तु, जिस पर बैठकर पूजा-पाठ, जप-साधना की जाय।

अष्टगन्ध—आठ विशिष्ट वस्तुओं का मिश्रण, जो पूजा में लेपन हेतु प्रयुक्त होता है। ग्रन्थ-भेद से, इसमें सम्मिलित आठों वस्तुएँ इस प्रकार मानी गयी हैं—

- सफेद चन्दन, लाल चन्दन, केसर, कस्तूरी, सिन्दूर, गोरोचन, अगर और तगर।

● सफेद तथा लाल चन्दन, अगर, तगर, कस्तूरी, कपूर, केसर, हिंगुल।

● देवी-पूजा का अष्टगन्ध इस प्रकार स्वीकृत है—
हल्दी, कुमकुम, लाल चन्दन, शिलाजीत, जटामासी, अगर, कपूर, गोरोचन।

उपांशु—बहुत धीमे स्वर में (लगभग मौन जैसे), जो केवल स्वयं को ही सुनाई पड़े, जप करना।

उच्छिष्ट—जूठन, जूठा।

यक्ष-कर्दम—कपूर, कस्तूरी, कालीमिर्च, कङ्कोल, केसर, चन्दन, हिंगुल, गोरोचन, अम्बर, स्वर्ण-पत्र, रक्ताञ्जन, अगर।

पञ्चाङ्ग—किसी वनस्पति के पाँचों अङ्ग—जड़, छाल, पत्ती, फूल, फल।

पञ्चामृत—दूध, घी, दही, शक्कर (मिश्री), मधु का मिश्रण।

पञ्चोपचार—गन्ध (चन्दन), पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य द्वारा पूजन।

पञ्चधातु—सोना, चाँदी, जस्ता, ताँबा, लोहा।

पञ्चगव्य—गाय का गोबर, गोमूत्र, गो-दुग्ध, गो-घृत, गो-दधि।

पञ्चाक्षर—पाँच अक्षरों से निर्मित।

त्राटक—टकटकी लगाकर देखना।

त्रिधातु—सोना, चाँदी, लोहा का मिश्रण।

त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु, शिव।

त्रिगुण—सत, रज, तम।

त्रिगन्ध—सिन्दूर, हल्दी, कुमकुम का मिश्रण (गन्धमय)।

दस महाविद्याएं—काली, तारा, षोड़शी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, धूमावती, कमला, बगलामुखी, मातङ्गी त्रिपुर-भैरवी।

दशोपचार पूजा—पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य।

दशांश—दशवाँ भाग।

नैवेद्य—इष्टदेवता को पूजनोपरान्त भोग-प्रसाद के रूप में अर्पित की जाने वाली खाद्य-पेय सामग्री, यथा—फल, खीर, मेवे, मिष्टान्न आदि।

निरन्तर—अखण्ड रूप में, लगातार, बिना क्रम टूटे हुए।

निमन्त्रण—आह्वान, बुलाना, न्यौता देना। साधना-प्रयोग के पूर्व आह्वान करना।

नवग्रह—सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु।

नवरत्न—माणिक्य, मोती, मूँगा, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम, गोमेद, वैदूर्य (लहसुनिया)।

नवनिधि—कुबेर, यक्षपति की नौ निधियाँ—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, खर्व।

नवधातु—सोना, चाँदी, लोहा, सीसा, ताँबा, राँगा, पारा, काँसा, कान्तलौह का मिश्रण।

नव-पत्र—नौ प्रकार की पत्तियों का सङ्कलन—केला, बेल (बिल्व), अशोक, हल्दी, अनार, धान, मानक, अरुई (घुइयाँ), जयन्ती (वैजयन्ती) के पत्ते।

नवदुर्गा—शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्त्यायनी, कालरात्रि, महागौरी, सिद्धिदात्री।

मुद्रा--साधना के समय इष्ट की अभ्यर्थना में दोनों हाथों को एक विशेष स्थिति में करना।

मौली—लाल धागा बाँधना (प्राय: वनस्पति-तन्त्र में प्रयुक्त)।

बीज—मन्त्रों का एकाक्षरी स्वरूप, उत्पत्ति अथवा सृजन का मूल विन्दु।

षोडशोपचार—(सोलह उपचारों सहित पूजा करने की विधि)—पाद्य, अर्घ्य, आचमन स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, दक्षिणा, स्तोत्र, तर्पण, नमस्कार।

पंच-तत्त्व—जल, वायु, अग्नि, मिट्टी, आकाश।

पंच-मकार—मांस, मदिरा, मुद्रा, मैथुन, मत्स्य।

पंचकोष—अन्नमय, प्राणमय (चैतन्यमय), मनोमय, ज्ञानमय, आनन्दमय—ये पाँच कोष समस्त प्राणियों के शरीर में निहित हैं।

षट्चक्र—मूलाधार (पृथ्वी तत्त्व का प्रतीक), स्वाधिष्ठान (जल तत्त्व का प्रतीक), मणिपुर (अग्नि-तत्त्व का स्वरूप), अनाहत (वायु-तत्त्व), विशुद्ध (आकाश-तत्त्व—महाशून्य), आज्ञा-चक्र (चेतना, चित्त, मन का प्रतीक)।

त्रिनाड़ी—इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्ना।

षट्वृत्तियाँ—वाणी, व्यापार, भूत, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी।

अशुद्धि-दोष—स्रोत दूषित (साधन-दोष), क्रिया दूषित (कार्य-दोष), भाव दूषित (भावना दोष)।

वाममार्ग—प्रचलित लोक-रीति (सात्त्विक-साधना) के विपरीत आचरण-व्यवहार।

सायुज्य—समायोजित हो जाना, किसी अन्य में घुल-मिलकर तदाकार हो जाना।

त्रिभाव—पशु-भाव, वीर-भाव, दिव्य-भाव। ऐसी धारणा है कि मानव-जीवन में काल-क्रम से यह तीनों भाव स्वत: उत्पन्न होते रहते हैं। यथा—जन्म से सोलह वर्ष (किशोर अवस्था) तक मानव में पशु-भाव, उसके बाद सत्रह से पचास वर्ष की अवस्था तक वीर-भाव और तत्पश्चात् अन्त तक दिव्य-भाव रहता है। वस्तुत: यह मनोवृत्ति और ज्ञान की परिपक्वता का क्रम है।

●

5

नियम और निषेध

नियम क्यों ?

संसार में, अखिल प्रकृति में जो कुछ भी होता है, प्रत्यक्ष या परोक्ष, किसी न किसी नियम के अन्तर्गत ही होता है। नियम से कार्य-विधि और उसकी परिणति निश्चित रहती है। वस्तुतः प्रकृति के अपने कुछ ऐसे नियम हैं, जिनके अन्तर्गत ही विश्व-ब्रह्माण्ड की समस्त स्थितियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। मानव ने जो सर्वाधिक विकसित मस्तिष्क का प्राणी है, अपनी चिन्तन तर्क-शक्ति से प्रकृति के कुछ सूत्र रूप-नियमों को समझ-परख कर उसकी विस्तृत व्याख्या की है और तदनुसार विभिन्न कर्मों के लिए अनेकानेक सिद्धान्त और नियम निर्धारित किये हैं।

उदाहरणार्थ—आग द्वारा ऊष्मा और प्रकाश की उत्पत्ति प्राकृतिक नियम है। इस सूत्र को अपने चिन्तन-मनन के आधार पर बुद्धिजीवियों ने प्रतिपादित किया कि आग से छू जाने वाली वस्तु जलने लगती है। विभिन्न वस्तुओं के संयोग अथवा संघर्ष से इतनी ऊष्मा उत्पन्न होती है कि आग पैदा हो जाती है। रुई, तृण, काष्ठ और तेल जैसे पदार्थों से आग का स्पर्श होते ही ये सब जलने लगते हैं और स्वयं आग बन जाते हैं। इसी प्रकार, पानी के स्पर्श से आग थमकर बुझ जाती हैं—(शीत का प्रभाव ऊष्मा-ताप को शान्त कर देता है), इस प्राकृतिक सूत्र को पकड़कर पानी द्वारा आग बुझाने का नियम बनाया गया।

इसी प्रकार योग, जप, तप, चिकित्सा तथा अन्य व्यवहारिक-क्षेत्रों में, महर्षियों ने अपने दीर्घकालीन अनुभव-अध्ययन के आधार पर अनेक प्रकार के नियम और निषेध बनाकर जन-सामान्य को उस विषय के अनुकूल-प्रतिकूल प्रभावों से परिचित कराया। नियमों के प्रभाव में सर्वत्र अनिश्चितता रहती। न तो कोई कार्य व्यवस्थित रूप में सम्पन्न होता, और न उसकी निश्चित परिणति ही होती। सब कुछ शरीर में

अनुमानित, शङ्का और द्वन्द्व के बीच झूलता रहता। कार्यसिद्धि, सुगमता और निश्चित परिणाम के लिए नियमों का महत्त्व सर्वोपरि है। अध्यात्म के क्षेत्र में तो नियमों का प्रतिबन्ध बहुत ही कठोर है। तनिक-सी चूक, शिथिलता अथवा प्रमाद से साधना में असफलता ही नहीं, भयङ्कर सङ्कट भी सामने आ खड़े होते हैं।

नियम-विरुद्ध साधना से अनर्थ :

जिस प्रकार स्वास्थ्य-विज्ञान का नियम है कि दूध में नमक, नीबू अथवा अन्य कोई क्षारीय-अम्लीय पदार्थ मिलाकर सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसे मिश्रण से दूध के मौलिक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं, और वह विषाक्त हो जाने से हानिकर हो जाता है। ठीक उसी प्रकार, साधना के क्षेत्र में भी अनेक प्रकार के नियम निर्धारित किये हैं। नियमानुकूल साधना निरापद और लाभप्रद रहती है, जब कि नियम-विरुद्ध साधना का परिणाम असफलताजनक और दुःखद होता है। इसलिए, नियमों की अनिवार्यता साधना के सभी क्षेत्रों समान रूप से स्वीकार की गयी है। मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, पूजा-पाठ, जप-तप और योग-यज्ञ सबमें साधक को नियमों के प्रति सजग रहना आवश्यक है। जान-बूझकर अथवा भ्रम-प्रमाद से, चाहे जैसे भी हो, नियमों की अवहेलना हानिकर होती है।

प्रत्येक प्रयोग, कार्य और व्यवहार का अपना एक विज्ञान (शास्त्र) होता है। उसमें सम्बन्धित विषय की विस्तृत व्याख्या प्राप्त होती है। कब, कहाँ, कौन से नियम, प्रयोग, प्रतिबन्ध और वर्जनाएं लागू होती हैं, उनका विवरण जानकर किये गये कार्य में त्रुटि की आशङ्का नहीं रहती। चाहे भौतिक-शास्त्र हो, चाहे रसायन, चाहे आयुर्वेद और चाहे आध्यात्मिक-विषय, नियमों की प्रतिबद्धता सर्वत्र मिलती है।

आधुनिक-विज्ञान के रेडियो, टेलीविजन, घड़ी, सिनेमा, एक्स-रे, रॉकेट, राडार या उपग्रह किसी भी आविष्कार को देखें, उसकी संरचना, प्रयोग और प्रभाव सब पूर्णतया नियमों पर ही आधारित हैं। नियम-विरुद्ध कोई तार एक सूत्र भी हट जाय, या कोई द्रव्य अपनी निश्चित मात्रा से कम या अधिक हो जाय, वह सारा आविष्कार व्यर्थ हो जाता है। संसार में जो कुछ भी हम देख रहे हैं—सृष्टि का कण-कण तक—नियमों से आबद्ध है। भले ही वे नियम प्रकृति द्वारा निर्धारित हों और

प्रकृति ही उसका पालन करती हो, तथापि उनमें कहीं तनिक-सा भी व्यतिक्रम होते ही भयङ्कर दुर्घटनाएं हो जाती हैं। कभी-कभी ऐसे कल्पनातीत दृश्य भी सामने आ जाते हैं कि बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी उनका रहस्य नहीं समझ पाते।

अध्यात्म और नियम :

अध्यात्म ब्रह्मज्ञान का क्षेत्र है। ईश्वर-चिन्तन इसका प्रमुख विषय है। इस चिन्तन की अनेक पद्धतियाँ हैं, और वे सब लक्ष्य अथवा उद्देश्य-भेद पर आधारित हैं। ईश्वर-चिन्तन के माध्यम से कुछ साधक मोक्ष की कामना करते हैं, कुछ ज्ञान, भक्ति अथवा वैराग्य के इच्छुक होते हैं। अधिकांश साधक धर्म-मार्ग पर चलते रहकर सांसारिक-सुख की लालसा से साधना-मार्ग को अपनाते हैं। किन्तु यह निश्चित है कि वे चाहे जिस उद्देश्य से आध्यात्मिक-साधना में प्रवृत्त हों, तत्सम्बन्धी नियमों का पालन करना उन्हें अनिवार्य होगा। इन नियमों में समागत और वस्तुगत दोनों प्रकार की सूक्ष्मता निहित होती है। साधना में समय और प्रयोज्य वस्तु सर्वाधिक प्रभावकारी तत्त्व होते हैं।

समयगत प्रभाव :

समय का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में, चाहे जैसे भी हो, पड़ता अवश्य है। यही कारण है कि प्राचीन महर्षियों के निर्देशानुसार हमारे यहाँ (भारतीय-संस्कृति के अनुयायियों में) मुहूर्त्त का विचार करके ही कोई कार्य आरम्भ किया जाता है। मुहूर्त्त-शोधन एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। यह बहुत जटिल, किन्तु वैसी ही प्रभावशाली भी है। निरन्तर बर्द्धमान भौतिकता और विदेशी संस्कृति के सम्पर्कजन्य प्रभाव ने हमारी आस्था, नियम-संयम और धैर्य को छिन्न कर दिया है। फलतः मुहूर्त्त जैसी व्यवस्था के प्रति हम उदासीन हो गये हैं। किन्तु भौतिक विज्ञान की कसौटी पर भी परखने से स्पष्ट होता है कि समय का प्रभाव अवश्य पड़ता है।

ज्योतिष-शास्त्र क्या है—समय का विज्ञान ही तो! एक-एक पल से लेकर मास, वर्ष और दशाब्दि-शताब्दि तक समय का विस्तृत विवेचन ज्योतिष-शास्त्र में उपलब्ध है। जिस प्रकार पदार्थों, जड़ी-बूटियों, वनस्पतियों की उत्पत्ति, प्रभाव-परिणति का विवेचन आयुर्वेद-शास्त्र से किया है, ठीक उसी प्रकार समय-शास्त्र (ज्योतिष) ने काल-विवेचन

के द्वारा अखिल सृष्टि की जीवनचर्या निर्धारित करदी। समय-विवेचन के अन्तर्गत उसे (समय को) प्रभावित करने वाले अन्य तत्त्वों-घटकों (वायु, बादल, प्रकाश, नक्षत्र, ग्रह आदि) के विषय में भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

समय की प्रभावानुभूति हम सभी को होती है, लेकिन हम उसके इतने अभ्यस्त और अन्तरङ्ग हो गये हैं कि उस प्रभाव के विषय में कभी चिन्तन-मनन नहीं करते। किन्तु ज्योषि-शास्त्र के प्रणेताओं ने गहन अध्ययन चिन्तन किया है, और तभी वे किसी निश्चित परिणाम परिवर्त्तन की घोषणा और सम्वन्धी-सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर सके हैं। एक की त्रुटि अथवा अपूर्णता को दूसरे नें सुधारा भी है। यह तो ज्ञान-क्षेत्र की सहज स्वाभाविक प्रक्रिया है। कवि-मार्त्तण्ड कालिदास ने इस प्रक्रिया को बहुत ही सरस रूप में उपमित करते हुए कहा है कि व्यक्ति का ज्ञान धीरे-धीरे (क्रमशः) ही बढ़ता है—मनुष्य क्रमिक रूप में विज्ञतम हो जाता है। इस सम्बन्ध में उसका मूल छन्द इस प्रकार है—

कमलिनी मालिना दिवसात्मये, शशिकला विकला क्षणदा क्षये।
इति विधि विदधे रमणीमुखम्, भवति विज्ञतमः क्रमशो जनाः॥

शिक्षित-जनों की बात छोड़ दी जाय, तो निपट गँवार और मूर्ख व्यक्ति भी समाज की प्रभावाभूति का साक्ष्य दे सकता है। पौष-माघ के प्रभात की ठिठुरन, वैशाख-जेठ की दुपहरी का उत्ताप, सावन-भादों की मेघ-गर्जना, बसन्ती बयार, पुरवैया के झोंके, लू, और माघ की सनसनाती रातें, व्यक्ति को सर्दी, गर्मी, ठिठुरन, बेचैनी, उत्साह, उत्तेजना और टूटन या निष्क्रियता से प्रसारित कर देती है। क्यों? यह सब समय का प्रभाव है, जो प्रकृति के अङ्गों द्वारा परिवर्त्तित होता रहता है।

समय-जन्य शीत, ताप, और आर्द्रता का प्रभाव हमारे, मन, मस्तिष्क और शरीर पर अवश्य पड़ता है। सर्दी में हम ठिठुरते हैं, गर्मी में ओज अनुभव होता है। अधिक गर्मी बेचैनी उत्पन्न करती है। आर्द्रता में गर्मी और भीगापन एक साथ अनुभव होने से भी बेचैनी जान पड़ती है। सारांश यह है कि समय के अनुसार तत्कालीन प्राकृतिक स्थिति और पर्यावरण हमारी शारीरिक-संरचना और वौद्धिक विकास को प्रभावित करता है। विभिन्न देशों के मानवों की मुखाकृति में अन्तर का कारण—भौगोलिक-तत्त्व ही होते हैं। जलवायु, पर्यायवरण, क्षैतिज-

स्थितियाँ आदि यह सब भौगोलिक-तत्त्वों के घटक हैं, जो मानव की संरचना, रूप-रेखा और प्रकृति को निश्चित रूप से प्रभावित करते हैं ।

ज्योतिष-शास्त्र ने समय के सूक्ष्मतम काल-खण्डों की भी विशद विवेचना की है । एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक के समय को एक अहोरात्र मानकर उसे घड़ी-पलों में विभक्त किया गया है । सामान्य गणना के लिए समय की सबसे छोटी इकाई पल मानी गयी है । पल से घटी, घटी से प्रहर, प्रहर से दिन-रात, दिन-रात से सप्ताह, पक्ष और महीने की परिकल्पना की गयी । बारह महीनों की क्रमिक संयुक्त अवधि को वर्ष की संज्ञा दी गयी, और वर्षों के समूह को मानव की जीवन-अवधि कहा गया । प्रत्येक व्यक्ति की जीवन-अवधि समान नहीं होती । कोई पाँच वर्ष जीता है, कोई पचास, कोई अस्सी और कोई सौ या इससे भी अधिक वर्षों का जीवन पाता है । ज्योतिष-शास्त्र के कुछ ऐसे सारभूत सिद्धान्त हैं, जिनके द्वारा गणना करके ज्योतिर्विद-जन व्यक्ति की जीवनावधि उसके प्रत्येक कालखण्ड की घटनाएं, रूप, गुण, स्वभाव, प्रकृति, प्रवृत्ति और अज्ञात तथ्यों की भविष्य-वाणी कर देते हैं ।

वस्तुत: होता यह है कि ज्योतिष-शास्त्र ने समय की लघुतम इकाई में भी, ॠतु, महीना पक्ष, दिन, घटी, पल और उस समय ब्रह्माण्ड में ग्रहों की अवस्थिति, उनसे विकसित किरणों के प्रकाश आदि के प्रभाव की विस्तृत विवेचना की है । किसी बालक का जन्म होने पर, तत्कालीन ब्रह्माण्डीय-स्थिति के आधार पर सरता से बताया जा सकता है कि उस शिशु का रूप, गुण, स्वभाव और भावी-जीवन का घटना-क्रम कैसा होगा । आज का चरम-विकसित भौतिक-विज्ञानी, जो अन्तरिक्ष को मथकर ग्रहों में आबाद होने का सपना देख रहा है, ज्योतिष-शास्त्र की इस गणितीय-सूक्ष्मता और इसकी प्रभावशीलता से दिग्मूढ़ है । वह कल्पना भी नहीं कर पा रहा कि उस आदिम-युग में जिसे असभ्य और बर्बर-युग कहा जाता है, ऐसे मेधावी गणितज्ञों का प्रादुर्भाव कैसे हुआ, और उन्होंने किन साधनों के आधार पर ऐसी अलौकिक-सिद्धि प्राप्त की थी ।

मुहूर्त्त :

ज्योतिष-शास्त्र का आधार लेकर, समयगत प्रभावों की विवेचना करते हुए, आध्यात्मिक क्षेत्र में—तन्त्र-मन्त्र की सधिना में भी यह निश्चित

किया गया है कि किस समय कौन-सी साधना आरम्भ करना सफलतादायक होगा। आकाश में चन्द्रमा-सूर्य आदि ग्रहों की स्थिति से वातावण निरन्तर प्रभावित रहता है। जिस समय वायुमण्डल में जैसा प्रभाव होगा, साधना में भी वैसी ही परिणति दृष्टिगोचर होगी। इसलिए चन्द्र-राशि, लग्न, नक्षत्र, दिन, योग, और घटी-पल आदि का तारतम्य मिलाकर विभिन्न कर्मों के लिए अनुकूल-प्रतिकूल अवसरों (कालखण्डों) की सूची, आज से हजारों वर्ष पूर्व ही, भारतीय-मनीषियों ने वनादी थी। यात्रा, कृषि, विद्यारम्भ, भवन-निर्माण, यज्ञ, विवाह तथा अन्य माङ्गलिक-कार्यों के लिए उपयुक्त कालखण्डों का निर्धारण करके भारतीय ज्योतिष-मर्मज्ञों ने हमारे लिए विस्तृत राजमार्ग का निर्माण कर दिया था। आज भी हम उस मार्ग पर निर्द्वन्द-निरापद चले जा रहे हैं। उनके द्वारा संकेतित निषेध इस मार्ग की लाल बत्तियाँ हैं, जो हमें पग-पग पर सजग करती रहती हैं।

साधना के क्षेत्र में (वह तन्त्र, मन्त्र, जप, तप कुछ भी हो) भी ज्योतिषानुमोदित कालखण्डों का सर्वाधिक महत्त्व है। इन कालखण्डों को मुहूर्त्त कहते हैं। सभी मुहूर्त्त समान समयावधि के नहीं होते, कोई 1 मिनट का होता है, कोई 1 घण्टे का कोई दिनभर का। उस कालखण्ड में किया गया कार्य विशेष प्रभाव की सृष्टि करता है।

साधना के लिए मार्ग-दर्शक गुरु, स्थान और प्रयोज्य-वस्तुएं तो आवश्यक हैं ही, समय (मुहूर्त्त) की अनुकूलता भी अनिवार्य है। प्रतिकूल मुहूर्त्त अनिष्टकारी होता है। यह सच है कि आज की भागमभाग जिन्दगी में मुहूर्त्त की सूक्ष्मता व्यावहारिक नहीं रह गयी, तो भी उसका प्रभाव तो अक्षुण्ण है ही। अतः यथासम्भव साधना जैसे कार्यों में अवश्य ही उसका विचार कर लेना चाहिए।

आधुनिक-युग में भौतिक-विज्ञान ने बड़ी उन्नति की हैं। कल्पनातीत आविष्कारों ने मानव की दैनिकचर्या, जीवन-दर्शन, विचार-बिन्दु और आस्था को बहुत प्रभावित परिवर्त्तित किया हैं। वह प्रचीन मान्यताओं, नियमों, सिद्धान्तों और वैचारिक-पद्धतियों को नकारनें लगा है। किन्तु वास्तविकता यह है कि उसका तथा–कथित ज्ञान अधूरा है—एकाङ्गी। उसका प्रचण्ड बुद्धिवाद अहम्-ग्रस्त है। उसे भारत की प्राचीन संस्कृति-सभ्यता और विकास का तनिक भी बोध नहीं है।

आज के वैज्ञानिक नामधारी मनुपुत्र खेती और बागवानी के जिस क्षेत्र में नयी-नयी शोधों का ढिंढोरा पीटते हुए भी, उत्पादन के सम्बन्ध में कोई निश्चित विधि, सही सिद्धान्त अभी तक प्रतिपादित नहीं कर पाये हैं, उसी कृषि के सम्बन्ध में हजारों वर्ष पूर्व ही, वातानुकूलित प्रयोगशाला के नाम पर किसी निर्जन-वन की झोंपड़ी में बैठकर हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियों ने जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये थे, वे आज भी अकाट्य और महत्त्वपूर्ण हैं । कौनसा अनाज कब बोया और सींचा जाय, कौन-सा पौधा किस ऋतु में लगाया जाय, फसल की सुरक्षा-समृद्धि के लिए कब कौन उपाय करना चाहिए—यह सब उन्होंने ताड़पत्र या भोजपत्र पर पुस्तकाकार में प्रस्तुत कर दिया था । उन्हें समय की सूक्ष्मतम प्रभाव-शक्ति का ज्ञान था । तदनुसार उन्होंने प्रत्येक कार्य के लिए समय (मुहूर्त्त) निर्धारित कर दिया था ।

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है, मुहूर्त्त का अर्थ है—समय का वह भाग जो, ग्रहों नक्षत्रों की प्रकाश-किरणों से एक विशेष स्थिति में प्रभावित हो रहा हो । यह प्रभाव किसी कार्य-विशेष के लिए निश्चित रूप से अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता का तत्त्व अपने में समाहित रखता है । दूसरी बात यह भी है कि रश्मि-जन्य प्रभाव ब्रह्माण्ड में कुछ ऐसी प्रतिक्रिया उत्पन्न करता रहता है, जो मानव-शरीर, उसकी चेतना, बौद्धिक-क्षमता और सम्वेगों को प्रभावित करती रहती है । इस प्रकार अनुकूल मुहूर्त्त व्यक्ति को कार्य-सिद्धि का आधार प्रदान करता है । इसके विपरीत, प्रतिकूल मुहूर्त्त में किया गया कार्य अनेक विघ्नों-व्यवधानों के कारण सफल नहीं हो पाता । यहाँ तक कि कभी-कभी व्यक्ति के लिए सुरक्षा का, जीवन और स्वास्थ्य का सङ्कट उत्पन्न हो जाता है । इसीलिए प्रत्येक कार्य का प्रारम्भ मुहूर्त्त—(अनुकूल समय) के आधार पर करने का विधान किया गया है ।

गुरु अथवा मार्ग-दर्शन :

कोई भी प्राणी जन्मना रूप में बौद्धिक शक्ति और सांसारिक-ज्ञान से पूर्ण नहीं होता है । किसी न किसी के द्वारा वह ज्ञान, शिक्षा, निर्देश प्राप्त करता है । प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में सर्वत्र, प्रत्येक प्राणी के जीवन में मार्ग दर्शक अवश्य होता है । मनुष्य को, जो बौद्धिक रूप में सर्वाधिक क्षमता-सम्पन्न प्राणी है, उसे भी मार्ग-दर्शक का अवलम्ब लेना

पड़ता है। मानव की स्थिति अन्य प्राणियों से भिन्न और श्रेष्ठ है। उसमें वाक्, श्रवण, चिन्तन और अभिव्यक्ति की क्षमता अपेक्षाकृत अधिक होती है। तो भी वह मार्गदर्शक के अभाव में पूर्ण मनुष्य नहीं बन पाता। उसे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में, अनेक मार्ग-दर्शकों का अवलम्ब लेना पड़ता है। यही मार्गदर्शक 'गुरु' कहलाता है। मानव के प्रथम गुरु का पद उसकी माँ को दिया गया है। बच्चे को शैशव में ही वह अनेक प्रकार का ज्ञान देते हुए सांसारिक-व्यावहारिक विषयों से परिचित कराने लगती है। आगे चलकर शिक्षा, गृहस्थी और अध्यात्मक के क्षेत्र में भी गुरु का अवलम्ब व्यक्ति के लिए आवश्यक रहता है।

आध्यात्मिक गुरु :

ज्ञान-ध्यान, पूजा पाठ, जप-तप, धर्म-कर्म, दान-पुण्य, व्रत-उपवास और ऐसे ही हवन-यज्ञ आदि का परामर्श देने वाला मार्ग-दर्शक 'आध्यात्मिक-गुरु' कहलाता है। किसी भी विषय में गुरु की महिमा अपम्पार है। भले ही वह रूप-रेखा, व्यक्तित्व, प्रभाव-परिचय और अन्य भौतिक-गुणों से रहित हो, किन्तु यदि आध्यात्मिक-क्षेत्र में वह सम्पन्न और समर्थ है, तो ऐसा गुरु देवताओं द्वारा भी पूज्य पूज्य होता है। गुरु की प्रशंसा में बड़े-बड़े सिद्ध-सन्तों, विचारकों और साहित्यकारों ने हार्दिक-श्रद्धा व्यक्त की है। गुरु को ज्ञान-गुहा का प्रहरी बताया गया है। व्यक्तिगत श्रम और शोध जो से ज्ञान वर्षों में भी नहीं अर्जित किया जा सकता, वह एक सिद्ध-समर्थ गुरु की कृपा से क्षणमात्र में प्राप्त हो जाता है। हाँ, यह बात अलग है कि आज न तो वैसे समर्थ और ज्ञान-पारङ्गत गुरु सुलभ हैं, और न सात्त्विक विचारों वाले आस्था-श्रद्धावान निश्छल शिष्य ही हैं। चतुर्दिक स्वार्थ, चातुर्य, अहङ्कार और आडम्बर की धूल उड़ रही है। तो भी यह एक अकाट्य सत्य है कि कहीं न कहीं सद्गुरु और सद्-शिष्य आज भी मौजूद हैं। साथ ही, गुरु की महिमा, प्रभाव और अनिवार्यता आज भी उसी प्रकार समर्थ और अक्षुण्ण है, जैसे शताब्दियों पूर्व थी।

अध्यात्म के क्षेत्र में, योग्य गुरु की खोज कर पाना, आज के युग में दुःस्साध्य हो गया है। तो भी, नीचे कुछ संकेत दिये जा रहे हैं, जिनके आधार पर सामान्यतः आज भी श्रेष्ठ गुरु की प्राप्ति हो सकती है। गुरुपद के योग्य व्यक्ति में कुछ विशिष्ट गुणों का रहना आवश्यक रहता है। साथ

ही, उसे कुछ प्रमुख दोषों से मुक्त भी होना चाहिए। नीचे योग्य और त्याज्य गुरु के लक्षण लिखे जा रहे हैं।

श्रेष्ठ गुरु के लक्षण :

आज वह प्राचीन काल का सात्त्विकता और शान्तिपूर्ण वातावरण नहीं रह गया। इस कारण भौतिकता की आँधी में बड़े-बड़े ज्ञानी भी उड़ते जा रहे हैं। तो भी आस्थावान-जन यदि अध्यात्म-क्षेत्र में प्रविष्ट होना चाहते हैं, तो उन्हें उचित होगा कि निम्न बिन्दुओं के आधार पर किसी योग्य व्यक्ति को अपना गुरु मनोनीत करें। यह आवश्यक नहीं है कि वह मनोनीत किया जाने वाला व्यक्ति साधु, सन्त, वनवासी, गृहत्यागी अथवा कोई बाबा ही हो। नहीं, कोई गृहस्थ और सामान्य व्यक्ति भी इस पद के लिए उपयुक्त हो सकता है। प्रतिबन्ध यही है कि वह निर्धारित गुणों से सम्पन्न हो।

● शरीर से दुर्बल भले ही हो, किन्तु उसका स्वस्थ होना आवश्यक है। रुग्ण व्यक्ति की मानसिकता भी कहीं न कहीं रुग्ण-शिथिल और विकृत होती है।

● उसके आचरण में कहीं कलङ्क न हो। सात्त्विक विचारों वाला, सन्तोषी, शान्त, निश्छल, आस्तिक और मृदुभाषी व्यक्ति गुरुपद के लिए उपयुक्त होता है।

● कुलीनता का भी अपना एक जन्मजात और वंशानुगत प्रभाव है। अतः कुलीन व्यक्ति को वरीयता देनी चाहिए। किन्तु कुलीनता के साथ-साथ उसके वर्त्तमान आचरण और सामाजिक-सम्मान को भी देखना आवश्यक है। कारण कि आज कुलीनता से मण्डित व्यक्ति भी दुर्गुणों से ग्रस्त पाये जाते हैं।

● चारित्रिक दृष्टि से सम्मानित हो।

● छल-छद्म और लोभ-अहङ्कार से मुक्त हो।

● स्वभाव में दया, परोपकार, क्षमाशीलता और सरलता हो।

● सामाजिक-राजनीतिक दलबन्दी से मुक्त हो।

● नियमित रूप से साधना, पूजन, चिन्तन करता हो।

● किसी अन्य सम्प्रदाय या धर्म का विरोधी न हो।

● स्वच्छ रहन-सहन, पवित्र आचरण, सांसारिक-मायामोह से निस्पृहता का होना भी आवश्यक है।

इसी प्रकार निन्दा-प्रशंसा से परे, स्वभाव से दयालु, उदार, सात्त्विक-विचारों और पवित्र जीवन-चर्या वाला व्यक्ति गुरुपद के योग्य माना गया है। सत्य का समर्थक, लोकसेवा-व्रती, आध्यात्मिक-ज्ञान से युक्त, विद्वान ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ गुरु होता है। किन्तु अन्य गुणों के अभाव में उसकी पात्रता घट जाती है। कोई व्यक्ति, भले ही वह कुलीन ब्राह्मण और विद्वान हो, परन्तु यदि वह सात्त्विकता, क्षमाशीलता और परहित-भावना से रहित है, उसका आचरण-व्यवहार निष्कलुष नहीं है, तो वह गुरुपद के लिए योग्य नहीं होता।

कुपात्र गुरु :

आज आडम्बर, प्रचार, छद्म, लोभ, पाखण्ड और कदाचार इतना अधिक बढ़ गया है कि अध्यात्म-जगत भी उससे बुरी तरह प्रभावित है। वेशभूषा की ओट में, बड़े-बड़े अपराधी व्यक्ति, समाज में प्रविष्ट होकर आस्थावान-जनों के साथ वंचना कर रहे हैं। आचरण के नाम पर वे नितान्त पतित हैं, ज्ञान के नाम पर शून्य हैं, श्रद्धा-भक्ति और साधना-तपस्या से उनका दूर का भी नाता नहीं है, लेकिन अपने आडम्बर, षड़-यन्त्र और वाग्जाल के द्वारा वे आस्थावान-जनों को मीठा विष देकर खुले-आम लूट रहे हैं। मैं कितने ही ऐसे ज्योतिषी, मान्त्रिक, बाबा, आचार्य और पण्डित-जनों को देखता-जानता हूँ, जो लम्बे-चौड़े साइनबोर्ड लगा-कर और पत्रों में विज्ञापन देकर, सामान्य जनता को ठगते रहते हैं। मेरे नगर (कानपुर) में ही ऐसे कई महानुभाव हैं, जो साधना-ज्ञान के क्षेत्र में सर्वथा शून्य हैं, तिकड़म, षड़यन्त्र, वाग्जाल और दुराचरण के लिए कभी प्रसिद्ध हो चुके हैं, स्थानीय लोगों में प्रतिदिन निन्दा के पात्र बनते हैं, किन्तु अपने प्रचार-तन्त्र (विज्ञापन, किराये के चाटुकारों, लोभी पत्रकारों) के द्वारा बाहर दूसरे प्रदेशों में जाकर किसी होटल में 4-6 दिन ठहरते हैं, और कुछ मोटे आसामियों को शिष्य-भक्त बनाकर, दक्षिणा रूप में अच्छी-खासी रकम झटक लाते हैं। बाद में, वे शिष्य उन्हें गालियाँ लिखकर भेजते हैं, ठगी के आरोप में मुकदमे का नोटिस देते हैं। इस तरह, आज कुपात्र गुरुओं ने अध्यात्म का मानसरोवर इतना पङ्किल और दूषित कर

दिया है कि अध्यात्म की सत्यता और उपयोगिता पर लोग कभी-कभी शङ्कित हो उठते हैं।

अस्तु, ज्ञान, भक्ति, साधना अथवा अन्य किसी उद्देश्य से अध्यात्म-क्षेत्र में प्रविष्ट होने वाले जनों के लिए आवश्यक और उपयोगी होगा कि वे गुरु की खोज में इस बात का ध्यान रखें कि उस व्यक्ति में गुरुपद की पात्रता है, या नहीं ? गुरु के लिए अपेक्षित गुणों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, यहाँ कुछ ऐसे संकेत दिये जा रहे हैं, जो गुरुपद के लिए त्याज्य व्यक्ति की पहचान करा सकते हैं। निम्नाङ्कित लक्षणों को दोष माना गया है। ऐसे लक्षणों से युक्त व्यक्ति, भले ही वह विद्वान या कुलीन हो—श्रेष्ठ और सिद्धिदायक गुरु नहीं हो सकता।

● **वर्णदोष**—पीले अथवा श्वेत वर्ण का व्यक्ति अच्छा नहीं होता। पीतवर्ण पीलिया (पाण्डु-रोग) का लक्षण है। इसी प्रकार श्वेतवर्ण श्वेत कुष्ठ और रक्त-चर्म विकार का लक्षण है। ऐसे व्यक्ति का सम्पर्क वर्जित है।

● **विकलाङ्गता**—हाथ, पैर, आँख, नाक, कमर से छिन्न-विकृत मनुष्यों की मानसिकता भी विकलाङ्ग हो जाती है। उनकी विचार-शक्ति में स्थिरता और क्रम का अभाव रहता है। हीनता-ग्रन्थि से ग्रस्त रहने के कारण वे कहीं न कहीं बौद्धिक विकृति से भी आक्रान्त रहते हैं। अतः इस श्रेणी में आने वाले विकलाङ्ग व्यक्ति गुरुपद के योग्य नहीं होते।

● **आचरण-दोष**—कुलीन ब्राह्मण और सर्वाङ्ग स्वस्थ-सुन्दर होते हुए भी यदि कोई व्यक्ति निम्न प्रकार के आचरणगत दोषों से युक्त है, तो उसे भूलकर भी गुरु नहीं बनाना चाहिए—भले ही वह प्रकाण्ड-विद्वान क्यों न हो। आचरणगत दोषों में मुख्यतः ये मनोवृत्तियाँ और कार्य-व्यवहार गिने जाते हैं—

वैभव-विलास के प्रति आसक्ति, धन-सम्पत्ति का लोभ, पर-निन्दा, असत्य-भाषण, पाखण्ड, छल-छद्म, ईर्ष्या-द्वेष, परनारी-चिन्तन विषय-भोग के प्रति आतुरता, आत्म-प्रचार और यशोलिप्सा, गुरु-निन्दा, नास्तिकता, घृणित-चिन्तन, भक्ष्याभक्ष्य सेवन, अहङ्कार, पर-पीड़न, हिंसा-वृत्ति, पर-छिद्रान्वेषण, वैचारिक-अस्थिरता, व्यभिचार, पराये धन-जन का अपहरण, व्यर्थ-विवाद, रोग-ग्रस्तता, असंयम, दीर्घाहार, अपराधिक-कार्यों में रुचि, दुर्जन-सङ्गति और चोरी-तस्करी जैसे कार्यों में रुचि।

यह एक कड़वी सचाई है कि आज के बड़े-बड़े मठाधीश, बड़े-बड़े साइनबोर्ड लटकाने वाले और पत्र-पत्रिकाओं में येन-केन-प्रकारेण यशोगान के रूप में अपना प्रचार कराने वाले, वास्तव में गुरुपद की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। निकट सम्पर्क में रहने वाले व्यक्ति भली-भाँति जानते हैं कि उनका जीवन उपरोक्त अवगुणों में अधिकांश से ग्रस्त है। यह तो इस देश की मानसिकता है कि सामान्य जनता अपनी आस्था और सहज विश्वासी प्रकृति के कारण ऐसे बकासुरों की पूजा करने लगती है। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उपरोक्त वर्जनाओं से मुक्त और सर्वथा योग्य गुरु हैं ही नहीं। हैं, किन्तु इने-गिने ही— बहुत थोड़ी संख्या में। वे भी समाज से दूर—गिरि-गह्वरों और वनों में निवास करते हैं। आत्म-प्रचार, जन-सम्पर्क और माया-लोभ से विरत, ऐसे जन वेश-विन्यास अथवा व्यक्तित्व की दृष्टि से बहुत ही साधारण, बल्कि दरिद्र प्रतीत होते हैं। किन्तु उनकी ज्ञान-क्षमता, आध्यात्मिक-शक्ति, योग्यता और सिद्धि अद्भुत होती है। ऐसें सिद्ध-पुरुषों का दर्शन-सामीप्य पाना भी बड़े सौभाग्य की बात है। ऐसे गुरु को पाने वाला साधक कभी असफल नहीं होता।

दीक्षा और मुहूर्त :

भारतीय-संस्कृति में ज्ञान और गुरु का सम्बन्ध अविच्छिन्न और अति महत्त्वपूर्ण माना गया है। गुरु को ज्ञान का द्वारपाल कहा गया है। ज्ञान-गुहा में प्रवेश करके वहाँ की निधियाँ प्राप्त करने में गुरु का योगदान अपरिहार्य है। अत: चाहे जैसी साधना हो, अथवा जीवन के चाहे जिस क्षेत्र में प्रविष्ट होना हो, उसके अधिकारी और योग्य मर्मज्ञ से दीक्षा अवश्य ले लेनी चाहिए। केवल पुस्तकों में पढ़कर किसी साधना में प्रवृत्त हो जाना श्रेयष्कर नहीं होता। आस-पास के किसी भी योग्य और विषय के ज्ञाता सद्गृहस्थ, पण्डित-पुरोहित, साधु-सन्यासी अथवा सिद्ध-साधक को गुरु बनाया जा सकता है। गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान और परामर्श साधना में निश्चितरूपेण सहायक होता है।

गुरु से ज्ञान, दीक्षा, परामर्श आदि प्राप्त करने में मुहूर्त्त बहुत प्रभावी होता है। समय-कुसमय का विवेक किये बिना ही, जो लोग गुरु से कुछ पाने का प्रयास करते हैं, वे सफल-मनोरथ नहीं होते। मुहूर्त्त के सम्बन्ध में— जलवायु, आकाशीय ग्रह-स्थिति और नक्षत्रों के विकरण-प्रभाव के आधार पर मनीषियों ने विभिन्न सूत्र दिये हैं। इनके आधार

पर दीक्षा-प्राप्ति का अनुकूल समय सरलता से खोजा जा सकता है। वैसे किसी स्थानीय पण्डित-पुरोहित से पूछने से इस विषय पर समुचित परामर्श मिल जाता है। यहाँ, गुरु से दीक्षा अथवा निर्देश प्राप्त करने के लिए मुहूर्त्त-सम्बन्धी कुछ अति प्रभावी और आवश्यक तथ्य प्रस्तुत है।

महीना :

वर्ष के बारहों महीनों एक समान प्रभावी नहीं होते। उनमें अनुकूल-प्रतिकूल तत्त्वों का समावेश रहता है। इस दृष्टि से गुरु-दक्षिणा प्राप्ति हेतु भाद्रपद और पौष के महीने सर्वथा वर्जित हैं। मलमास (अधिक मास) भी त्याज्य है। केवल वैशाख, सावन, आश्विन और फाल्गुन के महीने शुभ होते हैं। विशेषज्ञों का कथन है कि इनमें भी क्वार-कार्तिक सर्वश्रेष्ठ, अगहन-फाल्गुन मध्यम और आषाढ़-सावन निम्न कोटि के महीने हैं।

पक्ष :

पाख या पक्ष का भी प्रभाव रहता है। कृष्ण पक्ष तामसिक-वृत्तियों का पोषक है, और शुक्ल पक्ष में सात्त्विकता की प्रबलता रहती है। अतः उद्‌देश्य-भेद से गुरु-दीक्षा (परामर्श आदि भी) प्राप्त करने के लिए पक्ष की कालावधि पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

मोक्ष, वैराग्य और आत्म-ज्ञान जैसे विषयों के लिए दीक्षा-प्राप्ति हेतु कृष्ण-पक्ष विशेष अनुकूल रहता है। इस पखवारे में सूर्य-शक्ति की प्रबलता रहती है, जो व्यक्ति को आत्मज्ञानी बनाने में विशेष सहायक होती है। शुक्लपक्ष में सूर्य का प्रभाव अपेक्षाकृत क्षीण और चन्द्रमा का प्रभाव अधिक रहता है। चन्द्रमा भौतिक-समृद्धि का प्रदाता है। अतः सांसारिक-सुख, वैभव, श्री-सम्पत्ति आदि के निमित्त की जाने वाली साधना हेतु शुक्लपक्ष में प्राप्त की गयी गुरु-दीक्षा विशेष रूप से अनुकूल प्रभाव देती है।

साधना के दो पक्ष हैं—आध्यात्मिक और लौकिक (सांसारिक) अतः आध्यात्मिक उपलब्धियों के निमित्त कृष्ण-पक्ष में, और सांसारिक (भौतिक) सुख-वैभव के निमित्त, ली गयी दीक्षा (गुरु का परामर्श एवं तदनुसार साधना) विशेष रूप से अनुकूल होती है।

वार :

मास और पक्ष की भाँति बार, तिथि, नक्षत्र और लग्न का भी प्रभाव पड़ता है। समय (कालखण्ड) की सूक्ष्मतम इकाई भी अपना महत्त्व रखती है। अतः साधक को चाहिए कि वह पूर्ण विवेक, गम्भीरता और आस्था के साथ कालखण्ड के नियमों का पालन करे। इस दृष्टि से दिन (वार) के विवेचन में महर्षियों का अनुभव है कि मङ्गलवार और शनिवार—ये दोनों दिन छोड़कर, शेष सभी अनुकूल है। अतः रविवार, सोमवार, बुधवार, बृहस्पितिवार अथवार अथवा शुक्रवार को ही गुरु की कृपा लेने का प्रयास करना चाहिए। इस विषय में स्वयं भी पचाङ्ग देखकर अनुकूल समय का निर्धारण किया जा सकता है।

तिथि :

पक्ष निर्णय के पश्चात् तिथि का निर्धारण करना चाहिए। इस निमित्त द्वितीया, पञ्चमी, दशमी, दशमी, त्रयोदशी और पूर्णिमा की तिथियाँ शुभ होती हैं।

नक्षत्र :

काल-खण्डों की व्याख्या में नक्षत्रों की अवधि को बहुत प्रभावी माना गया है। आध्यात्म के क्षेत्र में—हस्त, अश्विनी, रोहिणी, स्वाति, विशाखा, ज्येष्ठा, उत्तरा-फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा-भाद्रपद, श्रवण, आर्द्रा, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्र उत्तम माने गये हैं। अतः दीक्षा, परामर्श, साधना, प्रयोग आदि में निर्देशानुसार इन्हीं में से किसी नक्षत्र की समयावधि का उपयोग करना चाहिए। सर्वसम्मत मान्यता यह है कि पुष्य नक्षत्र का प्रभाव सर्वाधिक उत्तम और कल्याणकारी होता है। केवल विवाह-संस्कार को छोड़कर, और कोई भी कार्य पुष्य नक्षत्र में, बिना अन्य किसी नियम प्रतिबन्ध का विचार किये ही किया जा सकता है। जैसा कि प्रारम्भ में लिखा जा चुका है, मन्त्र-साधना के लिए—गुरु-पुष्य योग और तन्त्र-साधना के लिए—रवि-पुष्य योग को सर्वश्रेष्ठ और सशक्त मुहूर्त्त माना गया है।

लग्न :

लग्नों की संख्या 12 है, किन्तु वे सभी समान प्रभावी नहीं हैं। आध्यात्मिक-क्षेत्र में—मेष, कर्क, वृश्चिक, तुला, मकर और कुम्भ लग्नों को श्रेष्ठ माना गया हैं।

इस प्रकार दीक्षा (अभीष्ट कार्य के लिए गुरु-विद्वान का परामर्श) लेने में यदि उपरोक्त कालखण्डों के आधार पर किसी शुभ-मुहूर्त्त का उपभोग किया जाय, तो साधना में सफलता की पूर्ण सम्भावना बन जाती है ।

अपवाद :

उपरोक्त तिथियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे मुहूर्त्त भी हैं, जो सदा शुभ माने गये हैं । दीक्षा, परामर्श के लिए उनका उपयोग किया जा सकता है । यहाँ यह तथ्य ध्यान में रखने योग्य है कि अध्यात्म-सम्बन्धी समस्त आर्ष-ग्रन्थ एक विशिष्ट वैज्ञानिक-पद्धति का पोषण करते हैं । अतः उनमें वर्णित आध्यात्मिक-साधना का पूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए, उनमें निर्दिष्ट समस्त नियमों का पालन भी अनिवार्य है । दीक्षा, स्थान, उपादान, यन्त्र, कालावधि, हवन, व्रत, संयम आदि का जब तक पूर्ण नियम-निर्वाह नहीं किया जाता—फल की प्राप्ति नहीं हो सकती । आज के विलासिता और आडम्बर पूर्ण यान्त्रिक-युग में मानव की आस्था समाप्त हो गयी है । उसमें संयम और निष्ठा का अभाव है, इसलिए वह आध्यात्मिक-साधना से लाभान्वित नहीं हो पाता । और अन्ततः अपनी असफलता को, अपनी कुण्ठा को अध्यात्म की निन्दा में व्यक्त करता है—'तन्त्र-मन्त्र सब झूठे हैं—पाखण्ड हैं……..।'

अस्तु: दीक्षा-परामर्श प्राप्त करने के लिए—उपरोक्त समयावधि (मुहूर्त्त) के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट कालखण्ड ये भी है—

भादों की षष्ठी तिथि, कुआर की कृष्ण-त्रयोदशी, कार्तिक की शुक्ल नवमी, सावन की कृष्ण पञ्चमी—ये तिथियाँ स्वतः शुभ-प्रभावशाली और दैवी (सात्त्विक) गुणों से सम्पन्न हैं । अतएव इन तिथियों में प्राप्त की गयी दीक्षा, उपदेश, परामर्श साधक के लिए सदैव ही मङ्गलमय और सफलता-दायक होते हैं ।

मुहूर्त्त के आवश्यक अङ्गों—तिथि, वार, नक्षत्र आदि का उपरोक्त विवेचन मुख्यतः दीक्षा-परामर्श प्राप्त करने के सम्बन्ध में है । किन्तु इन्हीं में से अधिकांश मुहूर्त्त ऐसे भी हैं, जो साधना तथा अनुष्ठान आदि प्रारम्भ करने के लिए भी उपयुक्त होते हैं । वैसे यह निश्चित नहीं है कि ये सभी मुहूर्त्त समस्त साधनों के लिए अनुकूल होते हैं । ऐसी स्थिति में साधक को चाहिए कि वह किसी स्थानीय पण्डित-पुरोहित से, अभीष्ट

साधना प्रारम्भ करने के लिए समय पूछ ले। प्रायः उसका परामर्शदाता अथवा गुरु ही, उसे उचित मुहूर्त्त का निर्देश कर देता है। अधिकांश साधना में (वह तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र, जो भी हों) विधि-विवरण के साथ-साथ मुहूर्त्त का भी संकेत उपलब्ध रहता है।

यदि किसी व्यक्ति ने अध्यवसाय से, ग्रन्थों द्वारा पर्याप्त ज्ञान अर्जित कर रखा है, किन्तु उसे कोई योग्य गुरु नहीं मिल रहा, तो वह प्रणति और श्रद्धा के भाव से भगवान शिव अथवा माता जगदम्बा की शरण लेकर, उन्हें गुरु के रूप में मानते हुए, उन्हीं के स्मरण-स्तवन से साधना प्रारम्भ कर सकता है।

लग्न का महत्त्व :

भारतीय-ज्योतिष में 'लग्न' एक ऐसा कालखण्ड है, जिसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, प्रभावशाली और अपरिहार्य माना गया है। तिथि, वार, नक्षत्र आदि के साथ लग्न की अनुकूलता पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। तान्त्रिक-अनुष्ठानों में लग्न का प्रभाव इस प्रकार बताया गया है--

मेष—धन-धान्य दायक है।
वृष—साधक के लिए अनिष्टकर, विनाशक है।
मिथुन—सन्तान के लिए घातक है।
कर्क—समस्त प्रकार के सफलता-सिद्धि दायक है।
सिंह—बौद्धिक-शक्ति, ज्ञान-विवेक को नष्ट करने वाला है।
कन्या--धन-सम्पदा, अर्थ-वैभव देने वाला है।
तुला—समस्त प्रकार के सिद्धि-दायक है।
बृश्चिक--स्वर्ण-लाभ (धन-सम्पत्ति) दायक है।
धनु—मान प्रतिष्ठा और ख्याति को नष्ट करने वाला है।
मकर—पुण्य, सात्त्विकता और पवित्रता देने वाला है।
कुम्भ—धन-सम्पत्ति, वैभव-दायक है।
मीन—विघ्न, दुःख, क्लेश और सन्ताप-दायक है।

अतएव साधना-अनुष्ठान के पूर्व साधक को गुरु अथवा अन्य किसी योग्य व्यक्ति से मुहूर्त्त-सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। वैसे तो प्रायः सभी ग्रन्थों में सम्बन्धित-अनुष्ठान और प्रयोग के लिए उपयुक्त

मुहूर्त्त का संकेत रहता ही है, किन्तु यदि ऐसी सुविधा न हो तो—किसी से पूछ लेना ही श्रेयस्कर होता है ।

साधना और अनुष्ठान में जहाँ मुहूर्त्त, आसन, मालादि उपादानों के लिए एक नियम निर्धारित है, वहीं भोजन, शयन, चिन्तन और दिन-चर्या के लिए भी स्पष्ट आदेश प्राप्त होते हैं । भोजन हमारे शरीर के अवयवों को, रस-रक्तादि को तुरन्त प्रभावित करता है । अतः आध्यात्मिक-क्षेत्र में किसी भी प्रकार की साधना करने वाले व्यक्ति के लिए—गरिष्ठ, तामसिक, उत्तेजक और संयोग-विरुद्ध पदार्थों का सेवन वर्जित कर दिया गया है ।

6 | साधना, साधन और साधक

साधना के उद्‌देश्य :

पिछले पृष्ठों में दशकर्म (षट्कर्म) के प्रसङ्ग में व्यक्ति की आवश्यकताओं और उनकी पूर्त्ति के लिए की जाने वाली साधनाओं का संक्षिप्त-परिचय दिया गया है। उसी विषय को यहाँ प्रकारान्तर से थोड़े विस्तार के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है, ताकि साधकों को अपनी समस्याओं को समझने में सुविधा रहे, और वे अपने लिए तदनुकूल साधना-मार्ग (मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र) की खोज कर सकें।

सामान्यतः साधना के दो उद्‌देश्य होते हैं—आध्यात्मिक-उपलब्धि और भौतिक (लौकिक) उपलब्धि। आध्यात्मिक-उपलब्धि में—ज्ञान, भक्ति, ब्रह्म-दर्शन, मोक्ष-प्राप्ति, अपवर्ग आदि की गणना होती है। आज के युग में कोई विरला ही साधक इस उद्‌देश्य से साधना करता है, अन्यथा सबके चिन्तन और जप-तप का मूल-बिन्दु मात्र लौकिक-उपलब्धि ही होता है।

यद्यपि प्रत्येक साधक अपने लाभ के लिए साधना करता है, और यह भी निश्चित है कि एक का लाभ कहीं दूसरे के लिए हानिकर भी हो जाता है, तथापि विवेकी-जन अपने स्वार्थ की पूर्त्ति में भी लोक-मङ्गल का ध्यान रखते हैं। यह सात्त्विक-साधना है। पर-पीड़न के द्वारा स्वयं को सन्तुष्ट करना भारतीय-संस्कृति में श्रेयस्कर नहीं माना गया। अस्तु, आज भौतिक-दृष्टि से जिस समस्याओं के निवारण हेतु आध्यात्मिक-उपाय (मन्त्र-तन्त्र की साधना, पूजा-पाठ, जप-तप आदि) किये जाते हैं, सुबोधता के लिए उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

1. शारीरिक-क्लेश, 2. मानसिक-कष्ट, 3. आर्थिक-सङ्कट, 4. सामाजिक-कष्ट, 5. अभिशाप, 6. राज-कोप, 7. भौतिक-सङ्कट।

● **शारीरिक-क्लेश**—विभिन्न प्रकार के रोग तथा कायिक-व्याधियाँ जैसे—फोड़ा, फुन्सी, घाव, ज्वर, वात-पित्त-कफ-जनित उपद्रव।

- **मानसिक कष्ट**—कुण्ठा, भग्नाशा, प्रलाप, उन्मत्तता, विक्षेप, अनिद्रा, विस्मृति, भय और भ्रम आदि मनोविकार।

- **आर्थिक-सङ्कट**—ऋण-भार, असफलता, अभाव, धन-नाश, व्यवसाय में घाटा, चोरी डकैती, अग्निकाण्ड में सम्पत्ति-नाश आदि।

- **सामाजिक-सङ्कट**—विरोध, अवज्ञा, अपमान, बहिष्कार, षड़-यन्त्र, प्रभाव-क्षय, प्रतिष्ठा-नाश, विश्वास-घात, पदच्युति, निष्कासन आदि।

- **अभिशाप**—दुर्भाग्य, ग्रह-पीड़ा, अशुभ वस्तु का सम्पर्क, भूत-प्रेतादि की बाधा, तान्त्रिक-प्रयोग (अभिचार-कर्म) का दुष्प्रभाव, अशुभ वस्तु, पशु, प्राणी, स्थान अथवा द्रव्य के प्रभाव से उत्पन्न क्लेश।

- **राजकीय**—शोषण, अत्याचार, दण्ड, कारावास, निष्कासन, अन्याय, दुरभिसन्धि, षड़यन्त्र, पदावनति, बल-प्रयोग आदि।

- **भौतिक-कष्ट**—कार्य में विघ्न, अर्थ-हानि, श्रम की निष्फलता, अग्निकाण्ड, चौरी, दुर्घटना, कीट-प्रकोप, रोग-बीमारी, आक्रमण, लूट, विष-प्रभाव, हिंस्र-पशुओं का आक्रमण, यात्रा-सङ्कट, वाहन-दुर्घटना आदि।

मानव-जीवन अभावों और विसङ्गतियों का आगार है। पूर्णतया शान्ति औच सुख कहीं नहीं है, किसी को भी प्राप्त नहीं है। एक न एक कष्ट सभी को घेरे रहता है। व्यक्ति अपनी सामर्थ्य, विवेक, आस्था और स्थान-परिस्थति के अनुसार स्वयं को कष्ट-मुक्त करने का प्रयास करता है। तन, मन, धन लगाकर वह अपने ऊपर आई बाधा का निवारण करना चाहता है। इस प्रयत्न में वह कभी सफल होता है तो कभी असफल और निराश हो जाता है। सत्य यह है कि जब मनुष्य स्वयं के ओज-तेज और पौरुष के द्वारा अभीष्ट की प्राप्ति नहीं कर पाता, तब या तो यह कुण्ठित, अविश्वासी, विद्रोही और नास्तिक हो जाता है, या फिर अहं-मुक्त होकर परम आस्था और श्रद्धा-भक्ति के साथ शान्त मन से अध्यात्म की शरण लेता है। ऐसी स्थिति में पूजा-पाठ, जप-तप और तन्त्र-मन्त्र के द्वारा वह स्वयं को सुखी-सन्तुष्ट बनाने का प्रयास करता है। और यह भी एक आश्चर्यजनक सत्य है कि ऐसे प्रयत्नों में अधिकांश जन सफलता भी प्राप्त करते हैं।

प्रमुख प्रयोजनीय वस्तुएं :

प्रत्येक पूजा-पाठ और तन्त्र-मन्त्र की साधना में कुछ विशिष्ट वस्तुएं प्रयुक्त होती हैं। उनका प्रयोग देवता, स्थान, पात्र और साधना से निकट सम्बन्ध जोड़ने के लिए होता है। इसी आकार पर उनसे साधना का परिणाम प्रभावित होता है। किन्तु कुछ ऐसी वस्तुएं भी हैं, जिनका सामान्यत: सभी प्रकार की साधनाओं में प्रयोग होता है। यहाँ ऐसी कुछ वस्तुओं का विवरण प्रसङ्ग-पूर्त्ति की दृष्टि से आवश्यक है।

चन्दन—

मूर्त्तियों की पूजा करने, उनका शृङ्गार करने की भावना से चन्दन का प्रयोग (लेप या बिन्दी के रूप में) किया जाता है। माथे पर एक विशेष चिह्न के रूप में लगाया गया चन्दन 'तिलक' कहलाता है। चन्दन के रूप में विभिन्न वस्तुएं प्रयुक्त होती हैं, वे सब प्राय: 'तिलक' के उपयोग में आती हैं। 'चन्दन' अपने शाब्दिक-अर्थ के अनुसार, वस्तुत: एक काष्ठ विशेष होता है। यह दो प्रकार का पाया जाता है—लाल और सफेद। लाल चन्दन का प्रयोग गणेशजी और देवी (दुर्गा, लक्ष्मी, काली आदि) जी की पूजा में होता है। इसे देवी-चन्दन या गौरी-चन्दन भी कहते हैं। सफेद चन्दन का प्रयोग देव-प्रतिमाओं पर लेपन के लिए होता है। लाल चन्दन निर्गन्ध और सफेद चन्दन अति सुगन्धित होता है। चन्दन की लकड़ी का तेल निकाल कर उसे विभिन्न प्रकार के इत्र बनाने में प्रयोग किया जाता है। चन्दन ठण्डा होता है और विभिन्न रोगों में औषधि की भाँति प्रयोग किया जाता है।

दक्षिण-भारत का मैसूर-राज्य चन्दन-वृक्षों का सबसे बड़ा उत्पादक-क्षेत्र है। प्रसिद्ध है कि चन्दन की सुगन्ध से मुग्ध होकर साँप उसके पेड़ से लिपट जाता है। महाकवि रहीम ने भी इस तथ्य को अपने एक दोहे में उजागर किया था—

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकै कुसङ्ग।
चन्दन विष व्यापै नहीं, लपटे रहत भुजङ्ग॥

अस्तु, चन्दन एक अति पवित्र, बहु उपयोगी और सुगन्धित काष्ठ है। लेप, पूजन, शृङ्गार, औषधि, हवन और मृतक-संस्कार तक, जीवन के सभी क्षेत्रों में इसका प्रयोग होता है। साधना में, जैसा कुछ नियम-निर्देश हो, सफेद या लाल चन्दन का प्रयोग करना चाहिए।

पुष्प :

पुष्प श्रद्धा और श्रृङ्गार के प्रतीक होते हैं। किसी के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए इन्हें सर्वश्रेष्ठ और सुन्दरतम प्रतीक माना गया है। देवताओं को पुष्प अर्पित करने के पीछे—उनको प्रसन्न करके कृपा प्राप्त करने की भावना ही रहती है। हम सामान्य-जीवन में भी सौन्दर्य-श्रृङ्गार और सम्मान के लिए पुष्पों का प्रयोग करते हैं। इनका महत्त्व इतना व्यापक है कि मनुष्य के जन्म से लेकर उसकी मृत्यु—अन्तिम-संस्कार तक प्रयुक्त होते हैं। चाहे जैसी साधना हो—मूर्त्ति-पूजा, स्तवन, मन्त्र-तन्त्र—फूलों का प्रयोग सर्वत्र होता है। तान्त्रिक-प्रयोगों में तो मन्त्राभिषिक्त पुष्प अमृत जैसे पोषक और वज्र जैसे मारक बन जाते हैं। आगे के पृष्ठों में मैं एक तान्त्रिक प्रयोग का उल्लेख करूँगा, जिसकी चपेट में आकर मुझे सदा के लिए ध्वनि-जगत् से वहिष्कृत हो जाना पड़ा। मैंने स्पष्ट देखा था—उस तान्त्रिक-प्रयोग में फूल भी प्रयुक्त हुए थे—गहरे लाल रङ्ग के फूल वहाँ बिखरे हुए थे। आशय यह है कि साधना में पुष्पों को एक अनिवार्य उपादान का स्थान प्राप्त है। साधना-भेद के आधार पर विभिन्न प्रकार के फूल आध्यात्मिक (पूजा और मन्त्र-तन्त्र आदि) साधना में प्रयोग किये जाते हैं। यथा—

गुड़हल, चमेली, चम्पा, केवड़ा, पाढल, धतूरा, मदार, कनेर, कचनार, कमल और हारसिंगार आदि।

फूलों का प्रयोग इस आधार पर किया जाता है कि किस देवता को कौनसा पुष्प प्रिय है। कुछ ऐसे पुष्प भी हैं, जो सुन्दर और सुगन्धित होते हुए भी देवता-विशेष की पूजा में वर्जित हैं। रङ्ग और गन्ध को भी इस वर्जना अथवा स्वीकृति में आधार माना गया है। लाल, पीले, सफेद और गुलाबी रङ्ग के फूलों के प्रभाव में भिन्नता रहती है। यह भिन्नता उनकी सुगन्ध से भी प्रभावित होती है। अतः जब भी कोई साधना की जाय, पुष्प-प्रयोग के विषय में भली-भाँति जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। विष्णु-पूजा में धतूरा, मदार और कनेर के पुष्प वर्जित हैं। इसी प्रकार शिवजी की पूजा में तुलसी-मञ्जरी का निषेध है। देवी-पूजा में—प्रायः लाल पुष्प प्रयुक्त होते हैं। सरस्वती को श्वेत वर्ण प्रिय है और बगुलामुखी देवी को पीत वर्ण। अतः पुष्प और चन्दन में सावधानी आवश्यक रहती है।

दीपक :

आध्यात्मिक-साधना में दीपक भी एक महत्त्वपूर्ण उपादान है। दीपक प्रकाश का जनक, ज्ञान का प्रतीक और वातावरण-शोधक होता है। मनुष्य के जीवन में दीपक की उपयोगिता उसके आदिम वनवास-युग से लेकर आज के वातानुकूलित भवनों तक, सर्वत्र अक्षुण्ण है। दीपक के प्रकाश में हम वातावरण और परिस्थिति से परिचित होकर अनेक प्रकार की आपदाओं से बचे रहते हैं। आध्यात्मिक-साधना में दीपक की लौ साधक के ध्यान को एक बिन्दु-विशेष पर केन्द्रित करती है। किरणों का प्रभाव आज हम देख ही रहे हैं—टी. वी. एक्सरे, गाना, अल्ट्रावायलेट, राडार और कम्प्यूटर आदि में किरणें ही मुख्य रूप से सारा कार्य सम्पन्न करती हैं। पूजा-साधना में भी—सामने जल रहा दीपक एक अलौकिक प्रभाव की सृष्टि करके वातावरण में परिवर्त्तन उत्पन्न कर देता है। अतः साधक को चाहिए कि वह पूजा में निश्चित विधि के अनुसार दीपक जला करके ही साधना में प्रवृत्त हो।

सामान्यतः पूजा-साधना में घी का दीपक जलाया जाता है। परन्तु तान्त्रिक-प्रयोगों में कहीं-कहीं किसी विशेष तेल या चिकनाई का विधान होता है। ऐसी स्थिति में शास्त्रीय-पद्धति को ही वरीयता देनी चाहिए। सात्त्विक-साधना में घी का दीपक प्रयोजनीय कहा गया है। कहीं-कहीं तेल कड़ुवा या मीठा (तिल्ली का) तेल भी प्रयुक्त होता है। बिजली, मिट्टी का तेल अथवा अन्य कोई दुर्गन्धित तेल साधना-दीपक में नहीं प्रयोग किया जाता। आज के युग में तो घी दुर्लभ हो गया है। ऐसी स्थिति में दीपक-साधना दुष्कर होती जा रही है। तो भी विकल्प रूप में मीठा तेल चल सकता है। वैसे, वानस्पतिक-तेलों में कोई विशेष वर्जना नहीं है, तो भी प्रसङ्गानुकूल तेल का चयन करके उसे दीपक में डाला जाय, यह उत्तम होगा। अभिचार-कर्मों की साधना में कड़ुवे तेल या अन्य किसी वानस्पतिक-तेल की स्वीकृति रहती है। कहीं-कहीं चर्बी (वसा) को तेल की भाँति दीपक में जलाने का विधान है। ऐसी साधना (अभिचार-कर्म) प्रत्येक साधक नहीं कर सकता। परन्तु, जो लोग करते हैं, उनके लिए दीपक में प्रयोग किये जाने वाले तेल की व्यवस्था का नियम अनिवार्य होता है। वे तन्त्र-शास्त्र के आदेशानुसार घी, तेल या चर्बी का दीपक अवश्य ही जलाते हैं।

आशय यह है कि साधना प्रारम्भ करने से पूर्व शास्त्रीय-निर्देशों को भली-भाँति समझकर, सम्बन्धित वस्तुओं की व्यवस्था पहले से ही कर लेनी चाहिए। दीपक के लिए—घी, तिल का तेल, कड़ुवी रेंडी का तेल, चमेली का तेल, नीम का तेल, महुए का तेल अथवा अन्य जिस तेल का उपयोग बताया गया हो, उसी का प्रयोग करना चाहिए।

तेल की तरह बत्ती का भी विधान होता है, सामान्यतः सभी साधनाओं में रुई (कपास के रेशे) की बत्ती प्रयुक्त होती है। किन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह रुई बिल्कुल नयी हो। गन्दी, मैली, पुरानी, प्रयुक्त अथवा किसी रजाई-गद्दे से निकाली हुई रुई का प्रयोग निषिद्ध होता है। सबसे सरल और शुद्ध उपाय यह है कि कहीं से कपास के फलों से ताजी-नयी रुई लाकर रखली जाय। उसके भीतर भरे बीजों (बिनौलों) को निकाल कर रुई से बत्ती बनाली जाय, यह सबसे सरल और शुद्ध विधि है। इस प्रसङ्ग में यह भी ध्यान रखने की बात है कि रुई का संग्रह करते समय (वैसे, साधना के लिए किसी भी वस्तु के संयोजन में) शुभ मुहूर्त्त का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। अभिचार-क्रियाओं में जहाँ जैसा निर्देश हो, वैसी ही वस्तु प्रयुक्त होती है।

रुई की तरह दीपक के पात्र भी विचारणीय होते हैं। प्रायः मिट्टी का दीपक ही सर्वत्र प्रयुक्त होता है। किन्तु तान्त्रिक-प्रयोगों में कहीं-कहीं ताँबे, पीतल, चाँदी आदि के दीपकों का भी विधान है। किसी-किसी तान्त्रिक-प्रयोग में हड्डी या मनुष्य की खोपड़ी (मानव-कपाल) का दीपक प्रयुक्त करने के संकेत रहते हैं। अतः जहाँ जैसा निर्देश हो, वैसे ही दीपक और तेल-बत्ती की व्यवस्था करनी चाहिए। जहाँ दीपक के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट संकेत न दिया गया हो, वहाँ सामान्य मिट्टी या ताँबे-पीतल का दीपक जलाया जा सकता है।

धूप :

लगभग सभी प्रकार की साधनाओं में किसी न किसी देवता की पूजा-अर्चना का विधान होता है। देवार्चन में अक्षत, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य को प्रमुख अङ्ग माना जाता है। धूप का अर्थ है—किन्हीं सुगन्धित काष्टादि-द्रव्यों को सुलगाकर उनके धुएं (धूम्र) से वातावरण को सुगन्धित करना। सामान्य दृष्टि से इसे देवताओं का श्रृङ्गार, अथवा उनके सम्मान में श्रद्धा व्यक्त करना कहा जाता है, किन्तु वास्तविकता

यह है कि इस क्रिया (धूप) के द्वारा वातावरण को शुचितामय, पवित्र, निर्मल और प्रदूषण रहित बनाया जाता है। वातावरण का प्रभाव साधक के मन-मस्तिष्क को तुरन्त प्रभावित करता है। गन्दी, दुर्गन्धयुक्त, सीलन-भरी अथवा अन्य किसी रूप में प्रदूषित वायु वाले स्थान पर बैठने से सामान्य स्थिति में भी व्यक्ति विचलित हो उठता है। तब साधना के लिए तो निश्चय ही स्वच्छ-निर्मल स्थान और वायुमण्डल अनिवार्य होगा।

धूप-क्रिया में आजकल अगरबत्ती का बहुत प्रचलन है। किन्तु धार्मिक और वैज्ञानिक दोनों ही दृष्टियों से यह सर्वथा हानिकर प्रयोग है। धूप की सामग्री में वे वस्तुएं प्रयुक्त होती हैं, जिनके जलने से शुचिता उत्पन्न हो। अगरबत्ती में बाँस की तीली लगी रहती है, और यह एक ऐसी लकड़ी है, जिसका प्रयोग सामान्यतया जलाने के लिए सर्वत्र वर्जित है। रसोईघर में भी बाँस की लकड़ी जलाना निषेध है, यह अमङ्गलकारी होता है। वास्तव में इसकी ज्वलन-शीलता में एक प्रदूषणकारी तत्त्व निहित है। यही कारण है कि बाँस केवल मनुष्य के दाह-संस्कार में (अर्थी के साथ) जलाया जाता है, अन्यत्र कहीं इसको ईंधन के रूप में प्रयुक्त होते नहीं देखा जाता। अस्तु, धूप-क्रिया में शास्त्रीय-पद्धति से बनायी गयी हवन-सामग्री का ही प्रयोग करना चाहिए। उपासना-भेद से विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के मिश्रण से हवन-सामग्री बनायी जाती है। धूप और हवन की सामग्री में कुछ भेद भी है। उसे इस प्रकार समझना चाहिए—

धूप की सामग्री :

अगर, तगर, देवदारु, छरीला, गूगल, लोबान, लौंग, कपूर, नागर-मोथा, चन्दन, कस्तूरी, खस आदि सुगन्धित द्रव्यों के मिश्रण से बनायी गयी—गहरे लाल, या काले रङ्ग की बत्ती (गोली) वत्राकर सुलगाने से वह सफेद रङ्ग का सुगन्धित धुआँ छोड़ती है। ऐसी एक बत्ती सुलगा देने से काफी देर तक वातावरण सुगन्धित रहता है। यह बत्ती कई प्रकार से बनती है। सुगमता की दृष्टि से किसी भी अनुकूल पदार्थ को लेकर उसका प्रयोग किया जा सकता है। हम अपने घरों में देखते हैं कि महिलाएं धूप के अभाव में, अङ्गारों पर केवल घी-गुड़ या घी-शक्कर का मिश्रण सुलगा देती हैं। उससे उत्पन्न धुएं में कितनी शुचिता, मिठास और मादकता होती है, हम सब उसका कई बार अनुभव कर चुके हैं। उत्तम होगा कि बाजार से किसी अच्छे विश्वसनीय कार्यालय की बनी हुई धूपबत्ती ले ली जाय,

या फिर घर में ही बनाली जाय। पूजा-साधना के अलावा सहज भाव से भी, लोग दैनिक-चर्या के रूप में घरों में धूप जलाते हैं। उसकी शुचिता और सुगन्ध से घर का वातावरण निर्मल और स्फूर्तिदायक हो जाता है।

हवन-सामग्री :

सामान्य रूप से तो जौ, तिल, अक्षत, घी, शक्कर, पञ्चमेवा और देवदारु के मिश्रण से हवन-सामग्री बनाकर उसकी आहुतियाँ दी जाती हैं, परन्तु विशेष-प्रयोजन-पद्धति की उपासना में हवन-क्रिया के लिए तदनुसार विशिष्ट सामग्री का चयन करना पड़ता है। यहाँ धूप-क्रिया से हवन-क्रिया का भेद भी समझ लेना चाहिए। धूप की गणना पूजन-पद्धति (पञ्चोपचार-षोड़शोपचार) के अन्तर्गत होती है। इसे चन्दन, पुष्प और दीप की भाँति एक बार पूजा के प्रारम्भ में प्रयुक्त किया जाता है, जब कि हवन-क्रिया इसके विपरीत, साधना की समाप्ति पर, एक निश्चित संख्या में आहुतियाँ देकर वारम्बार की जाती है। साथ ही आहुति देते समय अभीष्ट देवता का मन्त्र भी 'स्वाहा' शब्द के सहित उच्चारण किया जाता है, यथा—'ॐ सूर्य देवता नमः स्वाहा।'

अस्तु, साधना के लिए धूप तथा हवन दोनों आवश्यक नियम हैं। और, प्रयोजनानुसार इनसे सम्बन्धित सामग्री का उपयोग अनिवार्य होता है। यह भी ध्यान रखने की बात है कि हवन-सामग्री बहुत शुद्ध और निर्दोष हो। दूषित अथवा भ्रष्ट पदार्थ का संयोजन साधना पर दुष्प्रभाव डालता है।

तन्त्र-साधना में हवन के उद्‌देश्य-भेद से विभिन्न प्रकार की वस्तुओं—लकड़ियों से आहुति देने का निर्देश मिलता है, अतः तदनुसार आम, पलाश, उदुम्बर, अश्वत्थ, नारियल, पान, मधु, गूगल आदि निर्दिष्ट वस्तुओं की व्यवस्था पहले से ही कर लेनी चाहिए। हवन-क्रिया और सामग्री का प्रभाव अवश्य पड़ता है।

आसन—

'आसन' शब्द के दो अर्थ हैं—एक तो यह कि जिस वस्तु को आधार बनाकर या बिछाकर उस पर बैठा-लेटा जाय, उसे आसन कहते हैं। प्रचलित रूप में प्रायः यही अर्थ ग्राह्य होता है। दूसरा अर्थ है—किसी विशेष ढङ्ग से, शरीर को किसी विशेष स्थिति में करके बैठना। इस रूप में आसन का प्रयोग योग और भोग दोनों क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार से

होता है। योगीजन 84 प्रकार के आसनों की साधना करते है—शीर्षासन, पद्मासन, धनुरासन, मयूरासन आदि। काम-शास्त्र के अन्तर्गत स्त्री-पुरुष के कायिक-सम्पर्क में भी 84 प्रकार की शारीरिक स्थितियों—बैठने की विधियों का उल्लेख किया गया है। वात्स्यायन जैसे आचार्यों ने काम-शास्त्रीय इन 84 आसनों की विस्तृत व्याख्या की है। अस्तु, यहाँ हमारा प्रतिपाद्य न तो काम-शास्त्रीय आसन-मुद्रा है, और न योग-साधना वाले आसन ही, वरन् हम उन आसनों के सम्बन्ध में कुछ लिख रहे हैं, जो बिछाने के काम आते हैं और जिनपर बैठकर पूजा-साधना की जाती है।

समय और स्थान का चयन करने के पश्चात् साधक को आसन के सम्बन्ध में भी पूरी सतर्कता बरतनी चाहिए। यह एक अनुभूत तथ्य है कि प्रत्येक पदार्थ का अपना स्पर्शजन्य प्रभाव होता है। जल का स्पर्श शीतल और आर्द्र होता है, आग का स्पर्श ताप और जलन की अनुभूति कराता है। रेशम में कोमलता, चिकनापन और काष्ठ में कठोरता तथा खुरदरापन रहता है। चन्दन ठण्डक पहुँचाता है। लवङ्ग, कपूर और नमक भी शीतलता देते हैं। इसके विपरीत करञ्ज, मिर्चा अर्क-केंवाच के स्पर्श से जलन और खुजली उत्पन्न होती है।

इसी वस्तुगत प्रभाव के आधार पर साधना के लिए विभिन्न आसनों की परीक्षा करके महर्षियों ने दीर्घकालीन अनुभव को साक्ष्य बनाकर यह प्रतिपादित किया है कि आसन जिस वस्तु से बना होगा, उसमें वैसा ही प्रभाव निहित होगा।

आसन का अर्थ है—आसन्दी, जिस पर बैठकर कोई काम किया जाय। हम प्राय: टाट, चटाई, दरी, कम्बल या पटरा जैसा कुछ बिछाकर बैठते, भोजन करते, या लेटते हैं। यह विलासिता अथवा प्रदर्शन की बात नहीं है, वस्तुत: यह शरीर को सुख और कार्य में अनुकूलता के लिए किया जाता है। परम्परा के रूप में चला आ रहा यह नियम आज केवल प्रचलन के रूप है, किन्तु वास्तविकता यह है कि इसके पीछे बहुत बड़ा वैज्ञानिक-सिद्धान्त कार्यरत रहता है। यह बात अलग है कि हम उस सिद्धान्त से परिचित नहीं हैं, और आसन का प्रयोग एक रूढ़ि के रूप में करते चले जा रहे हैं। परन्तु यथार्थ यही है कि इस रूढ़ि का आधार एक वैज्ञानिक-सत्य है। अस्तु, साधना-कार्य में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न आसनों की प्रभाव-परिणति शास्त्रकारों ने इस प्रकार बतायी है—

काम्यार्थं कम्बलं चैव, श्रेष्ठं च रक्त कम्बलम् ।
कुशासनें मन्त्रसिद्धिः नात्र कार्या विचारणा ।।

बंशासनें तु दारिद्र्यं, पाषाणे व्याधि सम्भवः ।
धरण्यां दुःख सम्भूति, दौर्भाग्यं छिद्रि दारुजे ।।

तृणे धन यशो हानिः, पल्लवे चित्त विभ्रमः ।
कृष्ण मृग चर्मासनं सर्वोत्तम विधीयते ।।

आशय यह है कि बाँस द्वारा बनाये गये आसन पर बैठकर जप-तप करने वाला व्यक्ति दरिद्रता से आक्रान्त होता है। पाषाण के आसन (चौकी-शिलाखण्ड, जबकि उस पर कुछ बिछाया न गया हो) पर बैठकर साधना करने वाले को व्याधियाँ ग्रस्त कर लेती हैं। इस प्रकार बिना कोई आसन बिछाये, खुली (नङ्गी) भूमि पर बैठकर साधना करना भी वर्जित है, कारण कि यह स्थिति अनेक प्रकार के दुःख उत्पन्न करती है। छिद्रित-काष्ठ अर्थात् घुनी लकड़ी का आसन (पीढ़ा-चौकी-पटरा) साधक को दुर्भाग्य से पीड़ित करता है। घास-फूस और तिनकों से बना आसन (चटाई) भी हानिकर होता है। इसके प्रभाव से साधक को धन-हानि होती है और उसके यश-प्रभाव-सम्मान का भी नाश होता है। पत्तियों (पल्लवों) अथवा पत्तों से बने हुए आसन पर बैठकर साधना करने वाला व्यक्ति मानसिक अस्थिरता से ग्रस्त हो जाता है। उसे बुद्धि-विक्षेप, चित्त-विभ्रम, उच्चाटन, अविश्वास, भय, शङ्का से मनोव्याघात आक्रान्त कर लेते हैं। अतः यह सभी आसन साधना के लिए वर्जित हैं। इनका प्रयोग निषिद्ध है। इनमें से किसी भी आसन का प्रयोग किया जाये--चाहे जानकारी में, अथवा अनजाने में—वह अपना दुष्प्रभाव अवश्य दिखाता है। इसके विपरीत कुछ ऐसे आसन भी हैं, जो अति उत्तम फलदायक होते हैं। साधना में सिद्धि और शुभ प्रभाव के लिए वे सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। ऐसे आसनों की व्याख्या में कहा गया है—

● **कम्बल**—कर्म-सिद्धि और कामना-पूर्त्ति के लिए कम्बल को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। ऊनी आसन बिछाकर उस पर बैठें और नियमित जप-तप करें, अवश्य ही लाभ होगा। लाल रङ्ग का कम्बल विशेष उत्तम होता है, और बहुरङ्गा कम्बल सर्वोत्तम रहता है, स्मरण रहे कि कम्बल का अर्थ समूचा कम्वल नहीं, बल्कि ऊनी वस्त्र का कोई भी—

चौकोर या गोल समूचा अविच्छिन्न टुकड़ा होता है । ऊनी अथवा रेशमी आसन पर बैठकर साधना करने का एक वैज्ञानिक प्रभाव यह भी होता है कि यह शरीर की ऊर्जा को पृथ्वी में समाहित होने से रोकता है । इस प्रकार साधक बराबर सशक्त बना रहता है ।

कुशाशन—कुश नामक घास से बनाया गया आसन अति उत्तम होता है । तन्त्र-सिद्धि के लिए इसका प्रभाव अचूक रहता है । किसी प्रकार का मन्त्र सिद्ध करना हो तो उसके जप में इसी कुशासन का प्रयोग करना चाहिए । मन्त्र-जप में सफलता और सिद्धि देने के लिए कुशासन सबसे अधिक प्रभावी होता है । कुशासन में निहित वानस्पतिक-गुण साधक को दिव्य रूप में शुचिता, प्रदूषण से मुक्ति और तन्मयता तथा आरोग्य प्रदान करता है ।

मृगचर्म—ब्रह्मचर्य, ज्ञान, वैराग्य, सिद्धि, संयम, शान्ति और मोक्ष की कामना रखने वाले साधकों के लिए यह सर्वश्रेष्ठ आसन है । इसलिए सामान्यत: गृहस्थ-जनों में इसका उपभोग कम होता है । काले मृग का चर्म और अधिक प्रभावशाली रहता है । इन्द्रिय-निग्रह के लिए यह विख्यात है । मृग के सारे गुण उसके चर्म में समाहित रहते हैं । अत: इसका प्रयोग करने वाला साधक मृग जैसी शान्ति-प्रियता, वेग, ओजस्विता, अहिंसा-भावना और संवेदन-शीलता से आपूरित रहता है । यद्यपि चर्म अपवित्र वस्तु है, किन्तु अपने इन अद्भुत और सात्त्विक गुणों के कारण तपश्चर्या में मृगचर्म सर्वश्रेष्ठ माना गया है । वैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है—

● मृगचर्म इन्द्रिय-निग्रह में परम सहायक है । इसमें काम-शमन की इतनी प्रबल शक्ति होती है कि लगातार प्रयोग करने वाला साधक दाम्पत्य-जीवन में विषय- विलास से विरक्त हो जाता है । दिव्य वेद और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति में यह परम सहायक होता है ।

● साधक की आध्यात्मिक-शक्ति को सुरक्षित रखने, उसका सम्वर्द्धन करने में यह अद्वितीय आसन है ।

● रक्त-विकार, वात-दोष और पित्तज व्याधियों के शमन में इस आसन का प्रयोग चमत्कारी प्रभाव दिखाता है ।

● शारीरिक-ऊर्जा और बौद्धिक-संचेतना (विचार-शक्ति) को सुरक्षित रखने में यह आसन बहुत लाभकारी रहता है ।

● **व्याघ्र-चर्म**—जिस प्रकार कुशासन और मृगचर्म में सात्त्विक-गुण तथा ऊनी-रेशमी आसन में राजसिक-गुण निहित रहते हैं, उसी प्रकार व्याघ्र-चर्म में भी राजसिक-गुणों की प्रचुरता होती है। तामसिक-गुणों से युक्त आसन भी होते हैं, परन्तु उनका प्रयोग अभिचार-कर्मों में ही होता है। अत: शास्त्रों ने उसकी संस्तुति नहीं की। प्रसङ्ग-पूर्त्ति के लिए—ऐसे आसनों में महिष-चर्मासन को गिना जा सकता है। श्वान, शृगाल, मानव तथा उलूक-गिद्ध आदि पक्षियों के चर्म भी इसी श्रेणी में आते हैं। किन्तु वर्जित और निन्दनीय होने के कारण उनके विषय में बहुत कम लिखा गया है।

जहाँ तक व्याघ्र-चर्म की बात है, राजसी-उद्देश्यों की पूर्त्ति हेतु की जाने वाली साधना (धन-वैभव, पद-प्रतिष्ठा, अधिकार, भू-सम्पदा आदि पाने के लिए की जाने वाली तत्पचर्या) में यह आसन (व्याघ्र-चर्म) बहुत लाभकारी होता है। वैसे भी, इसका प्रयोग व्यक्ति को प्रभाव-सम्पन्न बनाता है। किन्तु आज के युग में यह दुर्लभ हो गया है। तथापि देश में हजारों की संख्या में आज भी देखे जा सकते हैं। मैंने स्वयं ऋषिकेश में देखा है—बाबा काली कमली वाले जिस व्याघ्रासन पर बैठकर साधना करते थे, वह आज भी यथावत् उसके आश्रम में सुरक्षित है। वह बड़ा, भव्य और सम्पूर्ण है कि देखकर रोमाञ्च हो जाता है।

समस्त देवताओं के शिरोमणि त्रिभुवनपति शिवजी को यह इतना अधिक प्रिय है कि विश्व का सारा वैभव त्याग कर वे इसी को ओढ़नें-बिछाने और पहनने के काम में लाते हैं। बाघम्बरधारी और व्याघ्र-चर्मासीन शिवजी के चित्र कहीं भी देखे जा सकते हैं। वस्तुत: वे महान योगी हैं और इसके गुणों की परख कर ही इतने प्रेम से धारण करते हैं।

व्याघ्र-चर्म का प्रधान गुण यह है कि इस पर बैठकर साधना करनें में साधक के पास कोई जीव-जन्तु नहीं आ सकता। साँप-बिच्छू भी उससे दूर ही रहते हैं। व्याघ्र का चर्म उसके मृगराज होने को सिद्ध करता है। साथ ही अन्य प्रकार की बाधाएं भी व्याघ्र-चर्मासीन साधक को आक्रान्त नहीं कर सकतीं। प्रेतात्माएं और भूतादि वायव्य-योनियों की माया ऐसे साधक पर नहीं चल पाती, जो सिंह-चर्म पर बैठकर साधना कर रहा होता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि आसनों में सर्वश्रेष्ठ गुण और सुलभता की दृष्टि से 'कुशासन' ही है। यह आध्यात्मिक, भौतिक सभी साधनाओं में प्रयुक्त हो सकता है। रोमासन (कम्बल) भी उत्तम होता है। कार्य-सिद्धि और अर्थ-प्राप्ति के उद्देश्य से की जाने वाली साधना में यह विशेष लाभकारी रहता है। किन्तु यदि कुश से बना हुआ आसन मिल जाय, तो उसे सर्वश्रेष्ठ मानकर प्रयोग करना चाहिए। ध्यान रहे कि कुशासन के नाम पर आजकल बाजार में कास नामक घास के आसन धड़ल्ले से बिक रहे हैं। वे तृणासन हैं, और साधना को प्रभावहीन बनाते हैं। अतः ठीक से पहचान करके ही कुश का आसन लेना चाहिए। किसी ग्रामीण से सम्पर्क करके 'कुश' घास मँगाकर, स्वयं ही आसन बना लिया जाय, यह सबसे अच्छा उपाय है। यह इतना प्रभावशाली सिद्ध हुआ है कि भारतीय-संस्कृति के आर्ष-ग्रन्थों में इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। पारस्कर गुह्य-सूत्र, महाभाष्य, अष्टाध्यायी में इसके अनेक गुण वर्णित हैं। यजुर्वेद और अथर्ववेद में भी इसे बहुत उत्तम और प्रभाव-सम्पन्न कहा गया है। आयुर्वेद--ग्रन्थों में तो इसे औषधि के समान लाभकारी बताया गया है। अपने बहुविध-गुणों के कारण कुशासन को सर्वत्र मान्यता प्राप्त है। पूजा, पाठ,, जप, तप, यज्ञ, हवन, रोगोपचार, शुभ-कार्य और मृतक-संस्कार तक, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कुश का प्रयोग होता है, यह इसकी महत्ता का अकाट्य प्रमाण है।

माला :

जप काल में मन्त्र-गणना हेतु माला ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। लगभग सभी साधनों में किसी न किसी मन्त्र का जप अनिवार्य होता है। मन्त्र द्वारा कामना-पूर्त्ति के नियमों में, मन्त्र-जप की एक निश्चित संख्या का पूरी होना आवश्यक रहता है। ऐसी स्थिति में जप की गणना के लिए माला ही सर्वश्रेष्ठ साधन रहती है। वैसे, अंगुलियों के पोर, फूल, चावल के दाने (अक्षत) आदि के सहारे भी जप किया जा सकता है, किन्तु ये माध्यम अल्प-संख्या वाले जप में ही सहायक होते हैं, लम्बे समय तक चलने वाला—हजारों-लाखों में---जप इनके द्वारा शुद्ध रूप में पूरा नहीं किया जा सकता। अतः निश्चित गणना, सुविधा और वस्तुगत प्रभाव के लिए भी, माला ही जप का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

मालाएं कई प्रकार की होती हैं, और विभिन्न वस्तुओं से बनाई जाती है। गले में पहना जाने वाला कोई भी हार वस्तुतः माला ही है।

अध्यात्म के क्षेत्र में साधना के लिए—तुलसी, कमलगट्टा, वैजयन्ती, कुशग्रन्थि, पुत्रजीवा, मोती, मूंगा, शंख, चाँदी, सोना, हल्दी, शिवलिङ्गी, आदि से माला बनाई जाती है। इनमें गुण प्रभाव की दृष्टि से रुद्राक्ष-माला को सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है। प्रत्येक माला का अपना प्रभावगत कोई विशेष गुण होता है। यही कारण है कि साधना में उद्देश्य की दृष्टि से माला-चयन का विधान है। किसी कार्य के लिए किसी माला को स्वीकृति दी गयी है, तो किसी माला के प्रयोग को वर्जित कहा गया है। अतः साधक को चाहिए कि वह अपने उद्देश्य के अनुसार—जप में प्रयोग करने के लिए उचित माला का ही चयन करे। वैसे, जप न करना हो, तो भी कुछ मालाएं मात्र धारण करने से ही अपना प्रभाव दिखा देती हैं।

किसी वस्तु के छोटे-छोटे टुकड़े, बीज अथवा दाने धागे में पिरोकर माला का निर्माण होता है। इन दानों को मनका या मणि कहा जाता है। बोलचाल की भाषा में इसे दाने ही कहते हैं। प्रत्येक माला में 108 दाने और एक विशिष्ट दाना सुमेरु होता है। जप के समय से पहले दाने से प्रारम्भ करके अन्तिम दाने तक पहुँचने के बाद तुरन्त पीछे की ओर लौटकर उल्टी दिशा में जप करना चाहिए। सुमेरु को लाँघकर आगे बढ़ना वर्जित है। अतः साधक को ध्यान रखना चाहिए कि वह जब भी जप करे, प्रथम दाने से चलकर अन्तिम दाने तक पहुँचे और वहीं से, बिना सुमेरु को लाँघे, फिर अन्तिम दाने की ओर चले। प्रथम दाने पर पहुँचकर फिर अन्तिम दाने की ओर बढ़े। प्रथम से अन्तिम दाने तक किया गया जप एक माला होता है। चूँकि माला 108 दाने की होती है, अतः जप-संख्या निश्चित करने के लिए यही समीकरण सरल और सुलभ होता है। दस माला जप करने का अर्थ हुआ कि साधक ने एक हजार जप पूरा कर लिया।

माला में 108 दाने क्यों ?

माला में पिरोयी जाने वाली मणियों (दानों) की संख्या पर मनीषियों ने कई व्यवस्थाएं दी हैं। यह व्यवस्थाएं उद्देश्यों पर आधारित हैं। सामान्य जप, बाहु या कण्ठ में धारण करने अथवा अन्य ऐसे ही प्रयोगों के लिए 15 या 27 या 54 मणियों की माला बनाने का निर्देश किया गया है। दाने कम होने की स्थिति में (यदि पूरे 108 दाने नहीं

मिल रहे) भी यह व्यवस्था सहायक होती है । या तो 108 दानों की माला हो या 54 की या 27 या 15 की । इससे भिन्न संख्याएं—19, 36, 78, 95 आदि सब वर्जित हैं । अत: जब भी माला की रचना की जाय, उपरोक्त चार संख्याओं में से ही कोई एक लेनी चाहिए । उक्त संख्या में दाने प्राप्त करके माला बनाकर उसके दोनों सिरों के जोड़ पर एक विशिष्ट दाना "सुमेरु" पिरोया जाता है । सुमेरु के अभाव में माला निष्प्रभावी रहती है । जहाँ तक संख्या की बात है, इसे सर्व-सम्मति से स्वीकार किया गया है कि चाहे जैसी, चाहे जिस उद्देश्य के लिए माला बनायी जाय उसमें 108 दाने होना परम आवश्यक और अत्यधिक लाभ-दायक है । इस विषय में 108 की संख्या का विभिन्न दृष्टियों से प्रतिपादित महत्त्व भी विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है । जप-गणना में 108 के द्वारा गुणन की सुविधा तथा इसकी आध्यात्मिकता का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

● शारीरिक-संरचना के अनुसार, श्वास-क्रिया प्रत्येक प्राणी की प्राकृतिक-व्यवस्था है । यदि माला जपते समय कोई स्वस्थ साधक श्वासगति के अनुकरण पर, प्रति श्वास पर एक बार मन्त्र पढ़े, साथ ही एक दाना सरकाये, तो एक घण्टे में 900 और 12 घण्टे में 10,800 जप हो जायेगा । उपांशु जप से नियमानुसार, यदि कोई व्यक्ति केवल 108 बार जप करता है, तो उस 10,800 जप के बराबर फल प्राप्त होता है । ऐसी स्थिति में 10,800 की संख्या का जप में शुद्धता-पूर्वक पूर्ण करने के लिए 108 दाने की माला उपयोगी होती है ।

● ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार, खगोल विज्ञान के मत से भी, ब्रह्माण्ड-स्थित नक्षत्रों, जिनकी संख्या 27 है, के समस्त चरणों का स्पर्श करने के लिए 108 बार जप करना चाहिए । ऐसे जप से अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त नक्षत्रीय क्षेत्र, वायुमण्डल से साधक का सम्पर्क हो जाता है । चूँकि प्रत्येक नक्षत्र में 4 चरण होते हैं, अत: 27×4=108 चरणों के माध्यम से अखिल ब्रह्माण्ड का स्पर्श करने के लिए 108 बार मन्त्र जपना आवश्यक होता है । और, यह 108 बार की जप-क्रिया तभी सुविधापूर्वक सम्पन्न हो सकती है, जब माला में 108 दाने हों ।

● भारतीय-अध्यात्म में 9 के अङ्क को बहुत पूज्य, प्रभावी और महत्त्वपूर्ण माना गया है । कितने ही पौराणिक-वैदिक प्रसङ्ग इस अङ्क से

जुड़े हुए हैं । ग्रह 9 हैं, नवार्ण-मन्त्र भी 9 हैं और नवरात्र के दिनों की संख्या भी 9 हैं । दुर्गाजी के 9 अवतार विख्यात हैं । कितने ही धार्मिक-पौराणिक प्रसङ्ग ऐसे हैं, जिनकी संख्या में 18 या 1800 या 18000 का प्राधान्य है । गणना करके देखें, तो स्पष्ट होता है कि इन सभी संख्याओं का मूल उत्स यही 9 का अङ्क है । इसी के विचार से उपरोक्त संख्याएं निर्मित हुई हैं । इस प्रकार कुछ विशेष गणितीय सिद्धान्तों के आधार पर 108 की संख्या को माला के सन्दर्भ में सर्वश्रेष्ठ मानकर, मनकों की संख्या भी 108 रखी गयी है ।

माला का वस्तुगत परिचय :

- **हाथी-दाँत के मनकों से बनी हुई माला**—यह गणेशजी की उपासना में विशेष लाभदायक होती है । यद्यपि यह बहुत मूल्यवान होती है, किन्तु प्रसङ्ग-पूर्त्ति के लिए लिखना आवश्यक था । हालाँकि यह अब मूल्यवान हो गयी है, पहले देश में जङ्गलों की अधिकता से हाथियों की संख्या भी हजारों में थी । तब उसका दाँत सुलभ रहता था । आज भी पुराने रईसों-राजाओं के पास हाथी-दाँत की तमाम वस्तुएं संग्रहीत हैं ।

- **कमलगट्टा की माला**—प्रयोग-भेद से यह माला शत्रु-नाश और धन-प्राप्ति के लिए प्रयुक्त होती है ।

- **पुत्रजीवा की माला**—इसका प्रयोग सन्तान-प्राप्ति हेतु की जाने वाली साधना में होता है । यह अल्प-मोली माला है ।

- **चाँदी की माला**—पुष्टि-कर्म के अन्तर्गत, सात्त्विक-अभीष्ट की पूर्त्ति हेतु इस माला को बहुत प्रभावी माना जाता है ।

- **मूँगा की माला**—यह 'प्रवाल' नाम से भी प्रचलित है । मूँगा की माला गणेश और लक्ष्मीजी की साधना में प्रयुक्त होती है । धन-सम्पत्ति, द्रव्य और स्वर्ण आदि की प्राप्ति-कामना से की जाने वाली साधना की सफलता हेतु मूँगे की माला को अत्यधिक प्रभावशाली कहा गया है ।

- **कुश-ग्रन्थि की माला**—कुश नामक घास की जड़ खोदकर उनकी गाँठों से बनायी गयी यह कुश-ग्रन्थि माला समस्त प्रकार के कायिक, वाचिक और मानसिक पातकों का शमन करके साधक को निष्कलङ्क प्रदूषण-युक्त और निर्मल-सतेज बनाती है । इसके प्रयोग से

तामसिक-व्याधियों का नाश होता है और साधक सात्त्विकता के क्षेत्र में आ जाता है।

● **चन्दन की माला**—यह दो प्रकार की होती है--सफेद चन्दन की और लाल चन्दन की। सफेद चन्दन की माला का प्रयोग शान्ति-पुष्टि कर्मों में तथा राम, विष्णु, दत्त आदि देवताओं की उपासना में किया जाता है। लाल चन्दन की माला गणेशोपासना तथा देवी-साधना (दुर्गा, लक्ष्मी, त्रिपुरसुन्दरी आदि देवी स्वरूपों के लिए) में प्रयुक्त होती है। धन-धान्य आदि की प्राप्ति के लिए की जाने वाली साधना में यह विशेष रूप से प्रयोग की जाती है।

● **तुलसी की माला**—वैष्णव-भक्तों के लिए राम-कृष्ण की उपासना हेतु यह माला उत्तम मानी गयी है। इसका आयुर्वेदिक-महत्त्व भी है।

● **अन्य मालाएं**—स्वर्ण-माला भी धन-प्राप्ति और कामना-पूर्त्ति की साधना में उपयोगी होती है। किन्तु आज के युग में, जब कि मँहगाई और अपराध-मनोवृत्ति निरन्तर बढ़ती जा रही है, स्वर्ण-माला न तो सर्वसुलभ है और न उसे सुरक्षित ही माना जा सकता है। फिर शुद्ध सोना मिलना भी तो एक समस्या है। स्फटिक-माला सौम्य-प्रभाव से युक्त होती है। इसके धारक को चन्द्रमा और शिवजी की विशेष कृपा प्राप्त हो जाती है। सात्त्विक और पुष्टि-कार्यों की साधना के लिए यह बहुत उत्तम मानी जाती है। शंख माला भी कुछ विशेष तान्त्रिक-प्रयोगों में प्रभावशाली रहती है। शिवजी की पूजा-साधना, सात्त्विक-कामनाओं की पूर्ति हेतु किये जाने वाले जप तथा सामान्य रूप से धारण करने के लिए भी इसे उत्तम कहा गया है। वैजयन्ती की माला विष्णु और कृष्ण भगवान की आराधना में प्रयोजनीय कही गयी हैं। वैष्णव-भक्त इसे सामान्य रूप से भी धारण करते हैं। हल्दी की माला गणेश पूजा के लिए प्रयोग में लायी जाती है। वृहस्पति-ग्रह तथा देवी बगुलामुखी की साधना में भी इसको प्रयुक्त किया जाता है।

● **सर्वश्रेष्ठ माला**---इन सभी मालाओं का आध्यात्मिक-महत्त्व तो है ही. भौतिक-विज्ञान की कसौटी पर इनके वस्तुगत प्रभाव को परख कर, इन्हें बहुत लाभदायक माना गया है। ये धारक के मन, मस्तिष्क, चर्म, अस्थि, रक्त-प्रवाह, वात-संस्थान और सम्वेगों को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभावित करती हैं। किन्तु यदि सर्वगुण-सम्पन्नता की दृष्टि से हम

इनका परीक्षण-विवेचन करें, तो पायेंगे कि इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और गुण-सम्पन्न माला रुद्राक्ष की होती है। यह माला इतनी प्रभावशाली होती है कि किसी भी प्रकार की साधना में (अपवाद-स्वरूप मारण-कर्म और ऐसी ही यक्षिणी तथा कुछ अन्य देवी-देवताओं की उपासना को छोड़कर) इसका प्रयोग किया जा सकता है। लक्ष्मी, सरस्वती, गणेश, राम, कृष्ण, शिव, विष्णु, दत्त तथा नवग्रह आदि की साधना में यदि उपयुक्त माला न हो, रुद्राक्ष की माला का प्रयोग निश्चिन्त मन से करना चाहिए। यह परम लाभकारी होती है। चाहे जैसी माला हो उसका शुद्ध, वास्तविक और पूर्ण होना आवश्यक है। नकली, छिन्न, भ्रष्ट, अधूरी और अशुद्ध माला का प्रयोग सर्वथा वर्जित है। ऐसी माला लाभ के स्थान पर हानि पहुँचाती है। अतः जो भी माला ली जाये, उसे भली-भाँति परख लेना चाहिए। रुद्राक्ष के विषय में, आगे स्वतन्त्र रूप से विभिन्न तान्त्रिक-वस्तुओं के अन्तर्गत, विस्तार से लिखा गया है।

जप-फल में माला का प्रभाव :

किसी भी प्रकार की साधना में, सिद्धि-प्राप्ति के लिए उसके साधनों पर ध्यान देना आवश्यक रहता है। जप-क्रिया सम्पन्न करने में माला का चयन बहुत सावधानी और विचार-विमर्श के बाद ही किया जाना चाहिए। यह किसी अन्ध-विश्वास पर आधारित नहीं, वरन् वैज्ञानिक-परीक्षणों से सिद्ध तथ्य है कि प्रत्येक वस्तु का अपना भौतिक-प्रभाव होता है। जैसे, फल तो सभी हैं, पर नाम, रूप और गुण के आधार पर उनमें पर्याप्त भिन्नता है। धातुएं अनेक, हैं, और उन सबके गुण-प्रभाव में एक दूसरी से वहुत अन्तर है। इसी प्रकार मालाओं में वस्तुगत दृष्टि से बहुत अन्तर होता है। जप के प्रभाव को कम या अधिक करने में माला भी एक प्रमुख उपादान है। अतः माला के उपयोग हेतु किसी योग्य विद्वान-पण्डित से परामर्श अवश्य ले लेना चाहिए।

जप के प्रभाव को वस्तु-विशेष से निर्मित माला का प्रयोग इस प्रकार बढ़ा देता है—

● उँगलियों के सहारे किया गया मन्त्र-जप सामान्य (एक गुना) फल देता है। इसे कर-माला कहते हैं।

● उँगलियों के पोरों (पर्व) के सहारे की गयी जप-क्रिया का फल सामान्य जप से आठगुना बढ़ जाता है। इसे भी कर-माला (पर्व-माला) कहते हैं।

- पुत्रजीवा की माला जप के फल को सामान्य की अपेक्षा दस-गुना अधिक बढ़ा देती है।
- शंख-निर्मित माला का प्रभाव सौगुना होता है।
- मूँगा अर्थात् प्रबाल माला—सामान्य फल को हजार-गुना बढ़ा देती है।
- मणि अथवा किसी रत्न से बनी हुई माला—जप-फल को दस हजार गुना अधिक कर देती है।
- मोती की माला से जप-फल लाख-गुना बढ़ जाता है।
- कमलगट्टा (पद्म-वीज) की माला के द्वारा किया गया जप को सामान्य-जप की अपेक्षा दस लाख गुना फल देता है।
- स्वर्ण-मणि निर्मित माला (सोने के दानों से बनी हुई) जप-फल करोड़ गुना अधिक कर देती है।
- कुश-मूल की माला— देखने-सुनने में तो अति सामान्य वस्तु है—क्षुद्र-घास की जड़। किन्तु उससे बनी माला—मन्त्र-जप के प्रभाव को शत-कोटि (सौ करोड़) गुना बढ़ा देती है।

इस प्रकार वनस्पति-शास्त्रियों, भौतिक-विज्ञानियों और ऋषि-मुनियों ने विभिन्न वस्तुओं से निर्मित मालाओं का प्रभाव-विवेचन किया है। सबके अन्त में, सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा अलौकिक गुणों से सम्पन्न जिस माला को उन्होंने सर्वाधिक सुलभ, प्रयोजनीय बताया है, वह रुद्राक्ष-माला है। समस्त विश्व की वनस्पतियों में रुद्राक्ष ही एकमात्र ऐसा दाना (फल विशेष का बीज) है, जो अपने में आध्यात्मिक, वानस्पतिक और भौतिक गुणों की विशालतम राशि समाहित किये हुए है। इस माला के प्रयोग से जप-साधना का फल तो सामान्य की अपेक्षा करोड़ों गुना बढ़ ही जाता है, इसका प्रयोग करने वाला साधक सिद्धि, समृद्धि और शक्ति भी सरलता से प्राप्त कर सकता है। आज तो पश्चिमी-चिकित्सक भी इसके गुणों पर मुग्ध हैं, और अनेक रोगों के उपचार में इसके प्रयोग का परामर्श देते हैं।

किन्तु स्मरण रहे कि चाहे जैसी माला हो, उसमें शुद्धता और पूर्णता अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही, प्रयोग से पूर्व उसकी विधिवत् पूजा करके उसे देव-शक्ति से सम्पन्न कर लेना चाहिए।

स्थान और उसका प्रभाव :

जिस प्रकार भूगोल-वेत्ताओं ने भौतिक-संरचना के आधार पर धरती को विभिन्न क्षेत्रों में विभक्त करके प्रत्येक क्षेत्र की जलवायु, उपज और स्थानगत विशेषता की विवेचना की है, उसी प्रकार अध्यात्म के क्षेत्र में मनीषियों ने प्रत्येक कार्य के लिए अनुकूल-प्रतिकूल स्थान का निर्देश किया है। एक अनपढ़-गँवार भी जानता है कि नदी-तट पर (बालू में) ईख या गेहूँ की खेती नहीं की जा सकती, और न वहाँ धान बोने से ही कोई लाभ होगा। वह प्रत्येक फसल, वनस्पति के लिए तदनुकूल भूमि और जलवायु की खोज करता है। ठीक यही नियम जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी कार्यशील रहता है। पूजन, चिन्तन, जप-तप, भोजन, शयन, रागरङ्ग, युद्ध और समाधि—ये सब तभी अनुकूल प्रभाव देते हैं, जब इनके लिए वाञ्छित-स्थान और परिवेश का चयन किया गया हो। जैसे, भोजन वही हो, फिर भी यदि कोई व्यक्ति वह थाली लेकर चौके, मन्दिर, खेत, घूर, मैदान, श्मशान, भीड़, बध-भूमि अथवा किसी सवारी पर बैठकर भोजन करे, तो यह निश्चित है कि स्थान और वातावरण के भेद से वही भोजन उसे प्रत्येक स्थिति-स्थान में भिन्न प्रकार का प्रतीत होगा। स्वाद, रुचि और सन्तुष्टि—तीनों में वह स्थानगत प्रभाव का अन्तर अनुभव करेगा।

स्थानगत प्रभाव की ऐसी ही सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं शो दृष्टिगत रखते हुए अध्यात्म-साधना के मर्मज्ञों, मनीषियों और शास्त्रकारों ने अनुकूल और प्रतिकूल स्थानों की विशद-विवेचना की है। उनके निर्देशानुसार गुरु-दीक्षा प्राप्त करने के लिए भी स्थान की अनुकूलता आवश्यक रहती है। वर्जित अथवा त्याज्य स्थान में ली गयी दीक्षा और की गयी साधना निष्फल होती है। यही नहीं, कभी-कभी तो स्थान का दुष्प्रभाव साधक के लिए प्राण-सङ्कट उत्पन्न कर देता है। अतः प्रत्येक कार्य में स्थान-चयन को भी वरीयता देनी चाहिए।

शुभ-स्थान (अनुकूल) :

गुरु से दीक्षा प्राप्त करने के लिए सर्वश्रेष्ठ स्थान तो कोई तीर्थ ही होता है, किन्तु यदि वैसा सम्भव न हो, तो भी यथा-साध्य किसी शुभ, पवित्र, शान्त और निर्विघ्न-स्थान का ही चयन करना चाहिए। सामान्यतः दीक्षा-प्राप्ति के लिए—तीर्थ-स्थान का कोई उत्तम-पवित्र-स्थल, देव-मन्दिर, सरिता-तट का कोई सुरम्य और प्राकृतिक-दृष्टि से सम्पन्न,

सात्त्विक-वातावरण वाला स्थल, तपोभूमि, गुरु का निवास-स्थान अथवा आध्यात्मिक-दृष्टि से अन्य कोई महत्त्वपूर्ण स्थल उत्तम होता है। जहाँ भी दीक्षा ग्रहण की जाय, उस स्थान को झाड़-पोंछकर, लीप-पोतकर स्वच्छता और शुचिता का वातावरण बना लेना चाहिए।

दीक्षा-प्राप्ति के पश्चात् साधना के लिए भी स्थान को महत्त्वपूर्ण कहा गया है। जहाँ भी पायें, बैठकर जप-तप अथवा मन्त्र-तन्त्र की साधना करने लगें, यह उचित नहीं। कार्य-विशेष और समय के आधार पर भिन्न-भिन्न क्षेत्रों (स्थानों) को उपयोगी बताया गया है। किन्हीं विशेष कृत्यों (अभिचार आदि) के लिए तो श्मशान, बध-भूमि और जन-मार्ग को ही साधना के लिए प्रभावकारी माना जाता है, परन्तु सामान्यतः शान्ति-पुष्टि कार्यों से निमित्त, भौतिक-समस्याओं के समाधान हेतु, शुद्ध-पवित्र स्थलों को ही साधना के योग्य माना जाता है। वैसे, कुछ साधनाएं साधक अपने घर के एकान्त कमरे में भी कर सकते हैं, तथापि निम्न स्थलों को विशेष रूप से लाभदायक और प्रभावी स्वीकार किया गया है। शास्त्रकारों का निर्देश है—

"......मन्त्र (यन्त्र और तन्त्र सभी प्रकार के अनुष्ठानों) की निर्विघ्न और फलदायक साधना के लिए पर्वतीय-क्षेत्र, उपत्यका (घाटी या तराई) गुफा, वन, फुलवाड़ी, सङ्गमतट, सरिता-तट, तीर्थ-स्थान, सिद्ध-पीठ, बेल-वृक्ष की छाया, तुलसी-वाटिका, पीपल अथवा आँवले की छाया, देवालय, गो-सदन और तपोभूमि जैसे स्थान विशेषकर हितकर होते हैं)....।"

वस्तुतः यह स्थान-चयन पूर्णतया वैज्ञानिक-तथ्यों पर आधारित है।

निषिद्ध स्थान :

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, अपने वातावरणीय-दुष्प्रभाव के कारण कुछ स्थान सात्त्विक-कार्यों के लिए वर्जित माने गये हैं, कारण कि वे शुभ-फलदायक नहीं होते। यहाँ तक कि ऐसे अशुभ-स्थानों में दीक्षा प्राप्त करने अथवा वहाँ कोई साधना करने में सफलता तो दूर रही, साधक के लिए अनेक प्रकार की बाधाएं शत्रुवत् आ खड़ी होती हैं। इन बाधाओं का रूप कभी-कभी मृत्यु जैसा मारक भी हो जाता है। अतः दीक्षा लेने अथवा जप-तप, पूजा-पाठ अथवा मन्त्र-तन्त्र-साधना जैसे कार्यों के लिए उचित और शास्त्र-सम्मत स्थान ही ग्राह्य होता है, वर्जित स्थानों का उपयोग भूलकर भी नहीं करना चाहिए। वर्जित स्थानों में विशेष रूप

से कन्या-गृह (पुत्री की ससुराल), विरजा-तीर्थ, चन्द्र-पर्वत, सूर्यक्षेत्र, मातङ्ग-देश, भट्ट-ग्राम, गया-धाम आदि की गणना होती हैं। स्थानीयता के दृष्टिकोण से साधक को चाहिए कि वह गन्दे, मल-मूत्र विर्सजित किये जाने वाले, कूड़ा-करकट इकट्ठा किये गये, भीड़-भाड़ वाले, हिंस्र पशुओं के निकट, शत्रु के प्रभाव-अधिकार वाले स्थानों में इस प्रकार की कोई साधना न करे। कारण कि वहाँ विघ्न की आशङ्का प्रति क्षण रहती है। इसी प्रकार मरघट, बलि-स्थान, पशु-मण्डी, पशुओं की बध-भूमि, चोर-डाकुओं का विश्राम-स्थल, अपराधी-जनों का कार्य-क्षेत्र, जहाँ कभी कोई हत्या-अनाचार जैसा पातक-कर्म हुआ हो, आदि स्थान भी साधना के निमित्त वर्जित माने गये हैं।

तन्त्र में त्याज्य :

तन्त्र-साधना में अनेक प्रकार की वस्तुएं प्रयुक्त होती हैं। वे सभी ग्राह्य हों, ऐसा नहीं है। जिस प्रकार उन्हें प्राप्त करने में काल-विचार (मुहूर्त्त) आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार स्थान का निर्देश और निषेध भी किया गया है। स्वच्छ, एकान्त और जीवन्त वातावरण में उत्पन्न वनस्पतियाँ अधिक उपयोगी और प्रभावशाली होती हैं, जब कि राह-घाट में नित्यप्रति कुचली और चरी जाने वाली, अथवा अशुभ-स्थानों में उत्पन्न वनस्पति में एक प्रकार का अदृश्य प्रदूषण व्याप्त रहता है। अतएव तान्त्रिक प्रयोगों के लिए, जो भी वस्तु या वनस्पति ली जाय, उसकी संरचना, सर्वाङ्गता, उत्पत्ति-स्थल, आयु और वातावरण का विचार अवश्य कर लेना चाहिए। त्याज्य-पदार्थों के लिए इस प्रकार वर्जना की गयी है—

● तन्त्र-साधना में प्रयोग के लिए कोई भी वनस्पति, जड़ी-बूटी, फल-फूल, पत्ती अथवा टहनी सड़ी-गली, घुन या कीड़ों से खायी हुई, ऋतु-विरुद्ध (कुअवसर में) उत्पन्न, आग में (किसी भी कारण से) जली हुई, किसी प्राकृतिक-प्रकोप के कारण छिन्न, रुग्ण अथवा सत्त्वहीन होने पर त्याज्य हो जाती है। उसका उपयोग लाभकर नहीं होता और साधना का श्रम व्यर्थ चला जाता है।

● जीव-जन्तुओं के आवास (बिल-बाँबी) पर उत्पन्न, आवागमन के मार्ग में स्थित वृक्षों के नीचे उगने वाली घास या वनस्पति निन्दनीय होती है। उसका उपयोग करना वर्जित है।

- मन्दिर अथवा श्मशान-भूमि में स्थित वृक्षों का कोई अंश नहीं लेना चाहिए। अपवाद की स्थिति अलग है, वह भी तब, जबकि उसके सम्बन्ध में स्पष्ट स्वतन्त्रता और निर्देश उपलब्ध हो।
- साधना हेतु दूसरे की माला अथवा आसन का प्रयोग वर्जित है।
- शंख, पूजन-पात्र, प्रतिमा, चित्र, यन्त्र आदि खण्डित (टूटे-फूटे) नहीं होने चाहिए। ऐसी वस्तुएं गङ्गा या अन्य किसी नदी में आदरपूर्वक विसर्जित कर देनी चाहिएं।
- माला (वह किसी प्रकार के मनकों से निर्मित हो) की मणियाँ—आकार में समान, पुष्ट, सम्पूर्ण और विधिवत् शुद्ध की हुई होनी चाहिएं। कटे-फटे, टूटे-दरके, आकार में विषम (छोटे-बड़े), टेढ़े-मेढ़े, विरूप, अवास्तविक (नकली) और आभा-रहित दाने त्याज्य होते हैं।
- भले ही कठिनाई से मिले, या असुविधाजनक हो, परन्तु तन्त्र-साधना में निर्दिष्ट वस्तु ही प्रयुक्त होती है। उसके पूरक रूप में, आधुनिक-सभ्यता की देन—स्टेनलेस स्टील, प्लास्टिक, नायलन और पोलिएस्टर की वस्तुएं नहीं लेनी चाहिएं।
- किसी विशेष प्रयोग में निर्दिष्ट होने पर भले ही श्मशान, रक्त, हड्डी, मांस, मदिरा आदि का प्रयोग किया जा सकता है, अन्यथा ये सब अपवित्र और त्याज्य हैं।
- व्यक्तिगत-स्वार्थ के लिए अथवा ईर्ष्या-द्वेष की तृप्ति के लिए अभिचार-कर्म करना निन्दनीय है। आगे चलकर इनका दुष्परिणाम साधक को भी भोगना पड़ता है। मूलतः ऐसे अभिचार-तन्त्रों की सर्जना आत्म-रक्षा के लिए अथवा लोक-कल्याण के लिए की गई थी, कारण कि उस समय विदेशी-आक्रमण प्रायः होते रहते थे। क्षुद्र-लाभ के लिए—अपने ही सामाजिक-जीवन में मारण, विद्वेषण, उच्चाटन जैसे कृत्य नहीं करने चाहिएं।

साधक के अनिवार्य गुण :

वैसे तो कोई भी व्यक्ति अपनी समस्याओं के समाधान हेतु जप-तप जैसे आध्यात्मिक-प्रयास कर सकता है, और इस सन्दर्भ में अपने लिए यथा-सामर्थ्य योग्य गुरु की खोज करने का अधिकारी भी है, किन्तु सफलता के लिए स्वयं उसमें भी कुछ गुणों का होना आवश्यक है। जैसे कोई द्रव-पदार्थ (तरल वस्तु) रखने के लिए गहरे पात्र की आवश्यकता होती

है—उसे तश्तरी या प्लेट में नहीं रखा जा सकता, उसी प्रकार सामान्य-जीवनचर्या की अपेक्षा आध्यात्मिक-चर्या (साधना) के लिए व्यक्ति में कुछ विशिष्ट गुणों का होना अनिवार्य माना गया है। ये गुण शास्त्रों में इस प्रकार बताये गये हैं—

"....साधक को शीलवान, गुणज्ञ, निश्छल, श्रद्धालु, धैर्यवान, स्वस्थ, कार्य-सक्षम, बुद्धिमान, सच्चरित्र, इन्द्रिय-संयमी और कुल-प्रतिष्ठा का पोषक होना चाहिए....।"

विचार करके देखें, तो स्पष्ट है कि उपरोक्त लक्षणों से रहित व्यक्ति साधना कर ही नहीं सकता। शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ, समर्थ और संयमशील होना—साधना में सफलता-प्राप्ति के लिए पहली शर्त्त है। ऐसे ही व्यक्ति साधना के अधिकारी होते हैं, और उन्हें दीक्षा देने वाले गुरु का श्रम सार्थक है। अधिकांश गुरु, जो ऊपर वर्णित श्रेष्ठ गुरुओं की श्रेणी में आते हैं, किसी को दीक्षा देने के पूर्व उसके सम्बन्ध में इन गुणों की, उसकी पात्रता की परख कर लेते हैं। चूंकि वे वीतराग और निर्लोभ होते हैं, अतः शिष्य का चुनाव करते समय इसकी आध्यात्मिक-पात्रता को परखते हैं, उसकी भौतिक-सम्पत्ति—कार, कोठी और कारखाने से उन्हें कोई मतलब नहीं रहता। इसके विपरीत आज के बड़े-बड़े मठाधीश और विज्ञप्त-गुरु व्यक्ति की पात्रता को न देखकर उसकी सम्पत्ति, प्रभाव, राजनीतिक-पहुँच, पद और अधिकारों को वरीयता देते हैं।

दीक्षा-साधना के लिए अयोग्य-व्यक्ति :

मनोविज्ञान द्वारा व्यक्ति के जीवन में उसके दूरगामी प्रभावों की विवेचना करते हुए, निष्कर्ष रूप में शास्त्रकारों ने प्रतिपादित किया है कि अयोग्य (दुर्गुणों से युक्त) व्यक्ति न तो गुरु से दीक्षा पाने का अधिकारी है, और न वह दीक्षित होने पर साधना के क्षेत्र में कोई उपलब्धि ही कर पाता है। अतः यही कारण है कि प्रायः सन्त महात्मा— हर किसी को शिष्य नहीं बनाते। कुपात्र-जनों को दिया जाने वाला—ज्ञानोपदेश, आध्यात्मिक-संकेत, साधना-परापर्श और मन्त्र-दीक्षा आदि सब निरर्थक होते हैं।

गुरु-शिष्य के बीच पारस्परिक-सम्बन्ध बहुत शुचिता और परख के आधार पर स्थापित होने चाहिएं, तभी उनमें स्थायित्त्व आ पाता है।

इसलिए गुरुजनों को भी निर्दिष्ट किया गया है कि वे किसी को शिष्य बनाने, उसे दीक्षा देने के पूर्व उसकी पात्रता को भली-भाँति परख लें। शास्त्रों का कथन है—

"....मन्त्री द्वारा किये गये दुष्कृत्य का पातक राजा को लगता है, और सेवक द्वारा किये गये पाप का भागी स्वामी बनता है। स्वयं-कृत पाप—अपने को, और शिष्य द्वारा किये गये अपराध (दुष्कृत्य) का पाप—गुरु को लगता है।...."

दीक्षा और साधना के लिए अयोग्य व्यक्तियों के लक्षणों को शास्त्रकारों ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—

"....ऐसा व्यक्ति, जो अपराधी-मनोवृत्ति का हो, अथवा क्रूर, पापी, हिंसक हो, वह न तो दीक्षा पाने का अधिकारी है, और न वह साधना में सफल ही हो सकता है। कारण कि उसकी तामसिक-मनोवृत्ति उसे सदैव अस्थिर और असन्तुलित बनाये रखती है इसी प्रकार बकवादी, कुतर्क करने वाला, मिथ्याभाषी, अहङ्कार-ग्रस्त, लोभी, लम्पट, विषयी, चोर, दुर्व्यसनी, पर-स्त्री-गामी, मूर्ख, जड़-बुद्धि, क्रोधी, द्वेषालु, ईर्ष्या अथवा अति-मोह से ग्रस्त, शास्त्र-निन्दक, आस्था-हीन, दुराचारी, वञ्चक, पाखण्डी और रोग-विकलाङ्गता से व्यथित व्यक्ति भी न तो गुरु-दीक्षा पाने योग्य होता है, और न साधना करने योग्य। ऐसे लोगों को जन्म-जात-पापी, अपवित्र, दुर्भाग्य-ग्रस्त और कुपात्र माना गया है।

7

तन्त्र से कामना-पूर्त्ति

जैसा कि प्रारम्भ के पृष्ठों में लिखा जा चुका है, तन्त्र-साधना तामसिक-साधना है। इसमें ज्ञान, वैराग्य और मोक्ष की अपेक्षा सांसारिक-उपलब्धियों पर विशेष बल दिया गया है। इसमें योग-साधना वाला पहलू तो बहुत पहले ही लुप्तप्राय: हो गया था, परन्तु भौतिक-साधना और दशकर्म-सिद्धि के प्रति अवश्य ही इसके साधक जागरूक रहे। एक समय ऐसा भी आया कि मात्र विषय-भोग, सुरा-सुन्दरी और चमत्कार-प्रदर्शन ही तन्त्र का उद्देश्य माना गया। अन्तत: यही स्थिति इसके पतन का कारण भी बनी।

अस्तु, इसमें कोई सन्देह नहीं कि निष्ठा और विधिपूर्वक की गयी तन्त्र-साधना के द्वारा आध्यात्मिक और भौतिक दोनों ही क्षेत्रों में सफलता प्राप्त की जा सकती है। विभिन्न देवी-देवताओं को तान्त्रिक-साधना द्वारा प्रसन्न करके साधक-जन आज भी लाभान्वित होते हैं। रोग-व्याधि के निवारण में तो हम गाँवों तक में, प्रकारान्तर से प्रचारित तन्त्र-साधना को देख रहे हैं। तरह-तरह के जादू, टोने, टोटके, मूठ, नजर, झाड़-फूँक, चुटकी और अन्य प्रयोग, जो 'अन्ध-विश्वास' और 'पाखण्ड' के नाम से बुद्धि-जीवियों द्वारा उपेक्षा की दृष्टि से देखे जाते हैं: वस्तुत: तान्त्रिक-प्रयोगों के ही रूप हैं। भले ही उनका मूल स्वरूप कुछ परिवर्तित या विकृत हो गया है, परन्तु उनकी आधार-भूमि और प्राणवत्ता आज भी सुरक्षित है।

यहाँ पाठकों की जानकारी के लिए दैनिक-जीवन में उपयोगी, कुछ ऐसे सरलतम तान्त्रिक प्रयोग प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जो मनीषियों द्वारा लोक-कल्याण की भावना से ही निर्दिष्ट हुए थे। इसमें अभिचार-कर्मों का उल्लेख श्रेयस्कर नहीं था, इसलिए उन्हें छोड़ दिया गया है। क्योंकि ऐसी साधना का वर्णन जाने-अनजाने, कहीं न कहीं मन में आपराधिक और हिंसात्मक-आचरण को जागृत कर ही देता है। केवल देवोपासना

के तान्त्रिक-आयाम तथा कुछ व्यावहारिक-साधनाओं का विवरण ही लिखा जा रहा है।

देवोपासना के तान्त्रिक-प्रयोग :

किसी देवी अथवा देवता की पूजा-अर्चना करके उसे प्रसन्न करने, उसकी कृपा पाने के लिए अनेक प्रकार के तान्त्रिक-प्रयोगों का उल्लेख तन्त्र-ग्रन्थों में प्राप्त होता है। ये तन्त्र प्रायः मन्त्र और यन्त्र-साधना से साम्य रखते हैं। इनमें इष्ट-देवता से सम्बन्धित—मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र—तीनों का अवलम्ब लिया जाता है। यह साधना अपेक्षाकृत जटिल होती है और बड़े मनोयोग, नियम-संयम तथा विविध प्रतिबन्धों के साथ ही की जाती है। तनिक-सी त्रुटि हो जाने पर भी सारा श्रम व्यर्थ हो जाता है। फिर भी दृढ़-निश्चयी और आस्थावान-साधक ऐसे प्रयोग करते ही रहते हैं। कुछ प्रमुख देवाराधन के तन्त्र इस प्रकार हैं—

बगलामुखी तन्त्र :

शाक्त तन्त्रों के अन्तर्गत दस महाविद्याओं का उल्लेख बड़े विस्तृत रूप में प्राप्त होता है। किन्तु इनकी सिद्धि के परिणाम जहाँ एक ओर सुखद-आश्चर्य की सृष्टि करते हैं, वहीं साधना विधि की जटिलता सारा उत्साह भङ्ग कर देती है। कारण यह है कि आज के युग में शान्त मन से एकान्त में बैठकर साधना, तपश्चर्या करना सामान्य-जन के लिए सम्भव नहीं रहा। तथापि अनेक ऐसे साधक अभी मौजूद हैं, जो इस प्रकार की जटिल साधनाओं द्वारा स्वयं तो लाभान्वित हैं ही, यथा-अवसर वे दूसरों का भी कल्याण करते हैं।

दस महाविद्याओं के सन्दर्भ में एक साधना है—बगलामुखी देवी की। देवी के इस नामकरण की आधार-भूमि इस प्रकार बतायी गयी है—

'बगलामुखमिव मुखं यस्यासा बगलामुखी.....' अर्थात्—शक्ति का वह स्वरूप—वह देवी—जिसका मुख बगले के मुख की भाँति हो।

कहीं-कहीं 'वलगा' शब्द से बगला की उत्पत्ति मानी गयी है। जो भी हो, देवी बगलामुखी की उपासना—मन्त्र, यन्त्र अथवा तन्त्र—किसी भी माध्यम से की जाय, निश्चित रूप से चमत्कारी-प्रभाव की सृष्टि करती है। वैसे, साधकों की मान्यता है कि यदि मन्त्र और तन्त्र का प्रयोग करते हुए 'बगलामुखी-तन्त्र' की साधना की जाय, तो विशेष प्रभाव की अनुभूति होती है। इस तन्त्र की प्रशंसा में कहा गया है—

'बगला सर्वं सिद्धिदा........सर्वान्कामान वाप्नुयात्........।'

भाव यह है कि बगलामुखी देवी का स्तवन-पूजन करने वाले भक्त (अनुष्टान कर्त्ता—साधक) की सभी मनो-कामनाएं पूरी होती हैं।

इस तन्त्र-साधना के प्रभाव से चमत्कृत होकर प्रसिद्ध आँग्ल-विद्वान—समरफील्ड ने लिखा था—'.... इस तन्त्र की शक्ति का सामना करने में विश्व की संयुक्त-शक्ति भी सफल नहीं हो सकती। यह अजेय है........।'

यद्यपि देवता सर्व-समर्थ होते हैं, और वे साधक की किसी भी कामना की पूर्त्ति करते हैं, फिर भी प्रत्येक देव-शक्ति का कोई क्षेत्र-विशेष होता है। इसी आधार पर साधक-जन—रोग-निवारण, ज्ञान-वर्द्धन, सम्पत्ति-प्राप्ति, अध्यात्म-लाभ, भौतिक-समृद्धि तथा पारिवारिक-सौख्य के लिए विभिन्न देव-शक्तियों की उपासना करते हैं। ऐसी शक्तियों में देवी बगलामुखी का तन्त्र—शत्रु-नाश के लिए प्रसिद्ध है। अपने साधक (अनुष्ठान-कर्त्ता) की आपदाओं का शमन करके उसकी सहायता करने, प्रतिकूल-परिस्थितियों को उसके अनुकूल बनाने में यह तन्त्र-साधना अनुपम है। इसकी सफलता से विभिन्न धर्मावलम्बी-जन भी प्रभावित हुए हैं। ऐतिहासिक-तत्त्वों से प्रमाणित होता है कि यवन-शासकों ने भी इस तन्त्र की शरण लेकर स्वयं को सङ्कट-मुक्त किया था। यहाँ तक कि हिन्दू-धर्म-संस्कृति के कट्टर विरोधी—मुगल बादशाह औरङ्गजेब ने भी एक बार पण्डितों के द्वारा अपने हितार्थ इस तन्त्र का अनुष्ठान कराया था। परिणाम-स्वरूप उसे जो सफलता मिली थी, वह इतिहास-ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक वर्णित है।

साधना-विधान :

ज्वालामालिनी-तन्त्र, नील-तन्त्र, डामर-तन्त्र और मन्त्र-महार्णव जैसे ग्रन्थों में बगलामुखी-साधना का जो विवरण मिलता है, वह थोड़े अन्तर से लगभग समान ही है। यहाँ आधुनिक-युग और परिवेश की दृष्टि से एक सरलतम विधि लिखी जा रही है। कोई भी साधक इसके आधार पर साधना करके देवी की कृपा प्राप्त कर सकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि साधना में सुचिता, आस्था, तन्मयता और सामग्री की शुद्धता का प्राधान्य रहे। साथ ही, मन्त्र-जप में उच्चारण निर्दोष होना चाहिए।

सर्वप्रथम रवि-पुष्य अथवा गुरु-पुष्य योग में देवी का चित्र अथवा यन्त्र प्राप्त करें। यन्त्र की रचना (ताम्र-पत्र या भोजपत्र पर) स्वयं भी कर सकते हैं। तत्पश्चात् किसी पुरोहित से उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करा लें। पूजन-सामग्री, आसन, माला, चन्दन, पुष्प, साधक के वस्त्र, प्रसाद (भोग) सब कुछ पीत-वर्ण होना चाहिए। माला हल्दी की गाँठों से भी बनाई जा सकती है। यह सब प्रारम्भिक-तैयारी कर चुकने के बाद चित्र या यन्त्र की पूजा करें। पूजनोपरान्त न्यास आदि करके (पुरोहित की सहायता भी ले सकते हैं) परम शान्त चित्त से आस्थापूर्वक निम्नलिखित मन्त्र का जप करें। सामर्थ्यानुसार अधिकतम संख्या-11, 21, 31, 51 हजार में जप पूरा करके, हवन करें, और कुमारी-कन्या को पीला-भोजन, पीले-वस्त्र और दक्षिणा दें। इस प्रकार विधिवत् की गयी तन्त्र-साधना से—सम्पत्ति-लाभ, ऋण-मुक्ति, शत्रु-पराभव, बन्धन-मुक्ति, स्तम्भन, वशीकरण आदि में निश्चित सफलता प्राप्त होती है।

मन्त्र—'ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वं दुष्टानां वाचं मुखं पदं
स्तम्भय, जिह्वां कीलय, बुद्धि विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा।'

बगलामुखी-तन्त्र की यह सरलतम विधि है। आस्थापूर्वक, देवी के प्रति प्रणति-भाव से साधना करके इसका लाभ कोई भी साधक प्राप्त कर सकता है।

प्रार्थना :

मन्त्र-जप प्रारम्भ करने के पूर्व तथा जप की समाप्ति पर, प्रतिदिन निम्न श्लोकों द्वारा क्रमशः देवी का ध्यान और स्तवन कर लेना चाहिए—

ध्यान-हेतु—मध्ये सुधाब्धि मणिमण्डित रत्नवेद्याम्,
सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम्।
पीताम्बराभरण माल्य विभूषिताङ्गीं
देवीं भजामि धृत मुद्गर वैरिजिह्वाम्॥

स्तुति-हेतु—जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं, वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन, पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि॥

इनके अतिरिक्त, भौतिक-पदार्थों के प्रयोग से सिद्ध किये जाने वाले, दैनिक-जीवन के लिए प्रयोजनीय-तन्त्र भी अनेक हैं, यथा—

रोग-निवारक तन्त्र :

इन समस्त प्रयोगों में वर्णित पदार्थ या तो निर्दिष्ट समय पर प्राप्त

किये जायें, या रवि-पुष्य योग में, अथवा अन्य किसी शुभ-मुहूर्त्त में, तभी वह अपना पूरा प्रभाव दिखाते हैं। साथ ही, उस पदार्थ को निर्दिष्ट मन्त्र से, अथवा अपने इष्टदेव के मन्त्र से अभिषिक्त कर लेना भी प्रभाव की वृद्धि करता है।

● उदर-पीड़ा के निवारण हेतु कपूर का टुकड़ा खिलाना चाहिए।

● लाजवन्ती की जड़ का छल्ला बनाकर कमर में बाँधने से आँत उतरने की व्याधि दूर हो जाती है। इस प्रयोग हेतु लाजवन्ती की जड़ शनिवार को लानी चाहिए।

● सहदेवी-पौधे की जड़ के सात टुकड़ों को लाल धागे के सहारे कमर में बाँधने वाला व्यक्ति अतिसार-रोग से मुक्त हो जाता है।

● कपड़े की पोटली में साँप की केंचुल (गेहुँवन साँप) भरकर, वह पोटली नाभि के नीचे बाँधने से संग्रहणी का विकार मिट जाता है।

● दाँये हाथ में (बीच की अँगुली में) लोहे की अँगूठी पहनने वाला व्यक्ति पथरी-रोग से बचा रहता है। यदि रोगी-व्यक्ति पहने तो वह रोग से छुटकारा पा जाता है।

● सूर्योदय से पूर्व, यदि कोई व्यक्ति चौरस्ते पर जाकर गुड़ का टुकड़ा दाँत से काटकर वहीं फेंक दे, तो वह भयङ्कर आधाशीशी की पीड़ा से मुक्त हो जाता है। इस प्रयोग में दाँत से गुड काटते समय रोगी (साधक) का मुख दक्षिण दिशा की ओर रहना चाहिए। रविवार या मङ्गलवार को यह तन्त्र विशेष प्रभावी रहता है।

● मजीठ की गाँठ माथे पर बाँधने से शिरो-पीड़ा मिट जाती है। (कुछ विद्वान इस प्रयोग में मजीठ की गाँठ पीसकर उसका लेप करने का परामर्श देते हैं।)

● सेंहुड़ की जड़ चबाने (कुचलने) से दन्त-कृमि और पीड़ा से मुक्ति मिल जाती है। किन्तु उसे चबाकर खायें नहीं, थोड़ी देर बाद थूक दें।

● पानी के छींटे चेहरे पर मारने से अथवा आकस्मिक रूप में कोई भय-आश्चर्य की बात रोगी से कह देने पर वह हिचकी-रोग से छुटकारा पा जाता है।

● सफेद घुँघुची की जड़ माथे पर बाँधने से अनिद्रा दूर होकर गहरी नींद आती है।

● प्याज की माला धारण करने वाला व्यक्ति तिल्ली-रोग से छुटकारा पा जाता है।

● अर्श (बवासीर) से पीड़ित व्यक्ति को काले धतूरे की जड़ का टुकड़ा (आधा तोला) कमर में बाँधना लाभकारी होता है।

● उपरोक्त-प्रयोग स्वप्नदोष का भी निवारण करता है।

● जायफल के 21 दाने (फल) लाल रेशमी धागे में पिरोकर पहनने से मिर्गी-रोग मिट जाता है।

● गो-शृङ्ग की अँगूठी (बाँये सींग की) मङ्गलवार के दिन दाहिनी कनिष्ठा में पहनने से मिर्गी-रोग में लाभ होता है।

● लाल हकीक (सुलेमानी हो तो—और भी अच्छा होगा) पहनने से स्मरण-शक्ति (मस्तिष्क की सक्रियता) बढ़ती है।

● फिटकरी का टुकड़ा सिरहाने रख देने से—रात में सोते समय बच्चों का डरना-चिहुँकना मिट जाता है।

● करियारी की जड़ और इन्द्रायण की जड़--इन तीनों का चूर्ण जननेन्द्रिय में रखने से मासिक-धर्म खुल जाता है।

● ब्रह्मदण्डी (ऊँटकटीरा) की जड़ पानी में पीसें। यह लेप नाभि से पेड़ू तक लगाने से पेट में फँसा हुआ गर्भ गिर जाता है।

● घोड़े की लीद का धुआँ—योनि में देने से भी अवाञ्छित गर्भ नष्ट हो जाता है।

● ओंगा के वीज का चावल भेंस के दूध में घी डालकर पकायें। यह खीर खाने वाले को कई दिनों तक भूख नहीं लगेगी।

● कमल के वीजों को चावल के साथ वकरी के दूध में पीसकर घी में हलुआ या खीर बनायें। इसको खाने से चार-पाँच दिन तक भूख का अनुभव नहीं होगा।

भय-निवारक तन्त्र :

भय एक भावनात्मक-व्याधि है। दुःख, चिन्ता, शोक, अभाव, दुर्बलता और रोग की स्थिति में यह भावना, व्यक्ति को अधिक पीड़ित करती है। ऐसी मनोदशा में कभी-कभी वह पागल हो जाता है, अथवा मृत्यु का ग्रास वन जाता है। यहाँ भय-नाशक कुछ ऐसे तन्त्र लिखे जा रहे हैं, जिनके प्रयोग से सामान्य व्यक्ति भी अपने को व्याधि-मुक्त कर सकता है। यद्यपि आज के जड़-विज्ञान का युग ऐसे तान्त्रिक-प्रयोगों पर विश्वास

नहीं करता, उसे मशीनी-सभ्यता पर ही आस्था है। परन्तु यह सत्य है कि विधिपूर्वक सम्पन्न तान्त्रिक-प्रयोगों के प्रभाव और चमत्कार को देखकर अच्छे-खासे बुद्धिजीवी और महान वैज्ञानिक भी खोपड़ी खुजाकर रह जाते हैं। योग और तन्त्र के रहस्यों का भेदन करने वाली कोई मशीन या किरण अभी तक निर्मित नहीं हो सकी है।

भय-नाशक प्रयोगों में यह आवश्यक है कि किसी भी प्रयोग से सम्बन्धित वस्तु को पहले मन्त्र द्वारा अभिषिक्त कर लें। परन्तु मन्त्र तभी प्रभावशाली होता है, जब पहले किसी शुभ मुहूर्त्त में प्रारम्भ करके उसको दस माला (108 दाने की) प्रतिदिन लगातार ग्यारह दिनों तक जप करके सिद्ध कर लिया जाय। इस जप से वह मन्त्र सशक्त हो जाता है। फिर जब कभी भयनाशक प्रयोग करना हो—सम्बन्धित पदार्थ पर सात बार उक्त मन्त्र का जप कर देने से वह वस्तु सतेज और प्रभावी हो जाती है। जप-मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ नमो अग्निरूपाय ह्रीं नमः।'

● बाँस की जड़ लाकर उसे कान पर धारण करने से शत्रु का भय मिट जाता है।

● केवड़ा की जड़ माथे पर लगाने से चोरों का भय नहीं रहता।

● रवि-पुष्य योग में प्राप्त सफेद मदार की जड़ लाकर दाहिनी भुजा पर बाँधने से सिंह-व्याघ्र आदि वन्य-पशुओं का भय नहीं रहता।

● इसी योग में कृष्ण धतूर (काले धतूरे) की जड़ लाकर दाहिनी भुजा पर बाँधने से भी हिंसक-पशुओं का भय मिट जाता है।

● आश्लेषा नक्षत्र के योग में प्राप्त की गयी आँवले की जड़ भुजा पर धारण करने वाला हिंसक-पशुओं, चोरों और राजकोप के भय से त्रस्त नहीं होता।

● निर्गुण्डी जड़ अथवा मोरपंख घर में रख दें। इस प्रयोग से घर में सर्प-निवास नहीं होगा।

● अमृत-वल्ली (गुरुच) की जड़ रवि-पुष्य योग में लाकर उसके टुकड़ों से माला बना ली जाय। इस माला को धारण करने वाले व्यक्ति को सर्प-दंश का भय नहीं रहता।

● सफेद मदार की जड़ हाथ में धारण करने वाला व्यक्ति अग्नि-भय से सुरक्षित रहता है।

● कृतिका नक्षत्र में बनायी गयी लोहे की अँगूठी पहनने से जादू, टोना, नजर और मूठ आदि का भय नहीं रहता। यह अँगूठी सदैव रक्षा करती है।

● फीरोजा अथवा हीरा धारण करने वाले व्यक्ति को साँप-बिच्छू का भय नहीं रहता। ये जन्तु उसके पास नहीं फटकते।

● धामी की जड़ आश्लेषा नक्षत्र में लाकर, हाथ में धारण करने वाला व्यक्ति समस्त प्रकार की आपदाओं से युक्त होकर भी निर्भय रहता है।

प्रेत-निवारक तन्त्र :

बुद्धि-जीवियों का एक समुदाय भूत-प्रेत-पिशाच आदि का अस्तित्त्व स्वीकार नहीं करता, परन्तु विश्व की अधिकांश जनता—सभी देशों के लोग—इन पर विश्वास करते हैं, इनके अस्तित्त्व और शक्ति को स्वीकार करते हैं। अस्तु, प्रेतबाधा-निवारक कुछ विशिष्ट तान्त्रिक-प्रयोग यहाँ लिखे जा रहे हैं। इन प्रयोगों की सिद्धि के लिए आवश्यक है कि पहले किसी शुभ मुहूर्त्त वाले दिन स्नान-पूजा के पश्चात् काली, चण्डिका, चामुण्डा या भूतेश्वरी देवी का स्मरण करते हुए निम्नलिखित मन्त्र का 1100 (11 माला) जप कर लिया जाय। इसके बाद जब कभी आवश्यकता पड़े, इसी मन्त्र को सात बार पढ़कर प्रयोग करने से भूत-प्रेतादि की पीड़ा दूर हो जायगी। सम्बन्धित वस्तुओं को भी इसी मन्त्र द्वारा प्रभावित किया जा सकता है।

'ॐ नमः श्मशानवासिने भूतादिनां पलायनं कुरु कुरु स्वाहा।'

● काले धतूरे की जड़ अथवा सफेद घुँघुची की जड़ हाथ में बाँधने से समस्त वायव्य 'आत्माओं से ग्रस्त पीड़ा दूर हो जाती हैं।

● शंखाहूली की जड़ घी में घिसकर सुँघाने से प्रेत-कोप मिट जाता है।

● लहसुन और हींग को पानी के साथ घोटकर वह लेप सुँघाने से भूत-प्रेत का आवेश उतर जाता है।

● बेल की जड़, देवदारु और प्रियंगु को एक साथ कूटकर चूर्ण बनायें। इस चूर्ण की धूनी देने से भूत-प्रेतादि दूर भाग जाते हैं।

● जिस दिन अश्विनी नक्षत्र हो, घोड़े का नाखून लायें। उसकी

धूनी प्रेत-ग्रस्त व्यक्ति के सामने देने से वह समस्त प्रकार की भौतिक-वायव्य पीड़ाओं से छुटकारा पा जाता है।

व्यापार-बर्द्धक तन्त्र :

● कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि अच्छी लागत और परिश्रम के बाद भी, दूकान-धन्धे में उन्नति नहीं होती। इसके कई कारण हो सकते हैं—स्थान-दोष, द्रव्य-दोष, मुहूर्त्त-दोष, व्यक्ति-दोष और भाग्य-दोष आदि। तन्त्र-शास्त्र ने इस समस्या पर विचार किया है, और कुछ ऐसे विकल्प निरूपित किये हैं, जिनका अवलम्ब लेकर आस्थावन-जन लाभ उठा सकते हैं। इस सम्बन्ध में कुछ अति सरल प्रयोग नीचे लिखे गये हैं—

● चमगादड़ रहने वाले वृक्ष को शनिवार की सन्ध्या को निमन्त्रण देकर रविवार को प्रातः (तड़के ही) उसकी एक डाल तोड़ ली जाय। उस टहनी को गद्दी के नीचे, दूकान में दबाकर रखें। साथ ही एक पत्ता तोड़ लें, उसे अपने सिर पर रखलें। इस क्रिया के प्रभाव से उस दूकान में समृद्धि होने लगती हैं।

● सफेद धागे में समूचा हरीमिर्च और एक कागजी नीबू (पका हुआ पीला) पिरोकर दूकान के सामने लटकाने से कुदृष्टि, जादू, टोना, अभिशाप आदि का दुष्प्रभाव मिट जाता है।

● बिल्ली का नाल तिजोरी में रखने से (रविवार के दिन) निश्चित रूप से धन की वृद्धि होने लगती है।

● किसी भी रवि-पुष्य योग के दिन से यह प्रयोग करें, और लगातार चार रविवार तक करें, तो दूकान की बिक्री बहुत बढ़ जाती है। विधि यह है कि प्रातः स्नान-पूजा के पश्चात् काले उड़द के दाने हाथ में लेकर निम्नलिखित मन्त्र का 108 बार जप करें, फिर वे दाने दूकान में बिखरा दें। दूसरे दिन उन्हें बटोर कर कहीं ताक में सुरक्षित रखलें, और बाद में उन दानों को किसी नदी-तालाब या चौराहे पर डाल दें।

मन्त्र—वीर भँवर तू चेला मेरा, खोल दुकान कहा कर मेरा।
उठे जो डण्डी, बिके जो माल, भँवर वीर सोखे नहिं जाय॥

आकर्षण-वशीकरण तन्त्र :

यद्यपि आकर्षण और वशीकरण को भी कुछ विद्वानों ने अभिचार-साधना में परिणित किया है, परन्तु ये अपेक्षाकृत सौम्य हैं—मारक या घातक नहीं। साथ ही, इनका प्रयोग शुभ, शान्ति-कर्मों के लिए भी किया जाता है। अतः हम यहाँ इस प्रकार की साधना के भी दो-चार प्रयोग प्रस्तुत कर रहे हैं, ताकि जिज्ञासु पाठकों को कुण्ठा न हो।

सर्वप्रथम किसी शुभ मुहूर्त्त में, प्रारम्भ करके मूँगों की माला द्वारा निम्नलिखित मन्त्र का 12500 जप पूरा करें। तत्पश्चात् प्रयोज्य वस्तु की आवश्यकता होने पर इसी मन्त्र से 21 बार प्रभावित करके उपयोग में लायें।

मन्त्र—'ॐ सर्वं लोक वशं कराय कुरु कुरु स्वाहा।'

● ग्वारपाठे की जड़ और भाँग के बीज पीसकर बनाया गया लेप माथे पर तिलक की भाँति लगाने से वशीकरण का प्रभाव उत्पन्न होता है।

● गूलर की जड़ को घिसकर माथे पर तिलक की भाँति लगाने से वशीकरण होता है।

● पान के रस में सिन्दूर और सफेद बच पीसकर बनाये गये लेप का तिलक वशीकरण-प्रभाव की सृष्टि करता है।

● पुनर्नवा बूटी की जड़ रवि-पुष्य योग के दिन लाकर, दाहिनी भुजा पर धारण करें, तो वशीकरण होता है।

● गोरोचन व सहदेवी का तिलक भी वशीकरण प्रभाव उत्पन्न करता है।

मन्त्र—'ॐ नमो आदि रूपाय ····(नाम)···· आकर्षण कुरु कुरु स्वाहा।'

मन्त्र-जप के समय (नाम) वाले स्थान पर सम्बन्धित-व्यक्ति का उच्चारण करें।

इस मन्त्र को किसी शुभ योग में 12,500 जपकर सिद्ध कर लें, तत्पश्चात् प्रयोज्य वस्तु पर 21 बार पढ़ें, यह क्रिया आकर्षण-प्रयोगों को शक्ति प्रदान करती है।

● काले धतूरे के पत्तों का रस निकालें और उसमें गोरोचन घोलकर, सफेद कनेर की कलम से भोजपत्र पर अभीष्ट व्यक्ति का नाम लिखें। खैर (कत्था) की लकड़ी की आग पर वह पत्र तपायें और साथ ही, उक्त मन्त्र का एक माला जप करें। इस तन्त्र के प्रभाव से वह व्यक्ति साधक के पास आ जायेगा। दूरस्थ व्यक्ति को बुलाने का यह उत्तम उपाय है।

स्तम्भन तन्त्र :

स्तम्भन-प्रयोगों की गणना वैसे तो अभिचार-कर्मों में होती है, परन्तु सौम्य, रक्षात्मक, लोकहित और आपद्धर्म की स्थिति में इनका प्रयोग किसी सीमा तक औचित्य का स्पर्श करता है। अतः प्रसङ्ग-पूर्ति और जिज्ञासु-जनों के लाभार्थ यहाँ 4-6 प्रयोग लिखे जा रहे हैं।

सर्वप्रथम निम्नलिखित मन्त्र को 21 दिनों तक दैनिक रूप में एक माला जप-कर सिद्ध कर लें, फिर अभीष्ट-प्रयोग में, सम्बन्धित वस्तु को इसी मन्त्र द्वारा 21 बार जपकर प्रभावित करलें। इस क्रिया से अभीष्ट व्यक्ति, कार्य-स्थिति में स्तम्भन का प्रभाव अवश्य आ जायेगा।

मन्त्र— 'ॐ नमो विश्वरूपाय ····(नाम)···· एनं विजयं कुरु कुरु स्वाहा।'

मन्त्र-जप के समय नाम वाले स्थान पर सम्बन्धित-व्यक्ति का नाम उच्चारण करना चाहिए।

● सफेद घुँघुची की जड़ को तर्क-वितर्क अथवा वाद-विवाद के समय मुख में रखकर वार्ता करने से प्रतिपक्षी की वाक्-शक्ति का स्तम्भन हो जाता है।

● चौलाई की जड़ को चाँदी के तावीज में धारण करने से प्रतिपक्षी का मुख-स्तम्भन हो जाता है। वह अपनी वाक्-शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता।

● चिता के अङ्गारे लेकर दो ईंटों के बीच दबाकर अतिवृष्टि वाले क्षेत्र में गाढ़ देने से मेघ-स्तम्भन हो जाता है। वहाँ वर्षा रुक जाती है।

● महुआ और भटकटैया की जड़ पीसकर सूंघने से निद्रा-स्तम्भन

होता है। शहद में भटकटैया की जड़ पीसकर सूँघने से भी निद्रा नष्ट हो जाती है।

● ऊँट के बाल किसी भी पशु के ऊपर डाल देने या उसके गले में बाँध देने से वह इधर-उधर नहीं भागता।

● मदार के दूध में भिगोया हुआ अनाज पक्षी को खिलाने से वह उड़ नहीं पाता।

● मङ्गलवार को लाल ओंगा की जड़ लाकर सहवास के समय कमर में बाँध लेने से पुरुष का शुक्र-स्तम्भन होता है।

● श्मशान में जाकर चिता से अङ्गारे निकालकर, उन पर शत्रु का नाम लेते हुए, नमक से हवन करने पर शत्रु का स्तम्भन हो जाता है।

● लाजवन्ती पौधे की जड़ रवि-पुष्य योग में लाकर चाँदी की मुद्रिका या ताबीज में धारण करने से पुरुष का शुक्र-स्तम्भन होता है।

●

8

वनस्पति-तन्त्र

वनस्पति क्या है ?

पृथ्वी पर प्रकृति ने बहुविध सृष्टि करके अपनी अद्भुत शक्ति, क्षमता और रहस्यमता प्रमाणित की है । अनेक प्रकार के जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे और कीट-पतङ्ग आदि सृष्टि प्रकृति की विचित्रता को उजागर करते हैं ।

विज्ञान-वेत्ताओं ने आज से हज़ारों वर्ष पूर्व ही, सृष्टि का विवेचन करते हुए, समस्त प्राणियों को चार वर्गों में विभाजित किया था । उनकी मान्यता थी कि संसार में चार प्रकार की सृष्टि (जीवधारी शरीर-रचना) होती है । उन्हीं चार वर्गों में सारा संसार आ जाता है । वे चारों वर्ग इस प्रकार हैं—

1. अण्डज, 2. पिण्डज, 3. स्वेदज और 4. उद्भिज ।

अण्डज—वे जीव, जो अण्डे से जन्म लेते हैं, जैसे—पक्षी, साँप, घड़ियाल और कीट-पतङ्ग । इन जीवों के मुख्य रूप में दो वर्ग होते हैं—1. उड़ने वाले, 2. रेंगने वाले । उड़ने वाले जीवों में पतिंगे और पक्षी आते हैं । रेंगने वालों में सरीसृप वर्ग के जीव— साँप, छिपकली, घड़ियाल, और गिरगिट आदि । इनकी सामान्य पहिचान यह है कि इनके शरीर में कान का अवयव (श्रवणेन्द्रिय) केवल छेद के रूप में होता है, मनुष्य और पशु के जैसे इनके कान ऊपर उभरे हुए नहीं होते । ये सभी उड़ने और रेंगने वाले जीव कान से (कान का ऊपरी भाग—तट) रहित होते हैं । इन्हें कान का छेदभर प्राप्त रहता है, बस ! उसी छेद से ध्वनि इनके मस्तिष्क में प्रविष्ट होकर इन्हें वातावरण के प्रति सजग करती रहती है । अण्डज-प्राणियों की मोटी पहिचान यही है कि इनके कान नहीं होते, भले ही वे शरीर से भारी-भरकम होते हों । घड़ियाल, मगर-मच्छ, मगरौठा,

मोह, विषखपरी, छिपकली, गिरगिट और साँप-बिच्छू आदि सभी ऐसे ही प्राणी हैं। इसी प्रकार सामान्य पक्षी—गौरैया, लालमुनिया से लेकर सारस और शुतुमुर्ग तक सब अण्डज-प्राणी हैं, क्योंकि इनके शरीर में कान का अवयव वाह्य रूप में नहीं होता।

पिण्डज—आरम्भ में पिण्ड रूप में उत्पन्न होने वाले प्राणी 'पिण्डज' कहलाते हैं। मानव-पशु और कितने ही जीव-जन्तु इसी श्रेणी में आते हैं। इनकी वर्गीय भिन्नता इस रूप में पहिचानी जा सकती है कि ये अण्डे से नहीं उत्पन्न होते, माँ के गर्भ से साकार-पिण्ड रूप में हाथ, पैर, सिर, नाक, कान आदि अवयवों सहित जन्म लेते हैं। जो भी जीवधारी—वह चाहे पशु हो अथवा मानव, यदि उसके कर्ण-पटल (कान) वाहर निकले हुए हैं, वे सब पिण्डज श्रेणी में आते हैं। मनुष्य, गाय, बैल, भैंस, बकरी, शेर, भालू, हिरन आदि सब पिण्डज जीव हैं।

स्वेदज—'स्वेद' का अर्थ है—पसीना ? स्वेद अर्थात् पसीने से उत्पन्न होने वाले, विविध कीड़े 'स्वेदज' कहलाते हैं। जूँ, चीलर, पिस्सू आदि की गणना स्वेदज-प्राणियों में की जाती है।

उद्भिज—पृथ्वी की तह फोड़कर अंकुर रूप में निकलने वाली सृष्टि 'उद्भिज' कहलाती है। वैज्ञानिकों के अनुसार यह भी प्राणवान् होती है। उद्भिज वर्ग की सृष्टि में पेड़-पौधे आते हैं। जिन्हें 'वनस्पति' कहा जाता है। पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले सभी पेड़ पौधे, लता-गुल्म, झाड़ी और घासें सब उद्भिज वर्ग के प्राणी हैं।

तन्त्र शास्त्र में उद्भिज वर्ग की विभिन्न वनस्पितियों पर शोध और अनुसन्धान करके (प्रयोग और परीक्षण करके) जो प्रामाणिक निष्कर्ष घोषित किये हैं, वे इतने विस्मयकारी, किन्तु यथार्थ की कसौटी पर खरे हैं कि बुद्धि चकरा जाती है।

प्राचीन महर्षियों ने वर्षों-दशाब्दियों का समय इन वनस्पतियों के परीक्षण में लगाया है। और अन्तत: उनके प्रति पूर्ण आश्वत होकर अपने ग्रन्थों में इनकी प्रभावशीलता का वर्णन किया है। वे वनस्पतियाँ यद्यपि अब बहुत कम रह गई हैं, फिर भी जो हैं—उन्हें यदि निर्दिष्ट विधि से प्रयोग करें, तो आज भी उनका चमत्कारी प्रभाव सामने आ खड़ा होता है। वनस्पति-विज्ञानियों, तन्त्राचार्यों और आयुर्वेदिक-धर्मज्ञों ने विभिन्न पेड़-पौधों लताओं और घासों के सम्बन्ध में छान-बीन करके आश्चर्य-जनक परिणाम घोषित किये हैं।

तन्त्र-शास्त्र में यद्यपि दैवी-शक्तियों की पूजा का विधान है, मन्त्र-जप को भी महत्त्वपूर्ण माना गया है, यन्त्र-रचना भी इसका एक अङ्ग है, किन्तु सर्वाधिक आवश्यक है—भौतिक-वस्तुओं का प्रयोग ! तन्त्र में किसी न किसी वस्तु को शक्ति-सञ्चय का माध्यम बनाया जाता है. भले ही वह चुटकी भर राख हो, धूल हो, फूल हो या कोई फल अथवा पत्थर का ढेला हो ।

आवश्यकतानुसार, तत्सम्बन्धी विधान से सामञ्जस्य रखते हुए, यदि निर्दिष्ट वस्तु का प्रयोग किया जाये तो अभीष्ट की प्राप्ति अवश्य होती है । यह अभीष्ट किसी भी तरह का हो सकता है--रोग निवारण, धनार्जन, प्रेम-स्थापन, विघटन, उच्चाटन, सम्मोहन और मारण तक ! शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, व्यावसायिक अथवा दैविक-भौतिक कोई भी समस्या हो, तन्त्र साधना के द्वारा निश्चित रूप से उसका समाधान किया जा सकता है ।

वनस्पतियों का प्रभाव :

हम अपने दैनिक जीवन में जितने भी पेड़-पौधे और घासें देखते हैं, सबमें कुछ न कुछ प्रभाव-भिन्नता अवश्य है । बबूल में काँटे हैं, आम का फल स्वादिष्ट है, 'केला' एक अलग रूप-रेखा और स्वाद वाला फल है । गेहूँ, जौ, चना आदि के पौधे--आकार फल, स्वाद और प्रभाव की दृष्टि से पर्याप्त भिन्नता रखते हैं ।

घासों का प्रभाव भी प्रमाणित है । कोई घास जानवरों का दूध बढ़ा देती है, कोई उन्हें हृष्ट-पुष्ट कर देती है. कोई दस्तावर होती है, उसको खाने से जानवर पेचिश और अतिसार से ग्रस्त हो जाता है । एक पौधा है-भाँग ! उसकी पत्ती खाने से नशा होता है । मनुष्य उसके प्रभाव में अपनी वास्तविक विचार-शक्ति, चेतना और सन्तुलन के 'विपरीत आचरण करने लगता है । इस प्रकार यह सिद्ध है कि प्रत्येक वनस्पति में कोई न कोई प्रभाव अवश्य निहित है । तन्त्राचार्यों ने उनकी खोज करके अनेक प्रकार के प्रयोग निर्धारित किये हैं ।

वनस्पति-तन्त्र की उपयोगिता :

वनस्पतियाँ प्रायः सुलभ होती हैं । यहाँ हम 'विकास' के नाम पर प्रकृति की गोद से दूर जा रहे—भौतिक चकाचौंध वाले नगरों की बात नहीं कर रहे, क्योंकि देश की अधिकांश जनता नगरों में नहीं, गाँवों में

रहती है और नगरों की संख्या तो अब बढ़ रही है, गाँव सृष्टि के आरम्भ में ही बस चुके थे। मानव का आदिम-समाज गाँवों में ही रहता था। गाँवों में वनस्पस्ति सहज-सुलभ रहती थी, अतः महर्षियों ने सारे प्रयोग जङ्गलों, ग्रामीण-क्षेत्रों में रहकर ही किये हैं। एयरकण्डीशण्ड कमरे, फोर-फाइव-स्टार होटल और महल, पैलेस उनकी कल्पना में भी नहीं थे। उनका ज्ञान-ध्यान, उनकी तपश्चर्या और उनके शोध-परीक्षण—सब यों तो उनकी कुटिया में होते थे, या खुले आकाश के नीचे—मैदान, बाटिका, सरिता-तट आदि में।

आज हम डॉक्टरों के भक्त हो चले हैं, अन्यथा पहले वैद्य-वर्ग हमारी शारीरिक-व्याधियाँ दूर करता था। छोटे गाँवों में, जहाँ वैद्य नहीं होते थे, ग्रामीण लोग ही तन्त्रोपचार से सारे रोग-विकार दूर कर देते थे। भले ही, वे पढ़े-लिखे नहीं होते थे, आज के 'डिग्री-डिप्लोमा' उस समय कल्पना में भी नहीं आते थे। लेकिन लोगों की धारणा-शक्ति प्रबल थी, जो कुछ एक बार देख-सुन लेते—जीवनभर याद रहता था। वे बुजुर्गों से, साधु-महात्माओं से या वंश परम्परा से—कहीं न कहीं, कुछ तान्त्रिक-जानकारी अवश्य प्राप्त कर लेते थे, और उसके सहारे आवश्यकता पड़ने पर तात्कालिक उपचार, समस्या का समाधान कर लेते थे।

आज हम पश्चिमी-सभ्यता, भौतिक-जड़विज्ञान और नास्तिकता के व्यूह में अपनी मानसिकता विकृत कर चुके हैं, इसलिए न तो तन्त्र पर विश्वास करते हैं, न उसका ज्ञानार्जन और उपयोग आवश्यक मानते हैं। किन्तु यह शास्त्र सर्वथा विज्ञान सम्मत, प्रामाणिक, आधार और निश्चित रूपेण प्रभावशाली है। आवश्यकता है, इसके समुचित अध्ययन, मनन और धैर्यपूर्वक प्रयोग की। आगे हम वनस्पति-तन्त्र पर कुछ ज्ञातव्य तथ्य प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. बांदा

सामान्य परिचय :

'बाँदा' एक वनस्पति है, जो भूमि पर न उगकर, किसी वृक्ष पर उगती है। इस प्रकार यह एक परोपजीवी पौधा है, जो किसी पौधे (पेड़) पर उगकर उसी के तत्त्वों से अपना पोषण करता है। आम, जामुन, महुआ आदि पेड़ों पर इसे सरलता से देखा जा सकता है। इसके पत्ते हरे, मोटे,

कड़े और आकार में कुछ लम्बे गोलाई-युक्त होते हैं। बाँदा की लकड़ी गाँठदार, छोटी और खुरदरी होती है। इसके फूल बहुत सुन्दर, गुलाबी रङ्ग के, लौंग के आकार में उत्पन्न होते हैं। ये फूल गुच्छों में होते हैं और इनके नीचे निमौली जैसा फल भी होता है।

बान्दाबडा
LORANTHUS LONGIFLORUS DESR

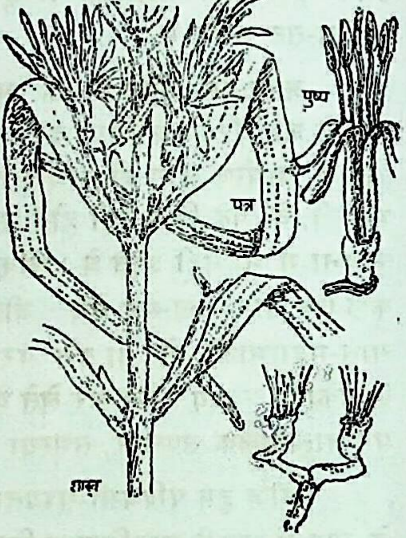

मान्यता है कि 'बाँदा' एक प्रकार का रोग-सूचक पौधा है। यह स्वयं भी रोग और शोषक है, अतः जिस पेड़ पर उगता है—उसकी वृद्धि रुक जाती है। एक प्रकार का क्षयकारी प्रभाव उस पेड़ को भीतर-ही-भीतर जर्जर करने लगता है। यही कारण है कि गाँवों के किसान अपने-आप जामुन-महुआ के पेड़ों पर उगा बाँदा देखकर, उसे काट देते हैं। बाँदा वाली डालियों (टहनियों) की काट-छाँट से उसका दूषित प्रभाव नष्ट हो जाता है। वैसे, बाँदा किसी भी पेड़ पर हो सकता है, परन्तु यह सबसे अधिक आम के पेड़ पर पाया जाता है। जामुन और महुआ में भी उगता है। किन्तु यही अन्तिम नहीं हैं, बाँदा किसी भी पेड़ पर उग सकता है। तन्त्र-शास्त्र में वृक्ष-भेद के अनुसार, उस पर उगे बाँदा के प्रयोग और प्रभावों का विस्तार से वर्णन किया गया है। हर पेड़ के बाँदा का अलग-अलग प्रभाव होता है। किन्तु सभी पेड़ों का बाँदा सुलभ नहीं होता। कुछ पेड़ों का बाँदा तो 'हीरा नीलम' जैसा दुर्लभ होता है। अस्तु, बाँदा एक तुच्छ, उपेक्षित और अनुपयोगी वनस्पति दीखने पर भी तन्त्र शास्त्र की दृष्टि में अद्‌भुत प्रभावशाली होता है। यहाँ विभिन्न पेड़ों पर पाये जाने वाले बाँदा का प्रयोग और प्रभाव लिखा जा रहा है। समर्थ साधक चाहें तो इससे लाभ उठा सकते हैं।

बाँदा : एक भ्रान्ति भी :

'बाँदा' के तान्त्रिक-प्रयोग लिखने के पूर्व उससे सम्बन्धित एक

भ्रान्ति की ओर संकेत करना आवश्यक है, अतः पहले उसी की चर्चा कर रहा हूँ।

ऊपर मैंने एक विशिष्ट वनस्पति को 'बाँदा' बताया है, जो आम, जामुन, महुआ के पेड़ों पर आसानी से देखा जा सकता है। इन तीनों पेड़ों पर उपलब्ध 'बाँदा' एक ही तरह का होता है—वही पत्ते, वही गाँठदार टहनी, वही लाल–लवङ्गाकृति फूलों का गुच्छा ! और फल भी वही नीम या जामुन के फलों के आरम्भिक रूप में ! इसे किसी से भी पूछें, वह इसका नाम—'बाँदा' ही बतायेगा। यदि इस विशिष्ट वनस्पति का नाम 'बाँदा' है, तो मानना पड़ेगा कि जब किसी पेड़ के बाँदा का उल्लेख, वहाँ उस पेड़ पर इसी बाँदा की उत्पत्ति का संकेत रहता है। परन्तु यह बाँदा अन्य वृक्षों पर नहीं देखा जाता, कदाचित् ही कहीं हो। हाँ, इसकी दो-तीन उपजातियाँ भी हैं, जो लगभग ऐसी ही होती हैं।

'बाँदा' को मैं अपने अनुभव से एक विशेष वनस्पति मानता हूँ। साथ ही, यह भी स्वीकार करता हूँ कि इसकी श्रेणी की दो-एक वनस्पतियाँ और भी हैं. जो किसी भी पेड़ पर उगकर, उसमें गाँठ पैदा कर देती हैं। टहनी, पत्ते, फूल, फल, गाँठ—ये सब बाँदा के अङ्ग हैं। परन्तु सभी पेड़ों पर सर्वाङ्ग 'बांदा' नहीं पाया जाता। केवल आम, जामुन और महुआ के पेड़ पर ही सर्वाङ्ग रूप में मिलता है। अन्यत्र या तो मिलेगा ही नहीं, या फिर केवल गाँठ के रूप में या मात्र दो-तीन पत्तियों की छोटी-सी टहनी।

सामान्यतः तन्त्र की प्रचलित पुस्तकों में 'बाँदा' की परिभाषा इस प्रकार प्राप्त होती है :—

"जब एक वृक्ष के ऊपर, किसी दूसरी जाति का पेड़ उग आता है, तो उसे 'बाँदा' कहते हैं। तथा–नीम के पेड़ पर पीपल का पौधा उग आना या पीपल पर नीम का अंकुर दीख पड़ना। इसकी उत्पत्ति में यह कारण बताया गया है कि चिड़ियाँ फल खाती हैं और वे इधर-उधर मल-त्याग करती रहती हैं। कभी-कभी उनके द्वारा लाया गया, खाया गया—पीपल, पाकर, बरगद का फल अपने बीज उस दूसरे पेड़—नीम, आम, महुआ, बेल आदि पर कहीं भी) छोड़ देता है। चिड़ियों द्वारा इस प्रकार अनजाने, निरायास ही विभिन्न फलों के बीज स्थानान्तरित होते रहते हैं। यदि कोई बीज किसी पेड़ के तने पर कहीं भी थोड़ी-सी भी धूल पा गया, तो

वह वहाँ उगकर पौधे का रूप ले लेता है। ऐसे पौधे को 'बांदा' कहते हैं। किसी भी जाति के पेड़ पर, किसी भी दूसरी जाति का स्वतः उगा हुआ पौधा 'बांदा' कहा जाता है........।"

अगर यह परिभाषा मान ली जाये, तो केवल पाकर, बरगद और पीपल ही 'बांदा' सिद्ध होते हैं, क्योंकि अधिकतर यही दूसरे पेड़ों पर उगते हैं। नीम के पेड़ पर आसानी से देखे जा सकते हैं। इसी तरह कहीं-कहीं नीम का पौधा भी उग आता है। किसी प्रकार वहाँ निमौली का बीज पहुँच जाने से अनुकूल वातावरण पाकर वह पौधे के रूप में प्रस्फुटित होकर बढ़ने लगता है। हालाँकि नीम का पौधा भी बहुत कम कहीं किसी पेड़ पर उगा देखा जायेगा। मुख्यतः पीपल, बरगद और पाकर ही उगते हैं। अपवाद-स्वरूप गूलर का पौधा भी दीख जाता है। परन्तु मेरी मान्यता है कि उन्हें 'बाँदा' कहना ठीक नहीं है। बाँदा वही है, जो आम-जामुन के पेड़ पर उगता है—और किसी फल का बीज न होकर स्वयं में एक स्वतन्त्र मौलिक वनस्पति है। अब वह दुर्लभ है या सुलभ, यह बात अलग है. परन्तु जहाँ तक 'बाँदा' वनस्पति का सम्बन्ध है, मेरी धारणा उसी विशेष पौधे के लिए समर्थन देती है। कहीं भी कोई भी, पेड़ उग आये और 'बाँदा' मान लिया जाय, ऐसा मेरी राय में, उचित नहीं होगा। अस्तु यह मैंने नितान्त व्यक्तिगत मत प्रकाशित किया है, इसकी कोई बाध्यता नहीं है, और न ही प्राचीन विद्वानों की मान्यता का खण्डन करता है। फिर भी मेरा अपना मत है कि 'बाँदा' एक विशेष वनस्पति है और वह कहीं भी मिले—अपने मौलिक रूप में ही ग्राह्य होती है। मैं यह जानता हूँ कि आम-जामुन पर उपलब्ध होने वाला बाँदा—अन्य पेड़ों पर नहीं होता। अतः यदि किसी साधक को बांदा-तन्त्र का प्रयोग करना है, तो वह या तो प्रचलित मान्यता पर आस्था रखते हुए, वाञ्छित वृक्ष के परोपजीवी पौधे को 'बाँदा' स्वीकार करके ले आये और उनका प्रयोग करे, या फिर आम-जामुन वाली विशेष-वनस्पति की खोज करे। वह तो निश्चित रूपेण 'बाँदा' है ही। यदि वह मिल जाय, तो फिर कहना ही क्या है। अस्तु, सर्व प्रथम अपने को आश्वस्त करें (किसी विद्वान्, तान्त्रिक, वनस्पति-शास्त्रों, वैद्य से भी परामर्श ले लें) कि बांदा किसे कहते हैं और मेरी साधना के लिए वाञ्छित बाँदा कहाँ मिलेगा?

अभीष्ट 'बाँदा' प्राप्त करके, उसे विधिवत् प्रयोग किया जाये, तो सचमुच, लाभ होता है।

बाँदा-तन्त्र में मुहूर्त का महत्त्व :

अपनी साधना के लिए वाञ्छित 'बाँदा' की खोज करें कि वह कहाँ हैं। फिर उससे सम्बन्धित शुभ-मुहूर्त में उसे, पूर्व निमन्त्रण देकर ले आयें और निर्दिष्ट विधि से प्रयोग करें। मुहूर्त-निर्धारण में नक्षत्र का विशेष ध्यान रखा जाता है। जैसा कि आगे लिखा जायेगा, प्रयोग-भेद से, वृक्ष-भेद से—प्रत्येक बाँदा के लिए अलग-अलग नक्षत्र की उपयोगिता का निर्देश मिलता है। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने दशाब्दियों तक अनुसंधान करके, शोध-परीक्षण के पश्चात् ये नियम-सिद्धान्त और प्रतिफल घोषित किये हैं। अतः ये असंदिग्ध और अकाट्य हैं, हाँ, इनकी विधि कहीं-कहीं अस्पष्ट है। अतः साधक भ्रमवश साधना में त्रुटि कर बैठता है। ऐसी भ्रामक स्थिति से त्राण पाने के लिए ही गुरु की महत्ता प्रतिपादित की गयी है। गुरु ऐसे विषयों का ज्ञाता होगा, तो अवश्य ही समस्या का समाधान बता देगा। इसलिए गुरु का निर्वाचन भी बहुत छानवीन के बाद करने का परामर्श दिया गया है।

जाति-भेद से बाँदा का प्रयोग :

आम, जामुन, महुआ, बेल, सिरस, पीपल, बरगद, कटहल, पाकर इमली आदि विभिन्न प्रकार के पेड़ हमारे देश में पाये जाते हैं। तन्त्राचार्यों ने स्वानुभव के आधार पर घोषित किया है कि प्रत्येक पेड़ पर उगा हुआ 'बाँदा' अपना एक विशिष्ट प्रभाव रखता है। उन्होंने, उपलब्ध लगभग सभी वृक्षों के 'बाँदा' का प्रयोग-परीक्षण किया होगा, उसी के आधार पर सबके प्रयोग-फल बताये हैं। उदाहरण के लिए, कुछ प्रमुख पेड़ों पर उत्पन्न होने वाले 'बाँदा' की प्रयोग-विधियों और उनकी प्रतिक्रिया (प्रभाव-शीलता) का वर्णन किया जा रहा है :—

बदरी बाँदल (बेर का बाँदा) :

'बदरी' संस्कृत का शब्द है। इसका अर्थ होता है—बेर 'बाँदल' शब्द भी संस्कृत का है, जो 'बाँदा' के लिए प्रयुक्त होता है। इस प्रकार 'बदरी बाँदल' से बेर के पेड़ पर उत्पन्न बाँदा का आशय समझना चाहिए।

यह कठिनाई से मिलेगा। खोज करें, कदाचित् मिल ही जाये। बेर के पेड़ पर (उसके किसी शाखा-सन्धि-स्थल पर) यदि किसी भी दूसरी जाति का पौधा उगा है, तो उसे बेर का बाँदा मान लें, और स्वाति

नक्षत्र में उसे ले आयें। लाने के एक दिन पूर्व सन्ध्या को उसे निमन्त्रण दे आयें कि—'हे दिव्य वनस्पति ! मैं अपनी कार्य-सिद्धि के लिए कल प्रात: आपको लेने आऊँगा। कृपया मेरे साथ चलकर, मेरी सहायता करें।' फिर दूसरे दिन, बिना किसी से बोले, निपट अकेले ही, जिस समय स्वाति नक्षत्र चल रहा हो, उस पेड़ के पास जाकर, 'बाँदा' तोड़ लायें। उसे घर लाकर 'देव-प्रतिमा' की भाँति स्नान करायें, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप से पूजा करें, फिर अपने इष्टदेव का मन्त्र जपें। वैसे, वनस्पतियों के भी मन्त्र होते हैं। बाद में, वह 'बाँदा' लाल कपड़े में लपेट कर, शरीर पर कहीं (भुजा, कण्ठ, कमर, सिर) भी धारण कर लें। यह 'बाँदा' धारण करके, यदि किसी से विनम्रता पूर्वक (हाथ जोड़कर, सभ्यता के साथ) कोई सहायता माँगी जाय, तो अवश्य प्राप्त होती है। यह प्रयोग अनुकूलन प्रदान करता है।

बहुवार का बाँदा :

पता लगायें, यदि कहीं बहुवार के पेड़ पर उगा हुआ बाँदा दीख पड़े तो उसे मघा नक्षत्र वाले दिन, पूर्व-वर्णित विधि से घर ले आयें और पूजा करके लाल कपड़े में लपेटकर तिजोरी, कोष, भण्डार, आल्मारी, गल्ला—कहीं भी रख दें तथा नित्य धूप-दीप देते रहें। इसे भुजा या गले में धारण भी किया जा सकता है। बहुवार का बाँदा धन-वृद्धि के लिए प्रसिद्ध है। यह स्वयं भले ही दुर्लभ है, परन्तु मिल जाये, तो प्रयोग करने पर पर्याप्त श्री-समृद्धि देता है। यह बाँदा जहाँ रहेगा—धन की कमी नहीं होने पायेगी।

बरगद का बाँदा :

बरगद पेड़ का बाँदा आर्द्रा नक्षत्र के दिन लायें और विधिवत् पूजा करके, भुजा पर धारण करें। यह बाँदा—श्रम, संघर्ष, युद्ध आदि में सदैव रक्षक और विजयदायी होता है। शारीरिक-सुरक्षा, शक्ति-बर्द्धन और साहस उत्पन्न करने में यह प्रयोग अद्भुत प्रभाव दिखाता है।

हारसिंगार का बाँदा :

यह दुर्लभ बाँदा है। परन्तु यदि किसी को कहीं दीख जाये, तो समझें कि उसके लिए लक्ष्मी का कृपा-कटाक्ष प्राप्त हो चुका है। हस्त नक्षत्र वाले दिन, इसे (हारसिंगार का बाँदा) ले आयें और पूजनोपरान्त लाल कपड़े में लपेटकर बक्स में रख दें। यह बाँदा—बक्स, आलमारी,

गोलक, कोष, गल्ला, बखरी, घर, भण्डार, जहाँ भी रखा जायेगा—धन-समृद्धि का मार्ग खोल देगा। भुजा अथवा कण्ठ में धारण करने पर व्यक्ति को धनागम के अनेक स्रोत प्राप्त हो जाते हैं।

शिरीष का बाँदा :

शिरीष को सिरसा, सिरस, शिरस और सेरसा भी कहते हैं। यह एक भारी-भरकम और ऊँचा पूरा वृक्ष होता है। इसकी फलियाँ सेम जैसी, बहुलम्बी, पतली, चटपटी होती है। यह पेड़ अपनी शोभा के लिए प्रसिद्ध है। भीषण गर्मी में (अप्रैल-मई में) यह फूलता है। इसके फूल बड़े, कोमल, सुन्दर और आकर्षक होते हैं। शिरीष-पुष्प को कवियों ने विभिन्न उपमाओं के लिए प्रयुक्त किया है। प्राचीन-काल में मुनि-बालाएं, वन-कन्याएं—शृंङ्गार के लिए इसके फूल कानों में पहिनती थीं। राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला से भेंट के बाद, अपने राजभवन में रहते हुए, एक दिन भाव-विभोर होकर शकुन्तला का चित्र बनाया। जब चित्र पूरा हो गया, तो उसकी शोभा-निरखते समय राजा को ध्यान आया कि शकुन्तला के कान आभूषण रहित हैं, जब कि वह पुष्पाभरण पहिने हुए थी। तब राजा ने अपने मित्र से कहा—

बान्दा.
LORANTHUS GLOBUSUS ROXB

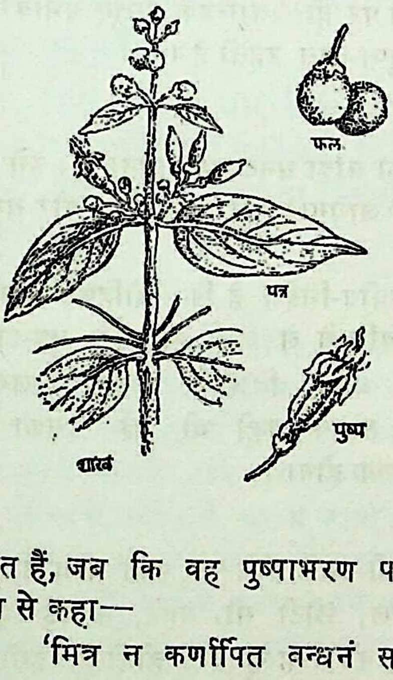

'मित्र न कर्णार्पित वन्धनं सखे,
शिरीषमागण्ड विलम्ब केशाम्।'

इस प्रकार शिरीष-पुष्प को शोभा, सौन्दर्य और कोमलता के लिए पौराणिक-काल से ही मान्यता प्राप्त है। तो, शिरीष का बाँदा पूर्वाभाद्रा नक्षत्र में लाकर, विधिवत् पूजनोपरान्त सिर पर धारण करने से समस्त प्रकार के चिन्ता-भय नष्ट हो जाते हैं।

थूहर का बाँदा :

यह बाँदा शाब्दिक सामर्थ्य बढ़ाकर वाणी को सम्मोहक बनाता है। हाजिर-जबाबी (प्रत्युत्पन्न-मतित्व), प्रभावशीलता, सम्मोहन, दूर-दर्शिता, मेधा, चिन्तन-शक्ति और वाक्‌चातुरी बढ़ाने में यह बाँदा चमत्कारी सिद्ध होता है। ध्यान रहे कि ये सभी प्रयोग विधिवत् किये जाने पर ही लाभकारी होते हैं। कोई भी वनस्पति लानी हो, एक दिन पूर्वसन्ध्या को उसके पास जाकर निमन्त्रण दे आयें, फिर दूसरे दिन उपयुक्त मुहूर्त्त में, स्नानादि से शुद्ध होकर, वहाँ जायें और उसे ले आयें। घर लाकर उसे विधिवत् स्नान करायें, चन्दन, पुष्प, धूप, अक्षत, पुष्प, घृत, दीप आदि से पूजा करें, वाञ्छित मन्त्र जपें (यदि मन्त्र का निर्देश नहीं है, तो शिवजी या दुर्गाजी का मन्त्र कम-से-कम 11 माला जप लें। इस प्रकार विधिवत् पूजा किये जाने पर ही—तान्त्रिक वस्तुएं प्रभावशाली हो पाती हैं, अन्यथा इनकी शक्ति सुप्त-लुप्त रहती है।

उदुम्बर-बाँदाल :

उदुम्बर अर्थात् गूरल वृक्ष का बाँदा धनदायक होता है। इसे जहाँ भी स्थापित किया जायगा (रखा जायेगा) वहाँ धन, धान्य और सम्पदा की वृद्धि अवश्य होगी।

इसके लिए मान्यता है, शास्त्रीय-निर्देश है कि 'रोहिणी' नक्षत्र के दिन, गूलर वृक्ष का बाँदा पूर्वोक्त विधि से ले आयें और उसे धूप-दीप से पूजित करके भण्डार में रख दें। बक्स, तिजौरी, गल्ला, आलमारी, रसोई-घर, भण्डार, अन्न-भण्डार, गोलक कहीं भी रखें—इसका दिव्य प्रभाव निश्चित रूपेण धन-धान्यदायक होगा।

कुश का बाँदा :

कुश एक घास है। कभी-कभी इसके पौधे पर, कहीं बीच में, पत्ती निकलने वाले स्थान पर—एक गोल, छोटी सी, गहरे, कत्थई रङ्ग की गाँठ बन जाती है। यह गाँठ रुद्राक्ष की तरह खुरदरी होती है, इसी गाँठ को 'कुश का बाँदा' कहते हैं। मैंने इसे कई बार देखा है। अगर कुश के पौधे सहित यह गाँठ लाकर घर में रखी जाये, तो दरिद्रता दूर भाग जाती है। परन्तु यह दुर्लभ पौधा है, कदाचित ही कहीं मिल पाता है। मैंने एक बार एक बाबा के पास 20 पौधे देखे थे। सब बिल्कुल नये थे—लगभग डेढ़-डेढ़ फुट लम्बे उन सर्वथा नये कुश-पौधों में सुपारी से लेकर,

झरबेरी के आकार तक की, प्रत्येक पौधे में एक गोल गाँठ—प्राकृतिक रूप में उत्पन्न थी। वैसे, तान्त्रिक वस्तुएं बेचने वालों के पास, खोजने से यह मिल जाता है, परन्तु बहुधा पुराना, टूटा हुआ, छिन्न-भिन्न, विकृत और कुरूप—आभाहीन होता है। अगर कहीं अच्छा, साफ, सुडौल, अभङ्ग कुश का बाँदा प्राप्त हो सके, तो उसे 'भरणी' नक्षत्र के दिन लाकर, विधिवत् पूजन करें, फिर भण्डार या बक्स में रख दें। यह बहुत ही प्रभावी वस्तु है। मेरी माताजी ने इसका प्रयोग किया था। बाद में, मेरी पत्नी ने भी इसकी विस्मयकारी दिव्यता का अनुभव किया। प्रतिबन्ध यही है कि बाँदा अपने में पूर्ण हो, छिन्न-भिन्न नहीं। मुहूर्त्त (भरणी नक्षत्र) का भी ध्यान रखना चाहिए।

आम का बाँदा :

किसी रविपुष्य योग के दिन विधिवत् आम का बाँदा लायें। उसे घर लाकर, धूप-दीप से पूजा करें, फिर सुरक्षित रख दें। यह बाँदा भुजा पर बाँधने से कार्य में सफलता मिलती है। इस प्रयोग को 'विजयदायक' कहा गया है।

अनार का बाँदा :

अनार के पेड़ का बाँदा दुर्लभ वस्तु है। फिर भी यदि किसी को प्राप्त हो जाये, तो वह इसका लाभ उठा सकता है। नियम यह है कि जिस दिन ज्येष्ठा नक्षत्र हो, अनार का बाँदा ले आयें और उसे विधिवत् पूजा करके, घर के मुख्य द्वार (किसी आले पर) सुरक्षित रूप में रख दें। इस प्रयोग के प्रभाव से, घर में आया हुआ दुर्भाग्य, दुष्ट ग्रहों का प्रभाव, नजर-टोना, अभिशाप सब समाप्त हो जाता है। जिस घर में अनार का बाँदा रहता है, वहाँ के सदस्य-बच्चे सब नीरोग रहते हैं। नजर, टोटका, अभिचार आदि का सारा दुष्प्रभाव शान्त होकर, वहाँ सौभाग्य की वृद्धि होती है।

बड़ का बाँदा :

यह परम पोषक होता है। अश्विनी नक्षत्र के दिन उसे विधिवत् ले आयें और धूप-दीप से पूजा करके रख दें। यह औषधीय घटक के रूप में विख्यात है। जिस दिन लायें, उसी दिन से पूजनोपरान्त इसे पत्थर पर डालकर घिसें। चन्दन जैसा लेप बन जाने पर, वह लेप दूध में मिला

लें और पी जाएं। मान्यता है कि बड़ का बाँदा दूध में घिसकर पिया जाय तो शारीरिक-शक्ति बढ़ जाती है। यह प्रयोग बुढ़ापे को दूर भगाकर शरीर को युवा (सबल) बना देता है।

कपित्थ बाँदाल :

कपित्थ वृक्ष पर उगा हुआ (कैथ के पेड़ पर उत्पन्न) बाँदा शस्त्र-स्तम्भक होता है। इसे 'कृतिका' नक्षत्र में ले आयें और पूजा करके रख दें। यह बाँदा धारण करने वाला व्यक्ति कभी शस्त्राघात से नहीं मरता। जिसने इसे धारण कर रखा हो, वह शत्रुओं के मध्य घिर जाने पर भी उनके प्रहारों से आहत नहीं होता। वस्तुतः उस व्यक्ति पर हथियार कारगर नहीं होते।

सम्हालू का बाँदा :

वैसे, 'सम्हालू' चावलों की एक जाति है, जैसे बादशाह-पसन्द, रामभोग, हंसराज, गुटमुर्री, बासमती आदि। परन्तु हमारा वर्ण्य-विषय 'चावल' न होकर, 'सम्हालू' नाम की एक स्वतन्त्र वनस्पति है। यह पौधा सड़कों के किनारे कहीं-कहीं स्वतः उगता है। सरपत, बलुही-जमीन, झाड़-झंखाड़ और छोटे-मोटे नालों की तलहटी में यह अपने आप उगता है। अरहर की भाँति इसका पेड़ काफी हरा-हरा दीखता है। इसी पुस्तक में अन्यत्र सम्हालू का वर्णन, 'निर्गुण्डी' शीर्षक से किया गया है। उस निर्गुण्डी अथवा सम्हालू के पौधे पर भी बाँदा उग आता है। यदि आपको निर्गुण्डी अर्थात् सम्भालू का बाँदा दीख पड़े तो उसे विधिपूर्वक ले आयें। पर्व-निमन्त्रण और शुभ-मुहूर्त्त का प्रतिबन्ध इसमें भी रहता है।

जब भी आपको निर्गुण्डी पौधे पर बाँदा दीख पड़े, उसकी रक्षा करें। जिस दिन हस्त नक्षत्र हो, उसे घर ले आयें और विधिवत पूजा करके रख लें। यह बाँदा धनदायक होता है। इसे ताबीज या किसी भी रूप भी धारण करने से व्यक्ति को धनाभाव का क्लेश नहीं उठाना पड़ता है। आर्थिक-समृद्धि के लिए यह परम लाभकारी प्रयोग है। परन्तु निर्गुण्डी का बाँदा सहज सुलभ नहीं होता, बिरले भाग्यवान् को ही प्राप्त होता है।

अनार का बाँदा (2)

ऊपर अनार के बाँदा का एक प्रयोग लिखा जा चुका है, जो भौतिक और वायव्य व्याधियों के निवारण में सहायक होता है। यहाँ नक्षत्र-भेद

से उसकी एक भिन्न-साधना लिखी जा रही है। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में, अनार का बाँदा विधिवत ले आयें और उसे पूजनोपरान्त घर में रखें अथवा किसी रूप में शरीर पर धारण करें। इस (पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में प्राप्त और पूजित अनार का बाँदा) तन्त्र का प्रयोग व्यक्ति की आर्थिक-स्थिति में सुखद-परिवर्त्तन कर देता है। धन-सम्पत्ति और वैभव प्राप्त करने के इच्छुक जन इस बाँदा का प्रयोग करके लाभ उठा सकते हैं।

बिदारीकन्द का बाँदा :

जङ्गलों में एक लता होती है— बिदारी कन्द ! इसके पत्ता पान की भाँति होते हैं। इसकी जड़ शकरकन्द की भाँति गाँठों वाली होती है। शकरकन्द चिकनी, सफेद (लाल भी) कोमल और मीठी होती हैं, जब कि बिदारी-कन्द (और वाराही-कन्द भी) की जड़ खुरदरी, काली, कुरूप और स्वाद में कटु होती है। बिदारी-कन्द का प्रयोग शक्ति-वर्द्धक औषधियों में किया जाता है। अब जङ्गल समाप्त हो चले है, किन्तु यदि कहीं इसके पौधे मिलें और कोई व्यक्ति इसकी जड़ खोद लाये, तो उसका चूर्ण सेवन करके शारीरिक-शक्ति बढ़ा सकता है। किन्तु यहाँ मेरा उद्देश्य उसके औषधीय-प्रयोग का वर्णन न करके, उसके बाँदा की विशेषता पर प्रकाश डालना है।

हाँलाकि बिदारीकन्द का बाँदा मिलना बहुत ही कठिन (असम्भव जैसा) है, क्योंकि इसकी लता पर कोई अन्य परोपजीवी पौधा उगने की स्थिति-सम्भावना बहुत कम रहती है। फिर भी यदि कहीं मिल जावे, तो उसे पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में, विधिवत् (तान्त्रिक-विधि का उल्लेख पूर्व में कई बार किया जा चुका है) ले आयें और पूजा करके घर में रख दें।

धन-वृद्धि के लिए तन्त्र-शास्त्र में इस प्रयोग को बहुत प्रभावशाली माना गया है।

कपास का बाँदा :

इस बाँदा की प्राप्ति भी असम्भव प्राय: है, क्योंकि कपास के पौधे पर कोई परोपजीवी पौधा उगने की सम्भानना बहुत ही कम रहती है। इस बाँदा का जो प्रभाव तन्त्र-ग्रन्थों में वर्णित है, वह भी संशयात्मक प्रतीत होता है। सम्भव है, इसकी विधि में कुछ गोपयीयता बरती गयी हो क्योंकि जैसा प्रयोग लिखा मिलता है, उसके तथाकथित परिणाम को संदिग्ध ही कहा जायेगा। अस्तु, प्रसङ्गपूर्ति के लिए वह विवरण भी

प्रस्तुत है—'भरणी नक्षत्र के दिन कपास का बाँदा तान्त्रिक-विधि से लायें और उसकी पूजा करें। इसे धारण करने पर व्यक्ति उपस्थित रहते हुए भी सामने वाले की दृष्टि से ओझल हो जाता है। अर्थात् यह बाँदा 'अदृश्यीकरण' में सहायक है।

रोहित का बाँदा :

ठीक कपास के बाँदा जैसा विवरण, रोहित वृक्ष के बाँदा का भी प्राप्त होता है। तन्त्राचार में कहा गया है कि यदि कोई साधक रोहित वृक्ष का बाँदा 'अनुराधा' नक्षत्र में विधिवत् लाकर, पूजनोपरान्त धारण करे, तो वह इच्छानुसार अदृश्य हो जाता है। मेरा अपना विचार है कि इन दोनों प्रयोगों (कपास और रोहित का बाँदा) में या तो कहीं कोई प्रयोग-विधि लुप्त-गुप्त है, या इसमें कोई प्रतीकात्मक संकेत है। फल-वर्णन में अतिशयोक्ति की सम्भावना भी मानी जा सकती है। वैसे, इस प्रयोग में कुछ न कुछ सत्यांश अवश्य है, कोरी कल्पना अथवा भ्रमजाल कहकर इसे टाला नहीं जा सकता। अदृश्यीकरण प्रयोग के और भी कई उल्लेख तन्त्र-ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं, जिनमें कोई विशेष गुटिका मुख में धारण करते ही व्यक्ति के अदृश्य हो जाने का प्रभाव बताया गया है। इस सन्दर्भ में एक तथ्य और स्मरणीय है—वस्तुओं पर देश, काल, स्थान, जलवायु, प्रयोक्ता, भावना, समकालीन वातावरण, प्रयोज्य घटकों की शुद्धता त्रुटि, प्रयोग-विधि और मुहूर्त्तादि का प्रभाव अवश्य पड़ता है। जो प्रयोग असफल हो जाते हैं, उनकी पृष्ठभूमि में, जाने-अनजाने ऐसा ही कोई विघ्न उत्पन्न हो जाता है, जो साधक के सारे श्रम को व्यर्थ और वर्णित प्रयोग को विवादग्रस्त, अविश्वसनीय बना देता है। मेरा मत है, ऐसी संदिग्ध और असम्भव प्राय: साधना के लिए श्रम न करके—कोई सात्त्विक प्रयोग किया जाय, जो साधक को सुख-शान्ति दे सके। अदृश्य हो जाने की शक्ति प्राप्त होते ही आज (भौतिक-युग) के स्वार्थान्ध मानव निश्चय ही उसके दुरुपयोग की ओर प्रवृत्त होंगे। इस क्षमता का उपयोग आज के आपराधिक युग में किसी दुष्कामना की पूर्ति के लिए होगा। सम्भव है, ऐसी ही किसी स्थिति की कल्पना करके, उसका पूर्वाभास पाकर मनीषियों ने इस तरह के प्रयोगों को जान-बूझकर अस्पष्ट बनाये रखा हो।

शाखौट बाँदा का प्रयोग (1)

ऊपर 'कपास' और 'रोहित' वृक्षों से प्राप्त होने वाले बाँदा की साधना में बताया गया है कि प्राचीन तन्त्राचार्यों ने इन प्रयोगों को 'अदृश्यीकरण सिद्धि' का दाता घोषित किया है। वैसा ही, एक प्रयोग और भी है --'शाखौट वृक्ष का बाँदा' मृगशिरा नक्षत्र के दिन तान्त्रिक-विधि से लाकर, शोधन-पूजन द्वारा सिद्ध करलें। तदुपरान्त पान के पत्ते में लपेट कर, गुटिका की भाँति मुख में धारण करें। कहा गया है कि इस प्रयोग से साधक को अदृश्य हो जाने की क्षमता प्राप्त हो जाती है। अर्थात् पूर्ववर्णित प्रयोगों की भाँति यह भी अदृश्यीकरण प्रयोग है।

शाखौट बाँदा का प्रयोग (2)

शाखौट का बाँदा जहाँ अदृश्यीकरण के लिए प्रयोज्य बताया गया है, वहीं यह पृथ्वीतल में छिपे (भूगर्भ स्थित) धन (गड़े हुए खजाने) का पता भी देता है। इस प्रयोग के लिए उक्त बाँदा 'अनुराधा' नक्षत्र के दिन लाया जाता है। सबसे पहले अनुराधा नक्षत्र (योग) में इसे (शाखौट) वृक्ष पर से नियमानुसार निमन्त्रित करने के पश्चात घर ले आयें। तदुपरान्त उसकी पूजा करें। बाद में, उसी दिन या फिर रवि-पुष्य योग हो, 'गोरोचन' नामक पदार्थ के साथ, इसे (वही बाँदा) साफ पत्थर पर घिसकर आँजन जैसा बना लें। स्नान-पूजा के उपरान्त ही यह आँजन तैयार करें, फिर देवी-देवताओं का स्मरण करते हुए, आँखों में आँज लें। इस अञ्जन से युक्त आँखों वाला साधक यदि ऐसे स्थान पर खोज करे, जहाँ भूगर्भ है धन छिपा होने की सम्भावना हो, तो यदि सचमुच वहाँ धन है, तो उस व्यक्ति को अवश्य दृष्टिगोचर होगा। गुप्त-धन का पता लगाने के लिए तन्त्र-ग्रन्थों में यह तथा ऐसे ही और भी कई प्रयोग वर्णित हैं। परन्तु मेरी समझ में ये प्रयोग सर्वसाधारण के लिए सुलभ-सुकर नहीं है। 'शाखौट' का पेड़ ही मुश्किल से मिलेगा, फिर उस पर बाँदा की उपलब्धि भी कल्पनातीत मालूम होती है। अत: ऐसे दु:साध्य प्रयोगों से सामान्य व्यक्ति को लाभ नहीं हो सकता।

वच का बाँदा :

'वच' भी एक वनस्पति है। यह दो प्रकार की होती है—कड़ुवी और मीठी ! मीठी वच शक्तिशाली, मेधा-वर्द्धक, स्मरण-शक्ति को जगाने

वाली और कण्ठ-शोधक होती है। जब कि कड़ुवी वच (इसे घोड़-वच भी कहते हैं) विषाक्त होती है। इसे पीसकर लेप करने से बालों के जुँए मर जाते हैं। इसका लेप अधिक मात्रा में खा लेने पर मृत्यु हो सकती है। तान्त्रिक तथा औषधीय प्रयोगों में मीठी वच का प्रयोग होता है। वच के विषय में नीति-ग्रन्थों में भी बहुत प्रशंसात्मक वाक्य प्राप्त होते हैं। त्वरित प्रभावशीलता वाली वस्तुओं का वर्णन करते हुए कहा गया है :—

"सद्यः प्रज्ञा हरा तुण्डी, सद्यः प्रज्ञा करी वचाः।
सद्यः शक्ति हरा नारी, सद्यः शक्तिकरं पयः॥"

इस श्लोक में 'सद्यः प्रज्ञाकारी वचाः' पर ध्यान दें। आशय यह है कि वच का सेवन करने से तत्काल प्रज्ञा (बुद्धि, धारणाशक्ति) बढ़ जाती है। ब्राह्मी बूँटी को भी इस गुण से युक्त माना गया है। यह प्रभावशीलता ठीक वैसी ही है, जैसी विजया (भाँग) में होती है। सेवन के थोड़ी देर बाद ही मस्तिष्क का स्नायु-तन्त्र प्रभावित हो जाता है। और व्यक्ति की चेतना में परिवर्त्तन हो जाता है। ऐसा कुछ प्रभाव 'वच' में है, जो सेवनोपरान्त तत्काल मस्तिष्क को सक्रिय, सजग (नशे में नहीं, सहज चेतन, सशक्त) बना देता है।

स्वर-साधना में भी 'वच' को परम लाभकारी कहा गया है। मेरे क्षेत्र के प्रसिद्ध वैद्य और सङ्गीतज्ञ—'अम्बिकाप्रसाद जी' ने मुझे एक नुस्खा (मेरे सङ्गीत-प्रेम को लक्ष्य करके) बताया था, उसमें भी 'वच' का वर्णन था :—

"अद्रक, भद्रक, पीतरसं,
वच, वाकुचि ब्राह्मी, सद्य घृतम्।
यदि इच्छित कोकिलनाद स्वरम्,
पिब माघ चतुर्दश कृष्ण दिनम्॥"

इस प्रकार 'वच' बुद्धि-बर्द्धक और स्वर-शोधक मानी गयी है। 'वच' के पौधे पर भी 'बाँदा' का उगना सम्भव है, हालांकि यह भी दुर्लभ वस्तु है। अगर कहीं मिल जाय, तो उसे ले आयें। 'वच' का बाँदा लाने का मुहूर्त्त नक्षत्राधारित न होकर, 'ग्रहणाधारित' है। अर्थात् किसी भी 'ग्रहण' के दिन (उत्तम होगा कि 'ग्रहण काल' में ही, वह चाहे सूर्यग्रहण हो, अथवा चन्द्रग्रहण) उसे लाकर, विधिवत् पूजा करें और सुरक्षित रख दें। बाद में, इसे पीसकर चूर्ण बनाएं और प्रातः सूर्योदय के पूर्व 3 माशा

की मात्रा में 6 माशा शुद्ध गौ-घृत मिलाकर सेवन करें, ऊपर से ताजा (धारोष्ण) गो-दुग्ध पियें। यह प्रयोग लगातार सात दिनों तक करें। (वैसे, मैं तो मानता हूँ कि 21 दिनों तक करना चाहिए) यह प्रयोग व्यक्ति की वाक्-शक्ति बढ़ा देता है। जो लोग स्वरभङ्ग, उच्चारण-दोष, हकलाहट, जिह्वा-कष्ट अथवा वाणी-सम्बन्धी किसी भी व्याधि से ग्रस्त हों, वे इस प्रयोग से सुवक्ता, स्पष्ट, मधुर कण्ठ-स्वर वाले और वाग्मी हो जाते हैं।

बिल्व बाँदल :

बेल का बाँदा भी अदृश्यीकरण-साधना के लिए उपयोगी बताया गया है। इसको 'अश्विनी' नक्षत्र के दिन विधिवत् लाकर, पूजनोपरान्त भुजा पर धारण करना चाहिए। प्रयास किया जाय, तो कदाचित् बेल का कोई बाँदा भी मिल जाये, परन्तु मुझे इस विवरण में भी कहीं कोई अस्पष्टता, गोपनीयता, प्रतीकात्मकता और कूट-दृष्टान्त की झलक मिल रही है। अन्यथा अब तक कोई न कोई साधक इस सिद्धि का स्वामी बनकर प्रकाश में आ चुका होता। बेल के पेड़ अपने देश में बहुत हैं, और खोजने पर कहीं न कहीं बेल का बाँदा भी मिल सकता है। किन्तु आज तक कहीं किसी के अदृश्य होने का समाचार नहीं मिला। वस्तुतः इन प्रयोगों में कहीं-कहीं जान-बूझकर महर्षियों ने ऐसे रहस्य निहित कर दिये हैं कि कोई इनका दुरुपयोग न कर सके। वैसे, प्रत्येक तन्त्र अपने में परीक्षित और अनुभूत होने पर ही ग्रन्थों में वर्णन का विषय बन पाया है।

अशोक का बाँदा :

पूर्ववर्णित तान्त्रिक-पद्धति से, 'उत्तराषाढ़ा' नक्षत्र के दिन अशोक वृक्ष का बाँदा ले आयें। उसकी पूजा करें और प्रतिदित प्रातः सूर्योदय के पूर्व, स्नान-पूजा से निवृत्त होकर, उसे पीसकर पियें। यह प्रयोग साधक को अदृश्य होने की क्षमता प्रदान करता है।

नीम का बाँदा :

नीम के पेड़ पर यदि बाँदा दीख पड़े तो उसे 'ज्येष्ठा' नक्षत्र के दिन ले आयें और घर के बाहर कहीं साफ जगह पर धूप-दीप से पूजा कर लें (किसी-किसी ग्रन्थ में पजा का प्रतिबन्ध नहीं है)। तदुपरान्त उसे विरोधी के शरीर पर डाल दें। (उससे स्पर्श करा दें। यह प्रयोग बहुत

ही दुखद, दुर्भाग्यकारी और पीड़क होता है। जिस व्यक्ति पर यह बाँदा डाला जायेगा उसको तत्काल ही दुर्भाग्य-ग्रस्त कर लेगा। फिर उसकी कोई श्री-समृद्धि साथ नहीं देगी और वह लगातार दुर्भाग्यजनित-क्लेश सहने को विवश हो जायेगा।

यही बाँदा (नीम का बाँदा) यदि 'आर्द्रा' नक्षत्र में लायें और विरोधी (शत्रु) के शयन-कक्ष में, अथवा वह जहाँ सोता है, फर्श के नीचे अथवा उसके बिस्तर पर छिपा दें (गाड़ दें)। यह प्रयोग भी बहुत पीड़क होता है। इसकी प्रतिक्रिया में, शत्रु और विरोधी (जिसके लिए प्रयोग किया गया हो) अनेक प्रकार की आपदाओं से ग्रस्त होकर अशक्त हो जाता है। कभी-कभी तो यह प्रयोग उसे सदा के लिए समाप्त कर देता है।

आँवल वृक्ष का बाँदा :

सभी पेड़ों पर बाँदा नहीं उगता, अधिकांश पेड़ों पर तो इसकी उपस्थिति दुर्लभ अथवा कल्पना मात्र ही प्रतीत होती है। परन्तु संसार में असम्भव कुछ नहीं है। फिर जब ग्रन्थों में उल्लेख है, तो तत्कालीन महर्षियों ने उसे कहीं-न-कहीं अवश्य देखा होगा। अस्तित्व-हीन वस्तु का विवरण वे क्यों लिखते ? यह भी हो सकता है कि पहले वे सभी वनस्पतियाँ सुलभ थीं, अब वानस्पतिक-विनाश-प्रदूषण ने इन्हें लुप्त कर दिया है। अस्तु, प्राचीन ऋषि-मुनि और यन्त्राचार्य, जो भी लिख गये हैं—वह कहीं-न-कहीं साधार अवश्य है। भले ही हम उसकी समुचित व्याख्या न कर पायें, अथवा उसके लाक्षणिक संकेतों को न समझ पायें, परन्तु यह तो निश्चित है कि प्राचीन ग्रन्थों में (प्रामाणिक प्रतियों में) जो कुछ लिखा गया है, वह केवल कल्पना अथवा मिथ्या पाखण्ड न होकर, ग्रन्थ-कर्त्ताओं के अध्ययन, अनुभव और दृष्टि, श्रुति पर आधारित है।

आँवले का बाँदा भी एक बहुत ही दुर्लभ वस्तु है। परन्तु यदि कहीं दीख जाये, तो उसे 'आश्लेषा' नक्षत्र में ले आयें और पूजनोपरान्त दाहिनी भुजा पर (तावीज या कपड़े के द्वारा) धारण कर लें। यह प्रयोग पूर्णरूपेण सुरक्षाकारी होता है। इसे धारण करने वाले व्यक्ति को राजकोप, चोर डाकू और हिंसक-पशु आदि का भय नहीं रह जाता। ऐसी सभी स्थितियों में, वह पूर्णतया सुरक्षित रहता है।

मुलहठी का बाँदा :

मुलहठी कोई पौधा नहीं, बल्कि 'जड़' है। प्रारम्भ में घुँघची (रत्ती

अथवा गुञ्जा) का वर्णन किया गया है। मुलहठी, उसी घुँघची-लता की जड़ है। यह चूसने में मीठी होती है और श्वास, कास, स्वरभङ्ग, कफ-विकार आदि में औषधि रूप में प्रयुक्त होती है। इसी रस से यूनानी दवा 'रब्बे सूस' बनती है, जो खाँसी के लिए परम उपयोगी औषधि प्रमाणित होती है। तो, उसी मुलहठी अर्थात् घुँघची-पौधे (लता) की छान-बीन करें। यदि उस पर बाँदा मिल जाये, तो उसे 'रविपुष्य' योग में ले आयें और पूजन-शोधन के बाद सुरक्षित रख लें। यह वाक्-स्तम्भन करता है। जब कभी अपनी सुरक्षा के लिए आवश्यक हो, इसे सभा, गोष्ठी, पंचायत, वार्त्तारत जन-समूह के बीच में फेंक दें। इसका प्रभाव तत्काल सभी को हतप्रभ, आवाक् और मूढ़ जैसा बना देगा। इस प्रकार वहाँ कोई निर्णय, योजना, षड़यन्त्र आदि सम्भव नहीं रहेगा।

पीपल का बाँदा :

पीपल, बरगद, पाकर, गूलर, (अञ्जीर भी, किसी सीमा तक) आदि वृक्ष लगभग सजातीय माने गये हैं। ये वृक्ष प्रायः देखे जाते हैं। पीपल और बरगद के पेड़ों की पूजा भी होती है। इनके सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के मत, सिद्धान्त, विश्वास प्रयोग और विवेचन प्राप्त होते हैं। 'पीपल' वृक्ष को तान्त्रिक-प्रयोगों में सर्वाधिक मान्यता दी गयी है। इस पेड़ पर प्राप्त होने वाला बाँदा भी चमत्कारी माना जाता है। प्रसिद्ध है कि यदि कोई महिला पीपल वृक्ष का बाँदा 'अश्विनी' नक्षत्र के दिन लाकर, पूजनोपरान्त गाय के दूध के साथ (पीसकर) पिये, तो वह गर्भ धारण में समर्थ (सफल) हो जाती है। कोई सधवा-स्त्री यदि नीरोग है, (पति भी नीरोग है) और केवल दैवी-विधान के कारण सन्तान-सुख से वंचित हैं, तो यह प्रयोग (पीपल का बाँदा) उसे गर्भ धारण का सौभाग्य प्रदान करता है। मान्यता तो यहाँ तक है कि इस प्रयोग के प्रभाव से बन्ध्या स्त्री भी गर्भवती हो सकती है। इस प्रकार उसे मातृत्व का सुख-सौभाग्य अवश्य प्राप्त होता है।

बाँदा का तिलक :

किसी 'रविपुष्य' योग के दिन शाखोट वृक्ष का बाँदा लायें। आम का बाँदा भी लायें और गोखरू भी प्राप्त करें। यह तीनों वस्तुएं भार में समान मात्रा में लें और इनके योग का एक-चौथाई भाग सेंधा नमक लें। इन चारों चीजों को पहले धूप-दीप से शुद्ध करें, फिर पत्थर पर बकरी

के ताजे दूध के साथ घिसें। इन्हें पत्थर पर घिसने से चन्दन जैसा लेप तैयार होगा। इस लेप को माथे पर चन्दन की भाँति लगायें। फिर नित्य पूजनोपरान्त यही लेप तैयार करके लगाते रहें। तन्त्र-शास्त्र में इस लेप का प्रभाव अद्भुत बताया गया है। मान्यता है कि इस लेप को माथे पर तिलक की भाँति धारण करने वाला साधक आकाश, वायुमण्डल तथा पृथ्वी की अदृश्य वस्तुएं एवं घटनाएं देख सकता है।

2. श्वेतार्क

सामान्य परिचय :

भारतीय-वनस्पतियों में धतूरा, मदार, थूहर, नागफनी और करील को विषाक्त माना जाता है। इनके पत्ते ऊँट-बकरी भी नहीं चरते। यह भी एक विचित्रता है कि बिना सेवा-सुश्रूषा के, ऊसर-बंजर जैसी जगहों में भी ये पौधे अपनी पूरी जीवन्तता के साथ हरे-भरे खड़े रहते हैं और समय पर अपने फल-फूल आदि का प्रदर्शन भी करते हैं।

मदार को 'आक' अथवा 'अर्क' भी कहते हैं। इसकी शाखायें पतली-लम्बी होती हैं। उत्पत्ति-स्थान से ही यह अनेक शाखायें लेकर बढ़ता है। इसमें कोई एक तना न होकर, सभी शाखाएं स्वतन्त्र रूप में तने की तरह लम्बी-पतली होकर बढ़ती जाती हैं। यों पुराना हो जाने पर यह पौधा कभी-कभी 10-12 फीट ऊँचा हो जाता है और तब मुख्य तने की मोटाई 18-20 इञ्च तक हो जाती है। परन्तु ऐसे पौधे अपवाद-स्वरूप ही कहीं मिलते हैं, अन्यथा यह पौधा कब्रिस्तानों, खण्डहरों, रेलवे-लाइन के किनारे वाले प्राकृतिक ढूहों पर अपने आप उगकर हरियाली की सृष्टि करता रहता है। इसके पत्ते हरे रङ्ग के होते हैं, जिन पर सफेद धूल जैसी भूरी पर्त पड़ी रहती है। आकार में ये पत्ते बरगद के पत्तों से मिलते-जुलते होते है। किन्तु बरगद का पत्ता लाली या कालिमायुक्त हरा होता है, जबकि मदार का पत्ता शुद्ध हरे रङ्ग का होता है।

मदार में फूलों के गुच्छे निकलते हैं। इनके फूल खिलने पर, बाहर की ओर सफेद और भीतर की ओर बैंगनी रङ्ग की अद्भुत छटा बिखेरते हैं। फूल सूख जाने पर, इनके स्थान पर फल तैयार होते हैं। ये फल आम की तरह नोंकदार, गुझिया-पकवान की आकृति में होते हैं। पकने पर ये फल सूखकर चटक जाते हैं, और तब उनके भीतर भरे हुए बीज, जो सफेद मुलायम रेशों से अवतरित होते हैं, हवा में उड़कर इधर-उधर बिखरने लगते हैं। मदार के फल से प्राप्त रेशों को 'रुई' कहा जाता है।

मदार की यह बहुत कोमल, चिकनी और चमकीली होती है। लोग इसे तकियों में भराते हैं। सामान्य रुई (कपास) की अपेक्षा मदार की रुई बहुत ही कोमल और स्पर्श-सुख देने वाली होती है। परन्तु इसकी तासीर गर्म होती है। अत: लोग जाड़े में भले ही, इसका तकिया इस्तेमाल कर लें, गर्मी में उसे नहीं छूते। (इसी प्रकार सेमल की रुई से भी तकिया गद्दा बनाये जाते हैं)।

मदार के पौधे में कहीं भी एक खरोंच लगा दें—तत्काल दूध निकल पड़ेगा। यह पौधा सर्वाङ्ग में दूध से भरा होता है। पत्ते तो दूध का उद्गम होते ही हैं। कोई पत्ता तोड़िये, तुरन्त उस जगह से दूध टपकने लगेगा। यह दूध विषाक्त होता है और प्रयोग-भेद से कई दवाओं के निर्माण में प्रमुख घटक बनता है। आँख में पड़ जाने पर, यह आँख की पुतली को भारी हानि पहुँचाता है, अत: इसे तोड़ते समय लोग दूध की छींटों से बहुत सावधान रहते हैं।

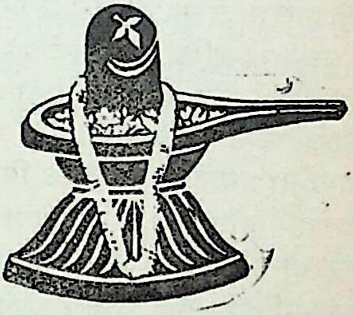

शिवजी की पूजा में मदार के पुष्प चढ़ाये जाते हैं। यह शिवजी की अनुपम महानता है कि वे देवाधिदेव होकर भी स्वयं के प्रति सर्वथा उदासीन हैं। भक्तों को विश्व का वैभव देने वाले शिवजी का अपना रहन-सहन, निवास और आहार-विहार कितना त्यागमय है, यह उनके वस्त्राभूषणों और खाद्य-पदार्थों से स्पष्ट हो जाता है। कोई देवता तस्मै (खीर) प्रेमी है, कोई छप्पन-भोग का आहारी है, कोई नाना प्रकार के फलों, मिष्ठानों से तृप्त होता है, परन्तु शिवजी ने उसे आहार बनाया है, जिसे पशु भी नहीं खाते—धतूरा, मदार, भाँग और अहिफेन! ऐसे निस्पृह, त्यागी, उदार और भक्तवत्सल देवता को इसीलिए विश्व में सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है। आज भी रूस, यूरोप और सुदूर अमेरिका के देशों में उत्खनन के दौरान कहीं-कहीं मूर्त्ति सहित शिव-मन्दिर प्राप्त होते हैं। अस्तु: मदार का पुष्प शिवजी को अर्पित किया जाता है और उनके पुत्र गणेशजी की पूजा में भी यह बड़ी श्रद्धा के साथ प्रयोग किया जाता है।

वैंगनी रङ्ग के फूल वाला मदार बहुतायत से मिलता है। इसे

काला मदार, कृष्ण-मदार, कृष्णार्क, श्यामार्क आदि नामों से भी जाना जाता है। अन्य पौधे बरसात में विशेष रूप से पल्लवित होते हैं, परन्तु जवासा नामक घास और मदार इसके अपवाद होते हैं। ये दोनों प्रचण्ड गर्मी और भयङ्कर शीत में हरे-भरे रहते हैं, परन्तु वर्षा ऋतु में ये मुरझा कर क्षीणप्रायः हो जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरित-मानस में वर्षा ऋतु वर्णन के अन्तर्गत लिखा है—

अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जिमि सुराज खल उद्यम गयऊ।

अस्तु यहाँ हमारा विवेच्य-विषय श्यामार्क नहीं, श्वेतार्क है। यह भी वही मदार है, परन्तु इसके फूल बैंगनी रङ्ग के न होकर, बिल्कुल सफेद होते हैं। इसके पत्ते अपेक्षाकृत लम्बे और गहरे हरे रङ्ग के न होकर, कुछ हल्के रङ्ग के थोड़ी सफेदी की झलक दिखाते हुए होते हैं। यह पौधा अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा होता है, और फूल भी इसमें पर्याप्त मात्रा में, गुच्छों में लगते हैं। परन्तु फलों की संख्या इसमें कम होती है। इसकी शाखायें लम्बी, पतली और सीधी होती हैं। आज के पूर्णतया श्वेत पुष्पों के कारण ही यह श्वेतार्क अथवा सफेद मदार कहा जाता है।

तान्त्रिक-दृष्टि से श्वेतार्क का महत्त्व अधिक है। इसे गणेशजी का आवास, प्रिय और प्रतिरूप माना जाता है। इसके विभिन्न गुणों और चमत्कारी-प्रभाव ने सुदूर अतीत में ही, प्राचीन ऋषि-मुनियों को चमत्कृत कर दिया था। यही कारण है कि विभिन्न तन्त्र-ग्रन्थों में इसका विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। परन्तु इतना प्रभावशाली, पूज्य और चमत्कारी होने पर भी यह पौधा बहुत कम दीख पड़ता है। कृष्ण-मदार के पौधे जहाँ शत-प्रतिशत होते हैं, वहाँ इसके पौधे 1-2 प्रतिशत से भी कम पाये जाते हैं। हाँ, यह बात अलग है कि किसी-किसी क्षेत्र में आसानी से मिल जाते हैं। मध्य-प्रदेश की यात्रा में मैंने इसे कई जगह देखा। भोपाल और इन्दौर में कई पौधे दीख पड़े। ऋषिकेश में भी कई जगह देखने में आया। एक बार मैं ऋषिकेश गया था। साथ में मेरे अनन्य-स्नेही 'कन्हैयालाल गोयल' भी थे। तान्त्रिक-वस्तुओं की चर्चा में मैंने उनसे 'श्वेतार्क' का जिक्र किया और उसकी दुर्लभता तथा गुण बताये। दैवयोग से उसी समय एक कोठी के कम्पाउण्ड की ओर मेरी दृष्टि गयी। वहाँ एक बहुत बड़ा, मोटा, पुराना और लगभग 25 फीट ऊँचा 'श्वेतार्क' का वृक्ष दीख पड़ा, घने पत्तों और फूलों के गुच्छों से लदा वह अद्भुत छटा विखेर रहा था। लगता था, साक्षात् पारिजात वृक्ष है। मैंने और भी कई बड़े वृक्ष देखे हैं,

परन्तु उतना ऊँचा और सघन, पुष्प-सम्पन्न वह अपनी तरह का पहला वृक्ष था। गोयल जी उसकी सघनता पर प्रसन्न और चकित थे।

गणेशजी की पूजा में 'श्वेतार्क' का विशेष महत्त्व है। वैसे, शिवजी पर भी इसके पुष्प अर्पित किये जाते हैं। परन्तु जिस आधार पर इसे तान्त्रिक-जगत् में महत्त्व प्राप्त है, वह है—इसकी अद्भुत जड़! इसे 'श्वेतार्क मूल' (सफेद मदार की जड़) कहते हैं।

मान्यता है कि श्वेतार्क मूल में गणेशजी का वास होता है और यदि तान्त्रिक-विधि से वह मूल प्राप्त करके घर में स्थापित की जाये तथा उसका दैनिक-पूजन हो, तो वह गणेशजी की भाँति उस घर-परिवार को श्री-समृद्धि से सम्पन्न करके साधक की समस्त भौतिक-बाधाओं का शमन कर देती है। परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि 'श्वेतार्क-मूल' पूर्णतया शास्त्रीय-तान्त्रिक ढङ्ग से प्राप्त की जाए, और तदनुसार ही उसका पूजन हो। पाठकों की सुविधा के लिए उसका विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है:—

तान्त्रिक-प्रयोग के आधार :

अध्यात्म के क्षेत्र में कोई भी साधना—तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र, पूजन, हवन, व्रत, उपवास, यज्ञ—हो, उसके लिए समय, स्थान, प्रयोज्य वस्तुएं और विधि-विधान आवश्यक है। इसके अभाव में साधना अधूरी रहती है। या तो वह खण्डित हो जाती है, या पूरा फल नहीं देती। अतः किसी भी प्रयोग साधना में इन महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को अवश्य ही दृष्टिगत रखना चाहिए।

समय-मुहूर्त :

श्वेतार्क-साधना में भी मुहूर्त्त अर्थात् समय (काल-वेला) का सर्वाधिक महत्त्व होता है। इसलिए सर्वप्रथम किसी स्थानीय पुरोहित-पण्डित से कोई शुभ-मुहूर्त्त मालूम कर लेना चाहिए।

जिस दिन रविवार हो और पुष्य-नक्षत्र चल रहा हो, वह दिन सर्व-श्रेष्ठ माना जाता है। इसे 'रविपुष्य-योग' कहते हैं। रविपुष्य-योग

किसी भी साधना को प्रारम्भ करने के लिए सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त्त होता है। इसी प्रकार गुरुपुष्य-योग (गुरुवार के दिन पुष्य-नक्षत्र की स्थिति) भी अत्युत्तम माना गया है। ज्योतिष-मर्मज्ञों की धारणा है कि जड़ी-बूटी आदि तान्त्रिक-वस्तुओं का सङ्कलन, उनकी पूजा, प्रयोग आदि रविपुष्य के दिन विशेष फलदायी रहते हैं। जप, तप, हवन, पूजन, व्यापारिक-कार्य तथा अन्य शुभ कार्य 'गुरुपुष्य' के दिन प्रारम्भ करने से निश्चित सफलता प्राप्त होती है। वैसे, जिस दिन भी पुष्य-नक्षत्र हो, वह सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त्त बन जाता है। हाँ, एक अपवाद भी है—शुक्रवार का पुष्य-योग 'यात्रा' तथा अन्य शुभ कार्यों के लिए वर्जित है। किन्तु इसका विकल्प यह है कि यदि शुक्रवार को 'पुष्य' नक्षत्र न होकर, चतुर्थी की तिथि पड़ रही हो, तो वह 'श्वेतार्क-साधना' के लिए अनुकूल मुहूर्त्त हो जाता है। यदि किसी को जल्दी है, और 'रविपुष्य' या 'गुरुपुष्य' योग निकट-भविष्य में नहीं मिल रहा, तो वह शुक्ल-पक्ष की चौथ (कृष्णपक्ष की चौथ भी ग्राह्य है) के दिन 'श्वेतार्क-साधना' प्रारम्भ कर सकता है। पुष्य-योग अथवा चतुर्थी तिथि न मिले और कोई अन्य शुभ मुहूर्त्त (पुरोहित से जान लें, या स्वयं पञ्चाङ्ग में देख लें) जैसे—शतभिषा, स्वाती, चित्रा, हस्त, अनुराधा, अभिजित् और अश्विनी में से कोई भी शुभ नक्षत्र चल रहा हो और उस दिन—साध्य, सिद्ध, ब्रह्म, ऐन्द्र, शुभ, शुक्ल और शिवि जैसा कोई शुभ योग भी पड़ रहा हो, तो वह एक श्रेष्ठ मुहूर्त्त माना जाता है। ऐसे किसी शुभ-मुहूर्त्त का पता पहले से लगा रखें, और नियमानुसार 'श्वेतार्क-साधना' प्रारम्भ करें।

श्वेतार्क-प्राप्ति विधि :

यदि आपने पता लगा रखा है कि अमुक स्थान पर 'श्वेतार्क' का पौधा है, तो वहाँ से विधिवत् उसकी जड़ (श्वेतार्क-मूल) ले आयें। यदि किसी व्यक्ति ने आपको दे दिया है, अथवा अन्य कहीं से मिल गयी है, तो उसे कहीं एकान्त पवित्र स्थान में रख दें। उसका उपयोग रविपुष्य के दिन ही प्रारम्भ करना चाहिए। यदि पौधे से ही लाना है, तो उसकी विधि इस प्रकार है :—

जिस दिन से पूजा (साधना) प्रारम्भ करनी है, (वह चाहे रविपुष्य हो, गुरुपुष्य हो या अन्य कोई मुहूर्त्त हो) उसके ठीक एक दिन पूर्व सन्ध्या-समय, अकेले, चुपचाप, बिना किसी से बोले नहा-धोकर, शुद्धता-पूर्वक, शान्त-चित्त से—उस पौधे के पास जायें। साथ में एक

लाल धागा, जल, धूपबत्ती, माचिस, सिन्दूर भी लेते जायें ।

'श्वेतार्क' पौधे के पास पहुँच कर उत्तर, पूर्व या पश्चिम की ओर मुख करके खड़े हों, और वृक्ष को साक्षात् गणेशजी मानकर हाथ जोड़ें । तदुपरान्त पौधे की जड़ में लोटे का जल, (अर्घ्य रूप में गणेशजी को स्नान कराने की भावना से) डालें । फिर, धूप-दीप दें और पौधे की किसी डाल में धागा (कलाया) बाँधकर, प्रार्थना करें—'हे गणेशजी ! हे श्वेतार्क-देव ! मैं अपने कार्य की सिद्धि के लिए—कल आपको अपने साथ ले चलने के लिए आऊँगा । अतः आप कृपापूर्वक मेरे साथ चलकर मेरे अभीष्ट की पूर्त्ति करें ।'

'शब्द' बदले भी जा सकते हैं, परन्तु 'भाव' यही रहना चाहिए कि आप वृक्षदेवता को निमन्त्रण दे रहे हैं । इसके बाद उसे पुनः प्रणाम करके घर लौट आयें । रात में एकान्त-शयन करना चाहिए ।

प्रातः मुँह अन्धेरे ही उठकर, नित्यकर्म से निपट लें और स्नान करके पौधे के पास जायें । साथ में कोई साफ कपड़ा और लकड़ी का (या फिर लोहे का ही) खुरपा जैसा साधन लिये रहें । वहाँ पहुँच कर पौधे को प्रणाम करें और गणेशजी का ध्यान करते हुए, पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके, पौधे की जड़ सावधानी से खोदें । जड़ टूटने न पाये, समूची निकले तो अति उत्तम है, अन्यथा जैसी भी मिले—माथे से लगाकर कपड़े में बाँध लें और चुपचाप घर ले आयें । इस पूरी प्रक्रिया में गणेशजी का ध्यान, मन्त्र, स्तुति कुछ जपते रहना चाहिए । कुछ नहीं मालूम तो—'श्री गणेशायनमः' ही जपते रहें ।

श्वेतार्क-तन्त्र में प्रयोज्य : गणेशजी के जप-मन्त्र :

- गं ।
- ॐ गं ।
- ॐ ग गणपतये नमः ।
- ग्लौं ।
- ॐ ग्लौं ।
- ॐ ग्लौं गणपतये नमः ।
- श्री गणेशाय नमः ।
- ॐ भालचन्द्राय नमः ।
- ॐ एकदन्ताय नमः ।
- ॐ लम्बोदराय नमः ।

यह एक विचित्र, सत्य, किन्तु दुर्लभ संयोग है कि कभी-कभी 'श्वेतार्क-मूल' ठीक गणेशजी की प्रतिमा के रूप में प्राप्त होती है। जड़ का मुख्य भाग 'तना' गणेशजी की स्थूल-काया जैसा होता है और उससे निकली शाखा-जड़ें भुजाओं और झुण्ड (सूँड़) की रचना करती हैं। कोई-कोई जड़ बैठी हुई गणेश-प्रतिमा जैसी लगती है। मैंने देखा है, एक जड़ गणेश-प्रतिमा का रेखा-चित्र जैसी थी। कम-से-कम गणेशजी की सूँड़ की आकृति तो जड़ में अवश्य मिलेगी—ऐसा निश्चित है। प्राप्त जड़ को गौर से देखें तो लगता है—किसी हाथी की सूँड़ है।

प्रसङ्गत: यहाँ कहना चाहूँगा—एक बार मेरा पुत्र 'उमेश' एक 'श्वेतार्क-मूल' ले आया था। वह ठीक गणेशजी के मस्तक और उससे निकली सूँड़ की आकृति जैसी प्रतीत होती थी। उसी रात बच्चे को गणेशजी ने स्वप्न में साकार-स्पष्ट दर्शन दिये थे। कई वर्षों तक वह मूल-प्रतिमा मेरे घर में रही। और भी कई बार मैंने 'श्वेतार्कमूल' में गणेश-प्रतिमा की स्पष्ट झलक पाई है। इस समय भी मेरे पास एक बृहदकार श्वेतार्क-मूल है, जिसमें गणेशजी के मुखमण्डल की छवि स्पष्ट दृष्टि-गोचर होती है।

पूजन-विधि :

श्वेतार्क-मूल प्राप्त हो जाने पर उसे साफ करके शुद्ध जल से स्नान करायें (धोलें) फिर लाल कपड़े पर स्थापित करके (कुछ विद्वान् पीले कपड़ा भी स्वीकार करते हैं) उसकी पूजा करें। पूजा में लाल चन्दन, हल्दी, अक्षत, पुष्प, सिन्दूर का प्रयोग किया जाता है। धूप-दीप देकर, नैवेद्य के साथ कोई सिक्का भी अर्पित करें। इसके पश्चात् गणेशजी का कोई मन्त्र जपें। मन्त्र-जप आरम्भ करने के पूर्व सङ्कल्प कर लेना चाहिए कि मैं इतनी संख्या में जप करूँगा। माला में 108 दाने होते हैं। अत: 10 माला जप का अर्थ हुआ—1000 मन्त्र-जप ! इसी प्रकार पूर्व गणना करके निश्चित संख्या में माला द्वारा मन्त्र का जप करें।

जप पूरा हो जाने पर उसी मन्त्र को पढ़ते हुए यथा-सामर्थ्य हवन करें। हवन-सामग्री में घी, शक्कर, तिल, जौ, अक्षत अवश्य मिला लेना चाहिए। प्रत्येक आहुति में वही जप वाला मन्त्र पढ़ा जाता है, साथ में—'स्वाहा' शब्द का भी प्रयोग होता है। जैसे मूल मन्त्र है—'श्री गणेशायनमः

तो हवन के समय आहुति देते हुए, इसे पढ़ा जायेगा—'श्री गणेशायनम: स्वाहा'। इस प्रकार हवन पूरा हो चुकने पर कम-से-कम एक ब्राह्मण को (वह बालक या बालिका भी हो सकता है) भोजन कराकर दक्षिणा दें। इस प्रकार प्रथम दिन, 'श्वेतार्क-मूल' की पूजा करके उसे कहीं एकान्त-पवित्र स्थान में, देव-प्रतिमाओं के पास अथवा आलमारी में, लाल कपड़े के आसन सहित रख दें, और नित्य उसका सिंदूर, धूप, दीप से पूजन-दर्शन करते रहें।

'श्वेतार्क-मूल' को साक्षात् गणेशजी मानकर, जो व्यक्ति यह तान्त्रिक-साधना करता है, वह ज्ञान, सम्पत्ति, और सुरक्षा और निर्विघ्न-शान्ति प्राप्त करता है।

श्वेतार्क-गणपति :

'श्वेतार्क' से पुराने (24-25 वर्ष पुराने) पौधे की जड़ों में प्राकृतिक रूप से गणेश-प्रतिमा का निर्माण होता है। वैसे, इस पौधे की किसी भी जड़ को देखें—वह गणेश जी की सूँड़ से बहुत साम्य रखती है।

यदि जड़ खोदने में गणेशाकृति-मूल प्राप्त हो जाए, तब तो कहना ही क्या है, अन्यथा चाहे जिस रूप में जड़ प्राप्त हो, उसे घर ले आयें। पहले साफ पानी से फिर दूध से स्नान कराकर, फिर जल से धोलें, और कपड़े से पोंछकर सुखा लें। बाद में यदि स्वयं बना सकें तो अपने हाथों से, अथवा किसी बढ़ई (मूर्तिकार) से, उस जड़ के एक टुकड़े को, जो लगभग दो इञ्च लम्बा और सुडौल हो काटकर, उस पर गणेशजी की प्रतिमा बनवा लें। कोई भी कलाप्रेमी व्यक्ति आसानी से, चाकू द्वारा छील-छीलकर उस 'मूल-खण्ड' पर गणेश प्रतिमा उत्कीर्ण कर सकता है।

यदि खोदते समय 'गणेश-प्रतिमा नहीं मिली (यह प्राय: जड़ के अन्त में होती है, अत: सावधानी से जड़ को पूरी गहराई तक खोदें), और बढ़ई द्वारा जल के टुकड़े पर प्रतिमा नहीं बन सकती हो, तो लाल चन्दन से अथवा सिन्दूर से उस जड़ के टुकड़े पर गणेशजी का चित्र (रेखा-चित्र) बनालें। यह भी गणेश-प्रतिमा के समान प्रभावशाली रहेगा। यदि चित्र बना सकना भी सम्भव नहीं है, तो जड़ के उस टुकड़े को लाल कपड़े के आसन पर प्रतिष्ठित करके, उस पर स्वस्तिक (····) चिह्न बना दें। यह चिह्न पीला-सिन्दूर और घी के मिश्रण से लेप बनाकर, उससे अङ्कित करना चाहिए। स्वास्तिक चिह्न वस्तुत: गणेशजी का ही प्रतीक है। इससे गणेशजी का सर्वाङ्ग समाहित है। अत: गणेश प्रतिमा, गणेश-चित्र अथवा स्वस्तिक-चिह्न, जो भी उस जड़ के टुकड़े पर

अङ्कित किया जायेगा, वह गणेशजी की प्रतिमा के तुल्य प्रभावशाली होगा। 'श्वेतार्क-मूल' से किसी भी रूप में गणेश-प्रतिमा बनायी जाए, उसे 'श्वेतार्क-गणपति' कहते हैं।

विविध-प्रयोग :

विशेष रूप से 'श्वेतार्क-मूल' जिन उद्देश्यों की पूर्त्ति में प्रयुक्त होता है, उसमें से कुछ इस प्रकार हैं :—

स्वास्थ्य, सुरक्षा, वशीकरण-तिलक, लेखनी, कामना, पूर्त्ति, स्तम्भन (मैथुनिक), सौभाग्य-वृद्धि व्याधि-शमन, स्वर्ण-निर्माण आदि। यहाँ संक्षेप में उक्त उद्देश्यों की पूर्त्ति हेतु 'श्वेतार्क-मूल' की प्रयोग विधियाँ लिखी जा रही हैं :—

स्वास्थ्य :

स्वस्थ-शरीर में स्वस्थ-आत्मा का निवास होता है। अर्थात् जिसका शरीर स्वस्थ है, उसी का मन भी स्वस्थ, सबल, आत्म-विश्वासी, धैर्यवान् और विवेकी होगा। स्वास्थ्य-प्रगति के कई प्रयोग हैं--व्यायाम, आहार-विहार, चिन्तन और वातावरण ! 'श्वेतार्क-मूल' भी स्वास्थ्य-लाभ में सहायक होता है। उसकी विधि इस प्रकार है—जिस दिन 'रविपुष्य' योग हो, प्रातः श्वेत-अर्क की जड़ ले आयें। उसे धोकर साफ करलें, फिर दूध से स्नान करायें। और गणपति-मन्त्र द्वारा पूजा करके रखदें। इस पर सिन्दूर न चढ़ाकर, कहीं जरा-सा कौने में स्पर्श करादें, बस ! यह जड़ कहीं रखदें ! सूख जाने पर उसे खरल में कूट-पीसकर चूर्ण बनालें। प्रतिदिन प्रातः स्नान करके, सूर्य की पूजा, अर्घ्य, दर्शन करें, और तीन माशा चूर्ण, 250 ग्राम गाय के ताजे दूध के साथ सेवन करें। यह परम पौष्टिक रसायन है। इसका प्रयोग भी किसी शुभ रविवार के दिन से करें। एक सप्ताह में ही इसका प्रभाव आ जाता है। इसे केवल सात दिन ही सेवन करना चाहिए। 'श्वेतार्क-मूल' का यह चूर्ण, गो-दुग्ध के साथ सेवन करने पर शरीर में ओज-तेज की पर्याप्त वृद्धि हो जाती है।

सुरक्षा :

आधि-व्याधि तथा भौतिक-दैविक बाधाओं से रक्षा के लिए 'रवि-पुष्य' योग में विधिवत् प्राप्त की गयी 'श्वेतार्क जड़' की विधिपूर्वक पूजा करें। फिर इसे (एक छोटा टुकड़ा) किसी भी रूप में (ताबीज, कवच,

यन्त्र आदि में) धारण करलें । यह प्रयोग समस्त वायव्य-बाधाओं—भूत, प्रेत, डाकिनी, नजर, टोना, तन्त्र प्रयोग आदि से पूरी सुरक्षा रखता है ।

वशीकरण-तिलक :

- शुभ-मुहूर्त्त में विधिवत् प्राप्त करके, पूजित 'श्वेतार्क-मूल' से वशीकरण का भी तान्त्रिक-प्रयोग किया जाता है । उसकी सरलतम विधि यह है कि गाय का घी, गोरोचन और श्वेतार्क-मूल की पहले से व्यवस्था कर रखें । जिस दिन 'रविपुष्य' योग हो, स्नान-पूजा से निपट कर, श्वेतार्क-मूल को घी और गोरोचन के साथ पत्थर पर चन्दन की भाँति घिसें । फिर अपने इष्टदेव और गणेशजी का ध्यान करते हुए माथे पर यह लेप तिलक की भाँति लगालें । यह तिलक सम्मोहनकारी होता है ।
- एक प्रयोग और है—बकरी के मूत्र में 'श्वेतार्क-मूल' को घिस कर, (रविपुष्य-योग में ही) माथे पर तिलक की भाँति लगायें । यह तिलक भी सम्मोहन का प्रभाव उत्पन्न करता है ।
- तीसरा प्रयोग इस प्रकार है :—

'श्वेतार्क-मूल' को पानी के साथ घिसें, या सुखी हो तो पीसकर चूर्ण बनालें । उसमें अपना 'वीर्य' मिलाकर भली-भाँति लेप बनायें । यह भी हो सकता है कि अपने वीर्य के साथ ही उसे घिसकर लेप बनालें । उस लेप को माथे पर चन्दन की भाँति लगायें । यह तिलक स्त्री-जाति को साधक के प्रति सम्मोहित करता है । किन्तु इसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए । साथ ही, इसके प्रयोग में अपनी सामाजिक-आर्थिक और अन्य बातों को देखते हुए, समान-स्तरीय नारी के प्रति ही कामना करनी चाहिए । सामर्थ्य, पात्रता, सीमा, आयु, रूप-रेखा, स्वभाव, व्यवहार और सामाजिक-स्तर सभी जगह, हर काम में आड़े आते हैं । अतः किसी भी प्रकार का प्रयोग करें, उसके औचित्य और सम्भावनाओं पर चतुर्दिक से विचार कर लेना उचित होता है ।

सौभाग्य-वृद्धि :

नाभि पर 'कमल-पत्र' और दायीं भुजा पर 'श्वेतार्क-मूल' रविपुष्य के दिन धारण करने से सौभाग्य की वृद्धि होती है ।

कामना-पूर्ति :

विधिवत् प्राप्त करके पूजा किये गये 'श्वेतार्क-मूल' से साधक की बहुविध इच्छाएं भी पूरी हो जाती हैं । यहाँ कुछ विशेष कामनाओं की पूर्त्ति हेतु सरलतम प्रयोग लिखे जा रहे हैं—

● साधक के निवास-स्थान (घर) से उत्तर-दिशा में स्थित पौधे से प्राप्त 'श्वेतार्क-जड़' में वशीकरण और श्री-समृद्धि का प्रभाव निहित होता है। अतः वशीकरण अथवा श्री-समृद्धि (धन-वैभव) आदि की वृद्धि के लिए उत्तर-दिशा स्थित पौधे की जड़ जानी चाहिए । स्मरण रहे कि जड़ लाने और उसकी तत्कालिक-पूजा करने के लिए— उन दिन रविपुष्य-योग होना आवश्यक रहता है ।

● यदि किसी साधक को राज-कृपा, राजकीय-अधिकारी की अनुकूलता, सम्मान, उन्नति, कार्य में सफलता, दूसरों से स्नेह-मान की-प्राप्ति वाञ्छित हो, तो वह ऐसे वृक्ष से 'श्वेतार्क-मूल' प्राप्त करे, जो उसके निवास-स्थान से पूर्व-दिशा की ओर स्थित हो अर्थात्—पूर्व-दिशा में स्थित 'श्वेतार्क-मूल' साधक को मान-सम्मान, श्री-समृद्धि और कार्य-क्षेत्र में उन्नति तथा सफलता प्रदान करता है ।

● रोग नाश, शत्रु-पराभव, मानसिक-कष्ट तथा शोक-सन्ताप निवारण और अन्य बाधाओं के शमन हेतु ऐसे पौधे से 'श्वेतार्क-मूल' लेना चाहिए, जो दक्षिण-दिशा की ओर हो ।

● विरोधियों को परास्त करने और शत्रुओं को नीचा दिखाने जैसे प्रयोगों में वह 'श्वेतार्क-मूल' प्रयुक्त होती है, जो पश्चिम-दिशा में उगे हुए पौधे से प्राप्त हो ।

सारांश यह है कि जिस कार्य के लिए साधना करनी हो, तदनुकूल दिशा के पौधे से प्राप्त जड़ का प्रयोग विशेष लाभकारी होता है । वैसे, 'श्वेतार्क-मूल' सदैव-सर्वत्र लाभकारी और सिद्धिदायक होती है । किसी दिशा में प्राप्त हुई हो, उसका प्रयोग निर्द्वन्द मन से करना चाहिए । पूजन के समय यह भावना होनी चाहिए कि "यह श्वेतार्क-मूल साक्षात् गणेशजी हैं ।"

गृह-रक्षा :

'श्वेतार्क' का पौधा 'रविपुष्य' योग में यदि घर के दरवाजे पर (लॉन, सहन, फुलवाड़ी, चबूतरे के कौने में—किसी भी ऐसी जगह पर, जहाँ से वह घर के प्रवेश-द्वार की सीध में हो, अर्थात् घर के प्रवेश-द्वार से पौधे को देखा जा सके) लगादें । पौधे के लिए उपयुक्त मिट्टी, प्रकाश, वायु और जल की समुचित व्यवस्था करदें । यह प्रयोग गृह-रक्षा में बहुत सहायक सिद्ध होता है । जब तक वह पौधा रहेगा, घर में किसी भी आधि-व्याधि, नजर-टोना, तन्त्र मन्त्र के दुष्प्रभाव और अवाञ्छित

वायव्य-आत्माओं, दुर्भाग्य और दुष्ट-गृहों की वृद्धि का प्रभाव नहीं पड़ेगा। श्वेतार्क पौधे के प्रभाव से गृह का प्रवेश-द्वार सुरक्षित-अभेद्य हो जाता है।

शरीर-रक्षा :

'श्वेतार्क-मूल' का टुकड़ा बाहु या कण्ठ में धारण करने से शरीर की सुरक्षा रहती है। आकस्मिक-आपदाएं और भूत-प्रेत, नजर-टोटका आदि का प्रभाव उस व्यक्ति को कोई हानि नहीं पहुँचा सकता।

सम्भोग-सुख :

सम्भोग-सुख का एक मात्र आधार है—स्तम्भन! सम्भोग-रत स्त्री-पुरुष सभी कामानन्द का अनुभव करते हैं, जब पुरुष देर तक मैथुन-रत रहे अर्थात्—उसका स्खलन न हो। स्खलन रोकने (वीर्य-स्तम्भन) के कुछ प्रयोग श्वेतार्क-तन्त्र में भी हैं :—

● 'रविपुष्य' में प्राप्त और पूजित 'श्वेतार्क-मूल' का टुकड़ा किसी धागे या चीर के सहारे कमर में बाँधकर सम्भोग-रत हों। यह प्रयोग काम-शक्ति को बढ़ाते हुए 'वीर्य-स्तम्भन' करता है।

● 'श्वेतार्क-मूल' और कमल-पत्र कमर में धारण करने से भी 'वीयँ-स्तम्भन' होता है।

श्वेतार्क का दूध और मधु (शहद) मिलाकर लेप बनायें। इस लेप में श्वेतार्क-फल से प्राप्त रुई की बत्ती बनाकर तर कर लें। सम्भोग के समय यह दीपक जला दें। जब तक दीपक जलता रहेगा, पुरुष को शिथिलता का अनुभव नहीं होगा।

सुवर्ण-निर्माण :

सुवर्ण अर्थात् सोने का नाम सुनते ही मानव-मन एकबारगी चंचल हो उठता है। संसार की सबसे सुन्दर, स्थायी, अभावान, बहु-उपयोगी, सर्वप्रिय और दुर्लभ धातु होने के कारण सोने को, सदैव—सभ्यता के प्रत्येक युग में संग्रहणीय माना गया है। सुवर्ण-प्राप्ति के लिए विश्व में जितने युद्ध-आक्रमण, चोरी-डकैती, लूट और हत्या के काण्ड हुए हैं, उतने और किसी धातु के लिए नहीं।

सुवर्ण अर्थात् सोना—धन-सम्पत्ति का चिरस्थायी रूप है। इसे धन, वैभव और श्री-सम्पन्नता का प्रतीक माना गया है। इसके प्रभाव, उपयोग क्षमता और अन्य गुणों के आधार पर नीतिकारों ने कहा—जहाँ (जिसके पास) सोना है, संसार के सारे गुण वहीं निवास करते हैं।

अर्थात्–जो व्यक्ति स्वर्ण-सम्पन्न (धनाढ्य) है, वही सर्वश्रेष्ठ है। यथा—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः,
सः पण्डितः स श्रुतिवान् गुणज्ञः।

स एव वक्ता स च दर्शनीय,
सर्वे गुणा काञ्चन माश्रयन्ति।

किन्तु लोगों को इसमें एक कमी खटकती है—यदि शोभा के साथ सोने में सुगन्ध भी होती, तब तो कहना ही क्या था! यही कारण है कि लोग कभी-कभी किसी वस्तु या व्यक्ति में एक गुण के साथ कोई अन्य विशिष्टता देखकर कह उठते हैं—"अरे, यह तो सोने में सुगन्ध है!" किन्तु वस्तुतः सोने में सुगन्ध नहीं होती। नीतिकारों ने इसका कारण सृष्टिकर्त्ता विधाता की अज्ञानता माना है। चूंकि विधाता को कोई गुरु (मार्ग-दर्शक) प्राप्त नहीं रहा, इसलिए वे सृष्टि-रचना में कई विसङ्गतियाँ कर बैठे—कई वस्तुओं की संरचना में पूरी गुणवत्ता भरना भूल गये। यथा—

गन्धं सुवर्णे फलभिक्षु दण्डे,
नाकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य।
विद्वान धनी भूपति दीर्घजीवी,
धातः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोष""॥

यद्यपि सुवर्ण एक धातु है, जिसका निर्माण प्राकृतिक रूप में भूगर्भ के भीतर होता है। विभिन्न वैज्ञानिक-पद्धतियों द्वारा भूगर्भ की खुदाई करके सुवर्ण-कण अथवा शिलाएं प्राप्त की जाती हैं, फिर उन्हें बहुविधि परिष्कृत करके शुद्ध स्वर्ण प्राप्त किया जाता है। परन्तु रसायन-शास्त्रियों ने वर्षों, दशाब्दियों तक शोध-अनुसन्धान-रत रहकर प्राकृतिक रूप में उत्पन्न होने वाले पदार्थों के विकल्प भी तैयार कर लिए थे। प्राचीन महर्षियों ने स्वर्ण-निर्माण के भी अनेक सफल प्रयोग किये थे। एक प्रयोग श्वेतार्क से भी सम्बन्धित है। यद्यपि यह जटिल और समय-साध्य है, परन्तु यदि कोई धैर्यवान् (और सौभाग्यशाली) साधक यह साधना पूरी करले, तो वह स्वर्ण प्राप्त कर सकता है, इसमें संशय नहीं है।

'श्वेतार्क- तन्त्र में स्वर्ण-निर्माण की प्रक्रिया इस प्रकार बतायी गयी है:—

'श्वेतार्क' का कोई पुराना वृक्ष, जिसका तना मोटा हो, पेड़ खोजें। रविपुष्य-योग में स्नान-पूजा के बाद उसके पास जायें। साथ में जल, दूध, सिंदूर, पुष्प, धूप, दीप और लाल वस्त्र भी लेते जाएं। सर्वप्रथम

पौधे को (तने को) स्नान करायें पहले जल से, फिर दूध से, फिर जल से। उसके बाद चन्दन (लाल), सिंदूर, पुष्प, नक्षत्र, धूप-दीप से पूजा करें। इस समस्त प्रक्रिया में 'गणेश-मन्त्र' जपते रहें। पूजनोपरान्त किसी चाकू या बर्मा से सावधानीपूर्वक तने में एक गहरा छेद (गड्ढा) बनायें। गढ्ढे से निकला तने का बुरादा फेंकें नहीं, कटोरी में सुरक्षित रखें। पर्याप्त गहरा और सुडौल गड्ढा बनायें। यदि एक अण्डे को सिरे पर थोड़ा-सा तोड़कर उसकी जर्दी बाहर करदी जाये, तो खाली अण्डे की, जो स्थिति होगी, ठीक उसी प्रकार का गड्ढा—उस 'श्वेतार्क के तने' में बनाना चाहिए। गड्ढा बन जाने पर, उसमें (पारा, जो आप साथ ले गये हैं) भर दें। उसमें बाद बुरादे में मोम मिलाकर, उसी से वह गड्ढा बन्द करदें। ऊपर से लाल कपड़ा बाँधकर सिंदूर लगा दें। फिर पौधे की जड़ में दूध डालें, वहाँ एक थाला-सा बना दें, और नित्य उस पर दूध चढ़ाते रहें। थाले में भरा दूध पौधे की जड़ सींचेगा। यह क्रिया प्रति दिन करें। वर्षों बाद पौधे के पत्ते सोने जैसे पीले और चमकदार होने लगेंगे। यह स्वर्ण-निर्माण की सूचना होगी। जब पत्ते बिल्कुल पीले और सोने जैसे (पीतल जैसी भी) चमकने लगें, तब समझ लेना चाहिए कि साधना सफल हो गयी है। फिर किसी 'रविपुष्य' या 'गुरुपुष्य' योग में वह गड्ढा खोलकर, सावधानी से, पूर्व सुरक्षित 'पारा' निकाल लेना चाहिए। इस बार वह पारे के रूप में नहीं, ठोस स्वर्ण-पिण्ड के रूप में प्राप्त होगा।

यह साधना गुप्त, रहस्यमयी, जटिल और समय-साध्य है। इसमें 5,7,10,12 वर्ष तक लग सकते हैं। क्या पता, इस अवधि में वह साधक स्वयं ही समाप्त हो जाये। ऐसी स्थिति में अपने किसी परम विश्वासी, आस्तिक, सद्विचारों वाले व्यक्ति को यह रहस्य बताकर उसे भविष्य में, फल-प्राप्ति होने तक, साधना करते रहने का निर्देश कर देना चाहिए। उसे 'सोना' न बताकर, केवल यह कहा जाये कि "जब इस पौधे के पत्ते पीतल जैसे चमकने लगें, तब एकान्त में, इसके तने के धब्बे वाले स्थान को चीरकर देखना। जो कुछ मिले, उसे प्रसाद रूप में शिरोधार्य कर लेना।"

'सोना' बनाने के और भी कई वानस्पतिक-पयोग प्राचीन-ग्रन्थों में वर्णित हैं। किन्तु यहाँ हमारा प्रतिपाद्य-विषय स्वर्ण-सृष्टि नहीं, अपितु 'श्वेतार्क-साधना' है, अतः उसके सन्दर्भ में यह एक प्रयोग (स्वर्ण-निर्माण) लिख दिया गया है।

सारांश यह है कि 'श्वेतार्क-मूल' एक बहुत ही पवित्र, प्रभावी और चमत्कारी पौधा है । इसकी 'जड़' के भी सैकड़ों प्रयोग प्राप्त होते हैं । यह श्री-सौख्य, सुरक्षा समृद्धि, सौभाग्य और आस्तिकता की भावना देती है । जो साधक विधिवत् इसकी पूजा करते हैं वे अवश्य ही सफल-मनोरथ होते हैं ।

'श्वेतार्क-मूल' के चमत्कारों से मैं स्वयं भी प्रभावित हूँ । कई वार के अनुभवों से मैं स्वयं असंदिग्ध-भाव से इसकी प्रभावशीलता का साक्ष्य देता है ।

3. रुद्राक्ष

सामान्य परिचय :

'रुद्राक्ष' वनस्पति-जगत् में सर्वाधिक पवित्र, प्रभावी उपयोगी, प्राचीन और सर्वग्राह्य पदार्थ है । यह एक फल की गुठली अर्थात् बीज है ! इसकी उत्पत्ति—मलाया, इण्डोनेशिया, वर्मा, नेपाल आदि पूर्वी-देशों में अधिक होती है । वैसे भारत में भी कहीं-कहीं इसके वृक्ष पाये जाते हैं । अव तो, शौकीन लोग इसे अपने वगीचों और फुलवाड़ियों में भी लगाने लगे हैं ।

'रुद्राक्ष' को शिवजी के 'नेत्र' से उत्पन्न माना जाता है । इसीलिए इसका नामकरण 'रुद्राक्ष (रुद्र+अक्ष) हुआ है । शिव-भक्तों को यह बहुत ही प्रिय है । वैसे, अन्य अनेक देवी-देवताओं की पूजा-स्तुति में भी इसकी माला धारण करने और उस पर मन्त्र-जप करने का विधान है । आध्यात्मिक-दृष्टि से जितना महत्त्व 'रुद्राक्ष' को प्राप्त है, कदाचित् ही अन्य किसी वनस्पति को प्राप्त हो । अध्यात्म ही नहीं, भौतिक-जगत् के कई क्षेत्रों में भी, विशेषकर 'चिकित्सा क्षेत्र' में, इसे बहुत मान्यता प्राप्त है ।

'रुद्राक्ष' एक पेड़ का फल है, जो गुच्छों में फलता है । यह फल गूलर के समान गोल होता है, जिसका गूदा कड़ा और मजबूती से रुद्राक्ष फल के वीज पर चिपका रहता है । गोल जामुन की कल्पना कर लें, ठीक वैसा ही होता है । परन्तु जामुन का गूदा कोमल होता है, जब कि यह अत्यन्त कठोर है । इसकी टहनियों में फलों की संख्या विपुल होती है और वे पककर अपने आप गिर जाते हैं । पेड़ के नीचे ये फल निमौली

की तरह बिखरे रहते हैं। वन्य-जातियों के लोग इनका संग्रह करते हैं, फिर पानी में कई दिनों तक फलो को भिगोकर गूदे को मुलायम करके निकालते हैं। गूदा निकल जाने पर धुले हुए 'रुद्राक्ष-बीज' बाजार में बिकने आते हैं।

पके फल के बीज (दाने) उत्तम होते हैं, लेकिन कच्चे फलों के दाने न तो स्थायी होते हैं, न गुणवत्ता में ही पूरे उतरते हैं। कुछ जङ्गली बेर के बीजों की मिलावट भी उन में हो जाती है। अत: रुद्राक्ष खरीदते समय उसकी शुद्धता को भली-भाँति परख लेना चाहिए।

रुद्राक्ष की प्रजातियाँ :

आकार-भेद से 'रुद्राक्ष' की कई जातियाँ होती हैं। इसके बीज प्राय: गोल होते हैं, परन्तु अपवाद-स्वरूप कभी-कभी कुछ लम्बे, चक्राकार, उन्नतमुख, अण्डाकार, अर्द्ध-चन्द्राकार और चपटे भी पाये जाते हैं।

इसके दाने छोटे-बड़े भी होते हैं। बड़े दाने सुलभ होते हैं, जबकि छोटे दाने कम पाये जाते हैं। लघुत्तम 'रुद्राक्ष' कालीमिर्च के दाने के बराबर होता है। उससे क्रमश: बड़े दाने मटर, बड़ी मटर, बेर और आँवले के बराबर होते हैं। मान्यता है कि लघुत्तम आकार वाले दानों की माला उत्तम होती है। कहीं-कहीं बड़े दानों को ही महत्त्वपूर्ण बताया जाता है। मेरी धारणा है, रुद्राक्ष-रुद्राक्ष है। वह चाहे जिस आकार में हो, यदि शुद्ध-निर्दोष है, तो अवश्य ही धारणीय है।

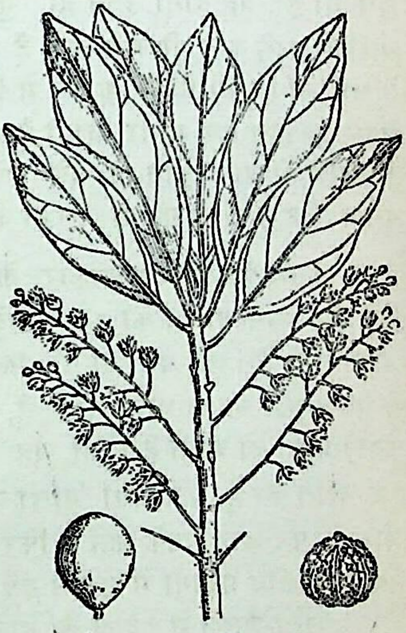

रुद्राक्ष
ELAEOCARPUS GANTRUS ROXB

छोटे दाने की माला पहिनने में सुविधाजनक होती है, परन्तु चूंकि वह कठिनाई से प्राप्त होता है, इसीलिए उसका मूल्य अधिक है। बड़े दाने की माला पहिनने में असुविधा होती है, फिर आज का फैशन-परस्त युग! वह दाना सरलता से मिलता है और खपत कम है, इसलिए सस्ता बिकता है। प्रभाव सभी का समान होता है। बड़े दाने की माला,

जप के लिए सुविधाजनक होती है। इसलिए लोग धारण करने में छोटे दाने और जप के लिए बड़े दानों की माला का प्रयोग करते हैं। सामान्यत: छोटी झरबेरी के बराबर दानों वाली माला प्रयोग में आती है। इधर 20 वर्षों से योरोप अमेरिका में भारतीय-दर्शन और अध्यात्म के प्रति विशेष रुचि जागृत हुई है, अतः वहाँ के निवासी बड़ी आस्था, बड़े उत्साह से 'रुद्राक्ष' धारण करने लगे हैं।

मुखभेद से वर्गीकरण :

'रुद्राक्ष' का दाना हाथ में लेकर गौर से देखें, जैसे छिले हुए नीबू अथवा आँवले के फल पर फाँकों की धारियाँ बनी होती हैं, ठीक वैसी ही धारियाँ आपको 'रुद्राक्ष' के दाने पर दीख पड़ेंगी। 'रुद्राक्ष' चाहे जिस आकार में हो, उसके दो सिरे होते हैं। ये धारियाँ एक सिरे से चलकर, दूसरे सिरे को छूती हैं। इन्हें 'मुख' कहते हैं। जिस दाने पर जितनी धारियाँ हो, वह दाना उतने ही 'मुखी' कहलाता है। आमतौर से पाँच धारियों वाले दाने ही पाये जाते हैं। उन्हें 'पञ्चमुखी रुद्राक्ष' कहते हैं। ये धारियाँ (मुख) प्राकृतिक रूप में निर्मित होती हैं। इनकी संख्या एक से लेकर इक्कीस तक मानी जाती है। परन्तु वर्त्तमान समय में अधिकतम 14 धारियों वाले दाने ही देखे गये हैं। इनमें कुछ सुलख होते हैं, कुछ दुर्लभ और कुछ तो सर्वथा अलभ्य जैसे होते हैं।

जिस पेड़ में जिस आकार के फल आते हैं, वे लगभग समान ही होते हैं। आम-जामुन की तरह प्रत्येक आकार के दाने वाले पेड़ अलग-अलग होते हैं। हाँ, धारियों की संख्या इनमें बदलती रहती है। जिस पेड़ से पञ्चमुखी रुद्राक्ष प्राप्त सोते हैं, उसी से 6-7 मुखी दाना भी (यदा-कदा) प्राप्त हो जाता है। हाँ, यह अवश्य है कि छोटे दानों वाला पेड़ एक जाति का है, बड़े दानों वाला उससे भिन्न, दूसरी जाति का—जैसे आम के पेड़ और उनके फल ! फिर भी—हैं सब रुद्राक्ष ही, और पूजा तथा औषधीय प्रयोगों में समान रूप से व्यवहृत होते हैं।

तन्त्र-शास्त्र में रुद्राक्ष के दानों का प्रभाव, उनके मुखों की संख्या के आधार पर अलग-अलग बताया गया है। यह भी माना जाता है कि प्रत्येक रुद्राक्ष (मुख-भेद के आधार पर) की (उसमें निहित) दैवी-शक्ति, उसका मन्त्र, उसका प्रभाव—ये सब भिन्न-भिन्न होते हैं। पाठकों के लिए हम उनका संक्षिप्त-परिचय यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं :—

एकमुखी रुद्राक्ष :

यह बहुत ही दुर्लभ होता है। इस पर केवल एक रेखा पड़ी होती है। यह गोल रूप में मिलता है और अर्द्ध-चन्द्राकार भी। कुशल कारीगर नकली एकमुखी रुद्राक्ष भी बना लेते हैं। किन्तु उसमें असली का प्रभाव नहीं रहता। असली एकमुखी रुद्राक्ष मूल्यवान भी होता है। इसको धारण करने के अनेक लाभ तन्त्र-ग्रन्थों में वर्णित हैं। समस्त रुद्राक्षों में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। अगर यह कहीं मिल जाये, तो समझना चाहिए—शिवजी की कृपा प्राप्त हो गयी।

सावधानी :

कोई 'रुद्राक्ष' हो, उसको खरीदते समय कुछ विशेष बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। यथा—

- रुद्राक्ष का दाना वास्तव में 'रुद्राक्ष' हो, किसी दूसरे फल का बीज, या लकड़ी पर नक्काशी करके, बनाया गया न हो।
- पके फलों के वीज से उत्तम 'रुद्राक्ष' निकलता है। कच्चे फलों से प्राप्त बीज को 'भद्राक्ष' कहते हैं। यह गुणवत्ता की दृष्टि से नगण्य होता है, यद्यपि रूपाकार में रुद्राक्ष से पूरा साम्य रखता है। अतः भद्राक्ष न लेकर, (भद्राक्ष अर्थात् कच्चे फल का बीज नहीं) पके फल का बीज (रुद्राक्ष दाना) खरीदें।
- कच्चे-पक्के रुद्राक्ष की सरल पहिचान है—दानों को पानी में डाल दें। जो दाने डूबकर बर्तन की तलहटी में जा बैठें, वे असली, शुद्ध, और गुणवत्ता में पूरे हैं। पानी के ऊपर तैरने वाले दाने कच्चे, प्रभावहीन अशुद्ध और अप्रयोज्य होते हैं।
- चाहे जितना सुन्दर, छोटा या बड़ा दाना हो, उसे सर्वाङ्गपूर्ण होना चाहिए। घुना, कटा, फटा, छिद्रयुक्त, विकृत, भग्न, टेढ़ा—दोनों छेदों के बीच सीधी छिद्र-रेखा का अभाव, मलिनता, ज्योति-रहित, उदास, पूर्णतया चिकना (काँटों से रहित) दाना ग्राह्य नहीं होता।
- प्रथम तो नया रुद्राक्ष ही खरीदें। किसी परिस्थिति विशेष में यदि किसी का दिया हुआ (पहिना हुआ) लेना पड़े, तो उसकी शुद्धता को भी भली-भाँति परख लेना चाहिए। यदि सही है, तो ले लें, और किसी पात्र में गङ्गाजल या शुद्ध कूपजल में उसे डाल दें। 24 घण्टे बाद निकालकर, धोकर साफ करलें, फिर विधिवत् उसकी पूजा करके, काम में लायें।

● बहुत पुराना, मैला-कुचैला, निर्जीव, कुपात्र व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त और चुराया हुआ रुद्राक्ष धारणीय नहीं होता।

● ताँबे के दो टुकड़ों के बीच में रखने पर असली रुद्राक्ष का दाना घूमने लगता है।

रुद्राक्ष का शोधन :

वैसे, 'रुद्राक्ष' का प्रयोग भारत में प्रागैतिहासिक-काल से होता आ रहा है। प्राचीन भारतीय-नरेश और ऋषि-मुनि इसकी माला धारण करते थे। आप किसी भी तपस्वी का, शिवजी का अथवा अन्य ऋषि-मुनि का चित्र देखें, वह रुद्राक्ष-माला से अवश्य अलंकृत होगा।

किन्तु इतना उपयोगी, सर्वप्रिय और परम पावन होकर भी रुद्राक्ष धारण के कुछ विशेष नियम हैं। भारतीय तन्त्र शास्त्र नियमों की संहिता है। इसमें प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक कार्य, चिन्तन और मनन, सबके अलग-अलग नियम हैं। नियमपूर्वक की गयी तन्त्र-साधना त्वरित फलदायी होती है। नियम-विरुद्ध कार्य, वह चाहे तन्त्र में हो, चाहे व्यावहारिक-जगत् में, कभी फलदायी नहीं होता। अतः रुद्राक्ष धारण के पूर्व उसके नियमों का निर्वाह अवश्य करना चाहिए। यह नहीं कि कहीं से एक माला मोल ले आये और पहन लिया, बस! यह तो एक तरह की औपचारिकता मात्र है, श्रद्धा और नियम-पालन से इसका दूर का नाता भी नहीं है।

यों, शास्त्रीय-पद्धति बहुत जटिल है और उसके अनुसार रुद्राक्ष-शोधन आज के व्यस्त युग में सामान्य व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। परन्तु मध्यम मार्ग का अवलम्ब लेकर यह क्रिया सार्थक रूप में पूरी की जा सकती है।

रुद्राक्ष के दाने (माला) देख-परख कर लायें। उन्हें किसी 'रवि-पुष्य' योग में, अथवा 'गुरुपुष्य' योग में अथवा 'सोमपुष्य' योग में, या फिर किसी भी शुभ सोमवार के दिन गङ्गाजल में धोकर, थाली में रखें। यदि माला बनवा रखी है, तो वह भी इसी विधि से शोधित होगी। गङ्गाजल के अभाव में शुद्ध समान्य जल ले लें। रुद्राक्ष को गङ्गाजल, दूध, शुद्ध जल, चन्दन-मिश्रित जल से स्नान करायें। या पहले स्नान करादें, फिर उस पर चन्दन (श्वेत चन्दन घिसकर तैयार रखें) लगायें। कोई श्वेत-पुष्प–(धतूरा-मदार) चढ़ायें। अक्षत, बेलपत्र भी अर्पित करें, धूप दें और आरती करें। इस पूरी प्रक्रिया में शिवजी का कोई भी मन्त्र जपते रहें।

मन्त्र के रूप में सर्वाधिक प्रचलित 'ॐ नमः शिवाय' बहुत ही प्रभावशाली रहता है। इस प्रकार पूजा करके शिवजी का ध्यान करें। यदि घर में उपलब्ध है, तो रुद्राक्ष की पूजा करते समय शिवजी की प्रतिमा की पूजा भी करें। शिव और रुद्राक्ष की पूजा पूरी हो चुकने पर शिवजी से प्रार्थना करें--

हे शिवजी ! आप कृपा करके इस रुद्राक्ष-माला में निवास कीजिए। इसे अपनी कृपा से अपने दिव्य प्रभाव से शक्तिशाली बनाइए। मैं इस माला को धारण करके सदैव आपका कृपापात्र रहूँ, सर्वत्र मेरी रक्षा कीजिए....!'

इस प्रकार प्रार्थना करके उसी माला को धूप के धुएँ में शोधित करके, सुमेरु को माथे से लगायें और 11 माला उक्त मन्त्र का जप करें। पुनः वही मन्त्र पढ़ते हुऐ 21 आहुतियाँ देकर हवन करें और एक ब्राह्मण को भोजन-दक्षिणा दें। इसके बाद माला को शिवजी की प्रतिमा से स्पर्श कराकर, मन्त्रोच्चारण करते हुए, धारण कर लें और भस्म का टीका माथे पर लगाकर शिवजी को प्रणाम करें।

रुद्राक्ष-धारण की यह सबसे सरल विधि है।

मान्यता है कि धारण की गयी माला को उतारना नहीं चाहिए। किसी विशेष स्थिति की बात अलग है, अन्यथा इसे पहिने ही रहें।

दैनिक-पूजा और मन्त्र-जप के लिए भी इसी प्रकार माला शोधित की जाती है। परन्तु उसे धारण न करके, लाल कपड़े की थैली (गोमुखी) में रखना चाहिए।

रुद्राक्ष माला धारण करने और उस पर दैनिक पूजा का (किसी भी विशेष अनुष्ठान का) मन्त्र-जप करने से बहुविधि कल्याण होता है।

मुखानुसार विवरण :

रुद्राक्ष के दानों पर बनी धारियों को 'मुख' कहते हैं। सभी दानों पर बराबर संख्या में धारियाँ नहीं होतीं। अधिकांश दाने पाँच धारियों वाले (पञ्चमुखी) होते हैं, परन्तु किसी-किसी दाने पर 3, 4, 7, 8, 9, 10, 11 धारियाँ भी देखी जाती हैं। वैसे, 1 से 21 धारी तक के रुद्राक्ष का उल्लेख मिलता है, परन्तु अधिकतर 14 धारी तक के दाने ही देखे गये हैं। सर्वसुलभ 5 धारी वाला होता है। दो धारी वाला चपटे आकार का दाना भी बहुत मिल जाता है, 6 धारी वाले भी थोड़े परिश्रम से प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु 3, 4, 7, 8, 9, 10, 11 धारी वाले कम

मिलते हैं। 3, 4 वाले तो कुछ सुलभ भी कहे जा सकते हैं, परन्तु 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13 धारी वाले दाने दुर्लभप्रायः होते हैं।

आर्ष-ग्रन्थों में मुखानुसार रुद्राक्ष दानों का वर्गीकरण करते हुए बताया गया है कि प्रत्येक दाने का सम्बन्ध अलग-अलग दैवी-शक्तियों से है, और उनके मन्त्र भी पृथक-पृथक हैं। कौन दाना (कितने मुख वाला) किस देवता का प्रतिनिधित्व करता है। उसका मन्त्र क्या है, उसका प्रभाव कैसा और क्या होता है, यह बड़े विस्तार का विषय है। पाठकों की सुविधा और जिज्ञासा-पूर्त्ति के लिए उसे हम यहाँ संक्षिप्त सार-गर्भित रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं :—

रुद्राक्ष	देवता	मन्त्र
एकमुखी	शिव	'ॐ ह्रीं नमः।
दोमुखी	अर्द्ध-नारीश्वर	'ॐ नमः।'
तीनमुखी	अग्नि।	'ॐ क्लीं नमः।'
चारमुखी	ब्रह्मा।	'ॐ ह्रीं नमः।'
पाँचमुखी	कालाग्नि रुद्र।	'ॐ ह्रीं नमः।'
छःमुखी	कार्तिकेय।	'ॐ ह्रीं हुँ नमः।'
सातमुखी	सप्त मातृकाएं, सप्तर्षि।	'ॐ हुँ नमः।'
आठमुखी	वटुक भैरव।	'ॐ हुँ नमः।
नौमुखी	दुर्गाजी।	'ॐ ह्रीं हुँ नमः।'
दसमुखी	विष्णु।	'ॐ ह्रीं नमः।'
ग्यारहमुखी	रुद्र, इन्द्र।	'ॐ ह्रीं हुँ नमः।
बारहमुखी	बारह आदित्य।	'ॐ क्रौं क्षौं रौं नमः।'
तेरहमुखी	कार्तिकेय, इन्द्र।	'ॐ ह्रीं नमः।'
चौदहमुखी	शिवजी, हनुमानजी।	'ॐ नमः।

रुद्राक्ष के तान्त्रिक प्रयोग :

आयुर्वेद और तन्त्र में रुद्राक्ष की महिमा को 'अपार' कहा गया है। विविध प्रकार की दैहिक, दैविक और भौतिक समस्याओं के निदान हेतु प्रकारान्तर से रुद्राक्ष के अनेकानेक प्रयोग बताये गये हैं। यहाँ कुछ विशिष्ट समस्याओं के समाधान हेतु रुद्राक्ष की प्रयोग-विधियाँ लिखी जा रही हैं :—

शिवजी की कृपा-प्राप्ति हेतु :

● किसी भी वर्ग (मुख वाले दोनों की) की एक समूची, शुद्ध,

निर्दोष और विधिवत् शोधित माला धारण करने से शिवजी की कृपा अवश्य प्राप्त होती है।

● ताँबे की कटोरी या तश्तरी में रुद्राक्ष के दाने रख लें और उन्हें प्रतिदिन शिवलिंग की भाँति पूजते रहें। इससे शिव-पूजन का फल प्राप्त होता है।

दैनिक बाधाओं के निवारण हेतु :

तन्त्र-शास्त्र के अनुसार रुद्राक्ष दाना (माला) शोधित करके धारण करने पर वायव्य दोष, भूत-प्रेतादि, अदृश्य-आत्माएं, अभिचार-प्रयोग आदि के दुष्प्रभाव से रक्षा होती है। रुद्राक्षधारी व्यक्ति कहीं भी जाये— जङ्गल, पार्वतीय क्षेत्र, श्मशान, रणक्षेत्र अथवा अन्य किसी अपरिचित और सङ्कटपूर्ण स्थान में वह तन-मन से सुरक्षित रहता है। दैहिक-बाधाओं की शान्ति हेतु भी रुद्राक्ष को धारण किया जाता है। यथा—

● रुद्राक्ष को चन्दन की भाँति पत्थर पर घिसें, फिर वह लेप शरीर पर लगा दें। इस प्रयोग से समस्त प्रकार की भौतिक व्याधियाँ समाप्त हो जाती हैं।

● चन्दन की भाँति तैयार किया गया लेप, माथे पर टीका (तिलक) के रूप में धारण करने वाला साधक शिवजी का कृपापात्र हो जाता है। वह जहाँ भी जाये, लोगों पर उसका सम्मोहन जैसा प्रभाव पड़ता है। शिरो-पीड़ा के विवरण में भी यह प्रयोग सफल रहता है।

उदर-विकार-नाशक प्रयोग :

एक लोटा पानी में, रुद्राक्ष के पाँच दाने डालकर शाम को रख दें। प्रातः वह जल पीयें और इसके बाद लोटे में दुबारा जल भरकर, वही दाने डाल दें। 24 घण्टे बाद वह जल फिर सेवन करें। यह रुद्राक्ष-जल उदर-विकारों को नष्ट करके रक्त-सञ्चार में सहायक बनता है। इसके प्रभाव से सुस्ती, अनिद्रा, आलस्य, अम्लपित्त की पीड़ा, गैस, कब्ज और अन्य विकार दूर हो जाते हैं। परन्तु ध्यान रहे कि जिस पात्र (लोटे) में जल भरा जाय, वह ताँबे का होना चाहिए, और जल भरने के पूर्व उसे भली-भाँति माँज-धोकर चमका लें। (ताँबे के पात्र में कभी खट्टी वस्तु रखकर नहीं खाना चाहिए, क्योंकि वह विषाक्त हो जाता है।)

बाल-रोग पर रुद्राक्ष :

बच्चे के गले में एक या तीन दाने रुद्राक्ष के पहिना दें। साथ ही,

रुद्राक्ष को पानी में घिसकर वह पानी बच्चे को पिलाएं और छाती पर (सोते समय) उसका लेप भी करें। इस प्रयोग से बच्चों का रात में सोते समय—रोना, डरना, चिहुँक उठना, अस्वाभाविक रूप में हाथ-पैर पटकना, यह सारी व्याधियाँ दूर हो जाती हैं।

बन्ध्यत्त्व-निवारक प्रयोग :

मध्यम आकार का एक दाना शुद्ध नया रुद्राक्ष और एक तोला सुगन्ध-रास्ना—खरल में कूट-पीसकर चूर्ण बनाएं। यह चूर्ण 2-3 माशा की मात्रा में दोनों समय गाय के दूध से सेवन करें। ऋतुमती होने के प्रथम दिन से प्रारम्भ करके लगातार सात दिनों तक यह प्रयोग करें। इसके प्रभाव से बन्ध्यत्त्व दूर होकर, स्त्री को गर्भ-लाभ होता है। परन्तु यहाँ यह तथ्य भी स्मरणीय है कि उस महिला को स्वास्थ्य, आयु और दाम्पत्य-जीवन की दृष्टि से भी उपयुक्त होना चाहिए।

4. शंख

सामान्य परिचय :

विश्व के समस्त जल-जन्तुओं में एक मात्र 'शङ्ख' ही ऐसा है, जो रूपाकार में कुरूप होने पर भी सर्वाधिक पूज्य और मान्य है। हाँ, यह अवश्य है कि उसकी मान्यता और पूजा, सम्मान-भाव केवल हिन्दू-धर्मावलम्बियों तक ही सीमित है। परन्तु हिन्दू-धर्म के अनुयायियों की संख्या कम नहीं है, अत: 'शंख-पूजक' व्यक्ति भी कम नहीं हैं। विशेष रूप से यह ब्राह्मण-परिवारों में देव-प्रतिमा के समान पूजा जाता है। पहले क्षत्रिय और वैश्य भी इसे रखते थे। शूद्रों में भी 'शंख' ग्राह्य था। चूँकि वर्ण-व्यवस्था के अनुसार भारतीय-समाज चार वर्णों में वर्गीकृत था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र! अत: वर्ण (रङ्ग) के आधार पर शंखों का भी वर्गीकरण कर दिया गया था, और प्रत्येक वर्ण अपने वर्ग का शंख प्रयोग में लाता था। शुभ्र (श्वेत) वर्णीय शंख ब्राह्मण माना जाता है। ब्राह्मण-समुदाय के लिए वही प्रयोज्य माना गया है। लालिमायुक्त (लाल रङ्ग की आभा वाला) शङ्ख क्षत्रियों का प्रतिनिधि है, अत: वह उनके समाज में प्रयुक्त होता है। पीताभ शंख वैश्य-समाज के लिए ग्राह्य बताया गया है, और श्याम वर्णीय शंख शूद्रों के लिए प्रयोजनीय कहा जाता है।

रामायण, महाभारत तथा अन्य अनेक पौराणिक-प्रसङ्ग (मिथकीय

सन्दर्भ) इस तथ्य को बड़ी स्पष्टता से उजागर करते हैं कि प्राचीन-काल में भारतीय-संस्कृति ने शंख को वरीयता के साथ ग्रहण किया था। शंख को विजय, सौख्य, समृद्धि, शुभ और यश-प्रभाव का प्रतीक माना गया है। सामाजिक-जीवन के लगभग सभी अवसरों पर शंख-ध्वनि को मान्यता प्राप्त थी। उत्सव, पर्व, पूजा, पाठ, हवन, जयकार, मङ्गल-ध्वनि, प्रयाण, आगमन, युद्धारम्भ, विजय-वरण, विवाह, विदा, राज्याभिषेक, देवार्चन—जैसे अवसरों पर शंख की ध्वनि से आस-पास का वातावरण गूँज उठता था। इस प्रकार शंख का प्रयोग (ध्वनि उत्पन्न करने, बजाने में) सदैव शुभ और अनिवार्य माना जाता था।

पौराणिक सन्दर्भ में शंख :

कितने ही पौराणिक-प्रसङ्गों में शंख का उल्लेख मिलता है। कई एक देवता और देवियाँ शक्ति के प्रतिरूप) आयुध के रूप में शंख धारण करती थीं। वे प्रसन्नता व्यक्त करने और युद्ध-घोषणा (युद्धारम्भ की की घोषणा) के लिए भी शंख-ध्वनि करते थे।

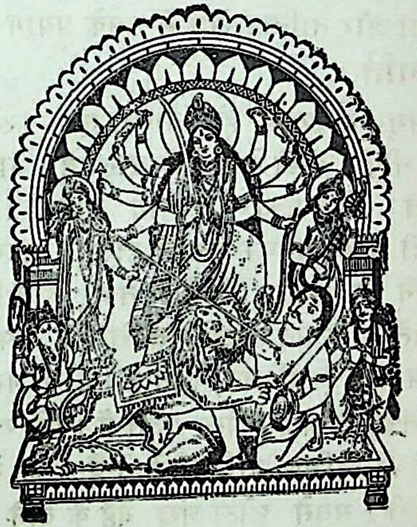

श्रीमद्भागवत में, महाभारत-कथा के अन्तर्गत 'गीता' वाले प्रसङ्ग में कौरव-पाण्डव सेनानियों के शंखों का स्पष्ट वर्णन मिलता है :—

"पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जय।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदर।।"......

भगवान् विष्णु की स्तुति में कहा गया है :—

"सशंख चक्रं सकिरीट कुण्डलं,
सपीत वस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।"...... ...

देवी-स्वरूपों (दुर्गाजी के अवतारों) को भी शंखयुक्त बताया गया है :—

"शंखं सन्दधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ।"

और—

"घण्टा शूल हलानि शंख मुसले,
चक्रं धनुः सायकम् ।"

आज भी हमारे समाज में पूजा-पाठ हवन-यज्ञ, आरती जैसे अवसरों पर विभिन्न वाद्यों के साथ 'शंख-नाद' की प्रथा प्रचलित है। मान्यता है कि शंख का घोष (शंख-ध्वनि) जहाँ सुनाई पड़ती है, उतने क्षेत्र का वायु-मण्डल भौतिक-वायव्य और दैविक प्रकोपों-बाधाओं से मुक्त हो जाता है। ओज, तेज, साहस, पराक्रम, चैतन्य, आशा और स्फूर्ति बढ़ाने के लिए—'शंख-ध्वनि, को वैज्ञानिक रूप में भी स्वीकार किया गया है।

अस्तु: यह तो हुई सामान्य शंखों की बात, यहाँ हम शंख की उत्पत्ति, संरचना और तान्त्रिक-क्षेत्र में उसके प्रयोग की चर्चा करेंगे।

शंख की उत्पत्ति :

'शंख' समुद्र में उत्पन्न होने वाला एक कटोर-काय जीव है। वह कछुआ, घोंघा, सीपी, कौड़ी के वर्ग में आता है। आकार, रङ्ग और भार की दृष्टि से शंख अनेक प्रकार के पाये जाते हैं। समुद्र के अतिरिक्त किसी-किसी नदी में भी इनकी उत्पत्ति होती है, परन्तु वे आकार में बहुत छोटे (जौ के दाने से लेकर, निमौली तक) होते हैं। हम आमतौर पर जितने शंख देखते हैं, वे सब समुद्री-उत्पत्ति हैं। रूपाकृति के आधार पर इनके भिन्न-भिन्न नाम (जातिगत) होते हैं। गोल, लम्बे, चौड़े, चपटे, ऊँचे, शंक्वाकार कई तरह के शंख दीख पड़ते हैं। मैंने रामेश्वरम् और कन्या-कुमारी में शंखों की विभिन्न जातियाँ देखी हैं—एक से एक बढ़कर विचित्र और कौतुहलकारी ! सबसे छोटा शंख गेहूँ के दाने के बराबर था, और बड़े शंख लगभग 400 वर्ग इञ्च तक के थे।

'शंख' एक अस्थि-खोलधारी जीव है—टीक घोंघे जैसा ! यह पेट के बल रेंगता हुआ चलता है। वैसे यह पानी में ही रहता है, शायद ही कभी किनारे (जमीन) पर आता हो। आयु-काल पूरा हो जाने पर जब

यह मर जाता है—इसका मांस सड़-गलकर जल में विलुप्त हो जाता है, और मात्र कङ्काल (हड्डी का खोल) शेष रह जाता है। अन्य जीवों में अनेक हड्डियाँ होती हैं, परन्तु शंख में केवल एक हड्डी होती है—यही खोल (कवच)! उसी को मछुए पानी से निकाल कर बाहर लाते हैं और साफ करके बेचते हैं।

सभी शंखों का स्वर समान नहीं होता। कुछ तो बजते ही नहीं। जो वजते हैं, उनकी भी ध्वनि भिन्नतापूर्ण होती है। जो शंख, देखने में सुन्दर, सुडौल, चमकीला, अभङ्ग और स्पष्ट, मधुर, तीव्र, ध्वनि करने वाला हो, वह सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। व्यावहारिक रूप में 'शंख' शब्द से शंख-जीव का नहीं, उसके इसी खोल (एकमात्र हड्डी से बना उसका रक्त-मांस रहित ढाँचा) का आशय लिया जाता है।

शंख : पवित्रता का प्रतीक :

'हड्डी' होकर भी 'शंख' पूज्य है। उसकी पवित्रता असंदिग्ध है। देव-स्थानों में वह देव-प्रतिमाओं की भाँति श्रद्धा-सम्मान के साथ रखा जाता है। पौराणिक-प्रसङ्गों के आधार पर यह लक्ष्मी का सहोदर और विष्णु का प्रिय है। जहाँ शंख होगा, वहाँ लक्ष्मी का निवास अवश्य रहेगा। लक्ष्मीजी ने, विष्णु भगवान् द्वारा पूछने पर स्वयं ही यह तथ्य उद्घाटित किया :—

'वसामि पद्मोत्पल शंख मध्ये,
वसामि चन्द्रे च महेश्वरे च।''........

हे प्रभो! मैं पद्म, उत्पल, शंख, चन्द्रमा और शिवजी में निवास करती हूँ।''

कुछ लोग 'शंख' को रूपाकार की दृष्टि से दरिद्रता-सूचक भी मानते हैं। परन्तु यह उनका भ्रम अथवा नास्तिकता-सूचक दृष्टिकोण है। शंख सदैव से, भारतीय-संस्कृति और अध्यात्म के आरम्भिक-चरण से ही, पूज्य, पवित्र, शुभ माना जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि शंख के निषेधों को ठीक से समझ न पाने के कारण ही ऐसी भ्रान्ति जन-मानस में फैल गयी है। वस्तुतः कुछ स्थितियों में 'शंख' को 'त्याज्य' कहा गया है। परन्तु उन स्थितियों के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में शंख को सदैव महत्त्वपूर्ण माना गया है।

शंख : त्याज्य कब ?

आजकल तो लोग मेज पर पेपर-वेट के रूप में, शौक पूरा करने के लिए शंख का प्रयोग करते हैं, उस पर तरह-तरह की बेल-बूटाकारी, पेण्टिग और चित्रांकन कराते हैं, परन्तु शंख का वास्तविक प्रयोग है— पूजाघर में उसकी स्थापना और आरती-पूजा के समय उसे बजाया जाना। पारिवारिक शुभ-संस्कारों के समय भी 'शंख-ध्वनि' करने को कुछ फलदायक माना गया है। परन्तु उन स्थितियों में 'शंख' त्याज्य हो जाता है, जब कि—

- किसी कारण से, चोट या दुर्घटना से शंख फूट गया हो।
- शंख में दरार आ गयी हो, वह चटक गया हो।
- बजता न हो।
- बजाते समय हाथ से छूटकर गिर गया हो।
- ध्वनि में भिन्न होता।
- रूपाकार में सुडौल न होकर, किसी विशेष कुरूपता से युक्त हो।
- आभाहीन हो। निष्प्रभ, बुझा हुआ शंख अशुभ होता है।

शंख का कोई भी स्थान टूटा न हो। यदि किनारे कहीं से कुछ चटक गये हों, तो उसे रेती से रेतकर यथासम्भव पूर्ववत् बनालें। न बन सके तो उसे नदी में प्रवाहित करदें।

कुछ विद्वानों की मान्यता है कि घर में दो शंख (उनकी संख्या 2 हो, नहीं रखने चाहिएं। या तो एक ही शंख हो, या फिर 2 से अधिक 3, 5, 7, 9 आदि। इसी प्रकार शिवलिंग, गणेश-प्रतिमा आदि को भी 2 की संख्या में रखने का निषेध किया गया है।

दक्षिणावर्त्ती शंख :

हम जितने भी 'शंख' देखते हैं, भले ही वे किसी आकृति में हों, प्रायः वामावर्त्ती होते हैं। अर्थात्–उनका पेट बायीं ओर को खुला होता है। उनके मुँह से पेट की ओर चलने वाली परतें बायीं ओर को घूमी रहती हैं। वाम-आवर्त्त का अर्थ ही है—बायीं ओर की भँवर (घुमाव), अर्थात् जिसकी भँवर बायीं ओर को घूमी हो, वह वामावर्त्त है। तन्त्र-शास्त्र में वामावर्त्ती-शंख, की अपेक्षा दक्षिणावर्त्ती शंख को विशेष महत्त्व दिया गया है। यह शंख, सामान्य शंखों से भिन्न दिशा में, अर्थात् दायीं ओर को घूमा रहता है। इसके मुख से पेट की ओर चलने पर भँवर का घुमाव

दाहिनी ओर पड़ता है । दायीं ओर की भँवर वाला शंख 'दक्षिणावर्त्ती' कहलाता है । मान्यता है कि यह शंख (दक्षिणावर्त्ती) बहुत ही शुभ, श्री-समृद्धि-दायक और अनेक प्रकार से वैभवकारी होता है ।

'दक्षिणावर्त्ती शंख' सरलता से नहीं मिलता । यह संसार के बहुत कम स्थानों में पाया जाता है । दुर्लभ होने के कारण इसका मूल्य भी अधिक होता है । यह आकार में गेहूँ के दाने से लेकर नारियल के समूचे फल (जटा-सहित) के बराबर तक पाया जाता है । भारत के दक्षिणी-समुद्र-तट पर 'रामेश्वरम्' और कन्याकुमारी' के 'आस-पास वह शंख प्राप्त होते हैं । सामान्यतः यह श्वेत-वर्ण का होता है ! परन्तु गौर से देखें तो इस पर लाल-पीली या काली आभा या धारियाँ भी पायी जाती हैं । शुद्ध श्वेत, दूधिया वर्ण का, जिस पर दूसरे रङ्ग की झलक न हो, ऐसा शंख सर्वोत्तम माना जाता है, परन्तु यह कदाचित् ही कहीं दीख पड़े, अन्यथा यह पीताभ या रक्ताभ होता है । छोटे आकार वाले शंख बहुधा काले होते हैं । उनमें कोई-कोई कुछ लम्बी आकृति के होते हैं । इनके भीतर शून्य स्थान नहीं होता । इनमें पत्थर जैसा पदार्थ जम जाने से ये 'जीवाश्म' (फासिल्स) बन जाते हैं । यह इनकी प्राचीनता का सूचक होता है । सामान्य फासिल्स काले, स्लेटी रङ्ग के होते हैं । कोई-कोई कुछ बड़ा और श्वेत, भी होता है । उनमें किसी-किसी का जीवाश्म काँच की तरह चमकीला, स्फटिक की तरह सफेद और पारदर्शी होता है । परन्तु स्फटिक में केवल पानी जैसी सफेदी होती है, जब कि श्वेत जीवाश्म वाला शंख पारदर्शी और सतरङ्गी किरणों से युक्त होता है । अमेरिकन डायमण्ड (सफेद जिरकन) की तरह वह हीरे जैसी इन्द्रधनुषी किरणें प्रसारित करता रहता है । यह अति दुर्लभ और मूल्यवान् होता है । इसे 'हीरा शंख' कहते हैं । इस प्रकार दक्षिणावर्त्ती शंख निम्नलिखित रूपों में प्राप्त होता है ।

1. **यवाकार**—यह शंख छोटा, गेहूँ के दाने जैसा, प्रायः स्लेटी रंग में कभी-कभी लालिमायुक्त, प्राप्त होता है । जीवाश्म बन जाने कारण इसका भार कुछ बढ़ जाता है । यह सर्वाङ्ग सिर से पूँछ तक ठोस होता है । अपनी आकृति के कारण ही यवाकार (जौ के आकार का) कहलाता है ।

2. **एलाकार**—बड़ी इलायची के बराबर (या उससे बड़ा भी) सुपारी के समान—(कभी-कभी नीबू के समान) यह दक्षिणावर्त्ती शंख

प्रायः तालाबों में पायी जाने वाली सफेद घोंघी जैसा होता है। वस्तुतः शंख और घोंघा एक ही जाति के जीव हैं। अन्तर इनके कङ्काल अस्थि-कवच) की दृढ़ता का है। इलायची के समान होने से यह 'एलाकार' कहलाता है, परन्तु यह उपमा सीमित नहीं है। यह शंख इलायची से बड़े भी देखे जाते हैं। इनका जीवाश्म रूप (फासिल्स) रवेदार, पारदर्शी पत्थर का, मिश्री के टुकड़े जैसा होता है। शुद्ध 'हीरा-शंख' यही है। यह शंख जितना ही बड़ा हो, और इसके मणिभ (क्रिस्टल्स) जितने अधिक स्वच्छ, पारदर्शी और आभायुक्त हों, यह उतना ही श्रेष्ठ माना जाता है। 'हीराशंख' का मूल्य 'दक्षिणावर्त्ती-शंखों में सबसे अधिक होता है। यहाँ प्रसङ्गवश मैं यह भी बताना चाहता हूँ कि ये सभी शंख मैंने प्रत्यक्ष देखे हैं। मैं जहाँ भी जाता हूँ, विचित्र वस्तुओं को खोजने देखने का प्रयास करता हूँ। भोपाल, उज्जैन. ओंकारेश्वर, शिरड़ी, बँगलौर, मैसूर, तिरुपति, मद्रास, गोआ, कोयम्बटूर, त्रिचनापल्ली और बम्बई आदि की यात्रा में ऐसी चीजें देखने के लिए यथा सम्भव प्रयास-रत रहा हूँ। उत्तर की यात्रा—हरिद्वार, केदारनाथ, बद्रीनाथ आदि से भी यह सब देखने का सौभाग्य मुझे मिला है।

इसी प्रकार एक शंख और होता है—मोती-शंख ! यह सर्वाङ्ग, सप्तवर्णी आभा बिखेरता है। इसकी आकृति सामान्य शंखों से भिन्न होती है। यह मुँह की ओर अति सङ्कीर्ण और पेट-पूँछ की ओर क्रमशः गोलाई में विस्तृत होकर छत्राकार बना होता है। इसका खोल मोटा, मजबूत और भारयुक्त होता है। सुन्दरता में यह शंख सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। यह बजता भी है, और गोल होने के कारण बड़ी सरलता से अपने पास, जेब में भी रखा जा सकता है। परन्तु देखने पर सहज ही पता न चलने पर भी, यह दक्षिणावर्त्ती न होकर, वामावर्त्ती होता है। इसकी बनावट कुछ ऐसी मोहक, भ्रामक और जटिल होती है कि व्यक्ति चकरा जाता है। शोभा की दृष्टि से यह शंख सर्वाधिक सुन्दर, उत्तम माना जाता है। वैसे, धनदायक तान्त्रिक-प्रयोगों में दक्षिणावर्त्ती शंख का महत्त्व अधिक है।

दूषित दक्षिणावर्त्ती शंख :

'दक्षिणावर्त्ती' शंख चाहे जितना बड़ा, भारी, चमकीला और भड़कीला हो, यदि वह सदोष है, तो उसे नहीं लेना चाहिए। सामान्य रूप

में, निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर सदोष दक्षिणावर्त्ती की पहिचान की जा सकती है :—

- शंख कहीं से टूटा, फूटा, चटका न हो ।
- शंख में कहीं दरार न हो, पपड़ीदार भी न हो ।
- घुन-खाये जैसे काले-काले छेद न हों ।
- किसी भी प्रकार का दाग-धब्बा न हो ।
- शंख के शिखर सुरक्षित हों । भग्न-शिखर अथवा भग्न-सुख वाला शंख भी त्याज्य है ।

वर्णानुसार 'शंख' उत्तम होते हैं । काले रङ्ग का शंख केवल शूद्रों-तामसी-जनों के लिए ग्राह्य होता है । उसे उच्च-वर्णीय लोगों को (ब्राह्मण-क्षत्रीय को) नहीं लेना चाहिए ।

सर्वश्रेष्ठ दक्षिणावर्त्ती शंख :

प्राय: सभी दक्षिणावर्त्ती-शंख मुख बन्द किये होते हैं । वैसे जन्तु-विज्ञान के आधार पर कहा जा सकता है कि घोंघा वर्ग के सभी जीवों का मुख बन्द होता है । जिसे हम 'मुख' कहते हैं, वह वास्तव में उनका 'पुच्छ' भाग है । पेट के बल रेंगने वाले ये घोंघा वर्ग के सारे जल-जन्तु पेट के बल चलते हैं । वहीं आगे की ओर इनका मुख होता है, पीछे की ओर मल-द्वार ! उसी को 'पूँछ' कहते हैं । अस्तु शंख में, जो भाग खुला होता है, वह पेट कहलाता है, परन्तु वास्तव में वही 'मुख' है । जिसे 'मुख' कहते हैं, वह वस्तुत: पूँछ है । उसी को काटकर (तोड़कर) गोल छेद बना लेते हैं और उधर से ही फूँक मारकर शंख बजाते हैं । इस प्रकार पूँछ की ओर वाले छेद से फूँक मारने पर, भीतर के आवर्तों से होती हुई (घुमावदार सुरङ्ग पार करके) घोंघे (शंख) के पेट (मुँह) से वह वायु (फूँक) ध्वनि बनकर निकलती है । दक्षिणावर्त्ती शंख तोड़े-बजाये नहीं जाते, केवल पूजा में प्रस्तुत होते हैं । परन्तु कई आचार्यों तथा ग्रन्थों का मत है कि "यदि निर्दोष, सर्वाङ्गपूर्ण श्वेतवर्ण का दक्षिणावर्त्ती-शंख घर में हो और वह बजता भी हो, तो ऐसा शंख सर्वोत्तम होता है ।" कुछ लोग इस शंख पर प्रहार करने, तोड़कर उसका मुँह खोलने में परहेज करते हैं, इसीलिए यह प्राय: बिना छेद का ही मिलता है । इसे बजाने का लोभ त्याग कर, केवल पूजा का माध्यम (प्रतिमा की भाँति) बनाये रखा जाये, यही उचित प्रतीत होता है । नीचे इसकी पूजन-विधि और प्रभाव का उल्लेख किया जा रहा है :—

दक्षिणावर्त्ती शंख की पूजन-विधि :

चूंकि यह शंख सदैव सर्वत्र सुलभ नहीं रहता, इसलिए इसकी प्राप्ति के लिए मुहूर्त्त वाला प्रतिबन्ध व्यावहारिक नहीं रह जाता । पहले किसी पुरोहित से शुभ-मुहूर्त्त पूछ लें । यदि उस दिन यह शंख मिल जाता है, तो ले आयें । यह स्थिति सर्वश्रेष्ठ होती है । किन्तु ऐसा न हो, सके, तो जब भी, जहाँ भी यह शंख मिले, या तो बात तय करके वहीं रहने दें और शुभ मुहूर्त्त में ले आयें । या फिर, उसे ले आयें और घर में देव-प्रतिमाओं के पास रख दें । जब शुभ मुहूर्त्त आये, उसकी पूजा करें । शुभ मुहूर्त्त के लिए—सामान्यत: रामनवमी, विजया-दशमी, दीपावली. कार्तिक-पूर्णिमा, रक्षाबन्धन, गङ्गा-दशहरा आदि के दिन शुभ होते हैं । गुरुपुष्य-योग अथवा रविपुष्य योग सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त्त होता है ।

स्थानीय पण्डित पुरोहित से पूछकर कोई भी शुभ दिन मालूम किया जा सकता है । दिन, तिथि, नक्षत्र और योग की गणना करके वे लोग शुभ मुहूर्त्त बता देते हैं । प्राय: सभी अङ्ग एक साथ अनुकूल स्थिति में नहीं आते, एक न एक त्रुटि अवश्य रहती है, फिर भी अधिकतम अङ्गों के आधार पर मुहूर्त्त निधारित किया जा सकता है । यहाँ विद्वानों में मतभेद भी पाया जाता है । कोई दिन को महत्त्व देता है, कोई तिथि को ! कोई नक्षत्र को वरीयता देता है, कोई योग को ! सब एक साथ मिल जाएं, तब तो कहना ही क्या है, किन्तु यदि ऐसा न हो सके, तो रविपुष्य या गुरुपुष्य को मान्यता देनी चाहिए । यदि ऐसा मुहूर्त्त आने में बहुत विलम्ब है, और साधक को जल्दी है, तो भी वह किसी शुभ-नक्षत्र और शुभ योग की उपस्थिति में साधना कर सकता है । आशय यह है कि दुर्योग में, अशुभ मुहूर्त्त में कोई काम नहीं करना चाहिए ।

सर्वप्रथम दक्षिणावर्त्ती शंख कहीं से प्राप्त करें । फिर शुभ मुहूर्त्त में अपनी दैनिक-पूजा से निवृत्त होकर, शुद्ध लकड़ी के पीठे पर, चाँदी की तश्तरी रखें । यह न हो सके, तो कोई भी धातु का पात्र (ताँबा-पीतल) ले लें । उस पर कमल-पुष्प का दल बिछायें । न मिले, तो लाल कपड़ा बिछा दें । शंख को थाली में रखकर गो-दुग्ध, गङ्गाजल से भली-भाँति स्नान करायें । स्वच्छ नवीन वस्त्र से पोंछकर, उसी तश्तरी पर रखें । सफेद चन्दन, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप से पूजा करके, मेवा-मिठाई का नैवेद्य अर्पित करें और चाँदी का सिक्का चढ़ायें । यह न मिले, तो प्रचलित

सिक्का (रुपया) चढ़ा दें। साथ ही, चाँदी का कोई टुकड़ा धोकर चढ़ा दें। उत्तम होगा कि इसके लिए पहले से ही 10-20 रुपये का चाँदी का गोल टुकड़ा या 'श्री-ॐ' जैसा कुछ बनवा लें और वही चढ़ायें। पूजन के उपरान्त परम श्रद्धा-भाव से मन्त्र का जप करें। जप की संख्या अपनी सामर्थ्य के अनुसार पहले से निश्चित कर लें, और 108 दानों की माला पर उतनी संख्या में जप पूरा करें। जप पूरा हो चुकने पर सामान्य हवन-सामग्री में घी, शक्कर, जौ, तिल, अक्षत मिलाकर, उसी मन्त्र से 21 या 51 बार आहुति देते हुए हवन करें। तदुपरान्त किसी भी एक (या अधिक) ब्राह्मण को भोजन और दक्षिणा दें। यह समस्त क्रिया सम्पन्न हो चुकने पर 'शंख' को पात्र (तश्तरी) सहित उठाकर देव-प्रतिमाओं के पास रख दें। यदि घर में प्रतिमाएं नहीं हैं, तो वैसे ही किसी सुरक्षित आलमारी, ताक में रख दें और प्रतिदिन उसका पूजन करते रहें। यह भी हो सकता है कि भण्डार-घर, कोष, आलमारी, तिजोरी में उसे रख दें। किन्तु धूप-दीप अवश्य नित्यप्रति करना चाहिए। वैसे, विधान तो यही है कि शंख को नित्यप्रति स्नान करायें तथा चन्दन, पुष्प, धूप, दीप से पूजा करें। पुष्प नहीं मिल रहे, तो जाने दे, जो भी उपादान सम्भव हो, उसे अवश्य प्रयोग करें। सामर्थ्य के अनुसार शंख पर सिक्के भी अर्पित करते रहें।

पूजन मन्त्र :

दक्षिणावर्त्ती शंख की पूजा के लिए निम्न में से कोई भी एक मन्त्र लिया जा सकता है। पूजा में आदि से अन्त तक उसी का जप करना चाहिए। शंख पर चढ़ाया गया जल अपने ऊपर तथा घर में छिड़क देना चाहिए। उसे इधर-उधर न फेंके। शास्त्र में लिखा है कि 'दक्षिणावर्त्ती शंख में जल भरकर, उसे जिसके ऊपर छिड़क दिया जाये, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

मन्त्र—

1. ॐ श्री लक्ष्मी सहोदराय नमः।
2. ॐ श्री पयोनिधि जाताय नमः।
3. ॐ श्री दक्षिणावर्त्त शंखाय नमः।
4. ॐ ह्री श्रीं क्लीं श्रीधर करस्थाय, पयोनिधि जाताय, लक्ष्मी सहोदराय, दक्षिणावर्त्त शंखाय नमः।
5. ॐ ह्रीं श्रीधर करस्थाय, लक्ष्मीप्रियाय, दक्षिणावर्त्त शंखाय मम चिन्तित फलं प्राप्त्यर्थाय नमः।

इनमें सबसे सरल प्रथम मन्त्र है—'ॐ श्री लक्ष्मी सहोदराय नमः।' वैसे, साधक अपनी सामर्थ्य, श्रद्धा के अनुसार कोई भी मन्त्र जपकर इस शंख के अद्भुत प्रभाव का लाभ उठा सकते हैं।

प्रभाव—

यदि 'शंख' निर्दोष है, विधिवत् लाकर, पूजन द्वारा घर में स्थापित किया गया है, तो वह निश्चित रूप से यह प्रभाव दिखायेगा—

1. दक्षिणावर्त्ती शंख जहाँ भी रहता है, दरिद्रता वहाँ से पलायन कर जाती है।

2. अन्न-भण्डार में अन्न, धन-भण्डार में धन, वस्त्र-भण्डार में वस्त्र, अध्ययन-पूजन, कथा में रखने से ज्ञान, शयन-कक्ष में रखने से शान्ति की वृद्धि होती है।

3. इसमें शुद्ध जल भरकर व्यक्ति, वस्तु, स्थान पर छिडकने से दुर्भाग्य, अभिशाप, अभिचार और दुर्ग्रह के प्रभाव समाप्त हो जाते हैं।

4. ब्रह्म-हत्त्या, गो-हत्त्या, बाल-हत्त्या जैसे पातकों से मुक्ति पाने के लिए दक्षिणावर्त्ती शंख में जल (हो, तो गङ्गाजल) भरकर सम्बन्धित व्यक्ति पर छिड़कने से वह दोषमुक्त हो जाता है।

5. जादू, टोना, नजर, चलाव जैसे अभिचार-कृत्त्यों का दुष्प्रभाव भी इससे शान्त हो जाता है।

6. निर्धनता-निवारण के लिए यह सर्वश्रेष्ठ वस्तु है।

5. हाथाजोड़ी

सामान्य परिचय :

प्रकृति का कला-विलास देखना हो, तो 'हाथाजोड़ी' देखिये। वास्तव में यह एक जड़ी है, परन्तु अपनी अद्भुत रूपाकृति और विचित्र संरचना के कारण कोई खिलौना जैसा प्रतीत होता है। खिलौना भी ऐसा, जिसके निर्माण में बारीकी, क्रम-बद्धता और सौन्दर्य का अप्रतिम समावेश हो।

'हाथाजोड़ी' के कई नाम हैं—हाथाजोड़ी, हथजोड़ी, हथजुड़ी, हस्तजोड़ी, हस्ताजूड़ी, दुहथिया, भुजयुग्म और हथजोरिया। परन्तु सर्वाधिक प्रचलित नाम यही है—हत्थाजोड़ी या हाथाजोड़ी! वह एक पौधे की जड़ है, अतः वनस्पति श्रेणी में परिगणित होती है। इसकी

उत्पत्ति भारत के बाहर—ईरान, फ्रान्स और जर्मनी तक में होती है। वनस्पति होने के नाते अनेक प्रकार के औषधीय-प्रभावतो इसमें हैं ही, इसे तान्त्रिकों द्वारा भी बहुत मान्यता प्राप्त है। तन्त्र-शास्त्र में इसके अनेक और अद्‌भुत प्रयोग वर्णित हैं। मेरा अपना अनुभव है कि यदि 'हाथाजोड़ी' को विधिवत् सिद्ध कर लिया जाय, तो तन्त्र-साधना में कई उपलब्धियों का स्वामित्त्व प्राप्त हो सकता है। भारत ही नहीं, सुदूर के देशों में यह औषधि तथा तान्त्रिक वस्तु के रूप में विख्यात है। इसे ईरान में 'चुबकउश्शान' या 'चुबक उशनान' कहते हैं। फारसी उर्दू में 'बखूर-ए-मरियम' (बखूरे-मरियम) के नाम से जानी जाती है। यूरोप के देशों में यह लैटिन भाषा के 'सायक्लेमेन परसीकम' नाम से जानी जाती है।

मैंने इस जड़ी को वहुत निकट से कई बार देखा-परखा है। इसकी अद्‌भुत प्रभावशीलता ने मुझे कई बार विस्मित किया है। मैं स्वानुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि निस्सन्देह 'हाथाजोड़ी' तन्त्र-जगत् की एक अति प्रभावी, चमत्कारिक और विचित्र वस्तु है। इस जड़ी से मेरा परिचय कैसे हुआ' यह बताने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। फिर इसकी शक्ति का अनुभव कैसे हुआ, यह भी बताना चाहता हूँ।

मेरा पारिवारिक-परिवेश आस्थापूर्ण, आध्यात्मिक और सामान्य सम्पन्न रहा है। अतः मुझे अनेक प्रकार के पौराणिक, ऐतिहासिक कथा-प्रसङ्ग पढ़ने-सुनने को मिलते रहे हैं। प्रभु की कृपा से मेरी ग्रहण-शक्ति, धारणा-शक्ति कुछ अच्छी रही, इसलिए जो भी देखा-सुना या पढ़ा, वह मन-मस्तिष्क में स्थायी रूप से अङ्कित हो गया।

तब बचपन ही था, मेरे ग्राम-साथी 'जुम्मन मनिहार' (मोली) ने एक दिन मुस्लिम सन्त-फकीरों की अलौकिक शक्तियों का वर्णन करते हुए, कई एक चमत्कारी वस्तुओं के नाम गिनाये। उन्होंने बताया—"एक होती है, हाथाजोड़ी ! यह सबसे जोरदार चीज है। ऐसी करामात और किसी चीज में जल्दी नहीं मिलेगी। इसको साथ रखकर, कहीं भी जाओ, चाहे जैसा मौका हो—कोई खिलाफ नहीं हो सकता। अगर कोई खून (कत्ल) भी कर डाले और इसे साथ में रखकर, थाने या कचहरी चला जाय, तो उसे कुछ नहीं होगा। वह छूट जायगा।"

वाद में, मोली ने विस्तार से, जो कुछ वताया, उसका सारांश यह था कि 'हाथाजोड़ी' में प्रबल सम्मोहन-शक्ति होती है। अगर इसको

सिद्ध कर लिया जाये, तो कहीं भी जाकर सफलता पायी जा सकती है। जिसके पास यह होगी, कोई उसका विरोध नहीं करेगा।

बात वहीं की वहीं पड़ी रही। परन्तु मैं भूला नहीं। 'हाथाजोड़ी' की वह तथाकथित महिमा मुझे कभी-कभी चंचल कर देती थी। बहुत दिनों बाद, मैं कानपुर आया, तो एक तान्त्रिक-वस्तुएं बेचने वाले से भेंट हुई। मैंने उससे 'हाथाजोड़ी' माँगी तब तक मैंने उसे कभी देखा नहीं था, इसलिए पहिचान भी नहीं थी। मोली द्वारा बतायी गई रूपरेखा स्मृति में थी। उस विक्रेता ने मुझे बड़े अनुरोध पर एक हाथाजोड़ी दी। पैसे चुकाकर मैं उसे घर ले आया। रूपरेखा में मोली द्वारा बताये गये चिह्न उसमें थे, इसलिए शङ्का की कोई बात नहीं थी। वह असली 'हाथाजोड़ी' थी, इसमें संशय नहीं। यह तो बाद में पता चला कि वह असली होकर भी—पूरी नहीं, अधूरी थी। उसमें दो भुजाएँ नहीं थीं, बल्कि एक ही भुजा थी। खैर, मैं उसे ले आया, और जैसी कुछ विधि तब तक पढ़ी-सुनी थी, तदनुसार उसे शोधित करके रख लिया। बाद में मुझे किसी अधिकारी से काम पड़ा। समस्या जटिल थी। मैंने वह 'हाथाजोड़ी' जेब में रख ली और उस अधिकारी के पास गया। आश्चर्यमय प्रसन्नता से मैं खिल उठा, जब अधिकारी ने मेरे प्रति बहुत अनुकूल व्यवहार किया। बाद में भी कई बार उसको लेकर कई जगहों पर गया। लगभग सर्वत्र सफलता मिली। अगर एक-दो जगह भेंट न हुई, या काम न बना, तो भी कम से कम इतना तो रहा कि काम बिगड़ने नहीं पाया। लाभ नहीं हुआ, तो हानि भी नहीं हुई। बाद में भेंट होने पर, सम्बन्धित व्यक्ति, अधिकारी मेरे अनुकूल ही रहे। इस तरह प्रत्यक्ष प्रमाण पाकर मैं आश्वस्त हो गया, बल्कि निश्चित धारणा बना ली कि यदि 'हाथाजोड़ी' निर्दोष हो, शुभ मुहूर्त्त में लायी जाये और विधिवत् इसको पूजन द्वारा सिद्ध कर लिया जाये, तो भौतिक-जगत् की अनेक कठिनाइयों और जीवन की विभिन्न समस्याओं का समाधान पाया जा सकता है।

वस्तुगत-परिचय :

'हाथाजोड़ी' एक पौधे की जड़ है—यह तथ्य निर्विवाद है। परन्तु उस पौधे का क्या नाम है, कहाँ होता है, रूपरेखा कैसी है—इस विषय में मतभेद है। मैंने 2-3 पुस्तकें ऐसी देखी हैं, जिनमें 'हाथाजोड़ी' के पौधे का मन-चाहा नाम दे दिया गया है। एक सज्जन ने लिखा है—'....यह

जड़ी ब्रह्मदण्डी पौधे से प्राप्त होती है और यह ब्रह्मदण्डी वही पौधा है, जिसे हम 'निर्गुण्डी' कहते हैं....।" किन्तु यह विवरण नितान्त अशुद्ध, भ्रामक, कल्पनाधारित और मिथ्या है। 'ब्रह्मदण्डी' और 'निर्गुण्डी' दोनों भिन्न वनस्पतियाँ हैं। इनके पौधे—फूल, पत्ती, रङ्ग, गुण, प्रभाव सब एक-दूसरे से नितान्त भिन्न होते हैं। और जहाँ तक 'हाथाजोड़ी' की बात है, उसका इन दोनों में किसी से भी—दूर का भी रिश्ता नहीं है। वह न निर्गुण्डी की जड़ है, न ब्रह्मदण्डी की! उसके पौधे का अस्तित्व सर्वथा अलग-स्वतन्त्र है।

मैंने इसके पौधे को नहीं देखा, परन्तु अध्ययन-अनुभव से मानता हूँ कि यह एक वन्य-वनस्पति है, जो सर्वत्र सुलभ नहीं। भूमि-लोभ और विकास-व्यामोह ने आज के युग में प्रकृति का रूप ही विकृत कर दिया है। क्या समाज, क्या शासन—दोनों ही पर्वतों-वनों को विलुप्त करने पर सन्नद्ध हैं। फलस्वरूप वन और उनमें उत्पन्न होने वाली वनस्पतियाँ (जीव जन्तु भी) लुप्तप्राय: हो चले हैं। और तो और कई प्रकार की घासें भी अब अलभ्य हो गयी हैं, जिन्हें चरकर पहले हमारे पशु अपनी क्षमता और वंश-परम्परा सुरक्षित रखते थे। अस्तु, 'हाथाजोड़ी' का पौधा मध्य-प्रदेश और राजस्थान के कुछ भागों में अपेक्षाकृत सुलभ है, वैसे तो कहीं भी मिल सकता है। फिर भी, है यह दुर्लभ वनस्पति! जड़ी-बूटी के विक्रेता, सपेरे, तान्त्रिक और वन्य-जातियों के लोगों—नट, बेड़िया, कंजर, मदारी, कपरिया आदि से बात करने पर मिल जाती हैं। पहले बहुत सस्ती थी, परन्तु पुस्तकों द्वारा इसकी महिमा, गुणवत्ता और बहु-उपयोगिता का प्रचार हो जाने से अब बेचने वाले भी चतुर हो गये हैं, और मनमानी कीमत वसूल करते हैं। मैंने इसे एक-सौ रुपये से भी अधिक दामों में बिकते देखा है।

अपने पौधे की जड़ में, इसकी दो शाखायें दोनों हाथ फैलाये ऋजु-रेखा-सी बनाती रहती हैं। जानकार लोग इसे खोदकर, उसी गीली (हरी-मुलायम) स्थिति में दोनों भुजाओं को समेट कर एक में मिला देते हैं। इस तरह पहले की दाँये-बाँये फैली भुजाएं सामने एक सीध में आकर अञ्जलि-बद्ध रूप में हो जाती हैं। दोनों हाथों में हथेलियाँ और उन पर उँगलियाँ होती हैं। ये उँगलियाँ भीतर की ओर मुड़ी हुई, बँधी मुट्ठी के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। यह दृश्य बड़ा सुन्दर, कौतूहलकारी और स्मरणीय होता है। यही असली हाथाजोड़ी है, जो विभिन्न तान्त्रिक

प्रयोगों के लिए विख्यात है। यह बात अलग है कि जलवायु और मिट्टी के भेद से, विभिन्न स्थानों में उत्पन्न हाथाजोड़ी की रूपरेखा में समता होते हुए भी, आकार और वर्ण (रङ्ग) का अन्तर होता है। रूपरेखा में भी यद्यपि सामान्य समता रहती है, परन्तु गौर से देखें तो पता चलता है कि जैसे हर आदमी का चेहरा भिन्नता लिये होता है, वैसे ही हर हाथाजोड़ी की बनावट (रूपरेखा) में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य रहता है। लेकिन उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। वह अपने में सर्वाङ्ग सम्पूर्ण हो—यही पर्याप्त है। छिन्न-भिन्न, कटी, टूटी सछिद्र, विकृत 'हाथाजोड़ी' निकृष्ट मानी जाती है। उसका प्रयोग वर्जित है। सुन्दर, सुडौल, पुष्ट, सर्वाङ्गपूर्ण, गौर-वर्ण, आभायुक्त, आकर्षक और सुदृढ़ 'हाथाजोड़ी' सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है परन्तु पानी में भीगने पर यह खराब हो जाती है, अतः इसे पानी से बचाना चाहिए। आकार की श्रेष्ठता इसके गुणों को भी श्रेष्ठता प्रदान करती है। छोटी हो या बड़ी, उसका सुडौल और सम्पूर्ण होना ही प्रमुख गुण है। मैंने एक बार लहसुन के बड़े जवे के बराबर, बहुत ही छोटी, किन्तु अति सुन्दर 'हाथाजोड़ी' देखी थी। पास पैसे कम होने के कारण उसे खरीद न पाने का परिताप आज भी सालता रहता है। इसी प्रकार एक बार एक बाबा ने प्रसन्न होकर मुझे भेंट-स्वरूप एक बहुत बड़ी और सर्वाङ्ग सुन्दर, पुष्ट 'हाथाजोड़ी' दी थी। मेरे एक मित्र महोदय भी वहाँ बैठे थे। उन्होंने लोभवश वह मुझसे माँग ली। धर्मसंकट में पड़कर, मैंने वह उन्हें दे दी। उतनी बड़ी 'हाथाजोड़ी' मैंने आज तक नहीं देखी। बाद में, उस बाबा को पता चला तो उसने मेरी बहुत भर्त्सना की—"बाबूजी, आपकी किस्मत ने साथ नहीं दिया, इसीलिए वह आपके हाथ से निकल गयी। उसे मैंने काफी कीमत पाकर भी नहीं बेचा था। वह दुर्लभ थी……आपके मित्र बड़े चालाक निकले, वह आपकी सज्जनता को लूट बैठे…खैर, अब तो होना था हो गया। आप कहीं से कोई एक छोटी-मोटी ले आयें और उसे पास रखें। बहुत बढ़िया चीज है, आपको फायदा होगा……।"

अस्तु, वनस्पति-जगत् में 'हाथाजोड़ी' एक बहुत ही अद्‌भुत, चमत्कारी, दिव्य शक्ति-सम्पन्न और तान्त्रिक-प्रयोगों के लिए निश्चित रूप से प्रभावशाली वस्तु है। किन्तु अन्य-वनस्पतियों की भाँति इसे किसी शुभ-मुहूर्त्त में विधिवत् निमन्त्रण देकर ले आना असम्भव जैसा है, क्योंकि इसका पौधा सर्वत्र सुलभ नहीं होता। कहीं हो भी, तो उसे पहिचाने

कौन ? यों, वनस्पति-विज्ञानियों ने उसके बारे में संकेत दिये हैं कि इस पौधे के पत्ते एक ओर हरे, पीठ की ओर सफेद होते हैं, जिसे रोमावली भी प्राप्त होती है। पौधे की टहनी पर गुलाबी रङ्ग का फूल होता है, परन्तु किसी-किसी पौधे पर नीली रङ्गत के फूल भी पाये जाते हैं। यह पौधा प्रायः झाड़ियों के मध्य उगता है, और आर्द्र (भीगी) जमीन इसके लिए विशेष अनुकूल पड़ती है। इसकी जड़ गोलाई लिये (शकरकन्द जैसी) होती है, जो सामान्यतया श्यामवर्ण की देखी जाती है। इसी जड़ से कोई शाखा निकल कर 'हाथाजोड़ी' का रूप धारण कर लेती है। इनकी बनावट अद्‌भुत और कलापूर्ण होती है। बन्द मुट्‌ठी के आकार में इसकी उँगलियाँ कौतूहलकारी होती हैं। भारत में—मध्य-प्रदेश और राजस्थान में इसके पौधे को 'बिरवा' कहते हैं।

जो भी हो, वह विलक्षण वस्तु है, और उसे कहीं से भी (ज़न-जातियों, जङ्गली-जातियों, पंसारियों, तान्त्रिकों अथवा किसी से भी) खरीद लायें और किसी शुभ-मुहूर्त्त में विधिवत् पूजन करके रख लें। प्रकारान्तर से यह अनेक कार्यों को सिद्धि में सहायक होती है।

हाथाजोड़ी की पूजन-विधि :

किसी 'रविपुष्य-योग' के दिन प्रायः नहा-धोकर शुद्ध स्थान पर बैठें। लाल कपड़े के आसन पर, 'हाथाजोड़ी' को भीगे कपड़े से पोंछकर (स्नान कराकर) रख दें। फिर, उस पर सिंदूर, कपूर, लौंग, इलायची अक्षत चढ़ायें। लाल फूल और लाल चन्दन भी चढ़ा सकते हैं। इसके बाद लोबान की धूप दें और आरती करें। तत्पश्चात् कोई चिक्का चढ़ाकर, इसके मन्त्र का जप करें। जप-संख्या अधिकतम होनी चाहिए। कम-से-कम 11 माला, या फिर 21, 51 101 माला जो भी सम्भव हो—जपें।

जप पूरा हो चुकने पर, सामान्य हवन-सामग्री में लोबान या गूगल मिलाकर, असम्भव हो तो— केवल लोबान या गूगल से ही, पुनः 21 बार मन्त्र पढ़ते हुए, आहुति देकर हवन करें। हवन पूरा हो चुकने पर इसे उठाकर कहीं सुरक्षित रख दें, और किसी एक ब्राह्मण-बालिका को भोजन कराकर दक्षिणा दें। इस विधि से यह शुद्ध और प्रभावशाली हो जायेगी।

हाथाजोड़ी का प्रभाव :

इस जड़ी का सर्वाधिक प्रभाव इसकी 'सम्मोहनशीलता' है।

साधक इसे लेकर कहीं भी जाए—उसका विरोध नहीं होगा। सम्बन्धित व्यक्ति अनुकूल आचरण-व्यवहार करेगा। वशीकरण, सम्मोहन, आकर्षण, धनवृद्धि, सुरक्षा आदि के लिए यह परम उपयोगी वस्तु है। किन्तु प्रेम और सम्मोहन-वशीकरण के लिए इसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। कारण कि यह मनोरथ की पूर्ति भले ही करदे, परन्तु समाज-विरोधी और अनैतिक कार्य का फल अन्ततः प्रयोक्ता को भोगना ही पड़ता है। अतः इसके प्रयोग में विवेकपूर्वक औचित्य का ध्यान रखना चाहिए।

मन्त्र :

'हाथाजोड़ी' में चामुण्डा देवी का वास होता है। यह देवी दुर्गाजी का एक रूप है। चण्डी, चण्डिका, चामुण्डा, दुर्गा, काली आदि सब एक ही शक्ति के विभिन्न रूप हैं। इनमें से किसी भी शक्ति की साधना करें—दुर्गाजी की कृपा प्राप्त होगी। तो भी 'हाथाजोड़ी' के लिए—चामुण्डा देवी अथवा महाकाली जी के मन्त्र विशेष प्रभावी होते हैं। साधक-जन निम्नाङ्कित में से कोई एक मन्त्र जपकर 'हाथाजोड़ी' सिद्ध कर सकते हैं। ध्यान रहे कि यह सारी साधना एकान्त में और गुप्त रूप से करनी चाहिए। मन्त्र इस प्रकार हैं :–

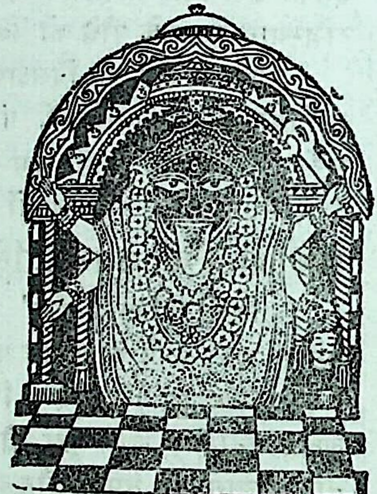

- ॐ चामुण्डायै नमः।
- ॐ महाकाल्यै नमः।
- ॐ नमश्चण्डिकायै नमः।
- ॐ किलिकिलि स्वाहा।

प्रयोग-भेद :

धन-वृद्धि के लिए—पहले 'हाथाजोड़ी' की विधिवत् पूजा करके इसे एक डिब्बी में रख लें। बाद में प्रतिदिन पूजा के समय इसे सामने रखकर धूप-दीप दें, कोई एक सिक्का चढ़ा दें और '**ॐ चामुण्डादेवी धनं देहि**' मन्त्र का 108 बार (एक माला) जप करें। जप-साधना के दिनों में

संयम से रहें। थोड़े दिनों में ही आर्थिक-परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होगा। सुरक्षा के लिए भी यह परम उपयोगी है।

वशीकरण के लिए :

उपर्युक्त विधि से पूजन करके परम श्रद्धापूर्वक इस मन्त्र का जप करें :—

"ॐ चामुण्डादेवी..........मे वश्यं कुरु कुरु स्वाहा।"

यहाँ रिक्त स्थान पर वाञ्छित व्यक्ति का नाम लें। यदि मन्त्र को इस रूप में जपने में असुविधा हो रही हो, तो सामान्य भाषा में अपनी कामना-प्रार्थना एक वाक्य में निरन्तर जपते रहें—

'हे माता चामुण्डाजी............को मेरे वशीभूत कर दीजिए।'

ध्यान रहे कि इस वाक्य में कोई परिवर्त्तन न हो, अन्यथा ध्वनि-दोष के कारण साधना खण्डित हो जायेगी।

मन्त्र-सिद्ध 'हाथाजोड़ी' को गले या भुजा पर धारण करने से भी वशीकरण होता है।

सम्मोहन के लिए :

लगभग उपर्युक्त विधि से ही यह प्रयोग भी होता है। इन सभी कार्यों के मन्त्र-जप की एक सरलतम विधि यह है कि साधक, पूजनोपरान्त देवी से प्रार्थना करें—"हे माता! मेरी...............समस्या है। आप कृपा करके मेरा यह कार्य पूरा कर दीजिए, मेरा यह सङ्कट दूर कर दीजिए, अमुक व्यक्ति...............को मेरे अनुकूल कर दीजिए, मेरी दरिद्रता का निवारण कीजिए........आदि।" इसके बाद हाथ जोड़कर प्रणाम् करें, और पूर्वोक्त चार मन्त्रों में से कोई भी एक मन्त्र जपना आरम्भ कर दें। नियमित रूप में, एक निश्चित संख्या में प्रतिदिन मन्त्र-जप किया जाये, तो उसका अद्भुत प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

औषधीय-प्रयोग :

आयुर्वेद और तन्त्र-शास्त्र में 'हाथाजोड़ी' को अनेक रोगों के निवारण में प्रयोजनीय कहा गया है। कुछ प्रमुख समस्याओं में, इसकी प्रयोग-विधि निम्न प्रकार से की जा सकती है :—

मलावरोध :

'हाथाजोड़ी' को पीसकर लेप बनायें। यह लेप पेट पर चुपड़ कर

लेटे रहें। इसके प्रभाव से मलावरोध (कब्ज) का विकार नष्ट हो जाता है।

प्रसव-सुविधा :

यदि प्रसव-काल में किसी महिला को कष्ट हो रहा हो, तो 'हाथाजोड़ी' को पानी में घिसकर, चन्दन की भाँति लेप तैयार करें। यह लेप गर्भिणी की नाभि पर अथवा नाभि, पेट, पेड़ू के पूरे क्षेत्र पर चुपड़ दें। इसके प्रभाव से वह सुखपूर्वक प्रसव कर सकेगी।

गर्भ-निवारण :

'हाथाजोड़ी' का चूर्ण अथवा लेप सेवन करने से गर्भ नष्ट हो जाता है। किन्तु यह प्रयोग बहुत सावधानी से, किसी विशेष संकट की स्थिति में ही, चिकित्सक का परामर्श लेकर करना चाहिए। कारण कि किसी-किसी महिला को इसके प्रभाव ने, गर्भपात के बाद कुछ दिनों के लिए मूर्च्छा (हिस्टीरिया) की व्याधि ग्रस्त कर लेती है। वैसे, गर्भपात जैसे घातक-प्रयोग न किये जायँ, यही उत्तम है।

मूत्रावरोध-निवारण :

किसी भी कारण से यदि पेशाब बन्द हो गया हो, तो 'हाथाजोड़ी' को पानी में घिसकर, उसका लेप नाभि से पेड़ू तक (मूत्राशय के ऊपर) करें। इसके प्रभाव से मूत्रावरोध दूर होकर, पेशाब खुलासा उतरने लगेगा।

मासिक-स्राव-शोधन :

अनियमित, अवरुद्ध, अल्प मासिक-स्राव की स्थिति में—'हाथाजोड़ी' का चूर्ण कपड़े की पोटली द्वारा जननेन्द्रिय में रखें--समस्त विकार दूर होकर, मासिक-स्राव खुल जायेगा।

6. गोरोचन

सामान्य परिचय :

तन्त्र-शास्त्र में जिन अनेक वस्तुओं को अति आवश्यक और निश्चित प्रभावी बताया गया है, उसमें 'गोरोचन' भी एक पदार्थ है। धातु अथवा वनस्पति न होकर, गौ (गाय) के शरीर से उत्पन्न होने वाला एक पदार्थ है। वस्तुतः यह गाय का 'पित्त' है। जैसे मानव तथा अन्य जीवों में चर्बी, हड्डी, मांस, रक्त आदि उनकी शरीर-रचना के

आधार हैं, वैसे ही 'पित्त' भी एक विशेष पदार्थ (शरीर का अङ्ग) है। 'गोरोचन' नाम का यह पदार्थ, जो गौ का 'पित्त' माना जाता है, गाय के सिर में होता है। यह पीले रङ्ग का एक टुकड़ा जैसा (गोल, चपटा, लम्बा, तिकौना, चौकोर—किसी भी आकृति में) दीखता है, और मरी हुई गाय को चीरने पर उसके मस्तक से निकलता है। तत्काल, मस्तक चीरे जाने पर यह मुलायम (पनीर या मोम की तरह) होता है, बाद में सूखकर—कड़ा, पपड़ी या कङ्कड़ जैसा, सूखी सरेस जैसा हो जाता है।

शरीर-धारियों से प्राप्त कुछ वस्तुएं बहुत पवित्र और उपयोगी होती हैं, इस कारण वे मूल्यवान् वस्तुओं की श्रेणी में गिनी जाती हैं। हाथी-दाँत, मृगचर्म, मकरध्वज (घड़ियाल की नाभि) कस्तूरी आदि ऐसे ही पदार्थ हैं। मीनमुक्ता, गजमुक्ता, शूकरमुक्ता भी ऐसी ही दुर्लभ वस्तुएं हैं। इतना दुर्लभ तो नहीं, फिर भी कठिनाई से, और कम मात्रा में प्राप्त होने वाला, एक पदार्थ यह भी है—गोरोचन !

पर्यायवाची :

अध्यात्म के क्षेत्र (पूजा-पाठ, तन्त्र-मन्त्र) में गोरोचन को बहुत उच्च स्थान प्राप्त है। यह अनेक प्रयोगों में काम आता है। तान्त्रिक-ग्रन्थों में इसके कई नाम प्राप्त होते हैं। कमल, जल, वायु, सूर्य, चन्द्रमा आदि की भाँति इसे भी अनेक पर्यायवाची शब्दों से प्रयोज्य बताया गया है। इसके कुछ नाम (पर्याय) इस प्रकार हैं :—

● **शिवा**—सदैव कल्याणकारी होने से यह 'शिव' प्रभाव वाली अर्थात 'शिवा' मानी गयी है। हालाँकि पर्याय शब्द केवल साहित्यिक दृष्टि से ही विवेच्य और प्रयोज्य हैं, व्यावहारिक-क्षेत्र में यह 'गोरोचन' ही कहा जाता है।

● **मङ्गला**—यह जहाँ भी रहे, सदैव मङ्गलमय वातावरण की सृष्टि करता है। वस्तु रूप में इसका सम्बोधन (शिवा, मङ्गला आदि में) स्त्रीलिङ्ग में होता है, जबकि 'गोरोचन' संज्ञा में यह पुरुष-वाचक है। मङ्गला नाम से प्रसिद्ध यह वस्तु जहाँ भी रहे, मङ्गलमय वातावरण बनाये रहती है। इसके रहते—अशिव, अमङ्गल, अशुभ प्रभाव दूर ही रहेगा।

● **वन्द्य (वन्दनीय)**—गोरोचन का एक नाम यह भी है—'वन्दनीया' ! कारण कि भक्त साधकजन पूजा-अर्चना के समय इसे आराध्यदेव को अर्पित करते हैं। तिलक-लेपन बनाने के लिए 'गोरोचन' तान्त्रिक-

जगत की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। भगवान् श्रीकृष्ण इसे प्रेम से तिलक रूप में धारण करते थे।

- **मेध्या**—शरीर और मेधाशक्ति को (प्रयोग-भेद से) बढ़ाने का गुण रखने के कारण यह 'मेध्या' भी कहलाता है। इस वस्तु को अनेक प्रकार की औषधियों में प्रमुख घटक की मान्यता प्राप्त है।

- **भूत-निवारिणी**—'गोरोचन' जहाँ भी रहेगा—स्थान, व्यक्ति, वस्तु, प्रतिमा में, कहीं भी—दैवी शक्ति बनाये रहेगा। इसके रहते वहाँ भूत-प्रेतादि की बाधा भूलकर भी नहीं आती। अनेक प्रकार के दुष्टात्मा-प्रेत, वायव्य-दोष, अतृप्त और अकाल-मृत्यु के ग्रास बने दीन-दरिद्र प्राणियों की भटकती आत्माएं—ये सब 'गोरोचन' की गन्ध, रङ्ग, स्पर्श और दर्शन से ही भाग जाते हैं।

- **गो-पित्त**—'गोरोचन' शब्द के बाद, इसका सर्वाधिक प्रचलित नाम 'गो-पित्त' है। क्योंकि वस्तुतः यह गोपित्त (गाय का पित्त) ही है। इस प्रकार 'गोरोचन' के अनेक नाम हैं, जो इसके गुणों पर आधारित हैं।

यन्त्र-तन्त्र आदि की साधना में, यन्त्र-लेखन में तिलक-रचना में, षट्कर्म और दशकर्म के अनेक प्रयोगों में, तथा कितनी ही औषधियों के निर्माण में—'गोरोचन' का प्रयोग होता है।

यन्त्र-रचना में 'अष्टगन्ध' को स्याही की भाँति प्रयोग किया जाता है। अष्टगन्ध कोई एक वस्तु नहीं हैं, अपितु यह आठ वस्तुओं का मिश्रण है। अष्टगन्ध के आठों घटक, जब तक शुद्ध और पूर्णरूप में मिलाये न जाएँ—'अष्टगन्ध' शुद्ध और पूर्ण-प्रभावी नहीं होता। 'अष्टगन्ध' की संरचना में घटक-भेद भी है। कुछ आचार्यों ने, जो आठ वस्तुएं प्रयोज्य बतायी हैं, दूसरे आचार्यों ने उनमें कुछ परिवर्त्तन कर दिया है। पाठकों की जानकारी के लिए—अष्टगन्ध का विवरण इसी पुस्तक में अन्यत्र (परिशिष्ट) प्रस्तुत है।

यह तथ्य सर्व-स्वीकृत है कि जिन यन्त्रों की रचना में 'अष्टगन्ध' का विधान है, वे इसके बिना पूरे नहीं होते। और, जिस अष्टगन्ध में 'गोरोचन' प्रयुक्त होगा, उससे निर्मित (लिखित) यन्त्र अवश्य ही प्रभाव-शाली होगा। परन्तु यह सारे लाभ तभी सम्भव हैं, जब 'गोरोचन' असली हो। आज के 'नकली-युग' में, जब नमक भी शुद्ध नहीं मिलता, तो फिर

'गोरोचन' और 'कस्तूरी' जैसी अलभ्य वस्तुओं का शुद्ध मूल रूप में प्राप्त होना कठिन है। फिर भी, अनेक संस्थान, विक्रय-केन्द्र और व्यक्ति इन्हें मौलिक-रूप में वेचते हैं। जब तक प्रयोज्य वस्तु में शुद्धता, पूर्णता नहीं होगी—वह दोषमुक्त नहीं होगी। उससे वाञ्छित प्रभाव की आशा करना, स्वयं को भुलावे में डालना है।

यहाँ, हम साधकों-पाठकों के हितार्थ 'गोरोचन' के कुछ अति प्रभाव और सहज-साध्य तान्त्रिक-प्रयोग लिख रहे हैं। यदि आपको कहीं से शुद्ध गोरोचन मिल जाता है, और आप उसका विधिवत् प्रयोग करते हैं, तो कोई कारण नहीं है कि आपको अपने उद्देश्य में सफलता न मिले। श्रद्धा, संयम, नियम और धैर्य—यह प्रत्येक साधना में आवश्यक होते हैं। अतः जब भी गोरोचन-तन्त्र का प्रयोग करें, इन बिन्दुओं पर भी ध्यान दें :—

कल्याणकारी प्रयोग :

शुद्ध 'गोरोचन' ले आयें। रविपुष्य या गुरुपुष्य के दिन उसे धूप-दीप और इष्टदेवता के मन्त्र से शोधित करके सोने या चाँदी के तावीज में भर लें। इस तावीज को भी पहले धो-पोंछकर, धूप-दीप से शुद्ध कर लेना चाहिए। गोरोचन भरने के बाद उसे सुरक्षित रूप में बन्द कर दें। चाँदी की कसे ढक्कन वाली डिब्बी भी प्रयुक्त हो सकती है। पूजनोपरान्त यह ताबीज गले में, भुजा में कमर में—कहीं भी धारण कर लें। धारण न करके, यदि घर में कहीं सुरक्षित रख दिया जाये, तो भी इसका प्रभाव सक्रिय रहता है। 'गोरोचन' की यह डिब्बी (ताबीज) जहाँ भी रहेगी, वहाँ के सारे दुष्प्रभाव, अमंगल समाप्त हो जाएँगे। मंगलमय वातावरण और शुभ प्रभाव की सृष्टि में यह प्रयोग निश्चित रूप से फलदायी होता है।

ग्रहदोष-निवारक प्रयोग :

भौतिक-विज्ञान ने भी इस सत्य को स्वीकार किया है कि आकाश स्थित तारा-समूह की प्रकाश-किरणें, पृथ्वी के प्राणियों को प्रभावित करती हैं। आकाश में असंख्य तारे हैं। सामूहिक रूप में वे विभिन्न वर्गों में विभक्त हैं। नक्षत्र और राशि ऐसे ही तारा-समूह हैं। 'ग्रह' नामक तारे—स्वयं में तो 'तारा' हैं ही, वे एक बहुत बड़े तारा-समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन ग्रहों की संख्या नौ है, जिनमें सात दृश्य हैं और दो अदृश्य हैं—छाया-ग्रह ! भौतिक-विज्ञान में—खगोल-शास्त्र भी तो ग्रहों की उप-

स्थिति और उनका विकिरणीय-प्रभाव स्वीकार करता है। भारतीय-संस्कृति और ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार, आकाश-स्थित नवग्रहों के नाम इस प्रकार हैं :—

1. सूर्य, 2. चन्द्रमा, 3. मङ्गल, 4. बुध, 5. गुरु (बृहस्पति) 6. शुक्र, 7. शनिश्चर (शनि), 8. राहु, 9. केतु।

जिस समय कोई प्राणी जन्म लेता है, ग्रहों की तत्कालीन स्थिति, उनकी पारस्परिक और पृथ्वी से दूरी, समय और प्रकाश का माप—यह सब उसके भावी जीवन, शरीर, स्वास्थ्य, रुचि, प्रवृत्ति, स्वभाव और धारणा-शक्ति को प्रभावित करते हैं। यद्यपि यह नियम समस्त प्राणि-जगत् पर लागू होता है, परन्तु हम यहाँ केवल मानव के सन्दर्भ में ही लिख रहे हैं, क्योंकि मानव सृष्टि का सबसे चैतन्य, बुद्धिमान और विवेकवान् प्राणी होता है।

प्रत्येक बालक अपने भावी-जीवन में, अपने जन्म-काल की ग्रहीय-स्थिति से अवश्य ही परिचालित-प्रभावित रहता है। जन्म-काल की स्थितियों में लग्न, वार-तिथि, मास, पक्ष, अयन, समय नवग्रहों की उपस्थिति, दशा, दूरी, संयुति आदि का विचार किया जाता है। सर्वाधिक प्रभाव लग्न का पड़ता है। इसके वाद नवग्रहों की प्रभावशीलता व्यक्ति को नियन्त्रित करती है। बल्कि ग्रहीय-स्थिति से लग्न का प्रभाव भी परिवर्तित हो जाता है। कोई भी जन्माङ्ग-चक्र (कुण्डली) देखें, कहीं विघ्नकारी ग्रह अवश्य ही सक्रिय दीख पड़ेगा। वास्तविकता तो यह है कि सैकड़ों में कहीं कोई एक कुण्डली ही सशक्त होती है, वह भी सर्वाङ्ग नहीं। कम-से-कम 10-5 प्रतिशत कोई दोष उसमें भी होगा। फिर भी कुण्डली के 12 भावों में स्थिति नवग्रहों की उपस्थिति का अनुपात (शक्ति की दृष्टि से) यदि सबल है, तो वह जातक अपेक्षाकृत सुखी होगा।

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति नवग्रहों के प्रभाव से परिचालित, पोषित और पीड़ित होता रहता है। यद्यपि शनि, मंगल, सूर्य, राहु और केतु—ये ग्रह क्रूर, कठोर, कष्टप्रद्र माने जाते हैं, शेष को शुभ और सौम्य (सोम, बुध, गुरु, शुक्र) कहा गया है। परन्तु यथार्थ की कसौटी पर परखें, तो पता चलता है कि समय और स्थिति के आधार पर प्रत्येक ग्रह (पृथक-पृथक सभी नवग्रह) शुभ और अशुभ दोनों तरह के फल देता है। स्थान-भेद और संग-भेद से कोई भी ग्रह दुखद, मारक अथवा पोषक और सुखद हो जाता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक ग्रह शुभ-स्थिति में

है, परन्तु दूसरे का सम्पर्क, स्पर्श, छाया अथवा दृष्टिपात उसके शुभ प्रभाव को समाप्त कर देता है। ऐसी स्थिति में जातक अपने शुभ-ग्रह के प्रभाव से वंचित हो जाता है। मैंने ऐसे कई जन्माङ्क-चक्र देखे हैं, जिनमें बिडम्बनात्मक स्थिति है।

यह एक अनुभूति और बहुविख्यात प्रयोग है कि गोरोचन में नवग्रहों के दोष को निवारण करने की क्षमता निहित होती है। इसके लिए साधक को चाहिए कि वह 'रविपुष्य-योग' के दिन गोरोचन को गंगाजल से स्नान (स्पर्श मात्र) कराकर, धूप-दीप द्वारा शोधन करें, तत्पश्चात् उसका एक टुकड़ा चाँदी के नये, शोधित कवच में भरकर सुरक्षित बन्द करलें, और दूसरा टुकड़ा भी किसी डिब्बी में सुरक्षित रखें, उसे नित्य स्नानोपरान्त घिसकर चन्दन की भाँति माथे पर तिलक (टीका-बिन्दी) लगाते रहें। कवच को किसी भी रूप में धारण करलें। इस प्रकार गोरोचन का कवच और तिलक (टीका-बिन्दी) धारण करने वाला व्यक्ति नवग्रहों के कोप से मुक्त हो जाता है।

प्रेतबाधा-निवारण :

गुरुपुष्य योग के दिन भोजपत्र पर, स्नान-पूजा से निवृत्त होकर गोरोचन के लेप से, अनार की कलम द्वारा 'ह्रीं' लिखें, फिर उसे धूप-देकर, अपने इष्टदेव का ध्यान करते हुए, अथवा शिवजी या दुर्गाजी की स्तुति करते हुए, वह भोजपत्र का टुकड़ा लाल वस्त्र में लपेट कर या चाँदी अथवा ताँबे के ताबीज में भरकर रोगी को पहना दें। यह प्रयोग समस्त प्रकार के भूतावेश, प्रेत-पीड़ा, वाव्य-दोष आदि को दूर कर देता है।

धन-समृद्धिकारी प्रयोग :

रुपया-पैसा, धन-दौलत, सोना-चाँदी और अन्न-भण्डार यही सब समृद्धि से आधार हैं। इनके अभाव में जीवन—विपन्न, दरिद्रता-ग्रस्त और दुर्भाग्यपूर्ण हो जाता है। भोजन, वस्त्र, स्वास्थ्य, प्रसन्नता, मानप्रद और विचार-शक्ति—यह सब क्षीण होने लगते हैं, फलतः ऐसा व्यक्ति कुण्ठा, भग्नाशा, नैराश्य और अवसाद की पीड़ा सहते-सहते अन्ततः विक्षिप्त हो जाता है। इसी मनोदशा में कुछ लोग अपराध-मार्ग पर चल पड़ते हैं। धनाभाव से पीड़ित होने के कारण वे समाज-द्रोही हो जाते हैं और अनैतिक कार्यों द्वारा धनार्जन करके अपने अभावों की पूर्त्ति और प्रतिशोधभावना को शान्त करते हैं। आशय यह है कि धन (रुपया-पैसा)

मानव-जीवन की पूर्त्ति में सबसे बड़ा अवलम्ब है। परन्तु वास्तविकता यह है कि अधिकांश परिवार (सौ में से 70-80 तक) धनाभाव से पीड़ित रहते हैं। ऐसे लोगों के लिए 'गोरोचन' बहुत लाभकारी होता है। गुरुपुष्य के दिन इसे पूजनोपरान्त गल्ला, बक्स, तिजोरी, गोलक में रख दें। यह प्रयोग धन-बर्द्धक होता है।

वशीकरण प्रयोग :

रविपुष्य के दिन से 'गोरोचन' का तिलक माथे पर लगाना प्रारम्भ करें। फिर, नित्य स्नानोपरान्त लगाते रहें। इसके रहते, व्यक्ति जहाँ भी जाये, इसका प्रभाव अवश्य पड़ता है।

सौन्दर्य-प्रसाधन के रूप में :

सौन्दर्य-प्रेम सभी में होता है। पशु-पक्षी और कीट-पत्तङ्ग तक इसके प्रति मोहासक्त रहते हैं। मानव सर्वाधिक तर्कशील होता है, अतः वह नाना प्रकार के प्रसाधन और अलंकरण अपने सौन्दर्य की वृद्धि के लिए प्रयोग में लाता है।

हमारे देश में उबटन का प्रयोग—सौन्दर्य-वृद्धि और वर्ण-शोधन के लिए प्राचीन-काल से होता आ रहा है। चिरौंजी, बादाम, सरसों, हल्दी, चन्दन, केसर, चने का आटा आदि पदार्थ उबटन के रूप में सौन्दर्य-बर्द्धक माने जाते हैं। इधर, पश्चिमी-सभ्यता ने हम भारतीयों की अस्मिता कीलित कर रखी है। फलतः हमने अपने 'स्व' को भूलकर—परिधान, प्रसाधन. भोजन, चिन्तन, क्रियाकलाप सब में भारतीयता की उपेक्षा करके पश्चिमी-सभ्यता, संस्कृति, प्रसाधन और परिधान ग्रहण कर लिया है, और इस मानसिकता में स्वयं को गौरव-गर्वित अनुभव करते हैं। आज तरह-तरह के लोशन, पाउडर, क्रीम आदि प्रचलित हैं, जो रङ्गशाला के अभिनेताओं जैसा कृत्रिम रूप-विन्यास करके अन्ततः हमारी त्वचा को, हमारी अर्थ-व्यवस्था को और अन्त में हमारी शान्ति और बौद्धिक-शक्ति को क्षीण कर देते हैं। फिर भी हम हैं कि नित्य किसी नये उत्पादन को खोजने में बाजार छानते रहते हैं, और यदि संयोग से कोई 'इम्पोर्टेड आयटम' मिल गया, तो अभूतपूर्व सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं। परन्तु 'गोरोचन' के सामने संसार के सभी सौन्दर्य प्रसाधन व्यर्थ हैं। 'गोरोचन' का लेप लगाने से सौन्दर्य में चमत्कारी वृद्धि हो जाती है। इसे

अन्य घटकों के साथा मिलाकर उबटन के रूप में, अथवा घिसकर लेप के रूप में लगाना चाहिए।

अपस्मार-नाशक :

गुलाबजल में दो माशा गोरोचन घिसकर तीन दिन तक तीन-तीन बार पिलाने से (यह प्रयोग किसी रविवार मंगलवार से प्रारम्भ करें) अपस्मार (मिर्गी), हिस्टीरिया, मूर्च्छा, चक्कर आदि दोष मिट जाते हैं।

कृशता-निवारण :

चार बादाम और चार जौ-भर गोरोचन एक साथ पीसकर या दूध घिसकर 21 दिनों तक सेवन करें, साथ में दूध भी पियें। यह प्रयोग शरीर की कृशता दूर करके उसे स्वस्थ, मांसल बना देता है। प्रयोग मंगलवार से प्रारम्भ करना चाहिए।

7. गुञ्जा

सामान्य परिचय :

'गुञ्जा' एक वनलता की फली का बीज है। इसे गुञ्जा, चिर-मिटी, घुँघुची, रत्ती आदि नामों से जाना जाता है। इसकी जड़ दीर्घ-जीवी होती हैं। फाल्गुन के बाद यह लता मुरझाने लगती है और गर्मी में सूखकर नष्ट हो जाती है। परन्तु भूमि के नीचे इसकी जड़ हरी रहती हैं। प्रथम वर्षा में धरती भीगते ही उस जड़ में अंकुर निकल आते हैं। इस तरह आषाढ़ में वह लता पुनः उग आती है और क्रमशः बढ़ती हुई, समीप के पेड़-पौधे पर चढ़कर ऊर्ध्वगामी हो जाती है।

'गुञ्जा' लता की पत्तियाँ इमली की पत्ती से साम्य रखती हैं। मटर अथवा सेम के जैसे फूल इसमें आते हैं, जो अपने गुलाबी-पन के कारण प्रिय दीखते हैं। प्रायः क्वार (आश्विन) मास में इस लता में फूल आते हैं और अगहन में इसकी फलियाँ दृष्टि-गोचर होने लगती हैं। फलियों की आकृति सेम की फली से अधिक शोभन होती है। फाल्गुन में ये फलियाँ पककर चटक जाती हैं और

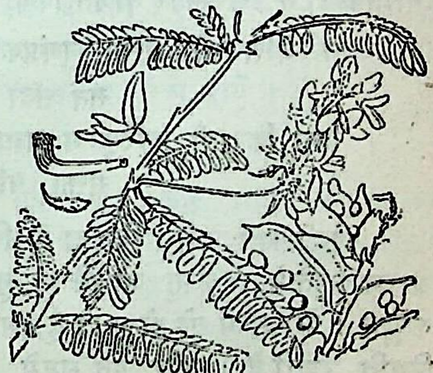

गुंजा (Abrus Precalorius)

उनके भीतर लगे हुए (कभी-कभी टूटकर नीचे गिरे हुए) घुँघुची के दाने स्पष्ट दीख पड़ते हैं।

घुँघुची की दो जातियाँ हैं—लाल और सफेद ! लाल घुँघुची की उत्पत्ति अधिक होती है' सफेद वाली जाति की लता यदा-कदा ही मिलती है। तान्त्रिक प्रभाव की दृष्टि से दोनों ही जातियाँ प्रयोजनीय हैं, परन्तु श्वेत गुन्जा (सफेद घुँघुची) को कुछ विशेष मान्यता प्राप्त है। लेकिन उसके अभाव में रक्त-गुन्जा (लाल घुँघुची) से भी अनेक प्रकार के प्रयोग किये जा सकते हैं। उत्तमता और शक्ति की दृष्टि से श्वेत-गुन्जा को विशेष महत्त्व दिया जाता है, परन्तु रक्त-गुन्जा भी लगभग वैसी ही होती है और श्वेत-गुन्जा की रिक्तता-पूर्त्ति में पर्याप्त सफल रहती है।

रत्ती अथवा घुँघुची माप-तौल की एक बहुत ही छोटी इकाई है। जौहरी और सुनार लोग सोना-चाँदी तथा रत्नादि की तौल में इसका प्रयोग बाँट के रूप में करते हैं। कैरेट और मिली-ग्राम तो अभी कल से चालू हुए हैं, परन्तु भारतीय-इतिहास में रत्ती का प्रयोग तौल के क्षेत्र में हजारों वर्षों से चला जा रहा है।

हिन्दू-परिवारों में विवाह के समय वर को कङ्गन पहनाया जाता है, उसमें यही घुँघुची (लाल रत्ती) पिरोयी रहती है। वस्तुत: यह एक तान्त्रिक प्रयोग है, जो वर की सुरक्षा-समृद्धि और सुखद दाम्पत्य के लिए सम्पन्न किया जाता है।

इसे मनका के रूप में पिरोकर मालाएं बनायी जाती है। आदिवासियों का यह प्रिय आभूषण है। वे हीरे-मोती की कद्र नहीं जानते, अत: 'गुन्जा' उनके लिए सर्वश्रेष्ठ रत्न है। उनकी इस मनोवृत्ति को नीतिकारों ने इस प्रकार वर्णित किया है :—

न वेत्ति यो यस्य गुणंप्रकर्षं,
सतं सदा निन्दति नाऽत्र चित्रम् ।
यथा किराती करिकुम्भ लब्धा,
मुक्ता परित्यज्य बिर्भात गुन्जाम् ॥

कहीं-कहीं उल्लेख मिलता है कि भगवान् श्रीकृष्ण भी गुन्जामाला धारण करते थे। अस्तु: जो भी हो, गुन्जा का उपयोग आभूषण (माला-कङ्गन) के रूप में तो होता ही है, भार तौलने में भी उसकी महत्त्वपूर्ण स्थिति रहती है। और, इन सबसे अधिक महत्त्व इसे तन्त्र के क्षेत्र में

प्राप्त है। गञ्जा के बहुविध तान्त्रिक-प्रयोगों का वर्णन विभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

जैसा प्रारम्भ में लिखा जा चुका है, गुञ्जा की दो जातियाँ होती हैं—लाल और सफेद! एक तीसरी जाति का उल्लेख भी कहीं-कहीं प्राप्त होता है—काली गुञ्जा! किन्तु यह दुर्लभ है। अपवाद-स्वरूप ही कहीं दीख पड़ती है। तन्त्र-साधना में उसे बहुत ही प्रभावशाली, उपयोगी, मूल्यवान् और दुर्लभ कहा गया है। किन्तु उसके स्थान पर सफेद और उसके स्थान पर लाल गुञ्जा के प्रयोगों का निर्देश मिलता है। यहाँ हम पाठकों के लिए संक्षेप में घुँघुची की कुछ तान्त्रिक विशेषताओं का उल्लेख कर रहे हैं।

औषधीय-क्षेत्र में भी घुँघुची को स्थान प्राप्त है। यह घुँघुची-दाना स्वयं में अमृत और विष दोनों का प्रभाव रखती हैं। इसी की जड़ को (अनेक विद्वान) मुलहठी कहते हैं। मुलहठी (मुरैठी) एक मीठी जड़ है, जो खाँसी, शक्ति-क्षय, कफ-विकार आदि के निवारण हेतु प्रयुक्त होती है। मुलहठी के रस से एक यूनानी (हकीमी) दवा बनायी जाती है, जिसे 'रब्बेसूस' कहते हैं। यह खाँसी की श्रेष्ठ औषधि है। किन्तु यहाँ हमारा प्रतिपाद्य-विषय आयुर्वेद नहीं, वरन् तन्त्र है, अतः गुञ्जा सम्बन्धी कुछ तान्त्रिक प्रयोगों का वर्णन किया जा रहा है।

गुञ्जा-मूल :

जिसे ऊपर मुलहठी कहा गया है (भले ही वह मुलहठी किसी दूसरी लता की जड़ हो, यहाँ हम घुँघुची की जड़ का वर्णन कर रहे हैं) उसे तान्त्रिक-विधि से प्राप्त करें। अर्थात् एक दिन पूर्व सन्ध्या को लता के पास जाकर उसे विधिवत् निमन्त्रण दे आयें। (निमन्त्रण-विधि के लिए देखें—'वनस्पति-तन्त्र' अध्याय के प्रारम्भ में निमन्त्रण के नियम) फिर दूसरे दिन प्रातः जाकर उसे (गुञ्जा की जड़) ले आयें।

मूल प्राप्ति का मुहूर्त :

कोई भी कार्य हो, उसकी सफता बहुत कुछ उसको प्रारम्भ करने के मुहूर्त्त पर निर्भर रहती है। कार्य-भेद, वस्तु-भेद और प्रयोग-भेद से, मुहूर्त्त का विचार अलग-अलग करना पड़ता है। गुञ्जा-मूल प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित में से कोई भी एक मुहूर्त्त ले सकते हैं :

- रविपुष्य योग

- शुक्र-रोहिणी योग (यदि ग्रहण पड़ रहा हो तो अत्युत्तम)
- कृष्ण-अष्टमी—हस्त योग
- कृष्ण चतुर्दशी—स्वाति योग
- कृष्ण चतुर्दशी—शतभिषा योग
- अनेक विद्वान् लोग गुरुपुष्य योग को भी मान्यता देते हैं ।
- उपर्युक्त विवरण के अनुसार यदि निकट भविष्य में कोई अनुकूल मुहूर्त्त नहीं मिल रहा और साधक को तात्कालिक आवश्यकता है, तो वह स्थानीय पुरोहित से किसी शुभ मुहूर्त्त की जानकारी (सिद्धि-योग, सर्वार्थ-सिद्धियोग, अमृतयोग आदि) प्राप्त कर लें, फिर तदनुसार निमन्त्रण के उपरान्त दूसरे दिन प्रात: जाकर वह जड़ी ले आयें ।

गुञ्जा के तान्त्रिक-प्रयोग :

गुञ्जा अर्थात् घुँघुची के दाने तथा इसकी जड़—दोनों ही तान्त्रिक-साधना में प्रयुक्त होते हैं । नीचे कुछ प्रमुख व्यावहारिक-विषयों पर इसकी उपयोगिता लिखी जा रही है । परन्तु ध्यान रहे कि ये प्रयोग तभी सफल होते हैं, जब प्रयोक्ता ने वञ्छित वस्तुओं को शुभ मुहूर्त्त में तन्त्र-शास्त्र में वर्णित विधि के अनुसार प्राप्त किया हो ।

कलहकारी (विद्वेषण) प्रयोग :

रक्त-गुञ्जा (लाल घुँघुची) के दाने, रवि या मङ्गलवार के दिन यह कामना करते हुए कि 'हे वनस्पतिदेव ! आप मेरे कार्य को सिद्धि के लिए इस घर परिवार में कलह (विद्वेष) उत्पन्न कर दो ।' किसी घर में फेंक दिये जाएं, तो उस परिवार में कलह उत्पन्न हो जाता हैं । यह तान्त्रिक-प्रयोग प्राय: किसी दुष्ट, सबल, उत्पाती और पर-पीड़क परिवार के पतन हेतु किया जाता है । सात्त्विक-विचारों वाले साधक इसे नहीं करते ।

विष-निवारक प्रयोग :

- यदि कोई व्यक्ति विष के प्रभाव से अचेत हो रहा हो, तो उसे गुञ्जा की जड़ पानी में धोकर, वही पानी पिलायें । ध्यान रहे कि प्राप्त होने के समय, जड़ को भली-भाँति धो-सुखा लिया जाता है, ताकि उसमें धूल-मिट्टी न रहे । गुञ्जा-जल विष-निवारक है ।

पानी में घुँघुची को चन्दन की भाँति घिसकर रोगी को पिलाने से विष उतर जाता है ।

सम्मानदायी प्रयोग :

शुद्ध जल में गङ्गाजल या अन्य किसी तीर्थ का जल, या फिर कुएं का ही सादा साफ जल) गुञ्जा-मूल को चन्दन की भाँति घिसें। उत्तम होगा--किसी कुमारी-कन्या या ब्राह्मण के हाथों घिसवा लें। यह लेप माथे पर चन्दन की भाँति लगाएं, लेप करें। ऐसा व्यक्ति (चन्दन चर्चित मस्तक वाला) जहाँ भी जाता है—सभा, समाज, समारोह आदि में, उसे विशेष सम्मान प्राप्त होता है।

पुत्रदाता प्रयोग :

शुभ नक्षत्र-योग में, गुञ्जा-मूल को ताबीज में भरकर कमर में धारण करने वाली स्त्री, यदि स्वस्थ है, तो पति-सम्पर्क करने पर पुत्र-लाभ प्राप्त करती है।

शत्रु-दमन प्रयोग :

गुञ्जामूल को किसी स्त्री के मासिक-स्राव (रजःस्वला-स्थिति के रक्त) में घिसकर, अञ्जन की भाँति आँखों में लगाकर शत्रु के सामने जाने पर—वह देखते ही भाग जायेगा। इस तन्त्र का यह प्रभाव है कि प्रयोक्ता की आँखों में एक प्रकार की अदम्य भयावहता और ज्वलन्तता आ जाती है। उसे देखकर, शत्रु और उसके साथी सब भयभीत हो जाते है। अञ्जन का प्रयोक्ता व्यक्ति उन्हें बहुत ही विकराल और प्रचण्ड शक्ति-सम्पन्न प्रतीत होता है। फलत: वे सब स्वयं को असहाय-निर्बल मानकर पलायन कर जाते हैं।

अलौकिक शक्ति-दर्शन :

देवी-देवता और भूत-प्रेतादि अलौकिक, पारभौतिक शक्तियाँ है। जड़-विज्ञान इनके अस्तित्त्व का उपहास करता है, परन्तु धर्म, संस्कृति, अध्यात्म और मनोविज्ञान के ज्ञाता इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि संसार में कुछ गुप्त, अलौकिक, रहस्यमयी-शक्तियाँ अवश्य हैं, जो यदा-कदा प्रकट होकर, अपने अस्तित्त्व का साक्ष्य देते हुए, मानव-समाज को, बुद्धिवादियों को दिग्भ्रमित करती रहती हैं। अस्तु, प्राचीन तन्त्र-ग्रन्थों में उल्लेख है कि यदि रविपुष्य-योग में अथवा मंगलवार के दिन गुञ्जामूल शुद्ध मधु में घिसकर, वह लेप आँखों में अंजन की भाँति लगायें, तो गुप्त शक्तियों के दर्शन होते हैं। वे शक्तियाँ सात्त्विक कम, तामसिक अधिक होती हैं, अतः दुर्बल-हृदय और भीरु-प्रकृति वाले व्यक्तियों के लिए यह प्रयोग वर्जित है।

ज्ञान-बर्द्धक प्रयोग :

अजा-दुग्ध (बकरी के दूध) में गुञ्जामूल को घिसकर हथेलियों पर रगड़ें, लेप करें। कुछ समय तक यह प्रयोग करते रहने से व्यक्ति की बुद्धि तीव्र हो जाती है और वह जटिल-दुरूह विषयों को भी सरलता से समझ लेता है । मेधा, चिन्तन शक्ति, धारणा और विवेक तथा स्मृति की प्रखरता के लिए यह प्रयोग उत्तम होता है ।

पुन्सत्त्व-बर्द्धक प्रयोग

भैंस का घी लेकर, उसमें गुञ्जा को चन्दन की भाँति घिसकर लेप तैयार करें । इस लेप की मालिश करने से काम-शक्ति बढ़ती है, मन में उत्तेजना आती है और वीर्य-स्तम्भन होता है । ध्यान रहे कि यह लेप बहुत धीरे-धीरे पुरुषेन्द्रिय पर मलना चाहिये ।

गुप्त-धन दर्शन :

अङ्कोल के तेल में (अङ्कोल को ग्राम्य-भाषा में 'अँकोहर' कहते हैं, इनके बीजों से तेल निकाला जाता है) गुञ्जामूल को घिसकर आँखों में काजल की भाँति लगायें । यह प्रयोग रवि या मंगलवार को अथवा 'रविपुष्य' जैसे किसी शुभ योग में ही करना चाहिए । यह अंजन दिव्य-दृष्टिदायक होता है और इसके प्रयोग से व्यक्ति को पृथ्वी में गढ़ा हुआ आस-पास का धन दिखाई देता है ।

मृत-चैतन्य प्रयोग :

गुलाब के रस (फूलों को पीसकर रस निकालें) में गुञ्जामूल को घिसकर लेप तैयार करें । यह लेप किसी तत्काल मृत व्यक्ति के शव पर (नाड़ी-संस्थान पर) लेप कर दिया जाय, तो वह सक्रिय हो उठता है । सम्भवतः कुछ देर के लिए उसकी चेतना लौट जाती है ।

परन्तु मेरे विचार से यह प्रयोग वाँछित नहीं है । किसी मृत-व्यक्ति को 1-2 घण्टे के लिए सचेत कर लेने से क्या लाभ ? 'जनमत-मरत दुसह दुख होई' के अनुसार यदि प्रथम बार वह व्यक्ति दारुणा भोगकर मरा है, तो उसे 2 घण्टे के लिए जिलाकर, बाद में फिर वही यन्त्रणा सहने के लिए विवश करना मानवीय दृष्टि से भी उचित नहीं हैं । यों, प्रसंग-पूर्ति के लिए यह प्रयोग यहाँ लिख दिया गया है, परन्तु मात्र चमत्कार के लिए—ऐसे कार्यों में शक्ति का अपव्यय ही होता है । साधना—वही सराहनीय और शाश्वत होती है, जो पर-हितकारी, लोक-रंजक और

मानवता की रक्षा में समर्थ हो । केवल कौतूहल और क्षुद्र मनोरंजन के लिए तन्त्र जैसे विषय को माध्यम बनाना—तन्त्र-शास्त्र और इसके प्रणेताओं का उपहास ही मान जायेगा ।

सुरक्षाकारी प्रयोग :

सिंहनी (बाघिन) के दूध में गुञ्जा की जड़ को चन्दन की भाँति रगड़ कर पर्याप्त मात्रा में लेप तैयार करें । फिर एकान्त में नग्न होकर सारे शरीर में वह लेप लगा लें । सूख जाने पर कपड़े पहिन लें और विरोधी के सामने जायें । वह चाहे मौखिक वाद-विवाद हो या मार-पीट की स्थिति हो, या सशस्त्र-सेना में युद्ध का अवसर हो अथवा दस्यु-दल के बीच घिर जाने की स्थिति हो---हर हालत में साधक की सुरक्षा रहेगी इस तन्त्र-प्रयोग के प्रभाव से शत्रु अथवा उसका कोई अस्त्र-शस्त्र साधक का अनिष्ट नहीं कर पाता ।

आतंककारी प्रयोग :

यदि कोई साधक काले तिल के तेल में गुंजामूल को घिसकर वह लेप सारे शरीर में मल ले, तो उसके प्रभाव से—वह (साधक) बहुत ही सबल, अजेय और भयानक प्रतीत होगा । फलस्वरूप शत्रुदल चुपचाप भाग जायेगा ।

मारण-प्रयोग :

गुंजा और गोरोचन को एक साथ घिसकर (पीसकर) उप लेप से मृत्यु-यन्त्र की रचना करें । मृत्यु-यन्त्र में शत्रु का नाम लिख दें । बाद में उसे कहीं धरती में गाढ़ दें । इस क्रिया से शत्रु की मृत्यु हो जायेगी । लोकहित तथा मानवता की दृष्टि से मृत्यु-यन्त्र का विवरण देना उचित नहीं है, अतः उसकी रूपरेखा नहीं दी जा रही । कारण कि आज के क्षुद्र, स्वार्थी और अपराध-प्रवण युग में, ऐसे प्रयोग शेर के हाथ में तलवार दे देने के समान होंगे ।

कुष्टनिवारक प्रयोग :

गुंजामूल को अलसी के तेल में घिसकर लगाने से कुष्ट के घाव ठीक हो जाते हैं ।

अन्धत्त्व-निवारण प्रयोग :

गुंजामूल को गंगाजल में घिसकर आँखों में लगाने से आँसू बहुत

आते हैं । घी में जड़ को घिसकर आँखों में लगाने से अन्धत्त्व में लाभ होता है । परन्तु ये सभी प्रयोग सार्वजनिक-हित में और शुभ मुहूर्त्त में करने चाहिएं ।

8. सियारसिंगी

सामान्य परिचय :

पशु-तन्त्र के अन्तर्गत सियारसिंगी (शृगालशृङ्ग, सियारसिंगी, गीदड़सिंगी, जम्बुकशृङ्ग, जम्बुकी) को बहुत महत्त्व प्राप्त है । इसके विषय में अनेक रोचक तथ्य (भले ही वे दन्त-कथा हों) प्रचलित हैं । परन्तु यह सत्य है कि सियारसिंगी का अस्तित्त्व है अवश्य, और तान्त्रिक-चमत्कारों से आपूरित भी होती है । परन्तु मुख्य प्रश्न यह है कि क्या बाजार में मिलने वाली सियारसिंगी असली होती है ? इसकी उत्पत्ति और उपलब्धि के विषय में बहु-प्रचलित धारणा यह है कि—

नर-सियार (शृगाल-जम्बुक) के माथे पर एक सींग होता है, उसी को 'सियारसिंगी' कहते हैं ।

जंगल में बहुत से सियार पाये जाते हैं । यों अब वन-विनाश के कारण अन्य-जीवों की संख्या भी लुप्तप्राय: होने लगी है, फिर भी जहाँ जङ्गल है, आज भी सियार पाये जाते हैं । भारतीय-जङ्गलों में सियार, लोमड़ी, भेड़िया, वन-बिलाव, वन-बड़ैल (जङ्गली-सुअर), हिरन,साही आदि पशुओं की अधिकता है । सामान्य गाँवों में भी मामूली, वन्य-झाड़ियों, नदी-तट की खोहों और घने बागों के क्षेत्र में सियार, लोमड़ी, खरगोश आसानी से देखे जा सकते हैं ।

'सियार, एक बहुत ही काइयाँ (धूर्त्त, चालाक और स्वार्थी) जीव होता है । कुत्ते से मिलता-जुलता यह जानवर मांसाहारी तो है ही, किसानों की फसल पर भी बराबर दाँत लगाये रहता है । मूँगफली, शकरकन्द, आलू, गन्ना, ककड़ी, तरबूज, खरबूज आदि की फसलें यह चौपट कर देता है । अकेला सियार बहुत कम चलता है । यह 2-4 या अधिक के समूह में रहता है । इसकी आवाज बड़ी तेज, मीठी, किलकारी भरी होती है—'हुआ-हुआ, हुआ-हुआ !' गाँवों के आ-पास, शामस के झुरपुटे में, जब ये समूहबद्ध होकर खेतों में निकलते हैं, उस समय इनका कोलाहल कानों के पर्दे फाड़ देता है । वैसे, इक्का-दुक्का सियार तो प्राय: देखा जाता है ।

यद्यपि सब सियार एक ही जाति के हैं—सियार ही ! परन्तु अन्य सभी जीवों की भाँति इनमें भी सामान्य रूप में प्रजातीय अन्तर पाया जाता है। ऐसा ही एक सियार-वर्ग है—मोतिया सियार ! यह अपेक्षाकृत कुछ बड़ा, मोटा, फुर्तीला, गहरे रङ्ग का और नेतृत्व के गुणों से सम्पन्न होता है, जैसे देशी बन्दरों में—कोई-कोई बहुत मोटा-ताजा, भारीभरकम, हिंसक, उग्र, तानाशाही प्रवृत्ति वाला दीख पड़ता है। वह जिस समूह में होता है—सारे बन्दर उसी के नियन्त्रण में रहते हैं। वह अपने वर्ग-समूह का महन्त होता है। महन्त बन्दरों में एक और होता है—सुपर महन्त ! वह भी भारीभरकम, लेकिन निरा एकाकी रहता है। शायद वह किसी कुण्ठा के कारण वीतराग हो चुका होता है। समूह के प्रति उसमें लगाव नहीं रहता। परन्तु व्यक्तिवादी स्वभाव के कारण वह अपने खाने-पीने का चौकस ध्यान रखता है। इस नाते वह समूह वाले महन्तों से कहीं अधिक बलिष्ठ, मोठा-ताजा और निर्भय होता है। फिर भी वह आक्रमण बहुत कम, करता है। उपद्रव और अराजकता के बदले उसमें आत्म-रक्षा, आरामतलवी और एकान्त-सेवन की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है। एक तरह से वह परमहंस होता है। बोलचाल की भाषा में उसे 'अकेलवा' कहते हैं। शायद उसी की जीवन-सरणि को देखकर गुरुदेव टैगोर ने लिखा था—'एकला चलो रे !'

अस्तु, महन्त-बन्दर की तरह एक महन्त-सियार भी होता है—उसी मोतिया-वर्ग का ! सम्भव है, वह यही सामान्य-सियार हो और अपने डीलडौल, स्वभाव, नेतृत्व-शक्ति (महन्तपन) के कारण 'मोतिया' कहा जाता है। परन्तु यह निश्चित है कि सामान्य नर-सियारों की अपेक्षा, इसमें कुछ विशिष्टता (शारीरिक और स्वभावगत) अवश्य होती है। रात में, प्रथम प्रहर के बाद, जङ्गल में पेट भरने के चक्कर में घूम रहे सियार बोलना बन्द कर देते हैं। उस समय लगभग आधी रात (दोपहर रात बीतते-बीतते) तो उस मोतिया-महन्त पर एक तरह की सनक (जनून) सवार हो जाती है और वह अपने स्वाभाविक-स्वर में गाने (चिल्लाने) लगता है। उसका चिल्लाना आरोह-अवरोह के साथ बहुत ही सङ्गीतात्मक होता है। उसका वह सङ्गीत आस-पास के सियारों के लिए आह्वान-गीत होता है। वे सब उसकी आवाज सुनते ही, चिल्लाते हुए, उसकी ओर दौड़ पड़ते हैं। थोड़ी देर तक प्रचण्ड कोलाहल मचा रहता है। फिर अन्य सियार तो गाते-चिल्लाते इधर-उधर हो जाते हैं,

परन्तु वह महन्त अपनी जगह पर ही खड़ा अलाप भरता रहता है । थोड़ी देर बाद अन्य सियार तो वहाँ से चले जाते हैं, महन्त वहीं गिरकर अचेत हो जाता है । प्रभातकालीन वायु, (उषा-बेला) का स्पर्श उसे जगाता है, और तब वह उठकर अपनी माँद की ओर चल देता है । उसी महन्त मोतिया के पास सियारसिंगी होती है ।

यह तथ्य सर्व-स्वीकृत है कि सियारसिंगी, केवल नर-सियार के पास होती है और वह नर-सियार, सामान्य जाति का न होकर, एक विशेष वर्ग (मोतिया) का होता है । शिकारी लोग, जिन्हें सियारसिंगी की तलाश रहती है—जङ्गलों में ऐसे मौके पर छिपे बैठे रहते हैं । रात में, जब सियारों का 'सङ्गीत-समारोह' समाप्त हो जाता है, और सबके चले जाने पर मोतिया-सियार गिरकर अचेत हो जाता है, उस समय पास की झाड़ी में छिपे शिकारी दौड़कर सियारसिंगी निकाल लेते हैं । सियार के माथे (सिर) या दोनों कानों के बीच, भौंहों के ऊपर—एक छोटी-सी गोल गाँठ उभरी रहती है, जिसमें कील जैसी छोटी-सी नोंक भी टटोलने पर महसूस होती है । वही गोल गाँठ सियारसिंगी है । बेहोश पड़े सियार के सिर से वह गाँठ काट लेना आसान रहता है । अब तो आग्नेयास्त्र भी बन गये हैं, अतः शिकारी लोग मोतिया को पहचानते ही गोली मार देते हैं और दौड़कर चाकू से सियारसिंगी काट लेते हैं । जो भी हो, है यह सियार के शरीर से प्राप्त, एक अङ्ग ही । अन्य कई जानवरों (बकरे, हिरन, मेड़ा, बैल, कुत्ता आदि के शरीर में भी कभी-कभी नाभि के पास, अथवा अन्य किसी अङ्ग में ऐसी गोल गाँठ देखी जाती है । मैंने स्वयं एक दिन कानपुर स्टेशन पर वन्य-जातियों के एक समूह को देखा, वह एक लम्बी-पतली डोरी में 84 गाँठें पिरोये, धूप में डाले सुखा रहा था । पूछने पर बताया कि सियारसिंगी है । एक ने कहा—कस्तूरी है । लेकिन मैंने पहचान लिया—वह सब बकरे की नाभियाँ थीं । ऐसे ही लोग जाल-फरेब, करके, सियारसिंगी और कस्तूरी बताकर, बकरे-भेड की नाभि-ग्रन्थियों को मुँहमाँगे दामों में वेचकर सामान्य जनता को ठगते रहते हैं ।

मैंने स्वयं पचासों सियारसिंगी देखी हैं, परन्तु उनके रूपाकार में इतनी भिन्नता मिली कि मैं शङ्काग्रस्त हो गया । निर्णय नहीं कर पाया कि कौन असली है, कौन नकली ? एक-दो तो साधारण चमड़े की थैलियाँ थीं, जिसमें किसी जानवर का नाखून भरकर, गोंद से चिपका कर गोल गाँठ का रूप दे दिया गया था । आशय यह है कि सियारसिंगी

के नाम पर ठगी भी बहुत होती है। असली सियारसिंगी कदाचित ही मिल पाती है। लेकिन यदि वह प्राप्त हो जाये, तो अनेक प्रकार के विस्मयकारी तान्त्रिक-प्रयोग किये जा सकते हैं। दैनिक-जीवन की समस्याओं में सम्बन्धित कुछ विशेष तान्त्रिकक-प्रयोग यहाँ लिखे जा रहे हैं। यदि किसी को असली सियारसिंगी प्राप्त हो जाये और वह उसे विधिवत् शोध करके (पूजनादि से सशक्त बनाकर), नियमानुसार प्रयोग करे, तो अवश्य ही उसके चमत्कारी प्रभाव का लाभ उठा सकता है।

सियारसिंगी को तामसिक और सात्त्विक—दोनों प्रकार के कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु उसके शोधन की प्रक्रिया सभी के लिए अनिवार्य है। बिना शोधन के सियारसिंगी (बल्कि कोई भी तान्त्रिक वस्तु प्रभावशील नहीं होती।

9. एकाक्षी नारियल

सामान्य परिचय :

नारियल से सभी परिचित हैं। नारियल, नारिकेल, कोला, कोकानट, गरी, गोला, खोपरा, श्रीफल आदि इसी के नाम हैं। (श्रीफल—वेल को भी कहते हैं और समुद्रतट पर पाये जाने वाले, ठीक नारियल की रूपरेखा में, बड़ी इलायची के बराबर होने वाले एक अन्य फल को भी 'श्रीफल' कहते हैं) भारतीय-अध्यात्म में यह एक शुभ वनस्पति और पूजा-पाठ आदि में प्रयुक्त होने वाला पवित्र फल है। इसकी रचना विचित्र होती है। फलों में बेल और वादाम सर्वाधिक कठोर आवरणधारी फल माने गये हैं। परन्तु नारियल इनसे भी अधिक कठोर आवरण में रहता है।

पौराणिक मान्यता है कि नारियल की रचना ब्रह्माजी ने नहीं की, बल्कि यह विश्वामित्र मुनि की सृष्टि है। प्रसिद्ध है कि एक बार ब्रह्माजी और विश्वामित्र में विवाद हो गया। ब्रह्माजी अखिल सृष्टि के रचनाकार हैं। सम्पूर्ण जगत् में, जो कुछ भी चर-अचर दृष्टिगोचर होता है—जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग और बानर-मानव सब उन्हीं का कृतित्त्व है। परन्तु एक बार विश्वामित्रजी ने, जो अपनी उग्र तपस्या के कारण अलौकिक शक्तियों के स्वामी हो गये थे, ब्रह्माजी के विरुद्ध घोषणा कर दी—'तुम पंचतत्त्व से सृष्टि-रचना करते हो, मैं वृक्षों से मानव की उत्पत्ति करूँगा।' और यह कहकर उन्होंने कमण्डलु से थोड़ा जल लेकर

भूमि पर छिड़क दिया । तत्काल वहाँ अंकुर निकले, जो कुछ ही देर में बढ़ते हुए—गगन-चुम्बी वृक्ष बन गये । फिर उन वृक्षों से मानव-मुण्ड की उत्पत्ति हुई । चेहरा बन गया, दो आँखें बन गयीं, मुख बन गया, रोम-राशि के स्थान पर रेशे भी उत्पन्न हो गये । निकट था कि मुण्ड के बाद, शेष शरीर (कवच और हाथ-पैर आदि) का भी निर्माण होता । परन्तु देवताओं ने ब्रह्माजी की गरिमा सुरक्षित रखने के लिए विश्वामित्र से क्षमा-याचना करते हुए उनका कोप शान्त किया और ब्रह्मा-कृत सृष्टि में व्यवधान अथवा विकल्प उत्पन्न न करने की प्रार्थना की । तब विश्वामित्र जी ने शान्त होकर सृष्टि-रचना का कार्य रोक दिया ।

भले ही, इस प्रसङ्ग को एक मिथक मान लिया जाय, परन्तु 'नारियल' की उपयोगिता असंदिग्ध है । भारतीय-संस्कृति में नारियल बहुत शुभ, पवित्र और कल्याणकारी माना जाता है । पूजा-पाठ के अवसर पर, देवताओं को नैवेद्य में, हवन-यज्ञ आदि में नारियल का उपयोग होता है । भेंट, उपहार, तिलक, मङ्गल-कलश, फलाहार औषधि के सन्दर्भ में भी यह फल प्रयुक्त होता है । इसके पेड़ समुद्र-तटीय क्षेत्रों में अधिक होते हैं । मैंने दक्षिण यात्रा में मद्रास से कन्याकुमारी तक इसके लाखों पेड़ देखे थे । ताल (ताड़) की भाँति ऊँचे, सीधे, गगनचुम्बी वे नारियल के पेड़ अपने आस-पास के हरे-भरे परिवेश में, ऊर्ध्वरेता तपस्वियों की भ्रान्ति उत्पन्न कर रहे थे । मुझे प्राकृतिक दृश्य बहुत प्रिय हैं, इसलिए दक्षिण-यात्रा में वन्य हरीतिमा, नारियल के वन, ताल और सुपारी के बगीचे देखने में इतना तन्मय हो जाता था कि रेल या बस बीसों मील की दूरी पार कर जाती थी, पर मैं अपने वाहन की विपरीत दिशा में भाग रहे, पंक्तिबद्ध वृक्षों पर से निगाह नहीं हटा पाता था । आम-जामुन के वृक्षों में शाखाएं होती हैं, इसलिए उनके रूपाकार में भिन्नता होती है । परन्तु ताल, खजूर, नारियल और सुपारी के वृक्ष एक समान होते हैं, इसलिए उनकी छवि-छटा मानस-पटल पर देर तक अङ्कित रहती है ।

नारियल बहु-उपयोगी वृक्ष है । मैंने बङ्गाल के गाँवों (सुन्दर वन) में देखा था, नारियल के पत्तों में छप्पर छाये हुए थे । पंखे बनाकर बेचे जा रहे थे । हस्त-शिल्प की तमाम चीजें—पर्स, बैग, डोलची आदि बाजार में बिक रहे थे । हरे नारियल का पानी (डाभ) परम पौष्टिक, पाचक और शीतल होता है । अनेक रोगों में वह औषधि का काम करता है । नये फल का डाभ गाढ़ा, मीठा होता है, पर ज्यों-ज्यों फल कड़ा

होकर पकने की स्थिति में जाता है, इसके भीतर का दूध (डाभ) जमकर सादे पानी जैसा रह जाता है । फिर भी उसे लोग बड़े चाव से पीते हैं । मैंने स्वयं भी कई बार लाभ पीकर तृप्ति का अनुभव किया है ।

नारियल का फल सर्वसुलभ है । मद्रास-क्षेत्र, बम्बई-क्षेत्र और बङ्गाल में यह भारी मात्रा में आता है । आज किसी भी नगर या कस्बे में देखें, बरसात (जुलाई से अक्टूबर तक) में नारियल के हरे (दूधिया) गोले हथठेलियों पर बिकते मिलेंगे । फल पर मोटे रेशों का छिलके जैसा आवरण होता है । वे रेशे निकाल देने पर बेल जैसा, कड़े छिलके का अण्डाकार नारियल-फल दीख पड़ता है । इसे सामान्यत: 'गोला' कहते हैं । उसे पटक कर या किसी चीज से तोड़ें, तो वह मोटा छिलका तड़कदार टूटन के साथ अलग होता है । उसके भीतर गरी होती है । सावधानी से पूरा छिलका निकाने पर गरी का समूचा अभङ्ग गोला प्राप्त होता है । पका हुआ सूखा गोला 'मेवा' की श्रेणी में आता है । उसमें दूध नहीं रहता, बल्कि दूध सूखकर तेल (घी) का रूप ले लेता है । नारियल का तेल वही गरी का घी है । यह ठण्डा, मीठा, पौष्टिक, केश-बर्द्धक, नेत्र-ज्योति-रक्षक और शान्तिदायी होता है । पंच-मेवा में गरी भी एक घटक है ।

अस्तु: जहाँ नारियल की जटा (रेशे) से रस्सी बनती है (बहुत मजबूत और मोटी-पतली हर तरह की) वहीं कई तरह की अन्य प्रयोजनीय वस्तुएं—कारपेट, पैरपोश, कुशन, गद्दे आदि बनते हैं । गरी की मेवा और पौष्टिक खाद्य तथा औषधीय-घटक के रूप में स्थान प्राप्त है । गरी के पानी (दूध-डाभ) का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है । इन सबके अलावा, और सबसे महत्त्वपूर्ण उपयोग है—नारियल का आध्यात्मिक साधना में उपयुक्त होना । इस प्रकार अपनी उत्पत्तिगत-विचित्रता, बहुक्षेत्रीय उपयोगिता और आध्यात्मिक-प्रभाव के कारण नारियल भारत का सर्वाधिक चर्चित फल है । देखने में भले ही यह कुरूप होता है, परन्तु स्वाद, प्रभाव और गुणवत्ता में यह अनुपम है ।

दुर्लभ एकाक्षी नारियल :

सामान्यत: नारियल के प्रत्येक फल पर रेशा (जटा) उतारने के बाद, टहनी की ओर तीन काले बिन्दु दीख पड़ते हैं । मान्यता है कि इनमें से दो बिन्दु नेत्रों के प्रतीक हैं और एक मुख का ! गौर से देखें तो नारि-

यल का गोला मानवाकृति से बहुत कुछ मिलता-जुलता होता है । यहाँ तक कोई विचित्रता नहीं, यह तो नारियल की प्राकृतिक-संरचना है ही । उसकी प्रमुख और अत्यधिक प्रभावशाली विचित्रता यह है कि किसी-किसी गोले पर तीन नहीं, केवल दो बिन्दु पाये जाते हैं । अर्थात् उस पर दो नेत्रों की जगह एक नेत्र और मुख होता है । तान्त्रिक-ग्रन्थों में इस तरह के फल (गोले) को 'एकाक्षी-नारियल' कहा गया है—एक आँख वाला नारियल ।

ऐसा फल बहुत कम प्राप्त होता है । कहीं निकला भी तो, वह बहुत ऊँचे दामों में बिकता है । मैंने दक्षिण-यात्रा में बहुत खोज की, परन्तु कहीं न मिला । मद्रास, तिरुपति, ऊटी, रामेश्वरम्, कन्याकुमारी, गोआ और बम्बई तक, मैं बराबर इसके लिए प्रयास-रत रहा, परन्तु कहीं नहीं दीख पड़ा । कई बार तो मेरे साथी और फल-विक्रेता अविश्वास के स्वर में मेरा परिहास भी करने लगे । उनकी मान्यता थी कि ऐसा फल होता ही नहीं । परन्तु बाद में, मुझे अपने नगर कानपुर में ही वह अलम्य-फल 'एकाक्षी-नारियल' प्राप्त हो गया । फिर भी प्रभु की कुछ ऐसी कृपा हुई कि जहाँ मैं एक फल के लिए तरस रहा था, वहाँ मुझे एक दर्जन मिल गये । मैंने अपनी कई स्वजनों, मित्रों और स्नेहियों को भी भेंट-स्वरूप दिये ।

तान्त्रिक प्रयोग :

नारियल का फल सदैव शुभ होता है । प्रतिबन्ध यही है कि वह भग्न (टूटा-फूटा) न हो । समूचा फल ही ग्राह्य होता है । बाद में, पूजनोपरान्त उसे तोड़कर प्रसाद रूप में गरी को ग्रहण करते हैं । परन्तु यहाँ जिस 'एकाक्षी नारियल' की चर्चा की जा रही है, यह प्रसाद के लिए नहीं, केवल पूजन के लिए प्रयुक्त होता है । उसे तोड़ना भी नहीं चाहिए ।

चूंकि यह फल दुर्लभ होता है, अतः यदि कहीं दीख पड़े, तो तुरन्त ले लेना चाहिए । क्योंकि मुहूर्त्त की परीक्षा में, यदि बिक गया (हाथ से निकल गया तो बड़ा परिताप होता है । और यदि किसी ऐसी जगह पर है जहाँ से आप बाद में कभी (शुभ मुहूर्त्त में) प्राप्त कर सकते हैं, तो उसे वहीं रहने दें, और फिर किसी शुभ मुहूर्त्त में ले आयें ।

तान्त्रिक-प्रयोगों के लिए—अमृत-योग, सिद्धि-योग, पुष्य-योग (रविपुष्य या गुरुपुष्य सर्वश्रेष्ठ) जैसा कोई शुभ मुहूर्त्त होना चाहिए । इसका पता पंचाग देखकर लगा लें, या किसी स्थानीय पुरोहित से पूछ

लें । आशय यह है कि 'एकाक्षी नारियल' किसी शुभ मुहूर्त्त में ही लाकर घर में रखें । यदि ऐसा सम्भव नहीं है, तो जब भी मिले, भगवान् विष्णु और लक्ष्मीजी का ध्यान करते हुए, उसे ले आयें और घर में किसी पवित्र स्थान (पूजा-स्थल) में रख दें । बाद में, जब कोई शुभ मुहूर्त्त आ जाने तब उसकी विधिवत् पूजा करें ।

पूजन-विधि (तान्त्रिक-साधना) :

रविपुष्य या गुरुपुष्य अथवा अन्य किसी शुभ मुहूर्त्त में, जो भी सुलभ हो, प्रातः स्नान करके शुद्ध स्थान पर आम की लकड़ी का (पीढ़ा, पाटी पटरा, चौकी) आसन रखें । उस पर लाल कपड़ा बिछायें । स्वयं दैनिक देव-पूजा करके, थाली में उस फल (एकाक्षी-नारियल) को रखें । उस पर गङ्गाजल या शुद्ध कूप-जल छिड़क कर उसे स्नान करायें । साफ कपड़े से पोंछकर उसे पीढ़े पर बिछे लाल कपड़े पर रख दें । फिर, यह कल्पना करें कि यह नारियल नहीं, साक्षात् लक्ष्मीजी की प्रतिमा है । उस पर लाल कपड़ा, लाल चन्दन, सिंदूर चढ़ायें, पुष्प-अक्षत अर्पित करें, धूप-दीप दें, कोई मीठा नैवेद्य (प्रसाद) अर्पित करें और कोई मुद्रा (सिक्का) चढ़ायें । इसके पश्चात् लक्ष्मीजी का स्तवन, ध्यान, पूजन करते हुए मन्त्र-जप आरम्भ करें । मन्त्र-जप के पूर्व ही यह संकल्प करलें कि मैं इस एकाक्षी नारियल रूपी लक्ष्मी-प्रतिमा की पूजा प्रसन्नता हेतु..................माला जप करूँगा । फिर उतनी ही माला जप करें । माला में 108 दाने होते हैं । यदि आपने दस माला जप किया तो 1000 जप हो जायेगा । इस तरह अपनी सङ्कल्पित संख्या में मन्त्र का जाप करें । कम से कम 11 या 21 माला अवश्य जपना चाहिए । तदनन्तर उस नारियल को कहीं सुरक्षित आसन वाले कपड़े सहित किसी थाली, तश्तरी, कटोरे में रखें । चाँदी की तश्तरी-कटोरी हो तो अत्युत्तम ! प्रथम दिन मन्त्र की जप-संख्या पूरी हो चुकने पर, वही मन्त्र पढ़ते हुए, 21 आहुतियाँ देकर हवन भी करना चाहिए । हवनोपरान्त कम से कम एक ब्राह्मण को भोजन कराकर कुछ दक्षिणा दें । तत्पश्चात नारियल को किसी पात्र के आसन में कहीं सुरक्षित रख दें । फिर नित्य उसकी सिंदूर (हो सके तो पुष्प भी) और धूप-दीप से पूजन करते रहें । यथासम्भव कभी-कभी उस पर कोई मुद्रा भी (सिक्का) चढ़ाते रहें । 'एकाक्षी-नारियल' का यह प्रयोग आर्थिक दृष्टि से बहुत लाभकारी, समृद्धिदायक होता है ।

प्रभाव :

जिस घर में एकाक्षी-नारियल की पूजा होती हैं, यहाँ लक्ष्मीजी सदैव वास करती हैं। अन्न के भण्डार में तिजोरी में, आलमारी में, देव-प्रतिमाओं के साथ में, कहीं भी इसे रखें, और दैनिक पूजन-दर्शन करें, इससे अन्न, धन और श्री-सम्पत्ति की वृद्धि होती है। व्यापारिक प्रतिष्ठानों के लिए भी यह परम लाभकारी होता है।

मन्त्र :

एकाक्षी-नारियल की साधना में 'ॐ श्रीं श्रियै नमः' मन्त्र का पूजा का पूरे समय तक जप करना चाहिए।

चूंकि एकाक्षी-नारियल को भगवान लक्ष्मी का प्रतीक माना गया है। अतः एकाक्षी नारियल साधना के पश्चात निम्नांकित श्लोक द्वारा विष्णु भगवान (लक्ष्मीजी के प्रियतम) का स्तवन कर लेना भी साधना के प्रभाव में सम्बर्द्धंकारी सिद्ध होता है :—

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्,
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ।
व्यासं वसिष्ठनप्तारं सक्तेः पौत्रमकल्मषम्,
पाराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे,
नमो वै ब्रह्मनिधये वासिष्ठाय नमो नमः ।
अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः,
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् बादरायणः ॥

निषेध :

अपवित्र व्यक्ति उस नारियल को छूए नहीं। उसे आसन पर रखते समय यह ध्यान रहे कि छोटा बिन्दु ऊपर और बड़ा बिन्दु नीचे की ओर रहे।

10. निर्गुण्डी

सामान्य परिचय :

सड़क किनारे, नदी-नालों के कगारों पर, जंगलों में और ऐसे ही अन्य स्थानों पर एक पौधा उगता है। यह अरहर के पेड़ जैसा होता हैं,

परन्तु लम्बी शाखाओं के कारण विस्तार अधिक पा जाता है। इसकी पत्तियाँ भी अरहर की पत्तियों से मिलती-जुलती होती हैं। एक डण्डी में तीन या पाँच (प्रायः पाँच ही) पत्तियाँ पायी जाती हैं। पत्तियों की बनावट अरहर की पत्ती से बहुत साम्य रखती है, परन्तु अरहर की पत्ती जहाँ हरी होती है, इसकी पत्ती पर सफेदी (जैसे कोई सफेद पाउडर पुता हो) देखी जाती हैं। ये पत्तियाँ छूने में रोमयुक्त, मखमली प्रतीत होती हैं। वर्षाऋतु में यह खूब पनपता है, लेकिन जाड़े में इसकी बाढ़ रुक जाती है, और बड़े पेड़ों की भाँति बसन्त ऋतु में इसकी भी पत्तियाँ झड़ जाती हैं। ग्रामीण भाषा में इस पौधे को 'मेउडी' कहते हैं। वैसे इसके अन्य कई नाम भी प्रचलित हैं। संस्कृत और आयुर्वेद में इसे 'निर्गुण्डी' कहते हैं। इसका एक नाम और भी बहुत प्रचलित है—सम्हालू! प्रादेशिक भाषाओं में यह सिन्दुवार, सिन्धुर, अर्थ-सिद्धक, भूतकेशी, इन्द्राणी आदि नामों से भी विख्यात है। यहाँ ध्यान रखें कि 'इन्द्राणी' निर्गुण्डी-सम्हालू को कहते हैं, परन्तु 'इन्द्रायण' एक भिन्न वनस्पति है, जिसके फल सुन्दर होकर भी बहुत कड़वे होते हैं। वह इन्द्रयण भी एक स्वतन्त्र वनस्पति है, और आयुर्वेद में इसके भी बहुविध प्रयोग बताये गये हैं। अस्तु, यहाँ हम निर्गुण्डी' अर्थात् सम्हालू नामक वनस्पति के कुछ औषधीय गुण, जो तन्त्र-साधना से सम्बन्ध रखते हैं, लिख रहे हैं :—

निर्गुण्डी के तान्त्रिक-प्रयोग :

'रविपुष्य' योग में, पूर्व निमन्त्रण देकर 'निर्गुण्डी' पौधे के प्रयोज्य अङ्ग ले आयें। वैसे जड़ विशेष उपयोगी होती है, अतः यह 'जड़' अवश्य लायें।

'जड़' लाकर, घर में धोयें (साफ करें) फिर पोंछकर, साफ कपड़े पर रखें, और लाल चन्दन, धूप- दीप से पूजा करें। तत्पश्चात् उसे कपड़े में लपेट कर रख दें। बाद में, प्रयोजनानुसार इसको (शुभ मुहूर्त्त में ही) निर्दिष्ट-नियमों के अनुसार काम में लायें।

स्वर-शोधक प्रयोग :

निर्गुण्डी-मूल को सुखा-कर पीस लें। यह चूर्ण प्रतिदिन प्रातः (3 माशे की मात्रा में) गुनगने (गर्म) जल से सेवन किया जाये, तो कण्ठावरोध दूर होकर समस्त प्रकार के उच्चारण- दोष समाप्त हो जाते

हैं और स्वर अत्यधिक मधुर हो जाता है। सङ्गीत साधकों के लिए यह प्रयोग बहुत ही लाभकारी होता है।

कृशता-निवारक प्रयोग :

'निर्गुण्डी' का चूर्ण प्रतिदिन प्रातः-सायं घी में मिलाकर सेवन करने से शारीरिक-कृशता दूर होकर, व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। योग-सेवन के पश्चात् थोड़ा दूध भी पीना चाहिए यह योग शक्ति-वर्द्धक और रक्त-शोधक है। अतः पाचन-क्रिया और रक्त-सञ्चार को ठीक करके शरीर में रस-रक्त की वृद्धि करता है। दुबले-पतले, कृश-काय और क्षीण व्यक्ति इस प्रयोग से अपने को स्वस्थ-सबल बना सकते हैं।

निर्गुंडी
VITEX TRIFOLIA LINN.

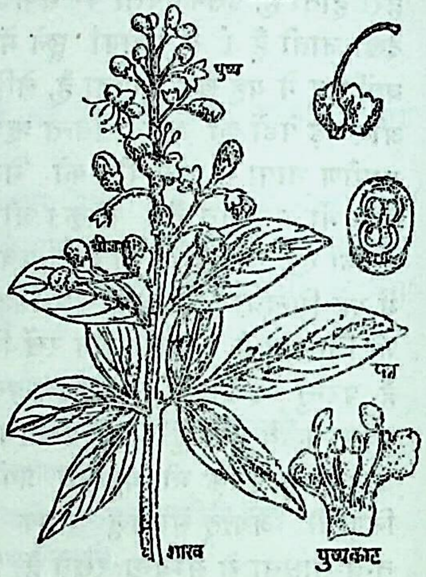

रक्त-शोधक प्रयोग :

'तन्त्र-शास्त्र' आयुर्वेद के बहुत निकट है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि 'आयुर्वेद' वस्तुतः 'तन्त्र-शास्त्र' का एक अङ्ग है। आयुर्वेद में विभिन्न घटकों के मिश्रण से औषधियाँ तैयार की जाती हैं। तन्त्र में पदार्थ-प्रयोग के साथ—मन्त्र, क्रिया, मुहूर्त्त, स्थान और व्यक्ति को भी महत्त्व प्राप्त है। अतः जो प्रयोग आयुर्वेद में सामान्य रूप में वर्णित है, वही तन्त्र-शास्त्र में विस्तार से प्राप्त होता है। अस्तु, तन्त्र-प्रयोगों के क्रम में निर्गुण्डी का वर्णन करते हुए, यहाँ उसके कुछ जो और महत्त्वपूर्ण प्रयोग प्रस्तुत किये जा रहे हैं, उन्हीं में से एक हैं—'रक्त-शोधक तन्त्र !'

यदि शरीर में रक्त दूषित हो जाये, तो अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होकर व्यक्ति को पीड़ित करने लगती हैं। खाज, खुजली, दाद, घाव, फोड़ा, फुन्सी अनेक प्रकार के चर्म-विकार, यहाँ तक कि कुष्ठ जैसा भयङ्कर और घृणाजनक रोग भी—यह सब रक्त-दोष के कारण उत्पन्न

होते हैं। अतः रक्त-शोधन का महत्त्व सर्वोपरि है। जहाँ चिकित्सा-शास्त्र में रक्त शुद्ध करने की बहुविधि औषधियाँ प्राप्त होती हैं, वहीं तन्त्र-शास्त्र में भी ऐसे सरल, किन्तु चमत्कारी प्रयोग प्राप्त होते हैं कि उनका प्रभाव देखकर बड़े-बड़े चिकित्सा-विशेषज्ञ और भिषगाचार्य दिङ्मूढ़ रह जाते हैं।

रक्त-शोधन के लिए निर्गुण्डी का प्रयोग इस प्रकार है :—

असली निर्गुण्डी बूटी

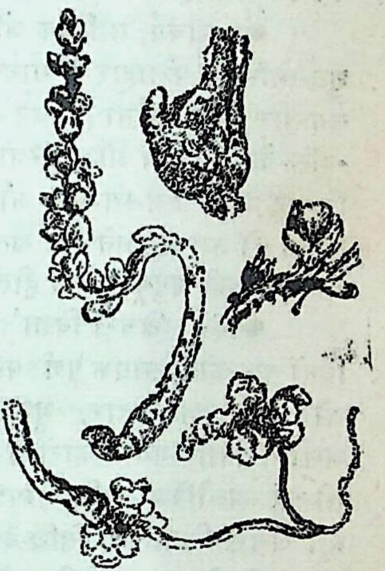

'निर्गुण्डी-मूल' का चूर्ण बनायें। इसको प्रातः-सायं 3 माशा की मात्रा में, शहद में मिलाकर सेवन करें, ऊपर से साफ-ताजा पानी पीलें। रक्त-शोधन के साथ इस प्रयोगसे, रक्त-विकारों से उत्पन्न अनेक प्रकार के चर्मरोग—खाज, खुजली, दाद आदि दूर हो जाते हैं। रक्तशुद्धि के प्रभाव से व्यक्ति का शरीर स्वस्थ-सबल होने लगता है और चेहरे पर कान्ति आ जाती है।

ध्यान रहे कि औषधि-सेवन और तांत्रिक प्रयोग सदैव शुभ-मुहूर्त्त में ही आरम्भ किये जाते हैं। अशुभ समय, दुर्योग, कुबेला और वर्जित-काल में किया गया कार्य कभी सफल नहीं होता, बल्कि और घातक हो जाता है। इसलिए जहाँ वस्तु की शुद्धता और मात्रा पर ध्यान दिया जाना है, वहीं उसके प्रयोग-काल (उपयुक्त समय-मुहूर्त्त) को भी स्मरण रखना चाहिए।

निर्गुण्डी-कल्प :

'निर्गुण्डी' के कुछ ऐसे प्रयोग भी प्राचीन-ग्रन्थों में वर्णित है, जो कायाकल्प कर देते हैं। 'कायाकल्प' का अर्थ है—शरीर को नवीनता प्राप्त होना। आयुर्वेद में भी ऐसे कई प्रयोग वर्णित हैं, जो मानव-शरीर को स्वस्थ, सबल, युवा बना देते हैं। अस्तुः निर्गुण्डी के विषय में वनस्पति-शास्त्रियों, विशेषज्ञों, तन्त्राचार्यों और अन्य प्रयोक्ताओं ने बहुविध अनुभव करके इसके 'कल्प' का वर्णन इस प्रकार किया है :—

'निर्गुण्डी-मूल' का चूर्ण बनायें। इसे प्रतिदिन प्रातः-सायं अजा-मूत्र (बकरी के मूत्र) के साथ सेवन करें। यह प्रयोग मानव-शरीर में निम्नलिखित परिवर्त्तन कर देता है :—

- यह योग यदि एक सप्ताह तक नियमित रूप में सेवन किया जाये, तो नख, केश, दन्त का परिवर्त्तन कर देता है। उल्लेख मिलता है कि वर्त्तमान नाखून, दाँत, बाल सब ढीले होकर गिर जाते हैं, और पुनः नये उग आते हैं।
- ब्रह्मचर्य, सात्त्विक जीवन, योगासन, मन्त्र-जप, एकान्त-निवास, शुद्ध-सात्त्विक फलाहार के साथ, जो साधक इस योग को 21 दिनों तक लगातार सेवन करता है, वह अनेक सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है। उस व्यक्ति के लिए जल और शस्त्रादि से कोई भय नहीं रहता। मान्यता है कि यह प्रयोग जल-स्तम्भन और शस्त्र-स्तम्भन कर देता है। अर्थात् उस व्यक्ति को जल में डूबने का खतरा नहीं रहता और शस्त्र लगने पर उसे चोट-घाव की अनुभूति नहीं होती।
- इसे 'खेचरी विद्या' का मूर्त्तरूप माना जाता है। यदि 40 दिनों तक कोई साधक पूर्ण मनोयोग से, संयम के साथ (ब्रह्मचर्य-पालन और सात्त्विक-आहार, भूमि-शयन, ईश्वर-चिन्तन, शान्ति, अक्रोध, अलोभ, द्वेषादि मनोविकारों से सर्वथा मुक्त) इस प्रयोग को करता रहे, तो वह अलौकिक शक्ति-सम्पन्न होकर खेचरी-विद्या में निपुण हो जाता है। खेचरी-विद्या की सिद्धि व्यक्ति को आकाशगामी बना देती है। वह वायुचारी होकर पक्षी की भाँति कहीं भी उड़ सकता है। आज भी हनुमानजी तथा अन्य कितने ही ऋषि-मुनियों द्वारा वायु-विहार करने के प्रसङ्ग पढ़े सुने जाते हैं।

शान्तिदायी तन्त्र :

शुभ-मुहूर्त्त में लाकर, विधिवत् पूजी गयी 'निर्गुण्डी की जड़' बहुत ही शान्तिदायक होती है। इसे लाकर, घर में कहीं सुरक्षित (पवित्र स्थान में) रख दें तथा किसी कपड़े में बाँधकर या ताबीज-कवच में भरकर, गले या भुजा पर धारण करलें। इसके प्रभाव से घर में सुख-शान्ति रहती है। कलह के कारण घर में दरिद्र आ गया हो, मानसिक-तनाव रहता हो, कार्य में अवरोध और आर्थिक हानि हो रही हो, अथवा अशान्ति, उपद्रव, बैर-विरोध के कारण उत्पन्न कोई अन्य समस्या पीड़ित कर रही हो--उस समय यह प्रयोग बहुत ही लाभकारी होता है।

कभी भी शुभ-मुहूर्त्त में लाकर इसे (निर्गुण्डी मूल को) घर में रख दें, यह अनेक प्रकार से लाभकारी सिद्ध होगी।

11. कुश

सामान्य परिचय :

धरती की गोद में एक-से-एक बढ़कर विचित्र वस्तुएं देखी जाती हैं। जहाँ हम हजारों तरह के पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, कीट-पतङ्ग देखते हैं, वहीं असंख्य प्रकार की वनस्पतियाँ भी पायी जाती हैं। भारत और विदेशों के कितने ही स्वनामधन्य वनस्पति-शास्त्रियों ने दीर्घकाल तक अनुसंधान-रत रहकर कितने ही वनस्पतियों के नाम और गुण, उत्पत्ति-स्थल और उनके अनुकूल जलवायु आदि का पता लगा लिया है, तथापि हजारों पेड़-पौधे और घासें अब भी विवेचना के लिए शेष हैं।

भारत में कई प्रकार की घासें होती हैं। ये सभी पशुओं के चारे के रूप में (कुछ एक को छोड़कर) प्रयुक्त होती हैं। दूब, मोथा, परबा, मंजूर आदि सुलभ घासें हैं, जो प्राय: सभी क्षेत्रों, व गाँवों में उगती हैं। वैज्ञानिक-खोज के आधार पर, इनसे भी अनेक प्रकार के औषधीय-प्रयोग पूरे किये जा सकते हैं, परन्तु ऐसा है नहीं। सारी घासें केवल चारे के रूप में प्रयुक्त होती हैं। वैसे, किसी-किसी घास से चटाई, छप्पर, रस्सी आदि का निर्माण किया जाता है। औषधि के रूप में प्राय: मोथा (शिरोरोग-नाशक तेल के निर्माण में) और दूर्बा (दूब) का प्रदर-प्रमेह जैसे रोगों की चिकित्सा में उपयोग होता है, बाकी सब जानवरों का चारा हैं।

भारत की एक प्रसिद्ध घास है—कुश! इसकी पत्तियाँ नुकीली और दाँतदार होती हैं, इसलिए पशु इसे कम छीलते हैं। चरते भी हैं, तो बहुत सावधानी से, धीरे-धीरे, अन्यथा यह उनके मुँह में घाव कर देती है। इसी तरह किसान-मजदूर भी इसे बहुत कम छीलते हैं, क्योंकि यह हाथ-पैर में चुभकर कष्ट देती है। अगर यह पैर में चुभ जाये तो सुई की चुभन से भी अधिक पीड़ा होती है। एक घटना इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है—मौर्यसमाज के संस्थापक 'चन्द्रगुप्त मौर्य' के गुरु, आचार्य 'विष्णुगुप्त चाणक्य' जो एक बार मगध-नरेश के यहाँ अपमानित हो जाने के कारण उसके वंश-परिवार को समूल नष्ट करने के लिए प्रतिबद्ध हो गये थे,

(और वैसा कर भी दिखाया था), अपनी युवावस्था में एक दिन कहीं जाते हुए, मार्ग में कुशों की चुभन से क्षुब्ध होकर, रास्ते के सारे कुश उखाड़-उखाड़ कर उनकी जड़ों में मट्ठा डाल दिया था, ताकि वे फिर न पनप सकें, और दूसरे यात्रियों को उनकी चुभन की दारुण वेदना न सहनी पड़े। वस्तुत: कुश की जड़ दीर्घजीवी होती है। ग्रन्थिबाहुल्य के कारण वह अमरत्व जैसा प्राप्त किये रहती है। यदि इसकी एक भी गाँठ भूमि में रह जाये, तो वह पौधे का रूप धारण कर लेती है।

कुश (डाब)

Eragrostis cynosuroides Beauv.

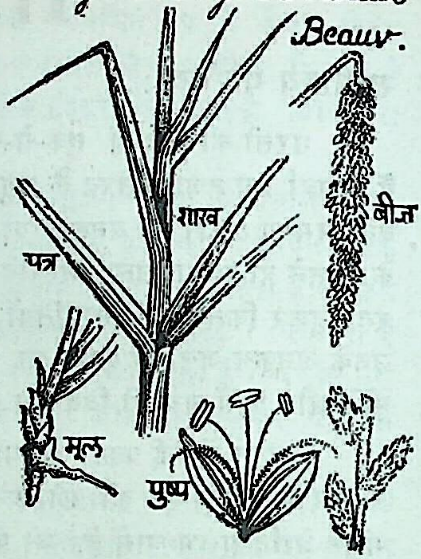

प्रभाव :

भले ही, कुश में भाले जैसी चुभन और आरी जैसी दन्त-पंक्ति होती है, भले ही वह पथिकों के लिए सुखद नहीं—पीड़क है, भले ही वह पशुओं के लिए श्रेष्ठ खाद्य नहीं है, तथापि उसकी गुणवत्ता उसके सारे अवगुणों को, सारे अन्तर्विरोधों को समाप्त कर देती है, अध्यात्म के क्षेत्र में 'कुश' को, जो मान्यता प्राप्त है, वह अन्य किसी घास को नहीं। यद्यपि किन्हीं अंशों में 'दूर्वा' भी अति पवित्र, पूज्य और प्रभावी है, परन्तु 'कुश' का स्थान उससे बहुत ऊँचा है।

अध्यात्म के क्षेत्र में :

गणेशजी की पूजा में 'दूर्वा' को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। शिव-पार्वतीजी की पूजा में भी उसे बड़ी श्रद्धा से प्रयोग किया जाता है। परन्तु 'कुश' एक ऐसी वनस्पति (घास) है, जिसका प्रयोग—देवताओं, पितरों और प्रेतों तक के लिए समान रूप में होता है। 'कुश' की पवित्री बनाकर 'अनामिका' में धारण करने पर ही अनेक पूजन-विधान पूर्व और शुद्ध माने जाते हैं। कोई भी धार्मिक-अनुष्ठान हो, कोई पूजा-पाठ हो, कोई संस्कार हो—आपका पुरोहित आपको पवित्री अवश्य पहिनायेगा। वह पवित्री एक प्रकार की मुद्रिका होती है—कुश की बनी हुई अँगूठी! हवन

पूजन ही नहीं,—पितरों का आह्वान, श्राद्ध-तर्पण और क्रिया-कर्म तक में भी पवित्री धारण की जाती है। दिवंगत-व्यक्ति के नाम पर पिण्डदान के समय—'कुश' को ही प्रमुख आधार बनाया जाता है। कुश से जल छिड़कना, कुश को व्यक्ति अथवा देवता-विशेष का स्थानापन्न मानकर उसकी पूजा करना, मण्डप आदि की रचना में उसका प्रयोग तथा अन्य कितने ही धार्मिक-कृत्यों में उसकी अनिवार्यता, उसके आध्यात्मिक महत्त्व को स्वत: उजागर कर देती है।

कुश-तन्त्र :

तन्त्र-शास्त्र में 'कुश' के अनेक प्रयोग बताये गये हैं। यह शान्ति, धन-धान्य, समृद्धि, पवित्रता, सात्विकता और विवेक की वृद्धि करता है। प्रयोग-भेद से 'कुश-तन्त्र' को इस प्रकार समझना चाहिए :—

आसन :

'कुश' घास से बना हुआ आसन (बैठकर पूजा करने की छोटी चटाई) बहुत ही लाभकारी, सर्वसिद्धि-दायक, धन-वर्द्धक और देवानुकूलन में सहायक होता है। किन्तु यह भी ध्यान रखें कि बाजार में 'कुशासन' नाम से बिकने वाले आसन वस्तुत: 'कुश' से नहीं—'काँस' नामक घास से बने होते हैं। काँस की पत्ती—लम्बी, पतली और दाँत-काँटों से रहित होती है, जबकि कुश की पत्ती—लम्बाई में कम, चौड़ी, चरचरी, दाँतदार और मोटी होती है। शहर के लोग, जिन्होंने कभी घास देखी ही नहीं, वे इस भेद को नहीं समझ सकते, परन्तु जिन्हें देहात का, प्रकृति का, पेड़-पौधों का, जङ्गल-मैदान और घास फूस का सामीप्य प्राप्त हुआ हो—ऐसे लोग, आसानी से कुश और काँस का अन्तर समझ जाते हैं। यों, दूकानदार भी चाहें, तो भेद समझाकर असली दे सकता है। वह बनकर बिकने आती है।

पवित्री :

'कुश' निर्मित पवित्री 'यथा नाम, तथा गुण' होती है। इसको धारण करने का मुख्य उद्देश्य होता है—'साधक का उस समय तन-मन से पवित्र और समस्त बाह्य-बाधाओं से सुरक्षित हो जाना। यद्यपि पवित्री-निर्माण का मन्त्र होता है, परन्तु सामान्य-साधक वह सब नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में मध्यम मार्ग यह है कि किसी पुरोहित को कुछ दक्षिणा देकर, किसी शुभ मुहूर्त्त में—उससे 'मन्त्र-सिद्ध पवित्री' बनवा

लें। उसे पूजन-अनुष्ठान के समय पहिनें, बाद में उतार कर सुरक्षित रख दें। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि निकृष्ट-कर्म, अभिचारादि की साधना में, तामसिक-साधना में पवित्री धारण करना वर्जित है। यह केवल सात्त्विक-साधना के समय प्रयुक्त होती है।

कुशमूल की माला :

रविपुष्य योग में कुश की पर्याप्त जड़ें खोद लायें और उन्हें धोकर एक-एक गाँठ काट लें। फिर सुई तागे से, या केवल तागे के सहारे, एक-एक गाँठ को पिरोकर (बाँधकर) माला बना लें। यदि कुशग्रन्थि की 108 दानों की माला बनाकर, उससे मन्त्र-जप किया जाये, तो बहुत लाभ होता है। धन-समृद्धि के लिए की जाने वाली पूजा-साधना के मन्त्र-जप में इसे वरीयता प्राप्त है। यह बनाने में कुछ असुविधाजनक अवश्य है, परन्तु प्रभाव में अद्भुत और निश्चित फल देने वाली है। कार्तिक-अगहन में इसकी जड़ आसानी से प्राप्त हो सकती है, वैसे—खोजने पर तो कभी भी कहीं से भी ले सकते हैं।

जिस प्रकार कपास, ऊन, बेंत, चर्म, काष्ठ, पत्र, शिला आदि विभिन्न आसनों (बिछाने की चटाई) में कुश का आसन सर्वश्रेष्ठ होता है, वैसे ही मन्त्र-जप के लिए निर्धारित विभिन्न मालाओं (शंख, कौड़ी, मोती, मूंगा, पुत्रजीवा, तुलसी, वैजयन्ती, रुद्राक्ष, चन्दन, स्फटिक आदि) में कुशमूल की माला श्रेष्ठ होती है। कुश को 'दर्भ' भी कहते हैं। 'दर्भासन' के प्रसंग अनेक पौराणिक-आख्यानों में प्राप्त होते हैं। भगवान् श्रीराम ने वनवास-काल में 'कुशासन' पर ही शयन-विश्राम किया था। केवट ने भी श्रीराम के लिए—'कुश' की चटाई बनाकर प्रस्तुत की थी। लङ्का-प्रवेश के लिए—समुद्रतट पर 'पथ-याचना' के समय श्रीराम ने 'कुशासन' पर ही बैठकर 'सागर-स्तवन' किया था। और भी कितने ही ऋषि-मुनियों के जीवन-वृत्तान्त में कुशासन का उल्लेख मिलता है। यह समस्त सन्दर्भ इस तथ्य को प्रभावित करते हैं कि भारतीय-संस्कृति, आध्यात्म और तन्त्र के क्षेत्र में 'कुश' को बहुत पवित्र माना गया है, जो अवश्य ही उसकी अलौकिक प्रभावशीलता पर आधारित है।

धन-बर्द्धक प्रयोग :

'रविपुष्य-योग' में 'कुशमूल' ले आयें उसको शुद्ध जल से स्नान करकर, देव-प्रतिमा की भाँति पूजें और लाल कपड़े में लपेट कर, भण्डार

या तिजोरी में रख दें। दैनिक धूप-दीप भी करते रहें। यह प्रयोग समृद्धिकारी माना गया है।

कुशाग्रन्थि (कुश का बाँदा) :

कुशाग्रन्थि का एक अर्थ है—कुश की गाँठ! परन्तु, यह गाँठ—ऊपर की नहीं, जड़ की मानी जाती हैं। इस ग्रन्थि का उपयोग माला बनाने में होता है। किन्तु हम जिस ग्रन्थि की चर्चा कर रहे हैं, वह कुश-पौधे के ऊपर ही होती है प्रचलित भाषा में इसे 'कुश का बाँदा' कहते हैं। पौधे के बीच में, तने पर कहीं भी एक काली गाँठ जैसी पड़ जाती हैं, जो आकार में छोटे बादाम से लेकर—बेर-सुपारी तक के बराबर हो सकती है। यह बहुत ही समृद्धि-कारी होती है। 'भरणी' नक्षत्र के दिन इसे घर लायें और लक्ष्मी का प्रतिरूप मानकर, विधिवत् लाल चन्दन, सिंदूर, कपूर, लौंग, इलायची, पुष्प, अक्षत आदि से पूजा करें और लक्ष्मी-मन्त्र का जप करें। तदुपरान्त लाल वस्त्र में लपेटकर—कोष, भण्डार, तिजोरी कहीं भी सुरक्षित रख दें। यह निश्चित-रूपेण धन-वैभव-वर्द्धक अनुभूत प्रयोग है।

12. हरिद्रा

सामान्य परिचय :

'हरिद्रा' को बोलचाल की भाषा में 'हल्दी' कहते हैं। यह पीले रङ्ग की एक जड़ी है, जो सुखाकर मसाले के रूप में प्रयुक्त होती है। भोजन, साग-सब्ज़ी, मिठाइयाँ, मसाले, चटनी, अचार, अवलेह, पाक, मोदक से लेकर—प्रसाधन (श्रृङ्गार-सामग्री) तक में हल्दी का प्रयोग होता है।

'हल्दी'—कान्ति-बर्द्धक, अनेक रोग-नाशक और शुभ्र पदार्थ है। इसके पौधे से भी सुगन्ध आती है। हल्दी का पौधा सामान्यत: दो-ढाई फीट ऊँचा होता है। वैजयन्ती-पुष्प के पेड़ को देखिये, हल्दी का पेड़ इससे मिलता-जुलता होता है। ऊँचाई में कम होने पर भी पत्तों की बनावट एक-जैसी होती है। हल्दी के पत्ते को नोंचकर मसलिए, और फिर सूँघिये। बड़ी मादक सुगन्ध निकलती है।

पूजा-पाठ, विवाह आदि में जहाँ भी पीला रंग चाहिए, सारे काम हल्दी से होते हैं। हिन्दू-विवाहों में भी वर-कन्या के कपड़े हल्दी से रंगे जाते हैं। हल्दी का उबटन शरीर को स्वर्णिमा आभा प्रदान करता है।

तान्त्रिक-प्रयोग :

'हल्दी' को तान्त्रिक-साधना में बहु-उपयोगी द्रव्य माना जाता है। यहाँ कुछ प्रमुख विषयों पर हल्दी के तान्त्रिक-प्रयोग लिखे जा रहे हैं :—

पुखराज का पूरक :

नवग्रहों में बृहस्पति को ज्ञान, विद्या, सम्मान, तेज और विवेक का स्वामी माना जाता है। यदि किसी व्यक्ति का बृहस्पति—मन्द, अशुभ अथवा विरोधी है, तो वह उसकी अनुकूलता पाने के लिए, 'पुखराज' रत्न पहिनता है। पुखराज एक सर्वाधिक सुलभ रत्न है। हज़ारों रुपये में आता है, फिर भी उसकी शुद्धता और निर्दोषिता संदिग्ध रहती है। पुखराज का सर्वाधिक विश्वसनीय उपरत्न 'हल्दी की गाँठ' है। नयी कच्ची हल्दी की गाँठ लाकर, उसे छील-धोकर पीले कपड़े पर रख दें। फिर चाकू से उसका गोल छोटा-सा दाना बनाकर, पीले धागे में पिरोकर, भुजा पर धारण कर लें। पुखराज का पूरक हो जायगा। ध्यान रहे कि पुखराज अथवा उसके उपरान्त के रूप में 'हल्दी' को धारण करने के लिए 'गुरु-पुष्य' योग ही श्रेष्ठ मुहूर्त्त होता है। अतः गुरुवार के दिन पुष्य-नक्षत्र होने पर, उसके समय में ही यह साधना की जानी चाहिए।

पुखराज की माला :

बृहस्पति की साधना में सिद्धि प्राप्त करने के लिए यदि पुखराज की माला पर जप किया जाये, तो बहुत लाभ होता है। परन्तु, जहाँ लोग पीले काँच के पालिशदार नगीने भी नहीं ले सकते, वहाँ पुखराज के दानों की चर्चा करना—रत्नों का उपहास ही होगा। अस्तु, जिसे आस्था और उत्साह हो, वह हल्दी की गाँठों को छीलकर गोल दाने काट लें। फिर, उन्हें पीले धागे में पिरो लें। बृहस्पति का मन्त्र जपते हुए उस माला की धूप-दीप से पूजा करें। तदनन्तर गुरु-ग्रह का मन्त्र जपें। मन्त्र-जप के उपरान्त उसी मन्त्र से आहुति देकर हवन करें। हवन में आहुति संख्या–21 से सामर्थ्यानुसार तक हो सकती हैं। हवनोपरान्त एक ब्राह्मण को पीला भोजन करायें, पीला वस्त्र (गमछा) दान दें। सिक्का (रुपया) हल्दी से रंगकर (पीले रङ्ग की मुद्रा बनाकर) दान दें। माला को हवन के धुएं में शोध लें। यह माला पुखराज-माला से भी अधिक गुण-सम्पन्न होती है। फिर, प्रतिदिन उसी माला पर बृहस्पति का मन्त्र जपें। सारे अनिष्ट दूर होकर—ज्ञान, बुद्धि, सम्मान आदि की वृद्धि होती है।

गणेश-पूजा में हरिद्रा-माला :

हरिद्रा-माला (हल्दी की गाँठों से निर्मित माला) पर गणेशजी के मन्त्र भी जपे जाते हैं। एक विशेष अनुष्ठान होता है—'हरिद्रा-गणपति-साधना !' उसमें हल्दी का प्रयोग अनिवार्य रहता है। गणेश और बृहस्पति दोनों की साधना में साधक के वस्त्र, आसन, भोज्य-पदार्थ—सब हल्दी के रङ्ग से रंगे होने चाहिए।

हल्दी की माला पर मन्त्र-जप बहुत प्रभावशाली रहता है। पुखराज रत्न के रूप में हल्दी का टुकड़ा और हल्दी के ही रङ्ग में रंगे हुए पीले वस्त्र धारण करना लाभकारी होता है।

धन-बर्द्धक तन्त्रा :

'गुरुपुष्य-योग' में अथवा 'गणेश-चतुर्थी' के दिन नहा-धोकर, शुद्धतापूर्वक एक नयी गाँठ (समूची) हल्दी लें। उसे पीले रूमाल में रखें। कुछ चावल के दाने भी (हल्दी में रंगे हुए) उसमें रखें और इसी प्रकार हल्दीरञ्जित नारियल का समूचा गोला और एक सुपारी (पाँच हों तो अत्युत्तम) भी (हल्दी-रञ्जित) रखें। तत्पश्चात् उसे धूप-दीप देकर कोई मुद्रा (सिक्का) जो पहले हल्दी में रंगा रखा हो, उसे भी उसमें रख दें। अब उस रूमाल को बाँधकर, कहीं भी रख दें। हाँ, दैनिक धूप-दीप अवश्य करते रहें। यह प्रयोग धन-धान्य से समृद्ध बनाता है। इस सम्पूर्ण साधना में **'ॐ नमो केशवाय नमः'** अथवा **'ॐ श्रीं श्रियै नमः'** मन्त्र जपते रहना चाहिए।

विघ्न-निवारक प्रयोग :

हल्दी-चावल पीसकर, उसके घोल से, घर के प्रवेश-द्वार पर **'ॐ'** बना दें। घर समस्त बाधाओं से सुरक्षित रहेगा। चावल न मिलाएं—केवल हल्दी के घोल से लिखें, तो यही फल प्राप्त होगा।

लक्ष्मी-निवास तन्त्र :

हल्दी की गाँठ, जहाँ भी (आलमारी), गोदाम, गल्ला, बक्स, आभूषण-पेटिका में) रखेंगे—वहाँ लक्ष्मीजी की कृपा अवश्य रहेगी। परन्तु वहाँ रखने से पूर्व 'गाँठ' को धो-पोंछकर, लोबान-धूप से शुद्ध कर लेना चाहिए। साथ ही, जहाँ रखना हो—उस स्थान को भी धूप-दीप द्वारा शुद्ध कर लेना चाहिए। प्रत्येक क्रिया में **'ॐ श्रीं श्रियै नमः'** मन्त्र का जप करते रहना आवश्यक है।

बृहस्पति का मन्त्र :

बहस्पति-साधना के लिए 'हरिद्रा' का प्रयोग करते समय 'ॐ बृं बृहस्पतये नमः' मन्त्र जपना चाहिए।

कृष्ण-हरिद्रा :

सामान्य रूप में हल्दी का रंग पीला होता है। परन्तु इसकी एक जाति काले रंग की होती है। उसे 'कृष्ण-हरिद्रा' अथवा 'काली-हल्दी' कहते हैं। जहाँ पीली हल्दी 'पूजा-पाठ, औषधि-निर्माण, तेल-उबटन और विविध खाद्य-पदार्थों में प्रयुक्त होती है, वहाँ काली हल्दी को तान्त्रिक-क्षेत्र में 'धन-वृद्धिकारक वस्तु' के रूप में अत्यधिक मान्यता प्राप्त है। परन्तु यह सरलता से मिलती नहीं। हल्दी का पूरा खेत, पूरा ढेर खोजने पर भी काली-गाँठ' नहीं मिल पाती। फिर भी यह सत्य है कि—है यह हल्दी ही ! और हल्दी के खेत में ही—एक फालतू, अनुपयोगी वनस्पति के रूप में अपने आप उगती है। साधारण हल्दी के अलावा एक आंबा हल्दी होती है, एक दारु-हल्दी होती है। इसी प्रकार इसे काली-हल्दी' की संज्ञा प्राप्त है।

काली-हल्दी की गाँठ में एक विशेष प्रकार की सुगन्ध होती है—कपूर से मिलती-जुलती ! मोथा (मोथैला) घास की जड़ भी महकती है। गाँड़र-घास की जड़, अपनी सुगन्ध के लिए विख्यात है। खस की टटियाँ वस्तुतः उसी गाँडर-घास की जड़ से बनती हैं। उसी जड़ को 'खस' कहते हैं। ठीक उसी प्रकार इस सुगन्धित काली हल्दी को 'कचूर' अथवा 'नरकचूर' कहते हैं। खेत या दूकान में पीली हल्दी के मध्य इसे खोजना बहुत दुष्कर कार्य है। अतः जब भी आवश्यकता हो—किसी पंसारी की दूकान या जड़ी-बूटी भण्डार से 'कचूर' के नाम से माँग लें। पहिचान के लिए भी देखें—ऊपर काली और तोड़ने पर भीतर हल्की पीली आभा दीख पड़ती है। कपूर-जैसी सुगन्ध भी आती है। इसे किसी शुभ-महूर्त्त में ले आयें और विधिवत् पूजन करके तान्त्रिक-प्रयोग करें। यह धन-सौभाग्य की वृद्धि करने वाली प्रसिद्ध वस्तु है, परन्तु इसका लाभ तभी मिलता है—जब इसकी प्राप्ति और पूजा-प्रयोग में मन्त्र तथा मुहूर्त्त का बराबर ध्यान रखा जाय।

कृष्ण हरिद्रा के तान्त्रिक प्रयोग :

काली हल्दी 'सेवनीय' तो नहीं, परन्तु 'पूजनीय' रूप में इसे अत्य-

धिक सम्मान प्राप्त है। अनेक प्रकार के दुष्प्रभावों को शमन करने में यह अचूक सिद्ध होती है। नीचे इसके कुछ सरल और व्यावहारिक-जीवन के लिए लाभकारी प्रयोग लिखे जा रहे हैं।

उन्माद नाशक तन्त्र :

किसी शुभ दिवस पर पंसारी से काली हल्दी (नरकचूर) ले आयें। शुद्ध जल में भीगे कपड़े से पोंछकर, इसे कटोरी में रखें और लोबान या धूप की धूनी में शुद्ध करलें और कपड़े में लपेट कर रख दें।

आवश्यकता पर इसका चूर्ण 1 माशा—ताजे पानी के साथ सेवन करायें तथा एक छोटा टुकड़ा काटकर, उसे धागे में पिरोकर, रोगी के गले या भुजा में धारण करा दें। इस प्रयोग से उन्माद, मिर्गी, पागलपन, भ्रान्ति और अनिद्रा जैसे मानसिक-रोगों में बहुत लाभ होता है।

अदृश्य-बाधा-नाशक तन्त्र :

काली हल्दी के 7 या 9 या 11 दाने बनायें उन्हें धागे में पिरोकर, धूप, गूगल या लोबान के धुएँ में शोधकर पहिन लें। जो व्यक्ति ऐसी माला गले या भुजा में धारण करता है—वह ग्रह-पीड़ा, वायव्य-दोष, अदृश्य-छाया-पीड़ा, टौने-टोटके, नजर आदि से सुरक्षित रहता है।

धन-बर्द्धक तन्त्र :

'गुरुपुष्य-योग' में काली हल्दी को सिंदूर और धूप-दीप देकर, लाल वस्त्र में लपेट कर—एक-दो मुद्राओं सहित बक्स में रख दें। इसके प्रभाव से बक्स में धन की वृद्धि होती रहेगी।

सौन्दर्य–साधना :

काली हल्दी का चूर्ण दूध में सानकर चेहरे और शरीर पर लेप करने से सौन्दर्य में वृद्धि होती है। दूध के अभाव में पानी अथवा कोई मीठा तेल भी ले सकते हैं।

वशीकरण प्रयोग :

चन्दन की भाँति काली हल्दी का टीका लगायें। यह टीका सम्मोहनकारी होता है। टीके के बीच में अपनी कनिष्ठा का रक्त लगाने से प्रभाव और बढ़ जाता है।

13. नागकेसर

सामान्य परिचय :

यह एक वहुत ही पवित्र और प्रभावशाली वनस्पति है। इसे 'नागकेसर' अथवा 'नागेश्वर' भी कहते हैं। कालीमिर्च के समान गोल, कबाबचीनी की भाँति दाने में डण्डी भी लगी हुई, गेरू के रङ्ग का यह गोल फूल घुण्डी नुमा होता है। यह फूल गुच्छों में फूलता है, पकने पर गेरू के रङ्ग का हो जाता है। यद्यपि यह सामान्य वनस्पति है, फिर कहीं-कहीं जङ्गलों में अपने-आप उगती है, सामान्यतः प्राप्त नहीं होती। शौकीन लोग इसके पौधे फुलवाड़ी में लगाते हैं। मेंहदी का पौधा देखिये—ठीक उसी के फूलों की भाँति 'नागकेसर' के गुच्छे होते हैं। इसकी गणना—सुगन्धित और पूजा-पाठ के लिए पवित्र पदार्थों में की जाती है। आयुर्वेद की दृष्टि से यह पोषक, सौन्दर्य-बर्द्धक और कीटाणु-नाशक होती है।

नागकेसर असली (नागेश्वर)
'MESUA FERREA LINN.

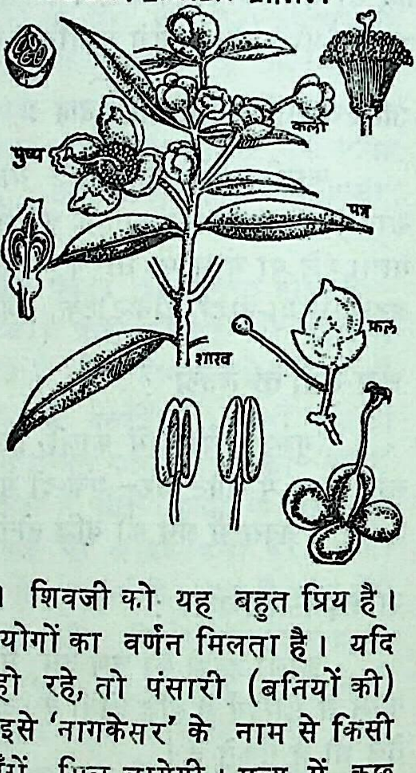

आध्यात्म के क्षेत्र में 'नागकेसर' को बहुत उच्च स्थान प्राप्त है। शिवजी को यह बहुत प्रिय है। तान्त्रिक-साधना में भी इसके विविध प्रयोगों का वर्णन मिलता है। यदि पौधे से 'नागकेसर' के फूल नहीं प्राप्त हो रहे, तो पंसारी (बनियों की) की दुकान से आसानी से ले सकते हैं। इसे 'नागकेसर' के नाम से किसी भी जड़ी-बूटी विक्रेता या पंसारी से माँगें, मिल जायेगी। मूल्य में कुछ मँहगी है। लगभग दो रुपये तोले में मिल जाती है। परन्तु यह देख लेना चाहिए कि उसमें कूड़ा-कवाड़, धूल-मिट्टी और पुराने टूटे फूलों का चूरा न मिला हो। प्रयोग के लिए—साफ, बड़े-बड़े दाने बीनकर किसी डिब्बी में रख लेना चाहिए।

तान्त्रिक-प्रयोग :

'नागकेसर' से अनेक प्रकार के तान्त्रिक प्रयोग सिद्ध किये जाते हैं। यहाँ कुछ अति सरल और शीघ्र प्रभावी प्रयोग-विधियों का उल्लेख किया जा रहा है। वैसे, दैनिक-पूजा में भी इसे प्रयुक्त किया जा सकता है।

समृद्धिदायी शिव-पूजन :

कहीं से स्वच्छ, सुन्दर, अकीक-पत्थर से प्रकृत्या-निर्मित नर्मदेश्वर शिवलिङ्ग प्राप्त करें। ध्यान रहे कि उस शिवलिङ्ग में कहीं दरार, चटक, गड्ढा, बिन्दु, भग्नता, छिद्र, विरूपता न हो। उसे अण्डाकार, सुडौल, चमकीला, चिकना होना चाहिए। यदि किसी शिवलिङ्ग पर कोई विशेष-चिह्न प्राकृतिक रूप में बना हो तो वह अति श्रेष्ठ माना जाता है। ये चिह्न इस प्रकार के हो सकते हैं :—

● **धारालिङ्ग**—लम्बाई में धारियों का घेरा डाले हुए, यह लिंग लहराती जल-धारा जैसा प्रतीत होता है।

● **अर्द्ध-नारीश्वर**—यदि कोई शिवलिंग दो रंग में है, और दो समान भागों में उसका प्राकृतिक वर्ण-विभाजन है, तो वह 'अर्द्ध-नारीश्वर' शिवलिङ्ग कहलाता है। मान्यता है कि ऐसा शिवलिङ्ग शङ्कर-पार्वती के युग्म रूप का प्रतीक होता है।

● **चन्द्रमौलीश्वर**—यदि किसी शिवलिंग में कहीं सफेद रङ्ग का अर्द्ध-चन्द्राकार चिह्न बना है, तो उसे 'चन्द्रमौलीश्वर' कहते हैं। यह दुर्लभ होता है। परन्तु प्रभाव की दृष्टि से इसे परम समर्थ माना जाता है। इसमें कहीं प्रायः अभद्धाग पर, या ऊपर की ओर आधा चन्द्रमा बना होता है, जो बादलों में तैर रहे—चन्द्रमा की छवि से प्राकृतिक रूप में युक्त होता है। चन्द्रमौलि शिवलिङ्ग, यदि पारदर्शी हो तो वह बहुत ही उत्तम माना जाता है।

● **चक्र लिङ्ग**—गौर से देखें, शिवलिङ्ग में कहीं 'चक्र' जैसा महीन धारियों से बना—गोल, अण्डाकार, अँगूठे की रेखाओं से ली गयी छाप जैसा चिह्न दीख पड़े, तो उसे 'चक्र-लिंग' कहते हैं। यह भी दुर्लभ होता है।

● **ज्योतिर्लिङ्ग**—किसी भी रंग में प्राप्त निर्दोष, चमकीले शिवलिंग से यदि लाल रंग की आभा निकल रही हो, तो उसे 'ज्योतिर्लिंग' कहते हैं। यह बहुत ही दुर्लभ माना जाता है।

● **तिलक-लिङ्ग**—यदि किसी शिवलिंग में ऊपर माथे पर लगाये गये 'टीके' जैसा चिह्न हो, तो वह तिलक की भाँति प्रतीत होने से 'तिलक लिंग' कहलाता है।

इसी प्रकार और भी कई प्रकार के शिवलिंग होते हैं। उन सबका नामकरण उनके रंग अथवा चिह्न के आधार पर किया जाता है। अब तक प्राय: 60 प्रकार के शिवलिंग प्रकाश में आ चुके हैं। ये सर्वसुलभ न होकर, प्रारब्ध से ही प्राप्त होते हैं। कोई भी एक शिवलिंग, यदि किसी विशिष्ट श्रेणी का मिल जाये—तो 'अहोभाग्य' समझना चाहिए। ऐसा न मिले, तो जो भी सामान्य प्रतिमा मिल जाये, उसे घर ले आयें।

शिवलिङ्ग को किसी सोमवार के दिन, स्नान कराकर, कटोरी में श्वेत वस्त्र बिछाकर स्थापित करदें। पीतल और पत्थर के अरघे (जलहरी) भी प्रयुक्त होते हैं। शिवजी पर सफेद चन्दन, बेलपत्र, धतूरा, मदार के पुष्प, कनेर-पुष्प चढ़ाये जाते हैं। अक्षत का भी विधान है। पुष्प के समय 'नागकेसर' भी अर्पित करें। और न हो सके, तो प्रतिमा को स्नान कराने के बाद उस पर 'नागकेसर' चढ़ायें और धूप-दीप दें। वैसे, चन्दन और अक्षत-पुष्प की व्यवस्था आसानी से हो सकती है। इस प्रकार श्रद्धा-भक्ति पूर्वक नित्य शिवजी का पूजन करें और प्रतिमा पर नित्य 'नागकेसर' चढ़ायें। यह साधना बहुत लाभकारी होती है। शिवजी आशुतोष हैं। वे अपने भक्तों पर बहुत जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं। 'नागकेसर' अर्पित करने वाला साधक—उनकी कृपा का पात्र अवश्य बनता है। इस प्रकार 'नागकेसर' द्वारा शिवजी की पूजा से साधक को अभीप्सित भौतिक-समृद्धि प्राप्त होती है।

नागकेशर नकली
OCHROCARPUS LONGIFOLIUS BENTH.

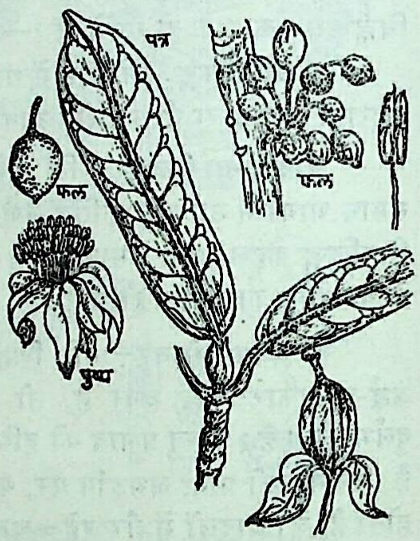

नागकेसर पोटली :

एक नवीन पीत-वस्त्र में नागकेसर, हल्दी, सुपारी, एक सिक्का,

ताँबे का टुकड़ा या सिक्का, अक्षत रखकर पोटली बना लें, इस पोटली को शिवजी के सम्मुख रखकर, धूप-दीप से पूजन करके सिद्ध कर लें, फिर आलमारी, तिजोरी, भण्डार में कहीं भी रख दें, यह परम समृद्धिदायक प्रयोग है।

मन्त्र :

'नागकेसर' के प्रत्येक प्रयोग में '**ॐ नमः सिवाय**' मन्त्र का अखण्ड जप करते रहना चाहिए।

नागकेसर और वशीकरण :

'रविपुष्य-योग' अथवा 'गुरुपुष्य-योग' या फिर अन्य किसी शुभ-मुहूर्त्त में, निम्नलिखित घटक (वस्तुएँ) एकत्र करके खरल में कूट लें। फिर उसे कपड़छन करके घी मिलाकर चन्दन जैसा लेप बनालें। यह लेप माथे पर लगाने से चेहरे पर कुछ ऐसी दिव्य आभा उत्पन्न हो जाती है, जो देखने वालों पर वशीकरण का प्रभाव डालती है।

प्रयोज्य वस्तुएं इस प्रकार हैं :—

नागकेसर, चमेली के फूल, कूट, तगर, कुमकुम और घी।

स्मरण रहे कि प्रातः स्नान-पूजा से निवृत्त होकर शुद्ध स्थिति में हों, यह प्रयोग प्रारम्भ करना चाहिए, फिर दैनिक-पूजा के समय यह तिलक लगाते रहें। चूंकि तिलक बनाने में बहुत थोड़ी सामग्री लगती है, अतः केवल आवश्यकतानुसार ही प्रयोग करना चाहिए। यह भी हो सकता है कि पहले दिन चूर्ण तैयार करके, कपड़छन करके, घी में तर कर लें और उसे किसी प्याली या डिब्बी में रख दें, ताकि उस पर कसाव आदि का प्रभाव न पड़े। काँच, स्टील, प्लास्टिक या चीनी-मिट्टी के पात्र में प्रयुक्त करने से तिलक का लेप कई दिनों तक सुरक्षित बना रहता है।

लगातार कुछ दिनों तक नियमित रूप में इस तिलक को लगाते रहने से साधक में वशीकरण की शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

14. कमल

सामान्य परिचय :

प्रकृति की सबसे सुन्दर देन 'वनस्पति-जगत्' है, और वनस्पति-जगत् की सबसे सुन्दर उपलब्धि है—'फूलों की सृष्टि !' सौन्दर्य, चित्ता-

कर्षण, सुगन्ध, वर्णानुभूति, स्पर्श सुख और विभिन्न औषधीय-प्रयोगों के लिए फूलों का महत्त्व सर्वोपरि है।

फूल भी कई तरह के होते हैं। वैसे, फूल (पुष्प) शब्द ही सुन्दरता का पर्याय है। परन्तु गुण-प्रभाव की दृष्टि से फूलों में अन्तर होता है। सुगन्धित पुष्प भी अपने गन्ध-भेद के कारण व्यक्ति की अनुभूति और तज्जन्य प्रभावशीलता में अन्तर उत्पन्न कर देते हैं। आमतौर पर सुलभ-गेंदा, गुलाब, गूलमेंहदी, गूलदाऊदी आदि पुष्प—अपनी नेत्र-रञ्जक मोहकता के लिए प्रसिद्ध हैं। इसमें (गुलाव में) सुगन्ध भी होती है, लेकिन सिर्फ देशी गुलाव में! आजकल के प्रचलित कलमी-गुलाव तो मात्र कागजी-खिलौने होते हैं—निर्गन्ध और प्रभावहीन! वे केवल अपने आकार से भड़कीले मालूम होते हैं, वस प्रयोग-क्षेत्र में उसका कोई मूल्य नहीं है।

वेला, चमेली, कुन्द, चम्पा आदि पुष्प में सर्वाधिक सुगन्धित और सर्वप्रिय (किन्तु दुर्लभ) केतकी पुष्प होता है—केवड़े का फूल! इसकी मादक सुगन्ध से साँप भी इसके पेड़ के पास खिंचे चले आते हैं। इसकी सुगन्ध—मोहक, मादक, मधुर, दूरगामी और स्थायी होती है। हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में लिखा है कि भगवान् दत्तात्रेय को केतकी-पुष्प (केवड़ा) वहुत प्रिय है। उनकी पूजा में इसका पुष्प अथवा इत्र प्रयुक्त होता है।

ये समस्त फूल—पौधों, लताओं और वेलों से उत्पन्न होते हैं। किन्तु कुछ ऐसे भी पुष्प हैं, जो पानी में पैदा होते हैं। ऐसे पुष्पों को जल-पुष्प, 'जलज' अथवा 'वारिजात कहा जाता है। जलज-पुष्पों में सर्वोच्च स्थान 'कमल' को प्राप्त है। द्वितीय-स्थान पर कोक (कुमुद) का नाम लिया जाता है। यद्यपि 'कमल और कुमुद' में पर्याप्त साम्य है, परन्तु इनमें अन्तर–साम्य से भी अधिक है—रूप, गुण, प्रभाव सभी दृष्टियों से!

भारतीयता का प्रतीक :

'कमल' भारतीय—धर्म, दर्शन, कला, संस्कृति, अध्यात्म और वानस्पतिक-सौन्दर्य का बहु-चर्चित पुष्प है। इसे इन विषयों का सन्देश-वाहक भी कहा जाता है। 'कमल' के विषय में कई एक भारतीय-मिथक (पौराणिक-सन्दर्भ) लोक विश्रुत हैं। यथा :—

- महाप्रलय (जल-प्लावन) के पश्चात्, सर्वप्रथम जिस वस्तु की

सृष्टि हुई—वह 'कमल' का फूल ही था। सागर-तल (क्षीरसागर) में शेषशायी-भगवान् विष्णु की नाभि से एक 'कमल-दण्ड' उत्पन्न हुआ, जो जल-सीमा पार करके ऊपर आया। उसमें एक सुन्दर पुष्प 'कली' के रूप में लगा हुआ था। बाह्य-वातावरण के स्पर्श से जब वह 'कली' विकसित हुई, (फूल का रूप धारण किया) तो उससे चतुरानन ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए। उन पद्मासीन ब्रह्मा जी ने संसार की शून्यता मिटाने के लिए सृष्टि-रचना आरम्भ की। सृष्टि-रचना का आरम्भ उन्होंने एक पुरुष और नारी की उत्पत्ति से किया। वही नर-नारी युग्म-मनु और शतरूपा के नाम से विख्यात हुए।

कमल
Nelumbium speciosum, willd.

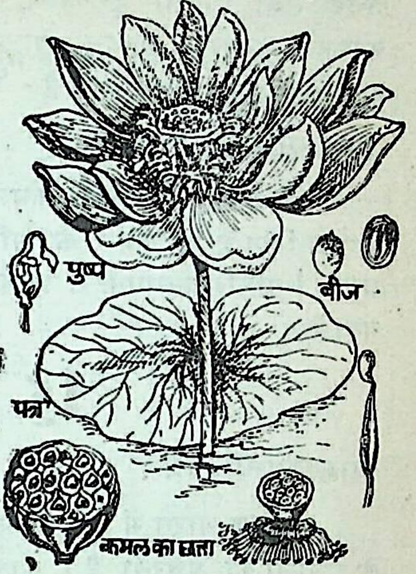

● मान्यता है कि 'लक्ष्मीजी' की उत्पत्ति 'कमल' से हुई है, इसी कारण इन्हें 'पद्मजा' भी कहते हैं।

● भगवान् विष्णु और लक्ष्मी—दोनों को कमल-पुष्प अति प्रिय है। अतः भक्तजन उनकी कृपा पाने के लिए—पूजा में 'कमल' पुष्प अर्पित करते हैं।

● 'कमल' का पुष्प भी समृद्धिकारी होता है। यह जहाँ भी रहेगा, लक्ष्मी वहाँ अवश्य वास करेंगी, जैसा कि उन्होंने स्वयं ही भगवान् विष्णु को अपने वास-स्थानों में बताया है—

'वसामि पद्मोत्पल शंख मध्ये... ....'

(मैं पद्म, उपल और शंख में वास करती हूँ)।

सन्दर्भ-प्रतीकों में भी 'कमल' को प्रमुखता प्राप्त है। मुख, नेत्र, हथेली, पादतल आदि की कोमलता, शोभा और अरुण-वर्णीय आभा के प्रसङ्ग में 'कमल' को सर्वाधिक प्रभावशाली उपादान माना जाता है।

कमल के पर्याय :

'कमल' इतना लोकप्रिय पुष्प है कि उसे अनेक भाषाओं में, काव्य

और सौन्दर्य के क्षेत्र में प्रयुक्त किया जाता है। अपनी भारतीय-भाषाओं में भी उसके विभिन्न नाम हैं। केवल हिन्दी-संस्कृत में ही देखें, तो इसकी अनेक संज्ञा मिलती हैं—अब्ज, अम्बुज, जलज, वारिज, उत्पल, पद्म, कोकनद, सरसीरुह, शतदल, सहस्रदल, तामरस, राजीव आदि। परन्तु सर्वाधिक प्रचलित शब्द यही है--'कमल'!

तन्त्र-साधना में कमल :

तन्त्र और आयुर्वेद में 'कमल' के अनेक प्रयोग वर्णित हैं। यह एक दृष्टव्य बिन्दु है कि 'कमल' के अधिकांश प्रयोग सात्त्विक हैं—पुष्टिकर्म-प्रधान! तामसिक-साधना में इसका उपयोग बहुत कम (नगण्य) बताया गया है।

15. लवंग

सामान्य-परिचय :

दक्षिण-भारत में मलावार-तट और केरल के क्षेत्रों में कई प्रकार के मसालों की प्रचुरता है। कालीमिर्च, जावित्री, इलायची, जायफल, लौंग, दालचीनी, सुपारी आदि के पेड़ वहाँ बहुतायत से पाये जाते हैं। मैंने गोआ, वास्कोडिगामा, पणजी आदि में छोटे-छोटे बच्चों को बन्दरगाह, स्टेशन, पार्क आदि में मसाले की पुड़ियाँ बेचते देखा था। वे एक रुपये का एक पैकट दे रहे थे। हर पैकिट में कोई एक मसाला—दालचीनी, कालीमिर्च, लौंग, इलायची, जावित्री भरा रहता था। मैंने अनुपात निकाला, तो पता चला कि वह एक रुपये का पैकेट अपने में, यहाँ (उत्तर-प्रदेश के नगरों--लखनऊ, कानपुर आदि) की अपेक्षा सस्ता है। पैकेट में जो सामान जितनी मात्रा में भरा था वह यहाँ के से ड्यौढ़े से भी अधिक था। अस्तु, वहाँ विभिन्न प्रकार के मसाले, जो यहाँ काफी महँगे बिकते हैं—विपुलता से उपलब्ध थे। इतिहास बताता है कि सोलहवीं सदी में जब पुर्त्तगाली-व्यापारी—'वास्कोडिगामा' यहाँ आया, तो इन मसालों की सुगन्ध, और विपुलता देखकर मुग्ध हो उठा था। उसके बाद तो—भारत से मसालों की ढुलाई ही प्रारम्भ हो गयी थी। इन मसालों की गुणवत्ता से परिचित होने पर, वहाँ के वैज्ञानिक इनसे अनेक प्रकार की दवाएं और प्रसाधन तथा पौष्टिक-खाद्य तैयार करने लगे थे। 'लौंग' भी उन मसालों में एक प्रमुख वस्तु थी।

लवङ्ग अर्थात् लौंग--एक लता का पुष्प है। यह लता अपनी कमनीयता और शोभा-सुगन्ध के लिए प्रसिद्ध है। कवियों ने भी इसे आलम्बन बनाया है :--

'ललित लवङ्ग लते परिशीलन, कोमल मलय समीरे....'

[गीत गोविन्द—जयदेव]

सामान्य-प्रयोग :

हमारे देश में—साग-सब्जी और विभिन्न प्रकार के भोजनों में कुछ विशेष वस्तुएं डाली जाती हैं जिन्हें 'मसाला' कहते हैं। हल्दी, धनिया, मिर्चा, जीरा, मेथी, अजवायन आदि मसाला पदार्थ माने जाते हैं। उन्हीं में कुछ विशेष वस्तुओं को मिला देने पर—वह खाद्य-सामग्री और स्वादिष्ट बन जाती है। उन विशेष वस्तुओं के सम्मिलित रूप को 'गरम-मसाला' कहते हैं। गरम-मसाले के घटक ये हैं—कालीमिर्च, लौंग, जावित्री, बड़ी इलायची, तेजपात और दालचीनी। जायफल, चित्रक, भी आवश्यकतानुसार मिला लिये जाते हैं। इस प्रकार लौंग' को गरम-मसाले में प्रमुखता प्राप्त है। इसके अतिरिक्त यह मुख-शोधन के लिए—पान में भी प्रयुक्त होती है।

हमारे देश में पान-सुपारी खाने का पुराना रिवाज है। पान में रखकर खाने के लिए विभिन्न प्रकार के मसाले बनाये जाते हैं। उनमें लौंग भी डाली जाती है। मसाला न होने पर भी, लोग पान में लौंग डाल लेते हैं। जो पान नहीं खाते, केवल सुपारी खाते हैं, वे भी सुपारी, कत्था, लौंग का प्रयोग करते हैं। वस्तुतः मुख-शोधन के लिए—'लौंग' सर्वश्रेष्ठ वस्तु है।

तान्त्रिक प्रयोग :

प्रयोग-भेद से 'लौंग' को तन्त्र-शास्त्र में बहुत उपयोगी माना गया है। भूत-प्रेत-निवारण, सम्मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, विद्वेषण, रोग-नाश और सुरक्षा जैसे कार्यों से मन्त्र-सिद्ध 'लौंग' का प्रयोग निश्चित लाभ देता है।

वशीकरण हेतु :

सम्मोहन-वशीकरण के लिए किसी 'रविपुष्य' योग के दिन सात लौंग (फूलदार) लेकर, उन्हें धूप-दीप देकर निम्नलिखित मन्त्र द्वारा प्रभावित करें :—

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ।'

यह मन्त्र 11 माला (1100) जपना चाहिए । तदुपरान्त इसी मन्त्र से 21 आहुतियाँ देकर हवन करें । फिर लौंग को कहीं सुरक्षित रख दें । आवश्यकतानुसार एक 'लौंग' पुनः सात बार वही मन्त्र पढ़कर अभीष्ट व्यक्ति को खिला दें । यह कार्य 'रवि' या 'मंगल' के दिन विशेष प्रभावी रहता है । सम्भव हो तो, उसे 3–4 दिन तक वह 'लौंग' खिलाते रहें । यह प्रयोग उस व्यक्ति को आपकी ओर आकृष्ट कर देगा ।

(यथासम्भव ऐसे प्रयोग किसी दुष्कामना-दुरभिसन्धि से प्रेरित होकर नहीं करने चाहिएं ।)

श्री-समृद्धि के लिए :

धन की लालसा सभी को होती है । यदि आपको अभी सङ्कट ने ग्रस्त कर रखा है, तो उससे त्राण पाने के लिए—आप किसी देवी-स्वरूप की उपासना करें और नित्य पूजा के समय, उस देवी प्रतिमा (यन्त्र या चित्र, जो भी उपलब्ध हो) पर 'लौंग' भी अर्पित करें । यह प्रयोग आपकी आर्थिक-स्थिति में भी सन्तोषजनक-परिवर्त्तन कर देगा ।

भुज-युग्म-साधना में :

भुजयुग्म अर्थात् 'हाथाजोड़ी' की साधना में 'लौंग' अवश्य चढ़ायें । इसके साथ ही, 'महाकालीजी का मन्त्र' प्रतिदिन 7 या 11 माला जपें । ध्यान रहे कि भुजयुग्म में देवी चामुण्डाजी का वास रहता है, जो देवी—महाकालीजी का ही प्रतिरूप है । अतः महाकाली जी का मन्त्र जपने से उनकी कृपा अवश्य प्राप्त होती है । महाकाली जी का सबसे सरल मन्त्र इस प्रकार है :—

'ॐ किलि किलि स्वाहा ।'

इस मन्त्र को नित्य जपें । जप के पूर्व 'हाथाजोड़ी' की लौंग, धूप-दीप से पूजा करें, और कोई सिक्का भी चढ़ायें । यह प्रयोग आपकी आर्थिक दशा सुधार देगा ।

(भुजयुग्म-साधना का विवरण इसी पुस्तक में अन्यत्र विस्तार से वर्णित है, देख लें ।)

जम्बुकी साधना में :

हाथाजोड़ी की तरह 'जम्बुकी' अर्थात् 'सियारसिंगी' की साधना

में भी 'लौंग' का प्रयोग होता है। कुछ लोग 'हाथाजोड़ी' और 'जम्बुकी'—दोनों को एक साथ रखकर, पूजते हैं। कारण कि 'जम्बुकी' में भी चामुण्डा देवी का निवास माना जाता है। जो भी हो, यह निश्चित है कि जम्बुकी-साधना में 'लौंग' का प्रयोग अवश्य ही लाभकारी रहता है। श्री-समृद्धि पाने के लिए, भय-मुक्त होने के लिए—'जम्बुकी-साधना' बहुत लाभकारी होती है। 'लौंग' अर्पित करने से 'जम्बुकी' और अधिक प्रभावशाली हो जाती है।

प्रेतबाधा-निवारण :

यदि किसी व्यक्ति को भूत-प्रेत की बाधा ने ग्रस्त कर रखा है, तो रविवार या मङ्गलवार के दिन स्नान करके, धूपबत्ती जला लें, और आसन पर बैठकर, सामने किसी कटोरी में 11 'लौंग' रख लें। इन्हें धूपबत्ती के धुएं में शोध लें। उत्तम होगा कि धूपबत्ती पर लोबान भी छिड़क दें, और उसके धुएं में लौंग का शोधन करें। तत्पश्चात्, नीचे लिखे मंत्रों में से कोई एक मन्त्र, 11 माला जपें। माला में 108 दाने होने चाहिए। मन्त्र-जप के पश्चात् माला को—लौंगों से स्पर्श करा दें, फिर उन्हें सुरक्षित रख दें। यह 'लौंग' प्रेतबाधा-निवारक हो जाती है। आवश्यकता पड़ने पर 2 लौंग निकालें और सात बार (पुनः वही मन्त्र पढ़कर उन पर फूंक मारें, और किसी कपड़े के सहारे, रोगी की भुजा पर बाँध दें। वह समस्त प्रकार की वायव्य-बाधाओं से मुक्त हो जायगा।

● **मन्त्र**—1. ॐ ह्रीं हनुमते रामदूताय नमः।
2. ॐ दुं दुर्गायै नमः।
3. ॐ ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।

दन्तपीड़ा-नाशक प्रयोग :

- लौंग चबाने से दन्तपीड़ा नष्ट होती है।
- लौंग का तेल लगाने से दाँत-मसूढ़ों की सारी व्याधियाँ मिट जाती हैं।
- किसी भी मञ्जन में 'लौंग' पीसकर मिला दें—उसकी गुणवत्ता बढ़ जायेगी।

स्वर-भंग निवारण :

'लौंग' चबाकर चूसते रहें। इसके पूर्व गरम पानी में नमक डालकर गरारा भी करें—कण्ठावरोध दूर हो जायेगा। (कुछ लोगों की धारणा

है कि 'लौंग' का प्रयोग--स्वर को भारी कर देता है, यानी आवाज कर्कश (मोटी) हो जाती है।) कुछ लोग कहते हैं कि इसके सेवन से जीभ मोटी हो जाती है। वैसे, यह सब अन्ध-विश्वास है। 'लौंग' में कीटाणु-नाशक शक्ति होती है। इसका तेल तीक्ष्ण सुगन्ध वाला और उड़नशील होता है, अतः खुला नहीं रखना चाहिए। 'लौंग का तेल' पानी में मिलाकर पीने से चित्त प्रसन्न हो जाता है।

16. कपूर

सामान्य परिचय :

मोम की तरह कोमल, मिश्री की भाँति सफेद, सुगन्ध में प्रिय और तीव्र, मणियों का सामूहिक लेकर, पतली पर्त्त में जमा हुआ, लगभग सभी जातियों-धर्मों में पूजा-पाठ, मङ्गल-कार्य, आरती-हवन आदि में प्रयुक्त होने वाला 'कपूर' नामक पदार्थ सर्वत्र उपलब्ध रहता है। किसी भी पंसारी, औषधि-विक्रेता और सुगन्ध-भण्डार से इसे प्राप्त किया जा सकता है। इसे विविध कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है। बक्स में कपड़ों के साथ, आरती में दीपक पर, दवाओं में पीड़ा और विष-निवारक घटक के रूप में, तन्त्र-मन्त्र आदि में—एक पवित्र उपादान के रूप में, 'कपूर' का प्रयोग हम आये-दिन करते रहते हैं। इसकी सुगन्ध--तीव्रगामी, तीखी, ठण्डी, मादक, चेतनाकारी और प्रदूषण-नाशक होती है। अपने अद्भुत गुणों के बावजूद यह पदार्थ सस्ता और सुलभ होता है। किसी भी छोटे-बड़े बनिये की दुकान से इसे खरीद सकते हैं।

वस्तुतः 'कपूर' एक पौधे का, मानवकृत सुगन्धित सत्त्व है। इधर वैज्ञानिक-प्रगति ने मिलावट और धोखाधड़ी की भी प्रगति करदी है। अतः अन्य वस्तुओं की भाँति 'कपूर' भी नकली मिलने लगा है। फिर भी इसकी पहिचान सरलता से हो जाती है। असली 'कपूर' की सुगन्ध तीखी टिकाऊ और ठण्डी होती है, जब कि नकली कपूर में महक कम, धीमी और अस्थायी होती है। असली 'कपूर' कुछ अधिक समय तक टिकता है, जब कि नकली कपूर बहुत थोड़े समय में उड़ (गायब हो) जाता है। वैसे तो, यह उड़नशील होता ही है, परन्तु यदि इसको डिब्बी में ऐसे ढङ्ग से बन्द करके रखा जाय कि हवा प्रवेश न हो सके, तो यह उड़ने नहीं पाता। हवा का स्पर्श ही इसे उड़ा देता है। इसकी सुरक्षा और स्थायित्त्व

के लिए इसकी डिब्बी में लोग 5–7 लौंग रख देते हैं। लौंग के साथ रहने पर यह उड़ने से बचा रहता है।

उत्पत्ति की अद्‌भुत मान्यता :

भारतीय-ज्योतिष में 27 नक्षत्रों की अवस्थिति विभिन्न तारा-समूहों के रूप में, आकाश में मानी गयी है। ये सभी नक्षत्र चलायमान हैं और विभिन्न ग्रहों की परिक्रमा करते रहते हैं। देखने में भले ही ये सभी तारे आकाश की नीली चादर में टँके हुए-से प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तविकता यह है कि ये सब एक-दूसरे से सर्वथा स्वतन्त्र, मुक्त, इधर-उधर विखरे हुए हैं। पारस्परिक आकर्षण-शक्ति ने इन्हें एक-दूसरे से बाँध रखा है, इसलिए विश्रृङ्खल न होकर, एक नियमित-गति से, नियमित-मार्ग पर चलायमान विभिन्न ग्रहों (तारों) की परिक्रमा करते रहते हैं। इन सत्ताईस नक्षत्रों में एक नक्षत्र (तारा समूह) है—स्वाति ! मान्यता है कि जिस समय स्वाति-नक्षत्र आकाश में उदित हो, उस समय की वर्षा (हालाँकि स्वाति नक्षत्र की अवधि में ऐसा बहुत कम होता है) का जल (पानी की बूँदें) यदि केले के पौधे पर (पत्तों से उद्‌गम संधि-स्थल में) गिरे, तो उससे 'कपूर' की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार उक्त (स्वाति-नक्षत्र की वर्षा का जल) साँप के मुँह में गिरे—तो महा भयङ्कर विष बन जाता है। सीपी (शुक्ति) के मुख में गिरे, तो 'मोती' को जन्म देती है। कहा नहीं जा सकता है कि इस धारणा का आधार क्या है, परन्तु यथार्थ यह है कि आज के युग में प्राप्त— मोती, विष और कपूर की रचना—स्वाति-बूँद से न होकर, मानवकृत उपायों से होती है। बाँस की कोटी से स्वाति-बूँद के द्वारा 'बंशलोचन' की उत्त्पत्ति भी ऐसी ही मिथकीय कहानी लगती है। आज ये सभी वस्तुएं विभिन्न घटकों के संयोग से मानव द्वारा तैयार की जा रही हैं, अस्तु, 'कपूर' जिसे कर्पूर काफूर और कैम्फर भी कहते हैं, उसी रूप में ग्राह्य और प्रयोज्य है, जैसा वह बाजार में मिलता है। तान्त्रिक-प्रयोगों के लिए—वह निश्चित रूप से लाभकारी सिद्ध होता है।

कपूर के विभिन्न तान्त्रिक प्रयोग :

'तन्त्र-साधना' में सात्त्विक-कार्यों के लिए—'कपूर' को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। विभिन्न प्रकार के लेप और तिलक तैयार करने में इसका प्रयोग होता है। आरती-दीप में भी यह बहुत शुभ और प्रभावशाली माना

जाता है। प्रयोग-भेद से इसको ज्वरादि-रोगों के निवारण हेतु औषधीय-घटक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। यहाँ कुछ विशिष्ट तान्त्रिक-क्रियाओं में इसकी उपयोगिता पर प्रकाश डाल रहे हैं :—

धन-वृद्धि के लिए :

श्री-यन्त्र, हाथाजोड़ी, दक्षिणावर्त्ती-शंख, दत्त-यन्त्र, जम्बुकी, श्री-फल, एकाक्षी-नारियल आदि की साधना में, (जो भी आप कर रहे हों, पुष्पादि के साथ) कपूर भी अर्पित करें। इसमें उक्त तान्त्रिक वस्तुओं की प्रभावशीलता बढ़ जाती है।

मस्तक-पीड़ा में :

कपूर को सूंघते रहें, किसी तेल या गो-घृत में घिसकर, माथे पर लगायें—पीड़ा शान्त हो जायेगी।

दुर्गन्ध और कीटाणु-निवारण के लिए :

कहीं दुर्गन्ध फैल रही हो अथवा किसी प्रकार के कीटाणु फैल गये हों, वहाँ कपूर का चूर्ण छिड़क देने से वातावरण शुद्ध सुगन्धित और स्फूर्तिदायी हो जाता है।

सौभाग्य-बर्द्धन हेतु :

घर में पूजा के समय—इष्टदेव की आरती में कपूर का प्रयोग करें। यह अत्यधिक ज्वलनशील पदार्थ है। यह जहाँ भी जलता है—समस्त प्रकार के वायव्य-दोष समाप्त हो जाते हैं।

हवन-सामग्री में :

तामसी-साधना को छोड़कर, अन्य साधनाओं के हवन में 'कपूर' का प्रयोग— उसके प्रभाव को बढ़ा देता है।

मृतात्माओं के आह्वान में :

आकर्षण प्रयोगों के अन्तर्गत, किसी मृतात्मा को बुलाने के लिए—कपूर का धुआँ और कपूर के दीप का प्रकाश, विशेष प्रभावी होता है। ध्यान रहे कि प्रेतात्मा-ग्रस्त व्यक्ति को कपूर नहीं देना चाहिए, अन्यथा उसका कष्ट बढ़ जाता है।

यन्त्र-निर्माण की स्याही :

आध्यात्मिक-साधना में मन्त्र और तन्त्र की तरह यन्त्र को भी

बहुत महत्त्व दिया गया है। यन्त्र प्राय: भोजपत्र पर लिखे जाते हैं। ताम्र-पत्र पर भी यन्त्रों की रचना की जाती है। उत्कीर्णित यन्त्र स्थायी और सुरक्षित होते हैं। यन्त्र-रचना (लेखन) में विभिन्न प्रकार के पदार्थ मसि-रूप में (स्याही के तौर पर) इस्तेमाल किये जाते हैं। अष्टगन्ध एक ऐसा ही मिश्रण है, जो यन्त्र-रचना के लिए सर्वमान्य स्याही है। किन्तु प्रयोग-भेद से अन्य प्रकार की स्याहियाँ (मसि) भी तैयार की जाती हैं। कितने ही प्रयोगों में रक्त, वसा, वनस्पति-विशेष का रस, दूध, घी आदि को मसिवत् प्रयुक्त करने का विधान मिलता है। इसी प्रकार बहुत-से यन्त्र काली स्याही से बनाये जाते हैं। परन्तु, वह काली स्याही—सामान्य, बाजारू-स्याही न होकर,—'कर्पूर-कज्जल' निर्मित स्याही होती है। इसके लिए—'कपूर' को जलाकर, उसके ऊपर कोई शुद्ध पात्र ढाँक दिया जाता है। उत्तम होगा कि नीचे कटोरी में या मिट्टी की नयी दियाली में 'कपूर' का टुकड़ा रखें, उसे जला दें—और ऊपर से कोई मिट्टी की ही नयी कटोरी (परई) औंधा दें। चाँदी या धातु की कटोरी भी (पीतल की नहीं) प्रयुक्त हो सकती है। इस तरह 'कपूर' की लौ का धुआँ—ऊपर वाली कटोरी में जम जायेगा। वाद में, उसे निकाल कर साफ कागज की पुड़िया में रख लें। यह कागज विभिन्न प्रकार के यन्त्रों की रचना (लेखन) में काम आता है। शनि-यन्त्र तथा यक्षिणी-भैरवी आदि की साधना में इस 'काजल' को वरीयता दी जाती है।

हस्तरेखा-मर्मज्ञ भी इसी काजल को हस्त-चित्र प्राप्त करने के लिए प्रयोग में लाते हैं। सामान्य रूप में, यह काजल आँखों में लगाने पर विभिन्न नेत्र-दोषों को शान्त कर देता है।

'कर्पूर-कज्जल' जब भी बनायें, कोई भी शुभ मुहूर्त्त अवश्य रहे। रवि-पुष्य, गुरुपुष्य दीपावली की रात्रि, विजयादशमी जैसे योग इस कार्य के लिए उपयुक्त होते हैं।

17. सिंदूर

सामान्य परिचय :

'सिंदूर' से सभी परिचित हैं। हिन्दू-समाज के तो घर-घर में इसका प्रयोग होता है। महिलाएं इसे सौभाग्य (सुहाग—पति की जीवितावस्था) का प्रतीक मानकर, माथे और सिर पर (माँग में)

धारण करती हैं। कुमारी कन्याएं माँग नहीं भरतीं। माँग भरने (माँग में सिंदूर लगाने) का अधिकार केवल विवाहिता-स्त्री (सधवा) को होता है। वैधव्य की स्थिति में, पति से वंचित होने के साथ-साथ, वह पति के इस गौरवशाली-चिह्न (सिंदूर धारण—माँग भरना तथा बिन्दी लगाना) से भी वंचित हो जाती है।

किन्तु 'सिंदूर' को—महिलाओं के लिए, सौभाग्य-चिह्न होने के अतिरिक्त, अन्य कारणों से भी महत्त्व प्राप्त है। विभिन्न पूजा-प्रसङ्गों में भी सिंदूर प्रयुक्त होता है। लगभग सभी देवी-प्रतिमाओं पर यह अर्पित किया जाता है। सीताजी, राधाजी, पार्वतीजी और दुर्गाजी तथा उनके समस्त प्रतिरूप सिंदूर से अलंकृत किये जाते हैं। गणेशजी और हनुमान जी को भी सिंदूर अर्पित किया जाता है।

सिंदूर दो प्रकार का होता है—लाल और पीला। महिलाओं द्वारा प्राय: लाल सिंदूर ही प्रयोग किया जाता है, परन्तु पूजन-विधान में पीले सिंदूर को विशेष महत्त्व प्राप्त है।

'सिंदूर' विष भी है, और अमृत भी! प्रयोग-भेद से यह दोनों तरह के (पोषक और मारक) प्रभाव दिखाता है। अब यह बात अलग है कि प्रयोग किया जाने वाला सिंदूर 'असली' है या नकली! नकली सिंदूर का प्रभाव—आशा के प्रतिकूल भी हो सकता है। वह चाहे—तन्त्र से सम्बन्धित हो, चाहे आयुर्वेद से! शृङ्गार के लिए भी शुद्ध सिंदूर ही ठीक रहता है। मिलावटी चीजें बाद में, हानिकारक हो जाती हैं।

'सिंदूर' से अनेक प्रकार के घाव-पूरक मरहम आदि बनाये जाते हैं। बन्दर-कुत्ता जैसे जानवरों के काट लेने पर, घाव भरने के लिए सिंदूर का प्रयोग किया जाता है।

तान्त्रिक प्रयोग :

● मङ्गलवार के दिन, शुद्ध घी में सिंदूर मिलाकर, वह लेप यदि हनुमानजी की प्रतिमा पर चढ़ाया (लगाया) जाये, तो इससे वे भक्त पर प्रसन्न होते हैं।

● प्रत्येक पूजा में—गौरी, गणेश, दुर्गा, पार्वती, सीता, लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियों (उनके चित्र, यन्त्र, प्रतिमा) पर सिंदूर अवश्य अर्पित किया जाता है। ध्यान रहे कि देवी-प्रतिमा पर श्वेत चन्दन का लेप वर्जित है, इन्हें केवल सिंदूर ही चढ़ाना चाहिए। कहीं-कहीं प्रयोग-

भेद से दुर्गाजी तथा उनके प्रतिरूपों पर लाल चन्दन का लेप अर्पित करने का विधान है।

- सिंदूर धनदायक भी होता है।
- हाथाजोड़ी पर सिंदूर चढ़ाकर पूजा करने से वह समृद्धि और सम्मोहन प्रदान करती हैं।
- सियारसिंगी पर चढ़ाया गया सिंदूर भी वशीकरण और सम्मोहन का प्रभाव उत्पन्न करता है।
- हनुमानजी की प्रतिमा पर चढ़ा हुआ सिंदूर माथे पर टीका के रूप में लगाने से ओज-तेज की वृद्धि होती है।
- गौरी (पार्वती) की प्रतिमा पर चढ़ाये गये सिंदूर को, धारण करने वाली महिलाएं सौभाग्य-सम्पन्न होती हैं। उसे वे पार्वतीजी का प्रसाद मानकर, उनकी कृपा की आकांक्षा रखती हैं।
- आयुर्वेद में सिंदूर के शोधन का विधान है। शोधित सिंदूर अनेक रोग-विकार दूर करता है। इसके विपरीत, यदि कोई व्यक्ति सादा (नित्य प्रयोग में आने वाला) सिंदूर खा ले (चाट ले) तो वह अनेक व्याधियों से ग्रस्त हो सकता है।
- सिंदूर भार में अधिक होता है, अतः पूजा या औषधि के लिए-हल्का सिंदूर कभी नहीं लेना चाहिए। वह नकली होने के कारण वाञ्छित प्रभाव नहीं दे पाता।

18. श्रीफल

सामान्य परिचय :

विभिन्न ग्रन्थों में बेल-फल, नारियल और अनार को 'श्रीफल' कहा गया है। परन्तु तन्त्र-शास्त्र में जिस विशिष्ट फल को 'श्रीफल' की संज्ञा दी गयी है, वह एक बहुत ही छोटा फल है। देखने में, यह बड़ी इलायची जैसा, रङ्ग में सफेद इलायची जैसा, रूपाकार में नारियल के फल जैसा होता है। इसके फल पर भी रेशे (जटाएं) होते हैं। टहनी की ओर इस पर भी तीन बिन्दु पाये जाते हैं। इस तरह यह नारियल का संक्षिप्त-संस्करण कहा जा सकता है। अन्तर केवल आकार और रङ्ग का होता है। बनावट बिल्कुल नारियल जैसी होती है। इसे मिनी 'कोकोनट' कह सकते हैं। अस्तु: 'श्रीफल' नामक यह फल भी समुद्रतट की उपज

है और तान्त्रिक-वस्तुएं बेचने वालों के पास आसानी से, बहुत कम दामों में मिल जाता है।

देखने में छोटा, उपयोग में नगण्य, मूल्यवत्ता में सामान्य, परन्तु प्रभाव में अद्भुत और गुणवत्ता में असामान्य यह फल, यदि विधिवत् प्रयुक्त किया जाय तो चमत्कारी प्रभाव दिखाता है।

तान्त्रिक-प्रयोग :

इसे किसी शुभ दिवस पर घर ले आयें और धो-पोंछकर, एकान्त-पवित्र स्थान में, कपड़े में लपेट कर रख दें। 'गुरुपुष्य' अथवा अन्य किसी अति शभ मुहूर्त्त में इसे लाल कपड़े पर रखें। (स्नान-पूजा के बाद पूरी पवित्रता से यह साधना करें) सिंदूर, कपूर, लौंग, छोटी इलायची चढ़ायें धूप-दीप दें और कोई मुद्रा (सिक्का) अर्पित करें! तदुपरान्त 7 या 9 या 11 माला मन्त्र-जप करें। फिर उसे किसी कटोरी में (कपड़े सहित) रख दें। उसकी नित्यप्रति देव-प्रतिमा की भाँति सिंदूर, धूप, दीप से पूजा करते रहें। कभी-कभी सिक्के भी चढ़ाते रहें। 'श्रीफल' की यह साधना द्रव्यदायी होती है। ऐसा विधिवत् पूजित 'श्रीफल' जहाँ भी रहता है—वहाँ लक्ष्मीजी की पूर्ण कृपा रहती है। धन, धान्य, सम्पदा की वृद्धि के लिए, यह प्रयोग बहुत ही सरल और प्रभावशाली है। इसका भी मन्त्र वही है—

'ॐ श्रीं श्रियै नमः।'

दूकान में रखें :

नवरात्रि के अवसर पर किसी दिन, या फिर अष्टमी के दिन, अपनी दुकान, प्रतिष्ठान, कार्यालय—जहाँ भी लेन-देन या कोई व्यवसाय होता हो, यह मन्त्र-सिद्ध 'श्रीफल' किसी सुरक्षित स्थान पर रख दें। उसे नित्य धूप-दीप दें और कोई सिक्का चढ़ाकर 7 बार मन्त्र-जप द्वारा स्तुति करें।

यह प्रयोग उस प्रतिष्ठान-दूकान की आर्थिक स्थिति में लाभकारी परिवर्त्तन कर देगा।

बक्स में रखें :

उपरोक्त विधि से 'श्रीफल' को यदि बक्स में रख लिया जाये, तो उसमें मुद्रायें बढ़ने लगती हैं। किन्तु यह तथ्य भी ध्यान में रखना चाहिए कि उस बढ़ती हुई राशि से कभी पैसे निकालें नहीं। निकालने से वृद्धि

रुक जाती है। सामान्य खर्चे के लिए अलग पैसे रखे रहें, परन्तु बक्स में रखे श्रीफल के पैसे कभी न लें, बल्कि उस पर कुछ न कुछ चढ़ाते रहें। यह प्रयोग अनुभूत है और चमत्कारी प्रभाव दिखाता है।

गोलक में रखें :

यदि आपको गोलक से प्रेम है, तो उसमें बड़ा छेद बनाकर पूजित शोधित 'श्रीफल' रख दें, तदुपरान्त गोलक का वह बड़ा छेद बन्द कर दें—केवल सिक्का डालने भर की दरार रह जाये।

गोलक को नित्य धूप-दीप दें और सुविधानुसार उसमें पैसे भी डालते रहें। इस प्रयोग से वह अपेक्षाकृत कम समय में ही भर जायेगी।

अन्न-भण्डार में :

अनाज के गोदाम (अन्न-भण्डार) में 'श्रीफल' रखने से वह कभी रिक्त नहीं होता, उसमें सदैव अन्न का ढेर लगा रहता है। यदि कीड़े-मकोड़ों, चूहों और आग-पानी से सुरक्षित रखा जा सके, तो अन्न का संग्रह सर्वश्रेष्ठ होता है—

धान्यानां संग्रहो राजनुत्तम सर्व संग्रहात्।
बुभुक्तं हि मुखे रत्नं न कुर्यात् प्राण धारणम्॥

19. नागदमन

सामान्य परिचय :

'वनस्पति-जगत्' में असंख्य पेड़-पौधे और लताएं प्राप्त होती हैं। सबका विवरण बता सकने वाला, आज तक कोई भी ग्रन्थ—संसार की किसी भी भाषा में नहीं रचा जा सका। कितने ही पौधे तो ऐसे हैं, जिन्हें हम साधारण मानकर, उपेक्षित किये रहते हैं, जब कि तथाकथित तुच्छ और अनुपयोगी पौधे अपने में स्वर्ण के समान मूल्यवान्, अमृत के समान आरोग्य गुण, और वज्र के समान, सुरक्षात्मक-शक्ति सँजोये रहते हैं। किन्तु अज्ञानवश, हम उनसे परिचित नहीं हैं, इसलिए उनका कोई उपयोग नहीं कर पाते।

'नागदमन' एक ऐसा पौधा है, जो अपनी हरियाली और दण्डा-

कार संरचना के लिए शोभायमान घोषित है, फलतः उसे हम शौक पूरा करने के लिए गमलों में लगा लेते हैं। इसके पत्ते छोटे, तनिक लम्बाई में, गोल, गहरे हरे रङ्ग के होते हैं। यह पौधा अपनी सीध में ऊपर की ओर बढ़ता है। इस की शाखाएं भी ऊर्ध्व-मुखी होती हैं। इसका एकमात्र आकर्षण इसकी हरीतिमा है, जो बारहों महीने समान रहती है। कहीं से भी उखाड़ कर इस पौधे की शाखा लगायी जा सकती है। यह एक सस्ता और सर्वसुलभ पौधा है। बहुत-से लोग इसे बाड़ के रूप में अपनी फुलवाड़ी या पार्क के किनारे-किनारे लगा देते हैं।

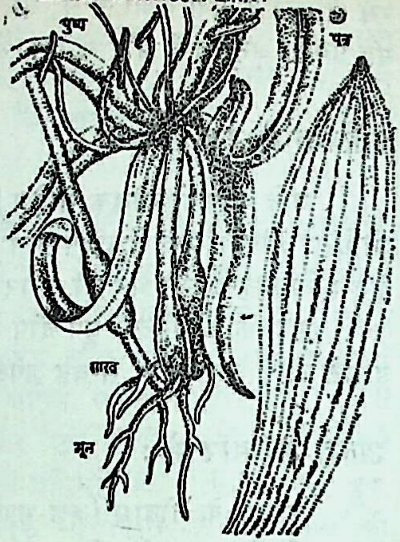
नागदमनी नं.१
CRINUM ASIATICUM LINN.

पर्यायवाची शब्द :

मान्यता है कि जहाँ यह पौधा होगा, वहाँ साँप नहीं आयेगा। साँप इसके वर्ण से, इसकी गन्ध से, और इसके अदृश्य प्रभाव से आतंकित रहता है। सर्प का दर्प-दमन करने की शक्ति से सम्पन्न होने के आधार पर ही इसे यह नाम 'नागदमन' दिया गया है। पर्यायवाची के रूप में इसके लिए ये शब्द भी प्रचलित हैं :—

नागपुष्पी, नागदमनी, सर्पदमन, वनकुमारी, महायोगेश्वरी आदि।

तान्त्रिक प्रयोग :

'रविपुष्य' योग के दिन 'नागदमनी की जड़' विधिवत् ले आयें। उसे धोकर साफ करें, फिर अन्य वानस्पतिक प्रयोग की भाँति इसकी भी पूजा करें। पूजा के समय अपने इष्टदेव का मन्त्र 11 माला जपें। यदि ऐसा कोई मन्त्र आपके पास नहीं है, तो शिवजी को स्वामी मानकर, उनकी स्तुति में शिव-मन्त्र का जप करें। शिव-मन्त्र का सरलतम रूप यह है :—

'ॐ नमः शिवाय।'

ग्यारह माला मन्त्र जपकर, सामान्य हवन-सामग्री से हवन करें।

आहुति देते समय भी उपर्युक्त मन्त्र पढ़ते रहें। हवन में कम से कम 51 अथवा 108 आहुतियाँ देनी चाहिए। आहुति के पश्चात् हवनकुण्ड के धुँए में इसे शोध लें, और फिर कहीं सुरक्षित रख दें। तान्त्रिक-प्रयोग के लिए यह परम उपयोगी होती है।

नागदमन की जड़ के कुछ तान्त्रिक-प्रयोग इस प्रकार बताये गये हैं–

मेधा-शक्ति बढ़ाने के लिए :

किसी-किसी व्यक्ति की बुद्धि मन्द होती है। वह न तो किसी बात को दूर तक सोच पाता है, न देर तक याद रख सकता है। उसकी स्मरण-शक्ति और धारणा-शक्ति बहुत क्षीण होती हैं। ऐसे लोगों को नागदमन का प्रयोग लाभकारी होता है। किसी 'रविपुष्य' के दिन—'नागदमन की जड़' लायें, उसे धोकर—धूप-दीप से पूजा करें। फिर, 'ऐं ह्रीं नमः' मन्त्र का 11 माला जप करके, वह जड़ किसी तावीज (कवच) के सहारे गले में पहन लें। यह प्रयोग बुद्धि का विकास करने में बहुत सक्षम होता है।

सम्मान और विजय-प्राप्ति के लिए :

समाज में, अपने वर्ग-विभाग में, संस्था और दल में, कहीं भी मान-सम्मान पाने की लालसा हो, तो 'नागदमन की जड़' उपर्युक्त विधि से धारण करें। सर्वत्र सम्मान और विजय-प्राप्ति की स्थिति बनी रहेगी। प्रतियोगिता, युद्ध, विवाद, प्रतिस्पर्धा आदि में यह प्रयोग साधक की पूरी रक्षा करता है।

ग्रह-दोष निवारण :

उपर्युक्त-विधि से 'सर्पदमन की जड़' धारण करने से समस्त प्रकार के ग्रहदोष तथा भूत-प्रेतादि की बाधा समाप्त हो जाती है।

धन-समृद्धि के लिए :

घर में 'नागदमन का पौधा' गमले में 'रविपुष्य' के दिन लाकर लगायें। साथ ही, पूर्वोक्त विधि से इसकी जड़ धारण करें। धनाभाव दूर हो जायेगा।

20. उदुम्बर

सामान्य परिचय :

भारतीय-वनस्पतियों में क्षीरद-वृक्षों को विशेष महत्त्व दिया गया है। यहाँ तक कि क्षीरद-घासें भी महत्त्वपूर्ण मानी गयी हैं। 'क्षीरद' शब्द

का अर्थ है—दूध देने वाली (क्षीर=दूध, द=देने वाली) अर्थात् वह वनस्पति (पेड़-पौधा), जिससे दूध निकलता हो। ऐसी वनस्पतियों (क्षीरद वर्ग—दूधिया पौधों) में प्रमुख हैं—बरगद, पीपल, कटहल, बड़हल, पाकर, गूलर, मदार और सेंहुड़ आदि। इनमें 'गूलर' नामक वृक्ष एक सर्वसुलभ पेड़ है, जो कहीं भी देखा जा सकता है। आम-नीम की तरह अधिक तो नहीं, फिर भी हर गाँव या उसके आस-पास कहीं न कहीं एकआध गूलर का पेड़ अवश्य प्राप्त होता है। यह भारी-भरकम होता है। इसकी लकड़ी जल में सड़ती नहीं, अतः कुआँ बनवाने वाले लोग ईंटों की दीवार खड़ी करने के पूर्व आधार रूप में नींव के स्थान पर गूलर की लकड़ी का एक गोल पहिया जैसा बिठा देते हैं। उसी के ऊपर ईंटें जमाकर गोलाकार दीवार खड़ी की जाती है। इस प्रकार नींव में पड़ी गूलर की वह लकड़ी दशाब्दियों तक पानी में पड़ी रहने पर भी सड़ती नहीं। इसी गूलर वृक्ष को 'उदुम्बर' कहते हैं।

'गूलर' में झरबेरी के बराबर फल लगते हैं जो क्रमशः बढ़ते हुए नींबू के बराबर तक हो जाते हैं। ये फल कच्ची अवस्था में हरे और पकने पर लाल हो जाते हैं। पके फल मीठे, पौष्टिक, ठण्डे और पाचक होते हैं। किन्तु एक कठिनाई भी होती है। प्रायः गूलर के फलों में छेद करके, छोटे-छोटे, उड़ने वाले पतिंगे (भुनगे) घुस जाते हैं, जो उसका रस चूसा करते हैं। अतः गूलर खाने वालों को यह सावधानी बरतनी पड़ती है कि वे छेददार फल न लें। और कोई भी फल (गूलर) खाने के पहिले, उसे तोड़कर भीतर भली-भाँति देख लें कि कोई पतिंगा तो नहीं बैठा है? कच्चे गूलर में पतिंगे नहीं होते। उसको सब्जी तथा अन्य अनेक खाद्य पदार्थों के रूप में (पकौड़ी आदि) लोग बड़े चाव से खाते हैं।

तान्त्रिक प्रयोग :

'गूलर' को तन्त्र-साधना में महत्त्वपूर्ण घटक माना गया है। यहाँ उसके कुछ प्रयोग लिखे जा रहे हैं :—

दत्त-साधन में :

'गूलर' की लकड़ी हवन में प्रयुक्त होती हैं। दत्त-साधना (भगवान दत्तात्रेय की उपासना) में गूलर-वृक्ष के नीचे जप करने, हवन में 'गूलर' की लकड़ी प्रयोग करने का विधान है।

धन-वर्द्धक प्रयोग :

'रविपुष्य' के दिन, प्रात: शुभ मुहूर्त्त में, पूर्व-निमन्त्रण के अनुसार उदुम्बर-मूल (गूलर की जड़) ले आयें । घर लाकर, इसे विधिवत् स्नान करायें और धूप-दीप से उसकी पूजा करें । पूजनोपरान्त निम्नलिखित मन्त्र का 11 माला जप करें :—

'ॐ ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ।'

जप के पश्चात् यही मन्त्र पढते हुए, 21 आहूतियाँ देकर हवन करें और एक ब्राह्मण, बालक या बालिका को भोजन-दक्षिणा दें । तदुपरान्त उक्त जड़ को लाल कपड़े को बाँधकर, यही मन्त्र पढ़ते हुए, बक्स या तिजोरी में रख दें । ध्यान रहे कि जड़ की पूजा करते समय, उस पर कोई सिक्का भी चढ़ाना चाहिए । कपड़े में लपेटते समय उस पन—सिंदूर, कपूर, लोंग, इलायची, सिक्का आदि सभी वस्तुएं ज्यों की त्यों चढ़ी रहनी चाहिएं । इन्हें हटायें नहीं, कपड़े में लपेट दें ।

यह पोटली चाहे पूजा-स्थल में रखें और नित्य धूप-दीप दें, चाहे बेवस, तिजोरी आदि में रखें । यह पोटली—जिस घर में रहेगी वहाँ धन-सम्पत्ति की निरन्तर वृद्धि होती रहेगी । सुविधा-सामर्थ्य हो तो उस जड़ को कपड़े में लपेट कर—चाँदी या ताँबे के ताबीज में भरकर रखें । यह ताबीज पहनने या पास रखने से साधक को कभी धनाभाव नहीं होता । यह बहुत ही सरल और सहज-सुकर प्रयोग है । आस्थावान् जन, विधिवत् इसकी साधना से लाभ उठा सकते हैं ।

सन्तान-सुख :

जिन घरों में सन्तान न होती हो, या होकर जीवित न रहती हो, या रोगी रहती हो, या उपद्रवी-स्वभाव की हो, तो गूलर की जड़ उपर्युक्त विधि से लाकर पूजें और घर में कहीं सुरक्षित रखकर, नित्य उसे धूप-दीप देते हुए सन्तान-सुख की याचना करें । प्रत्येक कार्य के लिए, उक्त मन्त्र का जप आवश्यक है । इस प्रयोग से सन्तान-सुख अवश्य प्राप्त होता है ।

प्रेम और सम्मोहन के लिए :

समाज में उपेक्षित, प्रणय में असफल, यश और प्रतिष्ठा तथा स्नेह के इच्छुक जन (यदि वास्तव में स्वभाव-चरित्र की दृष्टि से सौम्य और सभ्य, शिष्ट हैं) इस जड़ी के द्वारा निश्चित रूप में लाभान्वित हो सकते

हैं । विधि वही पूर्वोक्त है—'रविपुष्य' योग में 'उदुम्बर की जड़' लायें, उसकी पूजा करें, तदुपरान्त उसे चन्दन की भाँति घिसें और वह लेप माथे पर लगायें । ऐसा लेप (माथे पर लगाया गया तिलक) व्यक्ति में कुछ ऐसा प्रभाव उत्पन्न कर देता है कि वह समाज-परिवार-पड़ोस में, सर्वत्र प्रेम-प्रशंसा और स्नेह का पात्र हो जाता है ।

सुख-शान्ति के लिए :

पूर्व-वर्णित विधि से प्राप्त और पूजित 'उदुम्बर-मूल' को घर में देव-प्रतिमा की भाँति स्थापित करें । (कहीं रख दें) और नित्य धूप-दीप से, मन्त्र जप से पूजन करते रहें ।

यह प्रयोग घर में सर्व प्रकार से मङ्गलदायी होता है । सुख, शान्ति, शुचिता और समृद्धि के लिए यह बहुत सहज और सर्वसाध्य प्रयोग है । इसे ग्रामीण-जन, सामान्य गृहस्थ भी सरलता से कर सकते हैं ।

दत्त-साधना :

भगवान दत्तात्रेय को त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) का संयुक्त रूप माना जाता है । दत्त भगवान की उपासना बहुत जल्दी और निश्चित फल देती है । इसके लिए या तो किसी रविपुष्य के दिन गूलर वृक्ष की जड़ ले आयें, या उत्तम यही होगा कि किसी 'गुरुपुष्य' योग के दिन से, गूलर-वृक्ष के नीचे जाकर, वहाँ दत्तमन्त्र का जप करें । जप के पूर्व वहाँ स्थान बना लें । स्वच्छन्दतापूर्वक, लिपे-पुते स्थान में बैठें । मुख ठीक पेड़ के सामने हो, यह भी ध्यान रहे—साधक को उत्तर या पूर्व की ओर मुँह करके बैठना चाहिए । दत्त-यन्त्र या दत्त भगवान की प्रतिमा का पूजन करें । तदुपरान्त यह मन्त्र जपें—'**ॐ द्रां दत्तात्रेय नमः** ।' पूजा में प्रतिमा पर श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प और केतकी गन्ध (केवड़ा का इत्र) भी चढ़ायें । 21 दिनों की नियमित-साधना से चमत्कारी लाभ होता है ।

21. पीपल

सामान्य परिचय :

पीपल एक सर्वज्ञात, सर्वत्र सुलभ, बिना किसी पोषण के स्वयं ही विशालकाय हो जाने में समर्थ और हिन्दूधर्म में चिर-प्राचीन-काल से पूज्य एक ऐसा वृक्ष है, जिसके साथ शताधिक मान्यताएं, विश्वास, अन्ध-विश्वास, लोक-कथाएं और पूजन-विधान प्रचलित हैं ।

यह वृक्ष बरगद और पाकर-गूलर की जाति का है । किन्तु इसके फूल सबसे छोटे होते हैं । यह फल मूँगफली के छोटे दाने के बराबर होता है, जो बरगद-गूलर की भाँति बीजों से भरा होता है । ये बीज राई के दाने के आधे आकार में होते हैं । परन्तु इनसे उत्पन्न वृक्ष विशालतम रूप धारण करके, सैंकड़ों वर्षों तक खड़ा रहता है ।

पीपल की छाया बरगद से कम होती है, फिर भी इसके पत्ते अधिक सुन्दर, कोमल और चञ्चल होते हैं । नाममात्र की वायु में भी ये दोलायमान हो उठते हैं । अन्य किसी पेड़ के पत्ते इस तरह नहीं हिलते-काँपते, जैसे पीपल के पत्ते थरथराते हुए हिलते रहते हैं । 'रामायण' में—राजा दशरथ की मन:स्थिति के वर्णन में दोलायमान पीपल-पत्र की उपमा दी गयी है :—

'पीपर पात सरिस मन डोला ।'

बसन्त ऋतु में पीपल की नयी कोंपलें धानी रङ्ग की चमक से बहुत ही शोभायमान लगती है । बाद में, वह हरा और फिर गहरा हरा हो जाता है ।

पीपल के पत्ते जानवरों को चारे के रूप में खिलाये जाते हैं, और लकड़ी ईंधन के काम आती है । वैसे, हिन्दूधर्म की मान्यता है कि पीपल का वृक्ष (डाल, पत्ते, टहनी, तना—कुछ भी) काटना नहीं चाहिए । ब्राह्मणों में इस वर्जना को विशेष मान्यता प्राप्त है । यद्यपि अपने आप गिरे हुए, टूटे-फूटे वृक्ष की लकड़ी ईंधन के काम में लायी जाती है । तथापि, यह वृक्ष पवित्र माना जाता है और इसे तोड़ने, काटने, जलाने वाले लोग, भय, शङ्का, वर्जना, अमङ्गल की दुष्कामना से प्रभावित रहते हैं ।

जहाँ तक काष्ठोपयोग की बात है, पीपल की लकड़ी किसी भी इमारती काम या फर्नीचर के लिए अनुकूल नहीं होती । होली या भट्टी में जलाने के अलावा, इसे लोग चूल्हे में जलाते भी भय-शङ्का में पड़ जाते हैं । कारण कि यह पेड़ 'देव-वृक्ष' कहा जाता है । इस पर देवताओं का वास माना जाता है । और देवता चाहे न भी रहते हों, परन्तु इस वृक्ष पर भूत, प्रेत, पिचास और बेताल आदि का तथा डाकिनी-शाकिनी का निवास अवश्य माना जाता है । 'ब्रह्मराक्षस' नाम का प्रेतयोनि प्राणी (ब्रह्मराक्षस) प्रचलित मान्यता के अनुसार पीपल के पेड़ पर निवास करता है ।

कारण चाहे जो भी हो, चाहे कोई वैज्ञानिक -दुष्प्रभाव हो अथवा यह सब आध्यात्मिक निषेध, पीपलवृक्ष के नीचे रात में कोई सोता नहीं। पीपल-तले लघुशङ्का और अन्य कोई अशुद्ध, घृणित, अपवित्र कार्य करना मना है। ऐसा कई बार सुनने-पढ़ने में आया है कि अमुक व्यक्ति ने पीपल के पेड़-तले लघुशङ्का करदी और उसी शाम घर पहुँचते-पहुँचते वह गंभीर रूप में, किसी अज्ञात बीमारी का शिकार हो गया। ऐसे लोग ज्वर, उन्मत्तता, भ्रम, मूर्च्छा और ऐसी ही अन्य मनो-व्याधियों से ग्रस्त हो जाते हैं। पीपल का वृक्ष पवित्र, पूज्य, देव स्थान माना जाता है, साथ ही—प्रेतों का निवास भी होने के कारण यह आतंक का पर्याय कहा जाता है। शुभ और अशुभ दोनों तरह के कृत्य इसकी छाया में सम्पादित होते हैं।

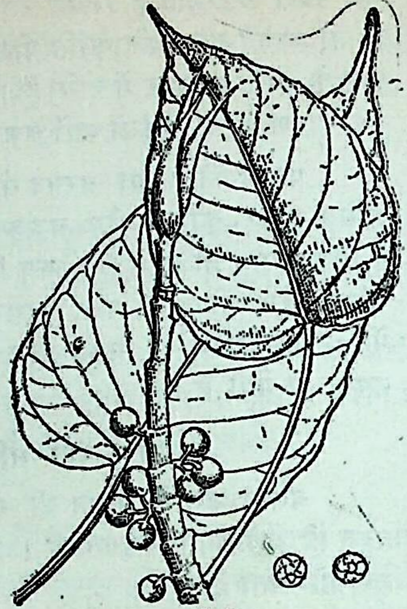

पहाड़ी पीपल
FICUS ARNOTTIANA MIQ.

यज्ञ-हवन, पूजा-पाठ, पुराण-कथा आदि के लिए पीपल की छाया श्रेष्ठ मानी गयी है। इसी तरह पीपल के नीचे मृतक का दशगात्र विधान (क्रिया-कर्म, पिण्डदान आदि) पूरा करने का प्रचलन है। हिन्दूधर्म में क्रिया-कर्म के पश्चात्, भूतात्मा की शान्ति के लिए, पीपल के वृक्ष में घट बाँधने और सायंकाल उस पर दीपक जलाने का नियम है। इस विवेचन से सिद्ध होता है कि 'पीपल' वृक्ष को हमारे हिन्दू-समाज में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है और यह असंदिग्ध रूप में पवित्रता का प्रतीक माना जाता है।

तन्त्र-साधना में पीपल का महत्त्व :

नवग्रहों में 'शनि' सर्वाधिक पीड़क होता है। शास्त्रों में लिखा है कि शनि-पीड़ा से त्राण पाने के लिए 'पीपल' पर जल चढ़ाना चाहिए। यही नहीं, शनिवार की संध्या को पीपल के नीचे बैठकर दीपक जलाना

और पश्चिमाभिमुख होकर शनि की पूजा करना भी परम लाभकारी होता है।

भूत-प्रेत, भैरव आदि की साधना :

देव-वर्ग से इतर प्रेतयोनि वाली शक्तियों, वैताल, भैरव आदि तथा यक्षिणी-साधना के लिए पीपल की छाया, पीपल के पास (जड़ के पास) बैठना, अनिवार्य होता है।

और कुछ न करें, पीपल के वृक्ष पर नित्य, स्नानोपरान्त एक लोटा जल चढ़ाते रहें, तो भी उसमें निवास करने वाली अदृश्य आत्मा (प्रेतयोनि) तृप्त होकर सहायक बन जाती है।

देवोपासना और पीपल :

कितने ही मन्दिर पीपल-वृक्ष के पास बने होते हैं। कभी-कभी मन्दिर के पास पीपल स्वतः उग आता है। इसके विपरीत कभी-कभी श्रद्धालु-जन पीपल के नीचे जड़ के पास स्थान बनाकर, कुछ मूर्तियाँ स्थापित कर देते हैं। इस तरह पीपल-वृक्ष और मूर्तियाँ--दोनों की पूजा होने लगती है।

यह भी एक बहु अनुभूत सत्य है कि पीपल की सेवा करने वाले व्यक्ति किसी न किसी चमत्कारिक ढङ्ग से लाभान्वित अवश्य होते हैं।

दरिद्र-निवारण के लिए :

पीपल-वृक्ष के नीचे शिव-प्रतिमा स्थापित करके, नित्य उस पर जल चढ़ायें और पूजन-अर्चन करें। कम से कम 5 या 11 माला मन्त्र का जप (ॐ नमः शिवाय) करें। कुछ दिन की नियमित-साधना से परिणाम सामने आ जाता है। प्रतिमा को धूप-दीप से शाम को भी पूजना चाहिए, दिन में तो चन्दन पुष्प और अक्षत आदि का प्रयोग होता ही है।

हनुमानजी के दर्शन :

पीपल वृक्ष के नीचे नियमित रूप से बैठकर, हनुमानजी का पूजन स्तवन, मङ्गलवार का व्रत, रात्रि में एकान्त शयन, ब्रह्मचर्य और मन्त्र का नियमित-जप (ॐ ह्रीं हनुमते रामदूताय नमः) करने से हनुमानजी के दर्शन हो जाते हैं। परन्तु इस साधना में साधक को आस्थावान्, साहसी, ब्रह्मचारी, संयमी और सात्त्विक होना चाहिए। हनुमानजी स्वप्न में अथवा प्रत्यक्ष में आकर दर्शन अवश्य देते हैं।

22. बरगद

सामान्य परिचय :

भारतीय संस्कृति में 'पीपल' सवसे दीर्घायु, विशालकाय, स्वयं-जीवी और घनी छाया वाला वृक्ष है। यद्यपि यह भी पीपल-पाकर वर्ग का वृक्ष है, तथापि इसमें अन्य वृक्षों से कई बातों का मौलिक और बहुत बड़ा अन्तर है।

'बरगद' अथवा 'वट' हिन्दू-संस्कृति में पूज्य वृक्ष हैं। इसके नाम पर सुहागिनी स्त्रियाँ 'वट-सावित्री' पूजन करती हैं। यह उनके लिए अक्षय-सौभाग्यदायी माना जाता है। और भी कई प्रकार के पूजन-विधान तथा तान्त्रिक-प्रयोग वट-वृक्ष के सम्बन्ध में प्राप्त होते हैं।

'बरगद' की लकड़ी सिवा जलाने के और किसी काम नहीं आती। इसके पत्तों की छाया बहुत घनी होती है। पत्तों को लोग पशुओं को चारे के रूप में भी देते हैं। इसके पत्ते कड़े मजबूत होते हैं, अत: गाँवों के नाई-बारी इनसे दोना-पत्तल भी बनाते हैं।

FICUS BENGALENSIS LINN.

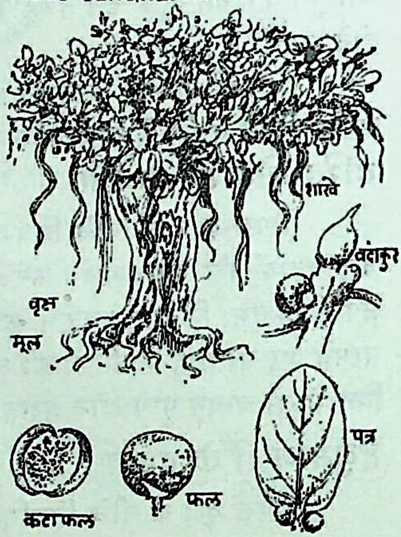

बरगद का पौधा आसानी से तैयार हो जाता है। इसकी हरी डाल काटकर, कहीं भी गाड़ दें, वृक्ष के रूप में पर्याप्त छाया और लकड़ी देने के लिए तैयार हो जायेगी।

यह भी वहुत पवित्र वृक्ष है। मान्यता है कि भगवान कृष्ण (विष्णु) वाल-रूप में, वरगद के पत्ता पर, अकेले लेटे, क्षीरसागर की तलहटी में, अपना अँगूठा सूचते रहते हैं। महाप्रलय के पश्चात्, जव समस्त पृथ्वीमण्डल जलमय हो जाता है—भगवान विष्णु का विराट रूप, एक छोटे शिशु के रूप में 'वट-पत्र' पर लेटा, सागरतल में शयन करता रहता है। 'वट-वृक्ष' का नाश नहीं होता, कहीं न कहीं वह अवश्य पाया

जाता है। कुछ ऐसे भी 'वट-वृक्ष' हैं, जो अनादि-काल से, पृथ्वी पर उपस्थित माने जाते हैं। इन्हें 'कल्पवृक्ष' या 'अक्षयवट' कहते हैं। प्रयाग और उज्जैन में तो ऐसे एक-एक 'वटवृक्ष' आज भी खड़े हैं, जिन्हें, स्थानीय-जनता ही नहीं, इतिहास और संस्कृति के मर्मज्ञ विद्वान् भी बहुत प्राचीन होने के नाते 'अक्षयवट' कहते हैं। इसके पत्ते पर श्रीकृष्ण के शयन का, उनकी बाल-सुलभ छवि का वर्णन इस श्लोक में देखें :—

करारविन्देन पदारविन्दं,
मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं,
बालंमुकुन्दं मनसाऽस्मरामि ॥

तान्त्रिक प्रयोग :

● रविपुष्य के दिन बरगद की जटा (बरोह) ले आयें। उसे सुखाकर कूट लें और कपड़छन करके रख लें। यह चूर्ण दाँतों पर मलने से अनेक प्रकार के मुख-रोग दूर हो जाते हैं।

● वट की जटा (हरी-ताजी) लाकर, उसकी दातून की भाँति प्रयोग करें। समस्त दन्त-रोग मिट जायेंगे।

● त्यागी, सन्यासी, साधु, वनवासी, विरक्त बनने के पूर्व, गृहस्थाश्रम का परित्याग करने के पश्चात्, वटक्षीर (बरगद का दूध) बालों में लगाकर जटाएं बनाते हैं। तपस्या के लिए सिर पर जटाजूट का होना भी एक नियम है।

धन-वृद्धि के लिए :

बरगद के फल टूट-टूटकर गिरते रहते हैं। उनमें से ही कभी-कभी कोई बीज उग आता है। 'पीपल' की अपेक्षा बरगद के पेड़ कम उगते हैं। यदि आपको किसी बरगद के तले, उसकी छाया के क्षेत्र में, वट-बीज से उत्पन्न कोई पौधा दीख जाए (हालाँकि यह बहुत दुर्लभ संयोग है—अलभ्य जैसा, फिर भी यदि प्राप्त हो ही जाये), तो उसे रविपुष्य के दिन विधिवत् ले आयें और उसकी पूजा करके, कहीं दरवाजे या फुलवाड़ी में लगा दें। यह पौधा जिस गति से बढ़ेगा, तदनुसार ही साधक की सम्पन्नता भी बढ़ती जायेगा।

बरगद का बाँदा :

'बाँदा प्रकरण' में इसका उल्लेख किया जा चुका है। अतः पुनरुक्ति से बचने के लिए दुबारा नहीं लिखा जा रहा है।

अन्य प्रयोग :

बरगद के कई तान्त्रिक प्रयोग और भी हैं। वर्णन-क्रम से उनका उल्लेख यथा-स्थान किया गया है। आवश्यकतानुसार देख सकते हैं।

23. विजया

सामान्य परिचय :

विजया के सभी लोग परिचित हैं। प्रचलित भाषा में इसे 'भाँग' कहते हैं। यह एक मादक-वनस्पति है। नशे के शौकीन लोग इसका दैनिक-सेवन करते हैं। यह मादक होकर भी सौम्य और स्मृति-वर्द्धक होती है। भगवान शिव को तो यह इतनी अधिक प्रिय है कि वे अपनी पत्नी भवानी जैसा अनुराग-स्नेह इस पर भी रहते हैं। इसी कारण इसे 'भङ्ग-भवानी' भी कहा जाता है। देवतावर्ग इसे व्यंग्योक्ति में 'शम्भु-प्रिया' भी कहता है। इसके सर्वाङ्ग में मादकता होती है, और लोग पत्तियों को चबाकर (पीसकर गोली या शर्बत के रूप में भी सेवन करके) नशे में हो जाते हैं। अधिक मात्रा में सेवन कर लेने पर यह निद्रा, अवसन्नता और जड़ता उत्पन्न करती है, और व्यक्ति अपनी चेतना गँवा बैठता है। यों सामान्य रूप से इसको कुछ विशेष घटकों के साथ (बादाम, कालीमिर्च, सौंफ, इलायची, मुनक्का, गुलाब, केसर और दूध-शक्कर) पीसकर थोड़ी मात्रा में, पीने से बहुत लाभ होता है। यह मेधा-बर्द्धक, पौष्टिक और ओज-प्रदायक पेय है। किन्तु यह तभी लाभकारी होता है, जब व्यक्ति को खाने-पीने की सुविधा हो। दूध, घी, मलाई, भ्रमण, वायु-सेवन, व्यायाम, शान्ति और सत्सङ्ग, यह इन्हें सुलभ हो— उन्ही को भाँग का सेवन हितकर होता है। आज की अभावग्रस्त परिस्थितियों में, जब कि नमक-रोटी का भी जुगाड़ कठिन ही है, कोई भी नशा हानिकारक है। अत: भाँग का प्रयोग बहुत सावधानी से, अपनी सामर्थ्य को देखते हुए ही करना चाहिए। केवल नशे में 'मस्त' हो जाने के लिए भाँग का (किसी भी मादक-पदार्थ का) सेवन उचित नहीं है। अस्तु, तान्त्रिक-विधि से यदि भाँग का सेवन किया जाय, तो उसका चमत्कारी-प्रभाव सामने आता है। ऐसे प्रयोगों में, यदि पूर्व-वर्णित विधि से भाँग प्राप्त की जाय, तो निश्चित लाभ होता है। चूंकि यह सरकारी-प्रतिबन्ध में है, अत: ठेके (दुकान) से किसी शुभ-दिन में लाकर, शेष-

नियमों की पूर्त्ति घर में कर लेनी चाहिए। भाँग के कुछ विशिष्ट तान्त्रिक-प्रयोग (विजयाकल्प) यहाँ प्रस्तुत हैं। जिज्ञासु और आस्थावान् साधक इससे लाभ उठा सकते हैं :—

- चैत के पूरे महीने भर यदि भाँग की पत्ती स्वल्प मात्रा में घटकों (सौंफ,बादाम, मुनक्का-कालीमिर्च, इलायची, गुलाब, केसर और दूध-शक्कर) के साथ पीसकर एक गिलास पेय पी लिया जाय तो मस्तिष्क का नाड़ी-संस्थान स्वस्थ-सबल हो जाता है। किन्तु इस प्रयोग में मादकता-प्राप्ति की लालता से भाँग की मात्रा अधिक नहीं कर देना चाहिए। वरन् औषधि के रूप में केवल 1 माशा (8 रत्ती भाँग) का प्रयोग लाभकारी होता है। मेधा-शक्ति को बढ़ाने (धारणा-चिन्तन, कल्पना, स्मरण-शक्ति की वृद्धि) में यह प्रयोग बहुत ही प्रभावशाली सिद्ध होता है।

भांग व गांजा
CANNABIS SATIVA LINN.

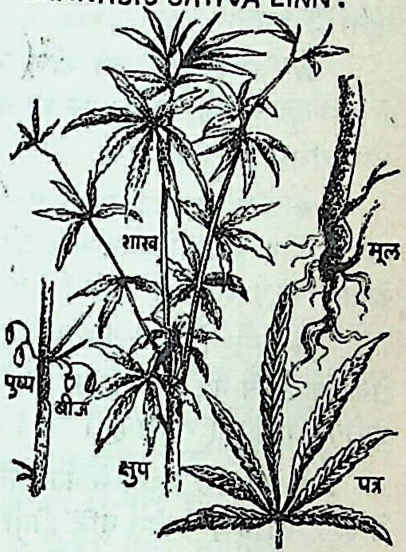

- उपरोक्त विधि से, यदि कोई व्यक्ति पूरे वैशाख महीने भर भाँग का सेवन करे, तो उसका रक्त और स्नायु-संस्थान विष के दुष्प्रभाव से मुक्त रहता है। खाने-पीने वाली वस्तुओं की विषाक्तता इस प्रयोग से नष्ट हो जाती है।

- जेठ के महीने भर विजया-पेय (उपरोक्त घटकों के साथ बनाया गया शर्बत) नित्य सेवन करने से (प्रातः सूर्योदय के पूर्व ही) शारीरिक-कान्ति, सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

- आषाढ़ के महीने में विजया का सेवन केश-कल्प कर देता है। इस प्रयोग में विजया को पेय रूप में न लेकर, चित्रक के साथ चूर्ण रूप में प्रयोग करना चाहिए।

- शिवलिङ्गी के बीज और विजया, पूरे सावन भर घोटकर पीने

से (चूर्ण भी लिया जा सकता है, किन्तु पेय में ताजगी रहती है) शरीर पुष्ट होता है और शक्ति में वृद्धि होती है ।

● रुद्रदन्ती और भाँग को एक साथ पीसकर (पेय, गोली या चूर्ण के रूप में) पूरे भादों के महीने भर सेवन करने से मन-मस्तिष्क को शान्ति मिलती है । मानसिक-तनाव दूर करने में यह प्रयोग बहुत लाभकारी रहता है ।

● विजया की पत्ती और ज्योतिष्मती (मालकाँगनी) एक साथ पीसकर कुआर के महीने भर सेवन करने से शरीर नीरोग, कान्तियुक्त और बलिष्ठ हो जाता है ।

● ठीक यही प्रभाव (कुआर महीने वाला) तब भी होता है, यदि कार्तिक के महीने भर भाँग की पत्ती (सम्भव हो, तो समस्त घटकों के साथ ही) बकरी के ताजे दूध के साथ सेवन की जाय ।

● अगहन के महीने में विजया-चूर्ण—घी-शक्कर के साथ नित्य सेवन करने से नेत्रों की सुरक्षा होती है । अनेक प्रकार के नेत्र-रोगों में यह प्रयोग लाभकारी रहता है ।

● पौष के महीने में काले-तिल और विजया-पत्ती का सेवन करने से दृष्टि-शक्ति में पर्याप्त वृद्धि होती है ।

● माघ के महीने में नागरमोथा की जड़ के चूर्ण में, विजया-चूर्ण मिलाकर सेवन करना चाहिए । इस प्रयोग से शरीर पुष्ट होकर, बल और कान्ति की वृद्धि होती है ।

● फाल्गुन के पूरे महीने आँवले के चूर्ण अथवा रस के साथ भाँग का सेवन (दोनों को एक में मिलाकर) करने से शरीर का सम्पूर्ण नाड़ी-जाल (स्नायु-तन्त्र) सतेज हो जाता है । वात और रक्त के समस्त अवरोध दूर हो जाते हैं । इस प्रकार व्यक्ति में अद्भुत स्फूर्ति आ जाती है । शरीर की सक्रियता और गतिशीलता बढ़ाने में यह प्रयोग चमत्कारी प्रभाव दिखाता है ।

बारह महीनों तक विभिन्न अनुपानों के साथ विजया का सेवन 'विजया-कल्प' कहलाता है । यदि कोई स्वस्थ व्यक्ति पूरे वर्ष तक इन अनुपान भेदों के आधार पर, नियमित रूप से, विजया-कल्प का प्रयोग करे, तो वह निश्चय ही स्वस्थ-सबल, तन-मन का स्वामी बन सकता है ।

24. सहदेवी

सामान्य परिचय :

'सहदेवी' अथवा 'सहदेई' एक सुलभ वनस्पति है। ग्रामीण-क्षेत्रों में इसका पौधा आसानी से मिल जाता है। अज्ञानवश लोग इसे सामान्य घासफूस की श्रेणी में मानते हैं, किन्तु तान्त्रिक-दृष्टि से यह बहुत ही लाभप्रद और अद्भुत गुणों से सम्पन्न अमूल्य वनस्पति है। तन्त्र-शास्त्र में इसकी महिमा का बखान करते हुए अनेक प्रकार के लोकोपकारी प्रयोग वर्णित हैं। निम्नाङ्कित विधि से 'सहदेवी' का पौधा प्राप्त करके उसके प्रभाव का लाभ उठाया जा सकता है :—

सर्वप्रथम किसी 'रविपुष्य-योग' में सहदेवी का पौधा घर ले आयें। यहाँ यह बात ध्यान रखने की है कि पूर्व-वर्णित विधि के अनुसार, पौधे को एक दिन पहले (शनिवार की शाम को) विधिवत् निमन्त्रण दे आना चाहिए। फिर दूसरे दिन प्रातः (रविपुष्य-योग में) पौधे के समक्ष जाकर, उस पर मन्त्र पढ़ते हुए जल चढ़ायें। तत्पश्चात् मन्त्र पढ़ते हुए ही उसे समूचा उखाड़ लें, और घर ले आयें। घर लाकर, उसे देव-प्रतिमा की भाँति पञ्चामृत से स्नान कराकर, शुद्ध आसन पर रखें और धूप-दीप आदि से पूजा करके निम्नलिखित मन्त्र को 21 बार जपते हुए, पौधे की स्तुति करें। प्रातः पौधे के पास जाने से लेकर, पूजा समाप्ति तक साधक को सर्वथा मौन रहना चाहिए। यथा-सम्भव एकान्त भी रहे, कारण कि दूसरे की उपस्थिति से—तन्मयता भङ्ग हो जाती है। साथ ही लोगों की अशुभ-दृष्टि से साधना में विघ्न भी आ जाता है। अस्तु, मन्त्र-जप के बाद पौधे को आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाना चाहिए। चाहे तान्त्रिक-प्रयोग के लिए हो, चाहे आयुर्वेदिक (औषधीय) प्रयोग के लिए। यदि पौधे को विधिवत् (उपरोक्त तान्त्रिक-पद्धति से, रविपुष्य-योग में) प्राप्त किया जाय, तो निश्चय ही उसमें चमत्कारी और अचूक प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। पञ्चामृत से स्नान कराकर, पूजनोपरान्त पौधे को शक्ति सम्पन्न बनाने के लिए इक्कीस बार जपने का मन्त्र यह है :—

मन्त्र—'ॐ नमो रूपावर्ती सर्वप्रोतेति श्री सर्वजनरञ्जनी सर्वलोक-वशकरणी सर्वसुखरञ्जनी महामाईल घोल थी कुरु कुरु स्वाहा।'

इस प्रकार तन्त्रोक्त-विधि से प्राप्त और पूजित सहदेत्री का पौधा अनेक दिव्य गुणों से सम्पन्न हो जाता है। प्रयोग भेद से उससे बहुविधि

लाभ उठाया जा सकता है। ऐसा मन्त्राभिषिक्त पौधा धन-सम्पत्तिदायक होता है। किसी भी मुहूर्त्त में उस पौधे के निम्न प्रभावों की अनुभूति की जा सकती है :—

● पौधे की जड़ को लाल वस्त्र में लपेट कर तिजोरी, अन्न-भंडार आभूषण-पेटिका अथवा अन्य किसी सम्पत्ति के साथ रखने से उसमें वृद्धि होने लगती है।

● जड़ को गङ्गाजल में घिसकर, नेत्रों में अञ्जन की भाँति लगाने से दृष्टि में सम्मोहक प्रभाव उत्पन्न हो जाता है।

● यदि कोई स्त्री प्रसव-वेदना से व्याकुल हो, तो उस जड़ को तेल में घिसकर, स्त्री की जननेन्द्रिय पर लेप करने, अथवा जड़ को लाल धागे के सहारे कमर में बाँध देने से, वह पीड़ा-मुक्त हो जाती है।

● तन्त्र-सिद्ध सहदेवी का समूचा पौधा (पञ्चाङ्ग) सुखाकर, कूटकर चूर्ण बनायें। इस चूर्ण को गो-घृत के साथ मासिकधर्म के पाँच दिन पूर्व से, पाँच दिन बाद तक नियमित रूप से सेवन करने वाली स्त्री को— सन्तान-लाभ होता है।

● पान में, उक्त पौधे के पञ्चाङ्ग का चूर्ण, अभीष्ट व्यक्ति को खिलाने से वह वशीभूत हो जाता है।

● बच्चों के गले में 'सहदेवी' की जड़ को तावीज की तरह पहिनाने से कण्ठमाला-रोग दूर हो जाता है।

● तन्त्र-सिद्ध सहदेवी-पौधे के पञ्चाङ्ग को पीसकर, उसको माथे पर तिलक की भाँति लगाने से मान-प्रभाव की वृद्धि होती है। सामाजिक-सम्मान प्राप्त कराने में यह प्रयोग बहुत लाभदायक रहता है।

● और कुछ न करके, यदि उस मन्त्राभिषिक्त-पौधे का प्रतिदिन पूजन-दर्शन किया जाय, तो भी बहुत कल्याणकारी होता है।

25. अपामार्ग (ओंगा)

सामान्य परिचय :

अपामार्ग (ओंगा) एक सर्वसुलभ पौधा है यह बरसात में उगता है, और जाड़े में पकता है। वैसे इसकी जड़ बारहों महीने हरी रहती है, और इस तरह एक पौधा कई वर्ष तक बराबर पनपता रहता है। इसे 'लटजीरा' या 'चिरचिटा' भी कहते है। तन्त्र-ग्रन्थों और आयुर्वेद में इसे

'अपामार्ग' कहा गया है । यह तो जातियों में मिलता है—लाल और सफेद ! इसके प्रयोग से दैनिक-जीवन की कितनी ही आवश्यकताएं पूरी हो सकती हैं । तन्त्र-शास्त्र में उसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि किसी 'रविपुष्य-योग' अथवा अन्य किसी शुभ-मुहूर्त्त में इसका पौधा लाकर, उसे विधिवत् शुद्ध करके रख लें । फिर उसका आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता है ।

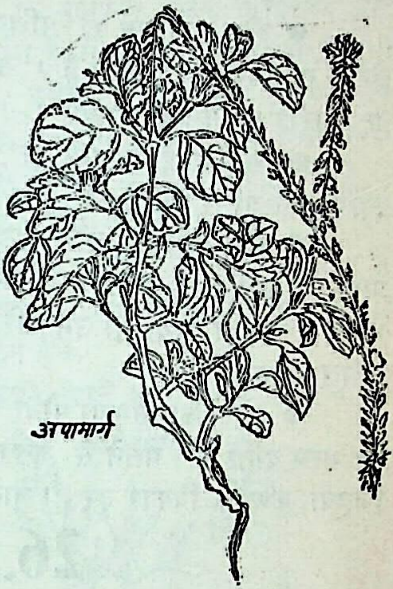
अपामार्ग

यथा—

● लाल अपामार्ग की डण्डी की दातून यदि नियमित रूप से 6 महीने तक लगातार की जाय, तो वाणी में अद्भुत चमत्कार उत्पन्न हो जाता है । ऐसे व्यक्ति को वाचा-सिद्धि प्राप्त होजाती है।

● लाल ओंगा की जड़ को जलाकर भस्म बना लें । यह भस्म नित्यप्रति गाय के दूध में सेवन करने वाले दम्पत्ति को सन्तान प्राप्त होती है ।

● इसके बीजों को साफ करके चावल निकालें । उन चावलों को दूध में पकाकर खीर बनायें । यह खीर क्षुधा-स्तम्भन करती है । जो व्यक्ति इस खीर को खायेगा—वह भूख का अनुभव नहीं करेगा ।

● श्वेत अपामार्ग की जड़ पास में रखने से—लाभ, समृद्धि और कल्याण की प्राप्ति होती है ।

● श्वेत-पौधे की जड़ का तिलक माथे पर लगाने वाला व्यक्ति सम्मोहन-प्रभाव से युक्त हो जाता है ।

● इस जड़ को दीपक की भाँति जलाकर, उसकी लौ पर किसी छोटे बच्चे का ध्यान केन्द्रित कराया जाय, तो उस बच्चे को बत्ती की लौ में वाञ्छित दृश्य दिखायी पड़ेंगे । मुस्लिम-तन्त्र हाजरात (दिव्य-दृष्टि) में भी इसका प्रयोग होता है ।

- इस जड़ी का लेप करने से शरीर पर शस्त्राघात का भय नहीं रहता।
- यह छोटे से (चार अंगुल) टुकड़े के रूप में, जननेन्द्रिय में रखने से वेदना समाप्त होकर, शीघ्र ही प्रसव हो जाता है।
- श्वेत अपामार्ग की पत्तियों को पीसकर, तुरन्त लेप करने से बिच्छू का विष उतर जाता है। साथ ही, इसकी लकड़ी को भी सुँघाते हुए, शरीर पर फेंकनी चाहिए।
- इसकी ढाई पत्तियों को गुड़ में मिलाकर, दो दिन तक—दोनों समय खाने वाला व्यक्ति ज्वर-मुक्त हो जाता है।
- श्वेत अपामार्ग और बहेड़ा की जड़ (दोनों ही रविपुष्प-योग में प्राप्त की गयी हों), एक पोटली में बाँधकर, जिसके घर में (शत्रु के घर में) रख दी जाय, तो उस परिवार में मानसिक-अशान्ति (उच्चाटन) उत्पन्न हो जाती है।
- ओंगा का समूचा पौधा (पञ्चाङ्ग) जलाकर भस्म बनालें। यह भस्म दाँतों पर मलने से अनेक प्रकार के दन्त-रोग, मुख-रोग और जिह्वा, कण्ठ के विकार दूर हो जाते हैं।

26. मुण्डी

गोरखमुण्डी (मुण्डी)
SPHAERANTHUS INDICUS LINN.

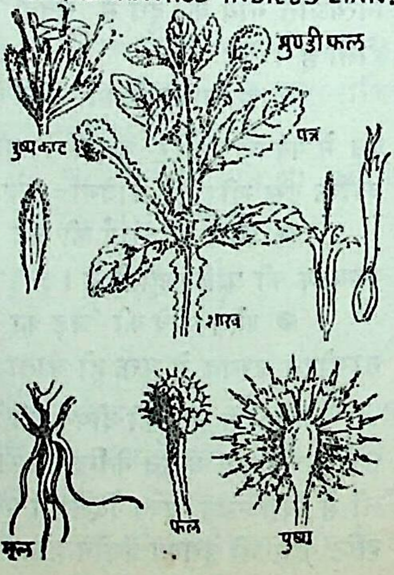

सामान्य परिचय :

'मुण्डी' एक सुलभ वनस्पति है, इसका पौधा 5 हजार फीट ऊँचाई तक प्रायः समस्त भारत के उष्ण प्रदेशों में बहुतायत से उत्पन्न होता है। धान, गेहूँ, जौ आदि रबी में उत्पन्न होने वाले अन्न के खेतों के अतिरिक्त शरद ऋतु में छोटे-छोटे जलाशयों के जल सूख जाने पर उन जलाशयों में भी पाया जाता है।

दूसका पौधा ऊँचा होता है। उसकी शाखाएं पर्याप्त दृढ़ और मुड़ी हुई सी होती हैं। इसके पत्तों की लम्बाई 3 इंच तक होती है। और

पत्तों के किनारे दाँतेदार होते हैं। अधिकतम आधा इंच तक व्यास तक फैलने वाली घुण्डियाँ गुच्छों के रूप में फैलती हैं। इसे 'गोरखमुण्डी' भी कहते हैं। ऐसी मान्यता है कि मुण्डी के तान्त्रिक-प्रयोगों का अनुसंधान परम सिद्ध, औघड़-सन्त—'गुरु गोरखनाथ' ने किया था। इसलिए परवर्ती आचार्यों ने उसको 'मुण्डी' से 'गोरखमुण्डी' नाम प्रसिद्ध कर दिया। जो भी हो, यह अनुभूत सत्य है कि मुण्डी में अनेक औषधीय और अलौकिक गुण हैं। तन्त्र-शास्त्र का निर्देश है कि यदि वानस्पतिक-नियमों के अनुसार विधिवत् निमन्त्रण देकर, इसका पौधा लाया जाय, और उसे मन्त्र द्वारा सिद्ध कर लिया जाय, तो उसके प्रयोग से चमत्कारी-परिणाम दृष्टिगत होते हैं। उदाहरण के लिए कुछ प्रयोग इस प्रकार हैं :–

● तन्त्र-सिद्ध 'मुण्डी' के पौधे को सुखाकर चूर्ण बनायें। इस चूर्ण का शहद के साथ प्रातः-सायं दैनिक-सेवन साधक को बौद्धिक-दृष्टि से सबल और वाग्मी बना देता है। स्मरण, धारणा, चिन्तन और वक्तृत्व-शक्ति की वृद्धि के लिए यह अचूक प्रयोग है।

● उपरोक्त चूर्ण दूध के साथ सेवन करने से स्वास्थ्य और शारीरिक-बल प्राप्त होता है।

● इस चूर्ण को रातभर पानी में भिगोयें, और प्रातः उसे छानकर, उसी जल से सिर धोयें। केश-कल्प का यह उत्तम प्रयोग है।

● हरे पौधे के रस की मालिश करने से शरीर-पीड़ा मिट जाती है।

● उपरोक्त चूर्ण और जौ के आटे का मिश्रण करके, इसे यदि मट्ठे में सानकर रोटी बनायें, और गो-घृत के साथ वह रोटी खायें। कुछ दिनों तक लगातार यह प्रयोग करते रहने से बुढ़ापे पर अवरोध लगकर, शरीर स्वस्थ, सबल और कान्तिपूर्ण हो जाता है।

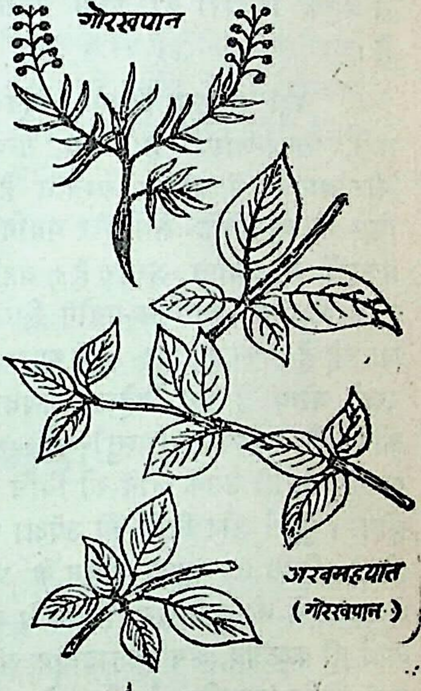

गोरखमुण्डी

27. बहेड़ा

सामान्य परिचय :

'बहेड़ा' एक जङ्गली फल है। इसका पेड़—महुआ, बादाम, चिरौंजी के पेड़ जैसा भारी-भरकम होता है। पत्ते भी लगभग वैसे ही, काफी बड़े होते हैं। 'बहेड़ा' का आकार महुआ के फल गुल्लू जैसा होता है। गुल्लू में एक विशेषता यह होती है कि उसके किसी फल में एक, किसी में दो और किसी में तीन बीज निकलते हैं, और इस कारण फल का आकार छोटा-बड़ा होता है, परन्तु बहेड़े में यह अन्तर नहीं होता। सभी 'बहेड़े' लगभग समान आकार के होते हैं।

आयुर्वेद में 'त्रिफला' एक प्रसिद्ध योग है। उसके तीन फलों (तीन घटकों) में आँवला, हरड़ के साथ तीसरा फल 'बहेड़ा' ही है। बहेड़े के (आयुर्वेद में वर्णित) गुणों की संख्या विपुल है। यह प्रयोग-भेद से अनेक विकारों को शान्त करता है।

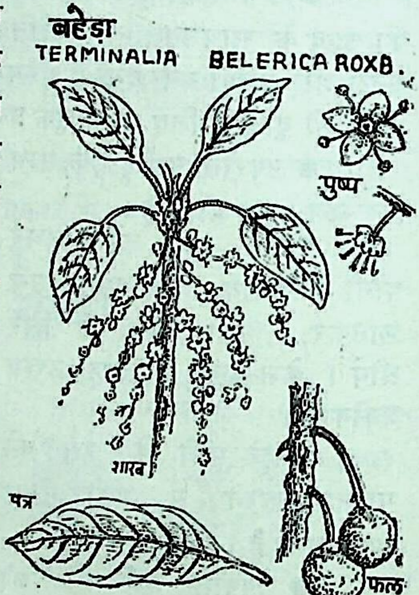

यहाँ हमारा विषय आयुर्वेद नहीं, 'तन्त्र-शास्त्र' है। वैसे, तन्त्र और आयुर्वेद में घनिष्ट सम्बन्ध है, फिर भी दोनों के क्षेत्र और प्रयोग-प्रकारों में पर्याप्त अन्तर है। यहाँ बहेड़े के कुछ तान्त्रिक-प्रयोग लिखे जा रहे हैं। परन्तु यह तथ्य स्मरण रखने योग्य है कि 'बहेड़ा' अथवा कोई भी वनस्पति (वस्तु) यदि तान्त्रिक-प्रयोग के लिए लानी (प्राप्त करनी) है, तो उसके लाने की विधि और मुहूर्त्त का ध्यान अवश्य रखना होगा। मुहूर्त्त और विधि की उपेक्षा करके, किया गया प्रयोग सफल नहीं होता। विधि का महत्त्व जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। हम अपने दैनिक-व्यवहार में भी जाने-अनजाने विधि का अनुसरण करते हैं। विधि-विरुद्ध कार्य ही कष्टप्रद, असफलतादायक और श्रम को व्यर्थ करने वाले होते हैं। अतः विधि (तरकीब, टैक्नीक) के प्रति सदैव सजग रहना चाहिए। इसी

प्रकार मुहूर्त्त (समय) के साथ भी प्रतिबद्ध रहना श्रेयस्कर होता है। मुहूर्त्त, वस्तुतः पण्डितों की कपोल-कल्पना न होकर, ठोस वैज्ञानिक-सत्य पर आधारित है। इसका सम्बन्ध सीधे खगोल-विज्ञान से है। तारों, ग्रहों, नक्षत्रों आदि की गति-विधि और उनकी प्रकाश-किरणों का स्पर्श-प्रभाव मुहूर्त्त को अवश्य प्रभावित करता है।

● मन्त्र द्वारा सिद्ध किया हुआ बहेड़े का पत्ता, और मूल (जड़) भण्डार, तिजोरी, बक्स अथवा अन्य किसी पवित्र स्थान में रखने से, घर में धन-धान्य की समृद्धि होती है। यह निश्चित प्रभावशाली और बहुत ही सहज प्रयोग है।

● उदर-विकारों—भूख की कमी, अपच, मन्दाग्नि, पीड़ा, वायु-दोष, कोष्टबद्धता आदि के निवारण में मन्त्र-सिद्ध बहेड़ा-मूल अतीव लाभकर सिद्ध होती है। इसकी प्रयोग-विधि भी बहुत सरल है—रोगी व्यक्ति, भोजन करते समय अपनी दाहिनी जंघा के नीचे (उसे पालथी मारकर बैठना चाहिए) बहेड़े की वह अभिमन्त्रित जड़ (टुकड़ा) दबाकर बैठे। ऐसी स्थिति में किया गया भोजन तान्त्रिक-प्रभाव से, सुपाच्य और पोषक बनकर व्यक्ति को आरोग्य प्रदान करता है।

'बहेड़ा' अभिमन्त्रित करने की विधि यह है कि पूर्व निमन्त्रण देकर, किसी शुभ मुहूर्त्त में उसकी जड़ और पत्ते ले आयें। यदि पेड़ में उपलब्ध हैं तो फूल और फल भी ले लें। पेड़ से उसके अङ्ग प्राप्त करते समय साधक को इस मन्त्र का जप करते रहना चाहिए :—

'ॐ नमः सर्व भूताधिपतये ग्रस ग्रस शोषय भरवीं चाज्ञायति स्वाहा।'

पौधे को लाकर पञ्चामृत-स्नान करा, धूप-दीप से पूजा करें। पूजा में बराबर उपरोक्त मन्त्र-जप, और अन्त में इसी मन्त्र द्वारा 108 जप करके इसी मन्त्र से 21 बार आहुति देकर हवन करें।

28. लक्ष्मणा

सामान्य परिचय :

'लक्ष्मणा' एक सुलभ पौधा है। तान्त्रिक-विधि से 'रविपुष्य-योग' में, अथवा अन्य किसी शुभ-मुहूर्त्त में इसे लाकर, मन्त्र द्वारा अभिषिक्त कर लें, तो यह अनेक प्रकार की समस्याओं के समाधान में सहायक होती है। इसकी प्राप्ति-विधि में यह प्रतिबन्ध है कि इसे लाने के लिए दो

व्यक्ति जायें, जिनमें से मुख्य साधक नग्न होकर पौधे को उखाड़े और सहायक-व्यक्ति पास ही दीप लिए—प्रकाश करता रहे। यह प्रयोग प्रातः वासी-मुँह अन्धेरे में ही किया जाता है। पौधा उखाड़ने और उसे घर तक लाने के मन्त्र क्रमशः इस प्रकार हैं :—

मन्त्र—'मम कार्यं सिद्धि कुरु कुरु स्वाहा।'

मन्त्र—'ॐ नमो भगवते रुद्राय सर्ववदनी त्रैलोक्य कास्तरणी ह्रूं फट् स्वाहा।'

घर लाकर इस पौधे को स्नान करायें, तथा पञ्चोपचार पूजा करें। पूजनोपरान्त उपरोक्त (दूसरे) मन्त्र का एक माला जप करें। इस प्रकार मन्त्र-सिद्ध 'लक्ष्मणा' अनेक कार्यों में प्रयुक्त होती है। यथा—

तान्त्रिक-प्रयोग :

● 'लक्ष्मणा' का पञ्चाङ्ग जल में पीसकर गोली बनायें। यह गोली मन्त्र पढ़कर, जिसे भी खिलायी जायेगी—वशीभूत होगा।

शारीरिक-दृष्टि से स्वस्थ और समर्थ पति वाली स्त्री—लक्ष्मणा की यह मन्त्राभिषिक्त गोली प्रतिदिन, गाय के दुग्ध के साथ, 21 दिनों तक लगातार, दोनों समय सेवन करे, तो—वह गर्भ धारण करती है।

● दीपावली के दिन प्राप्त की गई लक्ष्मणा को मन्त्र द्वारा सिद्ध करके रख लें। इसका चूर्ण सेवन करने से स्त्री सहवास में—पुरुष की कामशक्ति बढ़ जाती है। यह परम बाजीकरण प्रयोग है।

'ॐ शुभम् पूर्णमेति।'

●

9

नवग्रह-साधना

आकाश में अगणित तारे दृष्टिगोचर होते हैं। इनका अपना स्वतन्त्र भौतिक-अस्तित्त्व है और पृथ्वी में दूर होने पर भी ये अपनी ज्योतिर्मयी-किरणों से भूलोक को प्रभावित करते रहते हैं। समस्त तारों में सात तारे अपनी स्थिति, आकार, ज्योति, गति और प्रभावशीलता के कारण विशेष-रूप से प्रसिद्ध हैं—सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि। इन्हीं सात तारों के नाम पर ज्योतिषाचार्यों ने काल-विभाजन के समय सात दिनों की कल्पना की थी। एक दिन एक अहोरात्र (एक सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक) माना गया, और प्रत्येक अहोरात्र को एक विशिष्ट तारे से सम्बद्ध देखकर (प्रभावशीलता के आधार पर) उस दिन का वैसा ही नामकरण कर दिया गया। यथा—रवि से रविवार, शुक्र से शुक्रवार। वार का अर्थ दिन है, और शनिवार का अर्थ होता है—शनि का दिन। इस प्रकार सात प्रमुख तारों के नाम पर सात दिनों की सीमावद्ध अवधि को 'सप्ताह' कहा गया।

उपर्युक्त सातों तारे अपनी विशिष्टता के कारण 'ग्रह' कहे जाते हैं। बाद में, इनकी गतिविधि और स्थिति तथा छाया-प्रकाश के आधार पर दो अदृश्य ग्रहों की कल्पना की गयी—राहु और केतु। इस प्रकार कुल नवग्रह माने गये और समस्त सृष्टि को इन नवग्रहों की किरणों से प्रतिक्षण प्रभावित स्वीकार किया गया। थोड़े अन्तर से, आज का भौतिक-विज्ञान भी (खगोल-शास्त्र) नवग्रहों से सम्बन्धित पौराणिक-मान्यता (प्रभाव सम्बन्धी) को स्वीकार करता है। यान्त्रिक-परीक्षणों से भी सिद्ध हो चुका है कि ग्रह की विशेष स्थिति में निसृत किरणें, सृष्टि को (जीव-जगत् और वनस्पतियों को भी) निश्चित रूप से प्रभावित-परिवर्तित कर देती हैं।

नवग्रह और मन्त्र :

भौतिक-विज्ञान कुछ भी कहता हो, कारण कि वह विदेशियों—

नास्तिकों की देन है। भारतीय धर्म-दर्शन और अध्यात्म में नवग्रहों को दैवी-शक्ति-सम्पन्न माना गया है और इस नाते, इनकी पूजा-उपासना का विधान किया गया है। आदि महर्षियों की, स्वानुभवाधारित यह मान्यता रही है कि ग्रहों के विकिरणीय-प्रभाव को, ध्वन्यात्मक प्रभाव से (मन्त्र-जप द्वारा उत्पन्न वायु-तरङ्गों से) परिवर्तित करके उनकी प्रतिकूलता का निवारण किया जा सकता है। इसी आधार पर उन्होंने नवग्रहों की उपासना हेतु मन्त्र-रचना की और उसके जप के प्रभाव से लाभान्वित होने की विधि से जन-समुदाय को अवगत किया।

नवग्रहों का तेज (प्रकाश) समस्त सृष्टि (जीव-जन्तु, वनस्पति, जड़, चेतन) को प्रभावित करता है। यह प्रभाव किसी के लिए अनुकूल पड़ता है, किसी के लिए प्रतिकूल हो जाता है। ग्रहों के तेज से उत्पन्न प्रभाव की सृष्टि में मुख्य कारक मुहूर्त्त होता है। समय-चक्र की गति के अनुसार मुहूर्त्त निरन्तर परिवर्त्तित होता रहता है। इस कारण प्रतिकूल मुहूर्त्त में जन्मे हुए व्यक्ति ग्रहों के प्रतिकूल प्रभाव से सन्त्रस्त रहते हैं। उस सन्त्रास को शान्त (कम) करने के लिए महर्षियों ने दीर्घ-कालीन अनुसन्धान के बाद यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि अमुक ग्रह की प्रतिकूलता को शान्त करके, उसकी अनुकूलता पाने के लिए अमुक मन्त्र का इतनी संख्या जप तथा तत्सम्बन्धी अन्य कुछ ऐसे उपचार किये जा सकते हैं, जिनका प्रभाव साधक के लिए अवश्य ही कल्याणकारी होगा।

यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र आदि सभी क्षेत्रों में नवग्रहों की उपासना के मन्त्र और नियम निर्धारित हैं। सामान्य-जनों के लिए यहाँ कुछ सरलतम मन्त्र प्रस्तुत हैं। इनका विधिवत् जप करने से ग्रह-पीड़ा शान्त होकर, श्री-समृद्धि और सुरक्षा की अनुभूति होती है।

मन्त्र और उसका प्रयोग :

मन्त्रों की शक्ति अमोघ होती है, मन्त्र-जप के द्वारा अभीष्ट देवता का सायुज्य सरलता से प्राप्त हो जाता है। वस्तुत: मन्त्र—देवता की ध्वन्यात्मक-प्रतिमा अथवा वायवीय-स्वरूप होता है। एक सुनिश्चित गति, लय, विराम, उच्चारण, ध्वनि, आरोह-अवरोह और आसन-मुद्रा के नियमों का विधिवत् पालन करते हुए जब किसी मन्त्र का जप किया जाता है तो उसका प्रभाव सुनिश्चित और अकाट्य होता है। यह बात अलग है कि आज मन्त्रों के मर्मज्ञ 'नहीं' के तुल्य हैं, किन्तु इससे मन्त्रों की शक्ति, उपादेयता और प्रामाणिकता पर कोई आँच नहीं आती।

यह सत्य है कि मुद्रण-कला के चरम-विकास ने आज अगणित ग्रन्थ प्रकाशित करके मन्त्र-साहित्य को घर-घर, गली-गली और फुटपाथों तक सुलभ कर दिया है, किन्तु इससे लाभान्वित होने वाले जन खोजने पर भी सरलता से नहीं मिलते। इसे मन्त्र-साहित्य की विडम्बना ही कहा जायेगा। और इस विडम्बना का मूल कारण है, प्रकाशित-साहित्य का पर्याप्त सक्षम न होना। वह व्यावहारिक-ज्ञान नहीं दे पाता। पुस्तकें पढ़ने के बाद भी साधकों को असफलता मिलती है। उनके द्वारा किये गये मन्त्र-जप का कोई लाभ-प्रभाव अनुभव नहीं होता। खीझकर वे मन्त्र-साहित्य की निन्दा करने लगते हैं। वे समझते और दूसरों को भी समझाते हैं कि मन्त्र-साधना केवल एक ढकोसला है, और कुछ नहीं। वस्तुतः उनकी असफलता का एक मात्र कारण होता है— मन्त्रोच्चारण की विधि का समुचित ज्ञान न होना। पुस्तकों में छपा साहित्य पढ़ा तो जा सकता है, किन्तु वह उच्चारण का व्यावहारिक-ज्ञान नहीं दे सकता। यह ज्ञान किसी व्यक्ति-विशेष से सम्पर्क करके प्रत्यक्ष रूप में ही प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे ज्ञान-प्रदाता व्यक्ति को 'गुरु' की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

प्राचीन-काल में, जब मुद्रण-कला का जन्म नहीं हुआ था, गुरु-वर्ग मौखिक-रूप में अपनी शिष्य-मण्डली को मन्त्रोच्चारण तथा अन्य साधना-विधानों का ज्ञान प्रदान करता था। यही कारण है कि 'गुरु-शिष्य' परम्परा के चलते, मन्त्र-विद्या का अचूक प्रभाव दृष्टिगत होता था। शताब्दियों तक, पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक यह परम्परा— मौखिक-ज्ञान-प्रदान पद्धति—इसी प्रकार चलती रही थी। आज हम जितनी भौतिक-चकाचौंध देख रहे हैं, उससे कहीं अधिक प्रभावी वह मन्त्र-साधना होती थी।

बाद में, आहार-विहार के असंयम ने मानव की धारणा-शक्ति क्षीण कर दी। वह प्रमादी और विलासी हो गया। अहम् भाव की उत्पत्ति हो जाने के कारण, गुरु-सेवा, साधना, संयम और तपश्चर्या उसे भार-स्वरूप प्रतीत होने लगे। किन्तु लोभ यथावत् प्रबल था, फलतः वह सहज साधना का 'शार्टकट' का अनुयायी हो गया और मात्र पुस्तकों को ही 'गुरु' मानकर साधना का 'रेडीमेड' लाभ उठाने का प्रयास करने लगा।

किन्तु, पुस्तकें गुरु की समता नहीं कर पायीं, फलतः गुरु-प्रसाद से वञ्चित साधक आज भी मोटे-मोटे पोथे बगल में दबाये, सफलता की

मरीचिका में भटक रहे हैं। असफलता ने उन्हें कुण्ठित कर दिया है। साधना से उनका विश्वास हट गया है। इस भग्नाशा और आत्म-पीड़ा से व्यथित होकर अब वे अध्यात्म की निन्दा का अभियान चला रहे हैं। कुछ, जो अधिक जागरूक हैं, उन्होंने भद्रता की चादर ओढ़ ली है और उसी पुस्तकीय-ज्ञान को आडम्वर के द्वारा रोचक-मोहक बनाकर जन-सामान्य को अपने वाग्विलास से प्रभावित करके द्रव्योपार्जन करते रहते हैं। निःसङ्कोच कहा जा सकता है कि ऐसे लोग अध्यात्म के व्यवसायी हैं।

गुरु की अनिवार्यता :

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि चूँकि मन्त्र ध्वनि से सम्बन्धित है, अतः इसका व्यावहारिक-ज्ञान तभी प्राप्त हो सकता है, जब साधक किसी मन्त्र-मर्मज्ञ से प्रत्यक्ष दीक्षा ग्रहण करे। 'पत्राचार कोर्स' कम से कम आध्यात्म के क्षेत्र में तो सफल नहीं हो सकता, अन्य विषयों में कदाचित् वह कुछ आशा दे भी सके। अतः साधना के इच्छुक व्यक्ति के लिए यह परम आवश्यक होगा, कि वह किसी को गुरु के रूप में स्वीकार करके, उसके निर्देशक में ही साधना करे।

मन्त्रोच्चार के अतिरिक्त भी कई एक ऐसी समस्यायें-शङ्कायें आ खड़ी होती हैं, साधक दिग्भ्रमित हो जाता है। ऐसी स्थिति में गुरु का व्यक्तित्व और ज्ञान त्राणकारी होता है। गुरु की अनिवार्यता ज्ञान के क्षेत्र में सर्वत्र स्वयं सिद्ध है। चाहे भौतिक-विज्ञान हो, चाहे अध्यात्म, कहीं भी बिना मार्ग-निर्देशक के, कोई जिज्ञासु या साधक आगे बढ़ ही नहीं सकता।

अस्तु, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, भौतिक-विज्ञान, गृहस्थ-जीवन अथवा अन्य कोई भी क्षेत्र हो, सबसे प्रथम तद्विषयक मर्मज्ञ-विद्वान की खोज करनी चाहिए। विद्वान का अर्थ—डिग्रीधारी न होकर, उसका ज्ञानी होना ही पर्याप्त है। किसी भी योग्य, सदाचारी, शान्त, विशिष्ट और सौम्य ब्राह्मण से, भले ही वह साधु-तपस्वी न होकर, गृहस्थ हो, मन्त्र-साधना की दीक्षा प्राप्त करके उसके मार्ग-दर्शन में यदि जप, तप, पूजन-अनुष्ठान किया जाय, तो ऐसी साधना निश्चित रूपेण फलदायिनी होती है।

साधना के सूत्र

विश्वास— विश्वास का अर्थ है—उपास्य के प्रति आस्था, श्रद्धा

और भक्ति की भावना। बिना इसके कोई साधना सिद्ध नहीं हो सकती, भले ही उसमें लाखों रुपये खर्च किये जायें।

दिन—जिस ग्रह की साधना करनी हो, उससे सम्बन्धित दिन विशेष रूप से प्रभावकारी होता है।

मन्त्र—प्रत्येक ग्रह के अलग-अलग मन्त्र हैं। अभीष्ट ग्रह की अनुकूलता के लिए उसी का मन्त्र जपना श्रेयस्कर होता है। मन्त्रान्तर से साधना में विघ्न उत्पन्न हो जाता है।

यन्त्र—मन्त्र की भाँति ग्रह-विशेष की उपासना हेतु उसी का यन्त्र बनाना और पूजन करना चाहिए। व्यतिक्रम से साधना खण्डित हो जाती है।

पूजन-सामग्री—ग्रह-पूजन में अपने अभीष्ट ग्रह से सम्बन्धित पूजन-सामग्री ही लेनी चाहिए, अन्यथा पदार्थ-दोष के कारण लाभ नहीं हो पाता।

रत्न—रत्नों का प्रयोग बड़ा जटिल विषय है। गहरी छान-बीन और सुयोग्य विद्वान के परामर्श पर ही रत्न धारण करना चाहिए। किसी भी ग्रह के विपरीत-रत्न धारण करने से वह हानिकारक भी हो जाता है।

तान्त्रिक-प्रयोग—ग्रहोपासना में तान्त्रिक-प्रयोगों का भी बड़ा महत्त्व है। परन्तु वे प्रयोग तभी प्रभावशाली होते हैं, जब वर्णित विधि के अनुसार वस्तुओं का प्रयोग तथा अन्य नियमों का पालन किया जाय।

दान-सामग्री—पूजनोपरान्त अथवा ऐसे ही सहज भाव से, दान-स्वरूप दी जाने वाली वस्तुयें, ग्रहानुसार निर्दिष्ट की गयी हैं। अतः इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए, कि हम जिस ग्रह के निमित्त दान दे रहे हैं, हमारी वस्तुयें उनके पूजन-विधानमें स्वीकृत हैं, या नहीं ? भ्रम हो जाने से हानि की आशङ्का रहती है।

कुछ विशिष्ट पारिभाषिक शब्द

ब्रह्माण्ड, खगोल और ज्योतिष-शास्त्र के सन्दर्भ में तथा भौतिक-विज्ञान और पौराणिक-प्रसङ्गों के अन्तर्गत कुछ ऐसे शब्द प्रचलित हैं, जो अनेकार्थी हैं। स्थान, सन्दर्भ, और उद्देश्य के अनुसार इनके अर्थों की प्रभावशीलता घटती-बढ़ती रहती है। ऐसे शब्द साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन, योग, ज्योतिष और भौतिक-विज्ञान के प्रसङ्ग में प्रायः प्रयुक्त होते रहते हैं। पाठकों की सुविधा के लिए बनमें से कुछ अति विशिष्ट और प्रयोजनीय शब्दों के अर्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

ब्रह्माण्ड—अण्डाकार भुवन-कोष, जिससे (मनुस्मृति के मतानुसार पितामह ब्रह्मा जी की उत्पत्ति हुई। विश्व-गोलक, सम्पूर्ण-विश्व, खोपड़ी ‘मानव-शरीर में शिरोभाग का ऊपरी मध्य)।

अन्तरिक्ष—पृथ्वी और स्वर्ग के बीच का स्थान, आकाश, अदृश्य, बाहर मैदान में खड़े होने पर आकाश की ओर देखने से दृष्टि-परिधि में आने वाला महाशून्य।

उल्का—लुक, लूका, लौ, ज्वाला, लौह-मिश्रित प्रस्तर-खण्ड, जो अन्तरिक्ष से वायुमण्डल में प्रवेश करते हैं, मशाल।

ग्रह—सूर्य की परिक्रमा करने वाला तारा, सौर-मण्डल के प्रधान तारों में से कोई भी एक, नौ की संख्या, प्राप्ति, पकड़, चोरी, लूट का माल, नामादि कथन, घड़ियाल, आशङ्का, अध्यवसाय, मकान (घर), बोध, राहु, बाल-ग्रह।

राशि—समान जाति की बहुत-सी वस्तुओं का ढेर, क्रान्ति-वृत्त में आने वाले विशेष तारा-समूह, बारह राशियों में से कोई भी एक (मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन) राशि-चक्र (आकाश का वह कटिबन्ध, जिसमें ग्रह (तारे) गतिशील प्रतीत होते हैं)।

आकाश—शब्द गुणयुक्त प्रथम महाभूत, पञ्च महाभूतों में से एक, शून्य, ईथर, आसमान, अवकाश, छिद्र, रन्ध्र।

आकाश-गंगा—आकाश में छोटे-छोटे अगणित तारों का समूह, जो उत्तर-दक्षिण में फैला दीखता है, आकाश में तारों की चौड़ी पट्टी (सड़क जैसी) आकाश-वाहिनी गङ्गा, मन्दाकिनी।

नीहारिका—आकाश में कुहरे अथवा धुएँ की तरह छाया हुआ, दीख पड़ने वाला प्रकाश-पुञ्ज, गुप्त नक्षत्रों का उपादान (जनक अथवा घटक)।

ध्रुव—स्थिर, अचल, एक बाल-तपस्वी, जो मेरु पर प्रतिष्ठित है, निश्चित, पक्का दृढ़, कठोर, सदा एक रूप, शाश्वत, एक विशेष तारा, जो सदैव उत्तर दिशा में ही एक स्थान पर सदैव रहता है, पृथ्वी के उत्तरी-दक्षिणी सिरे, आकाश, विष्णु, शिव, ब्रह्मा, वटवृक्ष, आठ वसुओं में से एक, शरारि-पक्षी, स्थाणु, ठूंठ, रोमावर्त्त, भँवरी, ज्योतिष में बारहवाँ योग, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा उत्तराभाद्रा, नक्षत्र, नासाग्र, सूर्य, यज्ञ-पात्र, गीत का आरम्भिक अंश।

नक्षत्र—आकाश-स्थित कुछ विशिष्ट तारक-पुञ्ज (इनकी संख्या सत्ताईस मानी जाती है), सत्ताईस विशेष तारा-पुञ्जों में से कोई भी एक मोती, सत्ताईस मोतियों से बना हार ।

तारा—रात के समय आकाश में चमकने वाला ज्योतिर्पिण्ड, नक्षत्र, सितारा, भाग्य, आँख की पुतली, मोती, तन्त्र-शास्त्र में वर्णित दश महाविद्याओं में से एक, बृहस्पति की पत्नी, बानर-राज वालि की पत्नी का नाम ।

इन्द्र-धनुष—बरसात के समय प्रायः आकाश में दृष्टिगोचर होने वाला सतरङ्गा अर्द्ध-वृत्त ।

सौर—चादर, सौर (जाति-विशेष की) मछली, सूर्य से सम्बन्धित, सूर्य से उत्पन्न, सूर्य को अर्पित, सूर्य देवता का उपासक, सूर्य की गति का अनुसरण करने वाला, देवता सम्बन्धी, सुरा (मदिरा) से सम्बन्धित सूर्य-पूजक व्यक्त, शनिग्रह, बीसवाँ कल्प, धनिया, तुम्बरू, यव, मन्त्र समूह (सूर्य से सम्बन्ध रखने वाले मन्त्र) दाहिनी आँख, एक साँस ।

प्रकाश—वह भौतिक-शक्ति, जिसके द्वारा हमें वस्तुयें दीख पड़ती हैं, ज्योतिष्मान पदार्थों से उत्पन्न शक्ति जो आकाश-तत्त्व (ईथर) के द्वारा चारों ओर फैलती है, तेज आलोक, ज्योति, उजाला, आतप, धूप, विकास, आविर्भूत, स्पष्ट, प्रकट में अभिव्यक्ति, ख्याति, प्रसिद्ध, शीतल, अट्टहास, चमक, आभा, कौंध ।

ज्योति—प्रकाश, रोशनी, लौ, सूर्य, नक्षत्र, अग्नि, आँख की पुतली का मध्य बिन्दु, दृष्टि, आत्मा, चैतन्य, मेथी, विद्युत्, ज्योतिष-शास्त्र ।

आगम—ज्ञान, वेदादि-ग्रन्थ, दर्शन-शास्त्र, तन्त्र-शास्त्र, न्याय-शास्त्र के चार प्रमाणों में से एक, सिद्धान्त, शब्द-साधना, जल, उत्पत्ति, सञ्चय, वृद्धि, आमदनी, संयोग, प्राप्ति, उपलब्धि, राजस्व, अनाज, आना, आगमन, साक्ष्य-पत्र, उपक्रम ।

निगम—वेद-वेदाङ्ग, वेद-सम्मत, न्याय-शास्त्र, प्रशस्त-पथ, मार्ग, हाट-बाजार, मेला, समूह, झुण्ड, कारवाँ (काफिला), बनजारा, संस्था (कारपोरेशन), वेदार्थ-बोधक-ग्रन्थ, वणिक्-पथ, यन्त्र, ग्रन्थ, आदित्त्य, ब्रह्मा, गणेश, रुद्र, विष्णु ।

उपनिषद्—ब्रह्मविद्या-प्राप्ति हेतु गुरु के पास बैठना, वेदों के ज्ञान-खण्ड (ज्ञान-काण्ड) वाले ग्रन्थ, वेद रहस्य, ब्रह्म-ज्ञान, निर्जन-स्थान,

वेद-व्रती, वे कर्त्तव्य जो ब्रह्मचारी के लिए विशेष रूप से निर्दिष्ट (करणीय) हैं, एक संस्कार-विशेष, समीपस्थ भवन ।

संहिता— सन्धि, संयोग, मेल, मिलना, संग्रह, सङ्कलन, क्रम-शोधित, गद्य-सङ्कलन, धर्म-शास्त्र, वेदों का तन्त्र-भाग, मनु आदि प्राचीन महर्षियों द्वारा रचित कर्म-शास्त्र (कार्य-विधान) विश्वास, घटक, शक्ति ।

मन्त्र—कार्य में सफलता पाने की कुञ्जी, कार्य-सिद्धि का गुरु, सलाह-परामर्श, मन्त्रणा, गुप्त-वार्त्ता, कान में धीरे से कही जाने वाली बात, वह शब्द या शब्द-समूह—जिसका उच्चारण करने से किसी देवता की सिद्धि या अलौकिक-शक्ति की प्राप्ति हो, वेद का संहिता भाग, उपदेश, उपदेशात्मक-संकेत । (इसी 'मन्त्र' शब्द को लेकर विभिन्न नये शब्दों की रचना भी हुई है, जो किसी न किसी रूप में मन्त्र-साधना से सम्बद्ध क्षेत्र का स्पर्श करते हैं । यथा—मन्त्रकार, मन्त्र-दृष्टा, मन्त्रदर्शी, मन्त्र-पूत, मन्त्रधारी, मन्त्रज्ञ, मन्त्र-जिह्वा, मन्त्र-बीज, मन्त्र-मूल, मन्त्र-शक्ति, मन्त्राधार, मन्त्र-साधना, मन्त्र-संस्कार, (मन्त्र-संस्कारों का विवरण यह है—जनन, जीवन, ताड़न, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन, गोपन), मन्त्र-विद्ध, मन्त्राकर्षित, मन्त्र-जप, मन्त्र-सिद्धि, मन्त्र-स्नान, मन्त्र-सूत्र, मन्त्र-सिद्धि, मन्त्रोदक ।

अष्टांग-योग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि । योग-साधना के अन्तर्गत ये क्रियाएं अष्टाङ्ग-योग (योग के आठ अङ्ग) कहलाती हैं ।

आह्वान—आह्वान, पुकारना, बुलाना, आमन्त्रित करना, पुकार, बुलावा, देवता का आह्वान, अदालत में हाजिर होने का आदेश, तलबनामा, ललकार, नाम, चुनौती, आने के लिए कहना ।

विनय—व्यापारी, व्यवसायी, प्रथक्करण, जितेन्द्रिय, आज्ञापालन, नम्रता, आचरण, प्रार्थना, विधिवत् आदेश, स्वीकार करना. क्षिप्त, दुर्वृत्त, मार्ग-प्रदर्शन. अनुशासन, शिष्टता, भद्र-आचरण, नम्र शब्दों में निवेदन करना ।

स्तुति—प्रशंसा, स्तोत्र. गुण-कथन, दुर्गा, शिव, प्रार्थना चाटुकारिता ।

स्तोत्र—स्तुति-युक्त श्लोक (छन्द), वह ग्रन्थ जिसमें छन्दबद्ध स्तुति की गयी हो, स्तुति, स्तुतिपरक-ग्रन्थ ।

स्तवन—स्तोत्र-पाठ करना, स्तुति करना, प्रार्थना।

चिन्तन— ध्यान करना, किसी कल्पना, में तन्मय हो जाना, किसी विषय-विशेष पर गम्भीरता-पूर्वक सोचना, स्मरण करना, शङ्का, चित्त की मन:स्थिति।

प्रार्थना—माँगना, याचना करना, किसी बात की (कामना-पूर्ति) सफलता के हेतु विनयपूर्वक कहना, कल्याण-कामना (स्वयं अथवा पराये के प्रति), विनय-भक्ति और श्रद्धापूर्वक निवेदन करना, ईश्वर-देवता अथवा राजा से किसी बात के लिए अनुपम करना, हिंसा, आक्रमण, एक मुद्रा-विशेष इच्छा, लालसा, चाह, कामना, दावा, अभियोग।

भौतिक-विज्ञान में नवग्रह

पौराणिक-मान्यताओं के सर्वथा विपरीत, खगोल-शास्त्रियों ने, विशेषतया पश्चिमी-विद्वानों ने, भौतिक-विज्ञान की कसौटी पर परखते हुए, ब्रह्माण्ड के तारों और नवग्रहों का अध्ययन विश्लेषण किया है। वर्षों के शोध और अनुसन्धान के पश्चात् उन्होंने जो मत प्रतिपादित किया है, उससे कितने ही नये रोचक, रोमांचक और चौंकाने वाले तथ्य उजागर होते हैं। युवा भारतीय-ज्योतिषी श्री के० ए० जोशी ने पाश्चात्य-विद्वानों की शोधों का सार, नवग्रहों के सन्दर्भ में इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

ग्रहों की स्थापना के विषय में इस युग के वैज्ञानिकों का मत है कि तीन हजार वर्ष पहले केवल एक ही प्रचण्ड सूर्य अनन्त शून्य में स्थित था। यह सूर्य हाईड्रोजन, हिलियम, अमोनिया आदि सभी प्रमुख गैसों का लावा उगलता रहता था। कालान्तर में एक दूसरा सूर्य के आगे से गुजरा तो इसके अग्निमय वातावरण में एक तूफान-सा आ गया। वह सूर्य तो अपने रास्ते पर चला गया, किन्तु इस सूर्य में से कई प्रकाश-पिण्ड बिखर गये, जो बाद में ग्रह-पिण्डों में परिवर्त्तित हो गये। पृथ्वी से एक नजर देखने पर ये सभी ग्रह स्थिर प्रतीत होते हैं, परन्तु ये गतिमान हैं, जो अब भी सूर्य के गुरुत्त्वाकर्षण में बँधे हुए हैं। सूर्य से ही ग्रहों पर ताप और शीत का अद्भव हुआ गुरुत्त्वाकर्षण के सन्तुलन के आधार पर ही ये सभी ग्रह-पिण्ड निर्धारित गति-सीमा और भ्रमण-पथ पर अविराम गति से चल रहे हैं। इन ग्रहों के अतिरिक्त बहुत से अन्य उपग्रह (जिन्हें हम चन्द्रमा कहते हैं।) उल्कायें, पात-बिन्दु यानी राहु-केतु, धूमकेतु तथा

पृथ्वी—सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इस केन्द्रवर्ती सूर्य से सबसे निकट बुध, फिर शुक्र, और उसके बाद पृथ्वी स्थित है। पृथ्वी की कक्षा से बाहर—मङ्गल, बृहस्पति और शनि स्थित हैं।

सूर्य

ब्रह्माण्ड अर्थात् आकाश-मण्डल के समस्त तारा-समूहों में अपनी प्रखर-ज्योति के कारण सूर्य को सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है। इससे अति निकट और विशालकाय प्रमुख तारों को, जो 'ग्रह' कहलाते हैं, सौर-मण्डल का सदस्य कहा जाता है। सौर-परिवार में इन प्रमुख ग्रहों के अतिरिक्त अनेक उपग्रह, धूतकेतु और उल्का समूह भी हैं। प्रमुख ग्रहों में, आधुनिक खगोल-विज्ञान की दृष्टि से, विभिन्न शक्तिशाली यन्त्रों द्वारा परीक्षण किये जाने के बाद, अब तक ये ग्रह अपने अस्तित्त्व के लिए सर्वमान्य घोषित हुए हैं—

1—बुध, 2—शुक्र, 3—पृथ्वी, 4—मंगल, 5—बृहस्पति, 6—शनि, 7—अरुण, 8—वरुण, 9—यम, 10—कुबेर, 11—इन्द्र। ये सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं।

भारतीय-साहित्य (संस्कृति) में सूर्य के कई नाम प्राप्त होते हैं, यथा—रवि, भानु, भास्कर, सविता, प्रभाकर, दिवाकर, दिनमणि, अर्क आदित्य. अनन्त, मार्त्तण्ड, पतंग, विवस्वान आदि।

वैज्ञानिक विश्लेषण :

पृथ्वी से सूर्य की दूरी 14,90,00,000 किलोमीटर है। इस विशालकाय ज्वलन्त-ग्रह का व्यास 1372400 किलोमीटर है। यदि हम यह कल्पना करें, कि सूर्य एक खोखला डिब्बा है, तो उसके भीतर हम इतना स्थान रिक्त पायेंगे, जिसमें अपनी पृथ्वी की तरह के 13 लाख गोले रख सकते हैं। दूरी और वातावरणीय-प्रभाव से, सूर्य पर भार-हीनता की स्थिति भी विचित्र हैं। वहाँ भार का दबाव 27 गुना अधिक है। इस प्रकार पृथ्वी पर तौली गयी 1 क्विण्टल की पेटी, सूर्य पर पहुँचायी जाय, तो वह वहाँ पर 27 क्विण्टल भार की प्रतीत होगी।

चन्द्रमा

आकाश में, पृथ्वी पर से दीख पड़ने वाले ग्रहों में सूर्य के बाद चन्द्रमा ही वह ग्रह है, जो सबसे बड़ा दृष्टिगोचर होता है। सूर्य बहुत ही

ज्वलन्त है, अतः उसकी ओर देखना कष्टप्रद होता है । परन्तु चन्द्रमा का प्रकाश—शीतल, सौम्य, सुखद और सम्मोहक होता है, अतः उसे देखने, उसके प्रकाश (चाँदनी) में बैठने से अद्‌भुत सुख-शान्ति की अनुभूति होती है । प्रखरता के कारण सूर्य चाहे जितना लाभ-दायी हो, परन्तु अपने सौन्दर्य और शीतल-प्रभाव के कारण चन्द्रमा उससे कहीं अधिक लोक-प्रिय है । चन्द्रमा रहित रात्रि बड़ी भयानक लगती है, जब कि चाँदनी रात में, प्राणि-वर्ग का रोम-रोम आनन्दित रहता है ।

खगोल-शास्त्रियों के मतानुसार चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है, और वह निरन्तर इसके चारों ओर चक्कर काटता रहता है । इस परिक्रमा-काल में, वह भ्रमण-पथ की स्थिति के अनुसार, कभी तो पृथ्वी के अति निकट आ जाता है, और कभी बहुत दूर हो जाता है ।

चन्द्रमा को भारतीय-साहित्य में राकेश, इन्द्र वसु, कुमुद, निशानाथ, निशापति, तारापति, नक्षत्रपति, रजनीश, सुधाकर, सुधांशु, जलदेव, शशि, सोम, सागर-पुत्र आदि नाम भी प्राप्त हैं ।

वैज्ञानिक विश्लेषण :

चन्द्रमा का व्यास 3440 किलोमीटर है । यह पृथ्वी के एक चतुर्थांश के बराबर होता है । इसी कारण चन्द्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति भी, पृथ्वी की अपेक्षा कम (पृथ्वी की शक्ति का एक छठा भाग) है । चन्द्रमा पर वायुमण्डल न होने के कारण वहाँ भार-हीनता की स्थिति रहती है ।

पृथ्वी से चन्द्रमा की अधिकतम दूरी (भ्रमण-रत रहने के कारण) 4,06,860 किलोमीटर है । यह दूरी न्यूनतम स्थिति में 3,56,600, किलोमीटर हो जाती है । वैसे, सामान्य स्थिति में पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच लगभग 3,84,000 किलोमीटर की दूरी रहती है ।

चन्द्रमा 27 दिनों में पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरी कर लेता है । यह स्वयं प्रकाशित ग्रह न होकर, सूर्य द्वारा प्रकाशित है । गतिशीलता तथा अन्य ग्रहों की स्थिति के कारण, चन्द्रमा का प्रकाश और स्वयं उसका आकार, घटता-बढ़ता रहता है । पूर्णमासी, अमावस्या और ग्रहण के दृश्य इसी आधार पर दृष्टिगोचर होते हैं ।

मंगल

सौर-मण्डल का यह सदस्य अपने रूपाकार और स्वभाव-प्रभाव के लिए विख्यात है । सूर्य की परिक्रमा करते समय इसकी गति और परिक्रमा-

पथ में परिवर्त्तन होता रहता है । यह जब पृथ्वी की सीध में आता है, तब इसका उदय माना जाता है । उदय होने के 300 दिनों बाद यह विलोम-गति से (वक्र-मार्गी होकर) 60 दिनों तक चलता है । इसके बाद पुन: अपने सामान्य परिक्रमा-पथ पर आकर 300 दिनों तक चलता रहता है । इसके बाद यह पृथ्वी की सीध से हटकर अदृश्य हो जाता है । ऐसी स्थिति को मङ्गल का अस्त होना कहते हैं । उदयास्त का यह क्रम सौर-मंडल के सभी ग्रहों पर लागू होता है । पृथ्वी पर से. ये सभी ग्रह सदैव नहीं देखे जाते । अस्त होने के बाद एक निश्चित समय में ही कोई ग्रह पुन: उदित होता है ।

मङ्गल को अन्य अनेक नामों से भी जाना जाता है, यथा—कुज, महीसुत, भूमिपुत्र, भौम, अङ्गारक, रुधिर, आग्नेय, क्रूराक्ष, क्रूरनेत्र आदि ।

वैज्ञानिक विश्लेषण :

सौर-मंडल में मंगल का चौथा स्थान है । पहले स्थान पर बुध, दूसरे पर शुक्र और तीसरे स्थान पर पृथ्वी है । सूर्य से मंगल की दूरी 22,40,00,000 किलोमीटर है । इसका व्यास 6860 किलोमीटर है । यह ग्रह अपने परिक्रमा-पथ पर चलते हुए, 687 दिनों में सूर्य की एक परिक्रमा करता है । आकार में यह छोटा है । गुरुत्व-शक्ति की दृष्टि से, यह पृथ्वी की अपेक्षा केवल एक दसवाँ भाग गुरुत्व-शक्ति रखता है । लगभग सभी ग्रहों के उपग्रह भी हैं, जो उनके चारों ओर चक्कर काटते रहते हैं । चन्द्रमा भी पृथ्वी का एक ऐसा ही उपग्रह है, जो निरन्तर पृथ्वी के चतुर्दिक घूमता रहता है । मंगल के भी दो उपग्रह (चन्द्रमा) हैं, ये दोनों ही मंगल की परिक्रमा करते रहते हैं । सूर्य की परिक्रमा के दौरान जब कभी मंगल पृथ्वी के अति निकट आ जाता है, उस समय इसकी दूरी (पृथ्वी-तल से मंगल की न्यूनतम दूरी) 7,80,00 किलोमीटर होती है । मंगल लाल आभा वाला ग्रह है । पृथ्वी के निकट आने पर इसका रंग बड़ी सरलता से देखा जा सकता है । उस समय यह लाल अंगारे जैसा प्रतीत होता है ।

बुध

सौर-मंडल का सबसे लघु और प्रकाशमान (चमकदार) ग्रह 'बुध' सूर्य के बिल्कुल ही निकट है । यह 88 दिनों में सूर्य की परिक्रमा कर लेता है । सूर्योदय के कुछ समय पूर्व, और सूर्यास्त के पश्चात् भी कुछ देर तक इसे देखा जा सकता है ।

उसका तापमान 350 सेण्टीग्रेड तक रहता है। वैज्ञानिकों की मान्यता है, कि बुध ग्रह पर कोई वायुमंडल नहीं है। चूँकि यह सूर्य के अति निकट है, अतः इसके धरातल पर पहुँचने के लिए तैयार किया गया कोई अन्तरिक्ष-अभियान भी सफल नहीं हो सकता।

जहाँ तक बुध की अवस्थिति का सम्बन्ध है, पृथ्वी से इस ग्रह की दूरी 5 करोड़ 92 लाख किलोमीटर आँकी गयी है।

भौगोलिक-दृष्टि से, पृथ्वी के पर्यावरण पर 'बुध' ग्रह का गहरा प्रभाव पड़ता है। जब यह सूर्य-गति का उल्लंघन करता है, उस समय पृथ्वी के पर्यावरण में अनेक प्रकार की विसङ्गतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसे अवसर पर खगोलज्ञ और मौसम-विज्ञानी-जन पृथ्वी पर आँधी, तूफान-अति वृष्टि अथवा अकाल की आशङ्का व्यक्त करने लगते हैं।

अपने विकिरणीय प्रभाव से बुध न केवल मानव-सृष्टि को, अपितु पक्षी-जगत् को भी बहुत प्रभावित करता है।

सौर-परिवार का यह ग्रह सूर्य के सबसे निकट है। इस कारण इस पर प्रचण्ड गर्मी होती है। पृथ्वी पर (भारत में) मई-जून में सबसे अधिक गर्मी होती है। बुध पर इससे कई गुनी अधिक उष्णता है।

बुध के अन्य नाम भी हैं—शशि-पुत्र, चन्द्र-पुत्र, शशिज, ज्ञ, सौम्य, बोधन, शान्त, हेम्न, उतारूद आदि।

वैज्ञानिक विश्लेषण :

सूर्य के अति निकट होने पर भी, बुध और सूर्य के बीच 592,00,000 किलोमीटर की दूरी है। सूर्य की परिक्रमा करने में इस ग्रह को 88 दिन लगते हैं। इसका व्यास बहुत ही कम है—मात्र 5140 किलो मीटर। बुध की गुरुत्त्वाकर्षण-शक्ति पृथ्वी की अपेक्षा एक चौथाई भाग है। इस भार-हीनता के कारण, पृथ्वी पर 5 फुट ऊँची उछाल लगाने वाला व्यक्ति यदि बुध के धरातल पर पहुँच जाय तो वह वहाँ चारगुनी ऊँची अर्थात् 20 फुट ऊँची उछाल लगा सकेगा।

सूर्य के अति निकट होने के कारण, उसके प्रदीप्त प्रकाश में बुध की लघुकाया लुप्त हो जाती है। तो भी, यदि यह सूर्य की सीध में न हो, तो इस दशा में यह सूर्योदय से थोड़ा पहले पूर्वी-क्षितिज पर, अथवा सूर्यास्त के तुरन्त बाद पश्चिमी-क्षितिज पर दृष्टिगोचर हो जाता है। कदाचित इसी विश्लेषण के कारण इसे प्रथम कक्षा का तारा कहते हैं।

जब कभी बुध पूर्व में अस्त होगा, तो उस 32 दिनों बाद पश्चिम में उदित होगा। उदित होने 32 दिनों बाद यह वक्रगति से चलने लगता है। वक्री होने पर चार दिन बाद यह पश्चिम-दिशा में अस्त हो जाता है। अस्त होने के 16 दिन उपरान्त फिर पूर्व में उदित होकर, उदय होने के चार दिन वक्र मार्गी रहकर (सही पथ पर अग्रसर) और उसके 32 दिनों बाद फिर से पूर्व में अस्त हो जाता है।

उदय-अस्त के इसी क्रम से यह निरन्तर सूर्य के निकट बना रहता है।

बृहस्पति (गुरु)

खगोल-शास्त्र के अनुसार, दिव्य-ब्रह्माड में सूर्य की परिक्रमा करने वाला यह ग्रह 'बृहस्पति' सौर-मंडल का पाँचवाँ सदस्य है। आकाश में यह बहुत बड़ा और ज्वलन्त दीखता है। गौर से देखें, तो इसका प्रकाश पीला प्रतीत होता है, जैसे मंगल का लाल और बुध का हरीतिमायुक्त। आकार, प्रकाश, दृश्य और प्रभाव की दृष्टि से बृहस्पति को बहुत मान्यता प्राप्त है। इसे गुरु, वागीश, अङ्गिरा, देवगुरु आदि नामों से भी जाना जाता है।

वैज्ञानिक विश्लेषण :

बृहस्पति नाम का यह पीताभ ग्रह सूर्य से बहुत दूरी पर स्थित है। यह दूरी आधुनिक यन्त्रों द्वारा मापी जाने पर 77,80,00,000 किलोमीटर मानी गयी है। सूर्य के चतुर्दिक फैला घेरा इसका परिक्रमा-पथ है, जिस पर चलते हुए यह 11 वर्षों में सूर्य के चारों ओर एक चक्कर पूरा करता है।

बृहस्पति-ग्रह का व्यास 143640 किलोमीटर है। इसे यदि एक रबर का गोल ट्यूब मान लिया जाय, तो इसके भीतर पृथ्वी की भाँति आकार रखने वाले 1300 पिण्ड समा सकते हैं। गुरुत्व-शक्ति की दृष्टि से भी यह पृथ्वी से 317 गुना अधिक है। इस गणित के आधार पर यदि 77 किलो ग्राम भार वाली वस्तु यदि गुरुतल पर पहुँचा दी जाय, तो वहाँ वह 22 टन भारी प्रतीत होगी। इस प्रचण्ड गुरुत्व-शक्ति का एक प्रभाव यह भी हो सकता है, कि यदि हम किसी तरह गुरु के धरातल पर पहुँच जायें, तो यहाँ हमारी शारीरिक-शक्ति ज्यों की त्यों रहने के बावजूद भी, वहाँ की गुरुत्व-शक्ति के प्रभाव से हमारा भार कल्पनातीत रूप में बढ़

जायेग। इसका परिणाम यह होगा, कि दो-ढाई मन का भार उठा सकने वाली हमारी टाँगें, उस समय सैकड़ों मन भारी हो गये, हमारे शरीर को सँभाल नहीं पायेंगी। फलत: हम तुरन्त ही गिरकर चकनाचूर हो जायेंगे।

बृहस्पति जब भी अस्त होता है, 30 दिन बाद पुन: उदित हो जाता है। उदित होने के पश्चात् यह 128 दिनों तक सीधे अपने पथ पर गतिमान रहता है। इसके बाद यह वक्रगति से (वक्री) चलने लगता है। वक्री होने के 120 दिनों बाद यह पुन: अपने सही परिक्रमा-पथ पर आ जाता है। सही रास्ते पर आकर (मार्गी हो जाने पर) यह फिर 128 दिनों तक परिक्रमा करता रहता है, बाद में अस्त हो जाता है।

उदय, अस्त और वक्री होने के इसी क्रम से यह निरन्तर गतिमान रहने वाला ग्रह, बहुत सुन्दर, शोभन, शुभ और सात्त्विक प्रभावयुक्त माना गया है। बृहस्पति की अनुकूल किरणें व्यक्ति के जीवन को धन, वैभव, सम्मान, ज्ञान और अधिकार से पूरे तौर पर सँजो देती है।

उपग्रहों के रूप में बहस्पति के 13 चन्द्रमा हैं, जो निरन्तर उसकी परिक्रमा करते रहते हैं।

शुक्र

पृथ्वी-तल से दीख पड़ने वाले तारों में सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पति की भाँति शुक्र भी एक अत्यधिक प्रकाशयुक्त, विशाल और शोभन ग्रह है। हजारों तारों के बीच भी, अपनी अद्भुत आभा के द्वारा यह सहज ही पहचान लिया जाता है। वैसे तो सौर-मण्डल में, सूर्य की परिक्रमा करने वाले सभी ग्रह प्रकाशमान प्रतीत होते हैं, किन्तु शुक्र की छटा अनौखी है। सामान्यत: श्वेत प्रकाशमयी किरणें उत्सर्जित करने वाला यह ग्रह, वस्तुत: हल्की नीली किरणें प्रसारित करता है। किसी बड़े दूरदर्शक यंत्र से इसे देखा जाय, (सामान्य दृष्टि से भी) तो इसका धरातल हल्के नील-वर्ण का दृष्टिगोचर होता है। हीरे की आभा, शुक्र की आभा से पर्याप्त समानता रखती है। यही कारण है, कि शुक्र-तत्त्व की कमी होने पर ज्योतिषी लोग जातक को हीरा धारण करने का परामर्श देते हैं।

शुक्र के अन्य नाम भी प्रचलित हैं, यथा—दैत्य-गुरु, दानवेज्य, आस्फुजित, उशना, काण, भृगु, सित, आच्छा और दैत्याचार्य।

वैज्ञानिक विवेचन :

सौर-परिवार में, सूर्य की परिक्रमा कर रहे ग्रहों में, बुध के पश्चात् दूसरा ग्रह यही 'शुक्र' है। शुक्र और सूर्य के मध्य लम्बा अन्तराल है।

आधुनिक यन्त्रों द्वारा गणना करने पर वह अन्तराल 10,80,00,000 किलो मीटर निकलता है। सूर्य की एक परिक्रमा पूरी करने में शुक्र को 225 दिन लगते हैं।

शुक्र का व्यास 12,6000 किलो मीटर है। जहाँ तक गुरुत्वाकर्षण-शक्ति का प्रश्न है, शुक्र और पृथ्वी की गुरुत्व-शक्ति समान है। शुक्र में एक विशेषता और भी है—जिस प्रकार चन्द्रमा की कलायें घटती-बढ़ती रहती हैं, उसी प्रकार शुक्र भी कला-परिवर्त्तन के कारण अपनी ज्वलन्तता में कम या अधिक दृष्टिगोचर होता है।

शुक्र का आकाश में उदय या तो प्रातः सूर्योदय के पूर्व, या सायं सूर्यास्त के पश्चात् होता है। इसे भोर का तारा अथवा संध्या-तारा भी कहते हैं। अन्य ग्रहों की भाँति किसी व्यवधान के कारण यह भी अस्त हो जाता है। शुक्रास्त के दिनों में कितने ही शुभ कार्य वर्जित रहते हैं। इसका कारण सम्भवतः यही है, कि उस समय पृथ्वी का पर्यायवरण शुक्र-प्रभा के अभाव में कुछ दूषित रहता है।

जहाँ तक सूर्य की उदयास्त-गति का सम्बन्ध है, यह पूर्व में अस्त होने के 75 दिनों बाद पुनः उदित होता है। उदय के 240 दिन वक्र-मार्ग पर चलता है। इसके 23 दिनों बाद पश्चिम में अस्त हो जाता है। पश्चिम में अस्त होकर 9 दिनों बाद यह फिर पूर्व में उदित होता है। पूर्वोदय के 23 दिन बाद मार्गी तथा मार्गी होने के 240 दिन बाद फिर पूर्व में अस्त हो जाता है।

शुक्र-ग्रह की एक विशेषता यह भी है कि सूर्य से इसकी स्थिति 45 अंश से अधिक दूर कभी नहीं होती। कारण चाहे जो भी हो, परन्तु इसकी किरणों का स्पर्श वातावरण को, व्यक्ति को एक प्रकार की अद्भुत सुखानुभूति कराता है।

शनि

अपनी रूपरेखा में अद्भुत और अद्वितीय यह 'शनि' सौर-मण्डल का, कक्षा-क्रम से छठवाँ ग्रह है। वृहस्पति और अरुण (यूरेनस अथवा हर्षल नामक नवज्ञात-ग्रह) के मध्य अपने परिक्रमा-पथ पर यह बलयधारी ग्रह बड़ी मन्द-गति से चलता है। ग्रह के चारों ओर एक वृत्ताकार वलय है, जो इसका आभा-मण्डल जैसा प्रतीत होता है। वस्तुतः वह लघुतम तारा-

पुञ्जों से निर्मित एक राशि-रेखा है, जो पर्याप्त चौड़ी होने के कारण कङ्कण जैसी दीख पड़ती है।

शनि को अर्कसुत, भानुपुत्र, छायात्मज, नील, मन्द, असित और कोण आदि नामों से भी अभिहित किया गया है।

वैज्ञानिक विवेचन :

अत्यधिक मन्दगामी होने के कारण शनैःचर (शनिश्चर) कहा जाने वाला यह ग्रह वास्तव में चाहे जैसा हो, पृथ्वी-तल से यह नीले रङ्ग का दिखाई पड़ता है। आकार में यह बृहस्पति से थोड़ा छोटा है, इसका व्यास 1,42,60,00,000 किलो मीटर है। यह सूर्य की एक परिक्रमा करने में 29 वर्षों का समय लगा देता है। इसका व्यास 120,500 किलो मीटर है। गुरुत्व-शक्ति की दृष्टि से, यह पृथ्वी की अपेक्षा 95 गुनी अधिक शक्ति रखता है। इस हिसाब से पृथ्वी पर की एक मन वाली चीज शनितल पर पहुँचा दी जाय तो वह वहाँ 95 मन की हो जायेगी।

प्रायः शनि की नीलाभ-कृष्ण ज्योति-रश्मियाँ तामसिक प्रभावों की सृष्टि करती हैं। वैसे किसी-किसी के लिए, प्रकृति-भेद के आधार पर, शनि-रश्मियाँ बहुत ही सुखद सिद्ध होती हैं।

शनि जब अस्त होता है, (उदय और अस्त का अर्थ है—पृथ्वी-तल से किसी ग्रह या तारे का दृष्टिगोचर होना। परन्तु चूँकि पृथ्वी गोल है, अतः किसी ग्रह की उदयास्त स्थिति सार्वदेशिक नहीं मानी जाती। इस प्रकरण में यहाँ, इस पुस्तक में, उदय और अस्त का विवरण भारत-भूमि से ही सम्बन्धित मानना चाहिये) तो 38 दिन बाद पुनः उदित होकर 135 दिनों तक सामान्य-गति से अपने परिक्रमा-पथ पर अग्रसर रहता है। यह अवधि पूरी करने के बाद 105 दिनों तक बक्री रहता है। इसी वक्रगति से चलते समय यह पश्चिम में अस्त हो जाता है।

राहु और केतु

पाश्चात्त्य-ज्योतिषी और आधुनिक खगोल-विज्ञानी राहु केतु के अस्तित्त्व को स्वीकार नहीं करते। भारतीय-ज्योतिर्विदों में भी अनेक ने इन छाया-ग्रहों को विशेष महत्त्व नहीं दिया। कारण कि अस्तित्त्व-विहीन होने के कारण इनकी भौतिक संरचना और विवेचना का कोई आधार ही नहीं है।

अस्तुः विज्ञान की उत्तरोत्तर-प्रगति और विभिन्न प्रकार की दूरबीनों के अविष्कार से अब आकाश-मण्डल (ब्रह्माण्ड अथवा अन्तरिक्ष) का

अनुसन्धान करने में बहुत कुछ सहूलियत हो गयी है । ऐसी यान्त्रिक उपलब्धियों के द्वारा कई पाश्चात्त्य-विद्वानों ने वर्षों के कठोर श्रम से ब्रह्माण्ड के कई एक नये तथ्य उद्घाटित किये हैं । अनेक तारापुञ्जों और ग्रहों की खोज करके उन्होंने खगोल-विज्ञान को नये आयाम दिये हैं । नवीनतम अनुसन्धानों के आधार पर ज्ञात ग्रह ये हैं—अरुण, वरुण, यम, कुबेर और इन्द्र ।

अरुण

विलियम हर्षेल के द्वारा खोजा गया यह नवीन ग्रह 'यूरेनस' नाम से विख्यात है । भारतीय खगोल-शास्त्रियों ने इसे अरुण की संज्ञा दी है । सौर-परिवार में यह सूर्य से सातवें स्थान पर रखते हुए, अपने पथ पर गतिशील रहते हुए, 48 वर्षों में सूर्य की एक परिक्रमा कर लेता है । सूर्य से इस ग्रह की दूरी बहुत अधिक है । अर्थात् यह सूर्य से 2,86,80,0000 किलो मीटर दूर स्थित है । इसका व्यास 53,400 किलो मीटर है, और इससे हरे रंग का प्रकाश उत्सर्जित होता रहता है । आकार में यह पृथ्वी से 64 गुना अधिक बड़ा है । इसकी सबसे बड़ी विचित्रता यह है, कि यदि हम वहाँ (अरुण के भूतल पर) खड़े होकर सूर्योदय और सूर्यास्त का अध्ययन करें, तो पायेंगे कि वहाँ, पृथ्वी के सर्वथा विपरीत, सूर्य पश्चिम में उदित पूर्व में अस्त होता है ।

इस ग्रह के भी उपग्रह हैं—पाँच चन्द्रमा निरन्तर इस (अरुण) की परिक्रमा करते रहते हैं । और, यह भी घोर आश्चर्य की बात है, कि अरुण के वे पाँचों उपग्रह की पश्चिम में उदित होकर पूर्व में अस्त होते हैं ।

कितना विचित्र, आश्चर्यमय और दुर्बोध है—ब्रह्माण्ड का रहस्य ?

वरुण

यह भी पाश्चात्त्य-अनुसन्धानों की देन है । पश्चिमी-खगोल-शास्त्री इसे 'नेपच्यून' कहते हैं । यह भी हरे रंग की प्रकाश-किरणें छोड़ता है, और सूर्य से बहुत दूर, आठवें परिक्रमा-पथ पर गतिमान रहता है । सूर्य से इसकी दूरी 4,49,40,00,000 किलो मीटर है । इस हिसाब से सहज ही कल्पना की जा सकती है, कि इसे सूर्य की परिक्रमा में बहुत लम्बा समय लगता होगा । वैज्ञानिकों ने हिसाब लगाकर बताया है, कि यह सूर्य का एक चक्कर 165 वर्षों में पूरा करता है । इसका व्यास 49,600 किलो मीटर है, और आकार में यह पृथ्वी से दो गुना बड़ा होता है । इससे भी दो उपग्रह अर्थात् चन्द्रमा हैं, जो निरन्तर इसकी परिक्रमा करते रहते हैं ।

यम

इसे 'प्लूटो' भी कहते हैं। यह भी एक नवज्ञात-ग्रह है। सूर्य से इसकी दूरी 5,89,90,00,000 किलो मीटर है। विस्तृत परिक्रमा-पथ और धीमी-गति के कारण यह ग्रह सूर्य के चारों ओर एक चक्कर लगाने में 247 वर्षों की अवधि समेट लेता है। उसका व्यास 5000 किलो मीटर है। चूंकि यह अभी कुछ ही पहले प्रकाश में आया है, इसलिए विस्तृत अध्ययन, अनुसन्धान अभी तक नहीं हो पाया। फिर भी, जब किसी ग्रह की अवस्थिति ब्रह्माण्ड में है, तो वह वातावरण को अवश्य ही प्रभावित करेगा। हम उसके प्रभाव को समझ परख सकें, या नहीं—यह बात अलग है। केवल इतने के आधार पर किसी ग्रह की शक्ति, सत्ता और उसके प्रभाव को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

कुबेर और इन्द्र

सूर्य तो ग्रहराज है ही, उसके परिवार में आधुनिक मान्यतानुसार (खगोल-शास्त्र और भौतिक-विज्ञान की दृष्टि से) बुध, शुक्र, पृथ्वी, मङ्गल, गुरु, शनि, अरुण, वरुण और यम ये नवग्रह निरन्तर उसकी परिक्रमा करते हैं। इधर दो नये ग्रहों की खोज की गयी है—कुबेर तथा इन्द्र। परन्तु अभी तक इनके विषय में कोई ठोस, प्रामाणित और अध्ययनगत अनुभूत-तथ्य प्राप्त नहीं हुए, इसलिए अभी उन्हें न तो विशेष महत्त्व दिया जा रहा है और न इनकी स्थिति ही निर्विवाद है।

1. सूर्य

पौराणिक परिचय :

पौराणिक-मान्यता और ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार सूर्य देवता के विषय में (इसी प्रकार अन्य ग्रहों के विषय में भी) महर्षियों ने जो अवधारणा बनायी है, उसके सारांश में सूर्य का संक्षिप्त-परिचय इस प्रकार बताया गया है—

स्थिति-स्थान :

आकाश-मण्डल में, समस्त ग्रहों के विस्तार-क्षेत्र (अर्थात् सौर-मण्डल के प्रत्येक ग्रह के क्षेत्र) की अवस्थिति भिन्नतापूर्ण एवं एक-दूसरे से पर्याप्त दूरी पर है। कौन ग्रह कहाँ, किस स्थिति में है, और उससे

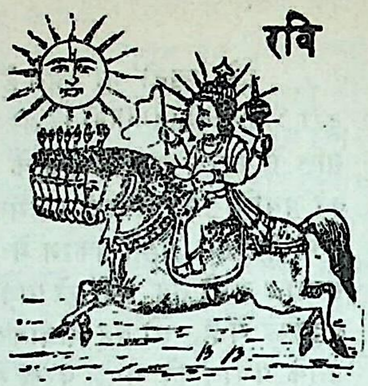

सम्बद्ध अन्य तथ्य क्या हैं, इस दृष्टि से सूर्य से विषय में प्रचलित है, कि यह ग्रहराज आकाश-मण्डल के ठीक मध्यभाग में स्थिति है। अन्य समस्त ग्रह इसके चारों ओर गोलाई में, विभिन्न दिशाओं में स्थित हैं, और एक निश्चित गति से इस ग्रह-सम्राट (सूर्य) की परिक्रमा करते रहते हैं।

मण्डल :

मण्डल अर्थात् दायरा (क्षेत्र) का विवेचन करके खगोल-मनीषियों ने प्रतिपादित किया है, कि आकृति और अवस्थिति के आधार पर समस्त ग्रहों का मण्डल एक-दूसरे से भिन्न है। मण्डल को छाया-क्षेत्र, प्रतिबिम्ब, पृष्ठभूमि, ज्योति-विस्तार की सीमा में आने वाला स्थान भी कहा जाता है। जैसे भिन्न रूपाकृतियों की छाया में आकृति का अन्तर होता है, उसी तरह किरण, तेज, प्रकाश, ऊष्मा और आकृति के आधार पर मण्डल भी एक जैसा न होकर, प्रत्येक ग्रह का अलग-अलग रूप में होता है। सूर्य का मण्डल वर्त्तुल है। यही कारण है, कि हम चित्रों में सूर्य को किरणों से युक्त एक गोल घेरे के रूप में देखते हैं। ब्रह्माण्ड की सीमा को नाप सकना असम्भव है, पर यह प्रमाणित हो चुका है, कि उसमें सबसे अधिक शक्तिशाली, तेजोमय, ज्वलन्त और आकार-विस्तार में बड़ा यही सूर्य ग्रह है।

माप :

सूर्य के आकार के विषय में, खगोल-शास्त्रियों के अनुसार सर्वसम्मत तथ्य अन्यत्र दिये गये हैं। यहाँ पौराणिक दृष्टि से सान्यता-प्राप्त अवधारणा प्रस्तुत की जा रही है। यद्यपि सूर्य का आकार बहुत बड़ा है, पृथ्वी-तल से (सामान्य दृष्टि में—बिना किसी दूरदर्शक-उपकरण के) दृष्टिपात होने वाला उसका व्यास बारह अंगुल का है। इसे हम सहज ही प्रातःकाल उदय अथवा सायंकाल अस्त होते हुए, सूर्य के बिम्ब को देखकर समझ सकते हैं।

प्रभाव-क्षेत्र :

स्वामित्त्व के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग स्वामित्त्व का अर्थ यह लगाते हैं, कि कौन-सा ग्रह पृथ्वी के किस क्षेत्र (भू-भाग)

का प्रतिनिधित्त्व करता है । इसके विपरीत कुछ विद्वानों की मान्यता है, कि आकाश-मण्डल में उदय होने पर कोई ग्रह सर्वप्रथम पृथ्वी के जिस भू-भाग पर दृष्टिगोचर होता है, वही उसके स्वामित्त्व क्षेत्र में आता है। अस्तु, थोड़े हेर-फेर से यही ध्वनि निकलती है, कि पृथ्वी के जिस भू-भाग से किसी ग्रह का विशेष सम्बन्ध हो, (प्रभावशीलता का क्षेत्र) वही उसका स्वामित्त्व-क्षेत्र है । इस दृष्टि से सूर्य का स्वामित्त्व-क्षेत्र कलिङ्ग-देश माना जाता है ।

गोत्र :

जिस आदि-पुरुष की वंश-परम्परा में आगामी पीढ़ी विकसित होती है, उसी के नाम पर गोत्र की कल्पना की जाती है । प्रारम्भ में जन-संख्या बहुत कम थी । कालान्तर में परिवार बढ़ते गये, और इस प्रकार सामाजिक-स्थिति में जन-संख्या का भारी परिवर्त्तन उत्पन्न हुआ । गोत्र का सामान्य आशय है, कि कौन व्यक्ति किस आदिपुरुष की परम्परा में जन्मा है । इस नियम के अनुसार, सूर्यदेवता को महर्षि कश्यप का वंशज होने के नाते कश्यप-गोत्रीय कहा जाता है । यही कारण है, कि सूर्य की विभिन्न स्तुतियों में 'काश्यप' शब्द का प्रयोग किया गया है । काश्यप का अर्थ है—कश्यप से उत्पन्न हुआ ।

वर्ण :

रङ्ग की दृष्टि से सभी ग्रह भिन्न-भिन्न वर्णों के हैं । उनसे विकसित होने वाली ज्योति-रश्मियाँ भी वैसी ही, विभिन्न वर्णों (रङ्गों) की होती हैं । सूर्य का वर्ण लाल है । लेकिन वह लाली सामान्य न होकर ताम्रवर्णी है, जिसमें लालिमा के साथ हल्की-गुलाबी झलक भी होती है ।

राशि-मण्डल में स्वामित्व :

वैसे तो समस्त आकाश (ब्रह्माण्ड) सूर्य से प्रभावित है, किन्तु अवस्थिति के आधार पर, आस-पास के तारा समूहों का (जिन्हें खगोल तथा ज्योतिष में 'राशि' की संज्ञा दी गयी है) स्वामित्त्व सभी ग्रहों का अलग-अलग है । समस्त तारा-समूह बारह राशियों में विभक्त हैं । और ये सभी (बारहों) राशियाँ नवग्रहों से नियन्त्रित होती हैं । सूर्य-ग्रह को 'सिंह' राशि का स्वामित्त्व प्राप्त है । आशय यह है, कि आकाश में सिंह राशि के क्षेत्र में आने वाला तारा-समूह सूर्य-ग्रह द्वारा विशेष रूप से अनुशासित और प्रभावित रहता है । इस प्रकार जिन व्यक्तियों की जन्म-

राशि सिंह होती है, उनके जीवन-प्रारब्ध को सूर्य-ग्रह सर्वाधिक प्रभावित करता है।

वाहन :

वाहन का अर्थ है—गतिशीलता का आधार अथवा साधन। व्यावहारिक-जीवन में हम गमनागमन के लिए वाहनों (सवारियों) का प्रयोग करते हैं। ऐसी कल्पना ग्रहों के विषयों में भी की गयी है। वास्तविकता यह है, कि कोई ग्रह जिन तारा-समूहों से घिरा हुआ, गतिमान रहता है, उनकी आकृति की कल्पना करके उस तारा-समूह को एक वाहन (पशु) का नाम दे दिया गया है। सूर्य-ग्रह के साथ गतिमान होने वाले तारा-समूहों से जिस आकृति की पृष्ठभूमि (छायाभास, प्रतिबिम्ब, आकार) बनती है, वह बहुत कुछ उस प्रकार की दीख पड़ती है, जैसे सात घोड़ों वाला कोई रथ चला आ रहा है, और सूर्यदेवता उस पर आसीन हैं। इसी आकृति-साम्य के आधार पर यह मान्यता प्रचलित हो गयी, कि सूर्यदेव सप्ताश्व रथ पर आरूढ़ होकर विश्व भ्रमण के लिए चलते हैं। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के वाहनों की भी कल्पना की गयी है। राशियों के आकार-निर्धारण में भी, यही कल्पना क्रियाशील रही है। एक तारा-समूह कुछ ऐसा है, कि उसके विन्दुओं को सीधी रेखाओं द्वारा मिला देने पर धनुष की आकृति बन जाती है। इसी आधार को बोध-गम्य और रोचक बनाने के लिए 'धनु' राशि की कल्पना की गयी। बारहों राशियों के नामकरण की पृष्ठभूमि में यही मान्यता प्रमुख रही है, और इसी आधार पर नवग्रहों के वाहनों को भी परिकल्पित किया गया है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर, उपासक-जन सूर्यदेवता (ग्रह) की आराधना करते समय स्तुयियों में, अथवा अन्य प्रकार से इन्हीं बिन्दुओं पर अपनी आस्था केन्द्रित करते हैं, कि भगवान सूर्य सप्ताश्व-रथ पर आरूढ़ हैं। उनका वर्ण लाल (ताम्रवर्णी) है, उनका मण्डल-व्यास बारह अंगुल का है, और वे 'सिंह' राशि के स्वामी हैं।

आधुनिक खगोल-शास्त्री भले ही सूर्य को देवता या ग्रह न मानकर, एक ज्वलन्त-पिण्ड मात्र स्वीकार करें, परन्तु उसकी क्षमता और विकिरण प्रभाव को वे स्वप्न में भी नहीं नकार सकते। सूर्य की रश्मियों में अद्भुत और अपरिमित शक्ति है, इस सत्य को देशी-विदेशी सभी वैज्ञानिक एक स्वर से स्वीकार करते हैं।

सूर्य-मन्त्र :

- ॐ आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्न मृत्रं मर्त्यं च ।
  हिरण्येन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन ।।

मन्त्र-साहित्य में सबसे प्राचानी ग्रन्थ 'वेद' है । यह मन्त्र वेदोक्त है । अतः वैदिक-मन्त्र होने के नाते यह सूर्य-मन्त्रों में सर्वाधिक प्राचीन और प्रभावी है ।

- जपा कुसुम सङ्काशं काश्यपेयं महत्द्युतिम् ।
  तमोऽरि सर्वं पापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ।।

[जप-संख्या 28000]

इस मन्त्र की गणना स्तुति में होती है । (वैसे सभी मन्त्र स्तुति-परक होते हैं) । यह उच्चारण में सरल है । लयात्मक श्लोक के रूप में होने से शीघ्र ही कण्टस्थ हो जाता है । सूर्यदेवता की कृपा अर्जित करने के लिए इसका दैनिक-पाठ करना चाहिए । नियमित संख्या में किया गया, इस श्लोक का पाठ अद्भुत प्रभाव की अनुभूति देता है । अनुष्ठान के रूप में प्रतिदिन एक हजार बार पाठ करके यदि सात दिनों में इसकी जप-संख्या 7000 पूरी करली जाये, तो वे अवश्य ही द्रवीभूत होकर साधक का सङ्कट दूर कर देते हैं ।

उपर्युक्त श्लोक के अतिरिक्त निम्नलिखित मन्त्र भी बहुत प्रभावी है । इनका नियमित रूप से शुद्ध उच्चारण के साथ पाठ करना बहुत कल्याणकारी होता है ।

- ॐ ह्रीं ह्रीं सूर्याय नमः ।
- ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः ।

तन्त्र-शास्त्र में सूर्योपासना के लिए इस मन्त्र को सर्वाधिक शक्तिशाली कहा गया है । जप-संख्या 7000 तो है ही, यदि कोई निष्ठावान और सहिष्णु-साधक अधिक जप कर सकता है, तो उसके लिए यह और भी हितकर होता है ।

- ॐ घृणिः सूर्याय नमः ।
- ॐ घृणिः सूर्य आदित्य ॐ ।

यह पौराणिक-मन्त्र है । सूर्य पुराण में इसका महत्त्व बड़े विस्तार से विवेचित हुआ है । इसके अतिरिक्त भी और कई मन्त्र तथा स्तोत्र हैं, जो सूर्योपासना में सहायक सिद्ध होते हैं । साधक अपने धैर्य, ज्ञान, सामर्थ्य

और अनुकूल वातावरण के आधार पर इनमें से किसी भी एक मन्त्र का नियमित रूप में विधिवत् जप करके लाभान्वित हो सकता है।

मन्त्र-साधना की विधि :

विधि-विधान के सम्बन्ध में यद्यपि कहीं-कहीं मतभेद भी मिलता है, तथापि यह तथ्य सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया है, कि साधना में निष्ठा, आस्था और शुचिता ही सफलता के प्रमुख स्तम्भ हैं। कुछ विशिष्ट-सामग्री भी अनिवार्य होती है। अनेक स्थलों पर कुछ निषेध और वर्जनाओं का भी उल्लेख किया गया है। अतः उचित यही होगा, कि साधना का व्यावहारिक-ज्ञान प्राप्त करने के लिए स्थानीय किसी योग्य पण्डित, पुरोहित, साधु-सन्त अथवा साधना का अनुभव रखने वाले गृहस्थ से परामर्श ले लिया जाय।

सबसे सरल और सहज-साध्य विधि यह है, कि किसी भी रविवार के दिन से ठीक सूर्योदय, के समय, साधना प्रारम्भ की जा सकती है। यों किसी पुरोहित से पूछ लेना अधिक उत्तम होता है। कारण कि साधना-प्रारम्भ के दिन भद्रा-पञ्चक जैसे अशुभ योग नहीं होने चाहिएं। सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त्त तो यह है, कि जिस रविवार को पुष्य नक्षत्र पड़ रहा हो, उस दिन से साधना प्रारम्भ की जाय। इसी प्रकार, अमृत-योग, सिद्धि-योग जैसे मुहूर्त्त भी उत्तम होते हैं। यथासम्भव यही प्रयास करना चाहिए कि प्रथम रविवार के दिन, जब कि साधना प्रारम्भ करनी है, किसी प्रकार का अमङ्गलकारी योग न हो। अशुभ मुहूर्त्त में प्रारम्भ की गयी साधना (बल्कि कोई भी कार्य) निर्विघ्न रूप में पूरी नहीं हो पाती। अनेक सकार के विघ्न और अवरोध साधक के लिए सङ्कट उत्पन्न कर देते हैं।

किसी अच्छे रविवार का निश्चय हो चुकने पर, उस दिन प्रातः-काल स्नानादि से निवृत्त होकर पूर्व की ओर मुँह करके उत्तम आसन पर बैठकर सूर्यदेवता की प्रतिमा, चित्र, यन्त्र अथवा प्रत्यक्ष सूर्यदेवता को ही अर्घ्य देते हुए स्नान करना चाहिए। तत्पश्चात् चन्दन, पुष्प, धूप, दीप आदि से पञ्चोपचार (सामर्थ्य हो तो षोड़शोपचार) पूजन करके, इस प्रार्थना के साथ कि 'हे सूर्यदेवता, मैं आपकी स्तुति कर रहा हूँ, इसमें जो भी त्रुटि हो, क्षमा करते हुए, मेरी पूजा स्वीकार कीजिए। अपनी रुचि और आस्था-सामर्थ्य के अनुसार किसी एक मन्त्र का मौन या मन्दतम स्वर में, शुद्ध-स्पष्ट जप करना चाहिए।

अनुष्टान के अनुसार, जप की संख्या पूरी हो चुकने पर (रविवार को प्रारम्भ किया गया, दैनिक-जप, किसी शनिवार को ही समाप्त करना चाहिए) अगले रविवार को पुनः नित्य की भाँति सूर्यदेवता का पूजन करके, उक्त मन्त्र के द्वारा आहुतियाँ देते हुए, हवन भी करना चाहिए। हवन में सामान्य हवन-सामग्री, जौ, अक्षत, मेवा, मिश्री, घी का प्रयोग होता है। इस बात को विशेष रूप से स्मरण रखें कि सूर्योपासना के सन्दर्भ में किये जाने वाले हवन में केवल मदार की लकड़ी का प्रयोग होता है। मदार के अतिरिक्त अन्य काष्ठ लाभकारी नहीं होते।

साधना-काल के पूरे दिनों में उपवास, फलाहार, एकाहार का बड़ा महत्त्व है। भूमि-शयन, सद्-चिन्तन, काम-क्रोधादि मनोवेगों का पूर्ण दमन और एकान्त-वास आवश्यक है। कोई भी साधना हो, ब्रह्मचर्य, शान्ति, इष्ट के प्रति अडिग आस्था और शारीरिक-मानसिक संयम को सर्वत्र वरीयता दी गयी है। एक तथ्य यह भी स्मरण रखने योग्य है, कि सूर्य-देवता की पूजा में तगर (एक प्रकार का श्वेत पुष्प-विशेष) के पुष्पों का प्रयोग सर्वथा वर्जित है।

हवन के पश्चात् सामर्थ्य के अनुसार ब्राह्मण-कन्याओं (बालिकाओं) को भोजन और दक्षिणा देकर उन्हें प्रणाम करना चाहिए।

दान आदि के लिए रविवार को ठीक सूर्योदय के समय गेहूँ, गुड़, ताम्र, सोना, लाल चन्दन, माणिक्य, तामड़ा, लाल वस्त्र और लाल पुष्प, लाल गौ आदि को श्रेष्ठ कहा गया है।

यदि किसी कारण से मन्त्र-जप सम्भव नहीं है, तो स्नान के पश्चात् सूर्यदेव की ओर मुँह करके आसन पर बैठकर निम्नलिखित स्तुतियों का पाठ करने से भी कल्याण का अनुभव होता है।

सूर्याष्टक :

आठ श्लोकों की यह स्तुति 'अष्टक' कहलाती है। अन्य देवी-देवताओं की स्तुतियाँ भी 'अष्टक' रूप में लिखी गई हैं। सूर्याष्टक भी कई रूपों में, विभिन्न मनीषियों द्वारा रचे गये हैं। श्रद्धा-भाव से, यथा सम्भव शुद्धतापूर्वक उच्चारण करते हुए, किसी भी स्तुति, अष्टक, श्लोक अथवा मन्त्र का पाठ किया जाय—वह अवश्य ही फलदायी होता है।

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्करः ।
दिवाकरं नमस्तुभ्यं प्रभाकरः नमोऽस्तुते ॥

सप्ताश्वरथमारूढं प्रचण्डं कश्यपात्मजम् ।
श्वेत पद्मधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ।।
लोहितं रथमारूढं सर्वलोक पितामहम् ।
महापाप हरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ।।
त्रैगुण्यं च महाशूरं ब्रह्मविष्णु महेश्वरम् ।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ।।
बृहितं तेजःपुञ्जं च वायुमाकाशमेव च ।
प्रभुं च सर्वलोकानां तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ।।
बन्धूक पुष्प संकाशं हारकुण्डल भूषितम् ।
एक चक्रधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ।।
तं सूर्यं जगत्कर्त्तारं महातेजः प्रदीपनाम् ।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ।।
तं सूर्यं जगतां नाथं ज्ञान विज्ञान मोक्षदम् ।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ।।

सूर्य की ध्यान-स्तुति :

भास्वद् रत्नाढ्य मौलिः स्फुरद धर चारु रञ्जित चारु केशो,
भास्वान यो दिव्यतेजाः करकमल युतः स्वर्णवर्णः प्रभासितं ।
विश्वाकाशावकाशो गुणगण सहितो भाति यश्चोदयाद्रौ,
सर्वानन्द प्रदाता हरिहर नमितः पातु मां विश्वचक्षुः ।।

सूर्य-स्तवन :

दिवाकर-दिनकर नाम से विख्यात भगवान सूर्य का आकाश-मण्डल में आगमन ही वास्तव में सञ्चार की चेतना, प्राण-शक्ति, कार्य-क्षमता और सृष्टिगति का सञ्चालन करता है। इसलिए हमारे आदि-मनीषियों ने व्यवस्था दी थी, मनुष्य को प्रातःकाल जागने पर सर्वप्रथम भगवान भास्कर के दर्शन एवं उनकी स्तुति करनी चाहिए। कारण कि विश्व-ब्रह्माण्ड के अणु-अणु में उन्हीं (सूर्यदेव) की शक्ति से क्रियाशीलता विद्यमान है। और इस प्रकार वे ही जगत् के प्राण-पोषक देवता हैं।

प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रणीत, प्रभात-बेला में सर्यदेव के स्तवन हेतु एक स्तुति इस प्रकार है—

प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं,
रूप हि मण्डलमृचोऽथ तनुर्यं जूंषि ।।

क्षामानि यस्य किरणाः प्रभवादि हेतुं,
ब्रह्मा हरात्मक लक्ष्म्यम चिन्त्यरूपम् ।।
प्रातर्नमामि तरणि तनुवाङ्मनोभिः,
ब्रह्मेन्द्र पूर्वक सुरैर्नतमर्चितं च ।
वृष्टि प्रमोचन विनिग्रहहेतु भूतं,
त्रैलोक्य पालन परं त्रिगुणात्मकं च ।।
प्रातर्भजामि सवितारमनन्त शक्तिं,
पापौघ शत्रुभय रोग हरं परं च ।
तं सर्वलोक कलनात्मक कालमूर्तिं,
गो कण्ठ बन्धन विमोचनमादि देवम् ।।

सूर्य मण्डलाष्टकम् :

भगवान सूर्य की विभिन्न स्तुतियों-अष्टकों में एक यह भी बहुत प्रसिद्ध हैं—सूर्यमण्डलाष्क । इसकी रचना बहुत ही ललित, मधुर, लययुक्त छन्द में की गयी है। श्रद्धापूर्वक किया गया, इसका लयात्मक-पाठ, साधक को तत्काल आत्म-तुष्टि एवं दिव्य आनन्द की अनुभूति प्रदान करता है।

नमः सवित्रे जगदेक चक्षुषे,
जगत्प्रसूति स्थिति नाश हेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मक धारिणे,
विरञ्चि नारायण शंकरात्मनें ।।

यन्मण्डलं दीप्तिकरं विशालं,
रत्नप्रभं तीव्रमनादि रूपम् ।
दारिद्रय दुःख क्षय कारणं च,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।

यन्मण्डलं देवगणैः सुपूजितं,
विप्रैः स्तुतं भावनमुक्ति कोविदम् ।
तं देवदेवं प्रणमामि सूर्यम्,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।

यन्मण्डलं ज्ञानघनं त्वगम्यं,
त्रैलोक्य पूज्यं त्रिगुणात्म रूपम् ।
समस्त तेजोमय दिव्यरूपं,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।

यन्मण्डलं गूढ़मति प्रबोधं,
धर्मस्य वृद्धि कुरुते जनानाम् ।
यत्सर्व पाप क्षय कारणं च,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।
यन्मण्डलं व्याधि विनाश दक्षम्,
यदृग्यजुः साम सु सम्प्रगीतम् ।
प्रकाशितं येन च भूर्भुवः स्वः,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।
यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति,
गायन्ति यच्चारण सिद्ध संघाः ।
यद्योगिनो योगजुषां च संघाः,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।
यन्मण्डलं सर्वजनैषुपूजितं,
ज्योतिश्च कुर्यादिह मर्त्यलोके ।
यत्काल कल्पक्षय कारणं च,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।
यन्मण्डलं विश्वसृजां प्रसिद्धं,
उत्पत्ति रक्षा प्रलय प्रगल्भम् ।
यस्मिन् जगत् संहरतेऽखिलं च,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।
यन्मण्डलं सर्वगतस्य विष्णोः,
आत्मा परं धाम विशुद्ध तत्त्वम् ।
सूक्ष्मान्तरैः योगपथानुगम्यं,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।
यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति,
गायन्ति यत् चारण सिद्ध संघाः ।
यन्मण्डलं वेदविदः स्मरन्ति,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।
यन्मण्डलं वेदविदोपगीतं,
यद्योगिनां योगपथानुगम्यम् ।
तत्सर्व वेदं प्रणमामि सूर्यम्,
पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।

सूर्य-पीड़ा का प्रभाव :

यदि जन्म-कुण्डली में, अथवा अन्य किसी स्थिति में सूर्य-ग्रह की स्थिति प्रतिकूल होती है, तो तज्जन्य पीड़ा-प्रभाव से व्यक्ति को अनेक प्रकार के कष्ट झेलने पड़ते हैं, वैसे शारीरिक-क्लेश, मानसिक-उत्तेजना, क्रोध, अशान्ति, राजकोप, पित्तदोष, ज्वर, मिर्गी, उदर-विकार, चर्मरोग, नेत्र-पीड़ा आदि ।

सूर्य यन्त्र :

यन्त्र भी मन्त्रों का स्वरूप होते हैं, जिनकी आकृति में सम्बन्धित-देवता का वास होता है । यन्त्रों की रचना सामान्य रेखाङ्कन मात्र न होकर विज्ञान-सम्मत होती है । यह मानना चाहिए, कि चित्र और प्रतिमा की भाँति ही रेखा-बिन्दु निर्मित-यन्त्र भी किसी देवता का प्रतिरूप होते हैं ।

सूर्य-यन्त्र

६	१	८
७	५	३
२	९	४

कुछ यन्त्र रेखा-प्रधान होते हैं, कुछ आकृति-प्रधान और कुछ संख्या-प्रधान । किसी-किसी यन्त्र में बीजाक्षरों का प्रयोग होता है । बीजाक्षर एक सम्पूर्ण मन्त्र होता है । अस्तु, इष्ट-साधत्ता के लिए जिस यन्त्र का निर्देश हो, उसे वैसा ही बनाकर, विधिपूर्वक उसकी पूजा करनी चाहिए ।

यहाँ सूर्यदेव की उपासना का एक सर्वसुलभ और सरलतम यन्त्र (चित्र) प्रस्तुत है । इसकी रचना करके यदि नियमपूर्वक पूजन किया जाय, तो सूर्य-ग्रह के समस्त दोष शान्त हो जाते हैं, और शुभ-प्रभाव की वृद्धि होती है ।

रचना विधान :

रवि-पुष्य योग के दिन भोजपत्र पर, अनार की लेखनी से अष्टगन्ध अथवा लाल चन्दन के द्वारा इस यन्त्र की रचना की जाती है । साधक को चाहिए, कि वह प्रातःकाल स्नान-पूजा से निवृत्त होकर, शुद्ध एकान्त-स्थान में, पवित्र आसन पर बैठकर उपर्युक्त उपकरणों से यन्त्र की रचना करे ।

यह सबसे सरल और सहज-सुलभ विधि है। यों यदि सामर्थ्य हो तो ताँबे के पत्र पर (स्वर्ण पत्र पर भी) इसे उत्कीर्ण कराया जा सकता है। धातु-पत्र पर इसकी रचना करने के पश्चात् गङ्गाजल अथवा कूप-सरिता जल से स्नान कराकर पञ्चोपचार या षोड़शोपचार-पद्धति से पूजा करनी चाहिए। पूजन के समय यह ध्यान रहे, कि यन्त्र को स्नान कराने के बाद काठ के पीढ़े पर कोई नवीन लाल वस्त्र बिछाकर उस पर स्थापित करें, और उसे साक्षात् सूर्यदेवता मानकर ही सारी पूजा-अर्चना सम्पन्न करें।

यन्त्र लिखने (बनाने) का प्रारम्भ करने से लेकर पूजन तक अवि-राम-गति से, निरन्तर, मौन स्वर में सूर्यदेवता का स्मरण करते रहना चाहिए। इसके लिए ऊपर लिखे मन्त्रों में से कोई भी एक जप सकते हैं।

पूजनोपरान्त, सूर्यदेवता की कोई स्तुति (ऊपर लिखी जा चुकी हैं) पढ़कर, उनसे त्रुटियों की क्षमा-याचना करते हुए, माला के आधार पर मन्त्र जपना चाहिए। जप-संख्या का सङ्कल्प पहले ही कर लेना उचित रहता है। इस प्रकार एक रविवार से प्रारम्भ की गयी, पूजा और जप को लगातार एक सी विधि से (यन्त्र-रचना केवल एक बार होती है, शेष दिनों में उसकी पूजा मात्र की जाती है) जारी रखते हुए, अभीष्ट संख्या की पूर्त्ति किसी रविवार को ही की जाय। तत्पश्चात् 108 बार उसी मन्त्र की आहुतियों से हवन करके सामर्थ्यानुप्रार ब्राह्मण-बालकों को भोजन-दान दिया जाय। इस प्रकार अनुष्टान की समाप्ति पर उक्त यन्त्र को साक्षात् सूर्यदेवता मानकर, पूजा-गृह, प्रतिष्ठान, तिजोरी जैसे किसी एकान्त पवित्र-स्थान में रख देना चाहिए। आवश्यकतानुसार ताँबे के कवच या लाल वस्त्र में लपेटकर धारण भी कर सकते हैं।

विधिवत् पूजा द्वारा सिद्ध किया गया, सूर्य-यन्त्र जहाँ भी रहता है, दरिद्रता, अज्ञान, भय, भ्रम और अपमान का शमन करके ओज तेज, सौभाग्य, ज्ञान और श्री-सम्मान की वृद्धि करता है।

सूर्य रत्न :

रत्नों में निस्सन्देह अद्भुत और सुनिश्चित प्रभाव निहित रहता है। किन्तु किस ग्रह के लिए कौन-कौन-सा रत्न धारण किया जाय, इसका विवेचन विवादास्पद है, इस विषय पर विद्वानों में गम्भीर मतभेद है। सर्वसम्मत तथ्य यह है, कि किसी मर्मज्ञ-ज्योतिषी को जन्म-कुण्डली दिखाकर, उससे यह परामर्श लेना चाहिए, कि कुण्डली के बारहों भावों, बारहों

राशियों और नवों-ग्रहों की स्थिति तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध-प्रभाव की दृष्टि से कौन-सा रत्न धारण करना हितकर होगा। तभी कोई रत्न पहनना लाभप्रद होता है। केवल इस आधार पर कि शनि का रत्न नीलम है, तो शनि के लिए नीलम पहय लिया जाय—यह बहुत भ्रामक और घातक निर्णय है।

प्रत्येक रत्न अपने से सम्बन्धित ग्रह की रश्मियों को खींचकर शरीर में उनका प्रभाव बढ़ाता है। ऐसी स्थिति में वह ग्रह शुभ-अशुभ जैसा भी प्रभाव दे रहा है, रत्न धारण के उपरान्त उसी प्रभाव की वृद्धि होगी। अन्य ग्रहों का सामञ्ज्य भी इस प्रभाव को घटा-बढ़ा देता है। अत: यथा-सम्भव रत्न-धारण को वरीयता न देकर, केवल स्तुति, मन्त्र-जप और यन्त्र-पूजन का अवलम्ब ग्रहण करना चाहिए। यदि रत्न धारण करना आवश्यक है, और इतनी सामर्थ्य है, कि शुद्ध वास्तविक-रत्न खरीदा जा सकता है, तो उसके पूर्व किसी सुयोग्य विद्वान का परामर्श अवश्य ले लेना चाहिए। साधकों की आस्था का शोषण करने वाले कितने ही परामर्श-विक्रेता आज गली-गली घूम रहे हैं, ऐसे धनीषी-जनों से सावधान रहना चाहिए।

सूर्य-ग्रह का रत्न माणिक्य है, जिसे लाल, लालड़ी तथा रूबी भी कहते हैं। यह मूल्यवान् और दुर्लभ रत्न है। उपरत्न के रूप में इसके स्थान पर सामड़ा (गारनेट) का उपयोग किया जा सकता है।

2. चन्द्रमा

पौराणिक–सन्दर्भ :

चन्द्रमा की रचना शुभ एवं सौम्य ग्रहों में की जाती है। व्यक्ति के जीवन में चन्द्र-ग्रह का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह अनुकूल स्थिति में श्री, सौन्दर्य, सम्मान, पारिवारिक-सुख, प्रभाव, यश और वैभव सब कुछ प्रदान करता है। निर्बल अथवा विपरीत होने पर उपर्युक्त गुणों में क्षीणता उत्पन्न करता है। प्रकृति के जितने भी आयाम हैं, उनमें चन्द्रमा सबसे अधिक शोभन, शान्त, शीतल और सुखदायक है।

चन्द्रमा के गुणों से युक्त व्यक्ति अवश्य ही सुन्दर, मृदुभाषी, कला-प्रिय, सम्मानित, विलासानुरागी, सत्यनिष्ठ, सहज-विश्वासी, सहसा-

प्रवर्त्ती, दयालु, परोपकारी, मेधावी, अनेक विषयों का ज्ञाता, अध्यात्म और गुप्त-विद्याओं में रुचि रखने वाला, स्त्रियों में आकर्षण का केन्द्र और मित्रों से स्नेह प्राप्त करने वाला होता है। जन्म-कुण्डली के निर्माण में जातक के जन्म-समय की चन्द्र-स्थिति ही सम्पूर्ण कुण्डली की रचना का मूल आधार होती है। व्यक्ति की राशि और उसके अनुसार नक्षत्र तथा राशि-नाम का निर्णय करने में चन्द्रमा की स्थिति ही मार्ग-निर्देशन करती है।

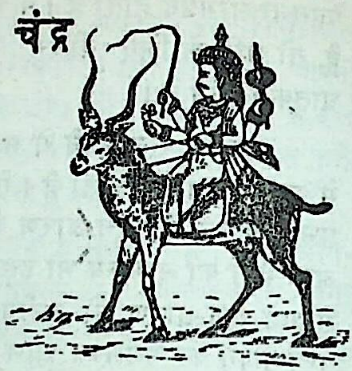

ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार, चन्द्रमा की स्थिति प्रत्येक राशि अर्थात् आकाश के तारा-समूहों में बहुत कम समय के लिए (मात्र सवा-दो दिन) होती है। सर्वाधिक गतिशील यह ग्रह पन्द्रह दिनों तक लगातार वर्द्धमान रहता है और उसके बाद उसी क्रम से पन्द्रह दिनों तक इसकी कलाएं क्षीण होती रहती हैं। यही कारण है कि कृष्णपक्ष में हम इसे दिन-प्रतिदिन क्षीण होता हुआ देखते हैं और अमावस्या की रात्रि में यह सर्वथा लुप्त हो जाता है। इसके बाद शुक्लपक्ष का प्रारम्भ होते ही प्रतिदिन इसका बिम्ब और प्रभा-मण्डल उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ दीख पड़ता है। पन्द्रहवें दिन इसका पूर्ण आकार दृष्टिगोचर होता है। शुक्लपक्ष का पन्द्रहवाँ दिन 'पूर्णमासी' कहलाता है। इस रात्रि का चन्द्रमा अपनी समस्त (सोलह) कलाओं से युक्त, पूर्णरूप से आलोकित, क्रान्ति और प्रभा से सम्पन्न, अतीव शोभन, शीतल, शान्तिप्रद और सुखदायक होता है। आपराधिक-मनोवृत्ति वाले धूर्त्त लोगों (चोर-डाकुओं) को छोड़कर कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा, जिसे चन्द्रमा से अनुराग न हो। बल्कि चोर-डाकू भी केवल अपने अपराध-कर्म के समय इसकी उपेक्षा करते हैं, अन्यथा व्यक्तिगत जीवन में वे भी इसके प्रकाश (चाँदनी) का सुख भोगते हैं। अपनी मोहक-आभा और आकर्षक-सौन्दर्य के कारण चन्द्रमा को संसार के सभी धर्मों और जाति-वर्गों में सुन्दरता का चरम-बिन्दु माना जाता है। साहित्यकारों के मध्य यह विश्व-विख्यात सौन्दर्य-प्रतीक है और कविगण अपनी रचनाओं में किसी रमणी के रूप का वर्णन करते हुए, उसके मुख की उपमा हेतु चन्द्रमा का ही उदाहरण देते हैं।

अस्तु, नवग्रहों में परिगणित और अत्यधिक प्रभावशाली चन्द्र-ग्रह की उपासना से मानव-जीवन में अनेक प्रकार सुख-सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। स्वास्थ्य, सौन्दर्य, श्री-समृद्धि, मान-सम्मान और सुख-शान्ति के लिए चन्द्रदेव की उपासना बहुत ही लाभदायक होती है। ज्योतिष-शास्त्र के अन्तर्गत इसकी अनुकूलता और प्रतिकूलता के प्रभावों का वर्णन बड़े विस्तार से प्राप्त होता है। पूजा, जप, तप, मन्त्रोपासना और यन्त्र-साधना के द्वारा चन्द्रमा के आलौकिक प्रभाव की अनुभूति सरलता से हो जाती है। निष्ठा और नियमपूर्वक चन्द्र-स्तवन करने से व्यक्ति को अनेक प्रकार की भौतिक-व्याधियों से मुक्ति मिल जाती है।

दैनिक-पूजा के रूप में यदि चन्द्रमा की उपासना की जाये तो बहुत लाभ होता है। दोष और अवरोध तो मिट ही जाते हैं, सामान्य-रूप से भी अनेक प्रकार की सुखद स्थितियाँ, साधक को शान्ति प्रदान करती हैं।

चन्द्र ग्रह का सामान्य परिचय :

पुराणों में सागर-मन्थन की कथा के अन्तर्गत यह उल्लेख मिलता है कि मन्थन-क्रिया के फलस्वरूप सागर से चौदह रत्न (विशिष्ट वस्तुएं) प्राप्त हुए थे। उनमें एक चन्द्रमा भी था। रत्नों का यथायोग्य बँटवारा होने पर चन्द्रमा को शिवजी ने अपने मस्तक पर धारण कर लिया था, क्योंकि वे उस हलाहल विष का पान कर चुके थे, जिसके समुद्र से निकलते ही देव-दानव-समुदाय में त्राहि-त्राहि मच गई थी। चन्द्रमा की किरणों में शीतलता थी, और शिवजी कण्ठ में विष धारण किये होने के कारण उसके ताप का अनुभव कर रहे थे। अतः अपनी जटाओं में चन्द्रमा को स्थापित करके उन्होंने उसकी शीतल किरणों से विषजन्य ताप का शमन किया। इसी प्रकार कुछ अन्य कथाओं में चन्द्रमा को स्त्री-गुण-प्रधान देवता माना गया है। जो भी हो, नवग्रहों में चन्द्रमा का स्थान महत्त्वपूर्ण है, और उसके सौन्दर्य तथा शीतलता की सर्वत्र प्रशंसा होती है।

स्थिति-स्थान :

आकाश-मण्डल का विस्तार यद्यपि अनन्त है, और ऐसी स्थिति में उसके किसी क्षेत्र का दिशा-निर्धारण करना असम्भव प्रायः है। किन्तु खगोल-शास्त्रियों एवं ज्योतिर्विदों ने गणना तथा माप के आधार पर प्रतिपादित किया है कि पृथ्वी को आधार मानकर यदि आकाश की अवस्थिति की कल्पना की जाय, तो चन्द्रमा की स्थिति आग्नेय-दिशा अर्थात् अग्नि-

कोण में मानी जायेगी। इस प्रकार आकाश में चन्द्रमा को अग्निकोण का स्थान प्राप्त है।

मण्डल :

आकाश का विवेचन करने वाले खगोल-शास्त्रियों ने गहन गवेषणा के पश्चात् निष्कर्ष निकाला है कि चन्द्रमा का मण्डल (आकार-दायरा) चतुरस्र अर्थात् चौकोर है। यद्यपि वह पृथ्वी पर से गोलाकार दृष्टिगोचर होता है, पर यह गोलाकृति सदैव नहीं रहती। कृष्णपक्ष में उसका आकार निरन्तर क्षीण होता रहता है और शुक्लपक्ष में उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ, पूर्णमासी के दिन गोल (थाली जैसा) दीख पड़ता है। यों, दूर से सभी तारे और ग्रह गोलाकार दीख पड़ते हैं, परन्तु वास्तव में वे गोल नहीं हैं—उनके रूपाकार में बहुत अधिक भिन्नता है।

चन्मा के बिम्ब का माप बहुत कम, केवल चार अंगुल माना जाता है। यद्यपि इस पौराणिक-मान्यता को खगोल और भौतिक-विज्ञान के विद्वान् स्वीकार नहीं करते, उनके अपने भिन्न निष्कर्ष और सिद्धान्त हैं, तथापि पौराणिक-सन्दर्भ में यही धारणा प्रचलित है कि इस परिवर्त्तनशील ग्रह (चन्द्रमा) का बिम्ब-माप केवल चार अंगुल है। एक भेद यह भी है कि हमें सूर्य और चन्द्रमा के बिम्व लगभग समानाकार दिखाई पड़ते हैं, परन्तु वे समान नहीं हैं। सूर्य का आकार चन्द्रमा से बहुत बड़ा (कई गुना अधिक बड़ा) है, किन्तु वह पृथ्वी से बहुत दूर है, जबकि चन्द्रमा अपेक्षाकृत बहुत निकट है। यही दूरी का अन्तराल दोनों को समान आकार में प्रदर्शित करता है।

प्रभाव क्षेत्र :

जिस प्रकार सूर्य को पृथ्वी-मण्डल पर कलिङ्ग-देश का स्वामी स्वीकार किया गया है, उसी प्रकार चन्द्रमा को यमुना-नदी के तटवर्ती-प्रदेश (मैदानी-भाग) का स्वामी माना गया है।

स्वामित्त्व के विवेचन में यह तथ्य स्मरणीय है कि पुराणकारों का विश्व-विवेचन मात्र भारत-देश के भू-भाग तक हो रहा है। (सीमावर्ती देश भी इसमें आते हैं), इसलिए उनकी समस्त स्थापनाएं, सिद्धान्त और निष्कर्ष केवल भारत-देश की भूमि तक ही सीमित रहे हैं। ऐसा न होता तो सुदूर यूरोप अथवा अमेरिका के किसी प्रदेश या नभ-खण्ड का वर्णन उन्होंने अवश्य किया होता।

गोत्र : :

जन्म, वंश-परम्परा, आदिपुरुष और पारिवारिक-सन्दर्भों के अन्तर्गत चन्द्रमा को अत्रि-मुनि का वंशज बताया गया है। अत्रि-गोत्र में उत्पन्न चन्द्रमा के विषय में कई कथाएं प्रचलित हैं। कहा जाता है कि अत्रि-पत्नी अनुसूयाजी के तपोबल ने एक बार चारित्रिक-परीक्षा के लिए आये हुए यती-स्वरूप त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) को नवजात-शिशुओं के रूप में परिवर्त्तित कर दिया था। बाद में जब सती अनुसूया जी ने उन्हें उनकी वास्तविक-काया तदान की, तो उन्होंने स्वयं अपने तेजांश से—तीन सन्तानों के रूप में, अनुसूयाजी के गर्भ से जन्म लिया। उन तीन पुत्रों में ब्रह्मा के अंश से सोम (चन्द्रमा) की, विष्णु के अंश से दत्त प्रभु की और शिव के अंश से दुर्वासा मुनि की उत्पत्ति हुई थी। इस आधार पर चन्द्रमा को अत्रि-गोत्र में उत्पन्न माना जाता है। सोम, सुधांशु, दिशापति, तारापति, मयङ्क, शशि, हिमांशु और अमृत-वर्षी—ये सन चन्द्रमा के पर्यायवाची शब्द (अतिरिक्त) नाम हैं।

वर्ण :

रङ्ग, आभा, प्रकाश और तेज की विवेचना करते हुए महर्षियों ने चन्द्रमा को श्वेत-वर्णीय ग्रह प्रतिपादित किया है। वैसे भी हम देखते हैं कि रात में चन्द्रमा का प्रकाश श्वेत-वर्ण का होता है। श्वेत-वर्णीय होने के नाते ही उस प्रकाश को 'चाँदनी' कहते हैं। चाँदनी के वर्णन में साहित्यकार-गण, दूधिया, हिमानी, शुभ्र-चादर, बर्फ, रजत-प्रभा आदि विशेषणों का प्रयोग करते हैं।

अस्तु, यह निर्विवाद तथ्य है कि चन्द्रमा का प्रकाश उसके वर्ण के आधार पर ही, श्वेत और नितान्त शीतल है। उसमें नहाने (चाँदनी में बैठने) से एक प्रकार की पुलकभरी शान्ति और शीतलता का अनुभव होता है।

राशि-मण्डल में स्वामित्त्व :

जिस प्रकार सूर्य-ग्रह को 'सिंह' राशि के तारा-समूह का स्वामित्त्व प्राप्त है, उसी प्रकार चन्द्रमा का 'कर्क' राशि पर स्वामित्त्व माना जाता है। कर्क राशि के अन्तर्गत आने वाले तारा-समूह पर, उनके क्षेत्र पर चन्द्रमा का प्रभाव (अनुशासन) विशेष रूप से रहता है। इस कारण कर्क राशि वाले व्यक्ति वहुधा चन्द्रमा से प्रभावित रहते हैं। ज्योतिष के अनुसार कर्क राशि वाले लोगों को चन्द्रमा का प्रभाव विशेषरूप से लाभ-हानि

देता है। कर्क राशि का चन्द्रमा अनुकूल ग्रह और नक्षत्र पाकर यदि कुण्डली के श्रेष्ठ भाव में विराजमान हो तो ऐसा जातक राजसुख भोगने का अधिकारी होता है। कर्क राशि वालों को कल्पना-प्रवण, शिल्पकार, प्रणयी, उदार, सुन्दर, स्वस्थ, सम्मानित, विलासी और मानवीय-गुणों से युक्त करने में मुख्य कारक यही होता है—चन्द्रमा का स्वामित्व। ऐसे लोगों के हाथ में यदि चन्द्र-रेखा हो तो वे निश्चय ही अपना मार्ग स्वयं बनाकर एक दिन उन्नति के शिखर पर आसीन होते हैं।

वाहन :

चन्द्रमा का वाहन मृग है। यद्यपि 'मृग' शब्द का सामान्य अर्थ वन्य-पशु 'हरिण' होता है परन्तु जहाँ तक चन्द्र-वाहन होने की बात है, सम्भवतः यह प्रतीकात्मक शब्द है। मृग तीव्रगामी पशु है। चन्द्रमा का रूप, गुण, स्वभाव और प्रभाव भी तीव्रगामी (अस्थिर) होता है। जिस प्रकार उसका रूप नित्य परिवर्त्तित होता रहता है उसी प्रकार उसके गुण-प्रभाव में भी अन्तर आता रहता है। चन्द्रमा मन का प्रतीक है और मृग भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः स्पष्ट है कि चन्द्रमा का वाहन मृग बताने के पीछे कोई प्रतीकात्मक सत्य अवश्य निहित है।

और, यदि आस्था के नाते, यही मान लें कि वास्तविक हरिण ही (वन्यपशु) चन्द्रमा का वाहन है, तो कोई हानि नहीं है। देवी-देवताओं के लिए असम्भव भी सहज सम्भव है। हो सकता है, चन्द्रदेव ने वन्य-पशु हरिण को ही अपना वाहन बनाया हो।

चन्द्रोपासना के मन्त्र :

आर्ष-ग्रन्थों में चन्द्रोपासना के अनेक मन्त्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। भारतीय वाङ्मय में वेदों को सर्वाधिक प्राचीन साहित्य माना जाता है। वेदों में अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश के सम्बन्ध में बहुत से उपासना-मन्त्र वर्णित हैं। कालान्तर में पुराणकारों ने भी ऐसे मन्त्रों की रचना की और बाद में तन्त्राचार्यों ने भी उस परम्परा को आगे बढ़ाया।

आस्था, सुविधा और सामर्थ्य के अनुसार किसी भी प्रकार का (वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक) स्तुति-मन्त्र जपने से लाभ की अनुभूति होती है। पाठकों की सुविधा हेतु यहाँ तीनों प्रकार के चन्द्र-मन्त्र लिखे जा रहे हैं। विधिवत् उपासना करने पर प्रत्येक मन्त्र का प्रभाव दृष्टिगोचर होगा।

यों, साधना-उपासना के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थों में मतभेद भी हैं। कुछ का निर्देश तो इतना जटिल और आज के युग में अव्यावहारिक है कि उसके पढ़ते ही पाठक हतोत्साह हो जाता है। किन्तु अधिकांश मनीषियों का मत है कि श्रद्धा-आस्था को वरीयता देकर, उपलब्ध साधन-सुविधा के आधार पर यदि निष्ठापूर्वक साधना की जाये, तो वह अवश्य ही प्रभावशाली होती है, भले ही वह विधि-विधान प्राचीन ग्रन्थों के निर्देश से अन्तर रखता हो।

चन्द्रोपासना के लिए नीचे लिखे मन्त्रों का नियमित-जप करने से थोड़े ही समय में साधक को अपनी स्थिति में आये हुए अन्तर की अनुभूति होने लगती है। यदि चन्द्रमा की महादशा चल रही हो (ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार, महादशा-काल में, चन्द्रमा प्रत्येक राशि पर दस वर्षों तक रहता है) उस समय साधक-नियमितरूप से चन्द्रोपासना करता रहे, तो वह बहुत लाभान्वित हो सकता है। यह उपासना चन्द्र-स्थिति के दोषों का शमन करती है, और गुणों की वृद्धि करके सुख-शान्ति के साधन प्रदान कराती है।

प्रतिकूल चन्द्रमा :

यदि किसी व्यक्ति का चन्द्र-ग्रह प्रतिकूल स्थिति में हो तो उसे चन्द्र पीड़ा के प्रभाव-स्वरूप मानसिक-विक्षेप के साथ-साथ कुछ इस प्रकार की शारीरिक-व्याधियाँ भी घेर सकती हैं—कफजन्य-विकार, नासा-रोग, रक्त-विकार, पाण्डरता, अतिसार और क्षय आदि।

चन्द्र-मन्त्र :

- दधि शंख तुषाराभं, क्षीरोदार्णव सव्यहम्।
  नमामि शशिनं सोमं, शम्भोर्मुकुट भूषणम्॥ [जप-संख्या 44000]

दैनिक-पूजा में स्तुति की भाँति इस लयबद्ध श्लोक का पाठ करना निश्चित रूप से लाभकारी होता है। समर्थजन इसका पाठ अधिक संख्या में (1, 2, 5, 7 माला नित्य) भी जप कर सकते हैं।

वेदों में चन्द्रमा के स्तवन हेतु इस मन्त्र को बहुत प्रभावशाली कहा गया है—

- ॐ इमन्देवाऽअसपत्न ठं सुबध्वं महते क्षत्राय महते ज्येष्ठ्याय महते जानराज्ययायेन्द्रिस्येन्द्रियाय इममुमुख्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विषड-एशवोमी राजा। सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां ठं राजा।

- वैदिक-काल के अन्तर पौराणिक और तान्त्रिक-युग में भी विभिन्न प्रकार के मन्त्रों की रचना हुई थी। उन दिनों मुद्रण-कला का विकास नहीं हुआ था, अवः समस्त शिक्षा-उपदेश मौखिक रूप से गुरु द्वारा शिष्यों को प्रदान किये जाते थे। पीढ़ियों तक यही परम्परा चलती रही। बाद में इन्हें लिपिबद्ध किया जाने लगा। अस्तु, वैदिक अथवा पौराणिक 'ॐ सों सोमाय नमः।' किसी भी मन्त्र का जप करके साधक स्वयं को चन्द्रदेव का कृपा-पात्र बना सकता है।
- वैदिक और पौराणिक-मन्त्रों की भाँति तान्त्रिक-साधना के मन्त्र भी अद्‌भुत शक्तिशाली होते हैं। यह तो साधक की आस्था और रुचि पर निर्भर है कि वह किस मन्त्र द्वारा साधना करके स्वयं को चन्द्रदेव का अनुग्रह-पात्र बनाता है। तान्त्रिक चन्द्र-मन्त्र इस
- ॐ ऐं ह्रीं सोमाय नमः। अथवा—
- ॐ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्राय नमः।

साधना-विधि :

चन्द्रोपासना के लिए प्रारम्भिक दिन सोमवार होना चाहिए। किसी पुरोहित से पूछकर किसी अच्छी शुभ तिथि वाला सोमवार मालूम कर लेना विशेष उत्तम होता है। शुभ नक्षत्र और शुभ योग से युक्त सोमवार के दिन प्रारम्भ की गयी चन्द्रोपासना विशेष रूप से लाभकारी होती है।

वैसे तो, प्रातःकाल स्नानोपरान्त किसी भी देवता की पूजा की जा सकती है, परन्तु किसी-किसी पूजा में समय-विशेष को मान्यता दी जाती है। चन्द्र-पूजन के लिए सर्वोत्तम समय वह है, जब आकाश में चन्द्रमा दृष्टिगोचर हो रहा हो और पृथ्वी पर उसका प्रकाश (चाँदनी) फैला हुआ हो। विकल्प रूप में चन्द्रदेव की प्रतिमा, यन्त्र अथवा चित्र का भी प्रयोग कर सकते हैं।

श्वेत पुष्प, श्वेत चन्दन और खीर का नैवेद्य—यह चन्द्र-पूजा के प्रमुख उपादान हैं। पुष्प, धूप-दीपादि से चन्द्रमा की पूजा करके नियमित-रूप से मन्त्र का जप करना चाहिए। इसमें साधक को श्वेत वस्त्र धारण करना आवश्यक रहता है। मन्त्र-जप के समय शुद्ध घी का या कपूर का दीपक जलाये रखना चाहिए। मन्त्र-जप में प्रयुक्त होने वाली माला श्वेत चन्दन की हो अथवा मोती की, या फिर स्फटिक अथवा शंख की माला का प्रयोग करना चाहिए।

साधना-काल में शान्त-एकान्त स्थल, एकाहार, फलाहार, भूमि-

शयन-श्वेतवस्त्र और आसन का प्रयोग अनिवार्य होता है। पूजनोपरान्त (अभीष्ट संख्या में मन्त्र जप पूरा हो चुकने पर किसी सोमवार के दिन ही) उसी मन्त्र को पढ़ते हुए 108 आहुतियाँ देकर हवन करना चाहिए। तत्पश्चात् ब्राह्मण-बालकों को खीर का भोजन, श्वेत-वस्त्र और श्वेत-मुद्रा (चाँदी का सिक्का—न होने पर प्रचलित रुपये का सिक्का) दान के रूप में अर्पित करना चाहिए। स्मरण रहे कि हवन में हवन-सामग्री तो, सामान्य-पूजा की भाँति प्रचलित वस्तुओं से ही बनायी जाती है—देवदारु, जौ, अष्टगन्ध, मिश्री, अक्षत, घी आदि से, किन्तु समिधा के रूप में सामन्य लकड़ी का प्रयोग न करके, पलाश, (ढाक) की लकड़ी को उत्तम माना गया है।

चन्द्रमा के दोष-निवारण हेतु उसके शुभ प्रभाव को बढ़ाने के लिए समर्थ जन इस वस्तुओं का दान भी, पूजनोपरान्त किसी योग्य, सत्पात्र ब्राह्मण को दे सकते हैं—मोती, स्वर्ण, चावल, चाँदी, मिश्री, दही, श्वेत वस्त्र, श्वेत पुष्प, कपूर, शंख, श्वेत वर्ण का बैल, श्वेत चन्दन अथवा स्फटिक की माला आदि।

उत्तम यही कहा गया है कि चन्द्रोपासना तभी की जाय, जब चन्द्र-देव आकाश में विराजमाय हों। मन्त्र-जप, हवन, दान आदि समस्त कृत्यों के लिए चन्द्रमा की आकाश में उपस्थिति देखते हुए सायंकाल का समय सर्वश्रेष्ठ होता है। आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार सन्ध्या के प्रथम प्रहर से लेकर द्वितीय प्रहर तक यह साधना की जा सकती है।

चन्द्र रत्न :

चन्द्रमा की अनुकूलता पाने के लिए, कुण्डली के अन्य ग्रहों की उपस्थिति को देखते हुए, किसी योग्य विद्वान् से रत्न-धारण का निर्णय कराना चाहिए। वैसे, सामान्य रूप में मोती को चन्द्र-रत्न स्वीकार किया गया है। यदि चन्द्रमा अशुभ है, तब तो रत्न पहनने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु यदि वह शुभ-स्थिति में है, अथवा शुभ होकर भी दुर्बल क्षीण है, तो उसकी प्रभाव-वृद्धि हेतु मोती पहना जा सकता है। मोती के अभाव में उपरत्न के रूप में चन्द्रकान्त-मणि, मूनलाइट-पत्थर, सफेद हकीक पहना जा सकता है।

चन्द्र-यन्त्र :

'चन्द्र-यन्त्र' साक्षात् चन्द्रदेव की सजीव-प्रतिमा होता है। प्रायः सभी यन्त्रों के विषय में यही धारणा प्रचलित है कि वे सम्बद्ध देव-शक्ति

का रेखाङ्कित-स्वरूप होते हैं। यदि किसी देव-शक्ति का यन्त्र विधिवत् बनाकर पूजा-पाठ और जप-हवन द्वारा सिद्ध कर लिया जाय तो वह आज के भौतिक-विज्ञान की मशीनरी से भी अधिक शक्तिशाली और त्वरित-प्रभावी सिद्ध होता है। किन्तु यह भी एक अति कठोर सत्य है कि आज के युग में यन्त्र-निर्माण और साधना शत-प्रतिशत शुद्ध रूप में सम्भव नहीं रह गयी। न वे उपादान हैं, न वातावरण, न आस्था है और न धैर्य और न सहिष्णुता। फिर भी जो कुछ उपलब्ध है, उसके आधार पर की गयी यन्त्र-साधना भी चमत्कारी होती है। चन्द्र-यन्त्र की रचना करके पूजन द्वारा उसका लाभ प्राप्त करना आज भी सम्भव है।

चन्द्र-यन्त्र की रूपाकृति इस प्रकार है—

७	२	९
८	६	४
३	१०	५

रचना-विधान :

चन्द्र-यन्त्र का सर्वाधिक प्रभावी रूप तो वह है, जो रजत-पत्र पर (चाँदी के पत्तर पर) उत्कीर्ण किया जाता है। किन्तु आज, जबकि चाँदी का भाव 80-85 रुपया तोला हो गया है, सामान्य साधक इस यन्त्र की रचना रजत-पत्र पर नहीं कर सकता। अत: विकल्प रूप में भोजपत्र पर, कपूर-मिश्रित सफेद चन्दन से, तुलसी अथवा अनार की लेखनी द्वारा यन्त्र-रचना करनी चाहिए। यन्त्र की रचना हेतु सोमवार का दिन विशेष उत्तम होता है। रवि-पुष्य अथवा गुरु-पुष्य योग के दिन भी यन्त्र-रचना की जा सकती है।

सर्वप्रथम रजत-पत्र अथवा भोजपत्र पर यन्त्र लिखकर उसे श्वेत वस्त्र के आसन पर प्रतिष्ठित करके गंगाजल और दूध से स्नान करायें। फिर चन्दन, पुष्प, धूप, दीपादि देकर ऊपर लिखे मन्त्रों में से कोई एक, जो उच्चारण में सहज और शुद्ध प्रतीत हो—जपें। जप प्रारम्भ करने के पूर्व एक निश्चित संख्या का सङ्कल्प कर लेना चाहिए। प्रतिदिन नियमित रूप में उतनी संख्या में जप करते हुए अगले किसी सोमवार के दिन जप की अभीष्ट संख्या पूरी करके, उसी मन्त्र द्वारा 108 आहुतियाँ देकर हवन

करना चाहिए । हवनोपरान्त बालकों को भोजन, वस्त्र, दान (श्वेत-पदार्थ) देकर चन्द्रदेव से अपने कष्ट-निवारण हेतु निवेदन करना चाहिए ।

समापन के पश्चात् यन्त्र को किसी ऐसे स्थान पर स्थापित करदें, जहाँ नित्य सुविधा से उसका दर्शन-पूजा कर सकें । द्रव्य-कोष, आलमारी तिजोरी, पूजा स्थल अथवा दूकान के कैश-वक्स में, जहाँ भी रुचि हो, उसे श्रद्धापूर्वक रखदें । और कुछ न हो सके तो कम से कम एक धूपबत्ती तो अवश्य प्रतिदिन देते हुए, एक माला (108) बार चन्द्र-मन्त्र का जप करना चाहिए ।

चन्द्रमा ही नहीं, किसी भी देवता की पूजा में यह आवश्यक नियम है कि साधना-काल में साधक काम, क्रोध, लोभ, परनिन्दा, विषय-विलास, अपाराधिक चिन्तन से दूर करते हुए सात्त्विक-भोजन करे और आस्थापूर्वक निरन्तर अपने इष्टदेव का चिन्तन करता रहे ।

3. मंगल

पौराणिक सन्दर्भ :

गहरे लाल रङ्ग वाला मङ्गल-ग्रह पुराणों और ज्योतिश-शास्त्र में कुज, भौम, कुमार आदि कई नामों से विख्यात है । वस्तुतः यह बहुत ही क्रूर, कठोर और पीड़ादायक ग्रह है । इसी कारण इससे पापग्रहों में गिना जाता है । यह बात अलग है, कि अनुकूल स्थिति में होने पर यह साधक को शक्ति, साहस, सुरक्षा और सौख्य भी प्रदान करता है । चूंकि नवग्रहों में इसका अपरिहार्य स्थान है, अतः चाहे जैसी स्थिति हो—सुखद अथवा दुःखद, यह प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य ही प्रभावित करता है । अतः मनीतियों ने इसकी पूजा को अनिवार्य घोषित किया है, ताकि यह कभी यह विपरीत-स्थिति में हो, तो पूजा के प्रभाव से इसकी उग्रता, साधक को अधिक पीड़ित न कर पाये ।

स्थिति स्थान :

आकाश-मण्डल में मङ्गल की अवस्थिति, उसका विशेष रूप से प्रभाव-क्षेत्र, दक्षिण दिशा को माना गया है । यों भ्रमण के दौरान वह कहीं भी आ-जा सकता है, और उस स्थान की स्थिति के अनुसार उसकी किरणें कम या अधिक रूप में सृष्टि को प्रभावित करती हैं ।

मण्डल :

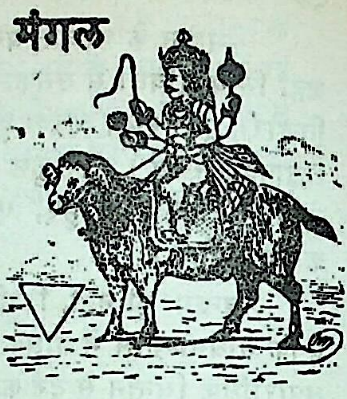

इसकी आकृति और स्वरूप का विवेचन करने वाले पौराणिक- विद्वानों ने बताया है, दक्षिण दिशा का अधिनायक यह मङ्गल-ग्रह त्रिकोणाकार मण्डल रखता है। इस प्रकार यह त्रिभुज की भाँति दृष्टिगोचर होता है।

माप :

चन्द्रमा की अपेक्षा पृथ्वीतल से वहुत दूर स्थित इस ग्रह का बिम्ब मात्र तीन अंगुल का दीख पड़ता है। हालांकि दूरी के कारण, जब यह रात में चमकता है, तो एक लाल रंग का अङ्गारा जैसा प्रतीत होता है, जिसकी किरणें इसे कभी गोल कभी षड्भुज और कभी त्रिभुजाकार दर्शाती रहती हैं।

प्रभाव क्षेत्र :

वैसे तो समस्त भू-मण्डल तारों ग्रहों और नक्षत्रों से प्रभावित रहता है, किन्तु पुराणकारों ने भारतीय-परिवेश को प्रमुखता देते हुए, केवल इसी देश के सन्दर्भ में अपने अनेक गवेषणात्मक तथ्य प्रस्तुत किये हैं। मङ्गल-ग्रह के प्रभाव क्षेत्र की विवेचना में उन्होंने प्रतिपादित किया है, कि भारत-भूमि पर, इस ग्रह का सर्वाधि प्रभाव अवन्ति-देश की धरती पर रहता है। अवन्ति वर्त्तमान उज्जैन नगर है, जो उदयन और विक्रमादित्य जैसे विश्व-विख्यात नरेशों की राजधानी रह चुका है। उस समय उज्जयिनी का नाम 'अवन्तिकापुरी' और उनके राज्य-क्षेत्र का नाम अवन्ति था। अस्तु, मङ्गल का प्रभाव-क्षेत्र अवन्ति-देश है। इसका आशय यह है, कि वर्त्तमान मालव-क्षेत्र की भूमि पर (वहाँ की सृष्टि पर) इसकी किरणें सर्वाधिक सक्रिय रहती हैं। अक्षांश-देशान्तर जनित दूरी का प्रभाव को कम-अधिक करने में एक प्रमुख कारक होता है।

गोत्र :

महामुनि भरद्वाज के वंश में उत्पन्न यह ग्रह उन्हीं के नाम से भारद्वाज-गोत्रीय कहा जाता है। इस प्रकार क्रूर-कर्मा और पाप-ग्रह होने

पर भी मूलत: यह ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुआ है, और इसकी पूजा में सात्त्विकता को वरीयता दी जाती है। मलिन, अभक्ष्य-पदार्थ और निन्दित-वस्तुओं को भूलकर भी मंगल की उपासना में प्रयोग नहीं करना चाहिए।

वर्ण :

मंगल-ग्रह का वर्ण लाल है। ताँबा, मूँगा अथवा अंगारे का ज्वलन्त लाल वर्ण, जिस प्रकार का दीखता है, ठीक वही वर्ण मंगल-ग्रह का है।

राशि स्वामित्व :

मङ्गल-ग्रह दो राशियों (उनके तारा-समूहों के समूचे प्रदेश) का स्वामित्व प्राप्त है। यह मेष और वृश्चिक दो राशियों (इन राशियों में उत्पन्न प्राणियों) पर नियन्त्रण रखता है।

वाहन :

जिस प्रकार चन्द्रमा का वाहन मृग स्वीकार किया गया है, उसी प्रकार ज्योतिर्विदों और पुराणाचार्यों की मान्यता है, कि मङ्गल-ग्रह का वाहन मेष है। मेष को प्रचलित भाषा में मेंड़ा या मेंढ़ा कहते हैं। अपने सीधे, भयभीत, भ्रमित और अन्ध-विश्वासी स्वभाव के लिए यह जीव अनेक लोकोक्तियों का पात्र भी बन गया है। गाँवों के गड़रिये इसे पालकर ऊन, मांस, चमड़ा, दूध और खाद सब कुछ प्राप्त करते हैं। इसका माथा अपनी दृढ़ता के लिए प्रसिद्ध है। यदि एक मेंढ़ा क्रोध में आकर टक्कर मार दे, तो अच्छे-खासे पहलवान को एक ही बार में धराशायी कर सकता है। सम्भव है, क्रूर-कठोर मङ्गल ने इसकी दृढ़ता पर मुग्ध होकर ही इसे अपना वाहन स्वीकार किया हो।

मंगल-पीड़ा का प्रभाव :

किसी व्यक्ति की कुण्डली में यदि मङ्गल प्रतिकूल-स्थान पर बैठा हो, उसकी किरणें विपरीत-दिशा से विकसित हो रही हों तो वह व्यक्ति अनेक प्रकार से पीड़ित हो सकता है। मङ्गल का दुष्प्रभाव लड़की और लड़के दोनों के विवाह में भारी अवरोध उत्पन्न करता है। बहुधा वयस्क हो जाने तक विवाह की स्थिति नहीं बन पाती। यदि घर वालों ने हठपूर्वक मंगल की स्थिति की अवहेलना करके कहीं विवाह कर ही दिया, तो

वह दम्पत्ति सुखी नहीं रह पाते । वैधव्य, वैधुर्य, तनाव, मतभेद, निष्कासन हत्या, आत्म-हत्या, प्रवञ्चना और परित्याग जैसे, उपद्रवों की आशङ्का उन्हें निरन्तर सन्तप्त किये रखती है । इसके अतिरिक्त भी, यदि मंगल की स्थिति प्रतिकूल है, तो ऐसा व्यक्ति रक्त-विकार और सन्तान-कष्ट से ग्रस्त रहता है ।

किसी व्यक्ति का मंगल कब शुभ अथवा अशुभ स्थिति में है, यह जान सकना सबके लिए सरल नहीं होता । यह गणित-ज्योतिष का विषय है । अतः इसके लिए किसी योग्य ज्योतिषी को जन्म-कुण्डली दिखाकर समझ लेना चाहिए । उत्तम तो यह रहता है, कि प्रति वर्ष एक बार किसी विद्वान को कुण्डली दिखाकर वर्ष भर के लिए नवग्रहों की स्थिति समझ ली जाये । तदनुसार उपाय करके व्यक्ति सरलता से नवग्रहों की पीड़ा से मुक्त रह सकता है । जहाँ तक मंगल का सम्बन्ध है, यह ग्रह व्यक्ति के दाम्पत्त्य-जीवन को बहुत प्रभावित करता है ।

ज्योतिष-शास्त्र के मर्मज्ञों ने निष्कर्ष निकाला है, कि यदि वर अथवा कन्या, दोनों में से किसी भी एक की कुण्डली में मंगल-ग्रह की स्थिति लग्न अथवा चन्द्रमा से प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम अथवा द्वादश भाव में हो तो ऐसा योग वर-कन्या दोनों के लिए अनिष्टकारी होता है । पुरुष की कुण्डली में मंगल की अशुभ स्थिति, उसकी पत्नी के लिए आघात सिद्ध होती है । इसी प्रकार स्त्री की कुण्डली में अशुभ स्थान पर बैठा मंगल उसके पति को पीड़ा, क्लेश और जीवन-हानि देता है । केवल दाम्पत्त्य-सुख में ही नहीं, अशुभ मंगल व्यक्ति के धन वैभव, जमीन-जायदाद, स्वास्थ्य-सुरक्षा, समाज-शान्ति और मानसिक-सन्तुलन में भी व्याघात उत्पन्न कर देता है ।

महादशा-क्रम में मंगल की अवस्थिति सात वर्षों तक रहती है । अशुभ मंगल के प्रभाव से व्यक्ति को इस अवधि में अनेक प्रकार के कष्ट हो सकते हैं । आघात, दुर्घटना, मारपीट, चोट-चपेट तथा युद्ध की स्थितियाँ ऐसे समय में प्रायः उत्पन्न होती रहती है । क्रोध-विवाद, मुकदमेबाजी, पित्त-दोष, पारिवारिक-सामाजिक-द्रोह, नीच-जनों की संगति जैसी कष्टदायक परिस्थितियों में डालकर, अशुभ मंगल, व्यक्ति को बहुत पीड़ित करता है । गोचर के अनुसार भी मंगल की अशुभ-स्थिति में ऐसे ही उपद्रव उठते रहते हैं ।

स्वभाव से उद्दण्ड, अभिमानी, उग्र, प्रचण्ड, वीर, क्रोधातुर, लघुकाय, पीताभ, लाल वर्ण, पिंगाक्ष (बन्दर की भाँति पीली-कन्जी आँखों वाला), सैनिक-स्वभाव, रणोद्धत, सामवेद का ज्ञाता, कृपालु होने पर उदार भी—यह ग्रह अपनी कठोरता के लिए प्रसिद्ध है। किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए, कि मंगल सदैव ही कष्टदायक होता है। कुछ स्थितियों में यह शुभ-प्रभाव भी देता है। यदि मंगल की स्थिति अनुकूल हो जाय तो व्यक्ति को अनेक क्षेत्रों में सुख-सफलता की प्राप्ति सुनिश्चित रहती है।

पूजा अर्चना के द्वारा मंगल (किसी भी ग्रह को) अनुकूल बनाया जा सकता है। उपासना के प्रभाव से उसकी उग्रता शान्त हो जाती है, फलतः दुष्प्रभाव में कमी आ जाती है। और यदि वह शुभ स्थिति में है, तो कृपा-भाव और अधिक बढ़ जाता है।

अनुकूल मंगल व्यक्ति को दामपत्त्य-सुख, विवाद-विजय, सामाजिक-प्रभाव, स्वास्थ्य, शक्ति, ओज-तेज, पराक्रम और अचल-सम्पत्ति (जमीन-जायदाद) का लाभ प्रदान करता है।

वैवाहिक-प्रसंग में मंगलीक-दोष की चर्चा आते ही लोग भयभीत हो उठते हैं। कारण कि ऐसा योग विनाशकारी माना जाता है। इसके विपरीत, यदि वर-कन्या दोनों ही मंगलीक हैं, और अन्य ग्रहों की स्थिति भी अनुकूल है, तो वह दम्पत्ति अक्षय-सुख के भागी बनते देखे जाते हैं।

सारांश यह है, कि मंगल की उपासना सभी के लिए लाभप्रद होती है। इसके प्रभाव से मंगल-दोष शान्त हो जाता है, और अनुकूल प्रभाव में वृद्धि होने लगती है। उपासना के लिए मंगल मन्त्र का जप सर्वश्रेष्ठ उपाय है। समर्थ जन यन्त्रोपासना भी कर सकते हैं। हनुमानजी की पूजा करने से भी यह ग्रह कृपालु होता है।

मंगल मन्त्र :

● धरणी गर्भ सम्भूतं, विद्युत् कान्ति समप्रभम्।
कुमारं शक्ति हस्तं च, मंगलं प्रणमाम्यहम्॥

[जप संख्या 40,000]

दैनिक स्तुति पाठ के रूप में यह श्लोक बहुत ही श्रेष्ठ कहा गया है। मन्त्र की भाँति भी इसका जप किया जा सकता है। स्नानोपरान्त पूजन के समय सामान्य रीति से भी यदि मंगल-ग्रह का स्मरण करते हुए, एक

निश्चित संख्या में नियमित रूप से नित्य इसका पाठ किया जाय, तो बहुत कल्याणकारी सिद्ध होता है। इस पौराणिक-स्तुति के अतिरिक्त और मंगल-मन्त्र—आर्ष-ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। यथा—

● ॐ अं अंगारकाय नमः ।

● ॐ भौं भौमाय नमः ।

ये दोनों मन्त्र भी पौराणिक-मन्त्र माने जाते हैं । इसके अतिरिक्त एक वैदिक मंगल-मन्त्र भी बहुत प्रसिद्ध है—

● ॐ अग्नि मूर्धादिव ककुष्पत्तिः पृथिव्याऽअयम् ।
अवा ठं रेता सिणिन्वति ।

दो-एक तान्त्रिक-मन्त्र भी बड़ी श्रद्धा के साथ, साधक-जन जपते रहते हैं ।

ॐ ह्लूं श्रीं मङ्गलाय नमः ।

ॐ क्रां कीं क्रों सः भौमाय नम, ।

साधना विधि :

किसी भी मंगलवार के दिन से, जब कि उस दिन कोई मारक अथवा अन्य प्रकार का घातक दुर्योग न हो, यह साधना आरम्भ की जा सकती है। साधक के लिए यह अनिवार्य है कि वह पूजन-सामग्री में लाल रंग की ही वस्तुयें प्रयोग करे । लाल आसन, लाल वस्त्र, लाल चन्दन, लाल पुष्प और लाल रंग का ही नैवेद्य भी ।

मंगल एक बहुत ही क्रूर और पाप-ग्रह है, किन्तु यदि वह अनुकूल हो जाये तो अक्षय सुख-समृद्धि प्रदान करता है। अतएव यदि सामान्य रूप से दैनिक-पूजा के समय कोई व्यक्ति प्रतिदिन मंगल का मन्त्र जपता रहे, तो भी वह लाभान्वित हो सकता है। एक विधि यह भी है, कि प्रतिदिन उस दिन के स्वामी-ग्रह का मन्त्र जपते रहें— रविवार को सूर्य-मन्त्र, सोमवार को चन्द्र-मन्त्र, मंगलवार को मंगल-मन्त्र, बुधवार को बुध-मन्त्र आदि। इस प्रकार प्रति सप्ताह, नवग्रहों की उपासना होती रहती है। एक माला प्रतिदिन किया गया मन्त्र-जप भी बहुत प्रभावशाली सिद्ध होता है। वैसे, निर्धारित संख्या में यदि जप पूरा कर लिया जाय, और तत्पश्चात् हवन, पूजन दानादि के द्वारा मंगल-ग्रह को सन्तुष्ट करके साधक अपना निवेदन प्रस्तुत करे तो वह अवश्य ही सङ्कट-मुक्त हो जाता है ।

आशय यह है कि जैसे भी हो, श्रद्धा-सामर्थ्य के अनुसार मंगलवार

के दिन मंगल-मन्त्र का जप करते रहने से विपरीत परिस्थितियाँ टल जाती हैं। यहाँ यह तथ्य भी स्मरण रखना चाहिए, कि उपर्युक्त मन्त्रों में से जो भी एक पहले दिन जपें, वही नित्य जपना चाहिए । साधना-काल में मन्त्र परिवर्त्तन उचित नहीं होता। ऐसा करने से वातावरण में तज्जन्य ध्वन्यात्मक प्रभाव क्षीण हो जाता है । फलस्वरूप साधक का श्रम निष्फल ही रहता है, कारण कि मन्त्रोच्चार से उत्पन्न ध्वनि की तरंगों से होने वाली कम्पन-क्रिया, जो सम्वद्ध-देवता को सम्वेदित करती है, अवरुद्ध हो जाती है ।

मंगल यन्त्र :

भोजपत्र पर अथवा ताम्रपत्र पर मंगल-यन्त्र की रचना करके उसकी दैनिक-पूजा करने, उसे धारण करने अथवा दर्शन करने से भी बहुत लाभ होता हैं। किन्तु यन्त्र-साधना तभी प्रभावशाली होती है, जब यन्त्र का निर्माण विधिपूर्वक किया गया हो। इधर-उधर बिकने वाले यन्त्र केवल व्यवसाय चलाने के लिए बनाते हैं, उसमें शुद्धता नहीं रहती। हाँ, यह हो सकता है, कि यदि कोई साधक स्वयं यन्त्र की रचना नहीं कर सकता, तो वह बना बनाये मंगल-यन्त्र लाकर, विधिवत् उसका शोधन-पूजन कर ले। इसके पश्चात् वह यन्त्र प्रयोजनीय हो जाता है।

मंगल की रचना और पूजन सदैव मंगलवार के दिन ही करना चाहिए। यन्त्र की आकृति इस प्रकार मानी गयी है—

८	३	१०
९	७	५
४	११	६

रचना विधान :

ताँबे के पत्तर अथवा भोजपत्र पर अनार की कलम से लाल चन्दन की स्याही द्वारा इस यन्त्र को लिखना चाहिए, यन्त्र-निर्माण के लिए मंगल का दिन और शुभ-मुहूर्त्त होना आवश्यक है। यन्त्र-रचना के पश्चात् उसे लाल वस्त्र के आसन पर प्रतिष्ठित करके पञ्चोपचार पूजन करना चाहिए। पूजा हो चुकने पर मानसिक रूप में मंगल-ग्रह की स्तुति करके

मन्त्र का जप आरम्भ करें। स्तुति के समय यह निवेदन भी अवश्य करना चाहिए, कि 'हे मंगल-देवता, मैं आपकी सन्तुष्टि के लिए यह उपासना कर रहा हूँ। इसमें जो भी भूल-चूक और त्रुटि हो, उसे क्षमा करते हुए, मेरे ऊपर कृपा करें।'

मन्त्र की अभीष्ट जप-संख्या पूरी हो चुकने पर, किसी मंगल के दिन ही, पूजा का समापन किया जाता है। समापन के दिन उसी मन्त्र द्वारा 108 आहुति देकर हवन तथा उसके पश्चात् ब्राह्मण को भोजन-दक्षिणा देना अनिवार्य है।

मंगल से सम्बन्धित दान देने के लिए ये वस्तुएं उपयोगी होती हैं—गेहूँ, गुड़, ताँबा, लाल वस्त्र, मूंगा, मसूर, लाल चन्दन, लाल रंग का बैल, केसर, लाल कनेर के पुष्प तथा सुवर्ण।

मंगल की पूजा के लिए सर्वश्रेष्ठ समय सायंकाल, सूर्यास्त के एक घण्टा पूर्व होता है। हवन में खैर (कत्था) की लकड़ी प्रयुक्त की जाती है।

मंगल रत्न :

रत्न-धारण कोई उपासना न होकर, एक भौतिक-प्रयोग है। मान्यता यह है, कि रत्नों में किरणों के प्रसारण और आकर्षण की प्रबल शक्ति होती है। इसी आधार पर ज्योतिषी-जन ग्रह विशेष की किरणों के प्रभाव को सन्तुलित बनाने के लिए रत्न-धारण करने का परामर्श देते हैं। किन्तु यह विषय इतना जटिल, गम्भीर और विवादास्पद है, कि सामान्य लोगों द्वारा बताये गये रत्नों को धारण करने से कोई लाभ नहीं दीखता। लाभ तो दूर की बात है, कितने ही व्यक्ति रत्न-धारण करने के बाद आकस्मिक-अकल्पित रूप में आपदा-ग्रस्त हो जाते हैं। कुछ रत्न ऐसी प्रतिक्रिया के लिए कुख्यात हैं, जैसे हीरा और नीलम। यदि किसी व्यक्ति ने ग्रहों की सही स्थिति के आधार पर हीरा या नीलम धारण किया है, और वह रत्न अपनी संरचना में निर्दोष है, तो चमत्कारी-लाभ का अनुभव होता है। इसके विपरीत दूषित-रत्न, या ग्रहों की स्थिति का सही विवेचन न होने पर शुद्ध रत्न भी, आपदाजनक हो जाते हैं। मेरे कई मित्रों ने बताया है, कि अमुक रत्न (नीलम और हीरा, पुखराज आदि) उन्हें सूट नहीं कर सकता, बल्कि उसे पहनते ही वे बुरी तरह रोग चोट और अर्थ-हानि से पीड़ित हुए। बाद से दूसरा रत्न उन्हें लाभदायक रहा। आशय यह है, कि

रत्न शुद्ध हो और ग्रहों की सही स्थिति के आधार पर पहना गया हो, तभी वह लाभदायक होता है, अन्यथा नहीं ।

मंगल-ग्रह का रत्न 'मूँगा' है । इसे मंगल के दिन स्नान-पूजा के उपरान्त मंगल-मन्त्र का जप करते हुए, ताँबे के तार अथवा लाल धागे के सहारे पहना जा सकता है । सोने की अँगूठी भी पहनी जाती है । मूँगा एक अल्प मूल्य वाला रत्न है, और सरलता से मिल जाता है, तो भी इसकी अशुद्धता का ध्यान रखना चाहिए । कारण कि आज के मिलावटी-नकली युग में सर्वत्र वञ्चना हो रही है ।

4. बुध

पौराणिक संदर्भ :

बुध-ग्रह को चन्द्रमा का पुत्र माना गया है । जैसा कि इसका नाम 'बुध' है, वैसा ही यह बुद्धि को सबसे अधिक प्रभावित करता है । मधुर-भाषी और विद्वान वक्ता होने के नाते अपने ज्ञान और प्रत्युत्पन्न-मतित्त्व के लिए यह प्रसिद्ध है । संगीत, गायन, नृत्य और सभा-विलास का ज्ञाता यह ग्रह नवग्रहों में राजकुमार जैसा प्रिय और सामान्य है । इसका वर्ण हल्का श्याम है । दूर्वादल के सदृश हरित-पीत कान्ति से युक्त मध्यम देह-यष्टि वाला यह ग्रह शरीर से पुष्ट और लाल नेत्रों वाला है । इसको वैश्य जाति का तथा नपुन्सक ग्रह कहा जाता है । यह शुभ-ग्रह है, इसकी महा-दशा की अवधि 17 वर्ष होती है । अनुकूल-बुध व्यक्ति के लिए परम सौभाग्यदायक रहता है । अपनी महदशा में, यह व्यापारिक.क्षेत्र से बहुत लाभ अर्जित करता है । पारिवारिक-सुख में भी इसकी अनुकूलता से आनन्दमयवृद्धि होती है । घर में विवाहादि मांगलिक कार्य निर्विघ्न रूप से सम्पन्न कराने में बुध-ग्रह की अनुकूल-स्थिति ही प्रमुख रहती है ।

स्थिति स्थान :

आकाश-मण्डल में असंख्य तारों के मध्य बुध की अवस्थिति ईशान-कोण में मानी गयी है । यद्यपि भ्रमण करते हुए, वह कहीं भी देखा जा सकता है, परन्तु विशेष रूप से उसका अपना क्षेत्र ईशान-कोण ही है । वह जब जहाँ, जितनी दूर, अन्य जिस ग्रह अथवा राशि के क्षेत्र में होता है, उस क्रम और अनुपात से उसकी किरणें, जीव-जगत् को प्रभावित करती हैं ।

मण्डल :

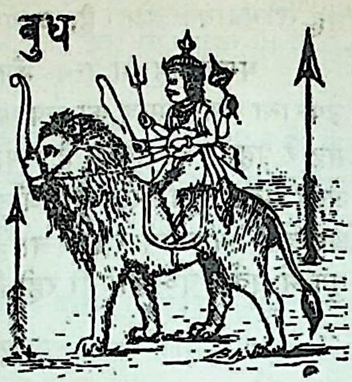

आकृति और स्वरूप के आधार पर मण्डल वाणाकार माना जाता है। आकाश के ईशान कोण में वाण की आकृति में दिखाई पड़ने वाला हरित-आभायुक्त तारा वस्तुतः यही बुध ग्रह है। रूप, गुण, स्वभाव और प्रभाव की दृष्टि से बहुत सौम्य और शोभन है।

माप :

'बुध' लघुकाय ग्रह है। पृथ्वी से दूर तो है ही, अपनी एक विशेष-स्थिति के कारण इसका बिम्ब चार अंगुल का दृष्टिगोचर होता है। अन्धेरी रात में इसकी हरित-प्रकाश किरणें बहुत ही सुन्दर प्रतीत होती हैं। यह बात अलग है, कि हम पृथ्वीवासी-जन सामान्य दृष्टि से आकाश के तारों को बालू या पारे के कणों जैसे ही देख पाते हैं, परन्तु दूरदर्शक-यन्त्रों के माध्यम से यदि देखा जाय, तो वर्णित-विवरण के अनुसार प्रत्येक ग्रह के वास्तविक आकार, रंग, प्रकाश और बिम्ब का आभास मिल जाता है।

प्रभाव क्षेत्र :

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, तारे, नक्षत्र और ग्रह समस्त ब्रह्माण्ड को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं। यह प्रभाव उनकी निकटता और दूरी के आधार पर न्यूनाधिक होता रहता है। बुध का प्रभाव-क्षेत्र भारत-भूमि पर, विशेष रूप से मगध-देश (आधुनिक विहार-प्रदेश की भूमि) पर रहता है। आकाश-भ्रमण तथा भिन्न-भिन्न रात्रि-नक्षत्रों के सम्पर्क-सामीप्य से आने जाने से, अन्य ग्रहों की भाँति इसका भी प्रभाव मगध-देश के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों पर भी पड़ता रहता है।

गोत्र:

अन्य (उत्पत्ति) और पैतृक (वंशानुगत) विवरण के आधार पर बुध-ग्रह का जन्म अत्रि मुनि के गोत्र में माना जाता है। यह अत्रि मुनि वही महर्षि अत्रि हैं, जिनकी पत्नी—महासती अनुसूयाजी ने एक बार त्रिदेवों को अपनी सतीत्व-शक्ति से नवजात-शिशुओं के में परि-

वर्त्तित कर दिया था। महान योगी, सिद्धपुरुष और विष्णु के चौबीस अवतारों से एक—भगवान 'दत्तात्रेय' इन्हीं दम्पत्ति (अत्रि और अनुसूया) के पुत्र हैं। भगवान राम ने वनवास,काल में अत्रि के आश्रम पर जाकर उसका आतिथ्य स्वीकार किया था। उन्हीं पर तपोधन महर्षि अत्रि के गोत्र में इस प्रभावशाशी ग्रह 'बुध' का जन्म हुआ है।

राशि-स्वामित्त्व :

आकाश-मण्डल में फैले तारा-समहों में, 'बुध" को उस क्षेत्र का स्वामित्त्व प्राप्त है, जो कन्या-राशि के क्षेत्र में आता है। इस प्रकार कन्या-राशि का स्वामी होने नाते, 'बुधग्रह' कन्या-राशि के जातकों को सर्वाधिक प्रभावित करता है। कन्या-राशि (लग्न) वाले व्यक्तियों की मानसिक-स्थिति, रूप, गुण, स्वभाव और प्रारब्ध के निर्माण में बुध-ग्रह की किरणें सर्वाधिक सक्रिय होती हैं।

वाहन :

ग्रहों में राजकुमार होने के नाते बुध को सिंह का वाहन प्राप्त है। इस प्रकार वह अपने वाहन पर आरूढ़ होकर परम निर्द्वन्द्व-भाव से विचरण करता है। कोई बाह्य-शक्ति उसके मार्ग में अवरोध नहीं बन सकती। जिस प्रकार देवी दुर्गाजी सिंहारूढ़ होकर, भ्रमण के समय अपने भक्तों का क्लेश दूर करती हुई, विश्व-पर्यटन करती हैं, इसी प्रकार बुध-ग्रह भी अपने वाहन सिंह पर सवार होकर ब्रह्माण्ड में विचरण करता है।

विपरीत-प्रभाव :

यदि किसी व्यक्ति की कुण्डली में बुध की स्थिति अच्छी नहीं है, अथवा गोचर में उसका बुध दूषित हो गया है, तो ऐसे जातक को बुध की विपरीतता का दुष्प्रभाव झेलना पड़ता है। यह दुष्प्रभाव इस रूप में दृष्टिगोचर होता है, कि व्यक्ति पित्त-प्रकोप से ग्रस्त हो जाता है। अन्य प्रकार के उपद्रव भी उसे आक्रान्त करने लगते हैं, जैसे चर्म-रोग, व्यापार में हानि, मित्र-विरोध, वौद्धिक-शक्ति का ह्रास और वाक्-क्षमता का क्षय।

बुध-मन्त्र :

अनुकूल बुध की कृपा बढ़ाने और प्रतिकूल बुध का प्रकोप शान्त करने के लिए सम्बन्धित उपासना की प्रभावशाली माना गया है। यह उपासना कई प्रकार से की जा सकती हैं—मन्त्र-जप द्वारा, यन्त्र-पूजन द्वारा, तान्त्रिक-प्रयोगों द्वारा और रत्न धारण के माध्यम से। इनमें सर्व-

श्रेष्ठ और सर्वसुलभ साधन मन्त्र जप ही है । उच्चारण-विधि समझकर कोई भी व्यक्ति अपने घर में शान्त-एकान्त स्थान पर बैठकर यदि नियमित रूप से बुध-मन्त्र का जप करे, तो वह अवश्य ही लाभान्वित होता है । यों, समर्थ-जन यन्त्र-तन्त्र और रत्न-साधना का मार्ग भी अपना सकते हैं । बुध से सम्बन्धित स्तुति और मन्त्र इस प्रकार हैं—

● प्रियंगु कलिका श्यामं, रूपेणाप्रतिमं बुधम् ।
सौम्य सौम्य गुणोपेतं, तं बुधं प्रणमाम्यहम् ॥

इस मन्त्र की पूर्ण फलदायिनी जपसंख्या 36000 है । यदि दैनिक-पूजा में, स्नानोपरान्त कोई व्यक्ति प्रतिदिन इस मन्त्र 5-7 माला जपता रहे, तो कुछ समय उपरान्त वह अपनी स्थिति में सुखद-परिवर्त्तन का अनुभव करेगा । यह पौराणिक और अत्यन्त सरल मन्त्र है । इसके अतिरिक्त वैदिक और तान्त्रिक-मन्त्र भी प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

● ॐ उद्बुध्य स्वाग्नये प्रति जागृही त्वनिष्टा पूर्तेस ठं सृजेथामयञ्च ।
अस्मिन्त्सधस्त्थेऽध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानाश्च सीदत ॥

यह वैदिक-मन्त्र है । यद्यपि यह उच्चारण की दृष्टि से कठिन होने के कारण सर्व-साध्य नहीं है, तथापि प्रसङ्ग-पूर्त्ति के लिए यहाँ उद्घृत कर दिया गया है । व्यावहारिक दृष्टि से सरल, उच्चारण में सहज और सर्व-साध्य मन्त्र ये हैं—

● ॐ बुं बुधाय नमः ।
● ॐ ऐं श्रीं श्रीं बुधाय नमः ।
● ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः ।

साधना-विधि :

स्थानीय किसी पुरोहित से कोई ऐसा बुधवार का दिन, जिसमें कोई घातक बाधक दुर्योग निहित न हो, पूछकर उसी दिन से यह साधना आरम्भ की जा सकती है । हरी-पीली आभा (केले का नया पत्ता जिस रङ्ग का होता है) वाले सूती या रेशमी वस्त्र धारण करके बुध-मन्त्र का जप करना विशेष लाभप्रद होता है । यदि ऐसी सुविधा न हो तो मात्र स्वच्छ-शुद्ध श्वेत-वस्त्र धारण करके मन्त्र जपना चाहिए । सर्वप्रथम बुध की प्रतिमा यन्त्र अथवा भोजपत्र पर मन्त्र को ही लिखकर, उसे सामने आसन पर प्रतिष्ठित करके चन्दन, पुष्प, धूप-दीपादि से पूजन करने के उपरान्त सर्वप्रथम स्तुति-मन्त्र का एक बार जप करना चाहिए । स्तुति-मन्त्र के रूप

में पूर्वोक्त 'प्रियंगु कलिका श्यामं.....' श्लोक का पाठ स्वयं में भी जप जैसा फल प्रदान करता है । स्तुति-मन्त्र के उपरान्त तुलसी, रुद्राक्ष जैसी किसी सात्त्विक-माला के सहारे उपर्युक्त कोई भी एक मन्त्र, जो उच्चारण में सहज प्रतीत हो, नियमित रूप से जपता चाहिए । जब जप का लक्ष्य 36,000 पूरा हो जाये, तो उस दिन भी बुधवार रहे, ऐसे क्रम से—पूजा का समापन करना चाहिए । समापन में हवन आवश्यक होता है । यहाँ यह तथ्य ध्यान में रखने योग्य है, कि बुध-मन्त्र का जप करने से उपरान्त वाञ्छित हवन में अपामार्ग की लकड़ी समिधा के रूप में प्रयुक्त होती है । अपामार्ग एक प्रकार की कँटीली घास है, और सरलता से प्राप्त हो जाती है । यह बरसात में उगकर चैत-वैशाख तक सुलभ रहती है । ग्राम्य-भाषा में इसे लटजीरा अथवा चिरचिटा कहते हैं । प्रयोग-भेद से यह तान्त्रिक-वनस्पति है, और विभिन्न प्रकार की साधनाओं में इसका प्रयोग होता है ।

दान-द्रव्य :

बुध की अनुकूलता पाने के लिए पूजा और मन्त्र-जप के साथ-साथ दान करने का विधान भी किया गया है । दान हेतु प्रयोज्य पदार्थ ये हैं— पन्ना, स्वर्ण, काँसा, धातु, मूँग, शकर, घी, गौ, दासी, हरे रङ्ग का वस्त्र, बहुविधि पुष्प (इसमें मदार-धतूर के पुष्प नहीं), हाथीदाँत की वस्तु, कपूर, कोई शस्त्र (हथियार) फल, (हरे रङ्ग का) आदि ।

बुध-तुष्टि के लिए पूजन और दान का समय सूर्योदय से चार घण्टे बाद तक रहता है ।

बुध-यन्त्र :

यन्त्र किसी देवता का रेखांकित रूप होते हैं । जिस प्रकार मन्त्रों की ध्वनि-शक्ति अभीष्ट-देवता को सम्वेदित करती है, उसी भाँति यन्त्र-साधना से भी देवताओं को प्रभावित किया जा सकता है ।

यन्त्रों की आकृति में भिन्नता होती है । विभिन्न देव-शक्तियों के यन्त्र एक दूसरे से सर्वथा विपरीत, नवीन रूप में होते हैं । इनका रचनाधार भी भिन्नतापूर्ण होता है । सामान्यतया सभी यन्त्र भोजपत्र पर अथवा ताम्रपत्र पर अङ्कित किये जाते हैं । जहाँ जैसा निर्देश हो, वैसे ही विधि-विधान से यन्त्र की रचना तथा पूजनोपासना करनी चाहिए ।

बुध-यन्त्र की रचना का सर्वसुलभ और सरलतम नियम यह है, कि किसी बुधवार के दिन शुभ-मुहूर्त्त में, भोजपत्र, काँस्य-पत्र अथवा ताम्रपत्र

पर बुध-यन्त्र का अङ्कन करें। अङ्कन हेतु, अष्टगन्ध अथवा सफ़ेद चन्दन अथवा तुलसी-पत्र के रस से, अनार की अथवा ओंगा की लेखनी द्वारा वाञ्छित पत्र पर यन्त्र की रूपरेखा बनानी चाहिए। ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण यन्त्र भी प्रयुक्त हो सकते हैं। जो भी सुलभ हो, प्राप्त करके, या स्वयं तैयार करके, उसे काष्ठ-पीठिका पर बिछे श्वेत अथवा हरित वस्त्र-खण्ड पर स्थापित करें। गंगाजल अथवा शुद्ध जल छिड़क कर इसे स्नान करायें, तत्पश्चात् चन्दन, पुष्प, नक्षत्र, धूप दीप आदि से पूजन करके किसी मीठी वस्तु (मिश्री के टुकड़े) का नैवेद्य अर्पित करें। यह समस्त प्रक्रिया पूर्व की ओर मुंह करके की जानी चाहिए। साथ ही आसन पर बैठने के समय से ही, यन्त्र-रचना, उसका अभिषेक और पूजनादि करते समय तक निरन्तर बुध-मन्त्र का मौन-जप करते रहना आवश्यक है।

यन्त्र की पूजा कर चुकने पर, यथा-सामर्थ्य 1, 5, या 7 माला, बुध-मन्त्र जपना चाहिए। उपवास भी आवश्यक होता है। इस प्रकार 7, 11, या 12 बुधवारों तक लगातार बुध-यन्त्र की नियमित रूप से, श्रद्धा-पूर्वक उपासना करने पर अवश्य ही लाभ होता है। पूर्व सङ्कल्पित संख्या और दिनों की पूर्ति हो जाने पर अन्तिम बुधवार के दिन उसी मन्त्र को जपते हुए, आहुतियाँ देकर हवन करना चाहिए। हवन के लिए अपामार्ग काष्ठ का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। साथ में, दैनिक-पूजन वाली अष्टगन्ध धूप मिलायी जा सकती है।

बुध-यन्त्र की आकृति इस प्रकार है।

९	४	११
१०	८	६
५	१२	७

बुध-रत्न :

बुध-ग्रह का रत्न पन्ना है, अतः उसके अणुकूल प्रभाव हेतु इसे धारण किया जा सकता है। परन्तु यह निश्चित नहीं है, कि हर व्यक्ति पन्ना पहनकर बुध की कृपा का पात्र हो ही जाय। रत्न सदैव अपने ग्रह की प्रभाव शक्ति, को धारक के शरीर और मन-मस्तिष्क में तीव्रतम कर देते हैं। ऐसी

स्थिति में, यदि किसी ग्रह का प्रभाव दूषित है, तो रत्न-धारण से वह दूषित प्रभाव ही पड़ेगा । इसलिए रत्न-धारण के पूर्व किसी अच्छे रत्न-मर्मज्ञ और ज्योतिषवेत्ता से भली-भाँति परामर्श ले लेना चाहिए ।

रत्न तभी लाभकारी होता है, जब वह कुण्डली के अनुसार धारक के ग्रहों की शुभ-शक्ति को बढ़ाने वाला हो । अन्यथा लाभ के बदले हानि की पूरी आशङ्का रहती है ।

पन्ना एक मूल्यवान रत्न है । यह विष के प्रभाव को तुरन्त प्रकट कर देता है । प्राचीन-काल में राजे-महाराजे पन्ना-निर्मित पात्र में ही पेय-पदार्थ लेते थे । पन्ने का स्पर्श विशाक्त-पेय का रंग तुरन्त बदल देती था । अस्तु, पन्ना धारण करने के पूर्व ज्योतिषी की सम्मति अवश्य ले लेना चाहिए ।

पन्ने का पूरक उपरत्न हरे रंग का एक अल्पमोली पत्थर आता है— मरगज । बहुधा सड़क-छाप जौहरी और रातोंरात ज्योतिषाचार्य बन जाने वाले धुरन्धर विद्वान लोगों के विश्वास को लूटते हुए, वही अल्पमोली मरगज—'पन्ना' बताकर, मनमाने दामों में बेचते रहते हैं ।

पन्ना या उसका उपरत्न जो भी हो, शुद्ध, निर्दोष, निर्धारित भार का हो और बुध के दिन बुध-मन्त्र द्वारा सिद्ध करके पहना जाय, तभी लाभकारी होता है ।

5. बृहस्पति

पौराणिक-सन्दर्भ :

बृहस्पति को देवताओं का 'गुरु' होने का गौरव प्राप्त है । देवगुरु के रूप में वह अपनी विद्वत्ता, ज्ञान, तेज, प्रतिभा, सम्मान और व्यक्तित्त्व के लिय इतना प्रसिद्ध एवं सम्मानित हैं कि उनका नाम प्रतीक और उदाहरण के रूप में प्रयुक्त होता रहता है ।

नवग्रहों के मध्य भी इस ग्रह को विद्वत्ता, तेज, ज्ञान और सम्मान का प्रतिनिधित्त्व प्राप्त है । इन गुणों का किसी व्यक्ति में समावेश होने के लिए गुरु की अनुकूल स्थिति को प्रमुख आधार माना गया है । किसी व्यक्ति की कुण्डली में शुभ-स्थान और स्थिति में बैठा हुआ गुरु, उसे

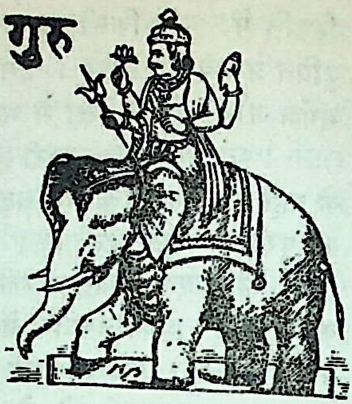

निश्चित रूप से पूर्वोक्त गुणों से अलंकृत कर देता है। ऐसी स्थिति यद्यपि वहुत कम कुण्डलियों में देखी जाती है, तो भी जिन्हें 'गुरु' की कृपा प्राप्त रहती है, वे विद्या-बुद्धि से सम्पन्न, सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं।

यदि किसी कुण्डली में गुरु की स्थिति प्रतिकूल है, तो ऐसा व्यक्ति मूर्ख, तिरस्कृत, कुटुम्ब-विरोधी, हत-तेज, दरिद्र और संशय-ग्रस्त रहता है।

भारतीय-ज्योतिष और पौराणिक-मान्यताओं के अनुसार गुरु-ग्रह अपने आकार की भाँति अपने प्रभाव में भी विशाल-काय है।

स्थिति-स्थान :

अनन्त आकाश में, जहाँ लाखों तारे और ग्रह-उपग्रह चतुर्दिक् फैले हुए हैं, बृहस्पति को उत्तर-दिशा का प्रतिनिधित्त्व प्राप्त है। आशय यह कि ब्रह्माण्ड में उत्तर की ओर का क्षेत्र गुरु से विशेष रूप से प्रभावित रहता है। वैसे, भ्रमण करते हुए इसकी स्थित लगातार परिवर्तित होती रहती है, तो भी उक्त-दिशा इसकी ज्योति-किरणों से विशेष रूप में प्रभावित होती रहती है।

मण्डल :

बृहस्पति का मण्डल अपेक्षाकृत बड़ा है। इस दीर्घ-काय ग्रह का मण्डल चतुरस्र (चौकोर) माना जाता है। यहाँ यह ध्यान में रखने योग्य है कि आकार और मण्डलादि के सम्वन्ध में ज्यामितीय परिभाषाएं शत-प्रतिशत लागू नहीं होती। कारण कि ये सभी ग्रह पृथ्वी से वहुत दूर, दीर्घ-काय और चल हैं। अतः इनके आकार और माप को केवल बाह्य-दृष्टि से ही परखा और प्रस्तुत किया जा सकता है। फिर भी यह सत्य है कि आदि महर्षियों और खगोल-शास्त्रियों द्वारा परीक्षण तथा शोध के पश्चात् प्रस्तुत किये गये सभी आँकड़े अधिकतम शुद्ध और प्रामाणिक हैं। जैसे किसी वृक्ष की ऊँचाई उसे पृथ्वी से चोटी तक नापकर ही बतायी जा सकती है, किन्तु विकल्प के रूप में, पृथ्वी पर उसकी छाया को नापकर भी, सूर्य की स्थिति और समय के अनुपात से, पेड़ की ऊँचाई ज्ञात की जा सकती है। इसी

प्रकार, विद्वानों ने समस्त ग्रहों को हाथों से नापकर नहीं, अपितु अन्य साधानों एवं प्रमाणों के आधार पर, उनकी कायिक-स्थिति का विश्लेषण किया है। ऐसे ही तथ्यों से प्रमाणित हुआ है कि बृहस्पति का मण्डल चतुरस्र (चतुर्भुज) दीर्घाकार है।

माप :

माप का आशय, अन्य ग्रहों की भाँति यहाँ भी यही समझना चाहिए कि पृथ्वीतल से दृष्टिगोचर होने पर बृहस्पति का मण्डल केवल 6 अंगुल का प्रतीत होता है, तथापि ज्योतिषीय-गणित में, इसके लिए यही 6 अंगुल का माप प्रयुक्त होता है। आनुपातिक आधार पर इस माप का प्रयोग करके गणितज्ञ-जन-अन्य सभी आँकड़े शुद्धतापूर्वक बना लेते हैं।

प्रभाव-क्षेत्र :

भारतीय-ज्योतिर्विदों ने यद्यपि खगोल-शास्त्र के अन्तर्गत जिन ग्रह-नक्षत्रों और तारा-समूहों का विवेचन किया है, वे अखिल ब्रह्माण्ड को प्रभावित करते हैं। किन्तु उनके सार्वभौम प्रभाव की व्याख्या करते हुए भी, उन्होंने समस्त ग्रहों के प्रभाव प्रतिक्रिया क्षेत्र को केवल भारतीय-भूमि तक ही सीमित रखा है। इसका कारण कदाचित यही रहा होगा कि उस समय विश्व के अन्य देश, जो आज सभ्यता के शिखर पर बैठे, अपना जयघोष कर रहे हैं, वन्य-जीवन व्यतीत कर रहे थे। सभ्य-संसार से उनका सम्पर्क नहीं था। आवागमन और सञ्चार-साधन भी आज की भाँति सुलभ और त्वरित-प्रभावी नहीं थे। ऐसी स्थिति में विश्व की भौगोलिक-स्थिति आज की तरह स्पष्ट न होने के कारण उन्होंने अपने देश-भारत ही को विश्व का प्रतिरूप मान लिया होगा। जो भी हो, खगोल-विज्ञान के आदि मनीषियों ने शोध और प्रमाणों के आधार पर घोषित किया था कि बृहस्पति-ग्रह का प्रभाव-क्षेत्र सिन्धु-देश (भारत का पश्चिमी-भाग) है। कदाचित् उनका आशय यह था कि भारत में बृहस्पति-ग्रह की किरणों से सर्वप्रथम और सर्वाधिक प्रभावित होने वाला क्षेत्र सिन्धु-प्रदेश है।

गोत्र :

वंश-परम्परा की दृष्टि से बृहस्पति को महर्षि अङ्गिरा के गोत्र में उत्पन्न माना जाता है। महर्षि अङ्गिरा की गणना सप्तर्षियों में होती है। अपनी विद्वत्ता, तेज, ज्ञान, तपोबल और प्रतिष्ठा के लिए सप्तऋषि

विख्यात हैं। महर्षि अङ्गिरा को उनमें प्रमुख स्थान प्राप्त है। बृहस्पति की उत्पत्ति उन्हीं की वंश-परम्परा में हुई है।

ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न और महर्षि अङ्गिरा के वंशानुगत प्रभाव से बृहस्पति में वे समस्त गुण स्वाभाविक रूप में निहित हैं, जो एक कुलीन विद्वान ब्राह्मण में पाये जाते हैं। बृहस्पति अपनी रूपरेखा में शोभन, सुन्दर, तेजस्वी और परम प्रतिभासम्पन्न है। गौरवर्ण (पीताभ) का यह ग्रह अपने गुणों के कारण समस्त देव-समाज का गुरु है और जीव, देवगुरु, प्रशान्त, अङ्गिरा-पुत्र, वाचस्पति, इज्य, त्रिदिवेश, वन्द्य और सुरगुरु आदि नामों से सम्बोधित होता है। ज्ञान के क्षेत्र में इसके पाण्डित्य की यह स्थिति है कि इसको ऋग्वेद का स्वामी माना जाता है। सारांश यह कि प्रतिभा, प्रतिष्ठा और प्रभाव की दृष्टि से बृहस्पति एक प्रमुख ग्रह है।

वर्ण :

यद्यपि ब्राह्मण होने के नाते वह गौर-वर्ण का ग्रह है, परन्तु वास्तव में इसका गौर-वर्ण श्वेताभ न होकर, पीली आभा से युक्त है। इसका भौतिक-वर्ण पीला है, किन्तु ज्ञान-गरिमा और दिव्यता के तेज से वह गौर प्रतीत होता है। यही कारण है कि जप-तप और पूजनादि में बृहस्पति के लिए पीले रङ्ग की वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। वस्तुत: यह पीताभ है—पीतवर्णीय-कान्ति वाला।

राशि स्वामित्व :

आकाश-मण्डल में बृहस्पति-ग्रह को दो राशियों के तारा-समूहों का स्वामित्व प्राप्त है—धनु और मीन। यह दोनों राशियाँ सदैव गुरु-ग्रह से नियन्त्रत रहती हैं। अनुकूल स्थिति होने पर धनु और मीन राशि वाले व्यक्ति गुरु के प्रभाव से बहुत सुख-सम्पत्ति पाते हैं। इसके विपरीत, प्रतिकूल स्थिति होने पर उक्त दोनों राशियों के जातक अत्यधिक पीड़ित होते हैं। वैसे, किसी भी राशि वाले व्यक्ति को गुरु की अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता के प्रभाव की अनुभूति तुरन्त हो जाती है।

वाहन :

गुरुपद की गरिमा के अनुसार बृहस्पति का वाहन हाथी माना गया है। हाथी अर्थात् गजराज वैभव-समृद्धि का प्रतीक है। देवराज इन्द्र का वाहन भी हाथी है—ऐरावत गज। आज भी देश के कितने ही धनिक और सम्पन्न व्यक्ति हाथी पाले हुए हैं। किसी विशेष समारोह, जुलूस, शोभा-

यात्रा आदि में हाथी को अलंकृत करके सबसे आगे चलाया जाता है। अब तो रियासतें समाप्त हो गयीं, किन्तु सामन्तवादी युग में प्रायः सभी रजवाड़ों में हाथी थे। बड़े-बड़े मठाधीश आज भी हाथी की सवारी पर निकलते हैं। बारातों और अन्य समारोहों पर शोभा-वृद्धि के लिए किराये पर हाथी मँगाये जाते हैं। आशय यह कि हाथी गरिमा, सम्पन्नता और प्रतिष्टा का प्रतीक वाहन है। नवग्रहों में केवल देवगुरु बृहस्पति को ही यह वाहन प्राप्त है। इससे स्वतः प्रमाणित हो जाता है कि देवगुरु की कितनी अधिक प्रतिष्ठा है।

गुरु का विपरीत प्रभाव :

चाहे ग्रह हो, अथवा कोई व्यक्ति हो अथवा कोई वस्तु हो, उसके दो पक्ष अवश्य होते हैं—सुखद और पीड़क। स्थिति-विशेष में अमृत भी विष हो जाता है, और विष अमृत का रूप ले लेता है। ठीक यही प्रतिक्रिया ग्रहों की स्थिति से भी उत्पन्न होती है। सभी ग्रह न तो पूर्णतया सुखद हैं और न पीड़क। यद्यपि कुछ ग्रह सौम्य हैं और कुछ कष्टदायक, किन्तु साथ में वे अपना विपरीत प्रभाव भी रखते हैं।

गुरु (बृहस्पति) की अनुकूलता, कुण्डली में शुभ-स्थान पर शुभ-स्थिति, अन्य ग्रहों की सहानुभूति, जहाँ व्यक्ति को ज्ञान, वैभव, सुख और सम्मान प्रदान करती है, वहीं यदि यह ग्रह प्रतिकूल-स्थिति में जाये, तो सम्बन्धित-व्यक्ति के लिए अनेक प्रकार से कष्टदायक हो जाती है। गुरु-ग्रह का प्रकोप होने पर व्यक्ति ज्वर, प्लीहा, कफ, मस्तिष्क-विकार, भावनात्मक-पीड़ा, कुटुम्ब-द्रोह, पलायन, शत्रु-भय, विरोध और श्री-कान्ति का क्षय करता है।

बृहस्पति मन्त्र :

देवानां च ऋषीणां च गुरु काञ्चनसन्निभम्।
बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम्॥

[जप-संख्या 76,000]

प्रतिदिन स्नानोपरान्त पूजा के समय बृहस्पति-ग्रह का ध्यान करते हुए, इस श्लोक का नियमित पाठ बहुत लाभकारी होता है। अथवा बृहस्पतिवार के दिन ही यदि इसका एक निश्चित संख्या में जप किया जाये, तो भी प्रभाव की अनुभूति होती है। कुछ साधक ऐसा भी करते हैं कि सप्ताह के प्रतिदिन उस दिन के स्वामी-ग्रह का मन्त्र एक पूर्व-निश्चित

संख्या में जपते रहते हैं। इस प्रकार सात दिनों में सात ग्रहों का स्तवन हो जाता है। राहु और केतु के लिए बुध और शनि के दिन जप कर लेते हैं। यह भी देखा गया है कि समस्त नवग्रहों की स्तुतियाँ अथवा मन्त्र प्रति दिन जपते रहने से भी ग्रह-पीड़ा का निवारण होकर सुखद-स्थितियों की पृष्ट-भूमि बन जाती है। अत: जैसे भी हो, श्रद्धा-सुविधानुसार ग्रहों की उपासना से सम्बन्धित मन्त्र-श्लोक का पाठ करके लाभ उठाया जा सकता है। उपरोक्त श्लोक के अतिरिक्त वृहस्पति-सम्बन्धी कुछ अन्य मन्त्र इस प्रकार हैं—

● ॐ वृहस्पतयेतियदपर्थोऽर्हाद्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यद्दीदयच्छयसऽऋत प्रजाततदस्मासु द्रविणं धेहिचित्रम्॥

यह वैदिक-मन्त्र है। प्राचीन-काल में ऐसे जटिल मन्त्रों को लोग सरलता से याद कर लेते थे, परन्तु आज का व्यक्ति न ही इन्हें कण्ठस्थ कर सकता है और न शुद्ध उच्चारण ही करने में समर्थ है। एक विधि और भी है—वैदिक-मन्त्रों का उच्चारण केवल पुस्तक में पढ़कर नहीं किया जा सकता। कितने ही चिह्न और संकेत ऐसे होते हैं, जो समझ में नहीं आते। अत: वैदिक-मन्त्रों के जप हेतु आवश्यक है कि किसी वेदवेत्ता पण्डित से उनका उच्चारण, आरोह-अवरोह और शुद्ध पाठ समझ लिया जाये।

पुस्तकीय-मन्त्रों में (विशेषतया वैदिक-मन्त्रों के सन्दर्भ में) एक शङ्का और भी रहती है–प्राय: पुस्तकें अशुद्ध छप जाती हैं। लेखक के द्वारा शुद्ध रूप में लिखी जाने पर भी पुस्तकों का प्रेस में अशुद्ध छप जाना, आज एक सर्वव्यापी रोग बन चुका है। इसका मूल कारण है, प्रेसों में संस्कृत-से अनभिज्ञ प्रूफरीडर का होना। कितने ही प्रेसों में तो प्रूफरीडर होता ही नहीं, केवल प्रबन्धक-जन ही सरसरी निगाह से देखकर फार्म मशीन पर भेज देते हैं। फलत: पुस्तकों में अशुद्धियाँ आ जाती हैं। इसलिए जब कभी किसी संस्कृत के श्लोक या मन्त्र का प्रयोग करना हो तो उसकी शुद्धता को खूब परख लेना चाहिए। शङ्का होने पर किसी योग्य व्यक्ति से पूछ लेने में कोई हानि नहीं है। अशुद्ध अथवा भ्रष्ट उच्चारण से साधना खण्डित हो जाती है। इसलिए जहाँ तक हो सके, जप के लिए सरलतम, उच्चारण में सहज, सुगम और लययुक्त मन्त्र अथवा श्लोक लेना चाहिए, जिसको याद करने और जपने में सुविधा रहे। वाणी और मस्तिष्क पर अतिरिक्त भार डालकर अपनी सहिष्णुता और धैर्य को समाप्त नहीं करना चाहिए, कारण कि इससे भी साधना की तन्मयता और आस्था को आघात पहुँचता है।

● बृहस्पति का पौराणिक-मन्त्र (श्लोक) ऊपर (प्रारम्भ में) दिया जा चुका है। वैदिक-मन्त्र बहुत जटिल है, अतः साधकजन उपरोक्त पौराणिक अथवा निम्नाङ्कित तान्त्रिक मन्त्रों में से कोई एक लेकर उसके नियमित जप से लाभान्वित हो सकते हैं—

● ॐ ग्रां ग्रीं सः गुरुवे नमः।
ॐ ऐं क्लीं बृहस्पतये नमः।

पूर्वलिखित पौराणिक श्लोक के अतिरिक्त एक मन्त्र और भी है--

● ॐ बृं बृहस्पतये नमः।

साधना विधान :

यद्यपि आध्यात्मिक-ग्रन्थों में नवग्रहों की साधना का विस्तृत विधि-विधान वर्णित है, परन्तु वह आज के युग में सहज-साध्य नहीं रह गया। परवर्ती-ग्रन्थों में कुल सरल मार्ग भी बताये गये हैं, जो अपेक्षाकृत सुविधाजनक प्रतीत होते हैं। वैसे, साधना में संयम तो आवश्यक है ही, और संयम का अर्थ होता है—सामान्य क्रियाओं, चेष्टा और मनोवृत्तियों का दमन करके उन्हें एक सीमा में आवद्ध रखना। तो भी कुछ ऐसी पद्धतियाँ हैं, जिन्हें आज का साधारण नागरिक भी सरलता से निर्वाह कर सकता है। यहाँ बृहस्पति-ग्रह की उपासना से सम्बन्धित ऐसी सर्वसुलभ और सहज-साध्य विधि का वर्णन किया जा रहा है।

सर्वप्रथम स्थानीय पुरोहित से पूछकर, या स्वयं ही पञ्चाङ्ग में देख कर कोई गुरु-पुष्य योग वाले दिन का पता लगाना चाहिए। पूजा-पाठ, जप-तप, तन्त्र-मन्त्र आदि धार्मिक-शुभ कार्यों के लिए गुरु-पुष्य योग सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त्त होता है। यदि निकट-भविष्य में ऐसा कोई योग नहीं मिल रहा हो तो अन्य किसी ऐसे गुरुवार का चयन करना चाहिए, जो निर्दोष, अशुभ योगों से मुक्त और शुभ-प्रभाव वाला हो। उस दिन प्रातःकाल नित्यकर्म से निवृत्त होकर स्नान और दैनिक-पूजा करके, बृहस्पतिदेव का ध्यान करते हुए उनके चित्र, प्रतिमा अथवा यन्त्र की पञ्चोपचार अथवा षोडशोपचार (जैसी भी सामर्थ्य और सुविधा हो) पूजन करके, धूप-दीप के पश्चात् उपरोक्त मन्त्रों में से किसी एक का जप प्रारम्भ कर देना चाहिए। जपारम्भ के पूर्व, यन्त्र की संख्या का सङ्कल्प करना आवश्यक है। साथ ही अपने इष्टदेवता तथा बृहस्पतिदेवता से मानसिक रूप में इस बात की क्षमा-याचना कर लेनी चाहिए कि मेरे द्वारा की जा रही इस उपासना में जो भी

त्रुटि अथवा भूल हो, उसे क्षमा करें। क्षमा-याचना के उपरान्त पूर्ण श्रद्धा-भाव से बृहस्पति-मन्त्र का जप करना चाहिए। जप के समय साधक ऊनी अथवा पीले रेशमी आसन पर पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके बैठे। माला यथा-सम्भव हल्दी की गाँठों या रुद्राक्ष की होनी चाहिए। तुलसी या श्वेत चन्दन की माला भी प्रयुक्त हो सकती है। माला के द्वारा एक निश्चित-संख्या में प्रतिदिन जप करते हुए, 76,000 की संख्या में ऐसे ढंग से पूरी करनी चाहिए कि वह किसी बुधवार या गुरुवार ही को पूरी हो। संख्या पूरी हो जाने पर निकटतम बृहस्पति के दिन हवन-सामग्री द्वारा उक्त मन्त्र पढ़ते हुए कम से कम 108 या फिर 1008 आहुतियाँ देकर हवन करना चाहिए। हवन में काष्ठ के लिए पीपल की लकड़ी का उपयोग किया जाता है व हवन के उपरान्त यथा सम्भव 1, 2 या 5 ब्राह्मणों अथवा कन्याओं को भोजन और वस्त्र तथा कुछ सिक्का दक्षिणा के रूप में देना चाहिए। कन्याओं को अर्पित किया जाने वाला भोजन भी पीला हो--पीली मिठाई और पूड़ी, खीर आदि। वस्त्र जो भी दें, वह भी पीले रंग का रहे, साथ ही दक्षिणा-स्वरूप दिया जाने वाले सिक्का (मुद्रा भी) पीले रंग में हो। गिन्नी और मोहर जैसी स्वर्ण मुद्राएं दे सकना आज कल्पना में भी नहीं आता। ऐसी स्थिति में प्रचलित रुपये वाले सिक्के को कुंकुम और हल्दी के घोल में डुबोकर उन्हें पीला कर लेने से नियम का निर्वाह हो जाता है।

इस प्रकार मन्त्र के जप, हवन, दान, आदि के द्वारा बृहस्पतिदेव को प्रसन्न किया जा सकता है। यदि पूरे साधना-काल में उपवास सम्भव न हो तो कम से कम बृहस्पति के दिन तो अवश्य ही एकाहार (फल दूध आदि लेकर) रहना चाहिए। ऐसी स्थिति में ब्रह्मचर्य, भूमि शयन, संयम और अडिग आस्था को अनिवार्य नियम माना गया है।

बृहस्पति-यन्त्र :

साधना में जिस प्रकार मूर्त्ति, किसी देवता का प्रतिरूप होती है, ठीक उसी प्रकार यन्त्रों को भी देवता की प्रतिमा अथवा स्थानापन्न-शक्ति माना जाता है। मन्त्र, स्तुति, प्रतिमा और यन्त्र यह सब देवी-देवताओं की सन्निधि प्राप्त कराने वाले माध्यम हैं। श्रद्धा, संयमपूर्वक इनकी आराधना, पूजा करने वाले साधकों को सरलता से इष्ट-प्राप्ति हो जाती है। इनमें सबसे सरल साधन है—स्तुति। यह केवल वाचिक-साधना है। मन्त्रों की भी यही स्थिति है, परन्तु इनका उच्चारण कभी-कभी क्लिष्ट भी होता

है। प्रतिमा में केवल ध्यान और देवता की उपस्थिति का विश्वास होना आवश्यक है, जबकि यन्त्रों की रचना में अनेक प्रकार के नियम-प्रतिबन्धों का पालन करना अनिवार्य होता है। यन्त्र की रचना मुहूर्त्त-विशेष पर, सामग्री-विशेष से की जाय, और उसका नियमानुसार पूजन किया जाय, तभी फलदायी होता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि यन्त्र-साधना असम्भव है। वह भी साध्य है और कई एक यन्त्र तो बहुत ही सरलता से बनाये जा सकते हैं। अस्तु, जहाँ जैसी विधि बतायी गयी हो, तदनुसार ही यन्त्र-रचना की जानी चाहिए।

बृहस्पति-यन्त्र के लिए कई प्रकार के विधानों का उल्लेख मिलता है। सबसे सरल विधि यह है कि किसी गुरु-पुष्य योग के दिन, अथवा अन्य किसी शुभ-मुहूर्त्त वाले बृहस्पति को चाँदी के पत्तर पर, अथवा भोजपत्र पर, अष्टगन्ध से अथवा केसर-कुंकुम के घोल से, अथवा केसर-मिश्रित चन्दन (श्वेत) से बृहस्पति-यन्त्र की रचना करनी चाहिए। यन्त्र-लेखन के लिए अनार की टहनी की लेखनी बना लेना चाहिए। चन्दन की लकड़ी भी प्रयुक्त हो सकती है। यन्त्र-रचना के समय साधक को स्नानादि से शुद्ध होकर, स्वच्छ कुश अथवा ऊन के आसन पर पूर्व की ओर मुँह करके बैठते हुए, मन ही मन निरन्तर बृहस्पति का कोई एक मन्त्र जपते रहना चाहिए।

यन्त्र बन जाने पर उसकी चन्दन, पुष्प, धूप-दीपादि से पूजा करके नैवेद्य अर्पित करना आवश्यक है। ध्यान रहे कि यह सभी वस्तुएं पीले रङ्ग की होनी चाहिएं। चूंकि गुरु-ग्रह पीत-वर्णीय है, अतः उसकी उपासना में पीतवर्ण के पदार्थ ही प्रयुक्त होते हैं। यन्त्र की पूजा के समय काष्ठ की छोटी-सी चौकी पर पीला-रेशमी अथवा सूती नवीन वस्त्र का टुकड़ा बिछाकर स्थापित करना चाहिए। पूजा के उपरान्त यथा-सामर्थ्य अधिकतम संख्या में 1, 5, 7 या 9 माला मन्त्र जपना चाहिए। पहले से सङ्कल्प की गयी संख्या में जप पूरा हो चुकने पर (भले ही इसमें कई दिन लग जायें) अगले बृहस्पति को उसी मन्त्र से आहुति देते हुए, कम से कम 108 बार हवन करना चाहिए। इस प्रकार वह यन्त्र सिद्ध हो जाता है।

पूजा द्वारा सिद्ध किया गया बृहस्पति-यन्त्र जहाँ भी रखा जाता है (शुचिता, स्वच्छता और सुरक्षा के साथ ही उसे पूजा-गृह, कमरा, अलमारी, तिजोरी आदि में) वहाँ वह अपना चमत्कारिक प्रभाव दिखाता है। उत्तम यही होता है कि ऐसे मन्त्र-सिद्ध यन्त्र को पूजा-ग्रह में ही रखा जाये

और नित्य, अन्य प्रतिमाओं के साथ उसे भी पूजते हुए यथा-सामर्थ्य मन्त्र द्वारा स्तुति करली जाय। ऐसे यन्त्र का पूजन-दर्शन करने से बृहस्पति की कृपा प्राप्त होती है। ग्रहीय-दुष्प्रभावों का शमन होता है और उसके शुभ-परिणाम की वृद्धि होती है। ताम्रपत्र पर बने हुए यन्त्र भी उपयोगी होते हैं, परन्तु उन्हें लाकर पूजा और मन्त्र-जप द्वारा सतेज कर लेना चाहिए।

बृहस्पति-यन्त्र की आकृति इस प्रकार है—

१०	५	१२
११	९	७
६	१३	८

विशेष ध्यान देने की बात यह है यन्त्र की रचना भले ही किसी अन्य व्यक्ति से करा ली जाये, किन्तु साधक को उसका लाभ तभी प्राप्त होता है, जब वह स्वयं श्रद्धापूर्वक प्रतिदिन उसका स्तवन, दर्शन और पूजन करे। श्रद्धा के अभाव में सारी साधना व्यर्थ हो जाती है और नियम-संयम के साथ की गयी साधना का फल कई गुना अधिक प्राप्त होता है।

बृहस्पति-रत्न :

यद्यपि रत्न-धारण से ग्रहीय-प्रभाव में परिवर्त्तन हो जाता है, परन्तु यह विषय इतना जटिल है कि थोड़ी-सी चूक हो जाने पर भी, भयङ्कर दुर्घटना की आशङ्का रहती है। रत्न तभी लाभकारी होता है, जब उससे सम्बन्धित ग्रह और उस ग्रह से सम्बन्धित अन्य ग्रहों की स्थिति साधक की कुण्डली के अनुसार शुभ हो। अन्यथा, मूल्यवान और दुर्लभ रत्न भी व्यर्थ, बल्कि घातक सिद्ध होते हैं। रत्न-धारण में मुहूर्त्त, पूजा, मन्त्र आदि का प्रतिवन्ध अनिवार्य होता है। समर्थ-जन तो यह सव कर लेते हैं, परन्तु सामान्य-जन के लिए न तो रत्न सुलभ है, न उसके धारण के लिए विज्ञान-सम्मत परामर्श। अत: इस विषय में वहुत सावधानी वरतनी चाहिए।

जहाँ तक बृहस्पति के रत्न का प्रसङ्ग है, पुखराज को प्रमुख रत्न माना गया है। शुद्ध पीले पुखराज के अभाव में, लोग सुनैला अथवा पीला अकीक धारण कर लेते हैं। कच्ची हल्दी की गाँठ अथवा केले की जड़ भी पुखराज की पूरक मानी जाती है। यह सभी रत्न बृहस्पति के दिन शुभ-मुहूर्त्त में पूजनोपरान्त धारण किये जाते हैं। रत्नों पर लोगों की बहुत

आस्था रहती है। परन्तु मूल्यवान् होने के कारण वे सामान्य-जनों के लिए सुलभ नहीं होते और जिन्हें सुलभ होते हैं, वे भी पूर्णतया लाभान्वित नहीं हो पाते। इसके कई कारण हैं—प्रथम तो शुद्ध और वास्तविक रत्न ही कठिनाई से मिलता है, फिर उसका निर्दोष होना और भी जटिल समस्या है। असली हीरा, नीलम और माणिक्य या पुखराज भी यदि दोषयुक्त हो, उसमें दाग, धब्बा, गड्ढा, चीरा या दरार, चटक जैसा कोई दोष हो (जिसे अच्छे जौहरी ही पहचानते हैं) तो वह लाभ तो कर ही नहीं सकता, वरन् उसके धारक को हानि की पूरी आशंका रहती है।

बृहस्पति की अनुकूलता प्राप्त करने के लिए जो भी रत्न या उपरत्न अथवा वनस्पति धारण करना हो, उसे गुरु-पुष्य योग के दिन धारण करना चाहिए। यदि गुरु-पुष्य योग निकट भविष्य में न मिल रहा हो तो किसी पुरोहित से पूछकर अन्य कोई शुभ-मुहूर्त्त वाला बृहस्पति का दिन पूछ लेना चाहिए। भद्रा, पञ्चक, व्याघात आदि दुर्योगों से सर्वथा मुक्त, किसी श्रेष्ठ तिथि-योग से युक्त बृहस्पतिवार ही रत्न-धारण के लिए उपयुक्त होता है।

बृहस्पति की आराधना में पीतवर्ण की सामग्री प्रयुक्त होती हैं, अतः उचित मुहूर्त्त आने पर साधक को चाहिए कि स्नानोपरान्त पीले वस्त्र (केवल धोती-पञ्चा) धारण करके पीले ऊनी या रेशमी आसन पर बैठें। तत्पश्चात् उस धारणीय रत्न-उपरत्न को पञ्चामृत, गङ्गाजल अथवा शुद्ध कूप-जल से स्नान कराकर नये पीले वस्त्र के आसन पर स्थापित करे, फिर पीले चन्दन पुष्प और नैवेद्य से उसका पूजन-हवन करके यथा-सामर्थ्य 11, 21, 31 माला (108 दाने की) बृहस्पति-मन्त्र का जप करे। तत्पश्चात् किसी ब्राह्मण-बालक या बालिका को सादर भोज-दक्षिणा दे और फिर उसे प्रणाम करके, उस रत्न को धारण करे। इस समस्त साधना में निरन्तर मन ही मन बृहस्पति-मन्त्र का जप करते रहना चाहिए।

6. शुक्र

पौराणिक सन्दर्भ :

सामान्य-परिचय--पुराण और ऐसे ही अन्य प्रामाणिक ऐतिहासिक-ग्रन्थों के अवलोकन से पता चलता है, कि आज की ही तरह पहले भी

समाज में जाति-वर्ग के भेद का प्राधान्य था। यों, प्राकृतिक-संरचना की दृष्टि से समस्त मानव-जाति एक ही है, तो भी देश, काल और पर्यावरण के अनुसार मानव-समूहों में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। हम देखते हैं, कि चीनी, पञ्जाबी और मद्रासी व्यक्ति अपनी भिन्नतापूर्ण रूपाकृति के कारण सैकड़ों की भीड़ में भी सरलता से पहचान लिए जाते हैं। प्राचीन-काल में भी इसी प्रकार के जाति-समूह अपने-अपने क्षेत्र में रहते थे।

प्राणियों में मानव को सर्वाधिक विकसित बुद्धि वाला माना गया है, कारण कि वह क्रियात्मक और भावात्मक दोनों रूपों में अन्य जीवों की अपेक्षा अधिक सक्रिय और समर्थ है। मानव का सामान्य अर्थ है—मनुष्य। किन्तु वास्तव में 'मानव' और 'मनुष्य' यह दोनों शब्द उस आदि पुरुष की सन्तानों के लिए प्रयुक्त होते हैं, जो एक समय (सृष्टि के आदि-काल में ही) 'मनु' नाम से विख्यात हुआ था। भारतीय पौराणिक-मान्यता (हिन्दू-संस्कृति) के आधार पर आज का समस्त मानव-समुदाय उसी आदि-पुरुष 'मनु' का वंशज है। 'मनु' अपने समय के सर्वाधिक प्रतापी, यशस्वी, बौद्धिक-चेतना सम्पन्न, विचारक, व्यवस्थापक और समाज-शास्त्री थे। उनकी ख्याति इतनी अधिक हुई, कि विद्वत्ता और व्यवस्था के क्षेत्र में उनका नाम एक प्रतीक की भाँति प्रयुक्त होने लगा। कालान्तर में और भी कितने ही मनीषी-विद्वानों ने 'मनु' का अभिधान धारण किया। 'मनु-स्मृति' नाम का एक महान् व्यवस्था-ग्रन्थ आज भी प्रकाश-स्तम्भ की भाँति भारतीय-समाज का मार्ग-निर्देशन कर रहा है। उन्हीं आदि मनु की संतान को मानव, मनुष्य और मनुज कहा गया।

लगभग मनु के समकालीन (कुछ विद्वानों के मतानुसार, मनु के कुछ समय बाद) एक 'दनु' नामक विद्वान भी बहुत प्रसिद्ध हुए। उनकी सन्तानें दनुज अथवा दानव कहलायीं। यही दानव-जाति आगे चलकर 'रक्ष' नाम से प्रसिद्ध हुई, जो वस्तुतः 'यक्ष' वर्ग की एक शाखा थी।

अनेक इतिहासकारों का मत है, कि आर्य, यक्ष, रक्ष, नाग आदि विभिन्न मानव-समूह अपनी आनुवंशिकी के अनुसार उत्तरोत्तर प्रगतिशील

होते रहे, और कालान्तर में उन्होंने सबल-सङ्गठित होकर अपने-अपने राज्य भी स्थापित कर लिये। जाति-वर्ग के अभिमान में वे अपनी सत्ता के संरक्षण-स्थापना और विस्तार हेतु दूसरे समूहों से युद्ध भी कर बैठते थे। देवता और दनुज वर्गों की प्रतिद्वन्दिता इसी प्रकार की थी। आगे चलकर इसने इतना भयङ्कर ध्वंसात्मक और विघटनवादी रूप ले लिया कि देवता और दैत्य एक-दूसरे के विरोध का पर्याय बन गये।

यह कहना कि देवता सुन्दर-सम्पन्न और समर्थ थे, जब कि दैत्य (राक्षस) कुरूप, भयङ्कर, विपन्न और असहाय थे—सर्वथा असङ्गत और यथार्थ-विरुद्ध है। दोनों वर्गों की सभ्यता, संस्कृति और सम्पन्नता में देश, काल, परिवेश के आधार पर अन्तर अवश्य था, किन्तु दैत्य-वर्ग निरा अकिंचन रहा हो—ऐसी बात नहीं थी। यथार्थ तो यह है, कि शक्ति और सम्पदा की दृष्टि से यही वर्ग अधिक सम्पन्न था।

अस्तु, जिस प्रकार देव-वर्ग में बृहस्पति को गुरु-पद प्राप्त था, उन्हें समाज का मार्ग-दर्शक, परामर्श-दाता, विद्वान, पूज्य और सम्मान्य माना जाता था, ठीक वही स्थान, वही भाव और वही सम्मान आचार्य शुक्र को दनुज-वंश (दैत्य-कुल) में प्राप्त था। कई अर्थों में तो शुक्राचार्यजी देव-गुरु बृहस्पति से बहुत आगे थे।

ब्रह्माण्ड की संरचना में सौर-मण्डल के अन्तर्गत जहाँ नवग्रहों का सन्दर्भ आता है, शुक्र को उच्चतम स्थान प्राप्त है। और, आज के भौतिक-विज्ञानी भी इस अनुभूत सत्य से सहमत हैं, कि शुक्र-ग्रह से विकरित होने वाली किरणों का स्पर्श-प्रभाव प्राणी (व्यक्ति) के जीवन में अकाट्य प्रभाव छोड़ता है। किसी जातक के जीवन को सम्पन्न-विपन्न बनाने में शुक्र की की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। कुण्डली के बारह भावों में से वह जहाँ भी बैठा हो, तदनुसार व्यक्ति की शारीरिक-संरचना, बौद्धिक-संचेतना, स्वभाव, व्यवहार और रुचियों को प्रभावित करता रहेगा। अनुकूल स्थिति वाला शुक्र भौतिक वैभव-विलास की जितनी उपलब्धि कराता है, विपरीत-स्थिति में—उसी तरह वञ्चित भी कर देता है। कुल मिलाकर, शुक्र को एक श्रेष्ठ, सुखद, यशोवर्द्धक और राजसिकता प्रदान करने वाला ग्रह माना जाता है।

स्थिति-स्थान :

यद्यपि अन्य ग्रहों-नक्षत्रों की भाँति आकाश-मण्डल में स्थित यह

ग्रह (शुक्र) भी भ्रमणशील होने के कारण अपना स्थान-परिवर्त्तित करता रहता है, तो भी स्थायी रूप से इसको पूर्व-दिशा का स्वामित्व प्राप्त है। अखिल ब्रह्माण्ड में, सूर्य को केन्द्रस्थ मानकर, शुक्र का प्रभाव-क्षेत्र पूर्व-दिशा को स्वीकार किया जाता है। जिन दिनों यह अपने क्षेत्र (पूर्व-दिशा) में रहता है, वहाँ के निकटस्थ भू-भाग को (उसके निवासी प्राणियों को) पूर्ण रूप से प्रभावित करता है। उस समय इसकी किरणों के स्पर्श से सृष्टि में अनेक प्रकार के परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

मण्डल :

चन्द्रमा, मङ्गल, बुध और बृहस्पति—इन सभी ग्रहों की अपेक्षा शुक्र-ग्रह का मण्डल बड़ा है। इसकी आकृति में भी पर्याप्त भिन्नता है। जहाँ मङ्गल-ग्रह का मण्डल त्रिकोणाकार है, बुध का बाणाकार है, चन्द्रमा और बृहस्पति का चतुरस्र है, वहीं शुक्र-ग्रह का मण्डल षड्भुज (षट्-कोणीय) है। कदाचित् अपने मण्डल की इसी विशालता और विशिष्ट आकृति के कारण ही शुक्र को आकाश-मण्डल का सबसे अधिक प्रदीप्त ग्रह माना जाता है। अनपढ़ ग्रामीण-जन भी आकाश में उसकी स्थिति पहचान लेते हैं। 'सुकवा उगा है' (शुक्र उदित हुआ है) यह वाक्य प्रायः ग्रामीणों के मुँह से सुना जाता है।

माप :

जिन दिनों सवेरे तड़के पूर्व-दिशा में शुक्र का उदय होता है, अपनी विशालता, आभा और अद्भुत आकृति के कारण वह सरलता से पहचान लिया जाता है। चन्द्रमा न होने पर भी उसकी किरणें पृथ्वी पर हलका-सा प्रकाश बिखेरती रहती हैं। अपने आकार, प्रकार और ज्वलन्तता के आधार पर यह सर्व-परिचित ग्रह है। देखने में भी, इसको आकाश का सबसे बड़ा तारा कहा जाता है। यह बृहस्पति से भी बड़ा दृष्टिगोचर होता है। इसकी श्वेत-नीलाभ-ज्योति मन में एक अद्भुत आनन्दमय रोमांच का संचार करती है।

भौतिक-विज्ञान की दृष्टि से, पृथ्वी से बहुत दूर होने के कारण यह ग्रह अपने वास्तविक आकार से बहुत छोटा (लघुतम) दीख पड़ता है। फिर भी वह लघुता इतनी अवश्य है, कि इसे आकाश का सबसे बड़ा तारा बनाये हुए है।

पौराणिक-मान्यता के आधार पर इस ग्रह का माप नौ अंगुल है, जो चन्द्र, मङ्गल, बुध और गुरु की अपेक्षा बहुत बड़ा है।

प्रभाव-क्षेत्र :

शुक्र-ग्रह का प्रभाव-क्षेत्र, पृथ्वी-मण्डल (भारत-भूमि में) पर भोजकट देश माना जाता है। इस भोजकट देश की अवस्थिति विवाद-ग्रस्त है। कुछ विद्वान इसे उड़ीसा का समुद्र-तटीय क्षेत्र मानते हैं और कुछ की धारणा है, कि आधुनिक गुजरात प्रदेश का भुज-कच्छ क्षेत्र ही भोजकट देश है। जो भी हो, यह निर्विवाद सत्य है, कि अन्य ग्रहों की भाँति शुक्र भी (कई अर्थों में तो उनसे अधिक भी) सृष्टि को प्रभावित करता है, और जिन दिनों यह पृथ्वी-लोक के निकट रहता है, यहाँ की सृष्टि, मानव, जीव-जन्तु और वनस्पति तथा खनिजों की उत्पत्ति-समृद्धि पर सीधा प्रभाव डालता है। कारण कि यह एक समृद्धिकारी ग्रह है, और अनुकूल स्थितियों में सौख्य-विलास की प्रभूत सुविधाएं प्रदान करता है।

गोत्र :

महर्षि भृगु अपने समय के प्रख्यात विद्वान, नीतिकार, ज्योतिष-मर्मज्ञ और विभिन्न विषयों के प्रकाण्ड-मर्मज्ञ थे। उन्हीं की वंश परम्परा में सूर्य की भाँति जाज्वल्यमामान कीर्त्ति-श्री से युक्त शुक्रदेव का जन्म हुआ था। अपनी विद्वता और अप्रतिम-मेधा के कारण वे आचार्य के रूप में सर्वत्र सम्मानित हुए। मनु-वंशजों (मानवों-मनुष्यों) के विपरीत उन्होंने दनुज-वर्ग का प्रतिनिधित्त्व किया और दैत्य (दानव-जाति) समुदाय के सर्व-पूज्य गुरु के रूप में प्रसिद्ध हुए। राजनीति, उत्तराधिकार, ज्योतिष, आयुर्वेद, युद्ध-कला, शस्त्र-संचालन, स्थापत्त्य, छाया, अभिनय, संगीत, नृत्य, वादन, कूटनीति और विज्ञान कोई भी क्षेत्र आचार्य शुक्र के लिए अपरिचित-अछूता नहीं है। इन सभी के वे अधिकारी मर्मज्ञ हैं। निष्पक्ष रूप में यदि विवेचन किया जाय, तो देवगुरु बृहस्पति से आचार्य शुक्र की गुण-गरिमा और ज्ञानपरिधि कहीं अधिक विस्तृत है। भृगु-वंश में जन्मे होने के कारण वे भार्गव कहलाये। आज भी ब्राह्मणों का एक वर्ग 'भार्गव' नाम से प्रसिद्ध है। और इसे एक सुखद संयोग कहें, या आचार्य शुक्र की कृपा, जो भार्गव-परिवारों में कदाचित् ही कोई निर्धन-विपन्न हो। अन्यथा वे सभी सम्पन्न, राजसिकता से युक्त, समाज में प्रतिष्ठित व्यवसायी अथवा उच्चपदाधिकारी हैं। भार्गव-परिवार जहाँ भी हैं, या तो राज-सेवा में हैं,

या अपना स्वतन्त्र-व्यवसाय कर रहे हैं। आर्थिक-दृष्टि से वे अवश्य ही सम्पन्न हैं। फिर, आज के समस्या-प्रधान युग में अगर कहीं किसी परिवार में कोई विसंगति अथवा विपन्नता है भी, तो वह अपवाद स्वरूप ही है। ज्ञान और विद्वता की दृष्टि से आचार्य शुक्र को यजुर्वेद का स्वामित्त्व प्राप्त है। भृगु, दैत्याचार्य, दैत्यगुरु, दनुजाचार्य, उशना, भार्गव-पुत्र, अच्छ, काणकवि, सित आदि विभिन्न नामों से उनका उल्लेख प्राप्त होता है। देव-दानव समाज में जो प्रतिष्ठा उन्हें प्राप्त है, वही नवग्रहों में भी सुलभ है। ग्रह के रूप में शुक्र की उपेक्षा कर सकने वाला कोई विद्वान आज तक हुआ ही नहीं। किसी भी देश के ज्योतिष में, राशियों और नवग्रहों की अवमानना का प्रश्न ही नहीं उठता। नाम में भले ही अन्तर हो, परन्तु उनके अस्तित्त्व और प्रभाव को सभी ने स्वीकार किया है। शुक्र की महत्ता को भौतिक-विज्ञानी भी मानते हैं, और उसके अद्भुत प्रभाव का विस्तार से वर्णन करते हैं।

वर्ण :

आचार्य शुक्र का व्यक्तित्त्व परम शोभन है। उनका शारीरिक-वर्ण श्वेत है, परन्तु रोमावली नीलाभ है, अतः वे हल्की-नीली आभा से युक्त प्रतीत होते हैं। धूप-छाहीं रंग की झलक उनमें श्वेत और नील दो वर्णों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। अपने मधुर-स्वर, काव्य-सृजन की प्रतिभा से युक्त मस्तिष्क, शोभन नेत्र; बलिष्ठ-शरीर, तेजस्वी और प्रिय-दर्शन मुखाकृति, भय-चिन्ता-क्लेश से सर्वथा परे, प्रसन्न वदन वाले आचार्य शुक्र का सर्वाङ्ग राजसिक-गुणों से अलंकृत है। हाँ, उनके जीवन में एक बहुत बड़ी कूटनीतिक दुर्घटना भी हो गयी थी. जिसने अन्ततः उन्हें आंशिक रूप में विकलाङ्ग (विरूप) कर दिया, तो भी उनके ओज-तेज, ज्ञान और पाण्डित्य में कोई कमी नहीं आने पायी। वे अपने समस्त गुणों के साथ आज भी यथावत् पूज्य हैं। ग्रह के रूप में, जिस पर भी इनकी कृपा-किरणें पड़ जाती हैं, वह व्यक्ति तिल से ताड़, धूल से फूल और नगण्य से सामान्य हो जाता है। अपनी इस नाममात्र की विकलाङ्गता के बावजूद भी, आचार्य शुक्र, समस्त सभ्य-समाज में समादृत हैं। ग्रह के रूप में भी उनकी अद्भुत प्रभाव-शक्ति बड़े-बड़े ज्योतिर्विदों को नतमस्तक करती रहती है। जहाँ तक उनकी विकलाङ्गता का प्रश्न है, वह एक नेत्र से रहित हो गये हैं। वह दुर्घटना इस प्रकार घटी थी—

दैत्यराज-बलि अपने समय के बहुत ही उदारमना, दानी और दयालु सम्राट थे। उनके गुणों, स्वभाव और तेजस्विता से प्रजावर्ग में कृतज्ञता और सेवा की भावना निरन्तर बढ़ती जा रही थी। देवराज इन्द्र को, जो वस्तुतः सत्ता-लोभ के कारण निरन्तर षड्यन्त्रों और दूसरों को पद-दलित करने के उपायों में व्यस्त रहते थे, शङ्का हुई कि कहीं ऐसा न हो कि शक्ति-सम्पन्न होकर बलि इन्द्रपुरी पर अपना अधिकार करलें। क्योंकि राजनीति सदा से अपराध और अनैतिकता की जननी है, इसलिए इन्द्र ने भगवान् विष्णु से जाति, वर्ण, संस्कृति और अपनी दीनता की दुहाई करते हुए, प्रार्थना की कि वे किसी भी प्रकार राजा बलि की प्रगति को अवरुद्ध करदें, अन्यथा देव-समाज के अस्तित्त्व पर सङ्कट छा जायेगा।

इन्द्र की स्वार्थी मनोवृत्ति और क्षुद्रता पर विष्णु को हँसी आ गयी। किन्तु नारद मुनि द्वारा इन्द्र की संस्तुति किये जाने पर अन्ततः वे सहायता के लिए तैयार हो गये। उन्होंने एक बौने ब्राह्मण-भिखारी का वेष बनाया। बावन अंगुल का शरीर धारण करके वे राजा बलि की राजधानी में पहुँचे और उनसे तीन पग भूमि की याचना की। राजा बलि को इस याचना पर आश्चर्य हुआ, और बौने याचक की दशा देखकर दया भी आयी। वे उसे और अधिक भूमि तथा आवास-गृह देने को तैयार हो गये, पर बौने साधु ने केवल तीन पग भूमि ही लेने की बात कही। राजा ने उसका अनुरोध मान लिया और कहा—'हे ब्राह्मणदेवता, आप जहाँ जिस ओर चाहें, भूमि नाप लें।'

नियमानुसार दान करने के पूर्व, दानी व्यक्ति विधिवत् सङ्कल्प पढ़कर, कुश और जल के द्वारा याचक के नाम—सम्बन्धित वस्तु को दान किये जाने की घोषणा करता है, तत्पश्चात् उस पर से अधिकार हटाकर, याचक को सौंप देता है। राजा बलि ने भी यही किया। किन्तु जिस समय वे जल की झारी की टोंटी से सङ्कल्प हेतु जल लेने लगे उस समय राजा बलि के परम्रागत राजगुरु आचार्य शुक्र को, जो वहीं बैठे थे—विष्णु के क्रिया-कलाप पर शङ्का हो गयी और उन्होंने अपने ज्ञान एवं तपोबल से उनकी वास्तविकता समझ ली। यह देखकर कि इस दान के पीछे भयङ्कर षड्यन्त्र है, और दैत्यराज सदा के लिए पंगु किया जा रहा, वे तुरन्त ही अदृश्य हो गये और एक छोटे-से भृङ्ग (कीट) का रूप धारण करके गंगासागर (जल की झारी) की टोंटी में जा बैठे।

ठीक उसी समय राजा बलि ने सङ्कल्प-पाठ पूरा करके झारी की टोंटी से जल डालना चाहा। परन्तु टोंटी में अवरोध होने के कारण जल बाहर नहीं आ रहा था, विष्णु को शुक्राचार्य के इस चातुर्य का आभास मिल गया। उन्होंने एक सींक उठाई और अवरोध दूर करने के लिए टोंटी में डालकर कुरेदने लगे। संयोग वश वह सींक उस कीट (आचार्य शुक्र) की आँख में घुभ गयी, और वे सदा के लिए एक नेत्र से हीन हो गये। पीड़ा के कारण उन्हें टोंटी से हटना पड़ा और इस समस्त षड़यन्त्र से निरे अनभिज्ञ, राजा बलि ने झारी से जल की धारा गिराकर, बौने साधु को विधिवत् तीन पग भूमि दान कर दी।

तत्पचात् दान के वाद जब धरती नापने के लिए वौने याचक ने अपना पहला पग उठाया, तो राजा वलि, पुरोहित और उपस्थित सभासद उसके रूपाकार को देखकर एकबारगी भय तथा विस्मय से विमूढ़ हो गये। बौने का आकार गगन-चुम्बित हो गया था। वैसे विराट रूप की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। पहले ही पग में उसने सारी भूमि नाप ली, और दूसरे पग में आकाश-लोक को समेट लिया। पृथ्वी और आकाश तक का क्षेत्र इस प्रकार छद्मपूर्वक अपने अधिकार में करके, बौने साधु ने कहा—'दैत्यराज क्या अपना वचन पूरा नहीं करोगे? अभी एक पग क्षेत्र बाकी है, उसके लिए क्या देते हो?'

'महाराज! आप चाहे जो कोई हो, परन्तु मेरे लिए ब्राह्मण ही हैं, और आपकी याचना पर मैं अपने वचन की पूर्त्ति अवश्य करूँगा। तीसरे पग के लिए यदि धरती आकाश का कोई क्षेत्र शेष नहीं है, तो क्या हुआ—मेरा शरीर तो है! आप तीसरे पग में इसी को नापलें।' और यह कहकर राजा बलि भूमि पर दण्डवत् लम्वे लेट गये।

कैसा उत्तम-चरित्र है, 'दैत्य' कहे जाने वाले राजा वलि का, और कैसा कदाचार पूर्ण क्षुद्रता है—'देवराज' कहे जाने वाले इन्द्र की!

बस, तभी से, आचार्य शुक्र, जो अपने नेत्रों की शोभा और तेज-स्थिरता के लिए प्रख्यात थे, एक नेत्र से रहित हो गये। यद्यपि बाद में विष्णु ने उससे क्षमायाचना की और वरदान दिया, कि इस कृत्य के लिए हमारा देववर्ग निन्दित होगा, किन्तु आप एक नेत्र होने पर भी अपने रूप, गुण, विद्वत्ता और अभङ्ग प्रभाव के लिए सृष्टि के अन्तिम क्षण तक सर्वत्र सम्मानित रहेंगे। नवग्रहों के मध्य आपका विशिष्ट स्थान होगा, और

जिस जातक पर आपकी कृपा होगी, वह इन्द्र और बलि के समान ही यश-वैभव का स्वामी होगा।

विष्णु का वह वरदान आज भी प्रत्यक्ष है। जिस जातक की कुण्डली में शुक्र की स्थिति शुभ और श्रेष्ठ है, वह निश्चित रूप से अनेक प्रकार के सुख वैभव और मान प्रतिष्ठा से सम्पन्न होता है। इस सन्दर्भ में, मैं स्वयं अपनी स्थिति भी, वड़े सङ्कोच के साथ, विनम्र शब्दों में बताना चाहूँगा—मेरी कुण्डली में अनेक प्रकार के विघ्न और विपन्नता-जनक योग हैं, परन्तु दैव-कृपा से—आचार्य शुक्र की थोड़ी-सी अनुकूलता प्राप्त है। मेरी बौद्धिक-संचेतना का सबसे बड़ा आधार वही हैं।

(प्रसङ्गतः इस विषयान्तर से उत्पन्न विस्तार के लिए मैं पाठकों से क्षमा-प्रार्थी हूँ।)

राशि-स्वामित्व :

आचार्य शुक्र को नवग्रह के रूप में जो विशिष्टता प्राप्त है, उसके आधार पर वे तुलाराशि के तारा समूह के स्वामी हैं। तुला राशि का जातक शुक्र की अनुकूल दृष्टि-स्थिति पाकर अनायास ही चमत्कारी ढङ्ग से वैभवशाली हो जाता है। ऐसे व्यक्ति कला, सौन्दर्य मेधा, संगीत, अभियान्त्रिकी और शल्य-कर्म आदि में पारंगत होते हैं।

और जैसा कि ग्रह नक्षत्रों के लिए स्वाभाविक हैं, उनकी प्रतिकूल-किरणें अर्थात् विकिरण का विपरीत प्रभाव कष्टदायक भी हो जाता है। शुक्र-ग्रह के लिए भी यही कहा जा सकता है। अशुभ स्थान में स्थित अथवा अशुभ-ग्रहों एवं राशियों से प्रभावित शुक्र—व्यक्ति के लिए क्लेशकारक भी हो जाता है। यह अनुकूल अथवा प्रतिकूल प्रभाव शुक्र की महादशा की अवधि में विशेष रूप से परिलक्षित होता है। शुक्र की महादशा 20 वर्षों तक चलती है। यदि किसी की कुण्डली में शुक्र शुभ स्थान पर, सुखद-स्थिति में बैठा है, तो महादशा-काल में वह उस जातक को वैभव-सौख्य के चरम-शिखर पर पहुँचा देता है। वैसे भी, जब-जब (गोचर के अनुसार) शुक्र की स्थिति जैसी आती है, उसका प्रभाव पड़ता रहता है।

वाहन :

आचार्य शुक्र का वाहन 'अश्व' है। इनका चित्र आश्वारूढ़ स्थिति में अंकित किया जाता है। वैसे भी अश्व समृद्धि, तेजस्विता, सौभाग्य, सुलक्षण, वेग और राजसिकता का प्रतीक है। भौतिक तथा वायव्य दोषों

का परिहार करके व्यक्ति को समृद्ध-समर्थ बनाने में अश्व की महिमा अन्य देशों में भी मुक्त-कण्ठ से स्वीकार की गयी है। फिर, व्यक्ति के दैनिक-जीवन में उसकी बहुविध उपादेयता तो स्वयं-सिद्ध है ही।

विपरीत-प्रभाव :

किसी भी व्यक्ति की कुण्डली में स्थायी अथवा अस्थायी रूप में, जैसी भी स्थिति हो, शुक्र का वैसा ही प्रभाव होता है।

व्यक्ति की काम-शक्ति का शुक्र से सीधा सम्बन्ध है। अतः यह व्यक्ति को कामुक, विलासी, नारियों के प्रति विशेप अनुरक्त और रंगीन-मिजाज (रोमानी ख्यालों में डूबा रहने वाला) बनाता है। किन्तु जहाँ सबल और अनुकूल शुक्र से व्यक्ति को काम-सुख की प्राप्ति होती है, वहीं प्रतिकूल शुक्र की स्थिति में उसकी कामशक्ति क्षीण या नष्ट हो जाती है। वह अनेक प्रकार के यौन-विकारों से भी ग्रस्त हो सकता है। यौन-तुष्टि से वञ्चित ऐसे व्यक्ति प्रायः काम के प्रसंग में सामाजिक-लांछन के प्रहार भी सहने को विवश होते हैं। शुक्र का कोप (विरुद्ध स्थिति) व्यक्ति को वीर्य-रोगी बना देता है। अन्य प्रकार के रतिज-रोगों की भी पूरी सम्भावना रहती है। दाम्पत्त्य-जीवन में भी यौन-सुख में बाधा आ जाती है। कारण कि ऐसे विपरीत प्रभाव से बहुधा व्यक्ति की पत्नी रुग्णा हो जाती है, और वह रोग भी अधिकतर यौनांगों में ही होते हैं। सारांश यह कि दूषित शुक्र का प्रभाव व्यक्ति को स्त्री-सुख, यौनानन्द और काम-तुष्टि से वंचित करके एक प्रकार के अन्तर्दाह से निरन्तर पीड़ित रखता है। फलतः वह व्यक्ति कुण्ठा, भग्नाशा, बोधहीनता जैसे मानसिक-सम्वेगों से अर्द्ध-विक्षिप्त जैसा हो जाता है। धर्माचरण में भी उसकी आस्था नहीं रह पाती और अन्ततः वह दुराचार के पथ पर अग्रसर हो जाता है।

शुक्र-मन्त्र :

हिमकुन्द मृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम्।
सर्वशास्त्र प्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम्॥

[जप संख्या 16,000]

शुक्रदेव की उपासना के लिए यह पौराणिक-मन्त्र बहुत ही सरल, सुबोध, लयात्मक, उच्चारण में सहज और प्रभावशाली है। कोई भी साधक दैनिक-पूजा में, शुक्रदेव का स्मरण करके उनकी स्तुति हेतु यह मन्त्र

(श्लोक) जप सकता है। अब यह तो साधक की सुविधा-क्षमता पर निर्भर है, कि वह कितना जप करे। स्थिति का भी एक अपना महत्त्व और प्रभाव होता है। सामान्य दिनों में, प्रतिदिन नवग्रहों का स्मरण स्तवन कम से कम एक बार कर लेना भी लाभप्रद है। या फिर, प्रतिदिन उस ग्रह विशेष की स्तुति 5, 7 या 11 बार की जा सकती है, जैसे रविार के दिन सूर्य की, सोमवार के दिन चन्द्रमा की और शुक्रवार के दिन शुक्र की।

ग्रह-स्तवन का तीसरा रूप है, कि साधक अपनी कुण्डली के अनुसार, जिन दिनों में जिस ग्रह की दशा चल रही होती है, उसका स्तवन करते हैं। ग्रह-दशा जानने के लिए किसी भी स्थानीय-पण्डित को कुण्डली-चक्र दिखा देने से स्थिति का पता चल जाता है। जब जिस ग्रह की दशा चल रही हो, उस अवधि में उसका स्तवन-चिन्तन, मन्त्र-जप और पूजन विशेष प्रभावकारी होता है।

व्यक्ति की कुण्डली में प्रत्येक ग्रह की, अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही परिस्थितियाँ आती-जाती रहती हैं, अत: ग्रह-स्तवन का प्रभाव अवश्य ही लाभप्रद होता है। मेरी अपनी धारणा है, कि ग्रह भी अलौकिक शक्तियों (देवी-देवताओं में निहित दिव्य-शक्ति) के रूप हैं, और उनकी अनुकूलता-प्रतिकूलता से प्राणी (व्यक्ति) का जीवन निश्चित-रूपेण प्रभावित होता है। अत: मन्त्र-जप और स्तुति-पाठ के द्वारा उन्हें प्रसन्न (सम्वेदित) करके अवश्य ही लाभ उठाया जा सकता है। नाद-प्रभाव के वर्णन में, ध्वनि-विज्ञान के चमत्कारों और अनुभूतियों का उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है, संक्षेप में यह संकेत पर्याप्त होगा, कि किसी भी देवता का स्तवन उसे साधक के प्रति कृपालु बनाता है। ठीक यही स्थिति ग्रहों के सम्बन्ध में भी है। अत: यह स्वयं सिद्ध है, कि स्तुति और जप-मन्त्र से ग्रहों की कृपा-दृष्टि, साधक को अवश्य ही प्राप्त होती है। अब यदि कुण्डली के अनुसार कोई ग्रह शुभ-स्थिति में (अनुकूल) है, तो उसकी प्रसन्नता उस शुभ-प्रभाव (अनुकूलता) को और बढ़ायेगी। यदि संयोगवश, ग्रह प्रतिकूल स्थिति में (अशुभ) है और उसके प्रभाव से व्यक्ति को पीड़ा हो रही है, तो भी साधक के द्वारा किये जा रहे स्तवन, मन्त्र-जप और पूजन से वह (ग्रह) सन्तुष्ट होने पर अपने अशुभ प्रभाव को कुछ न कुछ अवश्य ही कम कर देता है। वह न कम करे, तो भी साधक द्वारा की गयी उपासना (प्रतिबन्ध यह है कि वह श्रद्धा-विश्वास और विधिपूर्वक की गयी हो) का प्रभाव उसकी विपरीतता को शान्त अवश्य कर देता है।

इस प्रसङ्ग को एक छोटे से उदाहरण से समझना चाहिए—अग्नि का धर्म (स्वभाव) है—जलाना। वह जहाँ भी रहेगी, जलायेगी। उसका जलाना किसी के लिए आवश्यकतानुसार लाभप्रद है, और कहीं पर अनावश्यक होने पर हानिकारी भी। इंधन और वायु के द्वारा उसकी ज्वलनशीलता को बढ़ाया जा सकता है, जब कि पानी की बौछार से वह शान्त हो जाती है। इसी प्रकार साधक द्वारा की गयी. उपासना-स्तुति से ग्रहों की प्रसन्नता जहाँ तक ओर उसके लिए समृद्धिकारी होती है, वहीं उनके (दुष्प्रभाव) को शान्त करके, सुरक्षा भी प्रदान करती है।

शुक्रदेवता के और भी कई मन्त्र हैं—जैसे, पूर्वोक्त ग्रहों के सन्दर्भ में लिखे जा चुके हैं। यह तो साधक की क्षमता पर निर्भर है, कि वह किस मन्त्र का जप करे। शुक्र-ग्रह के अन्य मन्त्र इस प्रकार हैं—

वैदिक-मन्त्र :

- ॐ अन्नात्परि श्रुतोरसं ब्रह्मणाव्य पिवत् क्षत्रं पयः।
  सोमं प्रजापतिः ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपान ई।
  शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु।

प्रसङ्ग-पूर्त्ति के लिए हमने नवग्रहों के मन्त्र-प्रसङ्ग में वैदिक-मन्त्रों का उल्लेख कर तो दिया है, परन्तु यह जानते हैं कि ऐसे उच्चारण क्लिष्ट, दीर्घाकार, और लुप्तप्रायः मन्त्रों का जप आज के युग में सम्भव नहीं रहा। ऐसी स्थिति में, बिना किसी शङ्का के, पूर्ण आस्था और विश्वास के साथ अन्य सरलतम मन्त्रों का जप अपेक्षाकृत अधिक सहज, सुसाध्य और लाभकारी होता है। सूर्य एक ही है; उसे किसी भी कोण से देखें, वही दृष्टिगोचर होगा। एक देवता के अनेक नाम होते हैं। किसी भी नाम से उसका स्तवन करें, उसी की कृपा प्राप्त होगी। ठीक यही स्थिति नवग्रहों के सम्बन्ध में भी है। शुक्र का एक अन्य पौराणिक-मन्त्र यह भी है—

- ॐ शुं शुक्राय नमः।

इसी प्रकार तान्त्रिक-मन्त्र भी हैं—

- ॐ ह्रीं श्रीं शुक्राय नमः।
- ॐ द्रां द्रीं द्रौं शुक्राय नमः।

ये सभी समान रूप से प्रभावशाली मन्त्र हैं। साधक किसी भी एक मन्त्र का अवलम्ब लेकर आचार्य शुक्र (शुक्र-ग्रह) की कृपा प्राप्त कर सकता है।

साधना विधान :

जैसा कि धार्मिक-अनुष्ठानों का नियम है, शुक्र-ग्रह की उपासना हेतु भी कोई शुभ मुहूर्त्त होना चाहिए। अशुभ और विपरीत मुहूर्त्त में किये कार्य का परिणाम भी प्रतिकूल होता है। सामान्यत: शुक्र की उपासना प्रारम्भ करने के लिए शुक्रवार का दिन श्रेष्ठ होता है। किन्तु यदि किसी स्थानीय-पण्डित से उस दिन का विवेचन (योग, लग्न, नक्षत्र आदि की जानकारी और शुभाशुभ का निर्णय) करा लिया जाय, तो विशेष उत्तम होता है। कारण कि कभी-कभी दिन अनुकूल होने पर भी अन्य स्थितियाँ विपरीत होती हैं, और तब उनका दुष्प्रभाव दिन के महत्त्व को क्षीण करके, साधक के मार्ग में अवरोध उत्पन्न कर देता है।

वैसे, यदि शुक्रवार का दिन हो, और उस दिन पुष्य-योग भी (पुष्य-नक्षत्र की स्थिति) रहे, तो अन्य प्रकार के (लग्न, योग, नक्षत्र) सभी दोष नगण्य हो जाते हैं। पुष्य-नक्षत्र की स्थिति बहुत ही शुभ और प्रबल मानी जाती है। रविवार अथवा बृहस्पतिवार के दिन का पुष्य-योग (रवि-पुष्य योग और गुरु-पुष्य योग) बहुत ही सशक्त होता है। विवाह को छोड़कर, अन्य कोई भी कार्य उस दिन (जितने समय तक पुष्य-योग रहे) प्रारम्भ किया जा सकता है। अध्यात्म-साधना, मन्त्र-तन्त्र, पूजा-पाठ, वाणिज्य, निर्माण, प्रवास आदि के लिए इस मुहूर्त्त को बहुत ही शुभ माना गया है। अत: शुक्रोपासना के लिए यदि पुष्य नक्षत्र का समय मिल सके तो अत्युत्तम है, अन्यथा किसी भी निर्दोष शुक्रवार के दिन से यह अनुष्ठान आरम्भ किया जा सकता है।

शुक्रवार को प्रात: ब्राह्म-मुहूर्त्त में, जब कि शुक्र-ग्रह आकाश में पूर्व-दिशा की ओर उदित हो, साधक स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण करे, फिर अपना इष्ट-मन्त्र जपते हुए, शुक्रदेवता का दर्शन करते हुए, उन्हें प्रणाम करे। तत्पश्चात् किसी एकान्त स्थान में जहाँ पहले से पूजन-व्यवस्था की गयी हो, बैठकर पूजा प्रारम्भ करे।

शुक्र-पूजा के लिए शुक्र-यन्त्र, प्रतिमा अथवा भोजपत्र पर श्वेत-चन्दन से शुक्र-यन्त्र लिखकर उसे भी प्रतिमा के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

सर्वप्रथम काष्ठासन पर नया श्वेत वस्त्र बिछाकर उस पर प्रतिमा या यन्त्र स्थापित करें, फिर देव-प्रतिमा की भाँति उसे स्नान करायें। इसके

लिए गङ्गाजल या सामान्य शुद्ध जल का प्रयोग करें। कुछ विद्वानों के अनुसार गाय के दूध से भी स्नान कराया जा सकता है, परन्तु मेरा मत है, कि जल ही श्रेष्ठ रहता है। प्रतिमा को तो धाराबद्ध जल से स्नान कराया जा सकता है, परन्तु यन्त्र अथवा मन्त्र-प्रतिमा को जल में तर न करके, उसके पास या सावधानी से उस पर ही, जल की कुछ बूंदें छिड़क कर स्नान-क्रिया की पूर्त्ति की जानी चाहिए। स्नानोपरान्त सफेद चन्दन का लेप करें, तत्पश्चात् श्वेत पुष्प (चाँदनी, चमेली, केवड़ा, तगर आदि कोई भी) अर्पित करें। ध्यान रहे, कि धतूरा, मदार, कनेर के पुष्पों का प्रयोग वर्जित है।

चन्दन-पुष्प के बाद धूप-दीप अर्पित करना चाहिए, और तत्पश्चात् किसी श्वेत-पदार्थ का नैवेद्य (खीर, सफेद मिठाई, मीठे चावल, दही, मिश्री, श्रीखण्ड आदि) अर्पित करके कोई एक चाँदी का सिक्का (अथवा चाँदी का टुकड़ा) प्रतिमा पर चढ़ाना चाहिए। इस समस्त पूजन-विधान में आदि से अन्त तक निरन्तर मौन-भाव से शुक्रदेवता का मन्त्र जपते रहना आवश्यक है।

पूजनोपरान्त स्थिर-चित्त होकर, परम श्रद्धा-विश्वास के साथ शान्त मन से, शुक्रदेव की प्रार्थना करते हुए, यह सङ्कल्प करना चाहिए, कि 'हे शुक्रदेवता, मैं आज से इतने समय तक (सङ्कल्पित दिनों-समय का स्मरण करें) नित्य आपका स्तवन (यहाँ मन्त्र-जप की संख्या निश्चित करलें) करूँगा। आप कृपा करके मेरी साधना को निर्विघ्न रूप में सफल बनायें, और इससे जो कुछ त्रुटियाँ अथवा अभाव हो, उनके लिए मुझे क्षमा करें। इस प्रकार मानसिक रूप में सङ्कल्प करके, वही मन्त्र जपना आरम्भ कर देना चाहिए।

मन्त्र-जप के लिए श्वेत वस्तु की माला उत्तम मानी गयी है। श्वेत-चन्दन, स्फटिक, शंख, कुशाग्रन्थि, मोती अथवा सफेद हकीक की माला प्रयुक्त की जा सकती है। यदि इनमें से कोई माला उपलब्ध नहीं है, तो रुद्राक्ष की माला का प्रयोग करना चाहिए। वस्तुतः कुछ अभिचार कर्मों को छोड़कर, शेष सभी प्रकार की साधनाओं के लिए रुद्राक्ष की माला सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली होती है।

माला में 108 मनके होने चाहिए। प्रतिदिन एक निश्चित संख्या में माला जपकर (जैसे 5, 7 या 10 माला नित्य) सङ्कल्पानुसार, निश्चित

दिनों में मन्त्र की जप-संख्या पूरी करने का विधान है, कम से कम 64 हजार मन्त्र-जप करना चाहिए। जब यह संख्या पूरी हो जाय, तब (किसीं शुक्रवार को ही) कम से कम 108 (उसी मन्त्र की) आहुतियों द्वारा हवन करना चाहिए। हवन में गूलर की लकड़ी का प्रयोग करने का विधान है। सामग्री में सामान्य हवन की वस्तुयें ली जा सकती हैं।

हवन के पश्चात् सामर्थ्यानुसार को 5-7 बालकों को श्वेत मिष्ठान्न का भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा देनी चाहिए। इस प्रकार नियम और श्रद्धापूर्वक की गयी शुक्रोपासना साधना के लिए अवश्य ही कल्याणकारी होती है।

समर्थ व्यक्ति हवनोपरान्त, भोजन कराने के बाद, ब्राह्मण को सफेद घोड़ा, चाँदी, वस्त्र, चावल, सुवर्ण, हीरा आदि दान में दे सकते हैं।

शुक्रोपासना के लिए समय का विशेष ध्यान रखता चाहिए। इस अनुष्ठान का आरम्भ और समापन दोनों ही शुक्रवार के दिन हों। इसी प्रकार समय भी प्रात: ब्राह्म-मुहूर्त्त (शुक्रोदय-काल) से लेकर, सूर्योदय तक ही, प्रयोजनीय कहा गया है।

मेरा अपना निजी अनुभव है, कि यदि व्यक्ति को शुक्र की कृपा (अनुकूलता) प्राप्त हो जाये, तो लाख बाधाओं के रहते हुए, भी वह किसी न किसी रूप में राजसिक गुणों—कला, शिल्प, वेश, विन्यास, साहित्य, सङ्गीत, सभा-गोष्ठी, वैभव-विलास, प्रणय-सम्मान, ख्याति और बौद्धिक-संचेतना को अवश्य प्राप्त करता है।

शुक्र यन्त्र :

यन्त्र किसी देवता की प्रतिमा अथवा उसके स्तुति-मन्त्र के प्रतिरूप होते हैं। इसकी प्रतिमावत् पूजा की जाती है, और आवश्यकतानुसार इन्हें कहीं आते-जाते समय—राजसभा, उद्योग, व्यवसाय, तीर्थाटन, प्रवास, सामाजिक सम्पर्क—साथ भी रखा जा सकता है। धातु-पत्र पर निर्मित बड़े आकार के यन्त्र पूजा-स्थल पर स्थापित कर दिये जाते हैं, और छोटे आकार के (भोजपत्र पर निर्मित) यन्त्र-कवच में रखकर गले या भुजा पर धारण भी किये जा सकते हैं। आशय यह है कि यन्त्रों का बहुविधि उपयोग होता है।

विभिन्न दैवी-शक्तियों की भाँति शुक्र-ग्रह की भी यन्त्रोपासना होती है। भोजपत्र, स्वर्ण-पत्र, रजत-पत्र अथवा ताम्र-पत्र पर शुक्र का यन्त्र

निर्मित करके पूर्व-वर्णित विधि से उसकी पूजा और मन्त्र-जप करने से साधक को शुक्र-कृपा की अनुभूति अवश्य होती है। अष्टगन्ध, यक्षकर्दम अथवा शुद्ध श्वेत-चन्दन की स्याही और अनार की लेखनी द्वारा यन्त्र रचना करनी चाहिए। धातु-पत्रों पर यन्त्र की प्रतिकृति उत्कीर्ण भी करायी जा सकती है। जहाँ तक उत्कीर्ण का प्रश्न है, धातु-पत्रों पर यन्त्र का रेखाङ्कन गहराई में नहीं, अपितु उभरे हुए, अक्षरों-रेखाओं में करना चाहिए। वैसे, सुविधा और शुद्धता की दृष्टि से भोजपत्र पर अंकित किये गये, यन्त्र विशेष उत्तम होते हैं। किन्तु इनकी सुरक्षा पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। वे हल्के, सुकुमार और पानी-नमी से प्रभावित होने के कारण अधिक टिकाऊ नहीं होते। अस्तु, जैसी भी सुविधा हो, यन्त्र की रचना करके, उसका पूजन करना चाहिए। यन्त्र-रचना और पूजन के लिए भी मुहूर्त्त का प्रतिबन्ध अनिवार्य होता है। किसी निर्दोष शुक्रवार अथवा पुष्य-योग वाले शुक्रवार को ही यह साधना आरम्भ करनी चाहिए। शुक्र-यन्त्र की आकृति इस प्रकार है—

११	६	१३
१२	१०	८
७	१४	९

रेखांकन के पश्चात् संख्याओं क्रमिक रूप में लिखना चाहिए। यन्त्र-निर्माण के समय भी आदि से अन्त तक शुक्रदेवता का मन्त्र जपते रहना आवश्यक है। सम्पूर्ण उपासना में एक ही मन्त्र का जप करना चाहिए।

यदि विशेष रूप से शुक्रोपासना की जा रही है, तब अनुष्ठान की पूरी अवधि तक संयम, ब्रह्मचर्य, नित्य यन्त्र-पूजन और मन्त्र-जप आवश्यक होते हैं। इसमें साधक को श्वेत वस्त्र, श्वेत आहार, श्वेत आसन, भूमि-शयन (श्वेत आसन पर), शान्ति, पवित्रता आदि का दृढ़ता से निर्वाह करना अनिवार्य होता है। शेष दिनों में, सामान्य रूप से प्रति शुक्रवार को यन्त्र की पूजा और पूर्व निश्चित संख्या में मन्त्र-जप करना चाहिए। यन्त्र-पूजन और मन्त्र-जप से शुक्र के विपरीत प्रभाव का शमन और शुभ-प्रभाव की वृद्धि होती है, यह तथ्य समस्त आध्यात्मिक जगत् में निर्विवाद रूप से

मान्य है । साधकजन प्राय: अपनी जन्मकुण्डली का विवेचन (किसी ज्योतिष-ज्ञाता से) कराकर शुक्र की (किसी भी ग्रह की) स्थिति समझ लेते हैं, और तदनुसार आवश्यक विधि से उसकी पूजा-उपासना करते हैं ।

शुक्र-रत्न :

रत्नों में अद्भुत प्रभाव निहित रहता है । अध्यात्मक और भौतिक-विज्ञान दोनों की दृष्टि से, रत्नों की विकिरणीय-शक्ति एक विशेष प्रकार की ऊर्जा और तज्यन्य प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है । फलत: रत्न-धारक के मन, मस्तिष्क और शरीर पर उसका प्रभाव (अनुकूल अथवा प्रतिकूल जैसी भी स्थिति हो) शीघ्र ही दृष्टिगोचर होने लगता है । इसी विकिरणजनित प्रभाव के आधार पर प्रत्येक ग्रह से सम्बन्धित रत्न-उपरत्न खोजे गये हैं । इस खोज, अनुसन्धान और उसके परीक्षण में आदि-मनीषियों ने दशाब्दियों का समय लगाया है । अपने शोध-कार्यों पर पूर्णतया आश्वस्त-सन्तुष्ट होकर ही उन्होंने सार्वजनिक हित में रत्नीय-प्रभाव की घोषणा की है । आज भी लाखों-करोड़ों व्यक्ति रत्न धारण कर रहे हैं—कुछ लोग मात्र प्रदर्शन, सौन्दर्य श्री और सज्जा की भावना से, और अधिकांश व्यक्ति ग्रहीय-प्रभाव को अनुकूल बनाकर लाभान्वित होने की कामना से ।

शुक्र-ग्रह का रत्न 'हीरा' है । यह संसार का सबसे महँगा, दुर्लभ, सुन्दर, ज्वलन्त, कठोर, दीर्घजीवी त्वरित-प्रभावी रत्न है । शुद्ध और निर्दोष हीरा पूर्णरूपेण प्रभावशाली होता है, जब कि कृत्रिम, सदोष, छिन्न अथवा अभिशप्त हीरा हानिकर प्रमाणित होता है ।

शुक्र की शुभ-स्थिति का लाभ उठाने के लिए हीरा पहनना चाहिए । कुण्डली का विवेचन कराये बिना, शुक्र (तथा अन्य ग्रहों की भी) विपरीत-स्थिति में पहना गया हीरा निश्चित रूप से हानिकर होता है, भले ही वह अति मूल्यवान्, शोभन और बड़ा हो । अत: हीरा धारण करने से पूर्व कुण्डली में ग्रहों की स्थिति, किसी योग्य विद्वान को अवश्य दिखा लेनी चाहिए ।

विकल्प :

चूँकि हीरा बहुत मूल्यवान् होता है, साथ ही उसकी शुद्धता और निर्दोषिता भी सन्दिग्ध रहती है । अत: मनीषियों ने हीरे के विकल्प में कुछ अन्य रत्नों को भी धारण करने का परामर्श दिया है । ऐसे रत्नों को

'उपरत्न' कहते हैं। ये सुलभ, सस्ते, किन्तु प्रभाव में किञ्चित् न्यून होते हैं। इनको धारण करने से विपरीत स्थिति में किसी भयङ्कर दुर्घटना की आशङ्का नहीं रहती। ये अपेक्षाकृत सौम्य होते हैं। भले ही प्रभाव धीमा हो, और साधक को कुछ अधिक समय तक प्रभाव की प्रतीक्षा करनी पड़े, परन्तु सुलभ, अल्प-मोली और सौम्य होने के कारण ये सामान्यजनों के लिए मूल-रत्न की अपेक्षा अधिक अनुकूल और लाभकारी सिद्ध होते हैं।

हीरे के उपरत्नों में तुरुमली (विक्रान्त) को प्रथम स्थान प्राप्त है। कुछ तुरुमली और टूरमेलीन को एक ही मानते हैं, परन्तु वास्तव में ये दोनों भिन्न रत्न है। 'ओपल' नाम का एक और अल्पमोली-रत्न होता है, जिसे हीरे के स्थान पर कुछ लोग पहनते हैं। यह रत्न पश्चिमी-देशों में न जाने किस धारणा के आधार पर बहुत दिनों तक त्याज्य घोषित रहा है। कुछ लोगों का कहना है, कि यह रत्न व्यक्ति को पारिवारिक-जीवन से उदासीन (विरक्त) बना देता है, अतः गृहस्थ को यह अनुकूल नहीं पड़ता। ऐसी सन्देहात्मक स्थिति में—हीरे और ओपल के स्थान पर 'स्फटिक' (सफेद जिरकन को भी) हीरे के स्थानापन्न के रूप में धारण किया जा सकता है।

7. शनि

पौराणिक-सन्दर्भ

सामान्य परिचय—नवग्रहों में अपनी क्रूरता, कुरूपता, दुर्दम-प्रभाव, तामसिक वृत्ति और मन्दतम गति के लिये शनि की गणना सर्वप्रथम की जाती है। इसकी मन्द-गति (शनै-चर—धीमे चलने वाला) के आधार पर ही इसे शनैश्चर (शनिश्चर—सनीचर) कहा गया है। यह इतनी धीमी गति से चलता है कि एक राशि से दूसरी राशि तक चलने में इसे ढाई वर्ष का समय लग जाता है। इसके प्रभाव की व्यापकता केवल इतने में ही समझी जा सकती है कि यह जिस राशि पर होता है, उसके पहले वाली और बाद वाली राशियों पर भी यह ढाई-ढाई वर्ष तक अपना प्रभाव बनाये रहता है। इस प्रकार यह प्रत्येक राशि को साढ़ेसात वर्ष तक प्रभावित रखता है। व्यक्ति की कुण्डली में यह शुभ-योगकारक के रूप में कदा-

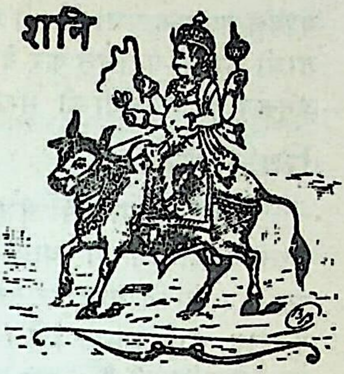

चित् ही आता है, अन्यथा यह सदैव दुःख, दारिद्रय और आपदाओं को ही निमन्त्रण देता रहता है। इसकी गणना पाप-ग्रहों में होती है। इसका दुष्प्रभाव इतना घातक होता है कि बड़े-बड़े सम्राट भी इसकी चपेट में आने पर भिखारी हो जाते हैं। यह जिस पर कुपित हो जाता है, उसे दुर्गति की अन्तिम सीमा तक पहुँचा देता है।

रूपरेखा की दृष्टि से यह इतना भयानक, विरक्तकारी और कुरूप होता है कि जन-सामान्य में इसका नाम एक प्रतीक की भाँति प्रयुक्त होने लगा है। हम किसी भी कुरूप, दुष्ट, अमंगल और बर्बर मनुष्य को देखकर कह उठते हैं—अरे, यह तो पूरा 'सनीचर' है।

भारीभरकम डीलडौल वाला न होकर भी, यह अपने गहरे काले रंग के कारण भयानक प्रतीत होता है। वैसे, देहयष्टि में दुर्बल है, फिर भी अपनी लम्बी-लम्बी भुजाओं, मोटे बालों, पीली आँखों और दीर्घ दाँतों से युक्त होने के कारण बहुत ही भयङ्कर प्रतीत होता है। इसमें क्रोध की मात्रा अधिक होती है। स्वभाव से मलिन, पर-पीड़क, आलसी, पदोन्नति में बाधक, और तीखे-चरपरे पदार्थों में रुचि रखने वाला होता है। सिरका, मिर्चा, कड़ुवे-तिक्त पदार्थ इसे बहुत प्रिय होते हैं, यह स्वयं में नपुन्सक ग्रह है। बौद्धिकता की दृष्टि से नितान्त वञ्चित, मूर्ख, आलस्य-ग्रस्त, झगड़ालू, क्रोधी, विवादी, प्रतिशोध-भावना से सदैव उद्धत रहने वाला, यह तमोगुण-प्रधान ग्रह ही मलिन, मूर्ख, गन्दा, वीभत्स होता है। मानव-शरीर में स्नायु-तन्त्र (शिरा-जाल—नसों की व्यवस्था) को अनियन्त्रित करने, नाड़ी-संस्थान और आँतों को प्रभावित करने में यह सबसे आगे रहता है।

पौराणिक-ग्रन्थों में इसके कई नाम मिलते हैं, यथा—पंगु, छायात्मज, यमाग्रज, अर्कसुवन, रविपुत्र, काण, असितसौरि, नीलकाय, क्रूर, कुशांग, कपिलाक्ष आदि।

रूपरेखा से वह चाहे जितना भयानक और वितृष्णाकारी हो, परन्तु आराधना-उपासना को सभी ने महत्त्व दिया है। कारण कि यह सौर-

मण्डल का एक प्रभावशाली ग्रह है, और वह अपनी असीम शक्ति से देवताओं को भी पराभूत कर देता है। इसकी प्रतिकूल दृष्टि जितनी दुखद है, अनुकूल दृष्टि उतनी ही सुख-वैभव (राज्य-लाभ तक) प्रदान करती है।

स्थिति-स्थान :

मन्दतम गति से चलने पर भी यह ग्रह अखिल ब्रह्माण्ड का भ्रमण करता रहता है। यों स्थायी रूप में इसका वास पश्चिम दिशा में माना गया है। भारत भूमि पर इसका निवास-स्थान सौराष्ट्र-प्रवेश (आधुनिक गुजरात, काठियावाड़) है। नदी, पर्वत, घने जंगल अथवा जनाकीर्ण नगर इसे रुचिकर नहीं है। यह ऊसर, बञ्जर और नदियों के बेहड़ों में वास करता है। आकाश-मण्डल में भ्रमण करते समय, जिन दिनों यह पश्चिम-दिशा में स्थिति होता है, पृथ्वी पर पश्चिमाञ्चल के प्रदेशों को इसकी सीधी किरणें विशेष रूप से प्रभावित करती हैं। उस समय सृष्टि में, पर्यावरण में, परिवर्त्तन का एक प्रमुख कारक इसकी रश्मियों से विकरित आभाजन्य प्रभाव भी होता है।

मण्डल :

शनि का मण्डल आकार में बहुत ही छोटा है। इसकी आकृति धनुष के आकार से साम्य रखती है। इसको मण्डल के साथ एक और विशिष्टता प्राप्त है—यह एक मात्र बलधारी ग्रह है। सामान्य नेत्र से तो कहीं दूरदर्शक जैसे यन्त्रों के सहारे इसका वलयावृत्त रूप देखा जा सकता है। वलय के मध्य इसकी स्थिति बड़ी मनोरञ्जक प्रतीत होती है। यदि हम किसी मुद्रिका की कल्पना करें, तो अपने वलय के मध्य शनि एक लीलाभ-रत्न की भाँति विजड़ित प्रतीत होता है। इसकी नीली आभा शुक्र की हल्की नीली आभा से कई गुनी अधिक गहरे रंग वाली होती है। यहाँ तक कि वह नीलिमा कालेपन की सीमा का स्पर्श करती है।

माप :

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, आकार की दृष्टि से शनि लघुकाय ग्रह है। इसका माप पौराणिक-मान्यता के अनुसार केवल दो अंगुल हैं। इसकी यह लघुकाया भी इसकी मन्दगामी बनाने में एक कारक है। आकाश में यथास्थान 27 नक्षत्र और 12 राशियाँ विद्यमान है। बारहों राशियों का वृत्त अपनी परिक्रमा में पूरा करके जब यह पुनः अपने मूल-स्थान (प्रथम राशि) पर पहुँचता है, तो इस भ्रमण में इसे तीन वर्ष का

काल-खण्ड पार करना पड़ता है—एक राशि पर ढाई वर्ष, इसी अनुपात से बारह राशियों पर तीस वर्ष।

माप की दृष्टि से यह समस्त ग्रहों में सबसे छोटा है। मङ्गल को भी लघुकाय माना जाता है, परन्तु वह माप में तीन अंगुल है, जबकि शनि का माप केवल दो अंगुल है। इस दृष्टि से यह मङ्गल से भी छोटा, सबसे लघुकाय ग्रह है।

प्रभाव क्षेत्र :

स्थिति-स्थान की व्याख्या में बताया जा चुका है कि शनि-ग्रह का प्रभाव-क्षेत्र पश्चिम दिशा अर्थात् भारत-भूमि पर सौराष्ट्र-प्रदेश है। जिस समय वह भू-खण्ड शनि की सीधी रश्मियों से प्रभावित होता है, वहाँ के जन-जीवन और प्राकृतिक-परिवेश में निश्चित रूप से कोई न कोई परिवर्त्तन अवश्य होता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सौराष्ट्र-प्रदेश के अतिरिक्त अन्य भू-भाग शनि के प्रभाव से मुक्त ही रहते हों। नहीं, वह जब भी जिस राशि के क्षेत्र में चल रहा होगा, उस राशि से सम्बन्धित क्षेत्र और सृष्टि को भी अवश्य ही प्रभावित करेगा। सृष्टि का आशय है—मनुष्य, जीव-जन्तु, वनस्पति, खनिज और पर्यावरण वह सब कुछ, जो हम प्रत्यक्ष देखते रहते हैं। यही नहीं, शनि का (वल्कि समस्त ग्रहों— नक्षत्रों का भी) प्रभाव आन्तरिक रूप में भी—पृथ्वी और समुद्र की तहों में तथा मानव के मन-मस्तिष्क तक—पड़ता है। शनि की रश्मियों का स्पर्श होते ही व्यक्ति की विचार-सरणि बदल जाती है। शनि प्रभाव के परिणाम का मूर्त्तरूप बनाने वाली पृष्ठभूमि, जिस मानसिकता से निर्मित होती है, उसको गतिशील बनाने में ये रश्मियाँ सर्वाधिक सक्रिय होती हैं।

गोत्र :

आदि-कालीन भारतीय-मनीषियों में जिन्होंने अपनी तपश्चर्या और ज्ञान-साधना के बल पर दैवी-शक्तियों का सायुज्य प्राप्त कर लिया था, महर्षि कश्यप को प्रमुख स्थान प्राप्त है। उन्हीं की वंश-परम्परा में उत्पन्न होने के कारण शनि को 'काश्यपेय' कहा जाता है। कुछ लोग (विद्वत्वर्ग) इस प्रसङ्ग का सम्बन्ध काश्यपेय-यज्ञ से भी जोड़ते हैं, जिसके प्रमुख पुरोधा भी महर्षि कश्यप ही थे। जो भी हो, शनि को कश्यप-गोत्र में उत्पन्न मानकर, तदनुसार उसकी स्तुति में, 'काश्यपेयं महद्द्युतिम' कहा जाता है।

वर्ण :

वर्ण का प्रसङ्ग चलते ही शनिश्चर का नाम एक प्रतीक के रूप में लेकर लोग उसकी कुरूपता के प्रति अपनी विरक्ति प्रदर्शित करने लगते हैं। वस्तुत: शनि का शरीर, रूपाकार और वर्ण कुछ भी सुन्दर-शोभन नहीं है। वह काले रंग का एक अति कुरूप और भयोत्पादक ग्रह है। यही कारण है कि उसकी तुष्टि हेतु, उसके वर्ण स्वभाव से समानता रखने वाले पदार्थ— लोहा, कोयला, काला, वस्त्र, तेल (गहरे रंग का) उसकी उपासना में प्रयुक्त होते हैं। गहरे नीलेपन की आभा जो काले रंग से मिलती-जुलती होती है—शनि का वर्ण है।

राशि स्वामित्व :

सौर-मण्डल में कुल बारह राशियाँ हैं। उनमें दो राशियाँ—मकर और कुम्भ शनि-ग्रह के प्रभाव-क्षेत्र में आती हैं। आशय यह है कि शनि को मकर और कुम्भ—इन दो राशियों का स्वामित्व प्राप्त है। अब यह तो नक्षत्रों के सामञ्जस्य और कुण्डली (व्यक्ति के जन्माङ्क-चक्र) की स्थिति पर निर्भर होता है कि कौन राशि किस भाव में बैठी है और कौन-सा ग्रह कहाँ से, किसे, किस रूप में प्रभावित कर रहा है। प्रत्येक भाव का अपना एक विशेष प्रभाव-क्षेत्र है। उस प्रभाव-क्षेत्र को प्रभावित करने, उसके गुण-दोष को बढ़ाने में उस भाव तथा आस-पास अवस्थित राशियों और ग्रहों की स्थिति को प्रमुख कारक के रूप में विवेचित किया जाता है।

वाहन :

शनि-ग्रह का वाहन 'गीध' नामक पक्षी है। यह पक्षी अपनी तीव्र दृष्टि शारीरिक बल, ऊँची-लम्बी उड़ान मांसाहार और तामसी-प्रकृति के लिए प्रसिद्ध है। स्वार्थी, तटस्थ, उदासीन, क्रोधी, हिंसक, आलसी, दीर्घाहारी और दूरदर्शी के रूप में यह समस्त पक्षी-जगत् में प्रसिद्ध है। विचारपूर्वक देखें तो इसकी ये सारी विशेषताएं शनि के स्वभाव एवं गुणों से पूरी तरह मेल खाती हैं। सम्भवत: इसी साम्य के कारण उसे शनि का वाहन घोषित किया गया है।

शनि का विपरीत प्रभाव :

प्रत्येक ग्रह का शुभ प्रभाव जहाँ व्यक्ति के लिए कल्याणकारी और सुखद होता है, वहीं उस ग्रह की विपरीत-स्थिति (अशुभ-प्रभाव) घातक और दु:खदायी होती है। शनि की विपरीतता तो बहुत ही पीड़ाकारक

होती है। शनि की साढ़ेसात वर्ष वाली स्थिति (साढ़ेसाती) कुण्डली में शनि की स्थिति अनुसार शुभ भी हो सकती है और अशुभ भी। प्रायः यह स्थिति क्लेशकारक ही होती है। अपवादस्वरूप ही किसी-किसी की कुण्डली में शनि को सुखद स्थिति में देखा जाता है। 'ग्रहदशा' के नाम से चर्चित ग्रहों की सामान्य स्थिति की अवधि अलग-अलग होती है। यही दशा 'महादशा' के रूप में कुछ अधिक समय तक व्यक्ति को प्रभावित रखती है। शनि की महादशा का काल 19 वर्ष माना गया है। इस अवधि में, शनि का अपना प्रभाव तो पड़ता ही है, अन्य ग्रहों की स्थिति के अनुसार उनका प्रभाव भी व्यक्ति के उत्थान-पतन का कारण बन जाता है।

यह आवश्यक नहीं है कि सबकी शनि-दशा सदैव अशुभ ही हो। यह कभी-कभी अनुकूल वातावरण की सृष्टि भी करती है, हालाँकि ऐसा कम ही होता है। शनि-ग्रह की प्रबलता से अच्छे-अच्छे शक्ति-सम्राट भी धूल-धूसरित हो जाते हैं। मनुष्य ही नहीं, देवता तक शनि से आतङ्कित रहते हैं। इस सन्दर्भ में कुछ प्रसंग बहुत प्रसिद्ध हैं—राजा हरिश्चन्द्र, राजा बलि, श्री रामचन्द्र और महारथी रावण तक को शनि की कोप-मुद्रा ने राह का भिखारी बना दिया था।

राजा हरिश्चन्द्र की कथा लोक-विश्रुत है। अपने समय के सर्व-सम्मानित सम्राट होकर भी उन्हें शनि-कोप के कारण न केवल राज-सत्ता से ही वञ्चित होना पड़ा, अपितु उन्हें दरिद्रता की सीमा के पार जाकर, स्वयं और स्त्री-पुत्र को बेचने के लिए भी विवश होना पड़ा। चण्डाल (डोम) के घर पानी भरना, पुत्र को कफन तक नसीब न होना, राज-पाट से वञ्चित होकर, मरघट पर चौकीदार के रूप में नियुक्त होकर रात-दिन जागना, इन समस्त परिस्थितियों के मूल में शनि-ग्रह का कोप ही था।

राजा नल परम गुणी, प्रजा-पालक, लोक-प्रिय, यशस्वी, पराक्रमी और नीति-निपुण नरेश थे। परन्तु शनि की कुदृष्टि ने उन्हें भी राह का भिखारी बना दिया। राज्य, परिवार और पत्नी सबसे पृथक् होकर उन्हें वनवासी होना पड़ा। घुड़साल में नौकरी (सईसी) करनी पड़ी। दरिद्रता और दासवृत्ति की पीड़ा सहने के लिए उन्हें शनि की विपरीतता ने ही विवश किया था, अन्यथा वे सर्वगुण सम्पन्न प्रसिद्ध भूपाल थे।

भगवान् रामचन्द्र की कथा विश्व-विश्रुत है। शनि के दुष्प्रभाव ने

ही उन्हें राजपद से वञ्चित करके वनवासी बनाया और वहाँ भी पत्नी-विछोह, मानसिक-पीड़ा, प्रवास, युद्ध और चिन्ता ने उन्हें सन्त्रस्त रखा।

महारथी रावण अपने समय का प्रकाण्ड विद्वान्, अजेय-योद्धा, अतुल-पराक्रमी, असीम वैभवशाली और दिग्विजयी नरेश था। किन्तु शनि की कोप-दृष्टि ने उसे भी नितान्त असहाय बना दिया था। वैसे, रावण वेद-शास्त्र का मर्मज्ञ था, तन्त्र-विद्या में उसे दक्षता प्राप्त थी, अध्यात्म और आयुर्वेद का वह तल-स्पर्शी विद्वान् था और योग-साधना द्वारा उसने अनेक सिद्धियाँ प्राप्त करली थीं। वह ग्रहों की गति तक अवरुद्ध कर देता था। लङ्का-दहन के समय हनुमानजी ने देखा कि स्वर्णपुरी लङ्का जलते हुए भी काली नहीं हो रही थी। कारागार जैसे स्थान में एक व्यक्ति को देखकर हनुमान जी ने परिचय पूछा, तो उस व्यक्ति ने बताया कि मैं शनि हूँ और रावण ने मुझे योग-बल से यहाँ बाँध रखा है (मेरी शक्ति केन्द्रित करके कीलित कर दी है), आप मुझे मुक्त करदें। हनुमानजी ने तत्काल उसके बन्धन खोलकर उसे बाहर कर दिया। उसने मुक्ति पाते ही हनुमान जी से पूछा— 'मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' हनुमानजी ने कहा—'तुम लङ्का को काली राख कर दो, और भविष्य में यदि कोई मेरी शरण में आये तो उसे त्रास न देना।' शनि ने दोनों बातें स्वीकार कर लीं। चूँकि वह रावण के योग-बन्धन से मुक्त हो चुका (हनुमानजी स्वयं भी महान् योगी और प्रकाण्ड विद्वान् हैं। वे रावण से अधिक सामर्थ्य रखते हैं) था। अतः उस पर रावण की योग-शक्ति और कीलन का प्रभाव नष्ट हो गया था। शनि ने स्वयं को पूर्ण समर्थ और सबल अनुभव किया और तत्क्षण परम क्रोध-मयी दृष्टि से लङ्का नगरी की ओर घूरकर देखा, जिससे तत्काल ही स्वर्णाभ लङ्का सामान्य लकड़ी के कोयले और राख की तरह काली हो गयी। इसके बाद, अपने अपमान और विरोध-बन्धन की भावना से दग्ध शनि ने रावण को अपना लक्ष्य बनाया। परिणाम यह हुआ कि वह रावण, जो विश्व-विजयी और ब्रह्माण्ड-विजेता बन चुका था, अपने परिवार सहित युद्ध की अग्नि में भस्म हो गया। उसके परिवार में, जहाँ लाखों सदस्य थे, वहाँ कोई एक दीपक जलाने वाला भी न रहा। 'समय की गति' कहकर आज भी लोग उस आख्यान से प्रेरणा लेते रहते हैं। परन्तु वह 'समय की गति' वस्तुतः 'ग्रहों की दशा' का प्रभाव था। और उस ग्रह-दशा को सर्वाधिक विनाशकारी बनाने में उस समय रावण के विरुद्ध शनि का कोप ही सबसे अधिक था। राम और वानर-सेना तो निमित्त मात्र थे, वास्तव में शनि की प्रतिकूलता के कारण ही रावण का सर्वनाश हुआ था।

यदि इन पौराणिक-प्रसङ्गों को कपोल-कल्पित मानलें, तो भी हम शनि-प्रभाव के अनेक प्रमाण आज अपने आस-पास देख सकते हैं। आप अपने परिचितों में पता लगायें कि इनमें कौन-कौन व्यक्ति शनि-दशा की चपेट में हैं। आप देखेंगे कि शनि की चपेट में आने के बाद से ही, वे अनेक प्रकार की आपदाओं से आक्रान्त हुए हैं।

शनि-दुष्प्रभाव व्यक्ति को नाना प्रकार के क्लेश भोगने की स्थिति में पहुँचा देता है। शनि-ग्रस्त लोगों की मानसिक-शान्ति नष्ट हो जाती है। सफलता में अवरोध आ जाता है। कार्यों में विघ्न उत्पन्न होने लगते हैं। प्रगति के द्वार बन्द हो जाते हैं और अवनति का मार्ग खुल जाता है। शारीरिक-कष्ट, अर्थ-हानि, सम्मान, क्षय, कार्यविरोध, पलायन, निष्कासन, कारावास, दरिद्रता, विभ्रण, शत्रुभय और ऐसी ही अन्य अनेक दुःखद-स्थितियाँ सामने आ खड़ी होती हैं। शनि-पीड़ित व्यक्ति को दुर्भाग्य का असाध्य-रोगी कहा जा सकता है। भले ही अन्य ग्रहों का सुप्रभाव अनेक विधि अवलम्ब देता रहे, परन्तु शनि का सन्त्रास भी उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है।

चूंकि सृष्टि का प्रत्येक प्राणी (मनुष्य) नवग्रहों से प्रभावित रहता है, ऐसी स्थिति में ग्रह-प्रभाव की सामूहिक-शक्ति उसे विशेष रूप से सुखद अथवा कष्टदायक होती है। यदि किसी व्यक्ति की कुण्डली (जन्माङ्ग-चक्र) में शुभ-स्थानों पर अधिकतम संख्या में शुभग्रह बैठे हुए हैं, तो ऐसा मनुष्य सामान्य-जनों की अपेक्षा विशेष रूप से स्वस्थ, सुन्दर, सुख वैभव का उपभोक्ता और सौभाग्यशाली होगा। इसके विपरीत यदि किसी की कुण्डली में दुष्ट (पाप) ग्रहों का प्राबल्य है, तो वह मनुष्य आजीवन विभिन्न प्रकार की आपत्तियों से ग्रस्त रहेगा।

शनि, मङ्गल, राहु और केतु—ये चार ग्रह बहुत ही उग्र, कष्टप्रद, अमङ्गलकारी और सशक्त होते हैं। कुण्डली के किसी विशेष भाव में, विशेष स्थिति में, बैठकर ही ये शुभ-प्रभाव देते हैं, अन्यथा ये सदैव क्लेश और संकट के प्रतीक ही बने रहते हैं। सूर्य भी उग्र ग्रह है, परन्तु वह इतना घातक नहीं होता, अपितु स्वभाव में उग्रता के साथ-साथ व्यक्ति को यश-मान भी देता है। बुध, चन्द्र, गुरु और शुक्र सौम्य ग्रह हैं। किन्तु ये सभी ग्रह कुण्डली के भावों (स्थान-विशेष) के आधार पर अपना प्रभाव बदलते रहते हैं।

शनि-मन्त्र :

● **पौराणिक-मन्त्र**—नीलाञ्जन समाभासं रविपुत्र यमाग्रजम् ।
छायामार्त्तण्ड सम्भूतं तं नमानि शनैश्चरम् ॥
[जप-संख्या 92000]

पुराणों से शनि की उपासना के लिए यह मन्त्र कई बार बताया गया है। व्यावहारिक-दृष्टि से इसकी साधना सरल है। कारण कि यह लयबद्ध श्लोक है। उच्चारण में भी सहज और शीघ्र ही कण्ठस्थ हो जाने वाला है। दोहा-चौपाई की भाँति इसे बड़ी आसानी से याद किया जा सकता है।

● शनि का एक पौराणिक-मन्त्र यह भी है—

ॐ शं शनैश्चराय नमः ।

यह मन्त्र छोटा, सहज, तुरन्त याद हो जाने वाला और उच्चारण में भी सरल है। बहुत-से लोग इसी को वरीयता देकर जपते रहते हैं।

● **तान्त्रिक-मन्त्र**—

तन्त्र-ग्रन्थों में शनि की उपासना हेतु एक अति प्रभावी और उपरोक्त पौराणिक-मन्त्र से लगभग साम्य रखने वाला मन्त्र इस प्रकार बताया गया है—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शनैश्चराय नमः ।

इस मन्त्र में बीजाक्षरों का प्रयोग किया गया है, अतः इसके उच्चारण की शुद्धता और पूर्णता पर ध्यान देना बहुत आवश्यक रहता है। वैसे, शुद्ध उच्चारण का प्रतिबन्ध तो सभी प्रकार के मन्त्रों में रहता है। अशुद्ध उच्चारण से ध्वनि-दोष के कारण अर्थ का अनर्थ हो जाता है, फलतः साधक की साधना व्यर्थ और विपरीत-परिणाम की जननी हो जाती है। कोई भी मन्त्र, किसी भी देवता का हो, उसका उच्चारण सदैव शुद्ध रूप में ही करना चाहिए। इसकी जानकारी किसी अनुभवी विद्वान्, पण्डित-पुरोहित से की जा सकती है। यही ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु को सर्वश्रेष्ठ आधार माना गया है, और इसलिए गुरु की इतनी महिमा कही जाती है।

शनि की उपासना हेतु अन्य तान्त्रिक-मन्त्र भी प्राप्त होते हैं। यथा—
'ॐ प्रां प्रीं प्रों सः शनैश्चराय नमः ।'

इन सभी मन्त्रों की जप-संख्या में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों ने 92000 लिखा है, और कुछ ने 1, 32 000।

वैदिक-मन्त्र :

यद्यपि वर्त्तमान युग में वेदज्ञ-विद्वानों का लगभग अभाव जैसा ही चल रहा है, और आज के व्यस्ति-कोलाहलमय अस्थिर सामाजिक-परिवेश में वैदिक-मन्त्रों की साधना कठिनतम हो गयी है, फिर भी कहीं न कहीं ऐसे समर्थ और श्रद्धालुजन आज भी मौजूद हैं, जो उचित मार्ग-निर्देशन पाकर जटिल साधना कर सकते हैं। अतः प्रसङ्ग-पूर्त्ति के लिए यहाँ एक वैदिक-मन्त्र का भी उल्लेख किया जा रहा है। इन मन्त्रों की शुद्धता और उच्चारण-विधि बहुत ही संशयपूर्ण होती है। कारण कि इन्हें जब तक किसी योग्य-मर्मज्ञ विद्वान् की वाणी से न सुना जाय—उच्चारण-विधि समझ में नहीं आती है। इसके उच्चारण में ह्रस्व-दीर्घ, आरोह-अवरोह, अनुस्वार और विसर्ग आदि का भेद इतना सूक्ष्म होता है कि सामान्य वैयाकरण भी भ्रमित हो जाते हैं। दूसरी विडम्बना इन मन्त्रों के साथ यह भी जुड़ गयी है कि प्रेसों में छपने वाली पुस्तकें (कम से कम संस्कृत की तो अवश्य ही) प्रूफरीडिंग की गलती से अशुद्ध छप जाती हैं। भारत भर में तीन-चार प्रेस ही ऐसे हैं, जहाँ पुस्तक छपते समय उस विषय और भाषा के ज्ञाता को प्रूफ दिखाया जाता है, अन्यथा सर्वत्र 'मक्षिका-स्थाने मक्षिका' की ही छपाई होती है। पाठान्तर की स्थिति इस समस्या को और भी जटिल बना देती है। आज हिन्दी के रामायण, विनय-पत्रिका और सूरसागर जैसे ग्रन्थ भी पाठान्तर के कारण संदिग्ध और विवाद-ग्रस्त हो चुके हैं, तब हजारों वर्ष पूर्व रचे गये संस्कृत-ग्रन्थों की मौलिकता और शुद्धता कितनी संदिग्ध हो सकती है, सोचने की बात है। ऐसी स्थिति में यथासम्भव किसी वेदज्ञ-विद्वान् से मन्त्र की शुद्धता और उच्चारण-विधि अवश्य समझ लेनी चाहिए।

अस्तु, शनिदेव का वैदिक-मन्त्र इस प्रकार है :—

'ॐ शन्नोदेवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये।
शंय्योरभि श्रवन्तु न।

और, मेरा तो अपना निजी मत एवं विश्वास है कि यदि मन्त्रोच्चारण कठिन या संशयपूर्ण प्रतीत हो तो ऐसी स्थिति में साधक पूर्ण श्रद्धा-विश्वास और आस्था के साथ यह मन्त्र जपकर भी लाभान्वित हो सकता है—

'ॐ शनिदेवाय नमः ।

शनि-पूजा में केवल मन्त्रों का ही (उच्चारण और वर्ण-समूह की दृष्टि से) अन्तर होता है, शेष सभी विधान, जप, हवन, दानादि का नियम एक ही है।

साधना-विधि :

शनिदेव की उपासना के कई विधान प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। उनमें कई एक तो इतने जटिल हैं कि आज के वातावरण में उनकी कल्पना भी सहज सम्भव नहीं प्रतीत होती। कुछ ऐसी विधियाँ भी मिलती हैं, जो अस्पष्ट हैं। अस्पष्टता की स्थिति में उनके नियम-निर्देश भ्रम उत्पन्न करते हैं। इसके विपरीत कुछ ऐसी विधियों का उल्लेख भी प्राप्त होता है, जो बहुत सरल, सुकर और सहज-साध्य हैं। आज की भौतिकता और पश्चिमी-प्रभाव के सम्पर्क से उत्पन्न अस्थिरता के युग में भी थोड़ा समय निकालकर कोई व्यक्ति सरलतम साधना-पद्धति द्वारा अपने इष्टदेवता की उपासना कर सकता है।

शनि की पूजा में लिए शनिवार का दिन सर्वश्रेष्ठ होता है। यों कोई-कोई साधक किसी शनिवार से पूजा प्रारम्भ करके, प्रतिदिन मन्त्र-जप करते रहते हैं और अगले शनिवार को पुनः पूजन करते हैं। कुछ लोग केवल शनिवार के दिन ही पूजा और जप को उत्तम मानते हैं। दोनों ही विधियाँ ठीक हैं। वैसे कुछ लोग प्रत्येक ग्रह की उपासना उसके दिन के आधार पर करते हैं। वे रविवार को सूर्य की, सोमवार को चन्द्रमा की, इसी प्रकार दैनिक-क्रम से समस्त ग्रहों की पूजा करते रहते हैं। कुछ साधकों का मत है कि प्रतिदिन नवग्रहों की स्तुति और मन्त्र-जप किया जा सकता है। परन्तु अधिकांश साधकों ने प्रथम मान्यता को ही वरीयता दी है, जिसमें प्रतिदिन उस दिन के स्वामी-ग्रह का पूजन किया जाता है। इस प्रकार शनि की पूजा शनिवार के दिन करना विशेष लाभदायक होता है। यदि लम्बे अनुष्ठान का सङ्कल्प किया गया हो, तब उचित यह होगा कि किसी शनिवार के दिन पूजन प्रारम्भ करके फिर प्रतिदिन स्नानोपरान्त अथवा सायंकाल जैसी सुविधा हो, शनि-मन्त्र का जप करना चाहिए। सायंकाल पीपल के वृक्ष के पास जाकर उसकी छाया में बैठकर शनि का पूजा करें। तत्पश्चात् वहीं, समय-सुविधा के अनुसार मन्त्र-जप करना चाहिए।

शनि की पूजा में काले अथवा गहरे नीले रङ्ग की वस्तुएं प्रयुक्त होती हैं, जैसे—लोहा, उड़द, कुल्थी, कड़ुवा तेल, काला (गहरा-नीला भी)

कपड़ा, काले (नीले) रङ्ग के फूल, काली गाय, काली लकड़ी (आबनूस) की खड़ाऊँ, काले कम्बल का आसन और नीलम-रत्न आदि।

पूजा की सबसे सरल विधि यह है कि शनिवार को सायंकाल स्नान करके, पीपल-वृक्ष के नीचे पूजा की व्यवस्था करें। वहाँ पहले से ही लीप-पोतकर जगह शुद्ध कर लेनी चाहिए। पीपल-वृक्ष के नीचे, जड़ के पास बैठकर, काले वस्त्र के आसन पर शनिदेव की मूर्त्ति, यन्त्र अथवा लोह (जस्ता) के पत्तर पर लिखित (उत्कीर्ण) शनि-मन्त्र स्थापित करें। ऊपर लिखी काली वस्तुओं से उसकी पूजा करें, और कडुवे तेल का दीपक जलाकर आरती उतारें। तत्पश्चात् शनि-मन्त्र का जप प्रारम्भ करें। पूजा के समय साधक का मुँह पश्चिम-दिशा की ओर होना चाहिए। वह ऐसी स्थिति में बैठे कि उसके ठीक सामनें पीपल का वृक्ष रहे, और वृक्ष के पीछे पश्चिम दिशा रहे।

सङ्कल्पानुसार निश्चित संख्या में मन्त्र-जप पूरा हो चुकने पर, पीपल को प्रणाम करके, बची हुई सामग्री (जल, तेल, पुष्प आदि वहीं (पीपल) की जड़ पर) अर्पित करके घर लौट आना चाहिए। बाद में प्रतिदिन, दैनिक-पूजा के समय या, सायंकाल वहीं पीपल के पास जाकर प्रथम दिन की भाँति, मन्त्र-जप और पूजन करने से विशेष लाभ होता है। यदि प्रतिदिन पूजा और जप सम्भव नहीं है, तो शनिवार के दिन अवश्य ही पूर्व वर्णित विधि से पीपल के पास सायंकाल जाकर पूरे विधि-विधान सहित पूजन और मन्त्र-जप करना चाहिए।

जप की संख्या पूरी हो चुकने पर किसी शनिवार को ही, दोपहर के समय पूजा का समापन करके, उसी समय (दोपहर को) उपरोक्त काले रङ्ग की वस्तुएं (जो भी सुलभ हों) दान करना चाहिए। आज भी हम देखते हैं कि शनिवार के दिन स्याने-भड्डुरी जैसी जातियों के लोग दरवाजे-दरबाजे जाकर शनि-शान्ति के उद्देश्य से लोगों से कड़्वा-तेल और लोहा-दान-स्वरूप प्राप्त करते रहते हैं। अन्तिम शनिवार को, जब मन्त्र-जप पूरा करके दान की बेला आ रही हो, हवन भी करना चाहिए। हवन में आहुति देते समय वही मन्त्र पढ़ना ठीक होता है, जिसका जप किया गया हो। कम से कम 108 बार वही मन्त्र पढ़कर आहुति देना श्रेयस्कर होता है।

शनि तथा अन्य सभी ग्रहों की उपासना के दौरान साधक को बहुत संयम, शान्ति, आत्म-नियन्त्रण और श्रद्धा-विश्वास के साथ रहना चाहिए।

भूमि-शयन, उपवास, ब्रह्मचर्य और इष्ट के प्रति आस्था, यह सभी प्रकार की उपासनाओं में आवश्यक होता है।

शनि-मन्त्र का जप पूरा होने पर, किये जाने वाले हवन में शमी वृक्ष की लकड़ी को प्रयोग करना चाहिए। अन्य वस्तुओं की संयोजना में काली वस्तुओं का विशेष महत्त्वपूर्ण माना गया है। हवनोपरान्त भोजन और दान देने से साधना को पूर्णता प्राप्त हो जाती है।

शनि-यन्त्र :

शनिदेव की प्रतिमा अथवा चित्र कठिनाई से प्राप्त होते हैं। ऐसी स्थिति में शनि-उपासक के लिए यन्त्र-रचना ही एक सरल विकल्प रह जाता है। शनि-यन्त्र की रचना करके उसे प्रतिमावत् पूजने और मन्त्र-जप करने से शनि-पीड़ा शान्त हो जाती है। शनि की अनुकूलता के लिए जहाँ मन्त्र-जप, पूजन, हनुमान जी का स्मरण लाभकारी होता है, वहीं शनि-यन्त्र का दर्शन और प्रणति-निवेदन करने से भी बहुत कल्याण होता है। यन्त्र की आकृति इस प्रकार है :—

१२	७	१४
१३	११	९
८	१५	१०

लोहे, जस्ते, या नीले कागज पर काली स्याही से इस यन्त्र की रचना की जाती है। हाँ, इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि यन्त्र-रचना और पूजन-प्रारम्भ का दिन शनिवार ही रहे, और उस दिन कोई आघात-कारक योग (अशुभ-स्थिति) न रहे। इसके लिए किसी स्थानीय पुरोहित से पूछ लेना सुविधाजनक रहता है।

इस यन्त्र को ऊपर लिखी विधि से सायंकाल, पीपल के नीचे बैठकर कड़ुवे-तेल के दीपक के प्रकाश में पूजना चाहिए। पूजनोपरान्त शनि-मन्त्र का जप (सामर्थ्यानुसार) करना आवश्यक होता है। मन्त्र-जप और हवन के पश्चात् यन्त्र को किसी सुरक्षित एकान्त-स्थान में, सम्भव हो तो उसी पीपल में ही कहीं रख देना चाहिए। घर में भी पूजा वाले स्थान पर देव-

प्रतिमा की भाँति इसे रखा जा सकता है। किन्तु पूजा समाप्त हो जाने पर किसी जलाशय में प्रवाहित कर देना चाहिए।

शनि-रत्न :

ग्रहों के सन्दर्भ में रत्नों की प्रासङ्गिकता यह है कि प्रत्येक ग्रह और रत्न किसी विशेष वर्ण की रश्मियाँ विकरित करता है। रश्मि-वर्ण का अनुकूलन एक विशेष प्रभाव की सृष्टि करता है। उदाहरण के लिए चन्द्रमा का विवेचन देखें—चन्द्रमा की किरणें स्वच्छ, धवल, शीतल और सुखद होती हैं। ये गुण अन्य रत्नों की अपेक्षा मोती में विशेष रूप से पाये जाते हैं। आदि मनीषियों ने वर्षों के अनुसन्धान के पश्चात् यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि मोती धारण करने से वह व्यक्ति सतेज और स्वस्थ-सुखी हो सकता है, जिसके शरीर और मन पर चन्द्रमा की किरणों (ज्योतिषीय-मान्यता के आधार पर लग्न और राशि के क्रम में) का विशेष अनुकूल प्रभाव हो। ऐसी स्थिति में, यदि किसी का चन्द्रमा शुभ-स्थिति में होने पर भी, निर्बल है, तो वह मोती पहनकर चन्द्रोत्पन्न प्रभाव में वृद्धि कर सकता है। लेकिन शुभ स्थिति वाले ग्रह का रत्न ही पहनना चाहिए, अशुभ का नहीं। क्योंकि रत्न हमेशा, उस ग्रह के प्रभाव को ही बढ़ाता है, भले ही वह प्रभाव सुखद हो अथवा दुःखद।

रत्न-धारण के प्रसङ्ग में शनि का रत्न नीलम माना जाता है। यह बहुत ही शक्तिशाली, त्वरित-प्रभावी और बहुमूल्य रत्न होता है। इसे धारण करने के पूर्व किसी ज्योतिषी को कुण्डली दिखाकर ग्रहों की स्थिति और शनि के साथ नीलम की अनुकूलता का निर्णय अवश्य करा लेना चाहिए।

यदि ज्योतिषीय-परामर्श के अनुसार नीलम धारण करना आवश्यक हो तो जौहरी से अपनी सामर्थ्य के अनुसार श्रेणी, आकार और मूल्य का सामञ्जस्य करते हुए शुद्ध-निर्दोष नीलम इस शर्त्त के साथ कि 'यदि यह अनुकूल न हुआ तो बदलकर दूसरा देना होगा'—ले आयें। उसे किसी अच्छे, निर्दोष शनिवार के दिन शनि-मन्त्र द्वारा शुद्ध करके काले या नीले कपड़े में पिरोकर भुजा पर धारण करना चाहिए।

एक-दो दिन में, अथवा एक सप्ताह तक उसकी प्रभाव-परिणति को परखने के बाद, यदि अनुकूल है, तो चाँदी की अँगूठी में जड़वाकर धारण करें। और यदि प्रतिकूल प्रतीत होता है—परेशानी, चोट-चपेट, बीमारी,

हानि जैसी कोई घटना हो जाय, तो यह मानकर कि वह नगीना ठीक नहीं है, उसे जौहरी को लौटा देना चाहिए और उसके बदले दूसरा नीलम लाकर उसकी परीक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार एक-दो बार में अनुकूल नीलम का आभास मिल जाता है। अनुकूल प्रतिक्रिया वाला रत्न धारक के लिए कल्याणकारी होता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

चूंकि नीलम बहुमूल्य होता है और शुद्ध (असली) होने के बावजूद भी—वह निर्दोष रूप में बहुत कम प्राप्त होता है, अतः मर्मज्ञों ने इसके विकल्प-स्वरूप कुछ अन्य रत्नों की भी खोज की है, जो सस्ते, सुलभ और निरापद होने के साथ-साथ लाभकारी भी होते हैं। नीलम के ऐसे उपरत्नों में नीली को प्रमुखता प्राप्त है।

नीली के स्थान पर प्रायः सामान्य बिक्रेता, जो स्वयं को बहुत बड़ा अनुभवी और 'खानदानी जौहरी' घोषित करते रहते हैं—नीले रङ्ग का काँच दे देते हैं। वैसे भी, आज इमीटेशन के रत्न, जो वस्तुतः पालिश किये हुए काँच-खण्ड ही होते हैं, इतना अधिक प्रचार पा गये हैं और वह भी इतने भड़कीले रूप में, कि उनके आगे बेचारे असली रत्न भी अलसा जाते हैं। नीली के अतिरिक्त कुछ लोग लाजवर्त्त (नीले रङ्ग वाला) और फीरोजा को भी शनि का पूरक उपरत्न मानते हैं। परन्तु इसमें मतभेद भी है। कोई-कोई विद्वान् फिरोजा को शुक्र का, और कोई उसे, किसी एक ग्रह-विशेष का नहीं, अपितु सभी ग्रहों का रत्न बताते हैं। उनके मत से—फीरोजा ग्रहीय-प्रतिबन्ध से परे, सदैव शुभ, रक्षाकारी और सर्व-धारणीय रत्न है। अतः शनि से सम्बन्धित रत्न के लिए बहुत गम्भीरता से ही कोई निर्णय करना चाहिए।

8. राहु

आधुनिक-विज्ञान के मत से :

आधुनिक खगोल-विज्ञानी राहु और केतु का अस्तित्त्व स्वीकार नहीं करते। उनकी दृष्टि में इन दोनों ग्रहों का वर्णन केवल पौराणिक-पण्डितों की कल्पना है। दृश्य-जगत् में इन ग्रहों का कहीं कोई चिह्न नहीं प्राप्त होता। ऐसी स्थिति में वे इन दोनों ग्रहों के रूपाकार, दूरी, प्रकाश, वर्ण

और प्रभाव आदि का प्रसङ्ग निराधार कहकर इनकी ओर से सर्वथा उदासीन हो जाते हैं।

राहु

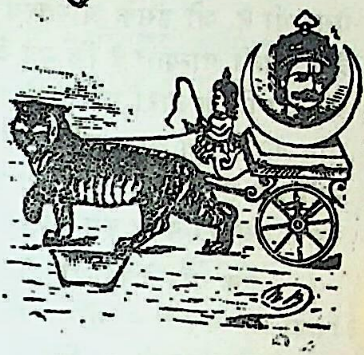

सूर्य से लेकर शनि तक के सात ग्रहों को भारत ही नहीं, यूनान, बेबीलोनिया, चीन, जर्मनी, फ्रान्स, इङ्गलैण्ड और अमेरिका तक में सर्वत्र मान्यता प्राप्त है। खगोल-विज्ञानवेत्ता और ज्योतिर्विद—सभी अपने-अपने अध्ययन, अनुभव और दृष्टिकोण से इनकी व्याख्या करते हैं।

इन सात ग्रहों के अतिरिक्त कुछ अन्य तारे, जो अपेक्षाकृत बड़े होने के नाते ग्रह मान लिये गये हैं, पिछले कुछ समय पूर्व से प्रकाश में आये हैं। पाश्चात्त्य-देशों के खगोल-वैज्ञानिकों ने उनका अध्ययन करके, उनके रश्मिगत प्रभाव को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। और परीक्षणों से सन्तुष्ट होकर इन्होंने उन ग्रहों को भी सौर-मण्डल (सूर्य तथा उसके आश्रित 6 ग्रहों) के सदस्य मान लिया है। नवीन अनुसन्धान के माध्यम से प्रकाश में आये ये ग्रह हैं—यूरेनस, नेपच्यून और हर्षल। खगोल-विज्ञान में इनकी पृथ्वी से दूरी, पारस्परिक-दूरी, प्रकाश-गति, प्रभाव और स्थिति-स्थान का विस्तार से विवेचन किया गया है। किन्तु जहाँ तक राहु-केतु पर आधुनिक वैज्ञानिकों की धारणा का सम्बन्ध है, वे मौन हैं। कारण कि जिस वस्तु का अस्तित्त्व है ही नहीं, उसके पीछे क्यों सिर खपाया जाय? छाया को वे छाया ही मानते हैं, छाया-ग्रह की कल्पना उनकी दृष्टि में असङ्गत है।

पौराणिक सन्दर्भ :

सामान्य-परिचय—यद्यपि राहु ग्रह का कोई मौलिक-अस्तित्त्व नहीं है, यह मात्र एक छाया-ग्रह है, तो भी इसका प्रभाव दुर्गम होता है। इसकी गणना पाप-ग्रहों में की जाती है। यह बहुत ही क्रूर, उग्र, पीड़ादायक, अमङ्गलजनक और दुष्ट-ग्रह है। यों अपवाद-स्वरूप, व्यक्ति की कुण्डली (जन्माङ्ग चक्र) में किसी विशेष स्थान में अथवा किसी ग्रह-विशेष के साथ या उसके पार्श्व में होने पर यह शुभ भी होता है, परन्तु ऐसा योग कदाचित् ही किसी कुण्डली में दीख पड़ता है। सामान्य रूप में यह ग्रह

विघ्नकारी, कष्टप्रद और विभिन्न प्रकार की आपदाओं का जनक होता है। इस ज्योतिषीय-प्रभाव को मान्यता देने वाले विद्वानों के अतिरिक्त एक वर्ग ऐसा भी है, जो इसके अस्तित्त्व को राक्षस रूप में वर्त्तमान घोषित करता है। उनकी मान्यता है कि यह दैत्य जाति (दनुज) का एक प्रमुख सेनापति था, जो विष्णु द्वारा मारे जाने पर छिन्न-काय हो गया। चूंकि उसने अमृत-पान कर लिया था, इसलिए अमरत्त्व-शक्ति के प्रभाव से, मृत्यु का ग्रास नहीं बन सका, और आज भी अपने छिन्नरूप में वर्त्तमान है। विष्णु द्वारा इसके वध की कथा इस प्रकार है—

एक बार देवताओं और दैत्यों ने संयुक्त-प्रयास करके सागर-मन्थन किया। मन्थन में नवनीत-स्वरूप सागर से 14 वस्तुएं निकलीं। वे चौदह रत्न (श्रेष्ठ वस्तुएं) निम्न नामों से विख्यात हुए—(1) विष, (2) लक्ष्मी, (3) कौस्तुभ-मणि, (4) रम्भा (अप्सरा), (5) मदिरा, (6) ऐरावत (हाथी), (7) कल्पवृक्ष, (8) अश्व, (9) शंख, (10) कामधेनु (गाय), (11) धनुष, (12) चन्द्रमा, (13) औषधि (धन्वन्तरि वैद्य) और (14) अमृत-कलश। इनका बँटवारा होने पर अधिकांश वस्तुएं देववर्ग को मिलीं। दैत्यों का समूह मदिरा-प्रेमी था ही, वह उसी पर टूट पड़ा। अन्त में, अमृत का वितरण प्रारम्भ हुआ—देवता और दैत्य दोनों पंक्तिवद्ध होकर बैठ गये। विष्णु भगवान ने एक परम सुन्दरी युवती का रूप धारण करके (मोहिनी अवतार) अमृत-कलश अपने हाथों में उठाया और देव-पंक्ति की ओर से वितरण प्रारम्भ कर दिया। देवता लोग चुल्लू में थोड़ा-थोड़ा अमृत लेकर पीने लगे। दैत्य-पंक्ति पीछे थी, उसमें एक दैत्य बहुत धूर्त्त था। वह समझ गया कि हमारी पंक्ति तक आते-आते अमृत-कलश खाली हो जायगा। अतः वह झटपट देवरूप धारण करने देवताओं की पंक्ति में आ बैठा। उसका यह छद्माचरण सूर्य और चन्द्रमा ने देख लिया था। उन्होंने विष्णु को संकेत में वता दिया कि यह व्यक्ति, जिसे आपने अभी अमृत दिया है—हमारे देव-समाज का न होकर, दैत्यवर्ग का है। विष्णु ने तत्काल-चक्र-प्रहार से उसका सिर काट दिया। किन्तु वह तो अमृत-पान कर चुका था, कैसे मरता? फलतः उसके शरीर के दोनों खण्ड जीवित रहे और आज भी वह समय-समय पर सूर्य-चन्द्रमा को त्रस्त करते रहते हैं। उस असुर का ऊपरी-भाग (सिर) 'केतु' कहलाया और नीचे का भाग (धड़) 'राहु' के नाम से विख्यात हुआ। पौराणिक-धारणा के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा को लगने वाले 'ग्रहण' वस्तुतः

उन पर राहु-केतु द्वारा किये गये आक्रमणों की प्रतिक्रिया है। जो भी हो, राहु और केतु को नवग्रह में स्थान प्राप्त हैं, और प्रत्यक्ष न होने पर भी, वे सृष्टि के जीवन-क्रम को प्रभावित करते रहते हैं।

प्रस्तुत प्रसङ्ग राहु का है, अतः यहाँ केवल उसी का वर्णन किया जा रहा है। केतु के विषय में आगे स्वतन्त्र अध्याय में ज्ञातव्य-तथ्य दिये गये हैं।

स्थिति-स्थान :

राहु ग्रह के लिए पौराणिक-मान्यता के अनुसार ज्योतिषी वर्ग ने प्रतिपादित किया है कि आकाश में इस छाया ग्रह का स्थान नैऋत्य-कोण में है। स्थायी रूप से यह उसी क्षेत्र का प्रतिनिधित्त्व करता है। किन्तु पृथ्वी की गति और अन्य ग्रहों की स्थिति के अनुसार इसका स्पर्श और प्रभाव-क्षेत्र परिवर्त्तित होता रहता है।

मण्डल :

राहु का मण्डल आकार में अनाज फटकने (पछोरने) वाले सूप (शूर्प) की भाँति माना गया है। यह आकार जहाँ विचित्र है, वही राहु की अदृश्यता के कारण सहज दृष्टिगोचर नहीं होता। तो भी इसके अस्तित्त्व, प्रभाव और क्षेत्र की प्रामाणिकता के आधार पर इसका शूर्पाकार मण्डल ज्योतिर्विदों में सर्व सम्मति से स्वीकृत है।

माप :

अन्य ग्रहों की भाँति (यद्यपि इसे 'छाया-ग्रह' कहा जाता है) राहु को बारह अंगुल व्यास वाला ग्रह माना गया है। अर्द्ध-काय होने पर भी इसका यह दीर्घ व्यास इसके बृहदाकार राक्षसी शरीर की कल्पना साकार कर देता है।

प्रभाव क्षेत्र :

राठीनापुर (मलय क्षेत्र) के आस-पास का प्रदेश राहु का प्रभाव-क्षेत्र है। वैसे पृथ्वी-परिक्रमा और ग्रहों के स्थान-परिवर्त्तन के कारण, इसकी किरणें यदा-कदा समस्त भूमण्डल को प्रभावित करती रहती हैं। तब, जो भी क्षेत्र इसके रश्मि-स्पर्श में आता है, वह अवश्य ही प्रभावित होता है।

गोत्र :

राहु का गोत्र 'पेटीनस' है, और यह सम्मान की अपेक्षा भय, घृणा, तिरस्कार, उपेक्षा ही अधिक पाता है। यों, कष्ट-निवारण के लिए, इससे

पीड़ित-जन इसकी वन्दना भी करते हैं, परन्तु वह वन्दना श्रद्धाजनित न होकर, एक विवशता की मन:-स्थिति में की जाती है। क्योंकि अमृतपान द्वारा अमर होने के बावजूद भी है तो राक्षस ही। इसमें सात्त्विकता का अंश कहाँ से आ सकता है? दैत्य अपनी क्रूर और हिंसक-मनोवृत्ति का परित्याग कभी नहीं करता। राहु चाण्डाल जाति का अति अधम और निकृष्ट ग्रह है। इसकी शारीरिक-मानसिक संरचना शूद्र-वर्णीय है, फलत: अपवित्रता, तामस और उपद्रव-अराजकता इसकी नस-नस में व्याप्त है।

वर्ण :

जैसाकि ऊपर लिखा जा चुका है, शूद्र (चाण्डाल) वर्ग का यह दैत्य-ग्रह अपने रूपाकार में भी बहुत भयानक है। इसका वर्ण श्याम (काला) है। छाया-ग्रह होने के नाते इसकी उत्पत्ति आकाश में उस समय मानी जाती है जब क्रान्तिवृत्त और नाड़ी-वृत्त के सम्पात का योग होता है। अपने रङ्ग-रूप के अनुसार यह तीक्ष्ण-रस-प्रधान ग्रह है। 3 कला और 11 विकला की वक्रगति से चलायमान यह ग्रह पूर्ण घृणित और वैसा ही घातक कहा जाता है।

सीसा-रांगा जैसी धातुओं पर इसका विशेष प्रभाव रहता है। नीले और पुराने वस्त्रों से भी यह बहुत प्रभावित रहता है।

राहु की महादशा 18 वर्षों तक चलती है। अपनी महादशा के समय में यह व्यक्ति की कार्यक्षमता कम करके उसे आलसी बना देता है।

वाहन :

राहु के वाहन की कल्पना सिंह रूप में की गयी है। ऐसी मान्यता है कि अन्य ग्रहों की भाँति राहु को भी वाहन उपलब्ध है, और वह है—पशुओं में सर्वाधिक पराक्रमी तथा हिंसक व्याघ्र। राहु एक तो स्वयं ही क्रूर ग्रह है, उस पर भी वह सिंहारूढ़ होने के कारण और भी हिंसक-मुद्रा धारण किये रहता है। अधिकांश विद्वानों के मत से, यह दुष्ट-ग्रह यदि किसी शुभग्रह के साथ बैठा हो तो उसका प्रभाव क्षीण कर देता है।

राहु का विपरीत प्रभाव :

अपवाद-स्वरूप कुछ स्थितियों को छोड़कर, राहु प्राय: सभी के लिए सदैव ही क्लेशकारी सिद्ध होता है। किन्हीं विशेष परिस्थितियों में इसकी विपरीतता बढ़ जाती है, और तब यह बहुत ही कष्टदायक सिद्ध होता है।

ज्योतिष-शास्त्र के मर्मज्ञों ने दीर्घकालीन-अनुसन्धान के पश्चात् यह

निष्कर्ष निकाला है कि यदि व्यक्ति की कुण्डली में राहु की स्थिति विपरीत—अशुभ है, तो उसे अनेक प्रकार की शारीरिक-व्याधियाँ पीड़ित कर सकती हैं।

राहु के प्रकोप से उत्पन्न होने वाले रोग और उपसर्ग आदि इस प्रकार बताये गये हैं—

मिर्गी, अपस्मार, उन्माद, अपतन्त्रक, वात-व्याधि, रक्त-विकार, चेचक तथा फोड़े-फुन्सी खुजली आदि।

कार्य-सिद्धि में बाधा उत्पन्न करने का आरोप भी इस पर लगाया जाता है। चोट-चपेट और दुर्घटनाओं के जनक रूप में भी इसे कुख्याति प्राप्त है। जो भी हो, यह राक्षस-वर्ग का ग्रह अधिकांश परिस्थितियों में व्यक्ति के लिए कष्टप्रद ही रहता है। इसके शुभ-लक्षण बहुत कम (कहीं-कहीं अपवाद-स्वरूप ही) दृष्टिगोचर होते हैं।

राहु को सामान्य जीवन में विघ्न, विनाश, अवरोध और मृत्यु का प्रतीक माना जाता है। उन्नति, सफलता और समृद्धि के मार्ग में अचानक कोई विघ्न अथवा आपदा आ जाने पर लोग कहने लगते हैं····उसे राहु ने ग्रस लिया····।

स्तुति और मन्त्र-जप एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा देवता-दैत्य, पशु-पक्षी किसी को भी अनुकूल बनाया जा सकता है। अत: राहु का विपरीत-प्रभाव समाप्त या शान्त करके उसे अनुकूल बनाने के लिए मन्त्र-जप, दान हवन और रत्न धारण करना श्रेयस्कर होता है।

राहु मन्त्र :

● अर्द्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्य विमर्दनम्।
सिंहिकागर्भ सम्भूतं तं राहुं प्रणमाम्यहम्॥

[जप-संख्या 72000]

राहु ग्रह के लिए यह पौराणिक-स्तुति बहुत प्रचलित है। लयात्मक छन्द में होने के कारण यह साधक को सरलता से कण्ठस्थ हो जाती है। इस प्रकार दैनिक पूजा-स्तवन में भी यह सहज-साध्य प्रतीत होती है। साधकजन सामर्थ्यानुसार इसका निश्चत संख्या में जप करके लाभान्वित हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य मन्त्र भी उपलब्ध होते हैं। यथा—

● ॐ कयानश्चित्रऽआभुव दूती सदावृध: सखा।
कयाश्चिष्ठ या वृता:

यह वैदिक-मन्त्र है। पुस्तकों में इसका शुद्ध मुद्रण भी संदिग्ध रहता है। यदि मुद्रण शुद्ध हो भी, तो इनके उच्चारण की समस्या रहती है। ये मन्त्र (वैदिक) एक विशेष लय-स्वर में, निर्धारित आरोह-अवरोह और आसन-मुद्रा में उच्चारण किये जाते हैं। अतः जब तक इनके मर्मज्ञ किसी विद्वान् से प्रायोगिक-व्यावहारिक प्रशिक्षण न ले लिया जाय, इनका जप नियमानुकूल शुद्ध और पूर्ण न होने के कारण फलदायी नहीं होता। प्रसङ्ग-पूर्त्ति के लिए हमने इनका उल्लेख (सभी नवग्रहों से सम्बन्धित वैदिक-मन्त्रों का) कर दिया है, परन्तु हमारा विनम्र परामर्श है कि साधकजन इन्हें न अपनाकर, तान्त्रिक अथवा पौराणिक-मन्त्रों का जप करें। वे उच्चारण में सरल और लघुकाय होने के नाते कण्ठस्थ भी हो जाते हैं। श्रद्धापूर्वक उनका नियमित-जप चमत्कारिक-प्रभाव की अनुभूति कराता है।

- **पौराणिक मन्त्र**—ॐ रां राहवे नमः।
- **तान्त्रिक मन्त्र**—ॐ ह्रीं राहवे नमः।
- **तान्त्रिक मन्त्र**—ॐ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः।

उपरोक्त मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र को आस्थापूर्वक प्रतिदिन अथवा राहु की विशेष स्थिति (महादशा) में जपने पर उसका दुष्प्रभाव कुछ न कुछ अवश्य ही शान्त हो जाता है।

साधना-विधान :

राहु-साधना के लिए शनिवार का दिन विशेष रूप से अनुकूल माना गया है। रूप, वर्ण, गुण, प्रभाव आदि की दृष्टि से यह ग्रह शनि से बहुत कुछ साम्य रखता है, अतः पूजन-विधान भी तदनुरूप ही प्रचलित है। जहाँ तक समय की बात है, राहु की पूजा-उपासना रात्रि के समय की जाती है।

पीपल-वृक्ष के नीचे कडुवे तेल का दीपक जलाकर, साधकजन अभीष्ट-संख्या में राहु-मन्त्र का जप करते हैं। शनिवार से प्रारम्भ की गयी राहु-पूजा का समापन भी शनिवार को ही करना चाहिए। समापन के दिन वही जप वाला मन्त्र पढ़ते हुए हवन किया जाता है। राहु के लिए हवन-सामग्री में विशेष रूप से दूर्वा (दूब घास) प्रयुक्त करने का विधान है।

हवनोपरान्त, अन्य ग्रहों की पूजा की भाँति, राहु के लिए भी कुछ वस्तुएं दान-स्वरूप किसी ज्योतिषी (भड्डरी) को दी जाती हैं। वर्ण और स्वभाव-भेद से, सभी ग्रहों के लिए दान में दी जाने वाली वस्तुएं अलग-

अलग-निर्धारित हैं। राहु के लिए दानार्थ इन वस्तुओं को विशेष रूप से उपयोगी कहा गया है—

गोमेदमश्वं तैलं च, तिलानपि च कम्बलम्।
नीलवस्त्रं स लौहं च, राहोर्दानं बुधा: विदु:॥

गोमेद नामक रत्न, सोना, सीसा (राँगा), तिल तेल (सरसों का), लोहा, नीला कपड़ा, लाल पुष्प, शस्त्र (तलवार), कम्बल, घोड़ा और सूप।

पूजा के समय कहीं से प्राप्त करके, राहु का चित्र अथवा राहु-यन्त्र सामने रख लेने से तन्मयता भङ्ग नहीं होने पाती, साथ ही—वातावरण में राहु की उपस्थिति का प्रभाव आ जाता है।

राहु-यन्त्र :

भोजपत्र अथवा ताम्रपत्र पर राहु का यन्त्र लिखकर उसकी पूजा करने से भी बहुत लाभ होता है। यन्त्र की रचना इस प्रकार है—

१३	८	१५
१४	१२	१०
९	१६	११

यन्त्र का साधना-विधान ऊपर लिखे गये विधान के अनुसार ही है। किसी भी शनिवार की रात्रि में (वैसे किसी पुरोहित से शुभ-मुहूर्त्त वाला शनिवार पूछ लेना चाहिए) देव-प्रतिमा की भाँति यन्त्र को स्नान कराकर धूप-दीप से पूजकर सङ्कल्पित-संख्या में, पूरी आस्था के साथ राहु-यन्त्र का जप करना चाहिए। जप पूरा हो चुकने पर, उसी मन्त्र की 108 आहुतियाँ देकर हवन करना चाहिए। यदि भोजपत्र पर बनाया गया है तो उस यन्त्र को नीले कपड़े या राँगे के ताबीज में, (ताँबे में भी) रखकर गले या भुजा पर पहना जा सकता है। ध्यान देने की बात यह है कि ग्रह-साधना में मूल-तत्त्व श्रद्धापूर्वक उस ग्रह का स्तवन करना है। चित्र-यन्त्र और जटिलतम पूजा-अर्चना तो बाद की बातें हैं। और कुछ न हो, तो केवल मन्त्र-जप द्वारा ही उस ग्रह को अनुकूल बनाया जा सकता है। इसमें प्रतिबन्ध केवल इतना ही रहता है कि उस ग्रह के दिन से ही मन्त्र-जप (साधना) प्रारम्भ की जाय और समापन भी जब ही हो—जब वही दिन

रहे। पूजा की पूर्णता के लिए यथा-सामर्थ्य हवन और दान भी अवश्य करना चाहिए।

राहु-रत्न :

राहु-ग्रह का रत्न 'गोमेद' है। यह गहरे कत्थई रङ्ग का होता है। परन्तु आधुनिक विद्वानों का मत है कि हल्का कत्थई, चमकदार, पारदर्शी गोमेद विशेष रूप से उत्तम होता है।

गोमेद एक अल्पमोली पत्थर है और भारत में प्रचुरता से उत्पन्न होता है। फिर भी व्यावसायिक छलछद्म के कारण बहुत लोग इसकी जगह कत्थई काँच बेचते रहते हैं। कुण्डली के आधार पर किसी ज्योतिषी की राय से, यदि गोमेद पहनना ही हो, तो इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वह पत्थर (गोमेद) टूट-फूट से मुक्त, दरार-चटक रहित और हल्के कत्थई रंग में पारदर्शी हो। उसे अँगूठी में जड़वाकर पहनना चाहिए।

9. केतु

सामान्य-परिचय :

राहु ग्रह की विवेचना में हम लिख चुके हैं, कि राहु-केतु—इन दो ग्रहों को आधुनिक खगोल-विज्ञानी मान्यता नहीं देते। अतः उनकी कसौटी पर, इसके विषय में कुछ कहने का प्रश्न ही नहीं उठता। रह गया पौराणिक सन्दर्भ, उसके अनुसार, जो कथा-प्रसङ्ग राहु का है, वही केतु का भी। वस्तुतः आरम्भ में यह एक दैत्य का शरीर था, जो कटकर दो भागों में विभक्त हो जाने के बाद भी मरा नहीं। वही छिन्न शरीर राहु-केतु के नाम से विख्यात हुआ। ऊपरी भाग (सिर वाला) केतु, और नीचे का भाग (कबन्ध) राहु प्रसिद्ध हुआ।

भारतीय-ज्योतिष के अनुसार दृश्यमान न होने पर भी ये दोनों छाया-ग्रह—व्यक्ति के जीवन को; बल्कि समस्त सृष्टि को निश्चित-रूपेण प्रभावित करते रहते हैं।

स्थिति-स्थान :

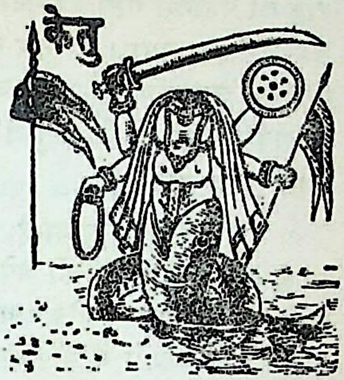

आकाश-मण्डल में केतु-ग्रह की स्थिति, उसका विशेष प्रभाव-क्षेत्र वायव्यकोण माना गया है, वैसे पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों की गति के आधार पर इसका प्रभाव-क्षेत्र घटता-बढ़ता भी रहता है। कुछ विद्वानों के मतानुसार राहु की अपेक्षा केतु व्यक्ति के लिए बहुत कुछ हितकारी सिद्ध होता है। किन्हीं विशेष स्थितियों में होने पर यह व्यक्ति को यश. मान के शिखर पर पहुँचा देता है। कुछ ग्रहों के साथ इसकी युति (समीपता) उनके प्रभाव को बढ़ा देती है।

मण्डल :

केतु का मण्डल ध्वजाकार माना जाता है। कदाचित् यही कारण है, कि इसका प्रभाव (अनुकूल या प्रतिकूल जैसा भी हो) बड़ी स्पष्टता से, आकाश में लहराती ध्वजा के समान, दृष्टिगत होता है। यह एक अद्भुत सत्य है, कि सभी पौराणिक-कल्पनाओं के मूल में कोई न कोई यथार्थ-परक आधार अवश्य ही प्राप्त होता है।

माप :

केतु का माप केवल छः अंगुल है। इस दृष्टि से यह अपेक्षाकृत एक बहुत छोटा ग्रह है। वैसे भी चूंकि यह केवल शिरोभाग है, हाथ-पैर धड़ से रहित हैं, अतः इसका लघुकाय होना स्वाभाविक ही है।

प्रभाव क्षेत्र :

अन्तर्वेद-क्षेत्र (अनेक विद्वानों के मतानुसार गङ्गा-जमुना का द्वावा क्षेत्र—इलाहाबाद से कानपुर के बीच का भाग) जो कभी भारत का सर्वाधिक सम्पन्न और सभ्य प्रदेश था—केतु-ग्रह की लीला-भूमि है। यह भूभाग इस ग्रह द्वारा विशेष रूप से प्रभावित-प्रशासित रहता है।

गोत्र :

यद्यपि राहु-केतु का मूल-शरीर एक था, और वह दानव-जाति का था, परन्तु विच्छिन्न होकर दो ग्रहों में परिगणित होने के पश्चात् उनका पुन-

जन्म मानकर उनके नये गोत्र घोषित किये गये। इस आधार पर, जहाँ राहु को पेठीनस गोत्र का सदस्य माना गया, वहीं केतु को जैमिनी-गोत्र से सम्बद्ध किया गया। पेठीनस और जैमिनी-ऋषि के वंशज सिद्ध करने वाले तर्क अब लुप्तप्राय: हैं, परन्तु जनसामान्य में यह पौराणिक-मान्यता आज भी सर्व-स्वीकृत है, कि केतु जैमिनी-गोत्र में उत्पन्न हुआ था।

वर्ण और वाहन :

राहु का वर्ण काला है, परन्तु केतु उससे कुछ कम अर्थात् धूम्रवर्ण का है। वैसे भी शरीर की अपेक्षा चेहरा कान्तियुक्त होता है, अत: राहु की कालिमा केतु से कम होकर धुएँ के रङ्ग में दर्शित होता है। इसी प्रकार राहु-केतु के वाहनों में भी अन्तर है। जहाँ राहु को व्याघ्र (सिंह) की सवारी उपलब्ध है, वहीं केतु के लिए कपोत की व्यवस्था की गयी है। इस प्रकार कपोतासीन केतु आकाश-मण्डल में सरलता से वायु-विहार करता रहता है।

विपरीत-प्रभाव :

यदि किसी व्यक्ति की कुण्डली में केतु की अवस्थिति अशुभ स्थान पर है, या दुष्ट-ग्रह से प्रभावित है, तो उस दशा में केतु अनिष्टकारी हो जाता है।

अनिष्टकारी केतु का दुष्प्रभाव व्यक्ति को रोगी बना देता है। मुख्यत: ऐसे जातक चर्म-रोगों से ग्रसित हो जाते हैं। दाद, खाज, फोड़ा, फुन्सी, कुष्ठ आदि उपद्रवों की उत्पत्ति में केतु-ग्रह की विपरीतता भी एक कारण हो सकती है। चेचक जैसे रोग से तो व्यक्ति सदा के लिए कुरूप हो जाता है। अत: यह आभास मिलते ही कि केतु का प्रभाव हानिकर है, उसके शमन हेतु सम्भव उपाय प्रारम्भ कर देना चाहिए।

दोष-निवारक दान :

केतु की प्रसन्नता हेतु दान की जाने वाली वस्तुएं इस प्रकार बतायी गयीं हैं—

वैदूर्य रत्नं तैलं च, तिलं कम्बलमर्पयेत्।
शास्त्रं, मृगमदं, नीलपुष्पम् केतु ग्रहाय वै॥

वैदूर्य नामक रत्न (लहसुनिया—इसे अंग्रेजी में आईकैट कहते हैं), तेल (कड़ुआ), तिल (काला), कम्बल, हथियार (लोहे की वस्तु—छुरी चाकू भी), कस्तूरी और नीले रङ्ग के पुष्प का दान करने से केतु ग्रह प्रसन्न

होकर साधक का कल्याण करता है, और उसका दुष्प्रभाव मिट जाता है। केतु और राहु दोनों के लिए पूजा, हवन और दान शनिवार को करना विशेष उत्तम होता है।

केतु-मन्त्र :

● पलाशपुष्प संकाशं, तारका ग्रह मस्तकम्।
रौद्रम् रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम्॥

[जप-संख्या 68,000]

केतु-स्तवन के लिए यह पौराणिक-मन्त्र सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। वैसे अन्य कई मन्त्र भी प्रचलित है, जिन्हें साधकजन अपनी श्रद्धा-सुविधा के अनुसार जपते रहते हैं। यथा—

● **वैदिक-मन्त्र**—ॐ केतुं कृण्वन्न केतवे पेशोमर्यापेशसे सम्रषद्भिरजा यथा।

● **पौराणिक-मन्त्र**—ॐ कें केतवे नम:।

● **तान्त्रिक-मन्त्र**—ॐ ह्रीं केतवे नम:।

ॐ स्रां स्रां स्रौं स: केतवे नम:।

साधना-विधि :

केतु-ग्रह की उपासना के लिए लगभग वही सब नियम स्वीकृत हैं, जो राहु की साधना हेतु अपनाये जाते हैं। हवन के लिए इसकी पूजा में दूर्वा अथवा शमी की लकड़ी का प्रयोग करना चाहिए। दिन और समय इसके लिए भी—शनिवार और रात्रि-काल उपयोगी रहता है। नाममात्र के अन्तर को यदि हम दृष्टिगत न करें तो पायेंगे, कि शनि, राहु और केतु की उपासना-पद्धति में बड़ी समता है। अन्तर है, केवल मन्त्रों का। केतु की पूजा हेतु शनिवार (कुछ लोग बुध को भी करते हैं). सर्वमान्य दिन है।

केतु-यन्त्र :

ठीक राहु-यन्त्र की विधि से ही केतु-यन्त्र की भी पूजा की जाती है। हाँ, दोनों की रचना में कुछ अन्तर अवश्य है। अत: यन्त्र की रचना करते समय बहुत सावधानी से इनके अङ्कों को लिखना चाहिए।

१४	९	१६
१५	१३	११
१०	१७	१२

केतु रत्न :

केतु-ग्रह का रत्न 'लहसुनिया' नामक पत्थर है। इसे 'वैदूर्य-मणि' भी कहते हैं। वर्ण और आभा की दृष्टि से यह ठीक बिल्ली की आँखों जैसा हल्के हरे रङ्ग का चमकीला पत्थर होता है। चन्द्रकान्त-मणि की भाँति इसकी आभा भी चलायमान रहती है। गोमेद की अपेक्षा यह आकर्षक प्रतीत होता है।

किसी अनुभवी ज्योतिषी को कुण्डली दिखाकर, उसके परामर्शानुसार शनिवार के दिन चाँदी की अँगूठी में वैदूर्य धारण किया जा सकता है।

जहाँ तक रत्न-धारण का सम्बन्ध है, चाहे जिस ग्रह का रत्न पहनना हो, उसे किसी शुभ-मुहूर्त्त में ही लायें। फिर विधिवत् उसको मन्त्र द्वारा शुद्ध करके धारण करें। अँगूठी या आभूषण में जड़वाने का दिन भी शुभ होना चाहिए। भारतीय-ज्योतिष का यह एक अद्भुत और अकाट्य सत्य है, कि मुहूर्त्त का प्रभाव व्यक्ति जीवन पर, कार्य-कलाप पर अवश्य पड़ता है। अतः यथासम्भव प्रत्येक कार्य के लिए शुभ-मुहूर्त्त ही अपनाना चाहिए। कम से कम, अशुभ या मारक मुहूर्त्त में तो कतई कोई कार्य नहीं किया जाय, कारण कि कभी-कभी इसके दुष्परिणाम-स्वरूप व्यक्ति का जीवन संकट-ग्रस्त हो जाता है।

कोई भी रत्न लायें, खरीदने से पहले उसकी भली-भाँति परीक्षा करलें। धब्बेदार, गड्ढेदार, दरार-चटकन वाले, अपनी स्वाभाविक आभा के विपरीत धूमिल या विकृत किरणें प्रसारित करने वाले, टूटे, कुरूप अथवा किसी के द्वारा त्यागे हुए, रत्न शुभ नहीं माने जाते। इसलिए रत्नों के मामले में बहुत सावधानी बरतनी चाहिए—वह चाहे हीरा हो, चाहे साधारण सीपी, शुद्धता और निर्दोषिता की कसौटी पर उसको भली-भाँति परखकर ही खरीदना चाहिए।

नवग्रहों की सरलतम साधना

आज के व्यस्त भौतिक-युग में न तो व्यक्ति के पास इतना समय हैं, कि वह शान्ति-स्थिर होकर नित्य एक-दो घण्टे का समय पूजा-पाठ में लगाये, और न वे पूजा के वाञ्छित उपादान ही अपने मूल-शुद्ध रूप में प्राप्त होते हैं। ऐसी स्थिति में साधना का माध्यम (सरलतम) मार्ग अपनाकर लाभ उठाया जा सकता है। वस्तुतः उपासना में नियम, प्रतिबन्ध, प्रयोज्य वस्तुयें और समय आदि की बातें तो बाद में आती हैं, मुख्य बिन्दु है—आस्था, धैर्य, अटूट विश्वास और मानसिक-संयम। इनके अभाव में, कोई भी जप-तप, हवन-दान लाभकारी नहीं हो सकता।

पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ कुछ ऐसे प्रयोग लिखे जा रहे हैं, जो व्यवहार में सरल, सहज और बोधागम्य हैं। साथ ही, इनमें प्रभाव-शक्ति भी ऐसी प्रबल है, कि साधक, यदि विधिवत्, आस्थापूर्वक साधना कर रहा है, तो थोड़े समय में ही चमत्कारिक-लाभ की अनुभूति कराता है।

नीचे एक छोटी-सी स्तुति प्रस्तुत है। नित्य प्रातः उठते ही इसका 5-7 बार मौन पाठ कर लेना परम हितकर सिद्ध होता है। वैसे, सामर्थ्यानुसार दैनिक-पूजा के समय अधिकतम संख्या में इसका जप किया जा सकता है। कुछ लोग प्रातः-सायं नियमित रूप से शुद्ध होकर थोड़ी देर इसका पाठ करते हैं—

नवग्रह-शान्ति की स्तुति इस प्रकार है—

ब्रह्मा मुरारिः त्रिपुरान्तकारी, भानुः शशिः भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनि राहु केतवः, सर्वग्रहा शान्तिकरा भवन्तु॥

इस एक श्लोक से ही समस्त नवग्रहों का स्तवन हो जाता है। इसका नियमित जप अवश्य ही उनकी अनुकूलता उपलब्ध करा देता है।

अन्य प्रयोग :

नवग्रहों के विपरीत प्रभाव को समाप्त करके उन्हें अनुकूल बनाने में, वैसे तो जप, तप, पूजा, पाठ, हवन, रत्न-धारण और दान को सर्वश्रेष्ठ तथा निश्चित-प्रभावी माना जाता है, परन्तु समस्या यह है, कि जन-सामान्य के लिए यह समस्त क्रियाकलाप सम्भव नहीं है। फिर आज का

भौतिक-युग, जिसमें सर्वत्र अभाव, दरिद्रता, सन्त्रास, मिलावट और छल-छद्म ही दीख पड़ता है। अतः यहाँ क्रमशः नवग्रहों की उपासना हेतु अति सरल विधियाँ लिखी जा रही हैं। मन्त्रों का उल्लेख प्रत्येक ग्रह के प्रकरण में अलग-अलग लिखा जा चुका है। अतः साधकजन बिना किसी आडम्बर और सङ्कोच के, उनमें से कोई भी एक मन्त्र प्रतिदिन आस्थापूर्वक जप सकते हैं। रही बात रत्न-धारण और दान की, उसके लिए विकल्प रूप में यहाँ कुछ ज्ञातव्य और परम लाभकारी प्रयोग दिये जा रहे हैं। साधकजन अपने इष्टग्रह की कृपा इन विधियों से अवश्य ही प्राप्त कर सकते हैं।

सूर्य :

जो लोग सूर्य-रत्न माणिक्य खरीद सकने की सामर्थ्य नहीं रखते, उनके लिए यह एक बहुत ही लाभकारी वानस्पतिक प्रयोग है, कि वे किसी शुभ-रविवार के दिन, पूर्व की ओर मुँह करके प्रातःकाल बेल (बिल्व) की जड़ ले आयें, और शुद्ध जल से स्नान कराकर धूप-दीप से, सूर्य-मन्त्र पढ़ते हुए, उसकी पूजा करें। तत्पश्चात् गुलाबी रङ्ग के सूती धागे में इसे लपेट कर (बाँधकर) दाहिनी भुजा पर धारण करें। यह प्रयोग उन्हें निश्चित रूप से वही फल प्रदान करेगा, जो माणिक्य धारण करने से मिलता है।

दान के लिए भी ऐसा ही सरलतम विकल्प मनीषियों ने बताया है। सूर्योपासक जन, रविवार के दिन पूजनोपरान्त गुड़, गेहूँ, ताँबे का पात्र (टुकड़ा या सिक्का भी) दान करें। सम्भव हो तो हरिवंश-पुराण की कथा का श्रवण या अध्ययन करें। यह न हो सके तो सूर्यदेवता की कोई भी स्तुति करें, या मन्त्र जपें। रात में शयन के पूर्व आग से अङ्गारे निकलवा कर उनको दूध से बुझायें। किसी प्रवाहमान जलधारा में (नदी-नहर में) ताँबे का टुकड़ा या पैसा प्रवाहित कर दें।

प्रत्येक रविवार के दिन यह प्रयोग करते रहने से सूर्यदेवता की कृपा प्राप्त होती है। बिल्व-मूल तो केवल एक बार धारण करना पड़ता है, परन्तु अन्य तान्त्रिक प्रयोग (उपरोक्त) हर रविवार के दिन करना चाहिए।

चन्द्रमा :

चन्द्रमा का रत्न मोती है। परन्तु जो लोग मोती या उसका उपरत्न चन्द्रकान्त-मणि धारण करने में समर्थ नहीं हैं, वे परम निश्चिन्त मन से

सोमवार के दिन प्रातःकाल पूर्वोन्मुख होकर खिरनी-वृक्ष की जड़ ले आयें, और चन्द्र-मन्त्र से उसकी पूजा (स्नान, धूप-दीप) करके, सफेद सूती धागे के सहारे दाहिनी भुजा पर धारण करलें । मोती और चन्द्रकान्त का प्रभाव देने में यह वानस्पतिक प्रयोग बहुत ही लाभकारी प्रमाणित होता है ।

दान-कर्म के लिए चन्द्रोपासना में, सोमवार के दिन शिवपुराण की कथा (कोई भी शिव-चरित्र) पढ़ने-सुनने से साधक का कल्याण होता है । अन्य प्रयोग इस प्रकार हैं—

प्रवहमान धारा में रजत-खण्ड विसर्जन (किसी नदी या नहर में चाँदी का टुकड़ा या सिक्का प्रवाहित) करना चाहिए । रात्रि में शयन के पूर्व किसी पात्र में थोड़ा-सा दूध (गाय का हो तो अत्युत्तम) सिरहाने (चारपाई के नीचे, ठीक तकिये की सीध में) रखलें । सवेरे जागने पर सर्वप्रथम वह पात्र उठायें, और पाकर के वृक्ष पर वह दूध चढ़ा आयें । यहाँ कुछ लोग पाकर की जगह पीपल या बरगद का वृक्ष भी बताते हैं । अधिकांश विद्वानों ने पाकर-वृक्ष को ही मान्यता दी है । स्मरण रहे कि चन्द्रोपासक व्यक्ति को रात्रि में दूध का सेवन नहीं करना चाहिए । इसी प्रकार श्मशान-क्षेत्र में स्थित कुएं का पानी लाकर घर में रखना भी चन्द्रमा की कृपा प्राप्त कराता है ।

मंगल :

मङ्गल का शुभ प्रभाव अर्जित करने के लिए ज्योतिष-शास्त्र ने मूँगा धारण का परामर्श दिया है । परन्तु जो व्यक्ति मूँगा नहीं ख़रीद सकता, वह मङ्गलवार के दिन अनन्तमूल पौधे की जड़ लाकर, उसे लाल धागे के सहारे भुजा पर बाँधकर मूँगा धारण का लाभ प्राप्त कर सकता है । अनन्तमूल एक सुलभ वनस्पति है । उसकी जड़ लाकर मङ्गल-मन्त्र से पूजित करके मंगलवार को धारण करना चाहिए । इसके लिए सन्ध्या-काल उत्तम माना गया है । यदि पौधा नहीं मिल रहा, तो बाजार से भी इसे खरीदा जा सकता है । हकीमी-पद्धति के दवाफरोश (अत्तार) इसे रखते हैं । बनिये-पंसारी भी रखते हैं । कहीं से भी ली जाय, परन्तु यह ध्यान रहे, कि जड़ी जड़ी सली-गड़ी, घुनी या बहुत पुरानी न हो ।

मंगल के लिए सरलतम तान्त्रिक प्रयोग यह है, कि मंगल के दिन गुड़ के टुकड़े, या गुड़ से बनी हुई कोई भी मिठाई (खाद्य वस्तु) नदी-नहर की धारा में प्रभावित करना चाहिए । मृगचर्म पर बैठकर मंगल-मन्त्र का

जप करें। आसन के रूप में मृगचर्म सुलभ न हो तो कहीं से उसका एक छोटा टुकड़ा ही प्राप्त करें, और उसे सदैव पास में रखें। हनुमानजी का स्तवन-पूजन मंगल-ग्रह को अनुकूल बनाने में विशेष सहायक होता है। रामायण का सुन्दरकाण्ड, हनुमान-चालीसा अथवा अन्य कोई हनुमत-चरित्र का प्रसंग पढ़ना-सुनना लाभकारी होता है। कुछ न हो सके तो मंगलवार के दिन सायंकाल मंगल मन्त्र और हनुमत्-मन्त्र (ॐ हं हनुमते नमः) का जप करना चाहिए।

मंगल की उपासना का (वैसे सभी प्रकार की साधना-उपासना में) सबसे बड़ा और आवश्यक प्रतिबन्ध है—ब्रह्मचर्य। तन-मन की पवित्रता के साथ की गयी उपासना ही वाञ्छित लाभ देती है, भ्रष्ट, अपवित्र शरीर और मन से किया गया सारा प्रयास व्यर्थ रहता है।

बुध :

बुद्धिजीवी और व्यवसायी लोगों के लिए बुध-ग्रह विशेष रूप से लाभकारी माना गया है। परन्तु यदि उसकी स्थिति निर्बल अथवा प्रतिकूल हो, तो लाभ की अपेक्षा हानि करने लगता है। ऐसी दशा में लोग बुध का रत्न पन्ना धारण करते हैं। मन्त्र-जप, यन्त्र-पूजन और रत्न-धारण —ये तीनों उपाय किसी भी ग्रह की कृपा-प्राप्ति के लिए किये जा सकते हैं। जहाँ तक बुध की उपासना का प्रश्न है, नियमानुसार मन्त्र-जप और यन्त्र पूजन तो करना ही चाहिए, सामर्थ्य हो तो पन्ना-रत्न भी धारण किया जा सकता है।

आज के युग में असली-निर्दोष रत्न न तो सुलभ हैं, और न सामान्यजन की क्रय-शक्ति में आते हैं। अतः पन्ना के स्थान पर यदि बुध का वानस्पतिक-प्रयोग किया जाय, तो भी पर्याप्त लाभ दृष्टिगोचर होता है। पन्ना का स्थानापन्न (पूरक) 'विधारा' नामक वनस्पति की जड़ है। वैसे, यह पौधा नदियों के तराई क्षेत्र में उगता है, पर यदि पौधा नहीं मिल रहा, तो बनिया-पंसारी से या हकीम-अत्तार की दूकान से खरीद सकते हैं। जड़ साफ और यथासम्भव नयी हो। सड़ी, गली, घुनी या छिन्न-भिन्न न होकर उसे सुडौल होना चाहिए।

किसी भी बुधवार के दिन विधारा की जड़ लाकर उसे शुद्ध जल से स्नान करायें, फिर धूप-दीप से पूजा करके बुध-मन्त्र 108 या अधिक बार जप करके, जड़ को हरे रङ्ग के सूती धागे के सहारे दाहिनी भुजा पर

धारण करलें। इस समस्त प्रक्रिया में आदि से अन्त तक बुध-मन्त्र जपते रहना चाहिए।

विधारा की जड़ धारण करने के साथ यदि तांत्रिक-प्रयोग भी किया जाय, तो विशेष लाभ होता है। इसके लिए कौड़ियाँ जलाकर, उनकी राख (बुध के दिन) नदी-नहर की धारा में प्रवाहित करना चाहिए। फिटकरी का मञ्जन करके स्नान करें, और दुर्गाजी की स्तुति-पूजा करें। ताम्रखण्ड (ताँबे का सिक्का या पैसा) भी, कौड़ियों की राख के साथ या अकेले ही, प्रवाहित जल में विसर्जित करें। बुध के दिन उपवास भी लाभकारी होता है।

बृहस्पति :

विद्वता, प्रतिष्ठा, ज्ञान, वैभव और सन्तान का दाता ग्रह बृहस्पति यदि अशुभ स्थिति में हो तो इन समस्त गुणों के विपरीत वह कष्टप्रद हो जाता है। अनिष्टकारी गुरु की स्थिति को शान्त करके शुभ प्रभाव के लिए लोग पुखराज-रत्न पहनते हैं। उसके प्रभाव में पीले रङ्ग के अन्य अल्प-मोली उपरत्न धारण किये जाते हैं। यहाँ रत्नों के पूरक रूप में वानस्पतिक प्रयोगों का उल्लेख किया जा रहा है, जो सर्वसुलभ, सस्ता और प्रभावी भी है। इसे कोई भी व्यक्ति सरलता से धारण कर सकता है।

किसी गुरुवार के दिन (उस दिन कोई अशुभ या मारक योग तो नहीं है—इसका पता स्थानीय-पुरोहित से लगा लें) बृहस्पति-मन्त्र का जप करते हुए, हल्दी की गाँठ या केले की जड़ अथवा भारङ्गी की जड़—पीले कपड़े में लपेट कर, दाहिनी भुजा पर बाँधने से—पुखराज धारण करने से भी अधिक लाभ प्राप्त होता है। बाँधने के पूर्व उस जड़ी की धूप-दीप द्वारा पूजित करके, मन्त्राभिषिक्त कर लेना चाहिए।

बृहस्पतिवार के दिन उपवास रखना, ब्रह्माजी की पूजा-स्तुति करना, पीपल के वृक्ष पर (प्रतिदिन) जल चढ़ाक पूजा करना तथा विष्णु भगवान का स्तवन-चिन्तन करना हितकारी होता है।

बृहस्पति की कृपा पाने के बृहस्पतिवार के दिन प्रायः स्नान-पूजन के उपरान्त पीली वस्तु का दान करना भी बहुत लाभदायक रहता है। वस्तुओं में ये चीजें ले सकते हैं—केला, बेसन, चने की दाल, हल्दी, पीला वस्त्र, पुस्तक (कोई देव-स्तुति, कथा आदि की) और पीले रङ्ग का घोड़ा, सोना, पुखराज, काँसे का बर्त्तन।

शुक्र :

राजसिक-वैभव, विद्या-बुद्धि और यश-सम्मान के प्रदाता शुक्र-ग्रह की कृपा पाने के लिए लोग हीरा-रत्न धारण करते हैं। हीरे की प्राप्ति आज धनी लोगों के लिए भी सरल नहीं है, अतः विकल्प रूप में लोग हीरे की जगह ओपल धारण करते हैं। विक्रान्त (तुरुमली) भी हीरे का उपरत्न है, किन्तु वह भी बहुत मूल्यवान् होता है। कुछ लोग पूरक रूप में फीरोजा और कोई-कोई विद्वान् अमेरिकन-हीरा (सफेद जरकन) धारण करने का परामर्श देते हैं। समस्त शंकाओं और मूल्य की अधिकता से मुक्ति पाने का सहज उपाय यह है, कि शुक्र-कृपा प्राप्ति के लिए—हीरे की जगह वानस्पतिक प्रयोग अपनावें। इसको कोई भी व्यक्ति बड़ी सरलता से कर सकता है।

सरपंखा नामक पौधे की ताजी जड़ शुक्रवार को प्रातः ले आयें उसे सफेद धागे के सहारे भुजा पर बाँध लें। बाँधने से पूर्व उसे शुक्र-मन्त्र द्वारा स्नान (जल छिड़क कर) धूप-दीप से पूजित करलें। शुक्रवार को व्रत भी रखना चाहिए। समस्त पूजा-चर्या के दौरान शुक्र-मन्त्र का जप विशेष प्रभावी होता है। जो लोग मन्त्र जप नहीं कर सकते, उनके लिए उचित होगा, कि किसी ब्राह्मण के हाथों, अपने अभीष्ट ग्रह की वानस्पतिक-प्रक्रिया (जड़ लाना और उसका पूजन तथा धारण) पूरी करायें। पूजन क्रिया के पश्चात उसे भोजन और कुछ दान भी अवश्य दें। दान दी जाने वाली वस्तुओं में चावल, मिश्री, दूध, दही, श्वेत वस्त्र, सफेद चन्दन, चाँदी, सोना, हीरा, ओपल, शंख आदि की गणना होती है। कुछ विद्वान यह सामग्री किसी ब्राह्मण-युवती (सौभाग्यवती) को देने का परामर्श देते हैं।

भोजन के पूर्व गौ के लिए ग्रास निकलना, गौ की सेवा—चारा-पानी करना, लक्ष्मी-पूजन तथा स्त्रियों का सम्मान करने से भी शुक्र की कृपा प्राप्ति होती है।

शनि :

सर्वाधिक क्रूर, भयानक और कष्टदायी ग्रह शनि, यदि कृपालु हो जाये, उसकी स्थिति अनुकूल रहे, तो वह व्यक्ति को अखण्ड सुख-वैभव प्रदान करता है। पूजा, उपासना और तान्त्रिक-प्रयोगों के द्वारा यदि उसकी उग्रता कम या शान्त की जा सके, तो भी बहुत लाभ होता है।

शनि का रत्न नीलम है, जो बहुत ही मँहगा, साथ ही संदिग्ध प्रभाव

वाला होता है। नीलम का प्रभाव सदैव अनुकूल नहीं होता। शुद्ध, निर्दोष, असली और विधिवत् पूजित नीलम भी कभी-कभी मारक हो जाता है। यह उसका अस्तित्त्वगत प्रभाव होता है। कोई नीलम शुभ होता है, और कोई घातक। अत: उसे धारण करने के पूर्व एक-दो दिन परीक्षण के रूप में पहनना चाहिए। प्रतिकूल लगे, तो बदल कर दूसरा ले आयें। यह एक मात्र ऐसा रत्न है, जो धारण करने के दो-चार दिन बाद ही अपना शुभाशुभ प्रभाव दिखला देता है।

नीलम के उपरत्न के रूप में नीली को मान्यता दी गयी है। लोहे की (घोड़े की नाल से बनी) अँगूठी भी पहनी जाती है। परन्तु तान्त्रिक-दृष्टि से—सर्वथा निरापद, सर्वसुलभ और प्रभावी उपाय है—बिछुआ (एक पौधा) की जड़ धारण करना। शनिवार के दिन बिछुआ की जड़ लाकर उसे काले कपड़े या काले धागे में पिरोकर दायीं भुजा पर धारण करना चाहिए।

शनिदेव की पूजा शनिवार के दिन सायंकाल पीपल-वृक्ष के नीचे की जाती है। शनि का दुष्प्रभाव मिटाने के लिए लोग शनिवार के दिन उपवास रखते हैं, तथा शाम को पूजनोपरान्त ये वस्तुयें दान-स्वरूप किसी ज्योतिषी-भड्डरी आदि को दे देते हैं—लोहा, उड़द, काला कपड़ा, कड़ुवा तेल, काले फूल, कस्तूरी, काली गाय, भैंस, काला जूता आदि। कुछ विद्वानों का मत है, कि ये वस्तुयें किसी बूढ़े, श्याम-वर्ण व्यक्ति को, जो मदिरा पीता हो, देना चाहिए। तन्त्र-प्रयोग के रूप में अपना झूठा भोजन कौओं को, और नदी-तालाब में मछलियों को आटे की गोलियाँ बनाकर खिलाना चाहिए। किसी पात्र में तेल भरकर, उसमें अपनी छाया देखने के बाद वह तेल (पात्र सहित) दान कर देना चाहिए।

राहु :

राहु का रत्न 'गोमेद' है। परन्तु जो व्यक्ति किसी कारण गोमेद नहीं धारण कर सकते, उनके लिए सफेद चन्दन सर्वश्रेष्ठ और सहज सुलभ वस्तु हैं। असली सफेद चन्दन का एक टुकड़ा सफेद वस्त्र या धागे के सहारे भुजा पर बाँध लेने से राहु का दोष शान्त हो जाता है। राहु की पूजा, उपासना और अन्य सभी विधान बुधवार के दिन रात्रि में करना चाहिए। कुछ विद्वान बुध की जगह शनिवार का समर्थन करते हैं। अस्तु, शनि या बुध, जब भी सुविधा हो—नियम-निष्ठापूर्वक साधना की जाये, तो अवश्य ही उसका अनुकूल परिणाम दृष्टिगत होता है।

तान्त्रिक-प्रयोगों के सन्दर्भ में राहु की साधना के लिए बताया गया है कि बुधवार (अथवा शनिवार) के दिन, भैरवजी की पूजा करना हितकारी है। उस दिन (सम्भव हो तो नित्य) गोमूत्र से आचमन, दन्त-मञ्जन करना चाहिए। नदी की धारा में कोयले के टुकड़े विसर्जित करने, टूटे-फूटे-खोटे सिक्के प्रवाहित करने से भी राहु का कोप शान्त हो जाता है।

दान के लिए, राहु के प्रसंग में ये वस्तुएँ स्वीकृत की गयी हैं--

राँगा, तिल, गोमेद, सरसों, नीला कपड़ा, तेल, मूली, सूप, घोड़ा, कम्बल आदि। यह वस्तुएँ किसी कुलीन ब्राह्मण को न देकर, नीच जाति के किसी काले, दरिद्र, बूढ़े, कुरूप व्यक्ति को देनी चाहिएं। पूरी साधना में राहु-मन्त्र का जप आवश्यक रहता है।

केतु :

केतु रत्न लहसुनिया (वैदूर्य) की जगह असगन्ध की जड़, नीले धागे में लपेट कर धारण करें। गणेशजी की पूजा करके सफेद रेशमी धागा, चाँदी की अँगूठी और मोती धारण करना भी लाभकारी कहा गया है। परन्तु सर्वोत्तम प्रयोग यही है कि लहसुनिया या असगन्ध की जड़ धारण करें और मन्त्रोपासना करते हुए—गणेश जी की पूजा करें तथा कुत्तों को भोजन (अन्नाहार) दें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्ति

सब सुखी हों

●

10

देवोपासना

आध्यात्मिक और व्यावहारिक दोनों क्षेत्रों में स्तुति को सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है। पूजा-पाठ, जप-तप और दान-पुण्य में यदि स्तुति न हो, तो वह फलदायक नहीं होते। लौकिक-जगत् में भी शिष्टाचार, विनम्रता, श्रद्धा, सम्मान और सभ्यता के पर्याय-स्वरूप स्तुति को शालीनता का अङ्ग माना गया है। वैसे भी, चूंकि स्तुति का सम्बन्ध—सहजता, सरलता, निश्छलता और गुणवान (अभीष्ट का) से होता है, अतः इसके प्रतिरोध अथवा निन्दा की कल्पना ही असङ्गत है। स्तुति से तो महा-नृशंस, क्रूर-कठोर राक्षस भी अनुकूल हो जाते हैं, तब देवताओं के सम्बन्ध में कैसी शङ्का ? वे तो सहज कृपालु, भक्त-पोषक और सहायक होते हैं। आवश्यकता है—केवल श्रद्धा, विश्वास और विनय की।

भारतीय-अध्यात्म में स्तुति को आराधना का विशिष्ट और अनिवार्य उपक्रम स्वीकार किया गया है। किसी भी देवता की कृपा, सान्निध्य, दर्शन, सायुज्य और अवलम्ब प्राप्त करने के लिए स्तुति सबसे बड़ा और प्रभावशाली माध्यम है। स्तुति चाहे छन्द में हो, चाहे गद्य में, चाहे श्लोक में, चाहे मन्त्र रूप में, अथवा अति सामान्य भाषा के वाक्य में, यदि वह उपासक के मन-मस्तिष्क की वास्तविक भावना से उद्भूत है, तो निश्चय ही प्रभावकारी होती है। देवी-देवता भावना को ही वरीयता देते हैं—भाषा को नहीं। एक मूक व्यक्ति भी, पशु भी—अपनी मौन-भाषा में, जिसका कोई व्याकरण या पिङ्गल नहीं होता, स्तुति के द्वारा अभीष्ट-व्यक्ति के अन्तस् को झँझोड़ देता है। देवताओं के सम्बन्ध में तो प्रसिद्ध है—

न काष्ठे विद्यते देवो, न पाषाणें न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवास्तस्मात् भावो हि कारणम्॥

वस्तुतः देवता (दैवी-शक्तियाँ)--विश्व-ब्रह्माण्ड के कण-कण में

उपस्थित (व्याप्त) हैं, और साधक (भक्त) की श्रद्धानुसार वे कहीं भी प्रत्यक्ष (क्रियाशील) हो जाती हैं ।

स्तुति मानव-समाज की चेतना को ऊर्जस्वित करके उसे सार्थकता प्रदान करती है। आध्यामिक-उपलब्धि के उद्देश्य से की गयी स्तुति साधक को ज्ञान, विवेक, वैराग्य, इष्ट-सायुज्य और मोक्ष तक प्रदान करती है। सांसारिक-जनों के लिए—स्तुति, लौकिक-सुखों की प्राप्ति का सरलतम साधन है । स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवार, अर्थ सम्मान, सुरक्षा शान्ति जैसी भौतिक-जगत् की उपलब्धियों के लिए देव-स्तुति से बढ़कर कोई उपाय नहीं है । किन्तु यह उपाय तभी फालदायी होता है, जब स्तुति पूर्ण-निष्ठा, समर्पण-भावना, अडिग-आस्था, और सहज-सरल मन से की गयी हो। चातुर्य, विद्रोह, अस्थिरता, संशय, भय, भ्रम और अविश्वास की गन्ध देने वाली स्तुति (कोई भी साधना-विधि) सर्वथा निष्प्रभावी रहती है ।

इष्ट के प्रति पूर्णरूपेण आत्म समर्पण और अविचल-श्रद्धा की भावना रखते हुए कोई भी व्यक्ति, वह चाहे किसी भी आयु, वर्ग, जाति अथवा लिङ्ग का हो, स्तुति के द्वारा लाभान्वित हो सकता है । मानसिक-शान्ति का अनुभव तो उसे तुरन्त ही हो जाता है, और कालान्तर में उसकी समस्या का समाधान भी (यदि वस्तुतः वह उसका पात्र है) प्राप्त होता है । सर्वाधिक सुख-शान्ति का लाभ उन्हें प्राप्त होता है जो बिना किसी विशेष कामना के, सहज भाव से ही, अपने इष्ट (किसी भी देवी-देवता) की स्तुति नियमित रूप से करते रहते हैं । प्रातः सोकर उठते ही ईश्वर का स्मरण करना; इसी पद्धति का एक रूप है ।

स्तुति, स्तवन, प्रार्थना, विनय, स्तोत्र और आह्वान—ये सभी शब्द लगभग समानार्थी हैं, फिर भी इनमें सूक्ष्म अन्तर है । स्तुति, स्तोत्र और स्तवन परस्पर अधिक निकट हैं। कोषकारों ने इन शब्दों की व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत की है—

स्तुति—गुणगान, प्रसंशा, स्तोत्र, चाटुकारिता, दुर्गा, देवी का एक नाम, शिवजी का एक रूप ।

स्तवन—किसी देवी-देवता की (व्यक्ति की भी) स्तुति करना, उसका गुण-गान-प्रशंसा करना, उसकी विरुदावली का बखान करना ।

प्रार्थना—माँगना, याचना करना, किसी बात (अपनी आवश्य-

कता—कामनापूर्त्ति) के लिए विनयपूर्वक कहना, अपनी अथवा किसी अन्य की कल्याण-कामना से ईश्वर (देवी-देवता) के प्रति भक्तिपूर्वक, निवेदन करना, आक्रमण, हिंसा, अभिमान, एक मुद्रा विशेष, इच्छा, चाह, दावा, अभियोग, कामना ।

विनय—क्षिप्त, गुप्त, दुर्वृत्त, मार्ग-प्रदर्शन, अनुशासन, भद्रता, शिष्टता, विधिवत् आदेश-पालन, नम्रतापूर्ण-आचरण, प्रार्थना, पृथक्‌ करना, व्यवसायी आदि ।

स्तोत्र—स्तुति, स्तुत्यात्मक-श्लोक, श्लोकबद्ध-स्तुति, स्तुति-परक-ग्रन्थ ।

आह्वान—आह्वान, पुकारना, बुलाना, पुकार, बुलावा, देवता का आह्वान, हाजिर होने का (अदालत में) आदेश, तलब-नामा, ललकार, चुनौती, नाम ।

सारांशत: किसी का गुणगान करना ही उसकी स्तुति है ।

आज के भौतिक-युग में, जब कि सर्वत्र घोर अशान्ति और अस्थिरता व्याप्त है, स्तवन (स्तुति अथवा, स्तोत्र-पाठ) ही एक मात्र ऐसा अवलम्ब है, जिसे कोई भी अपना सकता है । और यह तो निश्चित है ही, कि अन्तर्मन से की गयी स्तुति का प्रभाव अवश्य ही दृष्टिगोचर होता है ।

साधना-विधान

आध्यात्मिक दृष्टि से प्रत्येक साधना का एक विशेष विधान होता है । प्रकारान्तर से, एक-एक साधना के अनेक विधान भी प्राप्त होते हैं । व्रत, उपवास, जप, तप, यज्ञ, हवन, तर्पण, मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, अभिचार, योग, मुद्रा, प्राणायाम और समाधि—इन सभी साधनों के लिए आदि-महर्षियों ने अपने दीर्घकालीन-अनुभवों और अध्ययन तथा अन्तर्दृष्टि के आधार पर अनेकानेक विधान निर्दिष्ट किये हैं । इन विधानों में सम्बन्धित साधना के लिए तपयुक्त फलदायक स्थिति, स्थान, वातावरण, काल, प्रयोज्य-सामग्री, विधि, अवधि, संख्या और निषेधों का विस्तृत वर्णन किया गया है ।

आज का विश्व इतना अशान्त, अस्थिर और अनिश्चिन्त है कि व्यक्ति एक क्षण को भी निश्चिन्त नहीं हो पाता । ऐसी मन: स्थिति में हजारों वर्ष पूर्व वाले नियमों का, जो तत्कालीन शान्तिमय विश्व के

वातावरण के आधार पर बनाये गये थे, उनका निर्वाह कठिन ही नहीं, असम्भव जैसा हो गया है। ऐसी स्थिति में, विकल्प-स्वरूप, साधना का सरलतम और सहज-साध्य मार्ग स्तुति ही रह जाता है। आदि-महर्षियों को इस परिस्थिति का स्पष्ट आभास था कि आगे चलकर मानव की प्रकृति मलिन, अस्थिर और संशयशील हो जायेगी, सामाजिक नियमों के प्रति आस्था डिग जायेगी, और भौतिक-जीवन की जटिलता उसे साधना-पथ पर अग्रसर नहीं होने देगी। इसलिए उन्होंने समस्या के समाधान हेतु स्तवन (स्तुति) को साधना का सहज-साध्य और सार्वकालिक सिद्धिप्रद उपाय घोषित कर दिया था। यही कारण है कि स्तुति-साधना तब भी महत्त्वपूर्ण थी, और आज भी उसका महत्त्व-प्रभाव अक्षुण्ण है।

सामान्य-नियम :

पुस्तक के अग्रिम-खण्ड में हमारा प्रतिपाद्य विषय साधना का केवल एक पक्ष 'स्तुति' है, अतः अन्य पक्षों (मन्त्र-तन्त्र, जप-तप, उपवास-यज्ञ आदि) के सम्बन्ध में न लिखकर, केवल स्तुति के सन्दर्भ में ही सामान्य रूप से ज्ञातव्य-तथ्य प्रस्तुत करना अधिक सङ्गत और उपयोगी प्रतीत होता है।

स्तुति करने (स्तोत्र-पाठ-स्तवन) का सबसे उत्तम और सहज सरल नियम यह है कि सर्वप्रथम अपनी आस्था को किसी एक देवी-देवता पर केन्द्रित किया जाय। हम प्रायः विभिन्न देवी-देवताओं के विषय में पढ़ते-सुनते रहते हैं। उसके चरित्र, लीला-क्रम और ओज-प्रताप का कुछ न कुछ प्रभाव जाने-अनजाने हमारे मन-मस्तिष्क पर अवश्य ही पड़ता है, और अज्ञात रूप में, हम उस दैवी-शक्ति (देवता) के प्रति श्रद्धालु हो उठते हैं। यही अनुभूति, अन्तर्मन की यही प्रेरणा व्यक्ति को देवता के प्रति आस्थावान बनाती है। जिस देवता के प्रति हमारा मानस आस्था व्यक्त करे, उसी की स्तुति हमारे लिए लाभकारी होगी। इस प्रकार स्तुति के लिए इष्ट देवता का निश्चय कर चुकने के पश्चात् नित्यप्रति एक निश्चित समय पर, निश्चित विधि के अनुसार उसका स्तवन करना चाहिए। स्नानोपरान्त अपनी परिस्थिति और समय-सुविधा के अनुरूप, किसी समय पर शान्त-चित्त होकर बैठ जायें। उपलब्ध हो, तो इष्टदेव का चित्र (मूर्त्ति) सामने रखकर (यदि कहीं स्थापित है, तो वहीं उसके

सम्मुख बैठकर) एक धूपबत्ती जला लें, और फिर उसका दर्शन-ध्यान करते हुए स्तुति पाठ आरम्भ करें ।

कुछ लोगों को शिवजी पर विशेष आस्था होती है, कुछ दुर्गाजी के भक्त होते हैं। कुछ गणेशजी के उपासक होते हैं,तो कुछ भी श्रद्धा हनुमानजी के प्रति विशेष रूप में व्यक्त होती है । अस्तु, जिसकी जिस पर आस्था हो, उसे उसी देवता का स्तवन करना उत्तम होता है ।

समर्थ जनों के लिए को यही-श्रेयस्कर होगा कि वे प्रातः, दोपहर और सायंकाल—तीनों समय कुछ देर बैठकर इष्टदेवता की स्तुति किया करें । किन्तु उन लोगों के लिए, जो व्यस्त रहते हैं, दोपहर अथवा सन्ध्या का समय ही उपयुक्त होता है । आशय यह है कि जब भी वे अपने को कार्य-मुक्त और निश्चिन्त समझें— स्तुति-पाठ कर सकते हैं । इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि नियमित रूप से परम श्रद्धा और तन्मयता-पूर्वक की गयी स्तुति देवता को भक्त के प्रति थोड़े ही समय पश्चात् सम्वेदित कर देती है ।

व्यावहारिक-दृष्टि से स्तुति-साधना का यह पक्ष भी प्रभावी होता है कि जो व्यक्ति जीवन की विसङ्गतियों और अनिश्चित व्यक्तित्व के कारण स्थिर-भाव से एक जगह बैठ नहीं पाते, वे यदि कोई स्तुति कण्ठस्थ करलें, और चलते-फिरते, काम करते, कहीं भी, किसी भी स्थिति में, उसका मानसिक-पाठ करते रहें, तो उन्हें भी प्रभाव की अनुभूति होती है । प्रतिबन्ध यही है कि वे जब भी स्तुति प्रार्थना करें, उनका मन देवता के प्रति आस्था, विनय, समर्पण और अडिग विश्वास में पूर्ण हो ।

स्तुति-पाठ में शब्दों के शुद्ध उच्चारण का भी महत्त्व है। इसके लिए किसी योग्य व्यक्ति से पाठ का उच्चारण सीख लेना (अल्प शिक्षितों के लिए) हितकर होता है । और, सबसे सरल विधान तो यह है कि जब भी अवसर मिले—देवता की स्तुति की जा सकती है । श्रद्धा-भाव की प्रबलता होने पर व्यक्ति काम करते समय भी स्तुति-पाठ कर सकता है । वैसे, दैनिक-चर्या के मध्य कोई समय निकाल कर, नियमित रूप से की जाने वाली स्तुति (स्तोत्र-पाठ) का फल अवश्य प्राप्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं ।

देवोपासना

ईश्वर एक है, परन्तु उसके रूप अनेक हैं। विभिन्न रूपों को देवता

अथवा अवतार की संज्ञा दी गयी है। पुरुषाकृति में, अपनी अलौकिक क्षमता का प्रदर्शन करने वाले रूप 'देवता' कहलाते हैं। और स्त्री-रूप में अवतीर्ण ईश्वर की अद्भुत रहस्यमय शक्ति को 'देवी' सम्बोधित किया जाता है। देवताओं की भाँति देवियाँ भी अनेक हैं। यद्यपि मूल-शक्ति और प्रभाव सब में एक ही है, तथापि गुण, स्वभाव, घटनाक्रम और अवतार-उद्देश्य की दृष्टि से उनमें नाम, रूप और प्रभाव-रुचि में अन्तर भी है।

लक्ष्मीजी धन-वैभव और सम्पत्ति की, भौतिक-समृद्धि की अधिष्ठात्री हैं। सरस्वती का क्षेत्र—ज्ञान, बुद्धि, तर्क, चेतना और स्मरण-शक्ति है। व्यक्ति को मानसिक-सम्पुष्टता प्रदान करने की सर्वाधिक क्षमता—देवी सरस्वती में है। इसी प्रकार शारीरिक-क्लेश, भौतिक-पीड़ा, शत्रु-भय तथा अन्य उपसर्गों के निवारण की क्षमता—कालीजी में है। जिस प्रकार सृष्टि के तीन प्रमुख आयाम—उत्पत्ति, पालन और समापन क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिव द्वारा नियन्त्रित होते हैं, ठीक उसी प्रकार उन देवताओं की शक्तियाँ—ब्राह्मी, वैष्णवी और चण्डिका (काली) भी उनके साथ सृष्टि-व्यवस्था में संलग्न रहती हैं।

ब्राह्मी को सरस्वती भी कहा जाता है। यह ज्ञान, विद्या, बुद्धि और वाणी की अधिष्ठात्री हैं। वैष्णवी का दूसरा रूप लक्ष्मी है, जो जगत् के पालन-पोषण हेतु भौतिक-समृद्धि का नियन्त्रण करती हैं। कालीजी शिवजी के साथ, सृष्टि के समापन का कार्य देखती हैं।

उपर्युक्त तीनों देवताओं तथा देवियों के अनेक रूप और अवतार है। भक्त-जन किसी की भी शरण लेकर अभीष्ट-लक्ष्य तक पहुँचते रहते हैं। इस पार संसार की व्याधियाँ हैं, और उस पार देवलोक है। श्रद्धा का सेतु और भक्ति का सम्बल लेकर कोई भी व्यक्ति देव-सामीप्य प्राप्त कर सकता है। वस्तुतः वैकुण्ठ और देवलोक कहीं अन्यत्र नहीं, यहीं—इसी धरती पर, ठीक हमारे सामने, वायुमण्डल में अदृश्य रूप में समाहित हैं। यही कारण है कि सिद्ध, सन्त और ऋषि-मुनि—जहाँ भी बैठकर किसी देवता का आह्वान करते हैं, अभीष्ट देवी-देवता वहीं पर प्रादुर्भूत हो जाते हैं।

पूजा-साधना और जप-तप के अनेक विधान हैं—सरलतम भी और

जटिलतम भी, यह साधक की श्रद्धा-सामर्थ्य पर निर्भर है कि वह किस का उपाय अवलम्ब ले।

आज के भौतिक-युग में, जबकि सर्वत्र अभावों का सन्त्रास, अपराधों का कोलाहल और अस्थिरता का वातावरण व्याप्त है, वैदिक-युगीन साधना-पद्धति का निर्वाह नहीं रहा। कर्मकाण्ड उपेक्षणीय नहीं है, परन्तु जब उसके लिए अनुकूल धरातल और परिवेश सुलभ न हो, तब किसी अन्य विकल्प की खोज करना स्वाभाविक ही है। इसी खोज के रूप में, हमारे प्राचीन महर्षियों ने प्रतिपादित किया था कि कोई भी व्यक्ति मात्र श्रद्धापूर्वक, अभीष्ट देवता का नाम जप करके, स्तुति-पाठ करके ही लाभान्वित हो सकता हैं। ऐसा नाम-जप, स्तुति-पाठ और स्तवन-चिन्तन कोई भी, कहीं भी कर सकता है।

इस उपयोगी प्रकरण में विभिन्न देवी-देवताओं से सम्बन्धित कुछ अति प्रचलित, प्रभावशाली और सहज ही पठनीय स्तुतियाँ सङ्कलित की गयीं हैं। सुबह-शाम, अथवा सुविधानुसार किसी भी समय इनका जप-पाठ किया जा सकता है। श्रद्धा, शुचिता, स्थिर-चित्तता और अभीष्ट देवता के प्रति अखण्ड-विश्वास—इन स्तुतियों को अवश्य ही सफल बनायेगा।

श्री गणेश-स्तवन

भारतीय-संस्कृति में अध्यात्म का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। मानव-जीवन का कोई भी अंश अध्यात्म से अछूता नहीं है। किसी न किसी रूप में, सभ्य-समाज की दिनचर्या में अध्यात्म का अंश अवश्य ही निहित है। वैचारिक अथवा क्रियात्मक किसी भी रूप में देखें, धार्मिक-मान्यताओं की छाया सर्वत्र दीख पड़ेगी। गम्भीरतापूर्वक विचार करें, तो प्रतीत होगा कि आदि-मनीषियों ने सामाजिक-विधान और चिन्तन के मूल में ही अध्यात्म को कुछ इस तरह सम्प्रक्त कर दिया है कि व्यक्ति जाने-अनजाने, किसी न किसी धार्मिक-विश्वास, बन्धन, रूढ़ि, परम्परा, प्रेरणा अथवा कल्पना से अवश्य ही अनुप्राणित है। और, यह स्थिति केवल भारतीय-समाज अथवा आर्य-संस्कृति की ही नहीं, अपितु प्रकारान्तर से विश्व की समस्त सभ्य (कहीं-कहीं तो वनवासी असभ्य-जातियों में भी) जातियों की है। किसी न किसी रूप में एक अज्ञात, अलौकिक सत्ता (ईश्व-प्रकृति) का अस्तित्व सब स्वीकार करते हैं, और किसी न किसी प्रकार उसकी कृपा—अनुकूलता पाने की लालसा भी रखते हैं।

भारतीय-संस्कृति में गणेशजी एकमात्र ऐसे देवता हैं, जो सर्वप्रथम पूजे जाते हैं। उन्हें गणपति— गणनायक की पदवी प्राप्त है। अध्यात्म के विभिन्न क्षेत्रों में, हिन्दू-धर्म की अनेक शाखाओं में—गणेशजी पूज्य और अतिशय प्रभाव-सम्पन्न देवता स्वीकृत हैं। उन्हें विद्या-बुद्धि का प्रदाता, विघ्न-विनाशक, मङ्गलकारी, रक्षा-कारक और सिद्धिदायक माना जाता है। किसी भी कार्य के प्रारम्भ में सर्वप्रथम गणेशजी की पूजा की जाती है। ताकि आगे चलकर, यदि कोई विघ्न-व्यवधान आये, तो गणेशजी के प्रभाव से उसकी प्रतिक्रिया समाप्त—कुण्ठित की जा सके। विघ्न-निवारण के साथ ही, गणेशजी—विद्या, बुद्धि, वैभव, समृद्धि, शक्ति और सम्मान भी प्रदान करते हैं। और, इतनी क्षमता उनमें क्यों न हो? आखिर तो वे जगन्नियन्ता भगवान शिव और सृष्टि-माता पार्वतीजी के प्रिय-पुत्र हैं न ? उनकी शक्ति-सामर्थ्य पर प्रश्न-चिह्न कौन लगा सकता है ?

विद्यार्थी, शिल्पकार, व्यवसायी, गृहस्थ, पुजारी, तान्त्रिक और साधु-सन्त सभी वर्गों में गणेशजी समादृत हैं। सब अपने-अपने कार्य-साधना के प्रारम्भ में उनकी स्तुति करते हैं। यद्यपि ग्रन्थों में साधना-विधान पर मतैक्य नहीं है, तथापि यह अनुभूत सत्य है कि यदि मात्र श्रद्धा के आधार पर कोई साधक सच्चे मन से, पूर्ण समर्पित होकर गणेशजी की स्तुति करे, तो उसे उनके कृपा-प्रभाव की अनुभूति अवश्य होती है।

यों गणेशजी की पूजा में—लाल वस्त्र, लाल चन्दन, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य (बेसन के लड्डू) को अनिवार्य माना गया है, और मन्त्र-जप के लिए—मूंगा, लाल चन्दन या रुद्राक्ष की माला को श्रेष्ठ कहा गया है। फिर भी, असमर्थता वश, यदि कोई साधक—ये उपादान नहीं जुटा पाता, तो वह गणेशजी की प्रतिमा अथवा चित्र को केवल सिन्दूर और धूप-दीप देकर ही, कृत-कार्य हो सकता है। किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि वह परम तन्मय-भाव से, अखण्ड श्रद्धा के साथ स्तुति अथवा मन्त्र-जप की साधना करे। यह सर्वविदित तथ्य है कि यथा-सामर्थ्य, देव-पूजा में विधि-विधान के अनुसार ही समस्त पूजन-सामग्री प्रस्तुत की जानी चाहिए, किन्तु, यदि कोई व्यवस्था नहीं हो पा रही हो, तो मात्र श्रद्धा-विनय के सहारे भी साधक स्तुति-मन्त्र का जप करके लाभान्वित हो सकता है।

सारांश यह है विधि-विधान का अपना महत्त्व अवश्य है, किन्तु प्रभु के प्रति अडिग श्रद्धा और तन्मयतापूर्ण आत्म-समर्पण का प्रभाव

उससे भी अधिक होता है। अतः गणेशजी की उपासना में (किसी भी देवता में) यथा-सामर्थ्य विधि-विहित सामग्री का प्रयोग तो करना ही चाहिए, उससे भी कहीं अधिक, बल्कि अपनी सम्पूर्ण क्षमता से—श्रद्धा-विनयपूर्वक उनका स्तवन करना चाहिए।

गणेशजी की कृपा पाने के लिए निम्नलिखित स्तुतियों का नियमित रूप से पाठ करना परम लाभकारी सिद्ध होता है। समर्थ और साधन-सम्पन्न व्यक्ति मन्त्र साधना भी कर सकते हैं। अतः यहाँ स्तुतियाँ और मन्त्र दोनों ही प्रस्तुत हैं।

गणेश-स्तुति :

चतुर्भुजं रक्ततनुं त्रिनेत्रम्, पाशांकुशौ मोदकपात्र दन्तौ।
करैर्दधानं सरसीरुहस्थं, गणाधिनाथं शशिचूडमीडे ॥ 1 ॥

गजाननं भूतगणादि सेवितं, कपित्थ जम्बूफल चारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वर पादपङ्कजम् ॥ 2 ॥
अलिमण्डल मण्डित गण्ड थलं, तिलकीकृत कोमलचन्द्रकलम्।

कर घात विदारित वैरिबलं, प्रणमामि गणाधिपतिं जटिलम् ॥ 3 ॥
खर्वं स्थुलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरम्,
प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्ध मधुपव्यालोल गण्डस्थलम्।
दन्ताघात विदारितारि रुधिरैः सिंदूरशोभाकरं,
वन्दे शैलसुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम् ॥ 4 ॥
नमो नमः सुरवर पूजितांघ्रये,
नमो नमः निरुपम मङ्गलात्मनें।
नमो नमः विपुल पदैक सिद्धये,
नमो नमः करिकलभाननाय ते ॥ 5 ॥
शुक्लाम्बरं धरं देवं, शशिवर्णं चतुर्भुजम्,
प्रसन्न वदनं ध्यायेत्, सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ 6 ॥
गणपतिर्विघ्नराजो लम्बतुण्डो गजाननः।
मातुरश्व हेरम्ब एकदन्तो गणाधिपः ॥ 7 ॥
वक्रतुण्ड महाकाय कोटिसूर्य समप्रभ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥
सर्व विघ्न विनाशाय सर्व कल्याण हेतवे।
पार्वती प्रियपुत्राय गणेशाय नमो नमः ॥ 8 ॥

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथ बन्धुं,
सिंदूरपूर्ण परिशोभित गण्ड युग्मम् ।
उद्दण्डविघ्नपरिखण्डन चण्ड दण्ड–
माखण्डलादि सुरनायक वृन्द वन्द्यम् ॥ 9 ॥
प्रातर्नमामि चतुरानन वन्द्यमानं,
इच्छानुकूलमखिलं च वरं ददानम् ।
तं तुन्दिलं द्विरसनाधिपयज्ञसूत्रं,
पुत्रं विलास चतुरं शिवयोः शिवाय ॥10॥

प्रातर्भजाम्यभयदं खलु भक्त शोक,
दावानलं गणविभुं वरकुञ्जरास्यम् ।
अज्ञान कानन विनाशन हव्यवाह–
मुत्साहवर्द्धनमहं सुतमीश्वरस्य ॥11॥

बारह नामों से श्री गणपति-स्तुति :

प्रणम्य शिरसा देवं, गौरीपुत्र विनायकम् ।
भक्तावासं स्मरेन्नित्यं आयुः कामार्थ सिद्धये ॥
प्रथमं वक्रतुण्डं च एकदन्तं द्वितीयकम् ।
तृतीयं कृष्णपिङ्गाक्षं गजवक्त्रं चतुर्थकम् ॥
लम्बोदरं पञ्चमं च षष्ठं विकटमेव च ।
सप्तमं विघ्नराजेन्द्रं धूम्रवर्णं तथाष्टकम् ॥
नवमं भालचन्द्रं च दशमं तु विनायकं ।
एकादशं गणपतिं, द्वादशं तु गजाननम् ॥
द्वादशैतानि नामानि त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः ।
न च विघ्नभयं तस्य सर्वसिद्धिकरं प्रभो ॥
चत्वार्यस्य च रूपाणि चतुर्षु च युगेषु च ।
कृते दशभुजो नाम्ना विनायक इति श्रुतः ॥
त्रेतायुगे शुक्लवर्णः षड्भुजोऽसौ मयूराट् ।
सिन्धु हत्वा पालयत्सोऽवतीर्य स्वालये प्रिये ॥
स एवायं रक्तवर्णश्चतुर्बाहुर्विराजितः ।
अवतीर्णो गृहे नौहि सिंदूरं निहनिष्यति ॥
आरुह्य मूषकं देवो भूभारं च हरिष्यति ।
नाम्ना गजानन इति त्रैलोक्ये ख्यातिमेष्यति ॥

अयं कलियुगे देवि धूम्रकेतुरिति प्रथाम् ।
चतुर्बाहुश्चारुनेत्रौ या यस्ते रुचिरां भुवि ।।
उद्यत् दिनेश्वर रुचिं निजहस्त पद्मैः,
पाशांकुश भयवरान्दधतं राजास्यम् ।
रक्ताम्बरं सकल दुःखहं गणेशं,
ध्यायेत् प्रसन्नमखिला भरणाभिरामम् ।।
गदा बीज पूरे धनुः शूलचक्रे,
सरोजोत्पले पाश धान्याग्र दन्तान् ।
करैः संदधानं स्व शुण्डाग्रराजत्,
मणिकुम्भ मूषाधिरूढं स्वपत्न्या ।।
सरोजन्मना भूषणतां भरेणो—
ज्ज्वलत् हस्ततन्व्या समालिङ्गिताङ्गम् ।
करीन्द्राननं चन्द्रचूडं त्रिनेत्रं,
जगन्मोहनं रक्तकान्ति भजेहम् ।।

आवाहये तं गणराजदेवं रक्तोपलाभासमशेष वन्द्यम् ।
विघ्नान्तकं विघ्नहरं गणेशं भजामि रौद्रं सहितं च सिद्धया ।।

यं ब्रह्म वेदान्तविदो वदन्ति परं प्रधानं पुरुषं तथान्यै ।
विश्वोद्गतेः कारणमीश्वरं वा तस्मै नमो विघ्न विनाशकाय ।।

विघ्नेश वीर्याणि विचित्रकाणि वन्दीजनैर्मागधकैः स्मृतानि ।
श्रुत्वा समुत्तिष्ठ गजाननं त्वं ब्राह्मे जगत् मङ्गलकं कुरुष्व ।।
गणेश हेरम्ब गजाननेति महोदर स्वानुभव प्रकाशिन् ।
वरिष्ठ सिद्धिप्रिय बुद्धिनाथ वदन्त एवंत्यजत प्रभीतीः ।।
अनेक विघ्नान्तक वक्रतुण्ड स्वसंज्ञवासिश्च चतुर्भुजेति ।
कवीश देवान्तक नाशकारिन् वदन्त एवं त्यजत प्रभीतीः ।।
अनन्त चिद्रूपमयं गणेशं ह्यभेदभेदादि विहीन माद्यम् ।
हृदि प्रकास्यधरं स्वधीस्थं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ।।
विश्वादिभूतं हृदि योगिनां वै प्रत्यक्षरूपेण विभान्तमेकम् ।
सदा निरालम्ब समाधिगम्यं तमेकदन्त शरणं व्रजामः ।।
यदीयवीर्येण समर्थभूता माया तया संरचितं च विश्वम् ।
नागात्मकं ह्यात्मतया प्रतीतं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ।।
सर्वान्तरे यंस्थितमेक गूढं यदाज्ञया सर्वमिदं विभाति ।
अनन्तरूपं हृदि बोधकं वै तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ।।

यं योगिनो योगबलेन साध्यं कुर्वन्ति तं कः स्तवनेन नौति ।
अत प्रणामेन सुसिद्धिदोऽस्तु तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ।।
देवेन्द्र मौलि मन्दार मकरन्द करुणारुणाः,
विघ्नान् हरातु हेरम्ब चरणाम्बुज रेणवः ।
एकदन्तं महाकाय लम्बोदर गजाननम्,
विघ्ननाशकरं देवं हेरम्ब प्रणमाम्यहम् ।।
यदक्षरं पदं भ्रष्टं भामाहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ।।

भगवान शिव

समस्त देवताओं में, सबसे जल्दी प्रसन्न होने वाले देवता शिवजी हैं। इसीलिए उनका एक नाम 'आशुतोष' भी है। अन्य देवताओं के चरित्र में कहीं न कहीं वैभव-विलास, सत्ता-लोभ और कूटनीति की झलक मिलती है, किन्तु शिवजी—त्याग, सादगी, निस्पृहता सरलता के साक्षात् स्वरूप हैं। अन्य देवताओं ने जिसे तुच्छ अथवा असुविधाजनक मानकर अस्वीकार कर दिया, शिवजी ने उसी को परम प्रसन्न भाव से अपना लिया। अन्य देवता रम्य-पुरियों में, वैभव-विलास से युक्त भवनों में निवास करते हैं, रक्ताम्बर धारण करते हैं। उनके आभूषण, पात्र, गृह-सज्जा, दास-दासी सब सुसज्जित, वैभव-प्रदर्शक और भौतिक सुख-सुविधा के पूरक हैं। परन्तु शिवजी की इन बातों की कोई रुचि नहीं। वह भोलानाथ हैं, अबढर दानी है, अवधूत हैं, परम विरागी, महान योगी और ईर्ष्या-द्वेष, राग-शोक से सर्वथा असम्प्रक्त रहते हुए, अपने भक्तों का कल्याण करते रहते हैं। उन जैसा महादानी और कृपालु देवता अन्य कौन है ? उदारता की सजीव प्रतिमा शिवजी त्रिकाल में, त्रिभुवन में, देवाधिदेव, सृष्टि के अन्तिम आयाम (संहार) के नियामक और अखिल विश्व-ब्रह्माण्ड के प्रशासक हैं।

शिवजी के मन्दिरों की संख्या विपुल है, उनकी पूर्ण गणना सम्भव नहीं। विश्व के अनेक देशों में शिव-भक्तों की कथाएं प्रचलित हैं। शिव-लिङ्गों के रूपाकार, इनकी सन्दर्भ कथाएं, विभिन्न प्रतिमाओं का प्रभाव और प्राचीनता—यह सब तथ्य के प्रमाण हैं कि मानव-सभ्यता के आदि-काल से ही शिवजी पूज्य रहे हैं। श्रद्धा-सामर्थ्य के अनुसार, बिना किसी नियम के भी, मात्र स्तुति और मन्त्र-जप द्वारा उनका ध्यान-स्मरण करके लोग लाभान्वित होते रहे हैं।

भगवान शिव-स्तुति :

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदाबसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानी सहितं नमामि ॥ 1 ॥

शंखेन्द्वाभमतीव सुन्दरतनुं शार्दूलं चर्माम्बरम् ।
काल व्याल कराल भूषणधरं गङ्गा शशाङ्कप्रियम् ॥
काशीशं कलिकल्मषौघ शमनं कल्याण कल्पद्रुमम् ।
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं श्रीशङ्करकामहम् ॥ 2 ॥

सौराष्ट्रे सोमनाथं च, श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालं ओंकारममलेश्वरम् ॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
वाराणास्यां च विश्वेश त्र्यम्बकं गौतमीतटे ॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकवने ।
सेतुबन्धे च रामेशं, घुष्मेश शिवालये ॥ 3 ॥

प्रातः स्मरामि भवभीति हरं सुरेशं,
गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम् ।
खट्वाङ्गः शूल वरदा भय हस्तमीशं,
संसाररोगहर मौषधमद्वितीयम् ॥
प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्धदेहं,
सर्गस्थिति प्रलय कारणमादि देवम् ।
विश्वेश्वरं विजित विश्व मनोऽभिरामं,
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥
प्रातर्भजामि शिवमेक मनन्तमाद्यं,
वेदान्त वेद्यमनघं पुरुषं महान्तम् ।
नामादि भेदरहितं षडभावशून्यं,
संसार रोगहर मौषधमद्वितीयम् ॥ 4 ॥

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं ।
रत्नाकल्पोज्ज्वलांगं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ॥
पद्मासीनं समन्तत् स्तुतममरगणैः व्याघ्रकृत्तिं वसानं ।
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेंत्रम् ॥ 5 ॥

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ 6 ॥

नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्ते दिव्य चक्षुषे ।
नमः पिनाक हस्ताय वज्रहस्ताय वै नमः ॥ 7 ॥
नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुमीश्वरम् ।
पुन्सासपूर्ण कामानां कामपूरामराङ्घ्रिपम ॥ 8 ॥
असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥ 9 ॥
वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं,
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम् ।
वन्दे सूर्यशशाङ्क वह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं,
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥10॥
शान्तं पद्मासनस्थं शशिधरं मुकुटं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रं ।
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षिणांके वहन्तम् ॥
नागं पाशं च घण्टां डमरुक सहितं साकुशं वामभागे ।
नानालङ्कारयुक्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि ॥11॥
त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥12॥
निरावलम्बस्य भवावलम्बं, विपाटिता शेज विपत्कदम्बम् ।
मदीय पापा चलपातशम्बं, प्रवर्ततां वाचि सदैव बम्-बम् ॥13॥
तव तत्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर ।
यादृशस्त्वं महादेव तादृशाय नमो नमः ॥14॥
रुद्रं चतुर्भुजं देवं त्रिनेत्रं वरदाभयम्,
दधानमूर्ध्वं हस्ताभ्यां शूलं डमरुमेव च ।
अङ्क संस्थामुमा पद्मे दधानं च कर द्वये,
आद्ये करद्वये कुम्भं मातुलिंगं विभ्रताम् ॥15॥
उद्यद्भानुस्फुरित तडिदाकार मूर्भाम्बिकेशम्,
पाशाभीतिं वरद परशुं सन्दनं कराब्जैः ।
दिव्याकल्पैर्नवमणि मयैः शोभितं विश्वमूलम्,
सौम्याग्नेयं वपुरवतुनश्चचूडं त्रिनेत्रम् ॥16॥

वेदसार-स्तवन :

भारतीय धर्म, दर्शन, अध्यात्म और संस्कृति के मेरु-स्तम्भ आदि

गुरु शङ्कराचार्यजी ने शिवजी की स्तुति में समस्त वेदों के सार-स्वरूप कुछ छन्द लिखे थे। उन्हें 'वेदसार-स्तवन' कहा जाता है। इस स्तुति का नियमित पाठ साधक को शिवजी की कृपा का अधिकारी वनने में सहायक होता है।

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं,
गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम्।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गङ्गवारिं,
महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम् ॥ 1 ॥
महेशं सुरेशं सुरारार्तिनाशं,
विभुं विश्वनाथं विभूत्यङ्गभूषम्।
विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्निनत्रिनेत्रं,
सदानन्दमीडे प्रभूं पञ्चवक्त्रम् ॥ 2 ॥
गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं,
गवेन्द्राधिरूढं गणातीतरूपम्।
भवं भास्वरं भस्मना भूषितांगं,
भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम् ॥ 3 ॥
शिवाकान्त शम्भो शशांकार्घमौले,
महेशान शूलिन् जटाजूटधारिन्।
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूप,
प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप ॥ 4 ॥
परमात्मनमेकं जगद्बीजमाद्यं,
निरीहं निराकारमोंकारवेद्यम्।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वं,
तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम् ॥ 5 ॥
न भूमिर्न चापो न वह्निर्न वायु-
र्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा।
न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेषो,
न यस्यास्ति मूर्तिस्त्रिमूर्ति तमीडे ॥ 6 ॥
अजं शाश्वतं कारणं कारणानां,
शिवं केवलं भासकं भासकानाम्।
तुरीयं तमःपारमाद्यन्तहीनं,
प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम् ॥ 7 ॥

नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्त्ते,
नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्त्ते ।
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्यं,
नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य ।। 8 ।।
प्रभो शूलपाणें विभो विश्वनाथ,
महादेव शम्भो महेश त्रिनेंत्र ।
शिवाकान्त शान्त स्मरारे पुरारे,
त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्य: ।। 9 ।।
शम्भो महेश करुणामय शूलपाणें,
गौरीपते पशुपते पशुपाशनाशिन ।
काशीपते करुणया जगदेतदेकस्त्वं,
हंसि पासि विदधासि महेश्वरोऽसि ।।10।।
त्वत्तो जगद्भवति देव भव स्मरारे,
त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड विश्वनाथ ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतशीश,
लिङ्गात्मकं हर चराचरविश्वरूपम् ।।11।।

शिवाष्टक स्तोत्र :

जिस प्रकार 'रामचरित-मानस' में गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा लिखित—'रुद्राष्टक' शिव-स्तुति के क्षेत्र में विख्यात है, उसी प्रकार आदि-शङ्कराचार्यजी ने भी एक 'शिवाष्टक' की रचना की थी। भगवान शिव की भक्ति से ओत-प्रोत वह सरस सङ्गीतमय स्तोत्र इस प्रकार है—

तस्मै नम: परमकारणकारणाय,
दीप्तोज्ज्वलज्ज्वलित पिङ्गललोचनाय ।
नागेन्द्रहारकृतकुण्डलभूषणाय,
ब्रह्मेन्द्रविष्णुवरदाय नम: शिवाय ।। 1 ।।
श्रीमत्प्रसन्नशशिपन्नगभूषणाय,
शैलेन्द्रजावदनचुम्बितलोचनाय ।
कैलाशमन्दरमहेन्द्रनिकेतनाय,
लोकत्रयार्तिहरणाय नम: शिवाय ।। 2 ।।
पद्मावदातमणिकुण्डगोवृषाय,
कृष्णागुरु प्रचुर चन्दन चर्चिताय ।
भस्मानुषक्तविकचोत्पलमल्लिकाय
नीलाब्जकण्ठसदृशाय नम: शिवाय ।। 3 ।।

लम्बत्सपिङ्गलजटामुकुटोत्कटाय,
दंष्ट्राकरालविकटोत्कटभैरवाय ।
व्याघ्राजिनाम्बरधराय मनोहराय,
त्रैलोक्यनाथनमिताय नमः शिवाय ॥ 4 ॥
दक्षप्रजापतिमहामखनाशाय,
क्षिप्रं महात्रिपुरदानवघातनाय ।
ब्रह्मोर्जितोर्ध्वगकरोटिनिकृन्तनाय,
योगाय योगनमिताय नमः शिवाय ॥ 5 ॥
संसारसृष्टिघटनापरिवर्तनाय,
रक्षःपिशाचगणसिद्धसमाकुलाय ।
सिद्धोरगग्रहगणेन्द्रनिषेविताय,
शार्जूलचर्मवसनाम नमः शिवाय ॥ 6 ॥
भस्मांगरागकृतरूपमनोहराय,
सौम्यावदातवनमाश्रितमाश्रिताय ।
गौरीकटाक्षनयनार्द्धनिरीक्षणाय,
गौक्षीरधारधवलाय नमः शिवाय ॥ 7 ॥
आदित्यसोमवरुणानिलसेविताय,
यज्ञाग्निहोत्रवरधूमनिकेतनाय ।
ऋक्सामवेदमुनिभिः स्तुतिसंयुताय,
गोपाय गोपनमिताय नमः शिवाय ॥ 8 ॥

पञ्चाक्षर स्तुति :

शिवजी की पूजा का सर्वश्रेष्ठ और बहु-प्रसिद्ध मन्त्र है—'नमः शिवाय'। इस मन्त्र में पाँच अक्षर हैं। प्रत्येक अक्षर को लेकर उस पर एक स्वतन्त्र श्लोक (स्तुति) की रचना की गयी है। आचार्य शङ्कर-कृत यह पाँच अक्षर स्तोत्र भी शिव-भक्तों में बहुत प्रचलित है। वे परम श्रद्धा के साथ इसका पाठ करते हैं—

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय,
भस्मांगरागाय महेश्वराय ।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय,
तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय ॥ 1 ॥

मन्दाकिनी सलिलचन्दनचर्चिताय,
नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय ।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय,
तस्मै 'म:' काराय नमः शिवाय ॥2॥
शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द-
सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय ।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय,
तस्मै 'श' काराय नमः शिवाय ॥ 3 ॥
वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्य-
मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय ।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय.
तस्मै 'वा' काराय नमः शिवाय ॥ 4 ॥
यक्षस्वरूपाय जटाधराय,
पिनाकहस्ताय सनातनाय ।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय,
तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय ॥ 5 ॥

श्री तुलसीदासजी कृत रुद्राष्टक :

नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं ।
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं,
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ॥ 1 ॥
निराकारमोंकारमूलं तुरीयं,
गिरा ज्ञान गोतीतमीशं गिरीशं ।
करालं महाकाल कालं कृपालं,
गुणागार संसारपारं नतोऽहं ॥ 2 ॥
तुषाराद्रि शंकाश गौरं गंभीरम्,
मनोभूत कोटिप्रभा श्री शरीरम् ।
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा,
लसद्भालबालेन्दु कण्ठे भुजंगा ॥ 3 ॥
चलत्कुण्डलं भ्रू सुनेत्रं विशालं,
प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालं ।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं,
प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि ॥ 4 ॥

प्रचण्डं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं,
अखण्डं अजं भानुकोटिप्रकाशं ।
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं,
भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं ।। 5 ।।
कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी,
सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी ।
चिदानन्द सन्दोह मोहापहारी,
प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ।। 6 ।।
न यावद् उमानाथ पादारविन्दं,
भजन्तीह लोके परे वा नराणां ।
प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं ।। 7 ।।
न जानामि योगं जपं नैव पूजां,
नतोऽहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यं ।
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं,
प्रभो पाहि आपन्नमामीश शम्भो ।। 8 ।।

इस स्तुति की फलदायिनी के सम्बन्ध में, तुलसीदासजी ने कथा के उसी सन्दर्भ में लिखा है—

रुद्राष्टक मिदं प्रोक्तं, विप्रेण हर तोषये ।
ये पठन्ति नरा भक्त्या, तेषां शम्भुः प्रसीदति ।।

(जो मनुष्य इन श्लोकों का पाठ करते हैं, उन पर शिवजी प्रसन्न हो जाते हैं, उन्हें शिवजी की कृपा प्राप्त हो जाती है ।)

श्री विश्वनाथ अष्टक :

भगवान शिव के बारह ज्योतिर्लिङ्गों में से एक वाराणसी-स्थित श्री विश्वनाथ जी की स्तुति में एक अष्टक (आठ श्लोकों की प्रार्थना) उपलब्ध होता है । मान्यता है कि इसकी रचना महर्षि वेदव्यासजी ने की थी । साधकजन आज भी इस स्तोत्र का बड़ी श्रद्धा के साथ पाठ करते रहते हैं—

गंगातरंगरमणीयजटाकलापं,
गौरीनिरन्तरविभूषितवामभागम् ।
नारायणप्रियमनंगमदापहारम्,
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ।। 1 ।।

वाचामगोचरमनेकगुणस्वरूपं,
वागीशविष्णुसुरसेवितपादपीठम् ।
वामेन विग्रहवरेण कलत्रवन्तम्,
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ 2 ॥
भूताधिपं भुजगभूषणभूषितांगं,
व्याघ्राजिनाम्बरधरं जटिलं त्रिनेत्रम् ।
पाशांकुशाभयवरप्रदशूलपाणिम्,
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ 3 ॥
शीतांशुशोभितकिरीटविराजमानं,
भालेक्षणानलविशोषितपञ्चवाणम् ।
नागाधिपारचितभासुरकर्णपूरम्,
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ 4 ॥
पञ्चाननं दुरितमत्तमतंगजानां,
नागान्तकं दनुजपुङ्गवपन्नगानाम् ।
दावानलं मरणशोकजराटवीनाम्,
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ 5 ॥
तेजोमयं सगुणनिर्गुणमद्वितीय-
मानन्दकन्दमपराजितमप्रमेयम् ।
नागात्मकं सकलनिष्कलमात्मरूपम्,
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ 6 ॥
रागादिदोषरहितं स्वजनानुरागं,
वैराग्यशान्तिनिलयं गिरिजासहायम् ।
माधुर्यधैर्यसुभगं गरलाभिरामम्,
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ 7 ॥
आशां विहाय परिहृत्य परस्य निन्दां,
पापे रतिं च सुनिवार्य मनः समाधौ ।
आदाय हृत्कमलमध्यगतं परेशम्,
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ 8 ॥

इस स्तुति के पाठ प्रभाव का वर्णन करते हुए श्री व्यासजी ने कहा है-

वाराणसीपुरपतेः स्तवनं शिवस्य,
व्याख्यातमष्टकमिदं पठते मनुष्यः ।
विद्यां श्रियं विपुलसौख्यमनन्तकीर्तिं,
सम्प्राप्य देहविलये लभते च मोक्षम् ॥ 9 ॥

विश्वनाथाष्टकमिदं यः पठेच्छिवसन्निधौ,
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ।।10।।

बारह ज्योतिर्लिंगों की स्तुति

वैसे तो शिवजी की प्रत्येक प्रतिमा पूज्य हैं, और श्रद्धापूर्वक उसका स्तवन-पूजन करने से शिव-कृपा की अनुभूति भी होती है, किन्तु समस्त भारत की बारह प्रतिमाओं को, जो स्वयम्भू मानी जाती हैं (मानव-कृत नहीं हैं)—'ज्योतिर्लिङ्ग' के रूप में विशेष महत्त्व प्राप्त है। आज भी देश विभिन्न क्षेत्रों में ये अलौकिक शिवलिंग (शिवजी के श्री विग्रह) स्थापित हैं, जहाँ प्रतिदिन शतशः भक्तजन दर्शनार्थ पहुँचते रहते हैं। शिव-पुराण के अनुसार इन द्वादश ज्योतिर्लिंगों की अवस्थिति इस प्रकार है—

सौराष्ट्रे सोमनाथं च, श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालं ओंकारममलेश्वरम् ।।

केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
वाराणास्यां च विश्वेश त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।।

वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकवनें ।
सेतुबन्धे च रामेशं घुष्मेश शिवालये ।।

ग्रन्थ-भेद से कहीं-कहीं इस क्रम में अन्तर भी है, परन्तु नामावली एक ही है। हाँ, कुछ प्रतिमाओं की अवस्थिति में भी मतभेद है। एक ही नाम की प्रतिमा होने पर भी भिन्न-भिन्न स्थान बताये गये हैं। किन्तु बहुमत से, उपर्युक्त श्लोकों में वर्णित स्थान ही स्वीकृत हैं। अस्तु, कल्पना-भेद से सभी स्थानों पर प्रतिमा की अवस्थिति सम्भव और शुद्ध हो सकती है। सामान्य भक्तों को आज इतनी सुविधाएं नहीं हैं कि वे समस्त स्थानों पर जाकर उन प्रतिमाओं का दर्शन-पूजन कर सकें। ऐसी स्थिति में, श्रद्धा-विश्वास पूर्वक यदि घर बैठे ही, उन समस्त प्रतिमाओं का स्तवन किया जाय, तो निश्चय ही साधक को शान्ति और शिवजी की कृपा का अनुभव होगा। प्रतिमा का स्थाना कहीं भी हो, नाम क्रम कुछ भी हो, परन्तु द्वादश-ज्योतिर्लिंगों की अवतारणा (उत्पत्ति) और महत्त्व असंदिग्ध है।

सोमनाथ—
सौराष्ट्रदेशे विशदेऽतिरम्ये,
ज्योतिर्मयं चन्द्रकलावतसम् ।
भक्तिप्रदानाय कृपावतीर्णं,
तं सोमनाथं शरणं प्रपद्ये ॥

मल्लिकार्जुन—
श्रीशैलशृंगे विबुधातिसंगे,
तुलाद्रितुङ्गे, मुदा बसन्तम् ।
तमर्जुनं मल्लिकपूर्वमेकं,
नमामि संसार समुद्र सेतुम् ॥

महाकालेश्वर—
अवन्तिकायां विहितावतारम्,
मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम् ।
अकालमृत्यो परिरक्षणार्थं,
वन्दे महाकाल महासुरेशम् ॥

ओंकारेश्वर—
कावेरिका नर्मदयो पवित्रे,
समागमे सज्जनतारणाय ।
सदैव मान्धातृपुरे वसन्तं,
ओंकारमीशं शिवमेकमीडे ॥

वैद्यनाथ—
पूर्वोत्तरे प्रज्ज्वलिका निधाने,
सदाबसन्तं गिरिजा समेतम् ।
सुरासुराराधित पाद पद्मं,
श्री वैद्यनाथं तमहं नमामि ॥

नागेश्वर—
याम्ये सदंगे नगरेऽति रम्ये,
विभूषितांगं विविधैश्च भोगैः ।
सद्भक्ति मुक्ति प्रदमीश मेकं,
श्री नागनाथं शरणं प्रपद्ये ॥

केदारनाथ—
महाद्रि पार्श्वे च तटे रमन्तं,
सम्पूज्यमानं सतत मुनीन्द्रैः ।
सुरासुरैर्यक्ष महोरगाढ्यैः,
केदारमीशं शिवमेकमीडे ॥

त्र्यम्बकेश्वर—

सह्याद्रि शीर्षे विमले वसन्तं,
गोदावरी तीर पवित्र देशे।
यद्दर्शनात्पातकमाशु नाशं,
प्रयाति तं त्र्यम्बकमीशमीडे ॥

रामेश्वर—

सुताम्रपर्णी जलराशि योगे,
निबध्य सेतुं विशिखैरसंख्यैः।
श्री रामचन्द्रे समर्पितं तं,
रामेश्वरायं नियतं नमामि ॥

भीमशङ्कर—

यं डाकिनी शाकिनिका समाजे,
निषेव्यमाणं पिशिता शनैः च।
सदैव भीमादि पद प्रसिद्धं,
त शंकरं भक्तहित नमामि ॥

विश्वनाथ—

सानन्द मानन्द वनें बसन्तं,
आनन्द कन्दं हत पाप वृन्दम्।
वाराणसीनाथ मनाथ नाथं,
श्री विश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥

घुश्मेश्वर—

इलापुरे रम्य विशाल केऽस्मिन्,
समुल्लसन्तं च जगत् वरेण्यम्।
वन्दे महोदर तर स्वभावं,
घुश्मेश्वराख्यं शरणं प्रपद्ये ॥

भगवान विष्णु

भारतीय अध्यात्म के सर्वाधिक प्रसिद्ध त्रिदेवों में भगवान विष्णु भी एक हैं। जहाँ सृष्टि की उत्पत्ति का कार्य ब्रह्मा द्वारा संचालित होता है, और समापन (संहार) व्यवस्था शिवजी देखते हैं, वहाँ जन्म के पश्चात् मृत्यु तक की जीवनावधि में प्राणी के पालन-पोषण का प्रबन्ध भगवान विष्णु देखते हैं।

अखिल सृष्टि-पालक और लोक-नियन्ता होने के नाते कभी-कभी, समस्या-विशेष के निवारण हेतु विष्णु भगवान कोई अन्य रूप भी धारण कर लेते हैं। ऐसे रूपों को 'अवतार' की संज्ञा दी गयी है। मुख्य रूप से विष्णु के चौबीस अवतार प्रसिद्ध हैं। उन्हीं के अन्तर्गत 'दशावतार' प्रसङ्ग भी आता है।

लक्ष्मी-पति विष्णु का निवास वैकुण्ठ-लोक है, और काल-क्रम से वे क्षीरसागर में, शेषशैय्या पर भी शयन करते हैं। राम, कृष्ण, नृसिंह, दत्तात्रेय, वामन, कूर्म, कच्छप, और मत्स्य अवतारों की कथाएं लोक-विख्यात हैं।

भगवान विष्णु के अनेक नाम हैं, 'विष्णु-सहस्रनाम' नामक एक स्तोत उनके एक हजार नामों की तालिका है। किसी भी नाम से, उनके किसी भी रूप-अवतार की स्तुति-पूजा की जाय, अवश्य ही प्रभाव की अनुभूति होती है। देवाराधना में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य है--भक्त की आस्था। जो जितना अधिक तन्मय, आत्म-समर्पित और आस्थावान होकर उपासना करता है, उसे उतने ही कम समय में प्रभु-कृपा की अनुभूति हो जाती है।

वैसे, भगवान विष्णु का स्तवन किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु किया जा सकता है, क्योंकि वे पूर्णतया सर्व-समर्थ और जगत् के आदि कारण हैं, तथापि आर्थिक-सम्पन्नता, धर्माचरण, शान्ति और सुखी पारिवारिक-जीवन के लिए भक्तजन प्रायः उनका आह्वान करते हैं। यों, मोक्षकामी-जन भी अपनी श्रद्धा-कामनानुसार उनकी उपासना करते रहते हैं। विष्णु-भक्त को विद्वत्ता और सङ्कट-मुक्ति सहज-सुलभ रहती है।

विष्णु-स्तुति :

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं,
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं,
वन्दे विष्णुम् भवभयहरणं सर्वलोकैकनाथम् ॥ 1 ॥

ससंख चक्रम् सकिरीट कुण्डलं,
सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम्।
सहारवक्षःस्थल कौस्तुभश्रियं,
नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥ 2 ॥

नवाम्भोज नेत्रं रमाकेलिपात्रं,
चतुर्बाहु चामीकरं चारु गात्रम् ।
जगत्माण हेतुं रिपौधूमकेतुम्,
सदा विष्णु नारायणं स्तौमिदेवम् ।। 3 ।।

प्रातः स्मरामि भवभीति महार्तिशान्त्यै,
नारायणं गरुड़वाहन मब्जनाभम् ।
ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुम्,
चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम् ।। 4 ।।

प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना,
पादारविन्द युगलं परमस्य पुन्स ।
नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य,
पारायणप्रवण विप्र परायणस्य ।। 5 ।।

प्रातर्भजामि भजतामभयंकरं च,
प्राकसर्वजन्मकृत पापभयापहत्यै ।
यो ग्राहवक्त्र पतिताङ्घ्रि गजेन्द्र घोर–
शोकप्रणाशन करो धतशंखचक्रः ।। 6 ।।

परं परस्मात् प्रकृतेरनादि–
मेकं निविष्टं बहुधा गुहायाम् ।
सर्वालयं सर्व वरावरस्यं,
नमामि विष्णुम् जगदेक नाथम् ।। 7 ।।

मूकं करोति वाचालं पंगु लंघयते गिरिम्,
यत्कृपातमहं वन्दे परमान्द माधवम् ।। 8 ।।

ध्यायेत् सत्त्वं गुणातीतं, गुणत्रय समन्वितम् ।
लोकनाथं त्रिलोकेशं, कौस्तुभाभरणं हरिम् ।
इन्दीवर दल श्यामं, शंखचक्र गदाधरम् ।
नारायणं चतुर्बाहुं श्रीवत्सपद भूषितम् ।। 9 ।।

श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिः,
धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः ।
पतिर्गतिश्चान्धक वृष्णि सात्वतां,
प्रसीदतां मे भगवान् सतां पतिः ।।10।।

सत्यंव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं,
सत्यस्ययोनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृत सत्यनेत्रं,
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥11॥

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरं,
सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥12॥

नमो ब्रह्मण्य देवाय, गो ब्राह्मण हिताय च,
जगत् हिताय कृष्णाय, गोविन्दाय नमो नमः ॥13॥

यं व्रह्मा वरुणेन्द्र रुद्र मरुतः,
स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै ।
वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैः,
गायन्ति यं सामगाः ॥
ध्यानावस्थित तत् गतेन मनसा,
पश्यन्ति यं योगिनो ।
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा,
देवाय तस्मै नमः ॥14॥

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा,
बुद्ध्यात्मना वानु सृत स्वभावात् ।
करोमि यद्यत् सकल परस्मै,
नारायणेति समर्पये तत् ॥15॥

अष्टबिंशति-स्तुति :

भगवान विष्णु के अट्ठाईस नामों का यह स्तोत्र बहुत ही सरल और आशु-प्रभावी है । किसी भी स्थिति में इसका जप करते रहने से विष्णु-कृपा की निश्चित ही अनुभूति होती है ।

मत्स्यं कूर्मं वराहं च वामनं च जनार्दनं,
गोविन्दं पुण्डरीकाक्षं माधवं मधुसूदनम् ।
पद्मनाभं सहस्राक्षं वनमालि हलायुधं,
गोवर्द्धनं हृषीकेशं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् ॥
विश्वरूपं वासुदेवं रामं नारायण हरिम्,
दामोदरं श्रीधरं च वेदांगं गरुड़ध्वजम् ।
अनन्तं कृष्णगोपालं जपतो नास्ति पातकम् ।

इसी प्रकार निम्नाङ्कित श्लोक भी विष्णु-स्तवन के लिए बहुत ही उपयोगी माने गये हैं—

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्,
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ।
व्यासं वखिष्ठनप्तारं सक्तेः पौत्रमकल्मषम्,
पाराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम् ।।
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे,
नमो वै ब्रह्मनिधये वासिष्ठाय नमो नमः ।
अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः,
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् बादरायणः ।।

भगवान श्रीरामचन्द्र

भगवान विष्णु के चौबीस अवतारों में एक रामावतार भी है। श्रीरामचन्द्रजी के नाम की महिमा इतनी अधिक मानी गयी है कि उनके नाम-जप को सबसे बड़ी साधना, यज्ञ, व्रत और तपस्या से भी अधिक प्रभावशाली कहा गया है। भगवान श्रीराम को अवलम्बन बनाकर इतनी अधिक साहित्य-सर्जना हुई है कि देश-विदेश के बड़े-बड़े विद्वान उसे देखकर अवाक् रह जाते हैं।

श्रीराम-चरित बहुत आदर्शपूर्ण और उदात्त-कोटि का है। इन्हें मर्यादा-पुरुषोत्तम कहा गया है। उनकी शासन-प्रणाली 'राम-राज्य' एक प्रतीक बन गयी है। वस्तुतः भगवान श्रीराम अपने जीवन, परिवार, नगर और राज्य में सर्वत्र—सत्यं, शिवं और सुन्दरम् के स्थापक थे। उनकी लीला-कथा 'रामयण' के रूप में लोक-विश्रुत है। भले ही कथा-क्रम में थोड़ा अन्तर हो, पर राम के निष्कलुप चरित्र, उनके तेज और भक्त-वत्सलता को सभी ने मुक्त-कण्ठ से स्वीकार किया है। देश-विदेश के कृती-कवियों द्वारा अब तक रामचरित (रामायण) के अनेक ग्रन्थ प्रस्तुत किये जा चुके हैं। जावा, सुमात्रा और थाईलैण्ड में भी राम-भक्तों की विपुल संख्या है।

भगवान श्रीराम को उपास्य-देव मानकर कितने ही तन्त्र, मन्त्र और ग्रन्थ रचे गये हैं। उनकी भक्ति का, पूजन-स्तवन का सबसे सरल

और सहज-सुलभ रूप है—राम का नाम-जप। गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण में राम-नाम की महिमा का प्रभाव वर्णन करते हुए कहा है—

राम न सकहिं नाम गुन गाई। राम ते अधिकु नाम बड़िकाई।

और—

गो कोटि दानं ग्रहणेंषु काशी,
प्रयाग गङ्गाऽयुत कल्पवासः।
यज्ञाऽयुतं मेरु सुवर्णदानं,
गोविन्द नाम्ना न कदापि तुल्यम्॥

इसमें 'गोविन्द' शब्द राम, कृष्ण और विष्णु का पर्याय है।

राम-स्तुति :

नीलाम्बुज श्यामल कोमलांगं,
सीतासमारोपित वामभागम्।
पाणौ महासायक चारु चापं,
नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥ 1॥
राम रामेति रामेति,
रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं,
रामनाम वरानने॥ 2॥
सान्द्रानन्द पयोद सौभग तनुं पीताम्बरं सुन्दरं,
पाणौ वाण शरासनं कटिलसत्तूणीर भारं वरम्।
राजीवायत लोचनं धृत जटाजूटेन संशोभितं,
सीता लक्ष्मण संयुतं पथगतं श्रीरामाभिरामं भजे॥ 3॥
रामं कामारि सेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं,
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्।
मायाऽतीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैक देवं,
वन्दे कुन्दावदातं सरसिज नयनं देवमुर्वीश रूपम्॥ 4॥

श्रीरामरक्षा-स्तोत्र :

महर्षि बुध कौशिक-ऋषि प्रणीत यह राम-रक्षा-स्तोत्र भक्तों की समस्त सद्-कामनाओं का पूरक, आपदा-निवारक और श्रीराम के चरणों में प्रीति बढ़ाने वाला है। इस स्तोत्र के पाठ में श्रीराम को प्रमुख देवता, श्रीसीताजी को प्रमुख देवी माना जाता है। इसमें श्री हनुमानजी का

स्मरण भी अनिवार्य है। इसका नियमित पाठ करने से चमत्कारी-लाभ दृष्टिगोचर होता है। पाठ के पूर्व श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान अवश्य करना चाहिए।

अथ ध्यानम्

ध्यायेदाजानुबाहुं धृतशरधनुषं पद्धपद्मासनस्थम् ।
पीतं वासो वसानं नवकमलदलस्पर्धिनेत्रं प्रसन्नम् ।।
वामाङ्कारूढसीतामुखकमलमिलल्लोचनं नीरदाभम ।
नानालङ्कारदीप्तं दधतमुरुजटामण्डलं रामचन्द्रम् ।।

स्तोत्रम्

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।
एकैकमक्षरं पुन्सां महापातकनाशनम् ।। 1 ।।
ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं रामं राजीवलोचनम् ।
जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम् ।। 2 ।।
सासितूणधनुर्बाणपाणिं नक्तंचरान्तकम् ।
स्वलीलया जगत्त्रातुभाविर्भूतमजं विभुम् ।। 3 ।।
रामरक्षां पठेत्प्राज्ञः पापघ्नीं सर्वकामदाम् ।
शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः ।। 4 ।।
कौशल्येयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती ।
घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सौमित्रवत्सलः ।। 5 ।।
जिह्वां विद्यानिधिः पातु कण्ठं भरतवन्दितः ।
स्कन्धौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः ।। 6 ।।
करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित् ।
मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जाम्बवदाश्रयः ।। 7 ।।
सुग्रीवेशः कटी पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः ।
ऊरू रघूत्तमः पातु रक्षःकुलविनाशकृत् ।। 8 ।।
जानुनी सेतुकृत्पातु जङ्घे दशमुखान्तकः ।
पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः ।। 9 ।।
ऐतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत् ।
स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत् ।।10।।
पातालभूतलव्योमचारिण।छद्मचारिणः ।
न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः ।।11।।

रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन् ।
नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥12॥
जगज्जैत्रैकमन्त्रेण रामनाम्नाभिरक्षितम् ।
यः कण्ठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः ॥13॥
वज्रपञ्जरनामेदं यो रामकवचं स्मरेत ।
अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमङ्गलम् ॥14॥
आदिष्टवान्यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः ।
तथा लिखितवान्प्रातः प्रबुद्धो बुधकौशिकः ॥15॥
आराम कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम् ।
अभिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान्स नः प्रभुः ॥16॥
तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ ।
पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ॥17॥
फलमलाशिनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ ।
पुत्रौ दशरथस्यतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥18॥
शरण्यौ सर्वसत्वानां श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम् ।
रक्षःकुलनिहन्तारौ त्रायेतां नो रघूत्तमौ ॥19॥
आत्तसंञ्जधनुषादिषुस्पृशावक्षयाशुगनिषंगसंगिनौ ।
रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि सदैव गच्छताम् ॥20॥
सन्नद्धः कवची खड्गी चापवाणधरो युवा ।
गच्छन्मनोरथान्नश्च राम पातु सलक्ष्मणः ॥21॥
रामो दाशरथिः शूरो लक्ष्मणानुचरो बली ।
काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौसल्येयो रघूत्तम ॥22॥
वेदान्तवेद्यो यज्ञेशः पुराणपुरुषोत्तमः ।
जानकीवल्लभः श्रीमान् प्रमेयपराक्रम ॥23॥
इत्येतानि जपन्नित्यं मद्भक्तः श्रद्धयान्वितः ।
अश्वमेधाधिकं पुण्यं सम्प्राप्नोति न संशयः ॥24॥
रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम् ।
स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैर्न ते संसारिणो नराः ॥25॥
रामं लक्ष्मणपूर्वजं रघुवरं सीतापतिं सुन्दरं ।
काकुत्स्थं करुणार्णवं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम् ।
राजेन्द्रं सत्यसन्धं दशरथतनयं श्यामलं शान्तमूर्ति ।
वन्दे लोकाभिरामं रघुकुलतिलकं राघवं रावणारिम् ॥26॥

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥27॥
श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम ।
श्रीराम राम भरताग्रज राम राम ।
श्रीराम राम रणकर्कश राम राम ।
श्रीराम राम शरणं भव राम राम ॥28॥

श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि ।
श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि ।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि ।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥29॥
माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः,
स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः ।
सर्वस्व मे रामचन्द्रो दयालु-
र्नान्यं जानें नैव जानें न जानें ॥30॥
दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा ।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥31॥
लोकाभिरामं रणरङ्गधीरम्,
राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम् ।
कारुण्यरूपं करुणाकरं तं,
श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ॥32॥
मनोजवं मारुततुल्यवेगं,
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं,
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥33॥
कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥34॥

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥35॥

भजनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम् ।
तर्जनं यमदूतानां रामरामेति गर्जनम् ॥36॥

रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे,
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः ।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं,
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर ॥37॥

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनाम तत्तल्लं रामनाम वराननें ॥38॥

श्रीराम-स्तवन :

श्यामाम्बुदाभमरविन्दविशालनेंत्रं,
बन्धूकपुष्पसदृशाधरपाणिपादम् ।
सीतासहायमुदितं धृतचापबाणं,
रामं नमामि शिरसा रमणीयवेषम् ॥
पटुजलधरधीरध्वानमादाय चापं,
पवनदमनमेकं बाणमाकृष्य तूणात् ।
अभयवचनदायी सानुजः सर्वतो मे,
रणहृदतनुजेन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥
दशरथकुलदीपोऽमेबाहुप्रतापो,
दशवदनसकोपः क्षालिताशेषपापः ।
कृतसुररिपुतापो नन्दितानेकभूपो,
विगततिमिपङ्को रामचन्द्रः सहायः ॥
कुवलयदलनीलः कामितार्थप्रदो मे,
कृतमुनिजनरक्षो रक्षसामेकहन्ता ।
अपहृतदुरितोऽसौ नाममात्रेण पुन्सा-
मखिलसुरनृपेन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥
असुरकुलकृशानुर्मानसाम्भोजभानु,
सुरनरनिकराणामग्रणीम रघूणाम् ।
अगणितगुणसीमा नीलमेघौघधामा,
शमदमितमुनीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥
कुशिकतनययागं रक्षिता लक्ष्मणाढ्यः,
पवनशरनिकाक्षिप्तमारीचमायः ।
विदलितहरचापो मेदिनीनन्दनाया,
नयनकुमुदचन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥

पवनतनयहस्तन्यस्तपादाम्बुजात्मा,
कलशभववचोभिः प्राप्तमाहेन्द्रधन्वा।
अपरिमितशरौघैः पूर्णतूणीरधीरो,
लघुनिहतकपीन्द्रो रामचन्द्रः सहाय॥
कनकविमलकान्त्या सीतयालिङ्गिताङ्गो,
मुनिमनुजवरेण्यः सर्ववागीशवन्द्यः।
स्वजननिकरबन्धुर्लीलत बद्धसेतुः,
सुरमनुजकपीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः॥

श्रीराम-स्तवन :

देवराज इन्द्र के द्वारा की गयी भगवान श्रीराम की यह स्तुति जितनी ललित मधुर और सुगेय है, श्रद्धापूर्वक पाठ करने से यह उतनी ही प्रभावशाली भी सिद्ध होती है—

भजेऽहं सदा राममिन्दीवराभं,
भवारण्यदावानलाभाभिधानम्।
भवानीहृदा भावितानन्दरूपं,
भवाभावहेतुं भवादिप्रपन्नम्।
सुरानीकदुःखौघनाशैकहेतुं,
नराकारदेहं निराकारमीड्यम्।
परेशं परानन्दरूपं वरेण्यं,
हरिं राममीशं भजे भारनाशम्॥॥
प्रपन्नाखिलानन्ददोहं प्रपन्नं,
प्रपन्नार्तिनिःशेषनाशाभिधानम्।
तपोयोगयोगीशभावाभिभाव्यं,
कपीशादिमित्रं भजे रामचित्रम्॥
सदा भोगभाजां सुदूरे विभान्तं,
सदा योगभाजामदूरे विभान्तम्।
चिदानन्दकन्दं सदा राघवेशं,
विदेहात्मजानन्दरूपं प्रपद्ये॥
महायोगमायाविशेषानुयुक्तो,
विभासीश लीलानराकारवृत्तिः।
त्वदानन्दलीलाकथापूर्णकर्णाः,
सदानन्दरूपा भवन्तीह लोके॥

अहं मानपानभिमत्तप्रमत्तो,
न वेदाखिलेशाभिमानाभिमानः ।
इदानीं भवत्पादपद्मप्रसादात्,
त्रिलोकाधिपत्याभिमानो विनष्टः ॥

स्फुरद्रत्नकेयूरहाराभिरामं,
धराभारभूतासुरानीकदावम् ।
शरच्चन्द्रवक्त्रं लसत्पद्मनेत्रं,
दुरावारपारं भजे राघवेशम् ॥

सुराधीशनीलाभ्रनीलाङ्गकान्तिं,
विराधादिरक्षोवधाल्लोकशान्तिम् ।
किरीटादिशोभं पुरारातिलाभं,
भजे रामचन्द्रं रघूणामधीशम् ॥

लसच्चन्द्रकोटिप्रकाशादिपीठे,
समासीनमंके समाधाय सीताम् ।
स्फुरद्धेमवर्णा तडित्पुञ्जभासां,
भजे रामचन्द्रं निवृत्तार्तितन्द्रम् ॥

श्रीरामचन्द्राष्टक :

कृतार्तदेववन्दनं दिनेशवंशनन्दम् ।
सुशोभिभालचन्दनं नमामि राममीश्वरम् ॥
मुनीन्द्रयज्ञकारकं शिलाविपत्तिहारकम् ।
महाधनुर्विदारकं नमामि राममीश्वरम् ।
स्वतातवाक्यकारिणं तपोवने विहारिणम् ।
करे सुचापधारिणं नमामि राममीश्वरम् ।
कुरङ्गमुक्तसायकं जटायुमोक्षदायकम् ।
प्रविद्धकीशनायकं नमामि राममीश्वरम् ॥
प्लवङ्गसङ्गसम्मतिं निबद्धनिम्नगापतिम् ।
दशास्यवंशसङ्क्षतिं नमामि राममीश्वरम् ।
विदीनदेवहर्षणं कपीप्सितार्थवर्षणम् ।
स्वबन्धुशोककर्षणं नमामि राममीश्वरम् ॥
गतारिराज्यरक्षणं प्रजाजनार्तिभक्षणम् ।
कृतास्तमोहलक्षणं नमामि राममीश्वरम् ॥

हृताखिलाचलाभरं स्वधामनीतनागरम् ।
जगत्तमोदिवाकरं नमामि राममीश्वरम् ।।

श्रीराम स्तुति :

नमामि भक्त वत्सलं । कृपालु शील कोमलं ।।
भजामि ते पदाम्बुजं । अकामिनां स्वधामदं ।।
निकाम श्याम सुन्दरं । भवाम्बुनाथ मन्दरं ।।
प्रफुल्ल कञ्ज लोचनं । मदादि दोष मोचनं ।।
प्रलम्ब बाहु विक्रमं । प्रभोऽप्रमेय वैभवं ।।
निषङ्ग चाप सायकं । धरं त्रिलोक नायकं ।।
दिनेश वंश मण्डनं । महेश चाप खण्डनं ।।
मुनीन्द्र सन्त रञ्जनं । सुरारि वृन्द भञ्जनं ।।
मनोज वैरि वन्दितं । अजादि देव सेवितं ।।
विशुद्ध बोध विग्रहं । समस्त दूषणापहं ।।
नमामि इन्दिरा पतिं । सुखाकरं सतां गतिं ।।
भजे सशक्ति सानुजं । शची पति प्रियानुजं ।।
त्वदंघ्रि मूल ये नराः । भजन्ति हीन मत्सराः ।।
पतन्ति नो भवार्णवे । वितर्क वीचि संकुले ।।
विविक्त वासिनः सदा । भजन्ति मुक्तये मुदा ।।
निरस्य इन्द्रियादिकं । प्रयान्ति ते गतिं स्वकं ।।
तमेकमद्भुतं प्रभुं । निरीहमीश्वरं विभुं ।।
जगद्गुरुं च शाश्वतं । तुरीयमेव केवलं ।।
भजामि भाव वल्लभं । कुयोगिनां सुदुर्लभं ।।
स्वभक्त कल्प पादपं । समं सुसेव्यमन्वहं ।।
अनूप रूप भूपतिं । नतोऽहमुर्विजा पतिं ।।
प्रसीद मे नमामि ते । पदाब्ज भक्ति देहि मे ।।

श्री दशावतार स्तुति

भारतीय-साहित्य में अपनी मधुरिमा के लिए लोक-विख्यात काव्य—'गीत-गोविन्द'' के अमर-रचनाकर महाकवि जयदेव ने भगवान विष्णु के दस प्रमुख अवतारों की स्तुति में कुछ श्लोकों की रचना की थी ।

भक्ति-साहित्य में वह 'जयदेव कृत भी दशावतार-स्तोत्रम्' के नाम से प्रसिद्ध है। कितने ही विष्णु-मन्दिरों में आज भी भक्तजन उस स्तोत्र का मनोहर सङ्गीतमय गायन (पाठ) करते हैं।

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम्,
विहितवहित्रचरित्रमखेदम ।
केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे ॥ 1 ॥

क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पष्ठे ।
धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ॥
केशव धृतकच्छपरूप जय जगदीश हरे ॥ 2 ॥

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना ।
शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना ।
केशव धृतसूकररूप जय जगदीश हरे ॥ 3 ॥

तव करकमलवरे नखमद्भुतशृंगम् ।
दलितहिरण्यकशिपुतनुभृंगम् ॥
केशव धृतनरहरिरूप जय जगदीश हरे ॥ 4 ॥

छलयसि विक्रमणें बलिमद्भुतवामन ।
पदनखनीरजनितजनपावन ॥
केशव धृतवामनरूप जय जगदीश हरे ॥ 5 ॥

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापम् ।
स्नपयसि पयसि शमितभवतापम् ॥
केशव धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे ॥ 6 ॥

वितरसि दिक्षु रणें दिक्पतिकमनीयम् ।
दशमुखमौलिबलिं रमणीयम् ॥
केशव धृतरघुपतिवेष जय जगदीश हरे ॥ 7 ॥

वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम् ।
हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् ॥
केशव धृतहलधररूप जय जगदीश हरे ॥ 8 ॥

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम् ।
सदयहृदयदर्शितपशुघातम् ॥
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे ॥ 9 ॥

म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम् ।
धूमकेतुमिव किमपि करालम् ।।
केशव धृतकल्किशरीर जय जगदीश हरे ।।10।।
श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम् ।
शृणु सुखदं शुभदं भवसागरम् ।।
केशव धृतदशविधरूप जय जगदीश हरे ।।11।।

भगवान श्रीकृष्ण

विष्णु के अवतारों में भगवान श्रीकृष्ण को सर्वाधिक यशोकीर्त्ति मिली है। सामाजिक-दृष्टिकोण से भगवान श्रीराम की अपेक्षा भगवान श्रीकृष्ण का चरित्र अधिक व्यापक और बहु-आयामी है। भगवान श्रीराम अपने धीर-गम्भीर स्वभाव, मर्यादा-पालन, प्रजा-रञ्जन और शान्ति-सहिष्णुता के लिए प्रसिद्ध हैं, वहीं श्रीकृष्ण—अपनी वीरता, वाक्-चातुर्य, नीति-कौशल, योग-साधना और रणनीति-पाण्डित्य के लिए सांसारिक-जनों के आराध्य हैं। उनका जीवन मानव-चरित्र के अनेक आयाम उद्‌घाटित करता है। उनकी बाल-लीला, कैशोर-चरित्र, राजनीति, युद्धनीति और योग-अध्यात्म में पारङ्गत बड़े-बड़े सन्त-महात्माओं और दिग्गज विद्वानों का पथ-प्रदर्शन करती है।

श्रीमद्‌भागवत् के विश्व-विख्यात अंश 'गीता-प्रसङ्ग' को श्रीकृष्ण की ही देन मानकर सहस्रों जन कर्म-योग की प्रेरणा लेते हैं। युद्ध-क्षेत्र के मध्य—अर्जुन की अकर्मण्यता और व्यामोह के निवारण में श्रीकृष्ण ही समर्थ हुए थे। महाभारत के अनेक प्रसङ्ग उनकी नीतिमत्ता को उजागर करते हैं।

महाकवि सूरदास—श्रीकृष्ण के अनन्य-भक्त थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य और विट्‌ठलनाथजी की गणना श्रीकृष्ण-भक्तों की अग्रिम-पंक्ति में होती है। राजस्थान की रानी मीराबाई अपनी अनन्य कृष्ण-भक्ति के कारण ही विश्व-प्रसिद्ध हुई। रसखान और भारतेन्दु जैसे कवि तो श्रीकृष्ण के चाकर थे ही, रीतिकालीन-कवि भी उनके भक्त थे।

आध्यात्मिक-जगत् में कृष्णोपासना को बहुत ही सम्मान प्राप्त है। श्रीकृष्ण की स्तुतियाँ, मन्त्र, पद, भजन आदि पढ़ते हुए लोग तन्मय हो जाते हैं। ब्रजभूमि (मथुरा-वृन्दावन क्षेत्र) में तो आज भी कण-कण में कृष्ण-कन्हैया की झलक दृष्टिगोचर होती है। किसी भी सांसारिक-

आध्यात्मिक कामना की पूर्त्ति हेतु श्रीकृष्ण की स्तुति-उपासना की जाय, तो अवश्य ही लाभ प्राप्त होता है।

अच्युत-स्तुति :

राम और कृष्ण यह दोनों ही श्रीविष्णु के अवतार हैं। इनके कुछ नाम तो ऐसे हैं, जो प्रत्येक अवतार के लिए प्रयुक्त होते हैं, और कई संज्ञाएं ऐसी हैं, जो उनके अवतार-विशेष के लिए ही प्रयुक्त होती हैं। 'अच्युत' शब्द का सामान्य भाव तो विष्णु और उनके समस्त रूपावतारों से सम्बन्ध रखता है, परन्तु विशेष रूप से यह संज्ञा उनके 'कृष्ण' नाम के लिए पर्यायवाची रूप में प्रयुक्त होती है। निम्नलिखित स्तुति में 'अच्युत' नाम को प्रधानता देकर, कृष्ण के अनेक नामों (पर्यायवाची शब्दों) से उनका स्मरण किया गया है। इस सन्दर्भ में उनके अनेक अवतारों के नाम भी आ गये हैं। कोई साधक, किसी प्रकार के तर्क-वितर्क अथवा भ्रम में न पड़कर, यदि स्तुति का श्रद्धापूर्वक नियमित-पाठ करे, तो उसको इसके प्रभाव की दिव्यानुभूति अवश्य ही होगी।

'अच्युताष्टक' नाम से प्रसिद्ध यह स्तुति शताब्दियों से भक्त-समुदाय में बहुत ही सम्मानित है—

अच्युतं केशवं राम नारायणं,
कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं,
जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे ॥ 1 ॥
अच्युतं केशवं सत्यभामा धवं,
माधवं श्रीधरं राधिकाराधितम्।
इन्दिरामन्दिरं चेतसा सुन्दरं,
देवकीनन्दनं नन्दजं सन्दधे ॥ 2 ॥
विष्णवे जिष्णवे शंखिनें चक्रिणे,
रुक्मिणीरागिणे जानकीजानये।
वल्लवी वल्लभा यार्चितात्मने,
कंस विध्वंसिने वंशिने ते नमः ॥ 3 ॥
कृष्ण गोविन्द हे राम नारायण,
श्रीपते वासुदेवाजित श्रीनिधे।
अच्युतानन्त हे माधवा धोक्षज,
द्वारकानायकः द्रौपदी रक्षकः ॥ 4 ॥

राक्षसक्षोभितः सीतया शोभितो,
दण्डकारण्य भू पुण्यता कारणः।
लक्ष्मणेनान्वितो वानरः सेवितो–
ऽगस्त्यसम्पूजितो राघवः पातुमाम् ॥ 5 ॥
धेनुकारिष्ट कानिष्ट कृत् द्वेषिहा,
केशिहा कंस हृद् वंशिकावादकः।
पूतना कोपकः सूरजाखेलनो,
बालगोपालकः पातु मा सर्वदा ॥ 6 ॥
विद्युदुद्योतवत् प्रस्फुरत् वाससं,
प्रावृडम्भोदवत् प्रोल्लसत् विग्रहम्।
वन्यया मालया शोभितोरः स्थलं,
लोहितांघ्रि द्वयं वारिजाक्षं भजे ॥ 7 ॥
कुञ्चितैः कुन्तलैः भ्राजमानाननं,
रत्नमौलिं लसत् कुण्डलं गण्डयोः।
हार केयूरकं कङ्कणं प्रोज्ज्वलं,
किंकिणी मञ्जुलं श्यामलं तं भजे ॥ 8 ॥

श्रीकृष्णाष्टक (कृष्ण-स्तुति) :

भजे ब्रजैक मण्डनं समस्त पाप खण्डनं,
स्वभक्त चित्त रञ्जनं सदैव नन्दनन्दनम्।
सुपिच्छ गुच्छ मस्तकं सुनाद वेणु हस्तकं,
अनङ्गरंग सागरं नमामि कृष्ण नागरम् ॥ 1 ॥
मनोज गर्व मोचनं विशाल लोल लोचनं,
विधूत गोप शोचनं नमामि पद्मलोचनम्।
करारविन्द भूधरं स्मितावलोक सुन्दरं,
महेन्द्रमानदारणं नमामि कृष्ण वारणम् ॥ 2 ॥
कदम्बसून कुण्डलं सुचारु गण्ड मण्डलं,
ब्रजांगतैकवल्लभं नमामि कृष्ण दुर्लभम्।
यशोदया समोदया सगोपया सनन्दया,
युतं सुखैक दायकं नमामि गोपनायकम् ॥ 3 ॥
सदैव पादपङ्कजं मदीयमानसे निजं,
दधानमुत्तमालकं नमामि नन्दबालकम्।
समस्त दोष शोषणं समस्त लोक पोषणं,
समस्त गोप मानसं नमामि नन्दलालसम् ॥ 4 ॥

भुवो भरावतारकं भवाब्धि कर्णधारकं,
यशोमती किशोरकं नमामि चित्तचोरकम् ।
दृगन्त कान्त भंगिनं सदा सदाल संगिनं,
दिनें दिनें नवं नवं नमामि नन्द सम्भवम् ।। 5 ।।
गुणकारं सुखकारं कृपाकरं कृपाकरं,
सुरद्विषन्नकन्दनं नमामि गोपनन्दनम् ।
नवीन गोपनागरं नवीन केलि लम्पटं,
नमामि मेघसुन्दरं तडित्प्रभा लसत्पटम् ।। 6 ।।
समस्त गोपनन्दनं हृदम्बुजैक मोदनं,
नमामि कुञ्जमध्यगं प्रसन्नभानु शोभनम् ।
निकाम काम दायकं दृगन्त चारु सायकं,
रसाल वेणु गायकं नमामि कुञ्जनायकम् ।। 7 ।।
विदध गोपिका मनं मनोज्ञतल्प शायिनं,
नमामि कुञ्ज कानने प्रवृद्ध वह्निपायिनम् ।
यदा तदा यथा यथा तथैव कृष्ण सत्कथा,
मया सदैव गीयतां तथा कृपा विधीयताम् ।। 8 ।।

श्री गोविन्द-दामोदर स्तोत्र :

अग्रे कुरूणामथ पाण्डवानां दुःशासनेनाहृतवस्त्रकेशा ।
कृष्णा तदाक्रोशदनन्यनाथा गोविन्द दामोदर माधवेति ।।

श्रीकृष्ण विष्णो मधुकैटभारे भक्तानुकम्पिन् भगवन् मुरारे ।
त्रायस्व मां केशव लोकनाथ गोविन्द दामोदर माधवेति ।।
विक्रेतुकामाखिलगोपकन्या मुरारिपादार्पितचित्तवृत्तिः ।
दध्यादिकं मोहवशादवोचद् गोविन्द दामोदर माधवेति ।।
उलूखले सम्भृततण्डुलांश्च संघट्टयन्त्यो मुसलैः प्रमुग्धाः ।
गायन्ति गोप्यो जनितानुरागा गोविन्द दामोदर माधवेति ।।

काचित्कराम्भोजपुटे निषण्णं क्रीडाशुकं किंशुकरक्ततुण्डम् ।
अध्यापयामास सरोरुहाक्षी गोविन्द दामोदर माधवेति ।।

गृहे गृहे गोपवधूसमूहः प्रतिक्षणं पिञ्जरसारिकाणाम् ।
स्खलद्गिरं वाचयितु प्रवृत्तो गोविन्द दामोदर माधवेति ।।

पर्यङ्किकाभाजमलं कुमारं प्रस्वापयन्त्योऽखिलगोपकन्या ।
जगुः प्रबन्धं स्वरतालबन्धं गोविन्द दामोदर माधवेति ।।

रामानुजं वीक्षणकेलिलोलं गोपी गृहीत्वा नवनीतगोलम् ।
आबालकं बालकमाजुहाव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
विचित्रवर्णाभरणाभिरामेऽभिधेहि वक्त्राम्बुजराजहसि ।
सदा मदीये रसनेऽग्ररंगे गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
अङ्काधिरूढं शिशुगोपगूढं स्तनं धयन्तं कमलैककान्तम् ।
सम्बोधयामास मुदा यशोदा गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
क्रीडन्तमन्तर्व्रजमात्मजं स्वं समं वयस्यैः पशुपालबालैः ।
प्रेम्णा यशोदा प्रजुहाव कृष्णं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
यशोदया गाढमुलूखलेन गोकण्ठपाशेन निबध्यमानः ।
रुरोद मन्दं नवनीतभोजी गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
निजाङ्गणे कङ्कणकेलिलोलं गोपी गृहीत्वा नवनीतगोलम् ।
आमर्दयत्पाणितलेन नेत्रे गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
गृहे गृहे गोपवधूकदम्बाः सर्वे मिलित्वा समवाययोगे ।
पुण्यानि नामानि पठन्ति नित्यं गोविन्द दामोदर माधवेति ।
मन्दारमूले वदनाभिरामं विम्बाधरे पूरितवेणुनादम् ।
गोगोपगोपीजनमध्यसंस्थं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
उत्थाय गोप्योऽपररात्रभागे स्मृत्वा यशोदासुतबालकेलिम् ।
गायन्ति प्रोच्चैर्दधि मन्थयन्त्यो गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
जग्धोऽथ दत्तो नवनीतपिण्डो गृहे यशोदा विचिकित्सयन्ती ।
उवाच सत्यं वद हे मुरारे गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
अभ्यर्च्य गेहं युवतिः प्रवृद्धप्रेमप्रवाहा दधि निर्ममन्थ ।
गायन्ति गोप्योऽथ सखीसमेता गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
क्वचित् प्रभाते दधिपूर्णपात्रे निक्षिप्य मन्थं युवती मुकुन्दम् ।
आलोक्य गानं विविधं करोति गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
क्रीडापरं भोजनमज्जनार्थं हितैषिणी स्त्री तनुजं यशोदा ।
आजूवहत् प्रेमपरिप्लुताक्षी गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
सुखं शयानं निलये च विष्णुं देवर्षिमुख्या मुनयः प्रपन्नाः ।
तेनाच्युते तन्मयतां व्रजन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
विहाय निद्रामरुणोदये च विधाय कृत्यानि च विप्रमुख्याः ।
वेदावसाने प्रपठन्ति नित्यं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
वृन्दावने गोपगणाश्च गोप्यो विलोक्य गोविंदवियोगखिन्नाम् ।
राधां जगुः साश्रु विलोचनाभ्यां गोविंद दामोदर माधवेति ॥

प्रभातसञ्चारगता नु गावस्तद्रक्षणार्थं तनयं यशोदा ।
प्राबोधयत् पाणितलेन मन्दं गोविंद दामोदर माधवेति ॥
प्रवालशोभा इव दीर्घकेशा वाताम्बुपर्णाशनपूतदेहाः ।
मूले तरूणां मुनयः पठन्ति गोविंद दामोदर माधवेति ॥
एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः ।
विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविंद दामोदर माधवेति ॥
गोपी कदाचिन्मणिपिञ्जरस्थं शुकं वचो वाचयितुं प्रवृत्ता ।
आनन्दकन्द ब्रजचन्द्र कृष्ण गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
गोवत्सबालैः शिशुकाकपक्षं बध्नन्तमम्भोजदलायताक्षम् ।
उवाच माता चिबुकं गृहीत्वा गोविंद दामोदर माधवेति ॥
प्रभातकाले वरवल्लवौघा गोरक्षणार्थं धृतवेत्रदण्डाः ।
आकारयामासुरवन्तमाद्यं गोविंद दामोदर माधवेति ॥
जलाशये कालियमर्दनाय यदा कदम्बादपतन्मुरारिः ।
गोपाङ्गनाश्चुक्रुशुरेत्य गोपा गोविंद दामोदर माधवेति ॥
अक्रूरमासाद्य यदा मूकुन्दश्चापोत्सवार्थं मथुरां प्रविष्टः ।
तदा स पौरैर्जयतीत्यभापि गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
कंसस्य दूतेन यदैव नीतौ वृन्दावनान्ताद् वसुदेवसूनू ।
रुरोद गोपी भवनस्य मध्ये गोविन्द दामोदर माधवेति ॥

सरोवरे कालियनागबद्धं शिशुं यशोदातनयं निशम्य ।
चक्रुर्लुठन्त्यः पथि गोपबाला गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
अक्रूरयानें यदुवंशनाथं सङ्गच्छमानं मथुरां निरीक्ष्य ।
ऊचुर्वियोगात् किल गोपवाला गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
चक्रन्द गोपी नलिनीवनान्ते कृष्णें न हीना कुसुमे शयाना ।
प्रफुल्लनीलोत्पललोचनाभ्यां गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
मातापितृभ्यां परिवार्यमाणा गेहं प्रविष्टा विललाप गोपी ।
आगत्य मां पालय विश्वनाथ गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
वृन्दावनस्थं हरिमाशु बुद्ध्वा गोपी गता कापि वनं निशायाम् ।
तत्राप्यदृष्ट्वातिभयादवोचद् गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
सुखं शयाना निलये निजेऽपि नामानि विष्णोः प्रवदन्ति मर्त्याः ।
ते निश्चितं तन्मतां व्रजन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
सा नीरजाक्षीमवलोक्य राधां रुरोद गोविन्द वियोगखिन्नाम् ।
सखी प्रफुल्लोत्पललोचनाभ्यां गोविन्द दामोदर माधवेति ॥

जिह्वे रसज्ञे मधुरप्रिया त्वं सत्यं हितं त्वां परमं वदामि ।
आवर्णयेथा मधुराक्षराणि गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
आत्यन्तिकव्याधिहरं जनानां चिकित्सकं वेदविदो वदन्ति ।
संसारतापत्रयनाशबीजं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
ताताज्ञा गच्छति रामचन्द्रे सलक्ष्मणेऽरण्यचये ससीते ।
चक्रन्द रामस्य निजा जनित्री गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
एकाकिनी दण्डककाननान्तात् सा नीयमाना दशकन्धरेण ।
सीता तदाक्रन्ददनन्यनाथा गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
रामाद्वियुक्ता जनकात्मजा सा विचिन्तयन्ती हृदि रामरूपम् ।
रुरोद सीता रघुनाथ पाहि गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
प्रसीद विष्णो रघुवंशनाथ सुरासुराणां सुखदुःखहेतो ।
रुरोद सीता तु समुद्रमध्ये गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
अन्तर्जले ग्राहगृहीतपादो विसृष्टविक्लिष्टसमस्तबन्धुः ।
तदा गजेन्द्रो नितरां जगाद गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
हंसध्वजः शंखयुतो ददर्श पुत्रं कटाहे प्रपतन्तमेनम् ।
पुण्यानि नामानि हरेर्जपन्तं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
दुर्वाससो वाक्यमुपेत्य कृष्णा सा चाब्रवीत् काननवासिनीशम् ।
अन्तःप्रविष्टं मनसा जुहाव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
ध्येय सदा योगिभिरप्रमेयश्चिन्ताहरश्चिन्तितपारिजातः ।
कस्तूरिकाकल्पितनीलवर्णो गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
संसारकूपे पतितोऽत्यगाधे मोहान्धपूर्णे विषयाभितप्ते ।
करावलम्बं मम देहि विष्णो गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
त्वामेव याचे मम देहि जिह्वे समागते दण्डधरे कृतान्ते ।
वक्तव्यमेवं मधुरं सुभक्त्या गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
भजस्व मन्त्रं भवबन्धमुक्त्यै जिह्वे रसज्ञे सुलभं मनोज्ञम् ।
द्वैपायनाद्यैर्मुनिभिः प्रजप्तं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
गोपाल वंशीधर रूपसिन्धो लोकेश नारायण दीनबन्धो ।
उच्चस्वरैस्त्वं वद सर्वदैव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
जिह्वे सदैवं भज सुन्दराणि नामानि कृष्णस्य मनोहराणि ।
समस्तभक्तार्तिविनाशनानि गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण ।
गोविन्द गोविन्द रथाङ्गपाणे गोविन्द दामोदर माधवेति ॥

सुखावसानें त्वदिमेव सारं दुःखावसानें त्वदिमेव गेयम् ।
देहावसानें त्वदिमेव जाप्यं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
दुर्वारवाक्यं परिगृह्य कृष्णा मृगीव भीता तु कथं कथञ्चित् ।
सभां प्रविष्टा मनसा जुहाव गोविन्द दामोदर माधवे ॥
श्रीकृष्ण राधावर गोकुलेश गोपाल गोवर्धन नाथ विष्णो ।
जिह्वे पिवस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
श्रीनाथ विश्वेवर विश्वमूर्ते श्रीदेवकीनन्दन दैत्यशत्रो ।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
गोपीपते कंसरिपो मुकुन्द लक्ष्मीपते केशव वासुदेव ।
जिह्वे पिवस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
गोपीजनाह्लादकर व्रजेश गोचारणारण्यकृतप्रवेश ।
जिह्वे पिवस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
प्राणेश विश्वम्भर कैटभारे वैकुण्ठ नारायण चक्रपाणे ।
जिह्वे पिवस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
हरे मुरारे मधुसूदनाद्य श्रीराम सीतावर रावणारे ।
जिह्वे पिवस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
श्रीयादवेन्द्राद्रिधराम्बुजाक्ष गोगोपगोपीसुखदानदक्ष ।
जिह्वे पिवस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
धराभरोत्तारणगोपवेश विहारलीलाकृतबन्धुशेष ।
जिह्वे पिवस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
बकीबकाघासुरधेनुकारे केशीतृणावर्तविघातदक्ष ।
जिह्वे पिवस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
श्रीजानकीजीवन रामचन्द्र निशाचरारे भरताग्रजेश ।
जिह्वे पिवस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामौदर माधवेति ॥
नारायणानन्त हरे नृसिंह प्रह्लादबाधाहर हे कृपालो ।
जिह्वे पिवस्वामृतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
लीलामनुष्याकृतिरामरूप पतापदासीकृतसर्वभूप ।
जिह्वे पिवस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव ।
जिह्वे पिवस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
वक्तुं सतर्थोऽपि न वक्ति कश्चिदहो जनानां व्यसनाभिमुख्यम् ।
जिह्वे पिवस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥

श्री गोविन्दाष्टक :

चिदानन्दाकारं श्रुतिररससारं समरसं,
निराधाराधारं भवजलधिपारं परगुणम् ।
रमाग्रीवाहारं तजवनविहारं हरनुतं,
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ।। 1 ।।

महाम्भोधिस्थानं स्थिरचरनिदानं दिविजपं,
सुधाथारापानं विहगपतियानं यमरतम् ।
यनोज्ञं सुज्ञानं मुनिजननिधानं ध्रुवपदं,
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ।। 2 ।।

धिया धीरैर्ध्येयं श्रवणपुटपेयं यतिवरै-
र्महावाक्यैर्ज्ञेयं त्रिभुवनविधेयं विधिपरम् ।
मनोमानामेयं सपदि हृदि नेयं नवतनुम्,
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ।। 3 ।।

महामायाजालं विमलवनमालं मलहरं,
सुभालं गोपालं निहतशिशुपालं शशिमुखम् ।
कलातीतं कालं गतिहतमरालं मुररिपुम्,
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ।। 4 ।।

नभोबिम्बस्फीतं निगमगणगीतं समगतिं,
सुरौधैः सम्प्रीतं दितिजविपरीतं पुरिशयम् ।
गिरां मार्गातीतं स्वदितनवनीतं नयकरं,
सदा तं गोविन्दं परमसुखकरं भजत रे ।। 5 ।।

परेशं पद्मेशं शिवकमलजेशं शिवकरम्,
द्विजेशं देवेशं अनुकुटिलकेशं कलिहरम् ।
खगेशं नागेशं निखिलभुवनेशं नगधरम्,
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ।। 6 ।।

रमाकातं कान्तं भवभयभयान्तं भवसुखं,
दुराशान्तं शान्तं निखिलहृदि भान्तं भुवनपम् ।
विवादान्तं दान्तं दनुजनिचयान्तं सूचिरितं,
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ।। 7 ।।

जगज्ज्येष्ठं श्रेष्ठं सुरपतिकनिष्ठं क्रतुपतिं,
बलिष्ठं भूयिष्ठं त्रिभुवनवरिष्ठं वरवहम् ।
स्वनिष्ठम् धर्मिष्ठम् गुरुगुणगरिष्ठम् गुरुवरम्,
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ।। 8 ।।

फल प्राप्ति—

[विशुद्धात्मा स्तोत्रं पठति मनुजो यस्तु सततम् ।
स भुक्त्वा भौगौघं चिरमिह ततोऽपास्तवृजिनः,
परं विष्णोः स्थानं व्रजति खलु वैकुण्ठभुवनम् ।]

परमात्मा-स्वरूप कृष्ण-स्तुति :

जगदीश सुधीश भवेश विभो,
परमेश परात्पर पूत पितः ।
प्रणतं पतितं हतबुद्धिबलं,
जनतारण तारय तापितकम् ।। 1 ।।

गुणहीन सुदीन मलीनमतिं,
त्वयि पातरि दातरि चापरतिम् ।
तमसा रजसावृतवृत्तिमिमम्,
जनतारण तारय तापितकम् ।। 2 ।।

मम जीवनमीनमिमं पतितं,
मरुघोरभुवीह सुवीहमहो ।
करुणाब्धिचलोर्मिजलानयनम्,
जनतारण तारय तापितकम् ।। 3 ।।

भववारण कारण कर्मततौ,
भवसिन्धुजले शिव मग्नमतः ।
करुणाञ्च समर्प्य तरिं त्वरितम्,
जनतारण तारय तापितकम् ।। 4 ।।

अतिनाश्य जनुर्मम पुण्यरुचे,
दुरितौघभरैः परिपूर्णभुवः ।
सुजघन्यमगण्यम पुण्यरुचिम्,
जनतारण तारय तापितकम् ।। 5 ।।

भवकारक नारकहारक हे,
भवतारक पातकदारक हे।
हर शङ्कर किङ्करकर्मचयम्,
जनतारण तारय तापितकम् ॥ 6 ॥

तृषितश्चिरमस्मि सुधां हित मे-
ऽच्युत चिन्मय देहि वदान्यवर।
अतिमोहवशेन विनष्टकृतम्,
जनतारण तारय तापितकत् ॥ 7 ॥

प्रणमामि नमामि नमामि भवं,
भवजन्मकृति प्रणिषूदनकम्।
गुणहीनमनन्तमितं शरणम्,
जनतारण तारय तापितकम् ॥ 8 ॥

श्री नन्दकुमार-स्तुति :

यद्यपि श्रीकृष्ण के पिता वसुदेवजी थे, तथापि घटना-क्रम से उनका पालन-पोषण नन्दजी गोपराज ने किया था। इसी कारण श्रीकृष्ण को—नन्दसुत, नन्दलाल और नन्दकुमार भी कहा जाता है। महाकवि और महान कृष्ण-भक्त—सन्तवर सूरदासजी के गुरु महाप्रभु बल्लभाचार्यजी स्वयं भी श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक थे। उनके द्वारा रचित एक अति ललित और प्रसिद्ध कृष्ण-स्तुति 'नन्दकुमार अष्टक' के नाम से विख्यात है। वह स्तुति इस प्रकार है—

सुन्दरगोपालं उरवनमालं नयनविशालं दुःखहरम्।
वृन्दावनचन्द्रमानन्दकन्दं परमानन्दं धरणिधरम् ॥
वल्लभघनश्यामं पूर्णकामं अत्यभिरामं प्रीतिकरम्।
भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम् ॥ 1 ॥

सुन्दरवारिजवनं निर्जितमदनं आनन्दसदनं मुकुटधरम्।
गुञ्जाकृतिहारं विपितविहारं परमोदारम् चीरहरम्।
वल्लभपटपीतं कृतउपवीतं करनवनीतं विबुधवरम्।
भज नन्दकुमारम् सर्वसुखसारम् तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम् ॥ 2 ॥

शोभित मुखधूलं यमुनाकूलं निपटअतूलं सुखदतरम् ।
मुखमण्डितरेणुं चारितधेनुं वादितवेणुं मधुरसुरम् ।।
वल्लभमतिविमलं शुभपदकमलं नखरुचि अमलं तिमिरहरम् ।
भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम् ।। 3 ।।

शिरमुकुटसुदेशं कुञ्चितकेशं नटवरवेशं कामवरम् ।
मायाकृतमनुजं हलधरअनुजं प्रतिहतदनुजं भारहरम् ।
वल्लभव्रजपालं सुभगसुचालं हितमनुकालं भाववरम् ।
भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारम् ब्रह्मपरम् ।। 4 ।।

इन्दीवरभासु प्रकटसुरासं कुसुमविकासं वंशिधरम् ।
हृतमन्मथमानं रूपनिधानं कृतकलगानं चित्तहरम् ।
वल्लभमृदुहासं कुञ्जनिवासं विविधविलासं केलिकरम् ।
भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारब्रह्मपरम् ।। 5 ।।

अतिपरमप्रवीणं पालितदीनं भक्ताधीनं कर्मकरम् ।
मोहनमतिधीरं फणिबलबीरं हतपरवीरं तरलतरम् ।
वल्लभव्रजरमणं वारिजवदनं हलधरशमनं शैलधरम् ।
भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम् ।। 6 ।।

जलधरद्युतिअंगं ललितत्रिभंगं बहुकृतरङ्गं रसिकवरम् ।
गोकुलपरिवारं मदनाकारं कुञ्जविहारं गूढतरम् ।
वल्लभव्रजचन्द्रं सुभगसुछन्दं कृतआनन्दं भ्रान्तिहरम् ।
भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम् ।। 7 ।।

वन्दितयुगचरणं पावनकरणं जगदुद्धरणं विमलधरम् ।
कालियशिरगमनं कृतफणिनमनं घातितयमनं मृदुलतरम् ।
वल्लभदुःखहरणं निर्मलचरणं अशरणशरण मुक्तिकरम् ।
भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम् ।। 8 ।।

श्री लक्ष्मी नृसिंह स्तुति

श्रीमत्पयोनिधिनिकेतन चक्रपाणे,
भोगीन्द्रभोगमणिरञ्जितपुण्यमूर्त्ते ।
योगीश शाश्वत शरण्य भवाब्धिपोत,
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ।।

ब्रह्मेन्द्ररुद्रमरुदर्ककिरीटकोटि-
संघट्टिताङ्घ्रिकमलामलकान्तिकान्त ।
लक्ष्मीलसत्कुचसरोरुहराजहंस,
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥
संसारघोरगहने चरतो मुरारे,
मारोग्रभीकरमृगप्रवरार्दितस्य ।
आर्त्तस्य मत्सरनिदाघनिपीडितस्य,
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥
संसारकूपमतिघोरमगाधमूलं,
सम्प्राप्य दुःखशतसर्पसमाकुलस्य ।
दीनस्य देव कृपणापदमागतस्य,
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥
संसारसागरविशालकरालकाल-
नक्रग्रहग्रसननिग्रहविग्रहस्य ।
व्यग्रस्य रागरसनोर्मिनिपीडितस्य,
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥
संसारवृक्षमघबीजमनन्तकर्म-
शाखाशतं करणपत्रमनङ्गपुष्पम् ।
आरुह्य दुःखफलितं पततो दयालो,
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥
संसारसर्पघनवक्त्रभयोग्रतीव्र-
दंष्ट्राकरालविषदग्धविनष्टमूर्तेः ।
नागारिवाहन सुधाब्धिनिवास शौरे,
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥
संसारदावदहनातुरभीकरोरु-
ज्वालावलीभिरति दग्धतनूरुहस्य ।
त्वत्पादपद्मसरसीशरणागतस्य,
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥
संसारजालपतितस्य जगन्निवास,
सर्वेन्द्रियार्तवडिशार्थझषोपमस्य ।
प्रोत्खण्डितप्रचुरतालुकमस्तकस्य,
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥

संसारभीकरकरीन्द्रकराभिघात-
निष्पिष्टमर्मवपुषः सकलार्तिनाश ।
प्राणप्रयाणभवभीतिसमाकुलस्य,
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ।।

अन्धस्य मे हृतविवेकमहाधनस्य,
चौरैः प्रभो बलिभिरिन्द्रियनामधेयैः ।
मोहान्धकूपकुहरे विनिपातितस्य,
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ।।

लक्ष्मीपते कमलनाभ सुरेश विष्णो,
वैकुण्ठ कृष्ण मधुसूदन पुष्कराक्ष ।
ब्रह्मण्य केशव जनार्दन वासुदेव,
देवेश देहि कृपणस्य करावलम्बम् ।।

यन्माययोर्जितवपुः प्रचुरप्रवाह-
मग्नार्थमत्र निवहोरुकरावलम्बम् ।
लक्ष्मीनृसिंहचरणाब्जमधुव्रतेन,
स्तोत्रं कृतं सुखकरम् भुवि शङ्करेण ।।

भगवान दत्तात्रेय

पौराणिक सन्दर्भों में भगवान दत्तात्रेय का नाम अनेक बार आता है। उन्हें भगवान विष्णु के चौबीस अवतारों में से एक माना गया है। किन्तु वस्तुतः उनमें शिव और ब्रह्माजी का भी तेजांश विद्यमान है। वे विष्णु का अवतार होकर भी राजसिक वैभव के देवता नहीं, वरन् शिवजी के समान अवधूत हैं—दिगम्बर, योगी और समस्त सिद्धियों के स्वामी हैं।

दत्त भगवान की कथा में, उनके पिता महर्षि अत्रि और माता सती अनुसूया का चरित्र संगुम्फित होने से उनका महत्त्व स्वयं सिद्ध है। भगवान श्रीराम भी अपने वन-प्रवास की अवधि में अत्रि मुनि आश्रम में गये थे, जहाँ देवी अनुसूया ने सीताजी को कभी भी जीर्ण-मलिन न होने वाले दिव्य वस्त्र—अपनी प्रबल तपो-शक्ति से उत्पन्न करके दिये थे। भारतीय-नारी का सतीत्त्व, जिन महिमामयी-नारियों के चरित्र से विश्वव्यापी श्रद्धा और ख्याति अर्जित कर सका है, उनमें देवी अनुसूया भी एक हैं। एक बार उनके चरित्र की परीक्षा के लिए—ब्रह्मा, विष्णु और महेश साधु

वेश में उनकी कुटिया पर गये और भोजन की याचना की। देवी ने जो भी उपलब्ध था, प्रस्तुत किया। इस पर साधुरूपी त्रिदेवों ने उनसे निर्वस्त्र होकर भोजन परोसने का आग्रह किया। तपोबल से देवी ने उनका षड़यन्त्र समझ लिया। याचक को विमुख लौटाना भारतीय धर्म-संस्कृति में घोर निन्दनीय माना गया है। अत: देवी ने तत्क्षण कमण्डलु से जल लेकर तीनों देवताओं पर यह कहते हुए, छिड़क दिया कि लीजिए, पहले आपकी दृष्टि तो निर्मल हो जाय।' उस जल के छींटे पड़ते ही तीनों देवता नवजात-शिशु बनकर रोने लगे। देवी ने उन्हें गोद में लेकर पालने में लिटा दिया, और उनकी क्षुधा शान्त की।

उधर त्रिदेवों की शक्तियों (पत्नियों) को, जिनकी प्रेरणा से वे यह छद्म-कार्य करने आये थे—इस घटना का पता चला, तो सती (देवी अनुसूया) के तपो-प्रभाव से परास्त एवं लज्जित होकर वे स्वयं उनके आश्रम में दौड़ी आयीं, और अपने-अपने स्वामी को पूर्व रूप में लौटा देने की प्रार्थना करने लगीं। देवी अनुसूया ने उनकी याचना स्वीकार करते हुए तीनों देवताओं को पुन: पूर्व रूपाकार में परिवर्त्तित करके उन्हें लौटा दिया।

सतीत्त्व की महिमा और देवी की क्षमा-शीलता से प्रभावित होकर उन तीनों देवताओं ने कहा कि हम आपकी क्या सेवा करें ? हमारे योग्य कोई कार्य अवश्य बताइए। इस पर देवी ने कहा कि आप लोग मेरे पुत्र बनें। 'तथास्तु' कहकर त्रिदेवों ने अपने-अपने तेज-अंश से एक-एक पुत्र प्रदान किया। विष्णु के तेजांश से—भगवान दत्तात्रेय की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा के अंश से—सोम, ऋषि और शिवजी के तेज से—दुर्वासा का जन्म हुआ।

दत्त भगवान की स्तुति बहुत प्रभावी होती है। वे आज भी भिक्षुक के रूप में भ्रमते रहते हैं। पता नहीं, कब कहाँ किस पर कृपालु हो जायें। सर्व-समर्थ होकर भी वे भिक्षाटन करते रहते हैं। कुत्तों से उन्हें बहुत प्रेम है। कितने ही गृहस्थ-जन उनकी पूजा, आराधना, स्तुति और यन्त्रोपासना के द्वारा मनोरथ-सिद्धि का लाभ प्राप्त करते रहते हैं। सामान्य रूप से, यदि घर में उनका एक चित्र लगाकर नियमित रूप से धूप-दीप देते हुए स्तोत्र-पाठ किया जाये, तो अवश्य ही उनकी कृपा की अनुभूति होती है।

श्री दत्तात्रेय स्तुति :

जटाधरम् पाण्डुरङ्गम् शूलहस्तं कृपानिधिम्।
सर्वरोगहरं देवं दत्तात्रेयमहं भजे॥

जगदुत्पत्ति कर्त्रे च स्थितिसंहार हेतवे।
भवपाश विमुक्ताय दत्तात्रेय नमोऽस्तुते ॥

जरा जन्म विनाशाय देहशुद्धि कराय च।
दिगम्बर दयामूर्त्ति दत्तात्रेय नमोऽस्तुते ॥

कर्पूर कान्ति देहाय ब्रह्ममूर्ति धराय च।
वेदशास्त्र परिज्ञाय दत्तात्रेय नमोऽस्तुते ॥

ह्रस्व दीर्घ कृश स्थूल नाम गोत्र विर्वजितः।
पञ्चभूतैक दीप्ताय दत्तात्रेय नमोस्तुते ॥

यज्ञ भोक्त्रे च यज्ञाय यज्ञरूपाय तथा च वै।
यज्ञप्रियाय सिद्धाय दत्तात्रेय नमोऽस्तुते ॥

आदौ ब्रह्मा मध्ये विष्णुः अन्ते देव सदाशिवः।
मूर्त्तिमय स्वरूपाय दत्तात्रेय नमोऽस्तुते ॥

भोगलयाय भोगाय भोग योग्याय धारिणें।
जितेन्द्रिय जितज्ञाय दत्तात्रेय नमोऽस्तुते ॥

दिगम्बराय दिव्याय दिव्य रूप धराय च।
सदोदित परब्रह्म दत्तात्रेय नमोऽस्तुते ॥

जम्दुदीप महाक्षेत्रे मातापुर निवासिनें।
जयमान सतां देव दत्तात्रेय नमोऽतुते ॥

भिक्षाटनं गृहे ग्रामे पात्रं हेममयं करे।
नाना स्वादमयी भिक्षा दत्तात्रेय नमोऽतुते ॥

ब्रह्मज्ञानमयी मुद्रा, वस्त्रे चाकाश भूतले।
प्रज्ञानधन बोधाय दत्तात्रेय नमोऽस्तुते ॥

अवधूत सदानन्द परब्रह्म स्वरूपिणें।
विदेह देह रूपाय दत्तात्रेय नमोऽस्तुते ॥

सत्यरूप सदाचार सत्यधर्म परायण।
सत्याश्रय परोक्षाय दत्तात्रेय नमोऽस्तुते ॥

शूलहस्तं गदा पाणे वनमाला सुकन्धरे।
यज्ञसूत्र धरं ब्रह्मन् दत्तात्रेय नमोऽस्तुते ॥

क्षराक्षर स्वरूपाय परात्पर पराय च।
दन्तमुक्ति परस्त्रोत्र दत्तात्रेय नमोऽस्तुते ॥

दत्त विद्याढ्य लक्ष्मीश दत्त स्वात्म स्वरूपिणें।
गुण निर्गुण रूपाय दत्तात्रेय नमोऽस्तुते ।।
शत्रुनाशकरं स्तोत्रं ज्ञान विज्ञान दायकम्।
सर्व पाप शमं याति दत्तात्रेय नमोऽस्तुते ।।

श्री हनुमानजी

हनुमानजी की महिमा किसने नहीं सुनी। त्रेतायुग में प्रदर्शित उनका शौर्य-पराक्रम आज भी विख्यात है। त्रेता, द्वापर और कलियुग में वे सदैव श्रद्धा-सम्मान के पात्र रहे हैं। कलियुग में तो उन्हें सर्व-समर्थ, प्रत्यक्ष और आशुतोष देवता के रूप में स्मरण किया जाता है। कितने ही विदेशी, विधर्मी भी उनके भक्त हैं। यह एक आश्चर्यजनक सत्य है कि आज भी, श्रद्धापूर्वक स्मरण करने वाले भक्तों को हनुमानज की कृपा, दर्शन, सन्देश और दिव्यता की अनुभूति होती रहती है।

पौराणिक-प्रसङ्गों के अनुसार हनुमानजी—वानरराज (मानवों की एक प्रजाति-विशेष) केशरी के पुत्र हैं। वायुदेवता के आशीर्वाद से, उन्होंने माता अंजनी की कोख से जन्म लिया और शैशव से ही अजेय पराक्रम का प्रदर्शन करने लगे।

हनुमानजी शक्ति के आगार हैं, भक्ति के भण्डार हैं, धैर्य के हिमालय हैं और सहनशीलता के समुद्र हैं। विद्वत्ता में वे अद्वितीय हैं, राजनीति, कूटनीति और दूतकला के विशेषज्ञ हैं। सङ्गीत में उनकी गहरी रुचि है। वेद-शास्त्र और व्याकरण के ज्ञाता होने के साथ ही, वे मल्लविद्या में भी पारङ्गत हैं। परम आस्तिक, वैभव-विलास से योजनों दूर, आजन्म ब्रह्मचारी, रोम-रोम से वैष्णव, श्रीरामचन्द्र के अनन्य-भक्त, परदुःख-कातर और समस्त प्रकार की आपदाओं का निवारण करने में समर्थ हनुमानजी महान् योगी, सिद्ध-तन्त्रज्ञ और ज्ञान-विज्ञान के निधान हैं।

त्रेता में उन्होंने श्रीराम की सेवा में रत रहते हुए अपनी अलौकिक क्षमता का प्रदर्शन किया। समुद्र-लंघन, सुरसा का मान-दमन, महारथी रावण की राजधानी को उसके देखते-देखते भस्मीभूत कर देना, लक्ष्मण-मूर्च्छा पर सुदूर हिमालय-क्षेत्र से कुछ ही घण्टों में द्रोणागिरि-पर्वत समेत

संजीवनी-ओषधि ले आना, युद्ध-क्षेत्र में मेघनाद जैसे अपराजेय राक्षस-योद्धाओं को तेजहत कर देना—यह सब उनके चरित्र के वन्दनीय पहलू हैं। द्वापर में—महाभारत-युद्ध के समय भगवान श्रीकृष्ण (जो श्रीराम के ही अवतार थे) के निर्देशानुसार अर्जुन की रक्षार्थ, उसके रथ की पताका पर लघु रूप में उपस्थित रहना, और आज कलियुग में भी यत्र-तत्र भक्तों को दर्शन देते रहना—उनकी कालजयी क्षमता के प्रमाण हैं।

हनुमानजी की उपासना में सबसे बड़ा प्रतिबन्ध है—ब्रह्मचर्य। उनकी प्रतिमा, स्थान, मन्दिर अथवा कथा-पूजा के स्थान पर शुद्धता अनिवार्य है। किसी भी प्रकार की अपवित्रता—व्यावहारिक अथवा वैचारिक—वहाँ नहीं होनी चाहिए। यही कारण है कि बहुत से लोग उनकी प्रतिमा घर में स्थापित नहीं करते। वस्तुतः पूर्ण श्रद्धा, शुचिता, आस्था और तन्मयता के साथ आज भी यदि कोई व्यक्ति हनुमानजी का स्मरण, चिन्तन, वन्दन अथवा पूजन करता है, तो वह अवश्य ही सङ्कट-मुक्त हो जाता है।

हिन्दू-समाज में ही नहीं, मुसलमानों में भी बहुसंख्य-जन हनुमानजी पर अगाध श्रद्धा रखते हैं। उत्तर-प्रदेश की राजधानी और इतिहास-पुराण की प्रसिद्ध पुरातन-नगरी लखनऊ में आज भी वहाँ के मुसलमान-नागरिक हनुमानजी के भक्त हैं। नवाबी शासन-काल में, एक बन्दर को (जो हनुमानजी का प्रतीक माना जाता है) मार देने के परिणाम-स्वरूप नवाब को बहुत यन्त्रणा सहनी पड़ी थी। तब से मुस्लिम-समाज में हनुमानजी के प्रति विशेष श्रद्धा-आस्था की भावना आज तक अक्षुण्ण चली आ रही है। बुढ़वा-मङ्गल जैसे हनुमानजी से सम्बन्धित पर्वों पर वहाँ की हिन्दू-मुस्लिम जनता का शक्ति-शान देखते ही बनता है। प्रयाग की (सङ्गम के पास) हनुमानजी की प्रतिमा देश-विख्यात है। अयोध्या में आज भी प्रति-क्षण वे उपस्थित माने जाते हैं। सारांश यह है कि हनुमान-जी कलियुग के प्रत्यक्ष देवता हैं। उनके भक्तों की संख्या अगणित है, और उनमें से अधिकांश को हनुमत्कृपा की अनुभूति होती रहती है।

हनुमानजी के विषय में एक रोचक तथ्य है कि अन्य देवता जहाँ प्रतिक्षण अपनी शक्ति-सामर्थ्य से प्रेरित रहते हैं, अपने प्रभाव-वैभव का बोध रखते हैं, वहाँ हनुमानजी को यह सब विस्मृत रहता है। ऐसी मान्यता है कि शैशव-काल में उनके पराक्रम और चाञ्चल्य से क्षुब्ध

होकर किसी मुनि ने शाप देकर उनकी चञ्चलता और क्रियाशीलता का कीलन कर दिया था। उस शाप के कारण वे अपनी शक्ति को भूले रहते हैं। मुनि द्वारा उपचार बताये जाने पर, भक्तजन तदनुसार हनुमानजी को उनके अतीत के पौरुष का स्मरण कराते हैं। अपने अतीत के शौर्य-पराक्रम को सुनकर वह विस्मृति- मुक्त हो जाते हैं, और तब अपनी अजेय-शक्ति के द्वारा तुरन्त ही भक्त की रक्षार्थ, उसके सङ्कट के निवारणार्थ सन्नद्ध हो जाते हैं। यही कारण है कि सङ्कट-नाश की कामना रखने वाले भक्तजन हनुमानजी की स्तुति में उनके पूर्वकृत कार्यों का यशोगान करते हैं।

तुलसीदासजी हनुमानजी के अनन्य-भक्त थे। उन्होंने 'हनुमान-चालीसा' नामक एक अति सरल स्तुति की रचना की थी। विश्व के हिन्दू-समुदाय में आज भी 'हनुमान-चालीसा' से अधिक प्रचलित अन्य कोई देव-स्तुति नहीं है। यह भी देखा जाता है कि नियमित रूप से हनुमान-चालीसा का श्रद्धापूर्वक पाठ करते हुए हनुमत पूजा करने वाले जन आपदाओं से अवश्य ही मुक्त हो जाते हैं।

स्तुति, नाम-जप, मन्त्र अथवा चरित्र का स्मरण-पठन करके कोई भी साधक हनुमानजी की कृपा प्राप्त कर सकता है। आवश्यकता है—केवल, अखण्ड-विश्वास की! स्वार्थ-साधन और अनुचित-लाभ की प्रेरणा से मुक्ति, यदि कोई वास्तविक रूप में पीड़ित-जन उनका स्मरण करता है, तो वे अवश्य ही उस पर द्रवीभूत हो जाते हैं।

श्री हनुमत-स्तुति :

मनोजवं मारुततुल्य वेगं,
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथ मुख्यं,
श्री रामदूतं शरणं प्रपद्यै॥

अतुलित बलधामं स्वर्णशैलाभ देहं,
दनुजवन कृशानु ज्ञानिनामाग्रगण्यम्।
सकल गुणनिधानं वानराणामधीशं,
रघुपति प्रियभक्तं वातजातं नमामि॥

उल्लंघ्य सिन्धो सलिलं सलीलं,
य: शोकवह्निं जनकात्मजाया: ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्का,
नमामि ते प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥
हनुमान सर्व धर्मज्ञ: सर्वकार्यं विधायक:,
अकस्मादागतोत्पातं याशयाशु नमोऽस्तुते ।
हनुमतं जनी सूनु: वायुपुत्रो महाबल:,
अकस्मात् आगतोत्पातं याशयाशु नमोऽस्तुते ॥
तप्तकाञ्चन सङ्काशं हृदये विहिताञ्जलिम्,
किरीटिनं कुण्डलिनं ध्यायेत् वानरनायकम् ॥

श्रीहनुमत-स्तोत्र :

लाङ् गूलमृष्टवियदम्बुधिमध्यमार्ग–
मुत्प्लुत्य यान्तममरेन्द्रमुदो निदानम् ।
आस्फालितस्वकभुजस्फुटिताद्रिकाण्डं,
द्राङ् मैथिलीनयननन्दनमद्य वन्दे ॥
मध्येनिशाचरमहाभयदुर्विषह्यं,
घोराद्भुतव्रतमियं यददश्चचार ।
पत्ये तदस्य बहुधापरिणामदूतं,
सीतापुरस्कृततनुं हनुमन्तमीडे ॥
य: पादपङ्कजयुगं रघुनाथपत्न्या,
नैराश्यरूपितविरक्तमपि स्वरागै: ।
प्रागेव रागि विदधे बहु वन्दतानो,
वन्देऽञ्जनाजनुषमेष विशेषतुष्टयै ॥
ताञ्जानकीविरहवेदनहेतुभूतान्,
द्रागाकलय्य सदशोनवनीयवृक्षान् ।
लंकालकानिव घनानुदपाटयद्य–
स्तं हेमसुन्दरकपिं प्रणमामि पुष्टयै ॥
घोषप्रतिध्वनितशैलगुहासहस्र–
सम्भ्रान्तनादितवलन्मृगनाथयूथम ।
अक्षक्षयक्षणविलक्षितरासेन्द्र–
मिन्द्रं कपीन्द्रपृतनावलयस्य वन्दे ॥

हेलाविलंघितमहार्णवमप्यमन्दं,
घूर्णद्गदाविहतिविक्षतराक्षसेषु ।
स्वम्मोदवारिधिमपारमिवेक्षमाणं,
वन्देऽहमक्षयकुमारकमारकेशम् ॥

जम्भारिजित्प्रसभलम्भितपाशबन्धं,
ब्रह्मानुरोधमिव तत्क्षणमुद्वहन्तम् ।
रौद्रावतारमपि रावणदीर्घदृष्टि-
संकोचकारणमुदारहरिं भजामि ॥

दर्पोन्नमन्निशिचरेश्वरमूर्धचञ्च-
त्कोटीरचुम्बिनिजबिम्बमुदीक्ष्य हृष्टम् ।
पश्यन्तमात्मभुजयन्त्रणपिष्यमाण-
तत्कायशोणितनिपातमपेक्षि वक्षः ॥

अक्षप्रभृत्यमरविक्रमवीरनाश-
क्रोधादिव द्रुतमुदञ्चितचन्द्रहासाम् ।
निद्रापिताभ्रघनगर्जनघोरघोषैः,
संस्तम्भयन्तमभिनौमि दशास्यमूर्तिम् ॥

आशंस्यमानविजयं रघुनाथधाम,
शंसन्तमात्मकृतभूरिपराक्रमेण ।
दौत्ये समागम सभन्वयमादिशन्तं,
वन्दे हरेः क्षितिभृतः पृतनाप्रधानम् ॥

यस्यौचितीं समुपदिष्टवतोऽधिपुच्छं,
दम्भान्धितां धियमपेक्ष्य विवर्द्धमानः ।
नक्तञ्चराधिपतिरोषहिरण्यरेता,
लङ्कां दिधक्षुरपतत्तमहं वृणोमि ॥

क्रन्दन्निशाचरकुलां ज्वलनावलीढैः
साक्षाद्गृहैरिव बहिः परिदेवमानाम् ।
स्तब्धस्वपुच्छतटलग्नकृपीटयोनि-
दन्दह्यमाननगरीं परिगाहमानाम् ॥

मूर्तैर्गृहासुभिरिव द्युतुरम् व्रजद्भि-
र्व्योम्नि क्षणं परिगतं पतगैर्ज्वलद्भिः ।
पीताम्बरम् दधतमुच्छ्रितदीप्ति पुच्छ,
सेनां वहद्विहगराजमिवाहमीडे ॥

स्तम्भीभवत्स्वगुरुबालधिलग्नवह्नि–
ज्वालोल्ललद्ध्वजपटामिव देवतुष्ट्यै ।
वन्दे यथोपरि पुरो दिवि दर्शयन्त–
मद्धैव रामविजयाजिकवैजयन्तीम् ॥
रक्षश्चयैकचितकक्षकूपश्चितौ यः,
सीताशुचो निजविलोकनतो मृतायाः ।
दाहं व्यधादिव तदन्त्यविधेयभूतं,
लाङ्गूलदत्तदहनेन मुदे स नोऽस्तु ॥
आशुद्धये रघुपतिप्रणयैकसाक्ष्ये,
वैदेहराजदुहितुः सरिदीश्वराय ।
न्यासं ददानमिव पावकमापतन्त–
मब्धौ प्रभञ्जनतनूजनु भजामि ॥

रक्षस्स्वतृप्तिरुडशान्तिविशेषशोण–
मक्षक्षयक्षणविधानुमितात्मदाक्ष्यम् ।
भास्वत्प्रभातरविभानुभरावभासं,
लंकाभयंकरममुं भगवन्तमीडे ॥
तीर्त्वोदधिं जनकजार्पितमाप्य चूडा–
रत्नं रिपोरपि पुरम् परमस्य दग्ध्वा ।
श्रीरामहर्षगलदश्वभिशिच्यमानं,
तं ब्रह्मचारिवरवानरमाश्रयेऽहम् ॥

यः प्राणवायुजनितो गिरिशस्य शान्तः,
शिष्योऽपि गौतमगुरुर्मुनिशंकरात्मा ।
हृद्यो हरस्य हरिवद्धरितां गतोऽपि,
धीधैर्यशास्त्रविभवेऽतुलमाश्रये तम् ॥
स्कन्धेऽधिवाह्य जगगदुत्तरगीतिरीत्या,
यः पार्वतीश्वरमतोषयदाशुतोषम् ।
तस्मादवाप च वरानपरानवाप्यान्,
तं वानरम् परमवैष्णवमीशमीडे ॥

भगवान सूर्य

भगवान सूर्य प्रकाश के अधिपति हैं। वे प्रखर तेजोमय और अग्नि के समान जाज्वल्यमान हैं। यद्यपि अग्निदेव का अस्तित्व प्रथक् है किन्तु

सूर्यदेव भी अपने प्रखर-उत्ताप और प्रचण्ड तेज के कारण अग्नि जैसे ही प्रदीप्त प्रतीत होते हैं।

नवग्रहों में सूर्यदेव को राजपद प्राप्त है। समस्त ब्रह्माण्ड को उन्हीं से आलोक प्राप्त होता है। सहज ही कल्पना की सकती है कि यदि सूर्यदेव न होते, तो सृष्टि की क्या स्थिति होती? आज का भौतिक-विज्ञान भी स्वीकार करता है कि सृष्टि के अस्तित्व को सुरक्षित रखने, और उसके विकास तथा पोषण में सूर्यदेव का योगदान सर्वाधिक है।

वेदों में सूर्यदेव को आदिदेव मानकर उनकी वन्दना की गयी है। सृष्टि के पालन-पोषण, प्राणियों की सुरक्षा, समृद्धि और मानवों को दीर्घ-जीवन तथा आरोग्य प्रदान करने के लिए सूर्यदेव की स्तुति में सैकड़ों श्लोक प्राप्त होते हैं।

सूर्यदेव—ज्ञान, विवेक, विद्वत्ता, यश, सम्मान, पारिवारिक-सौख्य और श्री-समृद्धि के प्रदाता हैं। भारत में ही नहीं, अन्य देशों में सूर्य को देवता के रूप में स्वीकार करके, उनकी स्तुति की जाती है। विभिन्न पौराणिक-ऐतिहासिक प्रसङ्गों से ज्ञात होता है कि सूर्यदेव की उपासना करके, कितने जनों ने विश्वव्यापी कीर्त्ति अर्जित की है। हनुमानजी ने किशोरावस्था में वेदाध्ययन के लिए भगवान सूर्यदेव की शिष्यता ग्रहण की थी की। वे सूर्यदेव के रथ के आगे-आगे छः महीने तक निरन्तर चलते रहे, क्योंकि भुवनभास्कर भगवान सूर्यदेव को तो विश्व-पर्यटन के नाते प्रतिक्षण गतिमान (व्यस्त) रहना है। इस सूर्य-रथ के आगे चलते-चलते ही हनुमानजी ने वेद-वेदाङ्ग का ज्ञान प्राप्त किया था।

द्वापर-युगीन राजा पाण्डु की रानी कुन्ती—जिनकी गणना पञ्च-कन्याओं में होती है—को सूर्यदेव के वरदान से दानवीर-कर्ण जैसे पुत्र की प्राप्ति हुई थी। यह बात अलग है कि कौमार्य-कलङ्क के भय से उसने उस शिशु को नदी में फेंक दिया था। परन्तु सूर्य-पुत्र को मृत्यु भी इतनी सरलता से कैसे छू सकती थी? फलतः एक धीवर ने जल में प्रवाहमान उस शिशु को निकाल कर पुत्र की भाँति पाला। वही धीवर द्वारा पालित-शिशु आगे चलकर महाभारत-युद्ध का सर्व-विख्यात महारथी बना—कर्ण, जो अपनी वीरता, पराक्रम, उदारता और दानशीलता के लिए भारतीय-इतिहास का गौरव-स्तम्भ माना गया।

श्री सूर्यदेव की सन्तानों से ही आगे चलकर सूर्यवंश की स्थापना हुई, जिसमें काल-क्रम से—इक्ष्वाकु, रघु और रामचन्द्र जैसे प्रतापी राजा

हुए। भारतीय-इतिहास में सूर्यवंशीय-क्षत्रियों की गरिमा और प्रतिष्ठा आज भी सर्वत्र सम्मान्य है।

बल्लभी-राज्य के संस्थापक और सौराष्ट्र के युग-पुरुष सम्राट् शिलादित्य भी सूर्यदेव की कृपा से ही जन्मे थे। उनकी माता—सुभागा, एक ब्राह्मण-कन्या थी, जो विवाह के तुरन्त बाद ही विधवा हो गयी थीं। पारिवारिक-यातना से त्रस्त होकर वह एक सूर्य-मन्दिर के पुजारी के आश्रम में रहने लगी थीं। वहीं सूर्यदेव की कृपा से उनके एक पुत्र और एक पुत्री, अनायास ही एक-रात आ गये थे। वही पुत्र सम्राट् शिलादित्य के नाम से विख्यात हुआ। काल-क्रम से उसी की पीढ़ियों में—नागादित्य, गुहादित्य और बाप्पादित्य जैसे यशोधन नरेश हुए। राणाप्रताप का पूर्व-पुरुष बाप्पा-रावल, वस्तुतः वही बाप्पादित्य था। थोड़े मतभेद के साथ, इतिहास में आज भी उस महान नरेश का जीवन-वृत्त खलभोज, शैलाधीश और बाप्पारावल के नाम से उपलब्ध है।

अस्तु, सूर्यदेव—यश, प्रताप, सम्मान, तेज और श्री-समृद्धि देने वाले परम-समर्थ देवता हैं। प्रतिमा की पूजा, आराधना, स्तुति, मन्त्र-जप अथवा यन्त्र-पूजन किसी भी रूप में उनकी शरण ली जाय, तो वे अवश्य ही कृपालु होकर भक्त का कष्ट दूर करते हैं। सम्मान, प्रतिष्ठा, ज्ञान, विवेक और विद्या की कामना रखने वालों के लिए सूर्योपासना बहुत ही लाभकारी है। स्वास्थ्य और दीर्घ-जीवन के लिए तो योगीजन भी सूर्योपासना करते हैं।

श्री सूर्यदेव-स्तुति :

प्रातः स्मरामि खलु तत् सवितुर्वरेण्यं,
रूपं हि मण्डलमृयोऽथ तनुर्यजूंषि।
सामानि यस्य किरणाः प्रभवादि हेतुम्,
ब्रह्माहरात्म कमलक्ष्यमचिन्त्यरूपम्॥

प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ्मनोभिः,
ब्रह्मेन्द्रपूर्वक सुरैर्नतुमर्चितं च।
वृष्टि प्रमोचन विनिग्रहहेतु भूतं,
त्रैलोक्य पालनपरम् त्रिगुणात्मकं च॥

प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्ति,
पापौघ शत्रुभयरोग हरं परम च।
तं सर्वलोक कलनात्मक कालमूर्तिम्,
गो कण्ठ बन्धन विमोचनमादि देवम् ॥
आदित्य: प्रथमं नामं द्वितीयं तु दिवाकर:,
तृतीयं भास्कर: प्रोक्तं चतुर्थं च प्रभाकर: ॥
पञ्चमं च सहस्त्रांश षष्ठम् चैव त्रिलोचन: ।
सप्तमं हरिदश्वश्च अष्टमं च विभावसु: ॥
नवमं दिनकृत् प्रोक्तं दशमं द्वादशात्मक: ।
एकादशं त्रयीमूर्त्ति: द्वादशं सूर्यं एव च ॥
रक्ताम्बुजासनमशेष गुणैण सिन्धुम्,
भानुं समस्त जगतामधिपं भजामि।
पद्मद्वयाभयवरान् दधत: कराब्जै:,
माणिक्य मौलि मरुणाङ्ग: रुचि त्रिनेंत्रम् ॥
देदीप्यमान मुकुटं स्फुरन्मकर कुण्डलम् ।
ध्यात्वा सहस्त्र किरणं स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ॥
शिरो मे भास्कर: पातु ललाटं मेऽमितद्युति: ।
नेंत्रे दिनमणि पातु श्रवणें वासरेश्वर: ॥
घ्राणं धर्मं घृणि: पातु वदनं वेदवाहन: ।
जिह्वा मे मानद: पातु कण्ठम् मे सुरवन्दित: ॥
स्कन्धौ प्रभाकर: पातु वक्ष. पातु जनप्रिय: ।
पातु पादौ द्वादशात्मा सर्वांगं सकलेश्वर: ॥

सूर्याष्टक :

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर: ।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तुते ॥ 1 ॥
सप्ताश्वरथमारूढं प्रचण्डं कश्यपात्मजम् ।
श्वेतपद्मधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ 2 ॥
लोहितं रथमारूढं सर्वलोक पितामहम् ।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ 3 ॥
त्रैगुण्यं च महाशूरं ब्रह्मविष्णु महेश्वरम् ।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ 4 ॥

बृं हितं तेजः पुञ्जं च वायुमाकाशमेव च ।
प्रभुं च सर्वलोकानां तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ 5 ॥

बन्धूक पुष्प सङ्काशं हारकुण्डल भूषितम् ।
एक चक्रधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ 6 ॥

तं सूर्यं जगत्कर्तारं महातेजः प्रदीपतम् ।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ 7 ॥

तं सूर्यं जगतां नाथं ज्ञानविज्ञान मोक्षदम् ।
महापाप हरं देवं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ 8 ॥

नवग्रह

विश्वब्रह्माण्ड पर, अखिल सृष्टि पर सौर-मण्डल के समस्त नक्षत्रों, ग्रहों, राशियों और तारा-समूह की रश्मियों का प्रभाव बराबर पड़ता है। यही प्रभाव आँधी, पानी, तूफान, वर्षा, ज्वार-भाटा, अकाल, महामारी, दुर्भिक्ष, समृद्धि, सौमनस्य, अपराध-प्रवृत्ति तथा अन्य प्राकृतिक-मानसिक सम्वेगों को उत्पन्न करके घटाता-बढ़ाता रहता है। आज का भौतिक-विज्ञान भी इस तथ्य को मुक्त-कण्ठ से स्वीकार कर रहा है।

भारतीय-अध्यात्म में, आकाश-स्थित सौर-मण्डल के प्रमुख नवग्रहों को प्रबल शक्तिशाली मानकर उनका विस्तृत विवेचन किया गया है। विश्व की अन्य अनेक संस्कृतियों में भी ये ग्रह थोड़े नामान्तर से परम शक्तिशाली देवता स्वीकार किये गये हैं। क्रमानुसार ये नवग्रह इस प्रकार माने गये हैं—सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु।

आकाश-मण्डल में भ्रमण करते हुए, ये सदैव अपनी स्थिति बदलते रहते हैं। स्थान और स्थिति-परिवर्त्तन के कारण इनसे विकसित होने वाली रश्मियाँ दूरी और कोण के अनुपात में, भिन्नतापूर्ण प्रभाव उत्पन्न करती हैं। ये समस्त ग्रह, स्थिति-विशेष के आधार पर, जहाँ एक ओर परम शुभ और सौख्यदायक हो जाते हैं, वहीं इनकी विपरीतता—सर्वनाश, भयङ्कर-पीड़ा, त्रास और अनेक सङ्कटों का कारण बन जाती है।

देव रूप में नवग्रहों की उपासना के लिए—मन्त्र-जप, यज्ञ, दान आदि की व्यवस्था की गयी है। किन्तु आज के युग में वह सब दुःसाध्य

जैसा प्रतीत हो रहा है। ऐसी स्थिति में यदि नियमित रूप से स्नानोपरान्त, अथवा प्रातः उठते ही, या सन्ध्या समय की आरती-बेला में, श्रद्धापूर्वक नवग्रहों का स्तवन कर लिया जाय, तो उनका कोप शान्त होकर अनुकूलता प्राप्त होने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

नवग्रह-स्तुति :

ब्रह्मा मुरारिः त्रिपुरान्तकारी,
भानुः शशि भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनि राहु केतवः,
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

सूर्य—

जपाकुसुम सङ्काशं काश्यपेयं महद्द्युतिम्।
ध्वान्तारिं सर्व पापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥

चन्द्र—

दधि शंख तुषाराभं, क्षीरोदार्णव सम्भवम्।
नमामि शशिनं सोमं, शम्भोर्मुकुट भूषणम्॥

मङ्गल—

धरणी गर्भ सम्भूतं विद्युत्कान्ति समप्रभं।
कुमारं शक्ति हस्तं च मङ्गलं प्रणमाम्यहम्॥

बुध—

प्रियंगु कलिका श्यामं रूपेणाप्रतिमं बुधम्।
सौम्यं सौम्य गुणोपेतं तं बुधं प्रणमाम्यहम्॥

गुरु—

देवानां च ऋषीणां च गुरुम् कांचन सन्निभम्।
बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम्॥

शुक्र—

हिम कुन्द मृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम्।
सर्व शास्त्र प्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम्॥

शनि—

नीलांजन समाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम्।
छायामात्तण्डसम्भूतं तं नमामि शनैश्चरम्॥

राहु—

अर्द्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्य विमर्दनम् ।
सिंहिका गर्भ सम्भूतं तं राहुम् प्रणमाम्यहम् ।।

केतु—

पलाश पुष्प सङ्काशं तारका ग्रह मस्तकम् ।
रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम् ।।

श्री भैरवनाथ

श्री भैरवजी भगवान शिव के अति प्रिय, विश्वासपात्र, निकट और समर्थ गण हैं । वे स्वयं में देवताओं की भाँति पूज्य हैं । कुछ विद्वान उन्हें प्रकारान्तर से शिव का अवतार मानते हैं । प्रचलित मान्यता के अनुसार भैरवजी शिवजी के सर्वप्रधान गण हैं—शिव-दरबार के अध्यक्ष अथवा मुख्य सचिव । उन्हें शिवजी के गणों में सर्वोच्च अधिकारी माना जाता है । प्रत्येक शिव-मन्दिर की अदृश्य रूप में देखभाल (भौतिक नहीं, सात्त्विकता) श्री भैरवजी ही करते है । जहाँ भी शिवजी का मन्दिर निर्मित होता है, वहाँ रक्षक (कोतवाल) के रूप में भैरवजी की प्रतिमा भी स्थापित की जाती है । जहाँ नहीं की जाती, वहाँ मानसिक रूप में उनकी उपस्थिति की कल्पना करके उनकी पूजा की जाती है ।

काशी, उज्जयिनी, केदारनाथ आदि के समस्त मन्दिरों, में, जहाँ शिवजी के विख्यात श्री-विग्रह (ज्योर्लिङ्ग) स्थापित हैं, वहाँ भैरवजी भी कहीं न कहीं दृष्टिगोचर होते हैं । शिवजी के गणों में वीरभद्र का भी नाम प्रसिद्ध है, किन्तु वह मात्र अनुचर हैं, जब कि भैरवजी स्वयं समर्थ और देव-तुल्य अधिकार-सम्पन्न हैं । यहाँ तक कि उन्हें शिवजी का प्रतिरूप अथवा स्थानापन्न भी माना जाता है ।

भैरवजी के अनेक रूप हैं—कालभैरव, रुद्रभैरव और बटुकभैरव आदि । उज्जयिनी के कालभैरव की प्रतिमा विश्व-विख्यात है । तन्त्र-शाधना में बटुक-भैरव को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है । वैसे किसी भी रूप में भैरवजी की स्तुति की जाय, वह निस्सन्देह फलदायक होती है । यद्यपि भैरवजी की रूपाकृति भयङ्कर है, देखकर रोमाञ्च हो जाता है । किन्तु भक्तों पर कृपालु होकर, उनका सङ्कट निवारण करने में वे सबसे आगे रहते हैं । भय, आपदा, अभाव, क्लेश-निवारण के उद्देश्य से, भक्तजन उनकी स्तुति बड़ी श्रद्धा से करते हैं ।

भैरव-स्तुति :

कर कलित कपालः कुण्डली दण्डपाणिः,
तरुण तिमिर नीलो व्यालयज्ञोपवीती।
क्रतु समय सपर्या विघ्न विच्छेद हेतुः,
जयति बटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम् ॥
वन्दे बालं स्फटिक सदृशं कुण्डलोद्भासितांगं,
दिव्याकल्पैर्नेव मणिमते किंकिणी नूपुराढ्यै ॥
दीप्ताकारं विशदवदनं सुप्रसन्नं त्रिनेत्रं,
हस्ताग्राभ्यां बटुक सदृशं शूलदण्डौदधानम् ॥
शुद्ध स्फटिक संकाशं सहस्रादित्य वर्चसं,
नील जीमूत संकाशं नीलांजन समप्रभम्।
अष्टबाहुं त्रिनयनं चतुर्बाहुं द्विबाहुकं,
दंष्ट्रा कराल वदनं नूपुरारानसंकुलम् ॥
भुजङ्गमेखलंदेवं अग्निवर्णशिरोरुहं,
दिगम्बरं कुमारेशं बटुकाख्यं महाबलम् ॥
खट्वाङ्गमसि पाशं च शूलं दक्षिण मागतः,
डमरूं च कपालं च वरदं भुजंगं तथा।
अग्निवर्ण समोपेतं सारमेय समन्वितम् ॥
ह्रीं—भैरवो भूतनाथश्च भूतात्मा भूतभावनः।
क्षेत्रदः क्षेत्रपालश्च क्षेत्रज्ञः क्षत्रियो विराट् ॥
श्मसानवासीः मांसाशीः खर्पराशीः स्मरान्तकृत्।
रक्तपः वानपः सिद्धः सिद्धिदः सिद्धसेवितः ॥
कंकालः कालशमनः कलाकाष्ठातनुः कविः।
त्रिनेत्रो बहुनेत्रश्च तथा पिङ्गललोचनः ॥
शूलपाणिः खड्गपाणिः कंकाली धूम्रलोचनः।
अभीरु भैरवोनाथ भूतयो योगिनीपतिः ॥
धनदः धनहारी च धनवान प्रीतिभावनः।
नागहारो नागपाशो व्योमकेशः कपालभृत ॥
कालः कपालमाली च कमनीयः कलानिधिः।
त्रिलोचनो ज्वलत् नेत्रः त्रिशिखी च त्रिलोकपः ॥

त्रिनेत्र तनयो डिम्भः शान्तः शान्तजनप्रियः ।
बटुक वटुवेशश्च खट्वाङ्गवर धारकः ॥

भूताध्यक्षः पशुपतिर्भिक्षुकः परिचारकः ।
धूर्तो दिगम्बरः शूली हरिणः पाण्डुलोचनः ॥

प्रशान्तः शान्तिदः सिद्धः शंकरः प्रियबान्धवः ।
अष्टमूर्त्तिर्निधीशश्च ज्ञानचक्षु तपोमयः ॥

अष्टाधारः षडाधारः सर्पयुक्त शिखीमखः ।
भूधरो भूधराधीशो भूपतिर्भूधरात्मजः ॥

कंकालधारी मुण्डी च नागयज्ञोपवीतवान् ।
जृम्भणो मोहनः स्तम्भी मारणः क्षोभणः तथा ॥

शुद्धनीलांजन प्रख्यो दैत्यहा मुण्डभूषितः ।
बलिभुक् बलिभुक्नाथो बालोबाल पराक्रमः ॥

सर्वापत्तारणो दुर्गो दुष्टभूत निषेवितः ।
कामी कलानिधिः कान्तः कामिनीवशकृत्वशी ॥

वारं वारं भुवनजननं प्रोच्यते साधुवादः ।
सत्यं सत्यं जगतिसकले भैरवोदेव एकः ॥

यां यां सिद्धि भुवनजठरे कामयेन् मानवो यः ।
तां तां सिद्धि वितरति सदा भैरवः सुप्रसन्नः ॥

विभ्राणः शुभ्रवर्णं द्विगुणनवभुजं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रं ।
ज्ञानेमुद्रेन्द्र शास्त्रं सविषममृतकं शंख भैषज्यचापम् ॥

शूलं खट्वाङ्ग बाणान् डमरुमसि गदा वह्निमारोग्य मालाम् ।
इष्टामीतिं चदोर्भिर्जयति खलु महाभैरवः सर्वसिद्धयै ॥

क्वाकाशः क्व समीरणः क्व दहनः क्वापश्चय विश्वम्भरा ।
क्व ब्रह्मा क्व जनार्दनः क्व तरणिः क्वेन्दुश्च देवासुराः ॥

कल्पान्ते दिगिभेशवत् प्रमुदितः श्रीसिद्ध योगीश्वरः ।
क्रीड़ा नाटक नायको विजयते देहो महाभैरवः ॥

भैरवजी की सबसे सरल स्तुति तो यह है कि उनके नाम मात्र का स्मरण किया जाय। 'नाम-स्मरण' के लिए मन्त्र की भाँति इस प्रकार उनका नाम-जप (कहीं भी, किसी भी स्थिति में) किया जा सकता है—

'भैरवाय नमः' अथवा 'ह्रीं भैरवाय नमः' अथवा 'ॐ भैरवाय नमः' अथवा 'ॐ ह्रीं भैरवाय नमः'।

इसी प्रकार उनके कालभैरव अथवा बटुकभैरव रूप का भी नाम-जप के द्वारा स्मरण किया जा सकता है। श्रद्धापूर्वक किसी भी नाम से स्मरण किया जाय, तो वे दयार्द्र होकर भक्त की रक्षा हेतु, उसके पास किसी न किसी दृश्य-अदृश्य रूप में अवश्य ही पहुँच जाते हैं।

कालभैरव रूप के लिए—'कालभैरवाय नमः' और बटुकभैरव के लिए—'बटुक भैरवाय नमः' का जप किया जाय, तो यह भी भैरव-स्तुति का एक प्रभावशाली रूप माना जाता है।

[भैरवजी की पूजा में कुछ विद्वानों के मतानुसार मदिरा को नैवेद्य के रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक है। किन्तु, जो साधक मदिरा नहीं अर्पित कर सकते, वे गङ्गाजल का भी प्रयोग कर सकते हैं। जैसे, शाक्त-साधक देवी की पूजा में 'बलि' के विकल्प में, मांसादि की जगह नारियल अर्पित करके साधना-विधान का पालन कर लेते हैं।]

●

11

देव्योपासना

साधना :

देवी अथवा किसी भी देवता या दैवी-तत्त्व की साधना का विषय हो, उसमें सफलता प्राप्त करने के लिए 'श्रद्धा' सबसे पहले और सर्वाधिक आवश्यक होती है। श्रद्धा के अभाव में, चाहे जैसे विधि-विधान से उपासना की गयी हो, वह निरर्थक ही सिद्ध होती है। आस्था, विश्वास, निष्ठा और भक्ति—यह सब उसी 'श्रद्धा' के प्रतिरूप हैं। श्रद्धा के बाद विधि का महत्त्व माना गया है। विधि की व्याख्या में विधान, नियम, पद्धति आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं। विधि के पश्चात् निषेध की ओर भी देखना चाहिए। यदि निषेध के सम्बन्ध में साधक को ज्ञान नहीं है और विधिवत् उपासना करते हुए भी, भ्रम से कहीं किसी निषेध का उल्लंघन कर जाता है, तो उसकी साधना खण्डित हो जाती है। यही कारण है कि ऐसे साधना, उपासना आदि कार्यों में गुरु की आवश्यकता प्रतिपादित की गयी है।

गुरु अपने ज्ञान और अनुभव से साधक का मार्ग-दर्शन करता रहता है। केवल पुस्तक पढ़कर साधना की पद्धति समझ में आ जाये, ऐसा सबको सम्भव नहीं होता। यदि पाठक—योग्य विद्वान् और अनुभवी है, तब तो वह पुस्तक के माध्यम से पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर लेगा, परन्तु सामान्य व्यक्ति के लिए, पुस्तक से अधिक गुरु का प्रत्यक्ष निर्देश विशेष रूप से लाभकारी रहता है।

अब यह बात अलग है कि वह गुरु कैसा, कितना योग्य अनुभवी और सात्त्विक मनोवृत्ति का है। यदि सचमुच वह एक आदर्श-गुरु के गुणों से सम्पन्न है, तो अवश्य ही साधक को अपने लक्ष्य की प्राप्ति होगी। परन्तु यदि वह गुरु केवल आडम्बर-सेवी, स्वार्थ और लोभ से युक्त कोई सामान्य सांसारिक-व्यक्ति है, तब उसका निर्देशन कोई सुप्रभाव नहीं डाल सकेगा। आजकल के अधिकांश गुरु और स्वामी ऐसे ही हैं। भव्य वेशभूषा और

मधुर वागजाल के बावजूद न तो वे साधना के बारे में कुछ जानते हैं, और न साधक को सफलता ही दिला पाते हैं। उनका लक्ष्य मात्र यह रहता है कि किसी तरह साधक अपने समस्त परिवारी-जनों के सहित उनका अन्ध-भक्त बन जाये और घर की भारी रकम उन्हें अर्पित करके बराबर दास-वृत्ति अपनाये हुए उनकी सेवा करता रहे। ऐसे छद्माचरण और आडम्बर के लिए आज भारत के कितने ही तथाकथित सन्त, जो स्वयं को 'अवतार' अथवा 'भगवान' घोषित करते हैं, विदेशों तक कुख्यात हैं। देखने में वे दाढ़ी, चोटी, जटाजूटधारी, भगवा वस्त्र पहनने वाले, प्रवचन में ज्ञान-ध्यान और अपनी करामातों का रोचक वर्णन करते हुए, स्वयं को अलौकिक पुरुष सिद्ध करते हैं, परन्तु वास्तव में वे माया-मोह में लिप्त, पक्के व्यवसायी, षड़यन्त्री, और व्यापारी होते हैं। ऐसे महापुरुषों से साधक को कोई आध्यात्मिक-लाभ नहीं हो पाता।

गुरु का विकल्प :

गुरु का अर्थ है, ज्ञान देने वाला! जो भी व्यक्ति हमें ज्ञान के पथ पर अग्रसर कर सके, हमें दिशा-निर्देश देकर लक्ष्य-प्राप्ति में सहायक बन सके—वही गुरु है। आज के घोर भौतिक और आस्थाहीन युग में गुरु और साधक—दोनों वर्ग लुप्त होते जा रहे हैं। फिर भी जहाँ जो हैं, वे अपनी निष्ठा, साधना, संयम और ज्ञान के बल पर आध्यात्मिक-क्षेत्र में सफल-मनोरथ होते रहते हैं। भौतिक-समृद्धि ही सब कुछ नहीं होती, शान्ति और सन्तुष्टि का स्थान उससे कहीं ऊपर है। अस्तु, यदि किसी साधक को कोई साधना करनी है और आस-पास में कोई योग्य विद्वान् ब्राह्मण-पुरोहित या साधु-सन्त नहीं है, तो उसके लिए विकल्प रूप में निर्देश है कि वह अपनी पुस्तक, जिसे पढ़कर वह साधना की ओर उन्मुख हुआ है, को देवीजी की प्रतिमा मानकर पूर्ण निष्ठा से उसे पढ़ ले। फिर किसी शुभ-मुहूर्त्त में साधना प्रारम्भ करे। गुरु के रूप में वह शिवजी की और जगन्माता के रूप में पार्वतीजी की स्तुति-पूजा करके मानसिक रूप में उन्हीं को अपना गुरु मान ले। फिर पुस्तक पढ़कर उसके निर्देशों का पालन करते हुए साधना प्रारम्भ करे। पूरी साधना-विधि में उसे यह दृढ़ प्रतीति रखनी चाहिए कि शिव और पार्वतीजी मेरे दाँये-बाँये विराजमान हैं और प्रत्येक कार्य को सुधार रहे हैं और मैं उनकी कृपा से निर्विघ्न आगे बढ़ता जा रहा हूँ।

यदि साधक शिवजी का नहीं, बल्कि अन्य किसी देवता का उपासक है, तो अपने उन्हीं इष्टदेवता को गुरु मानकर उपासना प्रारम्भ कर सकता है। जिन्हें ऐसी मानसिक-स्थिरता और किसी देवता-विशेष के प्रति समर्पण भावना नहीं है, वे तत्काल किसी भी देवता की, या केवल दुर्गाजी की शरण ले सकते हैं। आशय यह है कि मनुष्य रूप में गुरु की प्राप्ति सम्भव न हो तो, किसी देवी-देवता की मानसिक-आराधना करते हुए उसी को गुरु के रूप में स्वीकार कर लेना श्रेयस्कर रहता है।

साधना का समय :

वैसे तो किसी भी साधना के लिए प्रा:काल का समय सर्वश्रेष्ठ होता है, परन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में एक निश्चित समय को वरीयता देने का विधान है। किसी साधना में सायंकाल, किसी में अर्द्ध-रात्रि का समय, किसी में प्रभात-बेला और किसी में दोपहर का निर्देश किया गया है। अत: जहाँ जिस समय का संकेत दिया गया हो, वहाँ उसी समय में साधना करनी चाहिए। हाँ, प्रारम्भ करने के दिन शुभ-मुहूर्त्त अवश्य हो। शुभ मुहूर्त्त के लिए स्थानीय-पण्डित, पुरोहित से पूछ लेना अच्छा रहता है। यदि सुविधा हो तो देवी-साधना के लिए नवरात्र का समय लेना चाहिए। वासन्ती और शारदीय-नवरात्र को देव्योपासना के लिए सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त्त माना गया है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक और आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक के दिन 'नवरात्र' कहे जाते हैं, यह अवधि प्रत्येक दृष्टि से प्रत्येक कार्य के लिए परम शुभ मानी गयी है। कोई भी साधना इस समय आरम्भ की जा सकती है। साधना ही नहीं, कितने ही सामाजिक-कार्य, निर्माण तथा व्यवसाय आदि इस अवधि में बड़ी आस्था से आरम्भ किये जाते हैं। देवी-पूजा के लिए तो यह कालावधि सर्वोत्तम कही गयी हैं। दुर्गाजी के किसी भी रूप-अवतार की पूजा-उपासना के लिए नवरात्र का समय परम कल्याणकारी, सफलतादायक. सहज-सिद्ध और मङ्गलमय होता है। अतएव साधकजन प्राय: देवी सम्बधी अनुष्टान 'नवरात्र' में ही कहते हैं। वैसे, वर्ष के मध्य से कभी भी पुरोहित पूछकर किसी शुभ दिन से साधना प्रारम्भ की जा सकती है। वे लोग नक्षत्र, तिथि, योग आदि की गणना करके सरलता से शुभाशुभ की सूचना दे देते हैं। पंचाङ्गजन्त्री देखकर भी शुभाशुभ समय का पता लगाया जा सकता है। परन्तु किसी अभ्यस्त पण्डित से पूछ लेना अधिक निरापद रहता है, कारण कि

वे लोग ज्योतिष की बारीकियों को सामान्य-व्यक्ति की अपेक्षा अधिक समझते हैं। हालाँकि पण्डितों में भी मतभेद रहता है। कोई विद्वान् दिन को वरीयता देते हैं, कोई तिथि को, कोई योग को और कोई नक्षत्र को। उत्तम यह होगा कि सभी दृष्टियों से विचार कर, कोई प्रबलतम और शुद्धतम मुहूर्त्त निकाला जाय। मुहूर्त्त का प्रभाव सुनिश्चित होता है। शुभ-मुहूर्त्त में आरम्भ किया गया कार्य सफलता और सुरक्षा के प्रति आश्वस्त रखता है, जबकि अशुभ-मुहूर्त्त में आरम्भ कार्य सदैव विघ्न-ग्रस्त रहता है। उसमें सफलता तो संदिग्ध होती ही है, और भी कई प्रकार के व्याघात उत्पन्न होकर साधक को पीड़ित करते रहते हैं। इसलिए जब भी कोई साधना (कोई भी कार्य) आरम्भ करना हो, उसके लिए शुभ-मुहूर्त्त— दिन, तिथि आदि की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

प्रयोज्य वस्तुएं :

प्रत्येक साधना में कुछ विशेष सामग्री प्रयुक्त होती है। इसके विषय में भली-भाँति जानकारी करके वह समस्त वस्तुएं पहले से सँजो लेना चाहिए, जैसे आसन, माला, फूल, चन्दन, चित्र, प्रतिमा, यन्त्र, हवन-सामग्री और नैवेद्य आदि।

साधना-विधि :

किसी भी पूजा-उपासना में उसकी विधि, नियम, करणीय, त्याज्य तथा अन्य निर्देशों का पालन अवश्य करना चाहिए। वैसे, तो समन्वय की दृष्टि से कई प्रकार के सरलतम विधान भी बताये गये हैं, परन्तु यदि नियम-पालन के साथ, जो कि अपेक्षाकृत कष्टसाध्य होते हैं, साधना की जाय तो अति उत्तम होता है। अस्तु: यह सब साधक की शारीरिक-क्षमता, वातावरण, आर्थिक-स्थिति, साधनों की उपलब्धता तथा उसकी योग्यता और मानसिकता पर निर्भर है। एक ही नियम सबके लिए आवश्यक और अकाट्य नहीं हैं। सारभूत तथ्य यह है कि पूर्व श्रद्धा और संयम-नियम के साथ साधना की जाय।

साधना-सम्बन्धी कुछ विशेष तथ्य सर्व-स्वीकृत हैं, अत: उनके प्रति साधक को अवश्य ही सजग रहना चाहिए। देवी के चाहे जिस रूप की (किसी भी देवता की) उपासना करनी हो, इन बिन्दुओं को ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए :—

1. स्थान, 2. समय, 3. प्रतिमा-प्रतीक, 4. आसन, 5. माला, 6. मन्त्र, 7. न्यासादि, 8. हवन, 9. दान, 10. निषेध।

संक्षेप में इनका विवरण इस प्रकार है :—

व्यावहारिक दृष्टि से, आज के व्यस्त-युग में साधना के लिए वांछित वातावरण और स्थान मिलना कठिन हो गया है, क्योंकि जिस युग में अध्यात्म-साधना के नियम निर्धारित किये गये थे, आज का वातावरण उससे नितान्त भिन्न है। तब, यान्त्रिक-विस्तार से उत्पन्न प्रदूषण, कोलाहल, शारीरिक-व्याधियाँ और विकृत-मानसिकता का कहीं नाम भी नहीं था। अतः वर्त्तमान परिवेश को देखते हुए प्राचीन नियमों-परम्पराओं से उसका सामञ्जय बिठाया जाये। कारण कि अब न तो पहले जैसी शान्ति है, न सुरक्षा। प्राकृतिक परिवेश भी वैसा नहीं रह गया। आज तो यह हालत है कि अपनी सुन्दरता, अगाध जल-राशि, अद्भुत प्रभाव और पावनता के लिए प्रसिद्ध गङ्गा भी गन्दी और जुगुप्साकारी दीख रही है। सिर्फ गङ्गा ही नहीं, यमुना, घाघरा, सोन, वेतवा, नर्मदा आदि किसीभी नदी का प्रवाह और प्रभाव अब पहले जैसा नहीं रहा। इसी प्रकार पर्वतीय अञ्चलों में में भी अब न तो पहले जैसी शान्ति है, न वह पावनता। वे वनस्पतियाँ और पशु भी नहीं रहे। सर्वत्र तथा-कथित विज्ञान की दानवी-संस्कृति मानवीय-सम्वेदनशीलता, चरित्र और नैतिकता का पददलित करके अट्टहास कर रही है। यही स्थिति सागर-तटों की भी है। संस्कृत-काव्यों में वर्णित उपवन, वन-प्रस्तर, जलाशय, मन्दिर, पर्वताञ्चल और नदी, सागर-तट, सब अपनी प्राकृतिक-सम्पदा से सर्वथा वञ्चित, कृत्रिम-सौन्दर्य का शव-परिधान खड़े हैं। शान्ति, शुचिता, सुरक्षा और आत्म-तुष्टि के स्थान पर अब वहाँ उपद्रव, प्रदूषण, हिंसा-हत्या, कोलाहल और लोभ-चिन्ता का उग्ररूप दृष्टिगत होता है। अतः साधना के लिए प्राचीन नियमों से हटकर व्यावहारिक-मार्ग अपनाना ही श्रेयस्कर होगा।

साधना के नियम :

देवी-साधकों के लिए नियम पालन अनिवार्य होता है। किसी भी देवी-रूप की पूजा-उपासना कर रहे हों, यह आवश्यक है कि तन-मन पर पूर्ण संयम रखकर, नियमपूर्वक उक्त साधना की जाये। तभी उसका अनुकूल परिणाम दृष्टिगत होता है। नियम-विरुद्ध की गयी साधना, न केवल निष्फल हो जाती है, वरन् उससे हानि की आशङ्का भी रहती है। यहाँ

कुछ विशिष्ट नियमों का उल्लेख किया जा रहा है। इनका पालन किसी भी देवी-देवता की उपासना में अनिवार्य होता है।

- साधना के लिए उपयुक्त स्थान का चयन करते समय उसकी शुद्धता, सुरक्षा, वायु, प्रकाश, एकान्त, निर्विघ्नता आदि पर विचार कर लेना चाहिए।
- आसन पर बैठने के पूर्व ही, उपासना में प्रयोज्य सभी वस्तुएं सहेज कर रख ली जायें, ताकि बीच में उठना न पड़े।
- जप के समय चित्त स्थिर रहे। मन इधर-उधर न जाकर, इष्टदेवता पर ही केन्द्रित रहे।
- साधना-काल में साधक का रहन-सहन, भोजन, विश्राम और चिन्तन पूर्णतया सात्त्विक हो। शृङ्गार, विलास, कामुकता, तामस और लोभ आदि से मन को सर्वथा अछूता रखना चाहिए।
- नित्य निवृत्ति के पश्चात्, प्रतिदिन नियमित रूप में साधना करें। मन्त्र-जप की संख्या भी नियमित रहे। उसमें रोज-रोज परिवर्त्तन नहीं होना चाहिए। पहले से ही तय करलें कि मुझे इतने दिनों तक प्रतिदिन इतनी संख्या (माला) में अपने इष्टदेव का मन्त्र जपना है। फिर तदनुसार दैनिक-पूजा में उस संख्या की पूर्त्ति करते रहें।
- चाहे जिस देवी (या देवता) में अपने इष्टदेव का मन्त्र-जप के पूर्व यथासम्भव उसकी पूजा (पञ्चोपचार-षोड़शोपचार) यथा-विधि अवश्य करें।
- भोजन या जलपान के रूप में कोई पदार्थ ग्रहण करने के पूर्व उसे इष्टदेव को अर्पित करें, तदुपरान्त उसे प्रसाद के रूप में लें।
- मन्त्र-जप में उच्चारण शुद्ध, स्पष्ट और सन्तुलित-स्वर में हो। मानसिक अथवा उपांशु, चाहे जिस विधि से जप करें, उसमें एकरूपता तथा नियम-निर्वाह के प्रति सजग रहें।
- साधना-काल में ब्रह्मचर्य, एकान्त, सत्सङ्ग, गुरु-सेवा, परोपकार, मौन, इष्ट-चिन्तन, स्वल्पाहार, देव-प्रार्थना, तीन बार स्नान, भूमि-शयन और मन्त्र-जप के प्रति पूर्ण आस्था-भाव—इन सबका पालन करना चाहिए।
- मन्त्र-जप में गति चाहे जैसी हो—मन्द अथवा तीव्र, परन्तु उच्चारण में शुद्धता अवश्य होनी चाहिए।

- जप के समय मन में इष्टदेवी के प्रति अभङ्ग श्रद्धा, अविचल विश्वास, दृढ़-निश्चय, पूर्ण तन्मयता और इष्टदेव की प्रत्यक्ष अनुभूति का अडिग-विश्वास निरन्तर बना रहना चाहिए।
- मन्त्र-जप के आरम्भ में इष्टदेवी का आह्वान और अन्त में विसर्जन प्रतिदिन अवश्य करते रहें।

बाधा-निवारण :

साधना में स्थान, वातावरण अथवा शारीरिक-स्थिति सम्बन्धी विघ्न आ जाने की आशङ्का रहती है। अत: उसके निवारण हेतु प्रारम्भ में ही उपाय कर लेना चाहिए। किसी भी देवी-देवता की उपासना करनी हो, मन्त्र-जप के पूर्व ही 'स्थान-बन्धन' और 'मुख-शोधन' कर लेने से किसी प्रकार के विघ्न की सम्भावना नहीं रह जाती। स्थान-बन्धन के लिए सम्बन्धित देवता का मन्त्र जपते हुए, साधक को एक जल-रेखा अपने आसन के चारों ओर खींच देनी चाहिए। इसी प्रकार मुख-शोधन के लिए आसन पर बैठकर, साधना (मन्त्र-जप) प्रारम्भ करने के पूर्व, दस बार इष्टदेव से सम्बन्धित मन्त्र का उच्चारण कर लेने से शारीरिक-दोष (छींक, खाँसी, जम्हाई, अँगड़ाई, तन्द्रा, अङ्ग-स्फुरण) शान्त हो जाते हैं। यह नियम देवी-देवता सबकी सपासना पर लागू होता है। नीचे कुछ प्रमुख देवी-स्वरूपों की उपासना से सम्बन्धित 'स्थान-बन्धन' और 'मुख-शोधन' के मन्त्र लिखे जा रहे हैं :—

इष्टदेवी	स्थान-बन्धन	मुख-शोधन
1. दुर्गा	क्रीं ॐ क्रीं	ऐं ऐं ऐं
2. लक्ष्मी	ॐ श्रीं श्रीं ॐ	श्रीं
3. बगलामुखी	ऐं ह्लीं ह्लीं ऐं	ऐं ह्लीं ऐं
4. तारा	ॐ श्रीं ॐ	ह्लीं ह्लं ह्लीं
5. मातङ्गी	ॐ ऐं ॐ	ऐं ॐ ऐं
6. त्रिपुरसुन्दरी	श्रीं ॐ ॐ श्रीं	ॐ
7. धनदा	ॐ श्रीं घ्रं श्रीं ॐ	ॐ
सामान्यत: किसी भी देवता के लिए	ॐ श्रीं	ॐ

निषेध :

पूजा-पाठ, जप-तप और ध्यान-धारणा के लिए, जहाँ विभिन्न प्रकार के नियमों का निर्देश मिलता है; वहीं कुछ बातों का निषेध भी किया गया

है। निषेध और नियम की अवधारणा के पीछे मुख्यत: करणीय और अकरणीय कृत्यों का विवेचन ही मुख्य बिन्दु है। वैसे भी, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हम देखते हैं कि किसी भी स्थिति में सब कुछ अनुकूल और स्वीकार्य नहीं होता। अत: यह जानकारी होना बहुत आवश्यक है कि हम जो कार्य कर रहे हैं (सांसारिक अथवा आध्यात्मिक) उसके क्या नियम हैं, क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए। देवी-उपासना के दौरान जब कोई साधक जप-तप या पूजा-पाठ कर रहा हो, उसे निम्न निषेधों को ध्यान में रखना चाहिए। निषेध पर ध्यान न देने से जाने-अनजाने अनेक प्रकार की त्रुटियाँ हो जाती हैं, जिससे साधना में दोष आ जाता है। वह खण्डित होकर, साधक को समस्त लाभ से वञ्चित कर देती हैं। यही नहीं, कभी-कभी तो वह सङ्कट-ग्रस्त भी हो जाता है। अत: प्रत्येक साधक को इन बिन्दुओं की ओर सजग रहना चाहिए :—

- साधना का स्थान शुद्ध, एकान्त, निरापद हो। अपवित्र स्थान, अथवा वस्त्र, अपवित्र वातावरण और मानसिकता—जप-काल में निषिद्ध है।
- मन्त्र-जप, स्तोत्र-पाठ, ध्यान, प्राणायाम, स्तुति, ग्रन्थ-पाठ आदि में स्वर, गति और उच्चारण के प्रति सावधान रहना चाहिए। इनमें तनिक भी त्रुटि न होने पाये।
- मन्त्र-जप के समय उच्चारण में सहजता को त्यागकर लयबद्ध सङ्गीतात्मक पाठ वर्जित है। इसी प्रकार झूमना, शरीर हिलाना, अङ्ग-सञ्चालन भी त्याज्य है।
- साधना के समय, जप के समय, सम्पूर्ण अनुष्ठान-काल में, सिले हुए वस्त्र नहीं पहिनने चाहिए।
- अपना कोई वस्त्र, आसन, पादुका, माला, पात्र, बिस्तरा, मूर्त्ति, पाठ्य-ग्रन्थ अथवा पूजा का अन्य कोई उपादान किसी को नहीं देना चाहिए।
- वैसे तो सदैव ही, अन्यथा साधना-काल में अवश्य ही—काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, अमर्ष, अपराध-चिन्तन, भय, भ्रम, लोभ, उत्तेजना, दुश्चिन्ता और कलुष से मन-मस्तिष्क को सर्वथा-मुक्त रखना चाहिए।
- रुग्ण-शरीर, अस्थिर मनोदशा, पीड़ा, चोट, विक्षिप्तता और अश्रद्धा, अविश्वास, द्विविधा, अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में जप-तप या पूजा-पाठ नहीं करना चाहिए।
- कोलाहल, उपद्रव, धुआँ, रुदन, चीत्कार, कलह, युद्ध, आक्रमण, हिंस्र-

पशुओं की आशङ्का, शत्रु-भय, रोग, शोक, मृत्यु, अविश्वास, अपमान, घृणा, उपेक्षा, दुर्घटना, अग्निकाण्ड और तूफान आदि के वातावरण में, अथवा इनमें से किसी की आशङ्का होने वाले स्थान पर जप-तप नहीं करना चाहिए।

- मल-मूत्र विसर्जन की इच्छा, श्वास, खाँसी, शारीरिक सम्वेग, मूर्च्छा, उन्मत्तता, ज्वर या अस्थिरता जनक स्थिति में जप नहीं करना चाहिए। ये स्थितियाँ साधना में बाधक होती हैं।
- मन्त्रानुष्ठान, तपश्चर्या अथवा किसी प्रकार की साधना हो, उसमें ब्रह्मचर्य को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। अत: देवी-साधना के लिए भी यह अनिवार्य है कि साधना-काल में ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन अवश्य करें। इसके लिए पूरे तौर पर सजग रहना चाहिए। ब्रह्मचर्य-व्रत की रक्षा के लिए—अश्लील दृश्य, कामुक विचार, नारी-सम्पर्क, असत्य-भाषण, प्रलाप, निन्दा, नग्नता, मादक-पदार्थों का सेवन, गरिष्ठ-तामसिक-भोजन, सङ्गीत, नृत्य, अश्लील-साहित्य का पठन या श्रवण, शृंगार-दर्शन—यह सब त्याज्य हैं।
- साधना के दिनों में बहुत सादगी से रहना चाहिए। क्षौर-कर्म, तैल-मर्दन, प्रसाधन, शृंगार आदि वर्जित हैं।
- मन्त्र-जप के समय न तो माला भूमि पर गिरे, न पैरों से उसका स्पर्श होने पाये। जप के समय माला के दानों (मनकों) को नाखूनों से नहीं छूना चाहिए।
- साधना पूर्व-सङ्कल्प की पूर्त्ति किये बिना, बीच में अधूरी साधना छोड़ देना अनुचित है। अपनी सामर्थ्य को देखते हुए ही सङ्कल्प करें, फिर हर तरह, प्रसन्न मन और पूरी श्रद्धा-निष्ठा से उसे पूरा करना चाहिए। साधना खण्डित होना दोष है।
- साधना, चिन्तन, एकाग्रता आदि के समय प्राय: आसुरी-वृत्तियाँ छद्म रूप में आकर मन को चञ्चल करने लगती हैं। अनेक प्रकार की बाधाएं आकार साधक की निष्ठा को डिगाने लगती हैं। ऐसी स्थिति में साधक को बहुत धैर्य, संयम, विवेक और सहिष्णुता से रहना चाहिए।
- साधना वाले स्थान और उसके निकट का वातावरण पूर्णतया सुरक्षित एवं शान्त हो। वहाँ कुत्ता, बिल्ली, उल्लू, गधा, कोढ़ी, पापी, विकलांग, दरिद्र, हत्यारा, चाण्डाल, विधवा, गीध, चील, सियार,

राजद्रोही, अपवित्र, गुप्तचर, अभिशप्प, षड़यन्त्री, दुष्ट, दुर्व्यसनी, विक्षिप्त, मदान्ध, कामातुर अथवा भिखारी का प्रवेश, दर्शन अथवा स्पर्श—यह सब वर्जित हैं। अतः इनसे बचाव के लिए पहले से ही पूरी व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

- पूजनोपरान्त बची हुई सामग्री इधर-उधर न फेंकें। उसे किसी सात्त्विक रूप में प्रयोग करना चाहिए। बचा हुआ नैवेद्य बालकों में और अक्षत आदि पक्षियों में वितरित कर देना चाहिए। बचा हुआ जल सूर्य के अर्घ्य में, या नीम, पीपल, आम जैसे किसी शुभ-वृक्ष पर चढ़ा देना चाहिए। पूजा का जल इधर-उधर फेंकना वर्जित है।
- साधना-काल में देवी-दर्शन अथवा अन्य किसी प्रकार की अलौकिक-अनुभूति की चर्चा किसी से न करें। आकस्मिक-दृश्य, सुगन्ध, रोमाञ्च, उद्वेग, स्पर्श-बोध, ऊर्जा, स्वर, सन्देश, संकेत, देव-दर्शन, मूर्त्ति में कोई परिवर्त्तन, जीवान्तता, सञ्चालन, वार्त्तालाप जैसी कोई अनुभूति होने पर उसे नितान्त गुप्त रखें। वह साक्षात् देव-कृपा होती है। भयानक-प्रसङ्ग से यदि मन विचलित हो उठे तो किसी सात्त्विक विद्वान् ब्राह्मण अथवा गुरु का परामर्श लेना चाहिए। वैसे, इष्टदेव का स्मरण सारी बाधाएं दूर कर देता है।

नैवेद्य के विभिन्न प्रयोग

नैवेद्य का अर्थ है—इष्टदेवता के सम्मुख भोजन, जलपान के रूप में कोई खाद्य पदार्थ प्रस्तुत करना। बाद में वही पदार्थ प्रसाद रूप में साधक स्वयं तथा उसके परिवारी-जन ग्रहण करते हैं। जहाँ तक नैवेद्य में पदार्थ का सम्बन्ध है, देवता सर्वसमर्थ और सर्वव्यापी होते हैं। उन्हें हम तुच्छ-मानवों से किसी व्यञ्जन-मिष्ठान्न की अपेक्षा नहीं रहती। खीरमोहन, रबड़ी, कलाकन्द और मोहनभोग आदि पदार्थ हम क्षुद्रजनों के लिए दिव्य वस्तुएं हैं, परन्तु देववर्ग के लिए वे सब नगण्य हैं। वस्तुतः देवी-देवता श्रद्धा को वरीयता देते हैं। कितनी ही ऐसी कथायें प्रचलित हैं, जिनमें भक्त द्वारा अर्पित की गयी नितान्त क्षुद्र-त्याज्य वस्तु को भी देवता ने सहर्ष स्वीकार किया। कारण यह था कि भक्त ने परम आस्था और आत्म-समर्पण की भावना से वह वस्तु देवता को समर्पित की थी। फिर भी साधक-

जन यथा-सामर्थ्य अपने इष्ट को सांसारिक दृष्टि से उत्तमोत्तम पदार्थों का नैवेद्य प्रस्तुत करते हैं। ऐसी स्थिति में, प्राचीन मनीषियों ने वस्तुगत प्रभाव और तान्त्रिक-विवेचन के आधार पर, स्वानुभव से कुछ विशिष्ट नैवेद्य पदार्थों के प्रयोग को विशेष प्रभावकारी बताया है। नैवेद्य-निर्धारण की यह क्रिया (विशेष रूप से देवी-पूजा के सन्दर्भ में) समयानुसार (मुहूर्त्त अथवा काल-खण्ड) परिवर्तित भी होती रही है। यहाँ हम सारांश रूप में—महीना, तिथि, नक्षत्र, करण के अनुसार अर्पित किये जाने वालु नैवेद्य का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं। साधकजन अपनी श्रद्धा-सामर्थ्य के अनुसार इसकी व्यवस्था कर सकते हैं। वैसे, यह कुछ न हो सके तो अनन्य आस्था के आधार पर, कोई भी सुलभ, सात्त्विक पदार्थ देवीजी को नैवेद्य रूप में अर्पित किया जा सकता है।

मास क्रम से प्रयोज्य नैवेद्य :

चैत्र	(शुक्ल तृताया)—	महुआ के वृक्ष की पूजा करके कोई भी पाँच पदार्थों का खाद्य।
वैशाख	,,	गुड़ मिलाकर, घर में ही किन्हीं चार खाद्य पदार्थों का नैवेद्य बनाएं।
ज्येष्ठ	,,	शहद मिलाकर ,, ,, ,, ,,
आषाढ़	,,	महुए का रस मिलाकर, ,, ,, ,,
सावन	,,	दही मिलाकर, ,, ,, ,, ,,
भादों	,,	शक्कर मिलाकर, ,, ,, ,, ,,
क्वार	,,	खीर मिलाकर, ,, ,, ,, ,,
कार्तिक	,,	दूध मिलाकर, ,, ,, ,, ,,
अगहन	,,	फेन, मलाई, खोया मिलाकर, ,, ,,
पौष	,,	दही और मट्ठा मिलाकर, ,, ,,
माघ	,,	खीर, दही मिलाकर, ,, ,, ,,
फाल्गुन	,,	नारियल (यथासम्भव कच्ची गरी) मिलाकर कोई भी चार खाद्य पदार्थों को मिलाकर नैवेद्य बनायें और अभीष्ट देवी को अर्पित करें।

दिवस-क्रम से नैवेद्य निर्देश :

सप्ताह में सात दिन होते हैं। देवीजी की दैनिक-पूजा करने वाले साधकों के लिए निर्देश मिलता है कि यदि वे प्रतिदिन, निर्धारित क्रम से देवी को नैवेद्य अर्पित करें, तो विशेष लाभ उठायेंगे। यथा—

रविवार	....	खीर
सोमवार	....	दूध
मङ्गलवार	....	केला
बुधवार	....	मक्खन (नवनीत)
गुरुवार	....	शक्कर (प्रायः कच्ची शक्कर)
शुक्रवार	....	मिश्री (दाना शक्कर)
शनिवार	....	गो-घृत

नैवेद्य योग्य फल :

कुछ विद्वानों (मेरा विश्वास है—अरण्य-वासी ऋषियों) ने देवी-पुजा में नैवेद्य के लिए फलों की प्रस्तुति सर्वोत्तम मानी है। इनके निर्देशानुसार ये फल देवी को अर्पित किये जा सकते हैं :—

ककड़ी, कटहल, कुष्माण्ड (पेठा वाला कुम्हड़ा), केला, जामुन, आम, नारियल, सन्तरा, अनार, बेर, आँवला, नीबू, कसेरू।

नैवेद्य में प्रयोज्य अन्न-मिष्ठान :

तिल, चिउड़ा, चना, चूरमा, पुआ, लड्डू तथा गोरस—दूध, दही, मट्ठा, मक्खन, मलाई, खीर, घी। शहद और गुड़ अथवा मेवे (गरी, छुहारा, किसमिस, काजू आदि) भी उत्तम नैवेद्य हैं।

काल-खण्ड (करण) के अनुसार :

ज्योतिष-शास्त्र में विभिन्न काल-खण्डों की विवेचना की गयी है। ऐसा ही एक समयमान 'करण' हैं। ग्यारह करणों में प्रत्येक के लिए देवी पूजा में प्रस्तुत किये जाने वाले उपयुक्त नैवेद्य का निर्देश इस प्रकार किया गया है :—

करण	नैवेद्य
बव	कसेरू
वालव	कुष्माण्ड
कौलव	मलाई, फेनी, सेवइँ
तैतिल	मोदक-लड्डू
गर	पापड़
वणिज	लड्डू
विष्टि	पुआ, घी की पूड़ी
शकुनि	तिल

चतुष्पाद	दही
नाग	घी
किंस्तुघ्न	शहद

तिथि के अनुसार नैवेद्य-क्रम :

तिथि	नैवेद्य	दान देने योग्य वस्तु
प्रतिप्रदा	फूलों का हार पहनायें	घी
द्वितीया	शक्कर-मिश्री	शक्कर
तृतीया	दूध	दूध
चतुर्थी	पुआ, मालपुआ	पुआ
पञ्चमी	केला	केला
षष्ठी	शहद	शहद, मिष्ठान्न
सप्तमी	गुड़	लड्डू
अष्टमी	नारियल	नारियल
नवमी	लाजा (खील)	लाजा
दशमी	काला तिल	काला तिल
एकादशी	दही	दही-मक्खन
द्वादशी	चिउड़ा	चावल-धान
त्रयोदशी	चना	चना
चतुर्दशी	सत्तू	घी-सत्तू
पूर्णिमा	खीर	खीर

इस नैवेद्य-क्रम का फल यह बताया जाता है कि इससे साधक को रोग, दरिद्रता, शत्रु-भय, कलह, दुःख से मुक्ति मिलती है। वह सुख शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए देवी-देवताओं का कृपा-पात्र बना रहता है।

नक्षत्र-क्रम के आधार पर नैवेद्य :

ज्योतिष-शास्त्र में नक्षत्रों की संख्या 27 मानी गयी है। ये सभी नक्षत्र एक क्रम से गतिशील रहते हैं। एक के बाद दूसरा आता रहता है। देवी-पूजा में एक विधान यह भी मिलता है कि जिस नक्षत्र में पूजा की जा रही हो, तदनुसार नैवेद्य अर्पित करने से एक विशेष प्रभाव की सृष्टि होती है, जो साधक के लिए परम कल्याणकारी सिद्ध होती है। नक्षत्र-क्रम से नैवेद्य का विवरण इस प्रकार बताया गया है :—

नक्षत्र	प्रयोज्य-सामग्री
1. अश्विनी	घी
2. भरणी	काले तिल

नक्षत्र	प्रयोज्य-सामग्री
3. कृत्तिका	शकर, मिश्री
4. रोहिणी	दही
5. मृगशिरा	दूध
6. आर्द्रा	मलाई
7. पुनर्वसु	दही का शर्बत (लस्सी)
8. पुष्य	लड्डू
9. आश्लेषा	सेवईं, फेनी
10. मघा	पेठा, कूष्माण्ड, खोया
11. पूर्वाफाल्गुनी	कसेरू, हलुआ
12. उत्तराफाल्गुनी	पापड़
13. हस्त	घेवर, पुआ
14. चित्रा	पकौड़ी
15. स्वाती	गोरस-कोकरस
16. विशाखा	घी में भुना बेसन
17. अनुराधा	शहद
18. ज्येष्ठा	चूरमा
19. मूल	गुड़
20. पूर्वाषाढ़ा	चिउड़ा
21. उत्तराषाढ़ा	अंगूर
22. श्रवण	खजूर
23. धनिष्ठा	अनार
24. शतमिषा	पुआ
25. पूर्वाभाद्रा	मक्खन (नवनीत)
26. उत्तराभाद्रा	मूँग के लड्डू
27. रेवती	बेसन के लड्डू

प्रसङ्ग-पूर्त्ति के लिए, प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित यह नियम और व्यवस्था यहाँ प्रस्तुत कर दी गयी है, वैसे व्यक्तिगत रूप में मेरी मान्यता है कि किसी भी देवी-देवता को श्रद्धापूर्वक कोई भी सात्विक खाद्य-पदार्थ—फल, मिष्ठान्न, मेवा अर्पित किया जा सकता है। वे सब कुछ परम प्रसन्न मन से स्वीकार कर लेते हैं। देवता—पदार्थ-भेद नहीं, स्वाद-भेद नहीं, केवल भक्त की श्रद्धा, आस्था और समर्पण-भावना देखते हैं, बस !

देवी-उपासना के विविध आयाम

परिचय :

जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है— भगवती दुर्गाजी के अनेक रूप और नाम हैं। तदनुसार उनकी उपासना की विभिन्न पद्धतियाँ प्रचलित हैं। यह साधक की श्रद्धा एवं निष्ठा पर निर्भर है कि वह किस नाम-रूप की उपासना करे, और उसके लिए किस पद्धति को अपनाये ?

आदिशक्ति के विभिन्न रूपावतार हैं—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। सरस्वती देवी सात्त्विक रूपों में सर्वोपरि है। राजसिक रूपों देवी का प्रमुख रूप लक्ष्मी है। इसी प्रकार तामसिक अवतारों में काली जी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। प्रकारान्तर से इन तीनों शक्तियों के अनेक रूपावतार, उनके आख्यान, प्रभाव, महत्त्व और उपासना के विधान प्रचलित हैं। यह विषय अपने-आप में इतना विशद है कि कोई विद्वान् यदि एक ग्रन्थ में इन सबका साङ्गोपाङ्ग वर्णन करना चाहे, तो यह उसके लिए एक असम्भव कल्पना ही होगी। यहाँ कुछ अति प्रचलित देवी-रूपों की उपासना-विधि संक्षेप में लिखी जा रही है। जन-सामान्य में ये देवी-उपासनाएं बहुत प्रचलित हैं और अनेक साधकों ने इनकी अलौकिकता, प्रभावशीलता का अनुभव भी किया है। शास्त्रीय विधि-विधान का अपना विशेष महत्त्व है। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से आज के युग में वह सम्भव नहीं रहा। अत: मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुए, श्रद्धा-निष्ठा को वरीयता देकर सहज-साध्य विधि द्वारा उपासना की जाये—यही श्रेयस्कर है। यहाँ कुछ विशिष्ट देवी-रूपों की पूजा-उपासना की सरलतम विधियाँ प्रस्तुत हैं। पाठक-जन धैर्य और विश्वास के साथ किसी भी देवी की शरण लेकर लाभ उठा सकते हैं, ऐसा निश्चित-प्राय: है।

दुर्गाजी की उपासना का विवरण विभिन्न ग्रन्थों में बड़े विस्तार से प्राप्त होता है। इन सबका सार-तत्त्व यह है कि 'नवार्ण-मन्त्र' दुर्गा साधना का सर्वश्रेष्ठ, सर्वाधिक प्रभावी और सरलतम आयाम है। यदि कोई साधक श्रद्धा, शुचिता और संयमपूर्वक इस मन्त्र के द्वारा दुर्गाजी की पूजा करे, तो निश्चित है कि उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। यहाँ यह बात ध्यान में रखने की है कि साधक का लक्ष्य औचित्य और सम्भावना की सीमा में होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उपासना करता है कि सूर्य और चन्द्रमा आकाश से उतरकर उसके दरवाजे

पर आ खड़े हों, अथवा वह स्वयं समस्त पृथ्वीमण्डल का शासक हो जाय, तो ऐसे लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। कारण कि ऐसा होना, न तो सम्भावना के भीतर आता है, न इसका कोई औचित्य है। अतः प्रकृति-विरुद्ध कल्पना न करके, अपने सहज जीवन से सम्बन्धित कोई ऐसी कामना की जानी चाहिए, जो सांसारिक-दृष्टि से असम्भव, अनुचित न हो और जिसका लाभ साधक तथा जन-सामान्य को भी प्राप्त हो सके। उपासक के लिए 'सर्वभूत हिते रता:' का सिद्धान्त सदैव शुभ होता है।

नवार्ण मन्त्र-साधना

दुर्गाजी की उपासना में 'नवार्ण-मन्त्र' को सर्वाधिक महत्ता प्राप्त है। इस मन्त्र को दुर्गाजी का शाब्दिक-प्रतिरूप माना जाता है। इस मन्त्र में नौ अक्षर हैं। नौ वर्णों के योग से संरचित होने के आधार पर यह 'नवार्ण' मन्त्र कहलाता है। यह परम प्रभावी मन्त्र है। निर्गुण और सगुण, निराकार और साकार—दोनों ईश्वरीय-सत्ताओं की साधना का यह सुगम सोपान है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि निर्गुण-निराकार ब्रह्म की उपासना 'गायत्री' मन्त्र से और सगुण-साकार ब्रह्म की उपासना इस 'नवार्ण' मन्त्र से की जाये तो विशेष प्रभावशाली होती है। अस्तु, नवार्ण-मन्त्र का महत्त्व और प्रभाव सर्वमान्य है, इसमें कहीं संशय नहीं। यह असंदिग्ध रूप में अलौकिक प्रभाव-सम्पन्न मन्त्र है, और किसी भी विधि से इसकी साधना-उपासना करके लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

मूल नवार्ण-मन्त्र :

शास्त्रीय-विधि के अनुसार कुछ मन्त्रों में—मूल-मन्त्र के प्रारम्भ में 'ॐ' को संयुक्त कर देना चाहिए। अधिकांश मन्त्रों में जप आरम्भ करने के पूर्व प्रथम उच्चार में 'ॐ' अवश्य जोड़ा जाता है। प्रथम उच्चारण के उपरान्त सामान्य रूप में मूल-मन्त्र का जप होता है। किसी-किसी मन्त्र में प्रथम उच्चारण के बाद भी, हर बार 'ॐ' सहित मूल-मन्त्र का जप किया जाता है। इस सम्बन्ध में प्रसङ्गानुसार किसी विद्वान् पुरोहित अथवा ग्रन्थ का मार्ग-निर्देशन प्राप्त कर लेना चाहिए। जहाँ तक 'नवार्ण-मन्त्र' का सम्बन्ध है, जप के समय इसके प्रथम उच्चारण में तो 'ॐ' का संयोजन होता है, बाद में मूल मन्त्र ही जपने का विधान है। मूल मन्त्र इस प्रकारहै :--

'ऐं ह्लीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'

इसमें 'ॐ' का संयोजन करने पर यह रूप बनता है—

'ॐ ऐं ह्लीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'

साधना-विधि :

नवार्ण-मन्त्र की साधना जटिल है। परन्तु शास्त्रीय तर्क-वितर्क में न पड़कर व्यावहारिक दृष्टि से, कम से कम इतना तो करना ही चाहिए कि सामान्य नियमों का निर्वाह हो जाये। वैसे, कोई भी साधक कभी भी शुद्ध होकर, कहीं बैठ जाये और एकाग्र-चित्त होकर इस मन्त्र का जप करे, तो भी लाभ होता है। परन्तु नियमों का भी अपना महत्त्व है। अतः यथा-सम्भव नियमों का पालन भी करना चाहिए। नवार्ण-मन्त्र की सरलतम साधना-विधि इस प्रकार है—

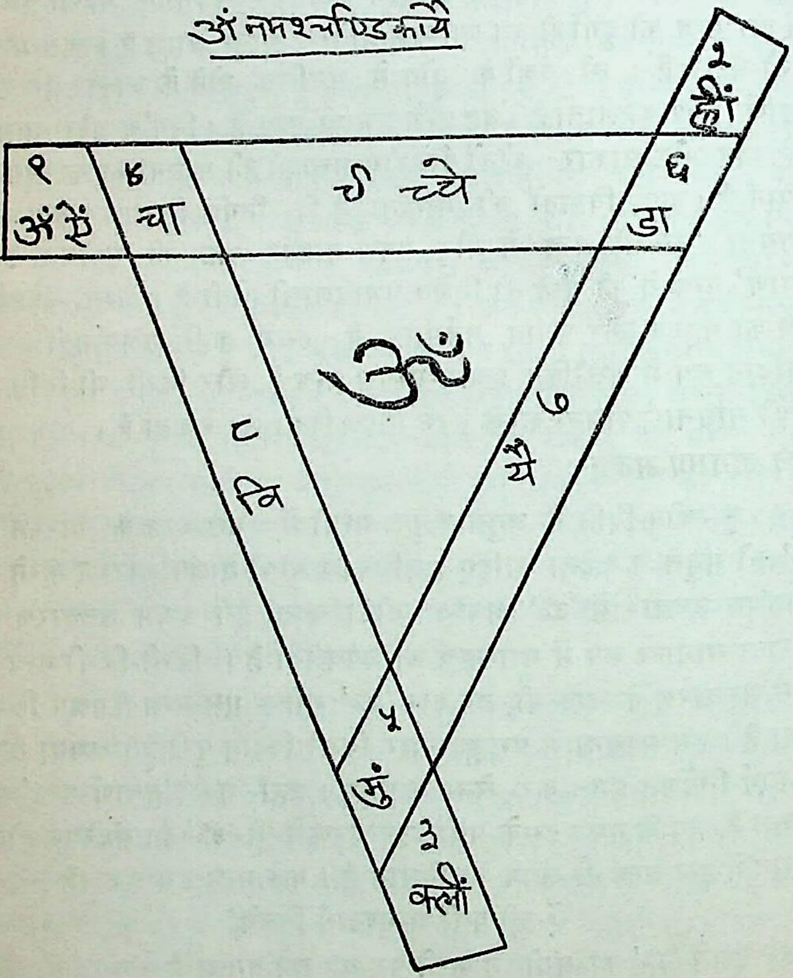
ॐ नमश्चण्डिकायै
१
ॐ ऐं
२
ह्रीं
३
क्लीं
४
चा
५
मुं
६
डा
७
यै
८
वि
९
च्चे
ॐ

नवार्ण-यन्त्र

सबसे पहले ताँबे के पत्तर पर, अथवा भोजपत्र पर नवार्ण-यन्त्र की रचना करें। यदि ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण न हो सके; तो अति उत्तम है; अन्यथा लाल चन्दन और अनार की कलम से यन्त्र बना लिया जाये। यन्त्र की आकृति त्रिकोण युक्त होनी चाहिए (आगे चित्र देखें), उसके मध्य में 'ऐं ह्रीं क्लीं' अङ्कित हो। मन्त्र के शेष 6 वर्ण 1-1 करके क्रमशः प्रत्येक कोण में लिखे जायें। यथा—

स्मरण रहे कि यन्त्र-रचना और साधना का आरम्भ किसी शुभ-मुहूर्त्त में ही करना चाहिए। इसके लिए स्थानीय पुरोहित से पूछ सकते हैं। शुभ दिन मुहूर्त्त में यन्त्र-रचना करके पूजन करें और तदुपरान्त मन्त्र जपें पूर्ण विधि नीचे लिखी जा रही है।

प्रातः नित्यकर्म से निवृत्त होकर, पूजा-स्थल को लीप-पोतकर शुद्ध करलें। पूजा की सारी सामग्री सहेजकर रख लें। कलश, प्रतिमा, चित्र, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, माला, आसन, हवन-सामग्री आदि की पूर्व व्यवस्था करके ही पूजा पर बैठें, ताकि बीच में उठना न पड़े।

सर्वप्रथम आसन पर बैठकर (पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके) नवार्ण-यन्त्र की रचना करें। फिर उसे थाली में रखकर शुद्ध जल से स्नान करायें। स्नान का अर्थ है—उसके चारों कोनों पर जल को स्पर्श करालें। जल छिड़कने या धोने से तो उसकी पूरी स्याही धुल जायेगी। अतः स्नान के प्रतीक स्वरूप उसके कोनों पर जल छिड़क दें (स्पर्श करादें) बस! इसके बाद उसे लाल कपड़े के आसन पर स्थापित करके लाल चन्दन और पुष्प चढ़ायें। धूपबत्ती दें और दीपक जलाकर आरती करें। सामर्थ्य के अनुसार पञ्चोपचार या षोड़शोपचार पूजन करें। ऐसा सम्भव नहीं है तो केवल स्नान, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप से ही पूजा करलें। आरती करने के बाद नैवेद्य चढ़ायें फिर यन्त्र के ठीक सामने—'ॐ देवीं दीपाधाराय यन्त्राय नमः' मन्त्र पढ़कर—वह आरती का दीपक, यदि स्थान है, तो यन्त्र के ठीक मध्य में, अथवा उसके बाहर, सामने की ओर रख दें। अक्षत का प्रयोग भी करना चाहिए। ध्यान रहे कि आसन पर बैठनें के समय से ही सम्पूर्ण पूजन तक, साधक निम्नलिखित मन्त्र मन ही मन जपता रहे।

नमो देव्यै महादेव्यै, शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै, नियताः प्रणताः स्मताम् ॥

इसके पश्चात् मन ही मन यह अडिग विश्वास करके, कि श्री दुर्गा जी इस यन्त्र में आकर विराजमान हो गयी हैं, और मेरी पूजा-प्रार्थना

स्वीकार कर रही हैं, एक निश्चित संख्या में नित्य मन्त्र-जप का सङ्कल्प लेना चाहिए। साथ ही, यह प्रार्थना भी करलें कि 'हे माता! मैं आपकी पूजा करना चाहता हूँ। इसमें जो भी त्रुटि, विघ्न, भ्रम और दोष उत्पन्न हो, उसे क्षमा करें, और मुझे ऐसी शक्ति दें कि मैं सम्पूर्ण श्रद्धा-भक्ति से आपका स्मरण कर सकूँ।' इस प्रकार सम्पूर्ण जप की एक निश्चित संख्या और दैनिक-जप की निश्चत संख्या का सङ्कल्प करके, सम्भव हो तो न्यास आदि सहित अथवा ऐसे ही सहज-भाव से, दोषों के प्रति देवी से क्षमा-याचना और विघ्नों से रक्षा का निवेदन करते हुए, मूल नवार्ण-मन्त्र का जप करें।

जप के लिए लाल चन्दन अथवा रुद्राक्ष की माला का प्रयोग करें। आसन कुश का, ऊन का अथवा रेशमी रहना चाहिए। जप के समय साधक यह कल्पना करले कि माता दुर्गाजी मेरे सामने इसी यन्त्र में बैठी हुई हैं। यदि इतनी तन्मयता न हो सके तो दुर्गाजी का सुन्दर चित्र या प्रतिमा, यन्त्र के पास रख लेना चाहिए। ऐसी स्थिति में यन्त्र-पूजा के साथ उस प्रतिमा या चित्र की भी पूजा आवश्यक होती है।

संकल्पानुसार समय और मन्त्र-जप की संख्या पूरी हो जाने पर इसी नवार्ण-मन्त्र को जपते हुए, 108 बार (यथा-सम्भव अधिक भी) शुद्ध हवन-सामग्री की आहुति देते हुए हवन करना चाहिए। हवनोपरान्त एक या पाँच कन्याओं को यथा-सामर्थ्य भोजन, वस्त्र और दक्षिणा देकर सम्मानित करना चाहिए। यह मन्त्र सिद्ध करने का प्रारम्भिक, किन्तु अनिवार्य नियम है। इसके बाद नित्य एक माला जप करते रहने से माता दुर्गाजी की कृपा तुरन्त और अवश्य प्राप्त होती है। संयम और धैर्य के साथ यदि कोई साधक इस मन्त्र को सिद्ध करना चाहे तो अपनी दैनिक-चर्या करते हुए भी, एक सप्ताह की साधना में सफल-मनोरथ हो सकता है। वैसे, यदि 21 दिनों में एक लाख मन्त्र-जप करके, पूर्ण व्रत संयम के साथ, हवन और दान की क्रिया भी निर्विघ्न पूरी करली जाये तो अत्युत्तम होगा।

विशेष ध्यान देने की बात यह है कि पूजा के दौरान, साधना-काल में साधक को अनेक प्रकार की अलौकिक अनुभूतियाँ होती रहती हैं। परन्तु उनकी चर्चा किसी से नहीं करनी चाहिए। वे अनुभूतियाँ, वे दृश्य भगवती दुर्गा की कृपा के संकेत होते हैं।

मन्त्र-जप आरम्भ करने के पूर्व दुर्गाजी का ध्यान करने के लिए निम्नांङ्कित श्लोक का पाठ करना चाहिए।

विद्युद्दाभ समप्रभां मृगपति स्कन्धस्थितां भीषणाम्।
कन्याभिः कर वालखेट विलसद्धस्ताभिश सेविताम्॥
हस्तैश्चक्र गदासिखेट विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीम्।
विभ्राणाम्नलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे॥

इसी प्रकार जप पूरा हो चुकने पर, दैनिक-साधना में भी, दुर्गाजी से क्षमा-प्रार्थना कर लेनी चाहिए। यथा—

आह्वानं न जानामि, न जानामि विसर्जनम्।
पूजा चैव न जानामि, क्षम्यतां परमेश्वरी॥
श्री दुर्गायै नमः

नवार्ण-मन्त्र के विशिष्ट-प्रयोग

विधि :

वैसे तो किसी भी शुक्रवार या अष्टमी के दिन से यह उपासना आरम्भ की जा सकती है, पर उत्तम यह होगा कि किसी पण्डित-पुरोहित से कोई शुभ-मुहूर्त्त ज्ञात कर लिया जाय। नवरात्रि की अवधि देवी-उपासना के लिए सर्वोत्तम होती है, किन्तु यदि उतनी प्रतीक्षा करना सम्भव नहीं है तो किसी पण्डित से शुभ दिन पूछकर इसे प्रारम्भ कर सकते हैं। सामग्री के रूप में दुर्गाजी का चित्र (सम्भव हो तो लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा और काली सभी महाशक्तियों के चित्र) परम आवश्यक हैं। मूर्त्ति अथवा यन्त्र से भी काम चल सकता है। लाल चन्दन, लाल पुष्प, अगर, धूप, लाल वस्त्र, अक्षत, नैवेद्य, घृत-दीप आदि की व्यवस्था पहले से कर लेनी चाहिए। एकान्त-पवित्र स्थान में देवी की पूजा करके लाल चन्दन की माला से मन्त्र-जप करना विशेष लाभप्रद होता है। वैसे, अन्य मालाएं भी प्रयुक्त होती हैं।

विनयोग :

ॐ अस्य श्री नवार्ण मन्त्रस्य ब्रह्मा विष्णु महेश्वराय ऋषयः, गायत्री उष्णिक् अनुष्टुपः छन्दांसि, महाकाली महालक्ष्मी, महासरस्वत्यः देवता, नन्दजा शाकम्भरी भीमाः शक्तयः रक्तदन्तिका दुर्गा भ्रामर्यो बीजानि, ह्रीं कीलकम्, अग्नि वायु सूर्यस्तत्वानि, सकल कार्य निर्देश जपे विनियोगः।

ध्यान :

उद्यत भानु सहस्र कान्तिमरुणं क्षौमा शिरोमालिकाम् ।
रक्तालिप्त पयोधरां जपवटीं विद्यां भीतिं वराम् ॥
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्त विलसत् शीतांशु तुल्यप्रभाम् ।
गौरी देह समुद्भवां त्रिजगताधार भूता महाम् ॥

मन्त्र-जप :

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ।

आवश्यकता और प्रयोग-भेद के आधार पर इस मन्त्र के अनेक रूप निर्मित किये गये हैं। साधक अपनी कामना के अनुसार इनमें से कोई भी मन्त्र नियमित रूप से जपकर लाभान्वित हो सकता है। विनियोग और ध्यान-स्तुति सभी प्रयोगों में समान है।

सर्वार्थ-सिद्धि का नवार्ण-मन्त्र :

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ।
ॐ ग्लौं हुँ क्लीं जूँ सः ज्वालय ज्वालय ज्वल ज्वल प्रज्ज्वल प्रज्ज्वल ।
ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे । ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा ।

नवार्ण मोहन-मन्त्र :

ॐ क्लीं क्लीं ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे (····नाम····) क्लीं क्लीं मोहनम् कुरु कुरु क्लीं क्लीं स्वाहा ।

इस मन्त्र के रिक्त-स्थान में वाञ्छित व्यक्ति का नामोच्चारण करें।

नवार्ण वशीकरण मन्त्र :

वषट् ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे (····नाम····) वषट् मे वश्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

नवार्ण उच्चाटन मन्त्र :

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे (····नाम····) फट् उच्चाटनं कुरु कुरु स्वाहा ।

नवार्ण स्तम्भन मन्त्र :

ॐ ठं ठं ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे (····नाम····) ह्रीं वाचं मुखं पदं स्तम्भय ह्रीं जिह्वां कीलय ह्रीं बुद्धिं विनाशाय ह्रीं ॐ ठं ठं स्वाहा ।

नवार्ण विद्वेषण मन्त्र :

ॐ ऐं ह्रीं क्ली चामुण्डायै (····नाम····) विद्वेषणं कुरु कुरु स्वाहा।

नवार्ण मारण मन्त्र :

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे (····नाम····) रं रं खे खे मारय मारय शीघ्रं भस्मी कुरु कुरु स्वाहा।

विशेष विधि :

1. **मोहन-मन्त्र** की साधना में ताम्र-कलश में सात कुओं का जल लेकर उसमें आम का पल्लव रखें। नित्य स्थान के समय यह जल शरीर पर छिड़कें। शरीर पर पीले वस्त्र हों, माथे पर पीला चन्दन हो, जप के समय मुँह पश्चिम की ओर हो और आसन भी पीले रङ्ग का हो। मन्त्र-की जप-संख्या कम से कम सवालाख होनी चाहिए। बारह लाख जप का पूर्ण और निश्चित प्रभाव होता है।

2. **वशीकरण** साधना के लिए किसी जलाशय के समीप, श्वेत आसन पर, दक्षिण की ओर मुँह करके, श्वेत वस्त्र धारण किये हुए, बीस दिनों तक सवा लाख (पूर्ण संख्या बीस लाख) जप करने से सफलता मिलती है।

3. **उच्चाटन, स्तम्भन, विद्वेषण** तथा **मारण** के प्रयोग अभिचार-कर्म माने गये हैं, जिनकी गणना पातक-कर्म में होती है। अत: नैतिक-आचरण की दृष्टि से ऐसे प्रयोगों की विधि सार्वजनिक रूप में प्रकाशित करना उचित नहीं हैं। अपरिहार्य स्थिति में किसी सुयोग्य विद्वान् से इस विषय की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

सिद्ध दुर्गा-मन्त्र-साधना

परिचय—देवी दुर्गाजी के अनेक नाम-रूप हैं। प्रत्येक का अपना महत्त्व है। साधक उनके किसी भी नाम-रूप की वन्दना करके लाभान्वित हो सकता है। यहाँ सिद्ध दुर्गा-मन्त्र की साधना-विधि लिखी जा रही है। इस सरल और संक्षिप्त विधि से भी यदि कोई साधक निष्ठापूर्वक उपासना करे, तो वह अवश्य ही माता दुर्गाजी की कृपा का पात्र बन सकता है।

सिद्ध दुर्गा मन्त्र :

ह्रीं दुं दुर्गायै नमः।

साधना विधि :

नवरात्र में अथवा किसी भी शुभ-मुहूर्त्त में इस साधना को आरम्भ करके पूरे 41 दिनों तक नियम-संयम के साथ दैनिक पूजन और मन्त्र-जप

करना चाहिए। प्रतिदिन 80 माला जपने का नियम है। इस प्रकार 41 दिनों तक 80 माला नित्य, फिर 8 माला 9 दिनों तक नित्य जपना चाहिए। कुल 50 दिनों की साधना होती है। उसके बाद 50 वें या 51 वें दिन उसी मन्त्र को पढ़ते हुए 108 बार आहुति देकर हवन करना चाहिए। इस प्रकार यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इस सिद्ध दुर्गा-मन्त्र का प्रभाव अचूक होता है। यदि साधक ने पूर्ण संयम के साथ 51 दिनों तक नियमित मन्त्र-जप और हवन की क्रिया पूरी कर ली है, तो वह कभी भी इस मन्त्र को पढ़कर, दूब से जल छिड़कते हुए निम्न बाधाओं का निवारण कर सकता है—

भौतिक-आपदाएं, कोई भी सङ्कट, भूतादि ग्रहों की पीड़ा, प्रेत-पिशाच बाधा, दुर्भाग्य, नवग्रह-पीड़ा, रोग-बीमारी, शत्रु-पीड़ा आदि।

सर्वप्रथम दुर्गाजी की प्रतिमा-चित्र अथवा यन्त्र प्राप्त करें। उसे लाल रङ्ग के कपड़े पर आसीन करके स्नान करायें लाल चन्दन, पुष्प, धूप-दीप दें। नैवेद्य अर्पित करें, फिर निम्नलिखित स्तुति द्वारा दुर्गाजी का ध्यान करें :—

अध्यारूढां मृगेन्द्रं सजल जलधर श्यामलां हस्त पद्मां।
शूलं वाणं कृपाणं त्वसि जलज गदा चाप पाशान् वहन्तीं॥
चन्द्रोत्तंशां त्रिनेत्रां चित्तसृग्गिरसिमाखेटं विभ्रतीभिः।
कन्याभिः सेव्यमाना प्रतिभट भयदां शूलिनीं भावयामः॥

इस ध्यान-स्तुति का पाठ करने के बाद, परम तन्मय भाव से उपर्युक्त सिद्ध दुर्गा-मन्त्र का जप करना चाहिए।

विशेष :

सिद्ध दुर्गा-साधना के कुछ विशेष नियम हैं। इनका पालन करना आवश्यक है। सर्वप्रथम शुद्ध स्थान पर आसन बिछाकर, पूजा की तैयारी करें। सारी सामग्री पहले से वहाँ रख लें। ताम्रपत्र पर श्री-यन्त्र बनवा लें, या भोजपत्र पर बनालें। काठ के पीढ़े पर लाल कपड़ा बिछाकर उस पर श्री-यन्त्र स्थापित करें। यदि श्री-यन्त्र न मिल सके, तो दुर्गाजी का चित्र या मूर्त्ति स्थापित कर लेना चाहिए। आशय यह है कि दुर्गाजी की रूपाकृति सामने रहने से मानसिक-तन्मयता बनी रहती है। यन्त्र या मूर्त्ति-चित्र, जो भी हो, उसकी चन्दन, पुष्प, अक्षत, धूप, दीपादि से पूजा करके पूर्वोक्त ध्यान-स्तुति और तदन्तर मन्त्र-जप करें। जप के समय घी का

दीपक दुर्गाजी के सम्मुख जलाये रखना चाहिए। आज के युग में घी का दीपक सम्भव नहीं रह गया, अतः विकल्प के रूप में मीठे तेल का दीपक जलाकर काम चलाया जा सकता है। यह भी ध्यान में रखने की बात है कि इस उपासना के लिए ऊनी आसन ही प्रयोज्य होता है। माला कोई भी ले सकते हैं— लाल चन्दन की, कुशाग्रन्थि की अथवा रुद्राक्ष की। रुद्राक्ष की माला सर्वश्रेष्ठ होती है। जप के लिए अर्द्ध-रात्रि का समय उत्तम होता है।

जैसे मन्त्र-जप के पूर्व ध्यान-स्तुति की जाती है, ठीक उसी प्रकार मन्त्र-जप समाप्त होने पर, पूजा से उठने के पूर्व, क्षमा-याचना करते हुए दुर्गाजी की कोई स्तुति पढ़नी चाहिए। स्तुति पढ़ने या याद करने में असुविधा हो तो केवल 'श्री दुर्गायै नमः' का सात बार जप करके देवी-प्रतिमा को क्षमा-याचना हेतु प्रणाम करना चाहिए।

मन्त्र सिद्ध हो जाने पर कभी भी, किसी भी आवश्यकता पर, इसे पढ़ते हुए, तत्कालीन समस्या पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

जय दुर्गा-मन्त्र साधना

परिचय :

दुर्गाजी की उपासना के लिए यह भी एक बहुत प्रसिद्ध और प्रभावी मन्त्र है। दस अक्षरों से रचित होने के कारण यह 'दशाक्षर-मन्त्र' कहा जाता है।

मूल मन्त्र :

॥ ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि ठः ठः स्वाहा ॥

साधना-विधि :

किसी भी शुभ-मुहूर्त्त में यह साधना आरम्भ की जा सकती है। दुर्गाजी की प्रतिमा, चित्र अथवा यन्त्र का पूजन करके नित्य इस मन्त्र का जप करना चाहिए। इसकी कुल जप-संख्या, (सिद्धि के लिए) एक लाख है। साधक अपनी सामर्थ्य के अनुसार एक निश्चित समय में (एक या डेढ़ महीना) यह संख्या पूरी कर सकता है। जप पूरा हो चुकने पर हवन और दान, (ब्राह्मण-कन्या को भोजन) भी आवश्यक होता है।

दैनिक रूप में दुर्गाजी की पूजा करके, अङ्गन्यास, करन्यास, हृदयादिन्यास करना चाहिए। यहाँ व्यापारिक दृष्टि से लिख रहा हूँ—आज के भागमभाग के युग में, व्यक्ति इतना अस्थिर और क्लान्त है कि वह

शास्त्रीय-पद्धति से जटिल साधना नहीं कर सकता ऐसी स्थिति में यदि साधक परम श्रद्धा-भाव से, देवीजी से साधना को निर्विघ्नता, सुरक्षा, शान्ति और सफलता-प्राप्ति के लिए अपनी भाषा, अपने वाक्यों में मौन-निवेदन करले, तो भी कल्याण होता है। वैसे, प्रसङ्ग-पूर्त्ति के लिए, इस मन्त्र की करन्यासादि विधि लिखे दे रहा हूँ—

करन्यास :

ॐ दुर्गे अंगुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ दुर्गे तर्जनीभ्यां स्वाहा ।
ॐ दुर्गे मध्यमाभ्यां वौषट् ।
ॐ भूतरक्षिणी अनानिकाभ्यां हुँ ।
ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि अस्त्राय फट् ।

शास्त्रीय पद्धति यह है कि प्रत्येक साधना में सभी न्यास अङ्ग, कर हृदय आदि अवश्य किये जाएं। न्यास के पश्चात् सम्बन्धित देवता की ध्यान-स्तुति पढ़कर, तदुपरान्त मूल-मन्त्र का जप आरम्भ करना चाहिए। किन्तु यह नियमावली इतनी जटिल है कि सामान्य गृहस्थ, जो प्रायः अशिक्षित या अल्प-शिक्षित होता है, यह न्यासादि की बाध्यता पूरी नहीं कर सकता। मेरा अपना अनुभवाधारित मत है कि अपने शब्दों में देवता की प्रार्थना करके, निर्विघ्न साधना के लिए प्रार्थना करली जाये और शुद्ध-पवित्र स्थान पर एकाग्र-चित्त बैठकर मन्त्र का जप किया जाये, तो भी साधना फलीभूत होती है। वस्तुतः देवता श्रद्धा ही देखते हैं, बाह्याचार का उनकी दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं। वास्तव में न्यास आदि शारीरिक-क्रियाएं हैं—योग-साधना के संक्षिप्त रूप। इनसे शारीरिक-मानसिक सन्तुलन और शुचिता की स्थिति बनी रहती है। परन्तु जब कोई साधक संस्कृत नहीं जानता, नहीं बोल पाता, तो वह क्या करे ? ऐसी स्थिति में समन्वय-मार्ग ही श्रेयस्कर रहता है। देवता की प्रार्थना करके मन्त्र-जप आरम्भ करदें, बस यही पर्याप्त है। 'जय दुर्गा साधना' में मन्त्र जप आरम्भ करने के पूर्व इस स्तुति द्वारा देवीजी का ध्यान कर लेना चाहिए।

ध्यान-स्तुति :

कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलि बद्धेन्दु रेखाम् ।
शंखं चक्रं कृपाणं त्रिशिखं मपि करेरुद्रवहन्तीं त्रिनेत्राम् ।।
सिंहस्कन्धाधिरूढ़ां त्रिभुवनमखिलं तेजसां तूरयन्तीम् ।
ध्यायेत् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृत्तां सेवितां सिद्धिकामैः ।।

इस स्तुति-पाठ के पश्चात् मन्त्र जपना चाहिए। मन्त्र-जप की समाप्ति पर पुन: कोई दुर्गा-स्तुति अथवा 'श्री दुर्गायै नमः' का नौ बार जप करके प्रणाम करना चाहिए।

दरिद्रता-नाशक दुर्गा मन्त्र-साधना

परिचय—

नीति-शास्त्र में लिखा है—'....सर्वे गुणा: काञ्चन माश्रयन्ति' अर्थात् जहाँ धन (लक्ष्मी) है, वहीं समस्त गुण भी वास करते हैं। अर्थात् जो धनी हैं, वही समस्त गुणों से युक्त माना जाता है, भले ही वह दुर्गुणी अथवा निरा मूर्ख ही क्यों न हो। भाव यह है कि संसार में धन ही वह प्रधान साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य भौतिक-जगत् के सारे सुख प्राप्त कर पाता है। धन के अभाव में धर्म की साधना भी नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में, निर्धन व्यक्ति की समस्याओं की कल्पना सहज ही की जा सकती है। जिसके पास धन नहीं है, वह अपना जीवन-निर्वाह कैसे करेगा? भोजन, वस्त्र, दान-पुण्य, तीर्थ-व्रत, यज्ञादि तथा परोपकार—यह सारे कृत्य धन पर ही आश्रित हैं। यदि धन नहीं है, तो इन कार्यों की पूर्त्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

धन का अभाव दरिद्रता का जनक होता है। दरिद्रता अनेक प्रकार के दु:खों की जननी होती है। दरिद्रता में ही मनुष्य अपराध-कर्मों की ओर झुक जाता है। मानवीय-गुणों को नष्ट करने में दरिद्रता सबसे आगे आती है। दरिद्र-व्यक्ति का जीवन अनेक प्रकार की विसङ्गतियों से त्रस्त रहता है। उसे नाना प्रकार की चिन्तायें भयभीत-भ्रमित बनाये रहती हैं। ऐसी स्थिति में धन ही एक मात्र विकल्प होता है, जो उसके कष्टों का निवारण कर सकता है। परन्तु धन की प्राप्ति सहज नहीं होती। पूर्व-जन्म के कृत्य, वर्त्तमान जीवन का सौभाग्य और पारिवारिक-वातावरण तथा साधन—यह सब व्यक्ति को धनी या निर्धन बनाने में प्रमुख कारक होते हैं। परन्तु दैवी-विधान सर्वोपरि होता है। देवता की कृपा से कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है। देवता ही तो मनुष्य के भाग्य-विधायक होते हैं। वे जब भी चाहें, व्यक्ति को कुछ भी दे सकते हैं। इसीलिए लोग देवी-देवताओं की पूजा करते हैं, ताकि उनकी कृपा से सङ्कट-निवारण हो सके।

देवी दुर्गाजी संसार की आदि-शक्ति, आदि-माता और रक्षक हैं। भक्तजन उनकी उपासना करके विविध प्रकार के मनोरथ निवेदित करते हैं। श्रद्धा-भक्ति के साथ की गयी दुर्गाजी की उपासना निश्चित रूपेण

कल्याणकारी होती है। दुर्गाजी के अनेक रूप और पूजन-विधान हैं। साधक-जन अपनी आस्था और आवश्यकतानुसार उनकी उपासना करते रहते हैं। यहाँ दुर्गाजी का एक ऐसा मन्त्र लिखा जा रहा है, जो दरिद्रता, दु:ख, भय, भ्रान्ति और अन्य प्रकार के शारीरिक-मानसिक दु:ख दूर कर देता है। आवश्यकता इस बात की है कि साधना श्रद्धापूर्वक, एकाग्रचित्त होकर और शुद्ध-एकान्त स्थान में, परम तन्मयता के साथ की जाएं। दारिद्र्य, दु:ख, भयहारी दुर्गा-मन्त्र की सरलतम साधना विधि आगे लिखी जा रही है।

मूल मन्त्र—

ह्रीं दुं दुर्गेस्मृता हरसि भीतिमशेष जन्तौ,
स्वस्थैः स्मृतामतिमतीव शुभां ददासि।
यदन्ति यच्च दूर के भयं विन्दति मामिह,
पवमानवीतंजहि दारिद्र्य दु:ख भयहारिणि का त्वदन्या ॥
सर्वोपकार करणाय सदार्द्र चित्तां स्वाहा।

किसी-किसी ग्रन्थ में यह मन्त्र इस रूप में भी लिखा गया है :—

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेष जन्तोः,
स्वस्थै स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्य दु:ख भय हारिणि का त्वदन्या,
सर्वोपकार करणाय सदार्द्र चित्ता: ॥

ऊपर वाली स्तुति में कुछ विशेष शब्द जुड़े हुए हैं, जो मन्त्र की गुरुता को बढ़ा रहे हैं। अत: यथासम्भव उसी (प्रथम) का जप करना चाहिए। यों, उच्चारण सुगम होने के नाते, असमर्थ और दुर्बल-जनों को नीचे वाली स्तुति का अवलम्ब भी लाभकारी हो सकता है। दोनों में दुर्गा जी का स्तवन और दरिद्रता, दु:ख, भय के निवारण की प्रार्थना की गयी है। उपास्य-देवता और साधक की कामना—दोनों में एक ही है, अत: दोनों ही स्तुतियाँ (मन्त्र) लाभकारी हैं।

साधना-विधि—

किसी शुभ-मुहूर्त्त में पूजा का स्थान तथा समस्त प्रयोजनीय सामग्री सहेज लें, फिर स्नानोपरान्त आसनादि की शुद्धि करके देवी दुर्गाजी का ध्यान करते हुए, मन्त्र-साधना का विनियोग करें। यह साधना कुछ जटिल अवश्य है, परन्तु उतनी प्रभावी भी है। यों यदि कोई साधक शास्त्रीय-विधि का पालन करने में असमर्थ है, तो वह सहज भाव से देवी की स्तुति और अपनी विवशता के लिए क्षमा-याचना करते हुए, केवल मन्त्र-जप से

ही लाभान्वित हो सकता है। परन्तु जहाँ तक सम्भव हो, प्रत्येक साधक को शास्त्रीय-विधि का पालन अवश्य करना चाहिए।

विनियोग—

ॐ अस्य श्री दुर्गेस्मृतेति मन्त्रस्य विष्णुर्ऋषिः, अनुष्टुप छन्दः, श्री महालक्ष्मी देवता, शाकम्भरी शक्तिः, वायु कीलकं, मम सकल संकेत कष्ट दारिद्र्य दुःख भय परिहारार्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास :

श्री विष्णुः ऋषये नमः सिरसि।
अनुष्टुप छन्दसे नमः मुखे।
महालक्ष्मी देवतायै नमः हृदि।
शाकम्भरी शक्त्यै नमः नाभौ।
वायु कीलकाय नमः पादयोः।

मम सकल संकेत कष्ट दारिद्र्य परिहारार्थं विनियोगाय नमः कराञ्जलौ।

करन्यास :

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेष जन्तोः यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह अंगुष्ठाभ्यां नमः।

स्वस्थै स्मृतामतिमतीव शुभां ददासि यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह तर्जनीभ्यां नमः।

दारिद्र्य दुःख भयहारिणि का त्वदन्या यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह पवमानवीतं जहि मध्यमाभ्यां नमः।

सर्वोपकार करणाय सदार्द्र चित्ता यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह पवमानवीतं जहि अनामिकाभ्यां नमः।

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेष जन्तोः स्वस्थै स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह पवमानवीवं जहि दारिद्र्य दुःख भय हारिणि का त्वदन्या कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

ॐ ह्रीं दुं दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेष जन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह पवमानवीतं जहि। दारिद्र्य दुःख भयहारिणि का त्वदन्या स्वाहा करतलं करपृष्ठाभ्यां नमः।

ध्यान-स्तुति :

विद्युद्दाभसमप्रभां मृगपति स्कन्ध स्थितां भीषणाम् ।
कन्याभिः करवाल खेट विलसद्धस्ताभिरा सेविताम् ।।
हस्तैश्चक्र गदासि खेट विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीम् ।
विभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ।।

ध्यान-स्तुति के पश्चात् पूर्व-लिखित मूल-मन्त्र का जप करना चाहिए। जप की संख्या प्रतिदिन कम से कम एक माला (108 बार) अवश्य रहे। हो सके तो 5, 7, 9, 11, माला तक प्रतिदिन जप लें। कुल संख्या दस हजार वा सङ्कल्प करना चाहिए। जप पूरा हो जाने पर हवन और दान भी करें। वैसे, इस मन्त्र का सहज भाव से दैनिक-जप भी बहुत लाभकारी होता है।

महिष-मर्दिनी दुर्गा-मंत्र-साधना

परिचय :

एक समय महिषासुर नामक दैत्य ने अपने उत्पात से देवताओं को इतना आतङ्कित किया था कि उनकी रक्षा के लिए दुर्गाजी को आगे आना पड़ा था। उस राक्षस को मारने के बाद श्री दुर्गाजी का 'महिष-मर्दिनी' नाम प्रसिद्ध हो गया। महिषासुर देवताओं का शत्रु था। उसका बध करके देवी ने समस्त लोक को अभय कर दिया था। उनका 'महिष-मर्दिनी' नाम आज भी शत्रु-भय को नष्ट करने में समर्थ है। यही कारण है कि किसी भी प्रकार के सङ्कट, विरोध अथवा विघ्न की स्थिति में साधकजन महिष-मर्दिनी दुर्गाजी का स्मरण करते हैं। कोई भी क्लेश हो--शारीरिक-कष्ट, भूत-ग्रहादि की पीड़ा, प्रेत-पिशाच की बाधा, दुर्भाग्य, कलह, हिंसक-पशु, शत्रु अथवा अन्य किसी प्रकार के विरोधी से पीड़ा मिल रही हो, इन सबके शमन में महिषमर्दिनी दुर्गा का स्मरण निश्चित प्रभाव दिखाता है।

मूल महिषमर्दिनी दुर्गा-मन्त्र :

ॐ ह्रीं क्लीं ऐं महिषमर्दिनी स्वाहा।

विधि :

उपर्युक्त दुर्गाजी की अन्य साधनाओं की भाँति इसे भी किसी शुभ-मुहूर्त्त में आरम्भ करना चाहिए। शास्त्रीय-विधि में तो इसकी जप-संख्या 8 लाख बतायी गयी है और 8 लाख ही आहुति देने का विधान है। परन्तु मेरी धारणा है कि यह एक असम्भव कल्पना है और आज के युग में तो

पूरे तौर पर असम्भव है। 8 लाख जप करने, और 8 लाख आहुतियाँ देने की बात लिखकर सम्भवत: किसी विद्वान् ने इसे गोपनीय और कुछ विशिष्ट लोगों तक ही सीमित रखने के उद्देश्य की पूर्ति की है। मेरा मत है—साधक कोई भी संख्या, अधिकतम जप के लिए निश्चित करले—5 हजार, 7 हजार, या 11 हजार, 21 हजार आदि। फिर नियमित जप द्वारा उसे पूरी करे। जप पूरा हो जाने पर यथा-सामर्थ्य अधिकतम अथवा कम से कम 108 आहुतियाँ देकर हवन करे। इस प्रकार सहज-सम्भव मार्ग का अनुसरण करके वह निश्चित फल पा सकता है। प्रतिबन्ध यही है कि साधना जो भी थोड़ी-बहुत की जाए, पूर्ण श्रद्धा के साथ हो। संयम, शुद्धता, एकाग्रता और नियमित रूप से जप—यह साधना के अनिवार्य अङ्ग हैं। इस मन्त्र की यदि विधिपूर्वक साधना की जाय तो चाहे जैसी शत्रु-बाधा हो, उससे मुक्ति मिल जाती है। प्रचण्ड शक्ति वाला शत्रु भी इससे परास्त हो जाता है।

करांगन्यास :

इस मन्त्र को सिद्ध करने के लिए देवी-प्रतिमा की पूजा करके, मन्त्र-जप का निर्देश किया गया है। जप आरम्भ करने के पूर्व न्यास और ध्यान-स्तुति भी करना चाहिए। ध्यान के लिए दुर्गाजी का चित्र या मूर्त्ति सामने रख लेने से मानसिक-एकाग्रता बनी रहती है। ध्यान के पूर्व न्यास का विधान भी अपरिहार्य बताया जाता है। इस मन्त्र के लिए करांगन्यास का उल्लेख इस प्रकार किया गया है :—

महिषं हिंसके हुँ फट्………अंगुष्ठाभ्यां नम: ।
महिषं शत्रो हुँ फट्………तर्जनीभ्यां नम: ।
महिषं ह्लेषय ह्लेषय हुँ फट्……मध्यमाभ्यां वषट् ।
महिषं हन हन देवि हुँ फट्……अनामिकाभ्यां हुँ फट् स्वाहा ।
महिषसूदिनि हुँ फट्………कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् ।

अस्तु, मैं न्यास आदि पर विशेष बल नहीं देना चाहता। कारण कि यह सब पण्डितों का वाग्-विलास है। मेरा उद्देश्य है—देवी-साधना को सर्वजन के लिए सुलभ रूप में प्रस्तुत करना। न्यासादि का वर्णन चर्वित-चर्वण और अपने पाण्डित्य तथा शास्त्रों की दुहाई देते हुए साधना को जटिल, अप्रयोज्य बनाये रखने का पाखण्ड मात्र है। आज के युग में, अच्छे-अच्छे एम. ए. पास शुद्ध हिन्दी में पत्र तक नहीं लिख पाते हैं। ऐसी स्थिति में आज का आर्थिक-सामाजिक सन्त्रास झेल रहा मानव, जो

सामान्य शिक्षित ही है, कैसे यह संस्कृत-शब्दावली कण्ठस्थ कर सकता है ? फिर इतना समय ही कहाँ है कि वह इतनी जटिल साधना कर सके। अतः मेरे विचार से तो देवी-प्रतिमा की पूजा करके, उनके दर्शन, ध्यान, स्तवन के साथ, क्षमा-याचना करते हुए, मूल-मन्त्र का जप आरम्भ कर देना चाहिए। दैनिक रूप में निश्चित संख्या पूरी करके, थोड़े दिनों में मन्त्र का पुरश्चरण किया जा सकता है। जप पूरा हो चुकने पर कुछ हवन और दान भी करना चाहिए।

गारुडोपल सन्निभां मणि मौलि कुण्डल मण्डिताम् ।
नौमि भाल विलोचनां महिषोन्मत्ताङ्ग विषेदुषीम् ॥
शंख चक्र कृपाण खेटक बाण कार्मुक शूलकाम् ।
तर्जनीमपि विभ्रती निज बाहुभिः शशि शेखराम् ॥

श्री लक्ष्मी साधना

संसार की सारी सम्पदा, धन-वैभव, सोना-चांदी और रत्नादि सब लक्ष्मीजी का ही व्यापक रूप है। लक्ष्मीजी धन की, सम्पत्ति की देवी हैं। मनुष्य के पास भौतिक रूप में जो भी धन है—भूमि-धन, पशु धन, अन्न-धन, द्रव्य-धन, धातु-धन अथवा वृक्ष-धन या अन्य अचल सम्पत्ति—वह सब लक्ष्मीजी का ही लीला-विलास है। संसार का भौतिक-सुख उन्हीं की कृपा पर अवलम्बित है। लक्ष्मीजी भगवान विष्णु की शक्ति (पत्नी) हैं। विष्णु भगवान समस्त सृष्टि के पालनकर्त्ता हैं (ब्रह्मा को सृष्टिकर्त्ता और शिव को समापक, संहारक माना गया है)। सहज सिद्ध है कि जीव-जगत् का पालन वही कर सकता है, जिसके पास प्राण-पोषक, निर्वाह-दायिनी क्षमता हो। विष्णु की वह क्षमता श्री लक्ष्मीजी हैं। संसार का धन-वैभव उनका प्रतिरूप है। इस प्रकार अखिल विश्व के मानवों को भोजन-वस्त्र की आपूर्त्ति तथा सुख-वैभव के अन्य साधन लक्ष्मीजी की कृपा से ही प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि सांसारिक-जीवन में धन (अर्थ-सम्पत्ति) को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। धनाभाव की स्थिति में व्यक्ति स्वयं अपना पोषण नहीं कर सकता, फिर उससे दान-धर्म, हवन-भण्डारा और परोपकार की आशा कैसे की जा सकती है ?

लक्ष्मीजी कृपालु हो जायें तो मनुष्य क्षणों में ही रङ्क से राव हो जाता है। उसे प्रत्येक क्षेत्र में सफलता मिलती है। वह जो भी काम करता है, उसमें लाभ होता है। खेती, नौकरी, व्यापार और उद्योग-धन्धे—सभी सफल होते हैं और उसकी आर्थिक-स्थिति दिनों-दिन सबल होती जाती

है। इस प्रकार लक्ष्मीजी का कृपा-पात्र होकर वह थोड़े ही समय में वैभव-सम्पन्न हो जाता है। दान-पुण्य, परोपकार, तीर्थ-यात्रा, भोज, भण्डारा, हवन, पूजन—सब उसके लिए सहज सुलभ हो जाते हैं। क्योंकि ये सारे कार्य धन से ही पूरे होते हैं और जिस पर लक्ष्मीजी की कृपा हो जाये—उसे धन की क्या कमी? फिर जहाँ धन है, वहीं संसार के सारे गुण हैं—'सर्वे गुणा: काञ्चन माश्रयन्ति।'

श्री लक्ष्मीजी के विषय में अनेक प्रकार की धारणाएं प्रचलित हैं। यथा—

- लक्ष्मी ब्राह्मण के पास नहीं रहती।
- लक्ष्मी कहीं भी स्थायी रूप में निवास नहीं करती। यह देवी चञ्चला है। आज यहाँ, कल वहाँ। स्थान-परिवर्त्तन इसका व्यसन जैसा है।
- लक्ष्मी मुख्यत: वणिक्-जनों के पास रहती है, या फिर नरेशों-राजाओं के पास।
- जो लक्ष्मी के पीछे भागता है, लक्ष्मी उससे दूर-दूर रहती है।
- जो व्यक्ति लक्ष्मी की उपेक्षा, तिरस्कार, निर्मोह का भाव रखता है—लक्ष्मी उसकी ओर आकृष्ट होती है।
- जहाँ लक्ष्मी के माध्यम से अनेक प्रकार के सत्कर्म किये जा सकते हैं, वहीं लक्ष्मी के पीछे अनेक दुष्काण्ड भी होते रहते हैं।
- लक्ष्मी का कृपापात्र-व्यक्ति सरस्वती से उपेक्षित रहता है।
- लक्ष्मी के साथ कृपणता और अहङ्कार की भावनाएं जुड़ी रहती हैं।
- लक्ष्मी की पूजा से विष्णु और अन्य सभी देवता कृपालु रहते हैं।
- जहाँ लक्ष्मी का निवास होता है, वहाँ कोई सांसारिक-क्लेश नहीं रहने पाता।
- लक्ष्मी—प्रसन्नता, उत्साह, चैतन्यता, अपनत्व, मोह-ममता और सांसारिकता की सृष्टि करती है।
- लक्ष्मी अहङ्कार की जननी है।
- लक्ष्मी साहस, आत्म-विश्वास और धैर्य का पोषण करती है।
- जहाँ लक्ष्मी रहेगी, वहाँ त्याग, उदारता, वैराग्य, मुक्ति और निश्चिन्तता का अभाव रहता है।
- लक्ष्मी के कारण पारिवारिक-सामाजिक विघटन होता है।
- राज्यों के उत्थान-पतन, वैभव-पराभव और निर्माण अथवा नाश में लक्ष्मी की स्थिति प्रमुख होती है।

- लक्ष्मी संसार की पोषक-देवी है। जीवन-निर्वाह के लिए, न्यूनाधिक, जो कुछ भी साधन मनुष्य को प्राप्त हैं, वे सब लक्ष्मी की ही देन हैं। प्रकारान्तर से वे लक्ष्मी के रूप हैं।
- लक्ष्मी में लक्ष (एक लाख) गुण निहित हैं।
- लक्ष्मी की रुष्टि-तुष्टि से ही व्यक्ति रङ्क और राव बनता है।
- लक्ष्मी मानव-जीवन का प्रकाश है (दरिद्रता जीवन का अन्धकार है)।

इनसे कई बातें परस्पर विरोधी हैं, परन्तु न्यूनाधिक रूप में, सभी में कुछ न कुछ सत्यता (यथार्थ) है। तो भी लक्ष्मीजी की प्रभाव-क्षमता, उनकी कृपा की आवश्यकता, मानव-जीवन में उनकी अविच्छिन्नता उपादेयता से इन्कार नहीं किया जा सकता। व्यावहारिक-जगत् में हम देखते हैं कि लक्ष्मी-सम्पन्न (धनवान्) व्यक्ति ही समाज में सम्मान्य होते हैं। यह स्थिति आज की नहीं, वरन् एक चिर-प्राचीन सत्य है। शताब्दियों पूर्व, 'आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य' (मौर्य-साम्राज्य के संस्थापक और विश्व-विश्रुत राजनीति-परक ग्रन्थ 'अर्थ-शास्त्र' के प्रणेता) ने अपने 'नीति-ग्रन्थ' में लिखा था—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीना,
स पण्डितः स श्रुतिवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीया,
सर्वे गुणाः काञ्चन माश्रयन्ति॥

इससे स्पष्ट होता है कि मानव का सामाजिक-जीवन अर्थ-प्रधान है। जो व्यक्ति धन-वैभव से सम्पन्न है, वही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सफलता पा सकता है। दरिद्रता तो जीवन का अभिशाप है। आज भी लोग साधारण बातचीत में कहने लगते हैं —'गरीबी महापाप है।'

आशय यह है कि जीवन में सुख-सुविधा, सम्मान और अन्य अनेक शारीरिक-मानसिक उपलब्धियों के लिए व्यक्ति के जीवन में धन (लक्ष्मी) की सर्वाधिक आवश्यकता और उपयोगिता है। इसे नकार कर कोई व्यक्ति सुखी और व्यवस्थित-जीवन नहीं व्यतीत कर सकता।

लक्ष्मी-प्राप्ति के अनेक साधन हैं—नौकरी, व्यापार, कृषि और उद्यम। ये सात्त्विक-साधन है। चोरी, डकैती, व्यभिचार, अपहरण, लूट, ठगी और इसी तरह के अन्य दुष्कृत्य भी धनार्जन के लिए किये जाते हैं, परन्तु ये तामसिक होते हैं। इनकी उपलब्धियाँ श्रेयस्कर नहीं होतीं। समाज में इन्हें अनैतिक, औचित्य-विरुद्ध और निन्दनीय कहा जाता है।

इस प्रकार के कार्य-व्यवहार 'अपराध' की श्रेणी में आते हैं, जो समाज और शासन दोनों की दृष्टि में दण्डनीय घोषित हैं। अतः लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए धनार्जन के लिए सदैव सात्त्विक, सामाजिक-मान्यता प्राप्त और नैतिक-साधनों को ही अपनाना चाहिए।

हम देखते हैं कि एक ही प्रकार का व्यापार, नौकरी अथवा अन्य कोई उद्योग-धन्धा करने वाले विभिन्न व्यक्ति समान रूप में लाभान्वित नहीं होते। कोई चौगुना लाभ उठाता है, कोई हानि सहने को विवश होता है। इसका कारण है, लक्ष्मीजी का कृपाभाव। वह जिस पर जैसी कृपा करती हैं, उसे वैसी ही उपलब्धि होती है। छोटा-सा धन्धा करके भी लोग करोड़पति हो जाते हैं और करोड़ों की लागत से प्रारम्भ किया गया व्यवसाय अन्ततः निश्शेष हो जाता है। क्यों? यह सब लक्ष्मीजी का लीला-विलास है। वे जब जिसे जैसा चाहें, वैसा ही उत्थान-पतन दे सकती हैं। इसी कारण लोग लक्ष्मीजी की पूजा करते हैं, ताकि वे प्रसन्न रहें और उनकी कृपा से धन-सम्पत्ति की वृद्धि होती रहे।

पौराणिक मान्यता :

लक्ष्मीजी के अनेक नाम हैं। उनके पर्यायवाची शब्दों में एक है—सिन्धुसुता (सागरपुत्री) अर्थात् समुद्र की बेटी। पौराणिक-कथाओं में यह सन्दर्भ बहुत प्रसिद्ध है कि एक बार देवों-दानवों ने मिलकर सागर-मन्थन किया था। उस मन्थन-क्रिया से, चौदह वस्तुएं समुद्र से उद्भूत (प्राप्त) हुई थीं। लक्ष्मीजी भी उन्हीं चौदह रत्नों में से एक थीं। दक्षिणावर्त्ती शंख भी उसी सागर-मन्थन से प्राप्त हुआ था। इसी कारण उसे 'लक्ष्मी-सहोदर' कहा जाता है। रत्नों का बँटवारा होने पर 'श्री' अर्थात् लक्ष्मीजी भगवान् विष्णु को प्राप्त हुईं और उनकी पत्नी (अर्द्धाङ्गिनी) के रूप में सदा-सर्वदा के लिए उनकी 'विश्वम्भरा-शक्ति' बन गयीं।

लक्ष्मी-उपासना :

भौतिक सुख-समृद्धि और धन-वैभव की कामना-पूर्त्ति के लिए श्री लक्ष्मी जी की उपासना सर्वश्रेष्ठ उपाय है। विभिन्न ग्रन्थों में लक्ष्मी-पूजन की अनेक विधियाँ वर्णित हैं। यहाँ कुछ अति सरल, सहज-साध्य और त्वरित प्रभावी मन्त्रों का उल्लेख किया जा रहा है। दैनिक रूप में लक्ष्मीजी की पूजा और इन मन्त्रों का जप करने से साधक को अवश्य ही लाभ की अनुभूति होगी।

महालक्ष्मी मन्त्र

परिचय :

लक्ष्मीजी के सभी मन्त्र प्रभावी हैं, और सबका फल यही होता है कि वे साधक की आर्थिक-समस्याओं को समाप्त करके उसे धन-सम्पत्ति और वैभव-विलास प्रदान करते हैं। भले ही नामानुसार विनियोग, ध्यान-स्तुति और जप-मन्त्र में कुछ शब्दान्तर है, किन्तु उनके प्रभाव में कोई भेद नहीं है। किसी भी मन्त्र का जप करने वाले साधक पर लक्ष्मीजी की कृपा-दृष्टि अवश्य होती है।

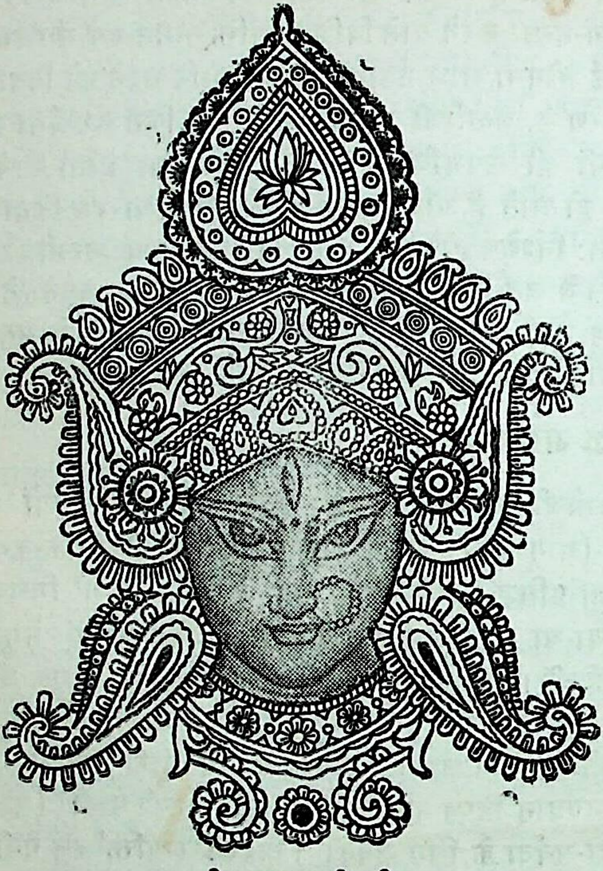

श्री महालक्ष्मी जी

विनियोग :

ॐ अस्य श्री महालक्ष्मी मन्त्रस्य, ब्रह्मा ऋषि:, गायत्री छन्द:, श्री महालक्ष्मी देवता, श्री बीजम्, नमः शक्तिः, सर्वेष्ट सिद्धये जपे विनियोगः।

ध्यान-स्तुति :

ॐ सिन्दूरारुण कान्तिमब्जवसतिं सौन्दर्यबारांनिधिम् ।
कोटीराङ्गद हार कुण्डल कटिं सूत्रादिभिर्भूषिताम् ॥
हस्ताब्जैर्वसुपत्रमब्ज युगला दशौ वहंतीं परा ।
मावीतां परिचारिकामिरनिशं ध्यायेत्प्रियां शार्ङ्गिणः ॥

जप-मन्त्र :

- ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद
  श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः ।
- ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीं लक्ष्मीरागच्छागच्छ मम मन्दिरे तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा ।

सिद्धलक्ष्मी मंत्र

ॐ अस्य श्री सिद्धलक्ष्मी मन्त्रस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः, अनुष्टुप छन्दः, श्री महालक्ष्मी, महाकाली, सरस्वत्यो देवताः श्रीं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, मम सर्व क्लेश पीड़ा परिहारार्थं सर्वदुःख दारिद्र्य नाशार्थं सर्व-कार्य सिद्धयर्थं च श्री सिद्धलक्ष्मी मन्त्र जपे विनियोगः ।

ध्यान-स्तुति :

ब्राह्मीं च वैष्णवीं भद्रां षड्भुजां च चतुर्मुखीम् ।
त्रिनेत्रा खड्गशूलामी पद्मचक्रे गदाधराम् ॥
पीताम्बर धरां देवीं नानालङ्कार भूषिताम् ।
तेजः पुञ्जधरां श्रेष्ठां ध्यायेत् बालकुमारिकाम् ॥

जप-मन्त्र :

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीं सिद्धलक्ष्म्यै नमः ।

(शुभ-मुहूर्त्त में प्रारम्भ करके, इस मन्त्र को स्फटिक की माला पर एक लाख 21 दिनों में, जप करने से यह सिद्ध हो जाता है । जप-काल में गो-घृत का दीपक जलता रहे, तथा साधक कुशासन (कुशा नामक घास से निर्मित) पर पूर्व की ओर मुँह करके बैठे, यह आवश्यक है ।)

वसुधा–लक्ष्मी मन्त्र

विनियोग :

ॐ अस्य श्री वसुधालक्ष्मी मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, निवृद् गायत्री छन्दः, वसुधा श्रीं देवता, ग्लौं बीजम्, ह्रीं: शक्तिः, ममाभीष्ट प्राप्त्यै जपे विनियोगः ।

ध्यान स्तुति :

कल्पद्रुमाधो मणि वेदिकायां,
समास्थिते वस्त्र विभूषणाढ्ये।
भूमिश्रियौ वाञ्छित वामदक्षौ,
सञ्चिन्तयेत् देव मुनीन्द्र वन्द्ये ॥

जप मन्त्र :

ॐ ग्लौं श्रीं अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नम्।
प्रदापय स्वाहा श्रीं ग्लौं ॐ।

'महाकाल-संहिता' में भगवती वसुधादेवी का यह अद्भुत प्रभावी महामन्त्र वर्णित है। सामर्थ्यानुसार 11, 21, 51 माला जप करने से अभीष्ट सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

मन्त्र-जप :

जय लक्ष्मी महं ध्याये समासीना कमलोपरि,
विद्युत् कनक वर्णाभां मुक्तादाम विराजिताम्।
पृथुलोत्तुङ्ग वक्षोजां लोचन त्रियान्वितां,
चतुर्भुजां पद्मयुगं वरामय मथापि च ॥
दधतीं कौस्तुभोद्भासि हृदयां चिन्तयेत्पराम्,
प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं वसुधा लक्ष्मी नमः ॥

ज्येष्ठा–लक्ष्मी मंत्र

विनियोग :

ॐ अस्य श्री ज्येष्टा लक्ष्मी मन्त्रस्य, ब्रह्मा ऋषिः, उपष्टि छन्दः, ज्येष्टालक्ष्मी देवता, ह्रीं बीजम्, श्रीं शक्तिः, ममाभीष्ट सिद्धयर्थे जपे विनियोगः।

ध्यान स्तुति :

उद्यद् भास्कर सन्निभास्मितमुखी रक्ताम्बरा लेपना,
सतकुम्भं धन भाजनं सृणिमथोपाशं करैर्बिभ्रती।
पद्मेस्था कमलेक्षणा, दृढ़कुचा सौन्दर्य वारांनिधिः,
ध्यातव्या सकलाभिलाष फलदा श्री ज्येष्ठालक्ष्मीरियम् ॥

जप-मन्त्र :

ऐं ह्रीं श्रीं ज्येष्ठालक्ष्मी स्वयंभुवे ह्रीं ज्येष्ठायै नमः।

द्वादशाक्षर–लक्ष्मी मंत्र

विनियोग :

ॐ अस्य श्री महालक्ष्मी मन्त्र, ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः; श्री महालक्ष्मी देवता, श्रीं बीजम्, नमः शक्तिः, सर्वेष्ट सिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

ध्यान-स्तुति :

पूर्व वर्णित महालक्ष्मी-मन्त्र वाली ध्यान-स्तुति करें ।

जप-मन्त्र :

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौं जगत्प्रसूत्यै नमः ।

दशाक्षर–लक्ष्मी मंत्र

विनियोग :

ॐ अस्य श्री लक्ष्मी बीजमन्त्रस्य, भृगु ऋषिः, निवृच्छन्दः, श्री लक्ष्मीः देवता मम धनाप्तये जपे विनियोगः ।

(आगे लक्ष्मीजी के 'चतुर्थाक्षर' तथा 'एकाक्षर' मन्त्र लिखे गये हैं, उनका भी विनियोग यही है । ध्यान-स्तुति और मन्त्र भिन्न-भिन्न होंगे ।)

ध्यान-स्तुति :

आसीना सरसीरुहे स्मितमुखी हस्ताब्जैः बिभ्रती,
दानं पद्म युगामये च वपुषा सौदामिनी सन्निभा ।
मुक्ताहार विराजमान पृथुलोत्तुङ्गस्तनोद्भासिनी,
पायाद्वः कमला कटाक्ष विभवैरानन्दयन्ती हरिम् ।।

जप मन्त्र :

ॐ नमः कमलवासिन्यै स्वाहा ।

चार अक्षरों का लक्ष्मी मंत्र

विनियोग :

पूर्व वर्णित ।

ध्यान स्तुति :

माणिक्य प्रतिमप्रभां हिमनिभैस्तुंगैश्चतुर्भिर्गजैः ।
हस्ताग्राहित रत्नकुम्भ सलिलैरासिच्यमानां मुदा ।।
हस्ताब्जैर्वरदानमम्बुज युगा भीतिर्दधानां हरेः ।
कान्तां कांक्षित पारिजातलतिकां वन्दे सरोजासनाम् ।।

जप-मन्त्र :

ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं ।

एकाक्षर लक्ष्मी-मंत्र (बीज-मन्त्र)

विनियोग :

पूर्व वर्णित।

ध्यान स्तुति :

ॐ कान्त्या काञ्चन सन्निभां हिमगिरि प्रख्यैश्चतुर्भिर्गजैः।
हस्तोत्क्षिप्त हिरण्मयामृतघटैरासिच्यमानाश्रियम्॥
विभ्राणां वरमब्ज युग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलाम्।
क्षोमाबद्ध नितम्बबिम्बलसितां वन्देऽरविन्द स्थिताम्॥

जप मन्त्र :

श्रीं।

लक्ष्मी स्तोत्र

परिचय :

आज के भौतिक-युग में ही नहीं, सदैव-सर्वत्र सामाजिक-जीवन में अर्थ अर्थात् धन को प्रमुखता दी गयी है। अर्थ के अभाव में अनर्थ हो जाता है, कारण कि प्रायः समस्त सांसारिक-कार्यों में धन की आवश्यकता रहती है। धन, सम्पत्ति, द्रव्य, रुपया, पैसा, सोना-चाँदी, रत्न और वैभव—यह सब अर्थ के ही पर्याय हैं। इनके रहते व्यक्ति को किसी प्रकार का भौतिक-अभाव अथवा कष्ट नहीं होता। दान, धर्म, पूजा, अतिथि-सेवा, परोपकार, यज्ञ, हवन, तीर्थाटन और अन्य सभी प्रकार के लोकोपयोगी-कार्य एकमात्र धन पर ही आधारित रहते हैं। धन न हो तो कुछ भी नहीं किया जा सकता। इसीलिए संसार में अर्थ को प्रधानता दी गयी है।

धन-सम्पत्ति की स्वामिनी श्री लक्ष्मीजी हैं, जो भगवान् विष्णु की पत्नी हैं। उनकी कृपा प्राप्ति के लिए लोग भाँति-भाँति के उपाय पूजा-पाठ और जप-तप करते हैं। यहाँ एक बहुत ही सरल स्तोत्र प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसके नियमित पाठ से माता लक्ष्मी की अनुकम्पा प्राप्त होती है, (पुस्तक में लक्ष्मी-साधना के अन्य मन्त्र भी यथा-स्थान सङ्कलित हैं।) यदि कोई साधक देवी लक्ष्मी का प्रतिदिन पूजन (चित्र या प्रतिमा का) करते हुए 21 या 11 बार, दोनों समय (दोपहर को तथा सन्ध्या को) इस स्तोत्र का पाठ करे तो निश्चय ही वह आर्थिक-सङ्कटों से मुक्ति पा सकता है।

ध्यान रखने की बात है कि ऐसी कोई भी साधना परम श्रद्धा, विनय शुचिता के साथ करनी चाहिए। मैं पाठ करता हूँ तो मुझे बदले में

अमुक फल की प्राप्ति अवश्य हो—ऐसी सौदेबाजी देवाराधना में उचित नहीं होती। पूजा-पाठ करें, देव-स्मरण करें, विनय करें, फिर जो कुछ आपका वास्तविक सङ्कट है, दूर हो जायगा। जितनी कृपा के आप पात्र हैं, अवश्य मिलेगी। इसलिए अभीष्ट की पूर्त्ति न होने पर भी सन्तुष्ट रहना चाहिए क्योंकि वस्तुत: उसमें कोई न कोई कल्याण का कारण निहित रहता है।'

विधि :

सन्ध्या समय (आरती की बेला में) या मध्य-रात्रि में स्नान करके शुद्ध एकान्त स्थान में घी का दीपक जलाकर लक्ष्मीजी की पूजा करें और लाल आसन पर, लाल वस्त्र पहिनकर, लाल चन्दन या मूँगे की अथवा रुद्राक्ष की माला से यदि 21 बार नित्यप्रति इस स्तोत्र का पाठ किया जाय, तो 31 दिनों की साधना से देवी की कृपा का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। साधना की अवधि में ब्रह्मचर्य और सात्त्विक दिनचर्या आवश्यक है।

स्तोत्र का पाठ करने के पूर्व चित्र या प्रतिमा को प्रणाम करते हुए लक्ष्मीजी का ध्यान करें। ध्यान के लिए यह श्लोक उत्तम है :—

अरुणकमल संस्था तद्रज: पुञ्जवर्णा,
करकमल धृतेष्टा भीतियुग्माम्बुजाता।
मणिमुकुट विचित्राऽलंकृता कल्पजालै,
सकल भुवन माता सन्तत: श्री: श्रियै न: ॥

इसके पश्चात् मन्द स्वर में शुद्ध उच्चारण के साथ निम्नलिखित स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। पाठ के समय सुगन्धित धूप और कलश पर घृत-दीप जलता रहना आवश्यक है।

लक्ष्मी स्तोत्र :

ॐ क्षमस्य भगवत्यम्ब क्षमाशीले परात्परे,
शुद्ध सत्त्व स्वरूपे च कोपादि परिवर्जिते।
उपमे सर्व साध्वीनां देवीनां देवपूजिते,
त्वया विना जगतसर्वं मृत्युतुल्यं च निष्फलम् ॥
सर्व सम्पत् स्वरूपा त्वं सर्वेषां सर्वरूपिणी,
रासैश्वर्याधि देवि त्वं त्वत्कला: सर्वयोषित:।
कैलासे पार्वती त्वं च क्षीरोदे सिन्धु कन्यका,
स्वर्गे च त्वं महालक्ष्मीर्मर्त्यं लक्ष्मीश्च भूतले ॥

वैकुण्ठे च महालक्ष्मी देवदेवी सरस्वती,
गङ्गा च तुलसी त्वं च सावित्री ब्रह्मलोकतः ।
कृष्णप्राणाधिदेवि त्वं गोलोके राधिका स्वयम्,
रासे रासेश्वरी त्वं च वृन्दावन वने वने ॥
कृष्णाप्रिया त्वं भाण्डीरे चन्द्रा चन्दनकानने,
विरजा चम्पक वनें शैलशृंगे च सुन्दरी ।
पद्मावभी पद्मवनें मालती मालती वने,
कुन्ददन्ती कुन्दवने सुशीला केतकीवनें ॥
कदम्बमाला त्वं देवी कदम्ब काननेंऽपि च,
राजलक्ष्मी राजगेहे गृहलक्ष्मी गृहे गृहे ॥
॥ ॐ श्रीं श्रियै नमः ॥

इस स्तोत्र को 21 या 11 बार पढ़ चुकने के पश्चात् निम्नलिखित मन्त्र की 1 माला (108 दाने की) फेरना चाहिए :—

जप मन्त्र :

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मी रूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

पूर्व सङ्कल्प के अनुसार निश्चित अवधि तक पाठ-साधना पूरी कर चुकने के बाद 'ॐ श्रीं श्रियै नमः' मन्त्र के द्वारा 108 आहुतियाँ देकर हवन करना चाहिए । हवन के पश्चात् सामर्थ्यानुसार 1, 3, 5 या 7 ब्राह्मण-कन्याओं को श्रद्धापूर्वक भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिए ।

इस प्रकार की गयी लक्ष्मी-साधना के प्रभाव से साधक अर्थ-सङ्कट से मुक्त होकर समृद्धि और ऐश्वर्य प्राप्त करता है ।

श्री सरस्वती-साधना

प्राणिमात्र में जो भी ज्ञान, तर्क, चिन्तन, निर्णय, अनुभव, अभिव्यक्ति और भावप्रकाश की क्षमता है, उसके पास स्वर, वाणी वाग्मिता, गायन, भाषण आदि की जो भी शक्ति है, उसकी अधिष्ठात्री, स्वामिनी, नियन्त्रण करने वाली यही देवी सरस्वतीजी हैं । आदिशक्ति के तीन प्रमुख अवतारों में इनका स्थान प्रथम है । ये सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी की पत्नी मानी जाती हैं । समस्त जगत् में जो भी ध्वनि और उसका प्रभाव है, वह सब सरस्वतीजी का ही लीला-विलास है । वाणी, वाक्, ब्रह्माणी, गिरा, जिह्वेश्वरी, कण्ठेश्वरी, शारदा, वीणापाणि, हंसवाहना आदि विभिन्न नामों से भक्तजन इनका स्तवन करते हैं । ज्ञान, विद्या, वाणी, सङ्गीत, भाषण,

विद्वता, लेखन, काव्य-सृजन आदि विषयों में सर्वाधिक सहायता देने के लिए सरस्वतीजी विख्यात हैं। इनसे पराङ्मुख होकर, इनकी उपेक्षा, अवमानना करके यदि कोई व्यक्ति विद्वता प्राप्त करने की कल्पना करे, तो इसे उसका मूर्खतापूर्ण अहङ्कार ही कहा जायेगा।

भारतीय कवि-समाज और साहित्य-सेवी वर्ग ने आदि-काल से ही सरस्वतीजी का स्तवन किया है। बिना इनकी कृपा के वाणी और लेखनी में जीवन्तता,प्राणमयता आ ही नहीं सकती। गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'रामायण' की रचना के प्रारम्भ में ही इनकी स्तुति की है :—

'वन्दे वाणी विनायकौ।'

अर्थात्—मैं वाणीदेवी (सरस्वतीजी) और विघ्न-विनाशक विनायक देवता (गणेशजी) की वन्दना करता हूँ।

आदि-कवि बाल्मीकिजी को भी सरस्वती-कृपा ने ही 'विश्व-कवि' होने का सौभाग्य प्रदान किया था। कालिदासजी को इतनी मान-महत्ता प्राप्त होने के मूल में भी देवी सरस्वतीजी की कृपा ही रही है। कामायनी जैसे अपवाद को छोड़कर, किसी भी प्राचीन-अर्वाचीन काव्य-ग्रन्थ को देखें, प्रारम्भ में गौरी-गणेश (सरस्वती और गणेश) की वन्दना अवश्य मिलेगी। बोलते तो सभी हैं, पर किसी-किसी की वाणी—वाग्मिता सम्मोहनकारी है, किसी की वाणी करुणाजनक और किसी की कलहकारी होती है। यह सब देवी सरस्वतीजी का लीला-विलास है। इतिहास में कई व्यक्ति देवी सरस्वती के कृपा-पात्र के रूप में प्रसिद्ध हो गये हैं, जैसे—राजा बीरबल।

उपासना की आवश्यकता :

मनुष्य को संयमित-जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा मस्तिष्क से प्राप्त होती है। मस्तिष्क को यह शक्ति ज्ञान से प्राप्त होती है। ज्ञान अर्थात् जानकारी-विवेक के लिए बुद्धि का होना आवश्यक है और बुद्धि की दात्री अथवा विधायिका—यही सरस्वतीजी हैं। अत: सांसारिक-जीवन के किसी भी क्षेत्र—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में अग्रसर होने, सफलता प्राप्त करने के लिए व्यक्ति में ज्ञान-विवेक आवश्यक है। अत: ज्ञान-विवेक, प्रतिभा, बुद्धि, स्मरण-शक्ति, वाक्-शक्ति, चिन्तन और निर्णय-शक्ति प्राप्त करने के लिए एकमात्र यही सरल उपाय है कि देवीजी की उपासना की जाये। यह बात अलग है कि कोई व्यक्ति ज्ञानार्जन करके कवि बनना चाहता है, कोई सङ्गीतज्ञ, कोई वक्ता, कोई लेखक, चित्रक, दार्शनिक अथवा उपदेशक। परन्तु ये सभी क्षेत्र, सभी मार्ग सरस्वतीजी के द्वारा ही अनुशासित होते हैं।

अतः उनकी कृपा हो जाने पर व्यक्ति अपनी कामनानुसार वाञ्छित क्षेत्र में अवश्य सफल हो जाता है। बहुत-से लोग (प्रायः अधिकांश) ऐसे होते हैं, जो इस जन्म में बिना देवी-उपासना के ही तमाम उपलब्धियों से मण्डित रहते हैं। वास्तव में वे पूर्वजन्म के अपने सुकृतों का फल इस जन्म में पाये रहते हैं। उनको जन्म-जन्मान्तर की साधना के प्रभाव से, देवी की कृपा प्राप्त रहती है। विवेकी-जन उस पूर्व-प्राप्त कृपा के प्रति, इस जन्म में भी देवी का स्तवन-पूजन और दर्शन-चिन्तन करते रहते हैं।

विद्यार्थी-समुदाय, वैज्ञानिक, साधक तथा अन्य वर्गों के लोगों का भी सरस्वतीजी की कृपा से परम कल्याण होता है। यही कारण है कि प्रत्येक साहित्यिक-समारोह में, विद्या-केन्द्र में, शोध और अनुसन्धान के प्रारम्भ में वाणीदेवी (सरस्वतीजी) का स्तवन किया जाता है। कुछ भी न करना हो, तो भी सामान्य गृहस्थ-जीवन में भी सरस्वतीजी का बड़ा महत्त्व है। अतः उनके प्रति जन-जन में श्रद्धा, सम्मान और भक्ति का भाव रहना ही चाहिए।

उपासना की सरल विधि :

आर्ष-ग्रन्थों में देवी-देवताओं की उपासना के जो शास्त्रीय नियम प्राप्त होते हैं, आज के युग में असाध्य प्रायः हैं। न तो वे पूजन-उपादान हैं, न वैसा शान्त-सुरक्षित वातावरण, न उतना समय है, और न ही साधक में दीर्घकालीन संयम की क्षमता। जिस युग में शास्त्रीय-नियमों का निर्धारण हुआ था, उसमें और वर्त्तमान युग में धरती-आकाश का, आग और पानी का, अमृत और विष का, सत्य और मिथ्या का अन्तर है। तब आज की परिस्थितियों में पूर्व निर्दिष्ट नियमों का पालन कैसे, कहाँ तक हो सकता है ? ऐसी स्थिति में समन्वय का मार्ग ही श्रेयस्कर होता है। बाह्याडम्बर, नियमों की क्लान्तिकारी रूढ़िवादी जटिलता, और अस्थिर मनोदशा—यह सब साधना को भङ्ग-भ्रष्ट करने वाले तत्त्व हैं। अतः इनके पीछे न पड़कर, सहज सात्त्विक भावना से, परम श्रद्धा-भक्ति से, शुचिता-पूर्वक, जैसे भी हो सके—देवोपासना करनी चाहिए। सारा शास्त्रीय-विधान, भक्त की अटूट श्रद्धा और अडिग आत्म-विश्वास के सामने परास्त हो जाता है। विनय, आत्म-समर्पण, अहङ्कार रहित सेवा-पूजा, देवता का नाम-जप, चिन्तन—यही सबसे बड़ी और फलदायक साधना है। अतः साधक को चाहिए कि वह देवी सरस्वती की उपासना में पूर्ण तन्मयता के साथ—उनकी स्तुति,

ध्यान, मन्त्र-जप आदि करे। प्रणति और पूर्ण समर्पण ही सायुज्य की आधार-भूमि है।

सरस्वतीजी की उपासना के लिए उनकी प्रतिमा, चित्र अथवा मन्त्र को दर्शन-पूजन का आधार बनाकर प्रतिदिन नियमित रूप से साधना करनी चाहिए। सर्वप्रथम प्रतिमा को स्नान करायें, फिर वस्त्र धारण करायें। लाल चन्दन, सिंदूर, कुमकुम आदि अर्पित करें, पुष्पाञ्जलि दें, धूप-दीप और नैवेद्य प्रस्तुत करें। इसके पश्चात् कोई ध्यान-स्तुति का छन्द पढ़ें और तब माला के माध्यम से सरस्वती-मन्त्र का जप आरम्भ करें। पूर्व सङ्कल्प के अनुसार जप-संख्या पूरी हो जाने पर हवन तथा ब्राह्मण-भोजन की व्यवस्था करें।

सरस्वतीजी के ये मन्त्र बहुत प्रसिद्ध और प्रभावी हैं :—

सरस्वती मन्त्र, वाग्देवी मन्त्र, विद्यादेवी मन्त्र, नील-सरस्वती मन्त्र और एकाक्षरी मन्त्र।

नीचे प्रत्येक मन्त्र की जप-विधि प्रस्तुत है :—

सरस्वती मन्त्र :

वद् वद् वाग्वादिनी स्वाहा।

विनियोग :

ॐ अस्य सरस्वती मन्त्रस्य, कण्व ऋषिः, विराट् छन्द, वाग्वादिनी देवता, ममसर्वेष्ट सिद्धये जपे विनियोगः।

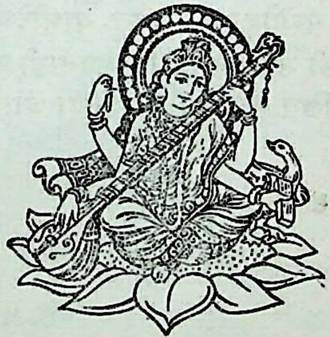

श्री सरस्वतीजी

ध्यान स्तुति :

तरुण सकलमिन्दो विभ्रति शुभ्र कान्ति,
कुचभर नमिताङ्गी सन्निषण्णा सिताब्जै।
निजकरकमलोद्यत् लेखनी पुस्तक श्री,
सकल विभव सिद्ध्यै पातु वाग् देवता नः॥

विनियोग और ध्यान के उपरान्त पूर्वोक्त मन्त्र का जप करना चाहिए।

श्री वाणीदेवी का मन्त्र

परिचय :

वाणी और स्वर को शक्ति, सम्मोहन, प्रभाव और अमोघता देने की क्षमता वाग्देवी के पास है। वही 'वाणीदेवी' कही जाती हैं। यह सरस्वती के पर्याय रूप में है। इन्हें 'गिरा' भी कहा जाता है। गायक, कवि, भाषण-कर्त्ता, प्रवक्ता, उपदेशक और तार्किक-जनों के लिए वाणीदेवी की कृपा अनिवार्य होती है। इसके अभाव में वे प्रतिभा रहते हुए भी बोल नहीं पाते। बोलते भी हैं, तो उसका प्रभाव नहीं पड़ता। स्वर और शब्दों में (वाणी में) प्राण-तत्त्व तथा प्रभाव-तत्त्व इन्हीं गिरादेवी की कृपा से उत्पन्न होता है। अतः जो लोग उपरोक्त क्षेत्रों में रहते हैं, वे वाणीदेवी की उपासना अवश्य करते है। महाकवि कालिदास की सिद्धि और प्रसिद्धि का एकमात्र आधार यही था कि वाणीदेवी उनपर कृपालु थीं। अकबर के नव-रत्नों में विख्यात 'राजा वीरबल' अपनी वाक्-शक्ति के लिए सर्वत्र मान्य थे। कारण कि उन्हें सरस्वतीजी का आशीर्वाद प्राप्त था। आज भी कोई-कोई वकील, प्रोफेसर, उपदेशक और सन्त-महात्मा ऐसे हैं, जिनकी वाणी में जादू का-सा सम्मोहन है। अस्तु, वाणीदेवी की उपासना के लिए पूर्व-वर्णित सरस्वती की उपासना-विधि अपनायी जाती है। उसके पश्चात् जप के लिए निम्नलिखित मन्त्र का जप किया जाता है :—

मन्त्र-जप :

ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं ॐ सरस्वत्यै नमः।

विद्यादेवी का मन्त्र

परिचय :

विद्या, ज्ञान, प्रतिभा, बौद्धिक-क्षमता, धारणा-शक्ति और अनेक विषयों (वेद, शास्त्र, न्याय, दर्शन अध्यात्म आदि) में पारङ्गति प्राप्त

करने की कामना रखने वाले साधक विद्यादेवी की उपासना करते हैं। इनकी उपासना भी वही सरस्वतीजी की उपासना है, केवल जप-मन्त्र भिन्न है।

जप-मन्त्र :

ॐ ह्रीं श्री ऐं वाग्वादिनी भगवती अर्हंनमुख निवासिनी सरस्वति ममास्ये प्रकाशं कुरु कुरु स्वाहा, ऐं नमः।

नीलसरस्वती-मन्त्र

परिचय :

सरस्वती-उपासना के मन्त्रों में इसे बहुत ही प्रभावी और महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस मन्त्र को सिद्ध करने वाला व्यक्ति भाषण के क्षेत्र में कभी परास्त नहीं हो सकता। तर्क, शास्त्रार्थ, वाद-विवाद, उपदेश आदि के अवसर पर किसी भी विषय में धाराप्रवाह बोल सकता है। वाणी और विद्या के क्षेत्र में यह सर्वाधिक प्रभावशाली मन्त्र है।

विनियोग :

ॐ अस्य महाविद्या मन्त्रस्य, ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप छन्दः, सरस्वती देवता, ममाभीष्ट सिद्धयर्थे जपे विनियोगः।

ध्यान-स्तुति :

पूर्व-वर्णित सरस्वती-मन्त्र वाली स्तुति पढ़ें। अथवा—

सरस्वती मया दृष्ट्वा, वीणापुस्तक धारिणी।
हंस वाहन संयुक्ता, विद्यादानं करोतु मे॥

जप-मन्त्र :

ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौं क्लीं ह्रीं ऐं ब्लूं श्रीं,
नलिनावतारे सरस्वती द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः।
ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौंः सौं ह्रीं स्वाहा॥

श्री सरस्वती का एकाक्षर-मन्त्र

परिचय :

पूर्व-वर्णित विधि के अनुसार सरस्वती-मन्त्र का विनियोग और ध्यान-स्तुति करने के पश्चात इस मन्त्र को जपना चाहिए। यह तथा अन्य सभी देवी-मन्त्र यदि दीपावली की रात्रि में सिद्ध किये जायें, तो बहुत प्रभावी रहते हैं।

जप-मन्त्र :

ऐं।

श्री कालीजी मन्त्र-साधना

परिचय :

आदि-शक्ति श्री भगवती के तीन प्रमुख रूप माने गये हैं—लक्ष्मी, सरस्वती और काली। वस्तुत: यह तीनों देवियाँ, तीनों रूप एक ही मूल-शक्ति (आदि-विद्या, आदि-भगवती) के विभिन्न रूप हैं। समस्त जगत् की व्यवस्था (सृजन, पालन और संहार) इन्हीं देवियों के हाथों सम्पन्न होती है सृष्टि की व्यवस्था इन देवियों के द्वारा इस क्रम से होती है :—

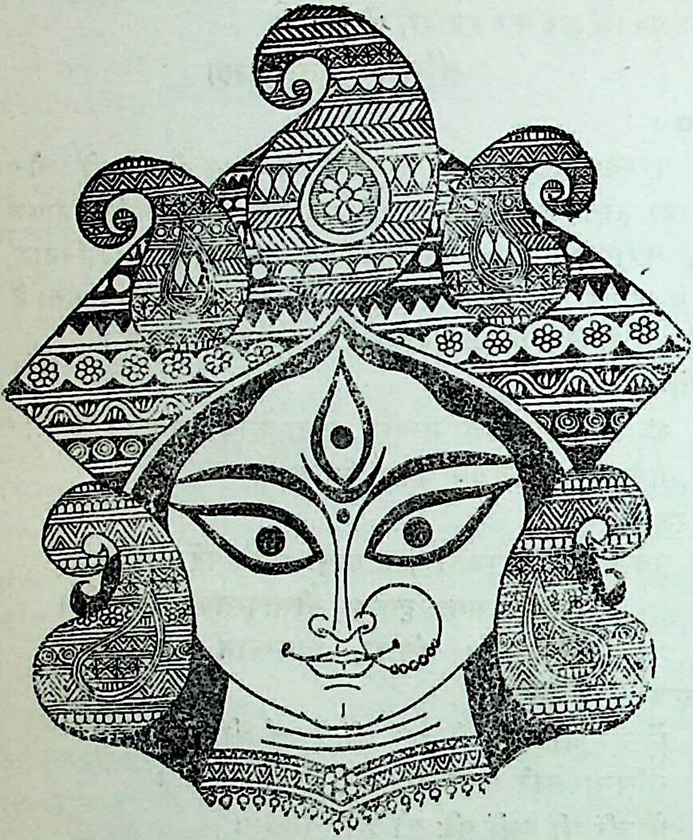

श्री माँ कालीजी

लक्ष्मी—यह देवीजी सृष्टि का जन्म लेकर मृत्यु पर्यन्त पोषण करती हैं। शरीर के लिए, जो भी भौतिक-साधन अपेक्षित होते हैं, वह सब इन्हीं की कृपा से मिलते हैं। धन-धान्य, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य, वित्त, सम्पदा और वैभव-विलास के समस्त उपादान इन्हीं की देन हैं।

सरस्वती—यह देवी प्राणियों में बौद्धिक-चेतना की सृष्टि करती है। ज्ञान, बुद्धि, विवेक, तर्क, चिन्तन, धारणा, कल्पना, अनुभूति, सम्वेग, दया, क्षमा, उदारता और मोह-ममता के भाव इन्हीं देवी के प्रसाद से व्यक्ति को सम्पन्न बनाते हैं।

काली—यह संहार की देवी हैं। मानव-जीवन का अन्तिम-आयाम इन्हीं के नियन्त्रण में रहता है। फिर भी चूँकि यह भी देवी है, अतः भक्तों के प्रति कृपा-भाव रखती हैं। यद्यपि इनकी प्रकृति में भयानकता है, परन्तु वह दुष्ट प्रवृत्तियों के लिए है। सामान्यतः ये भी समस्त सृष्टि की माता हैं और प्रत्येक सङ्कट से रक्षा करती हैं। चिन्ता, भय, शत्रु का आतङ्क, दैवी-सङ्कट, युद्ध का संत्रास, महामारी आदि से रक्षा पाने के लिए भक्तजन कालीजी का स्तवन करते हैं। वैसे, कोई भी साधक किसी भी कामना की पूर्ति के लिए काली का स्मरण कर सकता है। देवता (दैवी-शक्तियाँ) सदैव उदारमना और कृपालु होते हैं। श्रद्धा-भक्ति द्वारा उन्हें सरलता से अनुकूल बनाया जा सकता है। बङ्गाल में काली-साधना को बहुत मान्यता प्राप्त है। वहाँ घर-घर कालीजी की पूजा होती है। वैसे यह एक प्रासङ्गिक तथ्य है, अन्यथा तीनों देवियाँ समस्त भारत में आराध्य-देवी के रूप में पूजी जाती हैं। अब यह बात अलग है कि कोई साधक लक्ष्मी का भक्त है, कोई सरस्वती की उपासना को वरीयता देता है और किसी के लिए कालीजी ही संसार की सर्व सुखदायिनी देवी है। अतः इन देवियों में छोटी-बड़ी का विभेद-तर्क न करके, श्रद्धानुसार किसी की भी उपासना की जा सकती है। रूप-वर्ण की दृष्टि से तीनों देवियों में अन्तर है। यथा—

लक्ष्मीजी—लालिमायुक्त गौर-वर्ण, शोभन-रूप, लाल वस्त्र, रत्न-जटित स्वर्णाभूषण, प्रसन्न-मुद्रा। यह देवी चराचर-पति भगवान् विष्णु की शक्ति (पालन-क्षमता) अर्थात् अर्द्धाङ्गिनी-पत्नी हैं।

सरस्वतीजी—चन्द्रमा जैसी धवल कान्ति से युक्त, गौर-वर्ण, सौम्य-रूप, श्वेत-परिधान, मुक्ता-हीरक जटित स्वर्णालङ्कार, सहज सात्त्विक शान्त-मुद्रा। यह देवी सृष्टि-रचियता ब्रह्माजी की सृजन-शक्ति और अर्द्धाङ्गिनी (पत्नी) हैं।

कालीजी

कृष्ण-वर्ण (काला रङ्ग) होने के कारण, स्वभावतः रोमाञ्चकारी-भयानक रूप, काले वस्त्र (नीले रङ्ग के), आभूषणों के नाम पर मुण्ड-माला (नर-मुण्डों की माला), लाल लम्बी जिह्वा, बिखरे केश, भयानक

मुद्रा, आतङ्क-जनक दृष्टि, क्रोध, हिंसा और आक्रमण के भावों से उत्तेजित प्रकृति, नग्न-प्रायः शरीर। यह देवी शिवजी की शक्ति (संहार-क्षमता) और अर्द्धाङ्गिनी (पत्नी) हैं।

देवी अर्थात् शक्ति की उपासना का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। देवियों के शताधिक नाम रूपों की परिकल्पना करके उनसे सम्बन्धित सैकड़ों प्रसङ्ग-सन्दर्भों द्वारा उनका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। देवी-उपासकों का वर्ग अपनी अस्मिता सर्वथा भिन्न बनाये हुए हैं। उनकी धारणा, मान्यता, विचार, आस्था, उपासना पद्धति—यह सब अन्य देवताओं के उपासकों (वर्गों) से भिन्न है। देवी के उपासक 'शाक्त' कहलाते हैं। 'शाक्त' का शाब्दिक अर्थ है—शक्ति से सम्बन्धित। इसी प्रकार विष्णु के उपासक—'वैष्णव' (विष्णु से सम्बन्धित) और शिव के उपासक 'शैव' (शिव से सम्बन्ध रखने वाले) कहे जाते हैं। लक्ष्मी, सरस्वती, काली—ये तीन प्रमुख देवी-रूप हैं। बाद में प्रसङ्गानुसार इनके लीला-चरित्रों की पृष्ठ-भूमि पर इनके विभिन्न अवतारों, रूपों और नामों की परिकल्पना की गयी है। दुर्गाजी के अनेक नाम-रूप हैं, लक्ष्मीजी के अनेक नाम-रूप हैं, सरस्वतीजी के नाम-रूपों की संख्या कम है। इसी प्रकार कालीजी के भी कई नाम-रूप प्रसिद्ध हैं।

साधक किसी भी देवी के किसी भी रूप की उपासना करे। श्रद्धा-भक्ति के बल पर वह अवश्य ही उसकी कृपा का पात्र बन सकता है।

मूल काली-मन्त्र :

कालीजी की उपासना के कई मन्त्र प्राप्त होते हैं। उनमें सर्वाधिक मान्यता इस मन्त्र को दी गयी है :—

ॐ क्रीं क्रीं क्रीं हुँ हूँ ह्रीं ह्रीं
दक्षिण कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

साधना-विधि :

अन्य देवियों की भाँति कालीजी की उपासना के लिए भी कोई शुभ-मुहूर्त्त देख लेना चाहिए। 'नव-रात्र' का समय सर्वश्रेष्ठ होता है। वैसे, किसी भी शुभ-योग में पूजा आरम्भ की जा सकती है। इसलिए स्थानीय पुरोहित से जानकारी कर लेना उत्तम रहता है।

स्थान, पूजन-सामग्री, आसन, प्रतिमा, यन्त्र आदि—यह सब पहले से ही व्यवस्थित कर लेना चाहिए, ताकि साधना के मध्य कोई उलझन न हो। आसन पर बैठकर सर्वप्रथम देवी को प्रणाम करें, तत्पश्चात् निम्न-

लिखित मन्त्रों का उच्चारण करते हुए, उनसे सम्बन्धित अङ्गों का स्पर्श, प्रक्षालन, मार्जन आदि करें। उत्तम होगा कि किसी स्थानीय-पुरोहित अथवा कर्मकाण्डी विद्वान् से व्यावहारिक रूप में इस साधना की पद्धति को भली-भाँति समझ लें। यों, निम्नलिखित विधि को ध्यानपूर्वक पढ़ने से भी सब कुछ समझ में आ जायेगा। मन्त्र-जप और क्रियाएं क्रमशः इस प्रकार करें :—

मन्त्र	सम्बन्धित-अङ्ग	क्रिया
क्रीं (3 बार)	ओंठ	आचमन
ॐ काल्यै नमः		
ॐ कल्पायै नमः (2 बार)	ओंठ	मार्जन
ॐ कुल्यायै नमः (1 बार)	हाथ	धोना
ॐ कुरु कुल्यायै नमः	मुख	स्पर्श
ॐ विरोधन्यै नमः	दाहिनी नासिका	स्पर्श
ॐ विश्वचित्तायै नमः	वाम नासिका	,,
ॐ उग्रायै नमः	दक्षिण नेत्र	,,
ॐ उग्रप्रभायै नमः	वाम नेत्र	,,
ॐ दीप्तायै नमः	दाँया कान	,,
ॐ नीलायै नमः	बाँया कान	,,
ॐ धनायै नमः	नाभि	,,
ॐ बलाकायै नमः	हृदय	,,
ॐ मात्रयै नमः	मस्तक	,,
ॐ मुद्रायै नमः	दाँया कन्धा	,,
ॐ मितायै नमः	बाँया कन्धा	,,

इसके बाद तत्त्व-शुद्धि, भूत-शुद्धि और 'ह्रीं' का जप करते हुए (16 बार) पूरक, (64 बार जप करते हुए) कुम्भक और (32 बार जप करते हुए) रेचक प्राणायाम करना चाहिए। यदि ऐसा करना सम्भव नहीं है तो परम-श्रद्धा-विनय के साथ माता कालीजी का ध्यान स्तुति करते हुए क्षमा-याचना कर लेनी चाहिए। प्राणायाम के पश्चात् विनियोग और न्यास करने का भी विधान है। यथा—

विनियोग :

ॐ अस्य श्री काली मन्त्रस्य, भैरव ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, दक्षिण

कालिका देवता, ह्रीं बीजम्, क्रीं कीलकम्, हुँ शक्तिः, सर्वंपुरुषार्थं सिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि न्यास :

ॐ भैरवे नमः शिरसि ।
उष्णिक् छन्दसे नमः हृदि ।
दक्षिण कालिकायै देवतायै नमः गुह्ये ।
ह्रीं बीजाय नमः पादयो ।
हुँ शक्तये नमः मुखे ।
क्रीं कीलकायै नमः सर्वांगे ।

करांन्यास :

ॐ ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः ।
ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः ।
ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः ।
ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
ॐ ह्रः करतल करपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् ।

षडंगन्यास :

ॐ क्रां हृदयाय नमः ।
ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा ।
ॐ क्रूं शिखायै वषट् ।
ॐ क्रैं कवचाय हुँ ।
ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ क्रां अस्त्राय फट् ।

वर्णन्यास :

ॐ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं नमः हृदि ।
ॐ एं ऐं ओं ओं अं अः कं खं गं घं नमः दक्षिण बाहौ ।
ॐ ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः वाम बाहौ ।
ॐ णं तं थं धं नं पं फं बं भं नमः दक्षिण पादे ।
ॐ मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं त्रं नमः वाम पादे ।

इसके बाद मातृकान्यास का भी विधान, जो एक जटिल प्रक्रिया

है। उसके पश्चात् 'तत्त्वन्यास' और 'बीजन्यास' करने का विधान है। वह दोनों सरल हैं, अतः इनका उल्लेख प्रस्तुत है :—

तत्वन्यास :

क्रीं क्रीं क्रीं हुँ हुँ ह्रीं ह्रीं ॐ आत्म-तत्त्वाय स्वाहा।

दक्षिण कालिके ॐ विद्या-तत्त्वाय स्वाहा (हृदय से मस्तक तक का न्यास करें।)

बीजन्यास :

ब्रह्मरन्ध्रे—क्रीं नमः। भ्रूमध्ये—क्रीं नमः। ललाटे—क्रीं नमः। नाभौ—हुँ नमः। मुखे—ह्रीं नमः सर्वांगे—ह्रीं नमः।

इसके पश्चात् काली-प्रतिमा, चित्र अथवा यन्त्र–जो भी पूजा-स्थल पर स्थापित हो, को ध्यान-स्तुति द्वारा नमन करें। ध्यान-स्तुति के पश्चात् रुद्राक्ष की माला से मूल-मन्त्र का 1, 5, 7, 9, 11 माला (जैसी सुविधा-सामर्थ्य हो) नियमित रूप से जप करें। उपासना-काल में पूर्ण संयम से रहना चाहिए। काली-मन्त्र की पूर्ण जप-संख्या 21000 हजार है। मान लें, 5 माला नित्य जपते हैं, तो 42 दिनों में जप-संख्या पूरी हो जायेगी। जप-समाप्ति पर 42 वें दिन हवन करना चाहिए। हवन में भी सामर्थ्यानुसार 108 या अधिकतम आहुतियाँ दी जाती हैं। प्रत्येक आहुति मूल-मन्त्र को जपते हुए दी जाये, यह आवश्यक है।

महाकाली-मन्त्र की सिद्धि हेतु जप के पूर्व इस स्तुति द्वारा कालीजी का स्तवन-वन्दन कर लेना चाहिए :—

विरञ्चिः पञ्चतत्त्वं व्रजति हरिराप्तनोति विरतिं,
विनाशं कीनाशो भजति धनदो याति निधनं।
वितन्द्रा माहेन्द्री विततिरपि सम्मीलित दृशाम्,
महासंहारेऽस्मिन् विलसति सतिद्धवत्पति रसौ॥

ध्यान-स्तुति के बाद मन्त्र-जप करें। जप की समाप्ति पर भी देवी की स्तुति अवश्य करें।

सिद्ध महाकाली मन्त्र :

महाकालजी का एक मन्त्र और है। इसे 'सिद्ध महाकाली मन्त्र' कहते हैं। यह प्रथम वर्णित महाकाली-मन्त्र की अपेक्षा बहुत बड़ा है। दीर्घकालीन अभ्यास से ही इसे कण्ठस्थ किया जा सकता है, अन्यथा बिना पुस्तक देखे, इसका जप सम्भव नहीं हैं। दोनों मन्त्रों का प्रभाव समान है,

उपासना-विधि भी समान है, केवल मन्त्र के वर्णों में अन्तर है। साधक को, जो भी सहज प्रतीत हो, उसे अपना सकता है। ध्यान-स्तुति, न्यास आदि समस्त पूजन-विधान एक ही है। केवल मन्त्र के उच्चारण में अन्तर है।

मूल महाकाली-सिद्ध मन्त्र :

ॐ ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं ह्सौः श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं ज़ं क्लीं सं लं श्रीं रः अं जां इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं त्रं महाकाल्यै नमः।

साधना-विधि :

पूजा की समस्त प्रारम्भिक तैयारी करके, कालीजी (मूर्त्ति, चित्र अथवा यन्त्र) की विधिवत् पूजा करें। नैवेद्य के मामले में कई ग्रन्थ बलि प्रदान की पुष्टि करते हैं। 'शाक्त-समाज' में अधिकांश काली-भक्त बलि-व्यवस्था के समर्थक हैं और वे पशु-बलि देते भी हैं। परन्तु न जाने क्यों, मेरा अन्तर्मन इस विधान को स्वीकार नहीं करता। आखिर कोई माँ अपनी सन्तति की बलि कैसे लेगी? देवी 'कालीजी' आदिशक्ति का अवतार, अंश और प्रतिरूप है। जगज्जननी हैं समस्त सृष्टि के सृजन, पालन और लय की व्यवस्था उन्हीं के हाथों में है। तब कोई भक्त उनकी पूजा-उपासना के सन्दर्भ में किसी भेड़, बकरी, भैंसा या अन्य पशु को मारकर उसका रक्त-मांस कालीजी को अर्पित करे—यह कैसा विधान है? अगर कहा जाय कि यह शास्त्रीय-निर्देश है, तो भी प्रश्न उठता है कि शास्त्रों का प्रणयन किसने किया था? मुझे तो लगता है किसी मांस-प्रेमी ने स्वयं को प्रसाद रूप में मांस उपलब्ध कराने के लिए यह नियम बना डाला है। जो भी हो, मैं किसी भी पूजा-साधना में मांस-प्रयोग का समर्थक नहीं हूँ। वास्तविकता तो यह है कि देवी देवता साधक की श्रद्धा देखते हैं, आडम्बर नहीं। तन्त्र-साधना में अवश्य भौतिक-पदार्थों का महत्व है, परन्तु यान्त्रिक-साधना—मानस-पूजन, मन्त्र-जप, ध्यान आदि में केवल श्रद्धापूर्वक इष्ट का स्मरण ही पर्याप्त होता है, अतः काली साधक यदि पूर्ण श्रद्धा-भाव से माता काली का स्मरण-चिन्तन करें, तो वे बिना किसी औपचारिक विधि-विधान के ही, बड़ी सरलता से उनकी कृपा प्राप्त कर सकते हैं। जो लोग कुछ भी नहीं कर सकते, वे 'ॐ महाकाल्यै नमः' के जप से भी लाभान्वित हो सकते हैं।

महाकाली मन्त्र :

कालीजी के अनेक नाम-रूप प्रचलित हैं। भक्तजन अपनी आस्था और भावना के अनुसार उनके किसी भी रूप का स्तवन, चिन्तन, दर्शन, पूजन करके लाभान्वित हो सकते हैं। शास्त्रीय विधि-विधान से की गयी पूजा अवश्य ही प्रभावशाली होती है। परन्तु जन-सामान्य के सन्दर्भ में मेरी धारणा है कि कोई भी व्यक्ति यदि अडिग श्रद्धा और अभङ्ग विश्वास के साथ किसी भी देवी-देवता की शरण लेता है, उसका स्तवन, मन्त्र-जप और पूजा-उपासना करता है, तो शास्त्रीय-नियमों का पालन न कर पाने की स्थिति में भी वह देव-कृपा प्राप्त करने में सफल रहता है। इसका कारण यह है कि देवता (ईश्वर का कोई भी रूप—देवी अथवा देवता) साधक की श्रद्धा से ही प्रभावित होते हैं, बाह्याडम्बर से नहीं। आडम्बर, साधान, नियम और विभिन्न उपादान एक ओर, इसके विपरीत सहज समर्पण-भाव की अभङ्ग श्रद्धा एक ओर। इन दोनों में श्रद्धा-पक्ष अधिक समर्थ रहता है। श्रद्धालु भक्तों को दैवी-कृपा का प्रभाव शीघ्र ही अनुभव में आ जाता है, जबकि नियमों की प्रतिबद्धता के कारण द्वन्द्व-ग्रस्त, शङ्कालु और आस्थाहीन-जन वर्षों तक दौड़-धूप, श्रम-साधना करने के बाद भी कुछ नहीं पाते। अतः उत्तम यही होगा कि साधक पहले तो स्वयं को किसी देव-शक्ति के प्रति आस्थावान्, श्रद्धालु बनाये, फिर परमम तन्तयता, अखण्ड-विश्वास और पूर्णरूपेण आत्म-समर्पण के भाव से उस शक्ति की आराधना करे। इस प्रकार की गयी उपासना अवश्य ही फलदायी होती है।

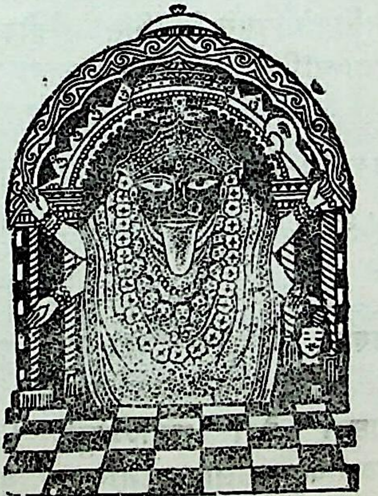

श्री महाकाली जी

यहाँ देवी महाकालीजी का एक अति सरल, संक्षिप्त, किन्तु अत्यन्त प्रभावशाली मन्त्र प्रस्तुत किया जा रहा है। यह चिर-अनुभूत मन्त्र है। इसका जप कभी निष्फल नहीं होता। श्रद्धा-भाव से इसे कभी भी, कहीं भी जपते हुए, साधकजन लाभान्वित हो सकते हैं। वैसे, नियमपूर्वक साधना किये मंत्र का प्रभाव अवश्य ही कुछ विशिष्टता रखता है। इस मन्त्र की साधना के लिए किसी शुभ मुहूर्त्त में जप प्रारम्भ करना चाहिए। जप के पूर्व कालीजी की प्रतिमा (चित्र अथवा यन्त्र) की पूजा करना आवश्यक है। पूजा में कोई भी विधि (पंचोपचार-षोड़शोपचार) अपनायें। कुछ न हो तो केवल स्नान, चन्दन, सिंदूर, पुष्प, धूप-दीप, नैवेद्य ही अर्पित करें। इसके बाद श्री महाकालीजी का ध्यान करते हुए मन्त्र-जप आरम्भ करें। फिर प्रतिदिन एक निश्चित संख्या में, पूजन के समय यह मन्त्र जपते रहना चाहिए।

मन्त्र का मूल रूप :

'ॐ किलि किलि स्वाहा।'

कालीजी के कुछ अन्य मन्त्र

यहाँ कालीजी की उपासना से सम्बन्धित चार प्रमुख मन्त्र प्रस्तुत हैं। तीनों के लिए विनियोग और ध्यान-स्तुति एक ही है, केवल जप-मन्त्र में शब्दों का अन्तर है। साधक अपनी आस्था के अनुसार किसी भी मन्त्र का जप कर सकते हैं। ध्यान रहे कि विधिवत् उपासना करनें वाले साधक को कालीजी के दर्शन हो जाते हैं। पर चूँकि उनका स्वरूप भयानक है, अतः डरना नहीं चाहिए। काली-उपासना के समय चाहे जैसी भयद या रोमाञ्चकारी अनुभूति हो, उससे विचलित न होकर, उसे माँ के प्रसाद के रूप में ग्रहण करना चाहिए।

विनियोग :

ॐ अस्य श्री काली मन्त्रस्य, भैरव ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, कालिका देवता, क्रीं बीजम्, हुँ शक्तिः, क्रीं कीलकं, ममाभीष्ट सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ध्यान-स्तुति :

ॐ शवारूढ़ां महाभीमां घोर दंष्ट्रां हसन्मुखीम्।
चतुर्भुजां खड्ग मुण्डवरा भयकरां शिवाम्॥
मुण्डमालाधरां देवीं ललज्जिह्वां दिगम्बराम्।
एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं श्मशानालय वासिनीम्॥

इसी विनियोग और ध्यान-स्तुति के आधार पर आगे लिखे चार मन्त्रों में से किसी का भी जप करके, माँ कालीजी की कृपा प्राप्त की जा सकती है।

पञ्चाक्षर काली-मन्त्र :

ॐ ह्रीं श्रीं हुँ फट् ।

श्मशान काली-मन्त्र :

ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं कालिके ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ।

भद्रकाली-मन्त्र :

ॐ ह्रीं कालि महाकालि किलि किलि फट् स्वाहा ।

दक्षिणकाली-मन्त्र :

ॐ क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं दक्षिण कालिके क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ स्वाहा ।

देवी के अन्य विशिष्ट मंत्र

श्री तारिणी मन्त्र-साधना

परिचय :

तन्त्र-शास्त्र के अनुसार, महाविद्याओं के समस्त मन्त्र में 'तारिणी-मन्त्र' सर्वश्रेष्ठ है, कारण कि यह सर्वथा निरापद, निर्विघ्न और निर्दोष-मन्त्र है। यह मन्त्र स्वयं-सिद्ध है, अतः इसे किसी विशेष साधना-प्रक्रिया द्वारा सिद्ध करनें का प्रश्न ही नहीं उठता। कोई भी साधक, सहज श्रद्धा भाव से इसका जप करके लाभान्वित हो सकता है। यह एक ऐसा मन्त्र है, जो देवी के उपासकों (शाक्त-समुदाय), बौद्धों और जैनियों में भी परम श्रद्धा के साथ सम्मानित है। तिब्बती लामा-साधक भी इसे बड़ी आस्था से अपनाये हुए हैं। इस मन्त्र की साधना में कोई विशेष प्रतिबन्ध नहीं है। दैनिक-चर्या के रूप में, स्नान करके, किसी भी देवी-प्रतिमा की पूजा करते हुए, इस मन्त्र का जप किया जा सकमा है। नियमित रूप से कुछ दिनों तक आस्थापूर्वक इसका जप करना—साधक को अवश्य ही चमत्कृत करता है।

मूल तारिणी-मन्त्र :

'ॐ ह्रीं त्रीं हुँ फट् स्त्रीं ह्रीं ॐ ।'

साधना-विधि :

किसी भी शुभ-मुहूर्त्त में यह साधना आरम्भ की जा सकती है। जैसे देवी के अन्य रूपावतारों की पूजा करते हैं, वैसे ही इसमें भी किसी रूप (दुर्गाजी) की पूजा करें। पूजा में प्रतिमा, चित्र अथवा यन्त्र, जो भी सुलभ हो, रख लें। चन्दन, पुष्प, धूप-दीप, नैवेद्य आदि से उसकी पूजा करके, दुर्गाजी की कोई भी ध्यान-स्तुति पढ़ें। तदुपरान्त इस तारिणी-मन्त्र का जप आरम्भ करें। प्रतिदिन कम से कम एक माला (108 बार) जप अवश्य करना चाहिए। जप आरम्भ करने के पूर्व मानसिक रूप में यह सङ्कल्प करलें कि 'मैं श्री तारिणी देवी का मन्त्र इतने दिनों में, इतनी संख्या में जपकर पूरा करना चाहता हूँ।' देवीजी मेरी रक्षा करें। फिर उसी हिसाब से नित्य उतनी संख्या में जप करना चाहिए। जप की

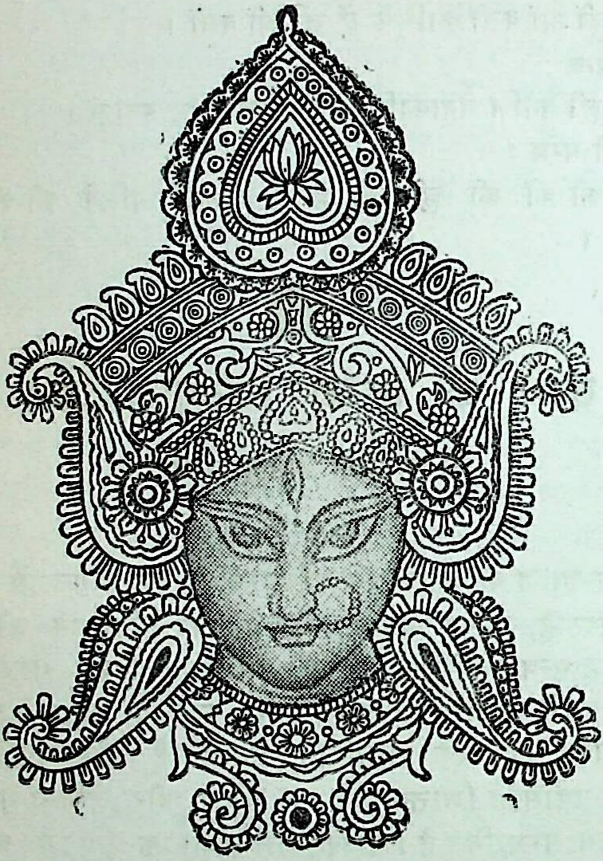

श्री माँ तारिणी देवी

सङ्कल्पित-संख्या पूरी हो जाने पर 108 आहुतियों से हवन करके, एक ब्राह्मण-कन्या को भोजन-दान भी देना चाहिए। वैसे, यह कुछ न किया जाय, केवल दैनिक-पूजा में इस मन्त्र को एक माला (108 बार) जप लिया जाय, तो भी बहुत कल्याणकारी होता है।

देवी-साधना के प्रसङ्ग में यह तथ्य विशेष उल्लेखनीय है कि किसी पुस्तक में देवी के विभिन्न रूपों, अवतारों ओर साधनाओं का विवरण पढ़कर भ्रमित नहीं होना चाहिए। उनमें छोटे-बड़े का विभेद करना अनुचित है। सभी रूप श्रेष्ठ हैं। जिस पर भी आस्था हो, उसकी उपासना की जा सकती है।

श्री वाग्वादिनी मन्त्र-साधना

परिचय :

वाग्वादिनी देवी सरस्वतीजी का प्रतिरूप (पर्याय) है। ज्ञान, बुद्धि, कवित्त्व, ग्रन्थ-लेखन, विद्वता, वाक्-पटुता, चातुर्य, सभा-विलास, भाषण, तर्क-वितर्क, सङ्गीत, गायन, वार्त्तालाप, सन्देश-कथन, सम्वाद तथा वाणी से सम्बन्धित अन्य सभी कार्यों में देवी सरस्वती अर्थात् वाग्वादिनी की कृपा ही सहायक होती है। 'वाणी-सिद्धि' के लिए—यह मन्त्र बहुत उपयोगी होता है।

मूल-मन्त्र :

ॐ ऐं वद वद वाग्वादिनि मम जिह्वाग्रे स्थिरभावं
सर्वं सत्त्व वशंकरि स्वाहा।

साधना-विधि :

देवी दुर्गाजी की अन्य उपासनाओं की भाँति किसी भी शुभ-मुहूर्त्त में इस साधना को प्रारम्भ कर सकते हैं। इसमें प्रतिबन्ध यह है कि साधक

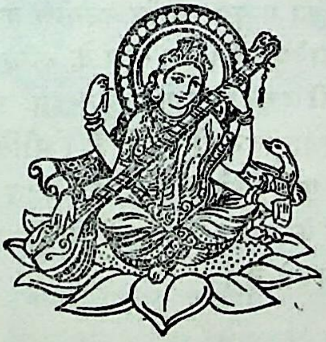

श्री माँ वाग्वादिनी देवी

कुश के आसन पर बैठे और मन्त्र का जप रुद्राक्ष अथवा हल्दी की माला से करें। जप के दिनों में (जप के समय) साधक पीले रङ्ग के वस्त्र पहिने और पूर्ण संयम के साथ 41 दिनों तक साधना-रत रहे। नित्य कम से कम 5, 9 या 11 माला जप करना चाहिए।

देवी सरस्वतीजी का चित्र, प्रतिमा अथवा यन्त्र सामने रखकर, उसकी विधिवत् पूजा करें। तत्पश्चात् ध्यान-स्तुति द्वारा सरस्वतीजी को प्रसन्न करके मन्त्र का जप प्रारम्भ करें। ध्यान-स्तुति के लिए यह श्लोक पर्याप्त है :—

ध्यान-स्तुति :

तरुण सकलमिन्दो विभ्रति शुभ्र कान्ति,
कुचभर नमिताङ्गी सन्निषण्णा सिताब्जै।
निजकरकमलोद्यत् लेखनी पुस्तक श्रीं,
सकल विभव सिद्ध्यै पातु वाग् देवता नः॥

ध्यान-स्तुति के पश्चात् मन्त्र (ऊपर लिखा हुआ) जपें। जप की समाप्ति पर पुनः देवी से प्रार्थना करें :—

सरस्वती मया दृष्ट्वा, बीणापुस्तक धारिणी।
हंस वाहन संयुक्ता, विद्यादानं करोतु मे॥

इस साधना से साधक को वाक्-सिद्धि प्राप्त हो जाती है। उसके प्रभाव से वह व्यावहारिक-जगत् में सर्वत्र सम्मान और विजय प्राप्त करता है।

श्री सर्वमंगला मन्त्र-साधना

परिचय :

समस्त चराचर का मङ्गल अर्थात् कल्याण करने वाली देवी दुर्गाजी का एक नाम 'सर्वमङ्गला' भी है। इस नाम के आधार पर उनकी स्तुति हेतु 'सर्वमङ्गला-मन्त्र' की रचना की गयी है। इस मन्त्र का जप करने से साधक की विभिन्न समस्याएं दूर हो जाती हैं। भौतिक तथा आध्यात्मिक सभी प्रकार के मनोरथ पूर्ण करने में यह मन्त्र बहुत ही सक्षम है। इसकी साधना सरल है। आज के व्यस्त-जीवन में भी साधक इसे बड़ी सरलता से जप कर लाभ उठा सकते हैं।

मूल मन्त्र :

'ॐ क्लीं सं सर्वमङ्गलायै नित्यायै स्वाहा।'

साधना-विधि :

दुर्गाजी की प्रतिमा, चित्र अथवा यन्त्र स्थापित करके किसी भी शुभ मुहूर्त्त में इस मन्त्र का जप आरम्भ कर सकते हैं। सर्वप्रथम देवीजी की पूजा करें, तदुपरान्त ध्यान-स्तुति का पाठ करके मन्त्र का जप प्रारम्भ कर दें। नित्य 5 माला या अधिक—जैसी सुविधा-सामर्थ्य हो, जपते हुए इसकी कुल संख्या 10,000 पूरी करें। जप-संख्या पूर्ण हो जाने पर—हवन और दान-दक्षिणा द्वारा इसका समापन करें। फिर दैनिक रूप में एक माला जपते रहने से परम लाभ का अनुभव होता है।

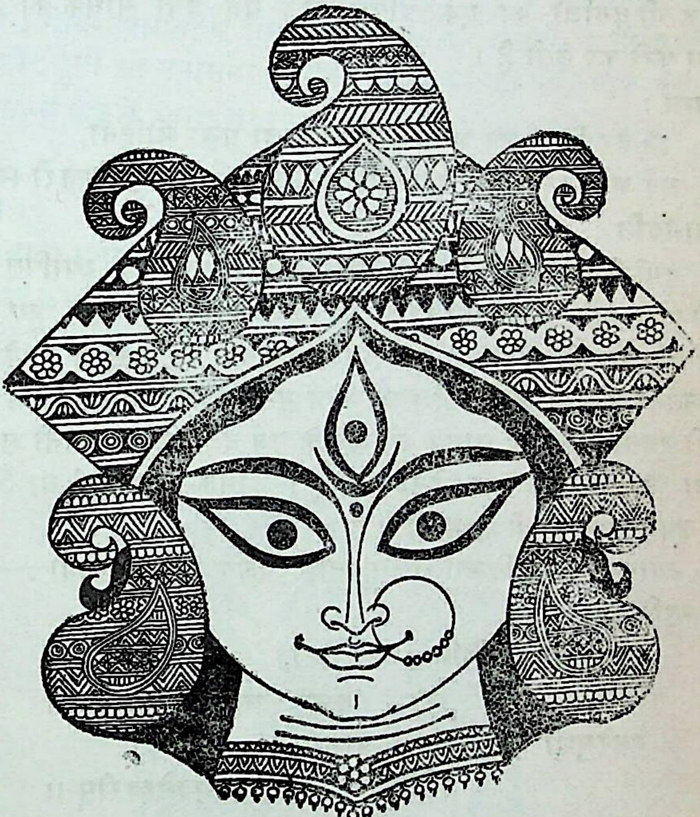

श्री माँ सर्वमङ्गला देवी

ध्यान-स्तुति :

प्रकृत्या रक्तायास्तव सुदति दन्तच्छरुचैः,
प्रवक्ष्ये सादृश्यं जनयतु फलं विद्रुमलता।
क्व बिम्बं त्वद् बिम्बप्रति फलन भावादरुणितं,
तुलामध्यारोढुं कथमपि विलज्जेत कलया॥

ध्यान-स्तुति के बाद मूल-मन्त्र का जप करें। जप की समाप्ति पर पुनः क्षमा-प्रार्थना हेतु स्तुति करें :—

सर्वं मङ्गल माङ्गल्यै शिवे सर्वार्थं साधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोस्तुते ।।

श्री भुवनेश्वरी मन्त्र-साधना

परिचय :

देवी भुवनेश्वरीजी अपने नामानुसार समस्त लोक की अधीश्वरी हैं। यह भी दुर्गाजी का एक प्रतिरूप है। यह देवी साधक की प्रत्येक कामना पूरी कर देती हैं।

मूल-मन्त्र :

'ॐ हृर त्रिपुर हृर भवानी बाला राजा प्रजा मोहिनी,
सर्वं शत्रु विध्वंसिनी मम चिन्तितं फलं देहि देहि भुवनेश्वरी स्वाहा।'

साधना-विधि :

दुर्गाजी का कोई भी रूप (चित्र, यन्त्र, प्रतिमा) स्थापित करके उसकी पूजा करें। तत्पश्चात् किसी भी दुर्गा-स्तुति को पढ़ते हुए उनका ध्यान करें और फिर जप की एक निश्चित संख्या का सङ्कल्प करके प्रतिदिन उतनी मालाएं जपते रहें। यह मन्त्र मुख्यतः कामना-पूर्त्ति में विशेष प्रभावी रहता है। अतः साधक को जप के पूर्व देवीजी से अपनी लालसा-कामना का निवेदन कर देना चाहिए। दैनिक-पूजा में 1 या 5 माला नित्य जपते रहने से भी लाभ होता है।

ध्यान के लिए निम्नलिखित स्तुति विशेष उपयुक्त होगी :—

ध्यान-स्तुति :

बालरवि द्युतिमिन्दु क्रिरीटां,
तुङ्ग कुचां त्रयनेत्र युक्ताम्।
स्मरेमुखीं वरदांकुश पाशाम्,
भीतिकरां प्रभजे भुवनेश्वरीम् ।।

विशेष द्रष्टव्य :

माता भुगनेश्वरी देवी की साधना में यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि साधक को अपनी कामनानुसार ही माला का प्रयोग करना चाहिए। कारण कि तान्त्रिक-दृष्टि से माला का वस्तुगत प्रभाव अवश्य पड़ता है, जो वस्तु-भेद के आधार पर प्रभाव-भिन्नता लिये रहता है। उद्देश्य के आधार पर माला का उपयोग इस प्रकार किया जाना चाहिए :—

धन-समृद्धि के लिए—पद्माक्ष अथवा रेशम की माला।
आपदा-सङ्कट निवारण हेतु—लाल चन्दन की माला।
शत्रु-दमन के लिए—हल्दी की माला।
विद्या, ज्ञान, बुद्धि के लिए— स्फटिक की माला।
समस्त प्रयोजनों के लिए—रुद्राक्ष की माला।

वस्तुतः रुद्राक्ष-माला सर्वश्रेष्ठ होती है। केवल अभिचार और प्रेतादि की साधना को छोड़कर, सभी उपासनाओं में यह माला प्रयोज्य होती है। शिव-उपासना के लिए तो यह परम प्रभावी मानी जाती है। गणेश और दुर्गा की उपासना सम्बन्धी मन्त्रों का जप इसी माला पर होता है। सामान्य रूप में रुद्राक्ष माला धारण करना भी शुभ होता है।

श्री शूलिनी दुर्गा-मन्त्र साधना

परिचय :

माता दुर्गाजी का यह भी एक रूप है। साधकजन इस रूप की आराधना करके मनोवाञ्छित फल प्राप्त करते हैं।

मूल-मन्त्र :

'ॐ ज्वल ज्वल शूलिनी दुष्टग्रह हुँ फट्।'

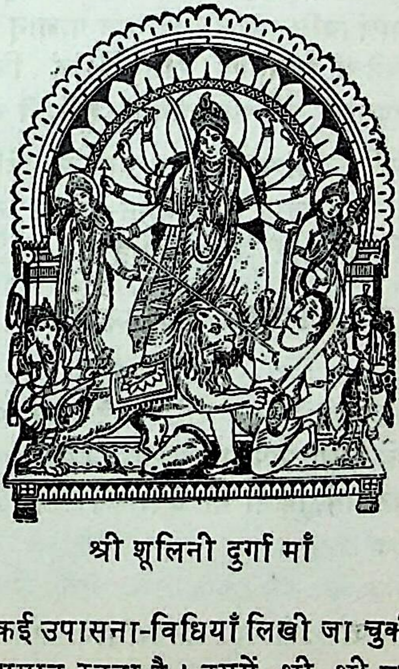

श्री शूलिनी दुर्गा माँ

साधना-विधि :

देवीजी की कई उपासना-विधियाँ लिखी जा चुकी हैं। लगभग सभी का प्रारम्भिक रूप समान रहता है। इसमें भी श्री-यन्त्र लाकर स्थापित

करें और उसकी विधिवत् पूजा करके, न्यास आदि के द्वारा मन्त्र-जप की पूर्व तैयारी करलें। जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है, न्यास आदि आज सम्भव नहीं रह गये हैं। सामान्य साधक उनका विवरण पढ़कर हतोत्साहित हो जाता है। अतः सर्वश्रेष्ठ विधि यही है कि श्रीयन्त्र की पूजा करके शूलिनी दुर्गा का ध्यान करें, तदुपरान्त मन्त्र-जप आरम्भ करें। प्रसङ्ग-पूर्ति के लिए यहाँ करन्यास का विवरण लिखा जा रहा है।

करन्यास :

ॐ शूलिनी दुर्गे हुँ फट् अंगुष्ठाभ्यां नमः।

ॐ शूलिनि वरदे हुँ फट् तर्जनीभ्यां नमः।

ॐ शूलिनी विन्ध्यवासिनि हुँ फट् मध्यमाभ्यां वषट्।

ॐ शूलिनी असुर मर्दिनि युद्धप्रिये त्रासय त्रासय हुँ फट् अनामिकाभ्यां हुँ।

ॐ शूलिनि देव सिद्ध पूजिते वन्दिनि रक्ष रक्ष महायोगेश्वरी हूँ फट् कनिष्ठिकाभ्यां वषट्।

ध्यान स्तुति :

अध्यारूढां मगेन्द्रं सजल जलधार श्यामलां हस्त पद्मां।
शूलं वाणं कृपाणं त्वसि जलज गदा चाप पाशान् वहन्तीम्॥
चन्द्रोतशा त्रिनेत्रां चितसृणि रसिभाखेटकं विभ्रतीभिः।
कष्याभिः सेव्यमाना प्रतिभट भयदां शूलिनी भावयाम्॥

यदि किसी निश्चित संख्या में इस मन्त्र का दैनिक-जप करके 15 लाख की संख्या पूरी करली जाय और हवन-दान से समापन किया जाय तो साधना अवश्य ही चमत्कारी लाभ देती है।

श्री बज्रेश्वरी मन्त्र-साधना

परिचय :

यह भी देवी दुर्गाजी का एक प्रतिरूप है। घर, पड़ोस, नगर आदि की रक्षा के लिए इन्हें विशेष रूप से स्मरण किया जाता है। वैसे, किसी भी समस्या के निवारणार्थ, किसी भी देवी-रूप का जप-चिन्तन करने से कल्याण हो जाता है।

जप-मन्त्र :

ॐ ऐं ह्रीं बज्रेश्वरी पुर निवासिनि मम कार्यं साधय साधय स्वाहा।

साधना-विधि :

दुर्गाजी का कोई भी प्रतीक यन्त्र, चित्र अथवा प्रतिमा स्थापित करके उसकी पूजा करें। तदुपरान्त किसी भी ध्यान स्तुति द्वारा देवी को प्रणाम करते हुए नित्य कम से कम एक माला (108 दाने की) उपर्युक्त मन्त्र का जप करें। इक्कीस दिनों तक पूर्ण संयम के साथ पूजन और मन्त्र-जप करें। जप की समाप्ति पर यथासम्भव अवन और भोजन-दान करें। इस प्रकार यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

श्री दैन्यभेदिनी मन्त्र-साधना

परिचय :

श्री दुर्गाजी के समस्त रूपावहार साधकों की बहुविध लालसाएं पूरी करने में समर्थ हैं। परन्तु कुछ विशेष अवतार, किन्हीं विशेष समस्याओं के समाधान हेतु ही हुए। ऐसा ही एक दुर्गाजी का रूप है–दैन्यभेदिनी देवी। यह अवतार अपने नामानुसार भक्तों के दैन्य (दरिद्रता) का भेदन (विनाश) करता है। यह अवतार देवी लक्ष्मी (श्री त्रिपुर-सुन्दरी) का पर्याय है।

जप मन्त्र :

ॐ श्रीं ऐं यं रं लं वं दुर्गा तारिण्यै दैन्यभेदिन्यै स्वाहा।

साधना-विधि :

यह साधना 'नवरात्र' में विशेष फलदायिनी होती हैं। यदि इतनी लम्बी प्रतीक्षा न की जा सके, तो किसी भी शुभमुहूर्त्त से साधना आरम्भ कर सकते हैं। लक्ष्मीजी की प्रतिमा अथवा श्री-यन्त्र की स्थापना करके उसकी विधिवत् पूजा करें। तदुपरान्त निम्नलिखित ध्यान-स्तुति द्वारा देवी को प्रणाम करके मूल-मन्त्र का जप आरम्भ करें। न्यास आदि की जटिलता सर्वसाधारण को हतोत्साहित करती है, अतः उसका विवरण न लिखकर, सहज सुगम साधना-विधि लिखी जा रही हैं। यहाँ यह भी ध्यान में रखने की बात है कि यह साधना प्रातः ब्रह्म-मुहूर्त्त में प्रारम्भ कर देना चाहिए। साथ ही, इसके लिए साधक को कुश का आसन प्रयोग करना चाहिए। अन्य उपादान धूप-दीप आदि तो सभी प्रकार की साधनाओं में प्रयुक्त होते हैं। इसमें इस तथ्य की ओर विशेष सजग रहें कि मन्त्र-जप के

पूरे समय तक घी (अथवा मीठे तेल) का दीपक साधक के सामने, कलश पर जलता रहे। कलश को ठीक देवी-प्रतिमा के सम्मुख स्थापित करना चाहिए।

उस मन्त्र की पूर्ण जप-संख्या सवालाख कही गयी है। इसे नौ दिनों में पूरी करना चाहिए। किन्तु मेरा अपना मत है कि साधक अपनी सामर्थ्य के अनुसार अधिकतम जितना भी कर सके—जप का सङ्कल्प करले और फिर उसे पूरा करे। इक्कीस हजार, ग्यारह हजार, नौ हजार अथवा इक्यावन हजार, जो भी सम्भव हो, पूर्व सङ्कल्प करके नौ दिनों तक बराबर संख्या में जपते हुए—अन्तिम-दिन सङ्कल्प की संख्या पूरी कर देनी चाहिए। जप पूरा हो चुकने पर हवन और दान भी करें। जप के प्रारम्भ और समाप्ति पर नित्य श्री लक्ष्मीजी की स्तुति करनी चाहिए :—

ध्यान-स्तुति :

ददाने दीनेभ्यः श्रियमनिशमाशानु सदृशी,
तमन्दं सौन्दर्यं प्रकरमकरन्दं विकरति।
तवास्मिन मन्दारस्तयक सुभगे यातु चरणे,
निमज्जन्मज्जीवः करण चरणैः षट् चरणताम् ॥

ध्यान-स्तुति के बाद मूल-मन्त्र का जप और जप की समाप्ति पर पुनः कोई स्तुति करनी चाहिए। यदि स्तुति-श्लोक याद न हो अथवा पुस्तक में न मिल रहा हो, या अभ्यास न होने के कारण पाठ करने में कोई असुविधा होती हो तो साधक मध्यम-मार्ग का अनुसरण करलें। ऐसी स्थिति में वह अपनी भाषा, अपने शब्दों में श्री लक्ष्मीजी का स्तवन-चिन्तन कर सकता है। प्रतिदिन कोई साधक इस मन्त्र की एक माला जपता रहे तो भी उससे लाभ की अनुभूति हो सकती है।

मन्त्र :—ॐ श्रीं श्रियै नमः।

श्री अन्नपूर्णा मन्त्र-साधना

परिचय :

शाकम्भरी देवी की भाँति अन्नपूर्णा देवी भी दुर्गाजी का प्रत्यावतार हैं।समस्त जगद् के लिए भोजन अर्थात् आहार इन्हीं की कृपा से उपलब्ध होता है। श्री अन्नपूर्णाजी जिस साधक पर कृपा करें, उसके घर भण्डार में कभी अन्नाभाव नहीं होता। वह घर अन्न (खाद्य पदार्थों) से सदैव परिपूर्ण रहता है। देवी-मन्त्रों में यह सरलतम और सहज-साध्य है। सामान्य जप से ही यह सिद्ध हो जाता है। वस्तुतः यह स्वयंसिद्ध मन्त्र है।

मूल-मन्त्र :

1. ॐ ह्रां ह्रीं क्लीं लं अन्नपूर्णायै भवान्यै स्वाहा ।
2. ॐ ह्सौः पं फं बं भं मं रः भवानि स्वाहा ।

ध्यान-स्तुति :

1—भवानि त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा,
मिति स्तोतुं वाञ्छन कथयति भवानी त्वमिति ।
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निज सायुज्य पदवीं,
मुकुन्द ब्रह्मेन्द्र स्फुट मुकुट नीराजित पदम् ।।

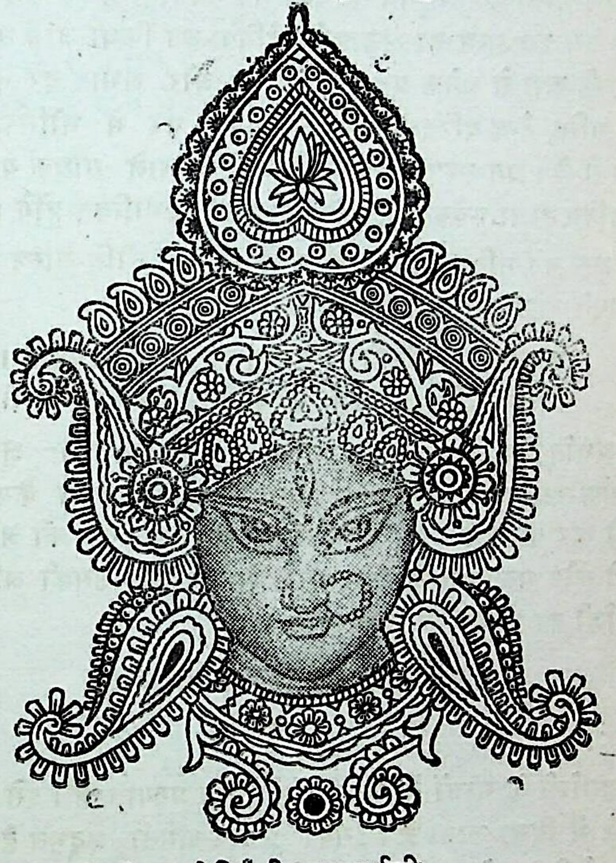

देवि श्री अन्नपूर्णाजी

2—किरीटं वैरं च परिहर चुरः कैटभभिदः,
कठोरे कोटीरे स्खलसि जहि जम्भारि मुकुटं ।
प्रणम्येष्वेतेषु प्रसभमभि या यस्य भवनं,
हरस्याभ्युत्थाने तव परिजनोक्ति विजियते ।।

साधना-विधि :

दुर्गाजी अथवा लक्ष्मीजी का चित्र, मूर्त्ति या यन्त्र लाकर पूजा-स्थल पर रखें। दैनिव-पूजा के समय, ध्यान-स्तुति के उपरान्त, ऊपर दिये गये दो मन्त्रों में से कोई भी एक जपें। इस मन्त्र को प्रतिदिन पाँच या सात माला जपते रहें यह भी स्वयंसिद्ध मन्त्र है, अत: इसकी उपासना सरल है। कोई विशेष आयोजन और नियम प्रतिवन्ध इसमें नहीं। सामान्य-साधक यदि नित्य पूजा के समय 1 माला भी इस मन्त्र को जपता रहे, तो बहुत लाभ होता है। अनुभव तो यहाँ तक बताता है कि कम से कम 21 बार भी इस इस मन्त्र का श्रद्धापूर्वक दैनिक-जप किया जाये तो देवी अन्नपूर्णाजी की कृपा से अनेक प्रकार के सङ्कट और अभाव दूर हो जाते हैं। ऋण से मुक्ति, दैन्य-दरिद्रता से मुक्ति होकर घर में भौतिक-साधनों की वृद्धि होती है। धन-सम्पदा की कामना रखने वाले साधक यदि इस मन्त्र को प्रतिदिन श्रद्धा-पूर्वक जपें, तो अवश्य ही लाभान्वित होंगे।

अन्न की महिमा संसार में सर्वोपरि है। नीति-शास्त्र में एक उपदेशक अपने राजा को समझाता है :—

धान्यानां संग्रहो राजनुत्तम सर्वं संग्रहात्।
निक्षिप्त हि मुखे रत्नं, न कुर्यात् प्राण धारणम्॥

अर्थात् मुख में रखा हुआ लाखों का मूल्यवान् रत्न—क्षुधा-निवारण करके प्राण-रक्षा करने में असमर्थ रहता है। यह कार्य तो केवल अन्न का दाना ही कर पाता है। इस दृष्टि से अन्न का दाना रत्न की अपेक्षा अधिक उपयोगी और मूल्यवान् है। इस प्रसङ्ग से अन्न और उसकी अधिष्ठात्री—अन्नपूर्णाजी का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

श्री वनदुर्गा मन्त्र-साधना

परिचय :

दुर्गाजी के मन्त्रों में वन-दुर्गा का मन्त्र प्रख्यात है। इसे 'महामन्त्र' की कोटि में गिना जाता है। इसकी प्रभाव-क्षमता अद्‌भुत है। यदि कोई साधक पूर्ण-निष्ठा के साथ इसका नियमित जप करे तो थोड़े दिनों में ही इसका फल प्राप्त कर लेता है। यह आशुफलदायी माना जाता है। जिस साधक को यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है, वह परम विवेकी, ज्ञानी और त्रिकालदर्शी बन जाता है। दुर्गाजी की कृपा उसे सदैव प्राप्त रहती है, उनकी कृपा से श्री-सम्पन्न और सुरक्षित जीवन व्यतीत करता है। किसी

भी आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए, अथवा ऐसे ही, निष्काम भाव से इस मन्त्र की नियमित साधना बहुत लाभदायक रहती है।

मूल-मन्त्र :

ॐ ह्लूं क्रौं महाभय परिपन्थिनि, वनविहारिणि; दुर्गेदेवि, धनधान्यं रक्ष रक्ष स्वाहा।

साधना-विधि :

इस मन्त्र की साधना का पूर्णफल तब प्राप्त होता है, जब यह किसी ऐसे वन में की जाये, जहाँ देवी का शक्तिपीठ या सिद्धपीठ हो। वनदुर्गा के सिद्धपीठों का पता नहीं चलता। बहुमत से केवल तीन स्थान ऐसे हैं, जिन्हें वनदुर्गा का सिद्धपीठ स्वीकृत किया गया है। उनमें एक स्थान चित्रकूट-धाम (बुन्देलखण्ड) के क्षेत्र में हैं। सीतापुर गाँव के आगे—हनुमान-धारा और मन्दाकिनी के बीच में एक घना-जङ्गल पड़ता है, उस जङ्गल में दुर्गा जी की एक छोटी-सी मठिया बनी है। जनश्रुति है कि वह स्थान वनदुर्गा का शक्तिपीठ है। दूसरा स्थान हिमालय के दुर्गम-क्षेत्र में है। बद्रीनारायण-धाम के आगे भारतीय-सीमा का अन्तिम गाँव 'माणा' है। माणा के पास (30 किलोमीटर और आगे उत्तर की ओर), एक शिखर पर 'देवसर' नामक स्थान है, मान्यता है कि यह भी वनदुर्गा का सिद्धपीठ है। परन्तु, प्रत्येक साधक वहाँ नहीं जा सकता। अतः सामान्य-जनों के लिए सर्वसुगम मार्ग यह है कि घर में ही, या पास के किसी निरापद, निर्जन, शान्त-स्थान (फुलवाड़ी, वाटिका, वन, कन्दरा अथवा देव-मन्दिर) में इस मन्त्र की पूर्णनिष्ठा से, संयम-नियम से साधना की जाये।

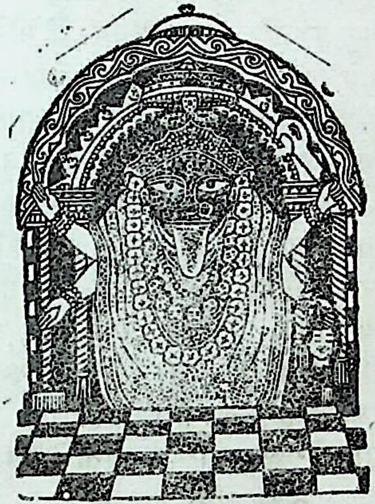

श्री वनदुर्गा माँ

सर्वप्रथम दुर्गाजी का कोई प्रतीक-चिह्न पूजा-स्थल पर स्थापित करें। तदुपरान्त उसकी विधिवत् पूजा करें। पूजा के पश्चात् स्तुति पढ़ते हुए वनदुर्गा का ध्यान करें, फिर मन्त्र-जप आरम्भ करदें।

ध्यान-स्तुति :

गुरुत्वं विस्तारं क्षितिधरपति पार्वती निजा,
न्नितं वादाच्छिद्य त्वयि भरण रूपेण निधे।
अतस्तेषा विस्तीर्णो गुरुरयरासेषां वसुमतीं,
नितम्ब प्राग्भार:स्मभयति लघुत्वं च नयति।।

दैनिक-पूजा के उपरान्त इस स्तुति द्वारा वनदुर्गा का ध्यान करके मूल-मन्त्र का जप करना चाहिए। जप के समय साधक पूर्वाभिमुख होकर बैठे। बैठने के लिए कुश का आसन होना चाहिए। बैठने का ढङ्ग पद्मासन में रहे। सामने कलश पर घी का (अभाव में मीठे तेल का) दीपक पूरे जप-काल तक जलाये रहना चाहिए। समय का भी विशेष निर्देश किया गया है। शास्त्रीय-पद्धति के अनुसार—यह साधना या तो ब्रह्म-मुहूर्त्त (सूर्योदय के पूर्व) में प्रारम्भ की जाय, अथवा रात्रि के दूसरे पहर के मध्य (रात को लगभग 10 बजे) से। पहले दिन एक संख्या निश्चित करके, प्रतिदिन सङ्कल्पित संख्या में जप करते हुए—7, 9, 11, 21 दिनों में उतना जप पूरा करना चाहिए। जप की समाप्ति पर हवन और दान भी करें। अति सामान्य साधक, प्रतिदिन की पूजा में, यदि दुर्गाजी का स्मरण करके केवल एक माला (108 दाने) उक्त वनदुर्गा-मन्त्र का जप करता रहे, तो भी सिद्धि प्राप्त कर लेता है। मन्त्र-सिद्धि प्राप्त होते ही साधक अद्भुत तेज, गरिमा और आध्यात्मिक-शक्ति से सम्पन्न हो जाता है।

श्री कुमारी मन्त्र साधना

परिचय :

आदिशक्ति दुर्गाजी समस्त संसार के जड़-चेतन में विद्यमान हैं। सृष्टि का कण-कण उनकी सत्ता से प्रभावित है। किसी न किसी रूप में वे सर्वत्र उपस्थित रहती हैं। भौतिक और भावनात्मक (प्रत्यक्ष और परोक्ष) दोनों रूपों में वे सर्वव्यापिनी होकर अखिल विश्व-ब्रह्माण्ड का क्रियाकलाप सञ्चाचित करती रहती हैं। कुमारी-कन्याओं में—विशेषकर कुलीन-ब्राह्मण-परिवारों की कन्याओं में देवी-तेज अधिक होता है। इस रहस्य से परिचित होने पर भारतीय ऋषि-मुनियों ने कुमारी-कन्या को गौरी-पार्वती

के तुल्य पवित्र और पूज्य मानकर, उसकी पूजा का विधान प्रचलित किया। अपने दशाब्दियों के साधनानुभव को आधार बनाकर उन्होंने वय:क्रम के अनुसार कुमारी-कन्या के देवी-स्वरूप—शक्ति और पूजन-फल की विस्तृत व्याख्या की। उन्होंने सप्रमाण सिद्ध करके दिखा दिया कि ब्राह्मण-कन्या किस अवस्था में किस देवी की प्रभाव-शक्ति का रूप होती है और उसकी सेवा-पूजा से कैसा फल प्राप्त होता है। उन्होंने यह भी बताया कि जैसे दुर्गाजी के प्रमुख नौ स्वरूप हैं, वैसे ही कुमारी-कन्या भी 2 वर्ष की आयु से लेकर 10 वर्ष की आयु तक के नौ वर्षों में प्रतिवर्ष दुर्गाजी का एक नया स्वरूप प्रभाव अर्जित करती रहती हैं। अत: जिस देवी को, नवदुर्गा के जिस अवतार की उपासना करनी हो, उसी वय-क्रम की कुमारी का पूजन करना चाहिए। साधक को तदनुसार ही फल प्राप्त होगा। किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि जो भी ब्राह्मण-कन्या पूजा के निमित्त निश्चित की जाय, वह सर्वथा निर्दोष होनी चाहिए। किसी प्रकार का अमङ्गल-जनक चिह्न-लक्षण उसमें न पाया जाता हो। हीनाङ्ग, विकलाङ्ग, अधिकाङ्ग, चर्मरोग-ग्रस्त, कुष्ठादि रोग से पीड़ित, फोड़ा-फुन्सी, चोट-घाव के कारण असमर्थ, नेत्र-दोषों (वक्र-दृष्टि, कानी, अन्धी, दुष्ट और या भयानक नेत्रों वाली) से आक्रान्त, कुरूप, विद्रूप, कुब्ज या अन्य किसी शारीरिक-मानसिक विकार से पीड़ित, चोर, लालची, कलहकारिणी, अस्थिर-चित्त, मिर्गी, मूर्च्छादि से पीड़ित, तोतली, मुँहफट, अस्पष्ट या कर्कश-स्वर वाली, उद्भ्रान्त,

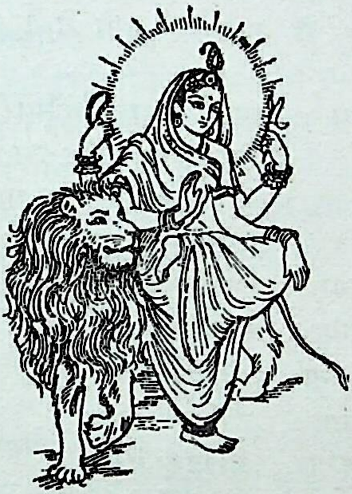

माँ दुर्गा

विक्षिप्त अथवा ऐसे किसी अन्य विकार से ग्रस्त बालिका को कुमारी-पूजन के लिए नहीं चुनना चाहिए । जो भी ब्राह्मण-कन्या, पूजा के निमित्त चुनें, उसमें इन गुणों को अवश्य देख लें कि वह कन्या सुन्दर, सभ्य, शान्त, सौम्य-स्वभाव, कुलीन ब्राह्मण-परिवार की, शरीर से निर्दोष, रोग-व्याधि से मुक्त और रूप-रेखा में देवी जैसी सात्त्विता से युक्त हो । वाञ्छित-कन्या मिल जाने पर उसकी पूजा करनी चाहिए ।

वय क्रमानुसार कुमारी के रूप :

वय:क्रम के अनुसार 2 वर्ष से लेकर 10 वर्ष तक की कन्या में प्रतिवर्ष इन देवियों की नूतन प्रभाव-शक्ति निहित होती रहती है, इसी प्रभाव-क्रम के अनुसार उस वय की कन्या को उसी देवी का प्रतिरूप माना जाता है :—

1. द्विवर्षीय कन्या	इसमें कुमारी (कौमारी) देवी की शक्ति निहित रहती है । इस कन्या को 'कौमारी' रूप मानकर पूजना चाहिए । 'कौमार' भी नवदुर्गा का एक रूप है ।
2. त्रिवर्षीया कन्या	त्रिमूर्त्ति कहलाती है ।
3. चतुर्वर्षीया कन्या	कल्याणी देवी
4. पञ्चवर्षीया कन्या	रोहिणी देवी
5. षट्वर्षीया कन्या	कालिका देवी
6. सप्तवर्षीया कन्या	चण्डिका देवी
7. अष्टवर्षीया कन्या	शाम्भवी देवी
8. नववर्षीया कन्या	दुर्गाजी
9. दशवर्षीया कन्या	सुभद्रा देवी

कुमारी-पूजन का प्रभाव :

प्रत्येक साधक की अपनी कोई एक लालसा होती है किसी विशेष लक्ष्य की प्राप्ति, उद्देश्य की पूर्त्ति, अभीष्ट की सिद्धि से लिए ही वह देवोपासना करता है । निष्काम-साधना की बात कोरी आत्म-प्रवञ्चना है । कुछ न कुछ कामना प्रकट या अप्रत्यक्ष रूप में, सब में विद्यमान रहती हैं । कुमारी-पूजन में भी साधक अपने किसी मनोरथ की पूर्त्ति से ही प्रेरित होते हैं । यहाँ कुमारी के प्रत्येक रूप का पूजन-प्रभाव क्रमशः वर्णित है । पाठक अपनी आवश्यकतानुसार उपयुक्त वय की कुमारी का पूजन करके लाभ उठा सकते हैं । यह निश्चित है कि एक सङ्कल्प की पूर्त्ति करते हुए

यदि 9 दिन, 18 दिन, 21 दिन, अथवा 27 दिनों तक लगातार प्रतिदिन कुमारी पूजा की जाये तो उसका चमत्कारी फल प्राप्त होता है। परन्तु यह सफलता तभी प्राप्त होती है, जब पूजन-क्रिया निर्विघ्न पूरी हो जाये। वैसे, यह कोई कठिन साधना नहीं है। श्रद्धा, धैर्य, अवधान और पूर्ण-व्यवस्था करके कोई भी साधक उसे सम्पन्न कर सकता है। हाँ, तन-मन का संयम आवश्यक है, अतः उसके प्रति सजग रहना चाहिए। किसी भी प्रकार की क्रियात्मक, वैचारिक अथवा व्यवहारगत अपवित्रता न आने पाये, सङ्कल्प के अनुसार सारी पूजन-क्रिया होती रहे, उसमें विघ्न-व्यतिक्रम न होने पाये, बस यही पर्याप्त है। विभिन्न कामनाओं की पूर्त्ति के लिए वयःक्रम से इस प्रकार पूजन करना चाहिए :—

निर्धंता-निवारण—इस कामना की पूर्त्ति के लिए कौमारीदेवी अर्थात् द्विवर्षीय बालिका की विधिवत् पूजा करनी चाहिए। मनीषियों के मतानुसार '**कुमारी देवी**' की पूजा से साधक का दुःख-दारिद्र्य दूर हो जाता है। उसके शत्रु परास्त होकर शान्त हो जाते हैं। साथ ही, साधक की शारीरिक-मानसिक शक्ति, आयु और बल पराक्रम की वृद्धि होती है। धन धान्य की वृद्धि के लिए कुमारिका अर्थात् दो वर्षीया कन्या की पूजा करना परम लाभदायक होता है।

धन-धान्य, कुल-परिवार—यदि किसी साधक को धन-धान्य की लालसा हो, वह अपने कुटुम्ब-परिवार की वृद्धि चाहता हो, तो उसे त्रिवर्षीया कन्या '**त्रिमूर्त्ति**' की पूजा करनी चाहिए। त्रिमूर्त्तिदेवी की पूजा से घर में धन-धान्य तथा पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि होती है।

राज-सम्मान तथा विद्या-विजय—सर्वत्र मान-प्रतिष्ठा हो, विजय (वरीयता) मिले, राज्याधिकारियों एवं राज-कर्मचारियों में मान हो, भौतिक-सुख प्राप्त होता रहे और विद्या-बुद्धि की भी वृद्धि होती रहे। इन कामनाओं की पूर्त्ति में '**कल्याणी देवी**' की उपासना लाभकारी होती है। कल्याणी देवी की कृपा प्राप्त करने के लिए किसी चतुर्वर्षीया ब्राह्मण-कन्या का पूजन करना चाहिए।

आरोग्य—समस्त प्रकार के शारीरिक, मानसिक रोग-विकारों से मुक्त होकर स्वस्थ, सबल और प्रसन्न-जीवन व्यतीत करने के लिए पञ्चवर्षीया कुमारी का पूजन करना चाहिए। यह '**रोहिणी देवी**' का रूप होती है और अपने साधक की समस्त कामनाएं पूरी करती है।

शत्रुनाश—मनुष्य के जीवन में शत्रु का अस्तित्व बहुत ही पीड़ादायक, सन्त्रासकारी और दुखद होता है। उससे मुक्ति पाने के लिए—**'कालिकाजी'** की उपासना सर्वश्रेष्ठ उपाय है। कालिकाजी की उपस्थिति 6 वर्ष की बालिका में मानी गयी है। अतः शत्रुभय-निवारण के लिए—साधक को चाहिए कि वह 6 वर्ष की कुमारी-कन्या को कालिकाजी का प्रतिरूप मानकर उसकी पूजा करे। नियमित रूप में पूजा करते हुए, यदि सङ्कल्प की अवधि पूरी करली जाये, तो यह साधना अवश्य ही अपना प्रभाव दिखाती है। बिना किसी युद्ध और अन्य भौतिक-प्रयास के, साधक के शत्रुओं का दमन हो जाता है। कालिकाजी की कृपा उन्हें निस्तेज, पराभूत और साधक के अनुकूल बना देती है।

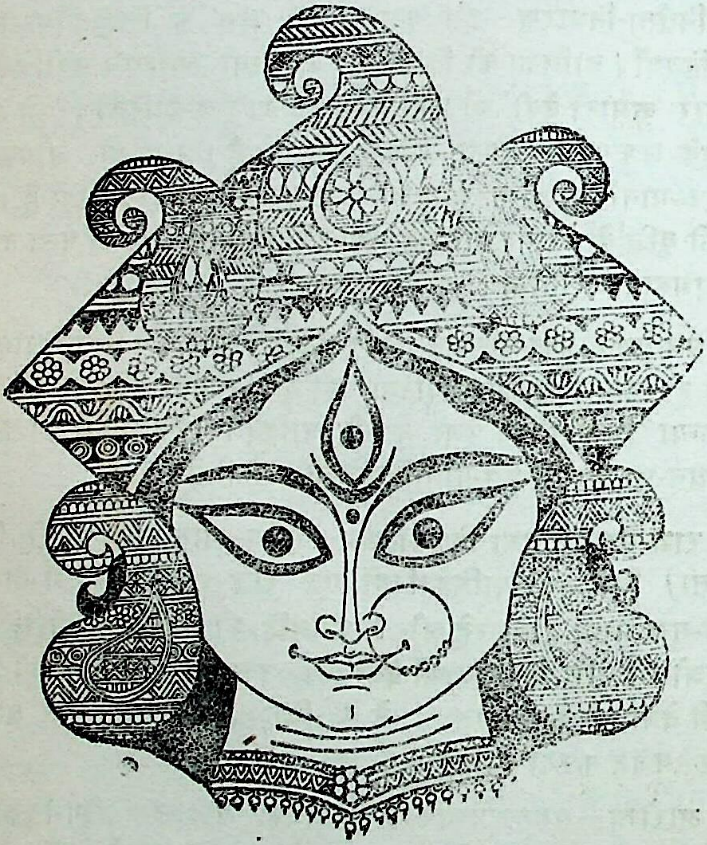

कौमारी देवी

ऐश्वर्य, वैभव, धन-समृद्धि के लिए—सात वर्ष की कुमारी-कन्या में **'चण्डिकादेवी'** की शक्ति समाहित रहती है। यह देवी साधक को संसार के

समस्त भौतिक-सुख देने में सक्षम होती है। अतः वैभव-विलास, धन-सम्पदा और अन्य भौतिक (राजसिक) उपलब्धियों के लिए—साधक को चण्डिका देवी (सप्त वर्षीया कुमारी) की पूजा करनी चाहिए।

विजय और राज-सम्मान—किसी भी प्रकार का विरोध, विद्रोह, युद्ध अथवा प्रतिद्वन्द्विता हो, उसमें विजय दिलाने वाली देवी **'शाम्भवी'** अपने उपासक पर कृपालु होकर उसकी कामना पूरी करती है। साथ ही, इस देवी की कृपा से साधक को राज-सम्मान भी प्राप्त होता है। यह देवी आठ वर्ष की कन्या में रहती है, अतः उपरोक्त उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए ऐसी ही कुमारी का चयन करना चाहिए।

पारलौकिक-सुख—जीवन में सुख, समृद्धि, सफलता पाते रहने के पश्चात् परलोक में सुख की कामना भी बहुत से लोगों को होती है, कुछ लोग आवागमन से मुक्ति (मोक्ष) की लालसा रखते हैं, कुछ पुनर्जन्म में सुखमय-जीवन की कल्पना करते हैं, कुछ देवलोक में निवास चाहते हैं। इन सभी के लिए **'दुर्गाजी'** की उपासना सर्वश्रेष्ठ उपाय है। कुमारी-पूजा के सन्दर्भ में, दुर्गाजी का प्रतिरूप नव-वर्षीया बालिका में देखा जा सकता है। अतः दुर्गाजी की उपासना के लिए नौ वर्षीया कुमारी का पूजन करना चाहिए। यह उपासना उपर्युक्त सभी फल प्रदान करती है।

मनोकामना पूर्त्ति—मनुष्य की प्रकृति है कि उसके मन में समय-समय पर विभिन्न कामनाएं उठती रहती हैं। समस्त प्रकार की सद्इच्छाओं की पूर्त्ति हेतु दश वर्षीया बालिका **'सुभद्रादेवी'** की पूजा करनी चाहिए। सुभद्रादेवी—कुमारी-क्रम में अन्तिम देवी मानी गयी हैं।

कुमारी पूजन-विधि :

कुमारी-पूजा के लिए, सर्वप्रथम अपने उद्देश्य के अनुसार उपयुक्त वय की कुमारी-कन्या को सादर आमन्त्रित करें। इसे इष्टदेवी का रूप मानकर घर लायें। यदि वह अपने घर से स्नान करके आये तो उत्तम ही है, अन्यथा घर में कहीं एकान्त में उसके स्नान की व्यवस्था करदें। स्नान के पश्चात् वह बालिका शुद्ध-स्वच्छ वस्त्र पहिने। यदि उसके पास नहीं हैं, तो साधक स्वयं इसका प्रबन्ध करे। स्नान के बाद वह कन्या वस्त्र धारण करे। साधक स्वयं भी स्नान द्वारा शुद्ध होकर पहले से व्यवस्थित पूजा-स्थल पर बैठे। कन्या को सामने आदरपूर्वक उचित आसन पर (कोई नया वस्त्र बिछाकर) बिठायें। तदुपरान्त उसे देवी-प्रतिमा मानकर, उस पर

शुद्ध जल छिड़कें, सिन्दूर का टीका माथे पर लगा दें, फूल चढ़ाकर, धूप-दीप दें। इसके पश्चात् उसे अपनी सामर्थ्यानुसार उत्तम भोजन करायें और दक्षिणा दें। इस समस्त क्रियाकलाप में इस देवी का मन्त्र मन ही मन जपते रहें। दक्षिणा देने के उपरान्त उस कुमारी के सामने बैठकर कम से कम एक या पाँच माला इसी देवी का मन्त्र जपें। फिर कुमारी को प्रणाम करके, मन ही मन त्रुटियों के प्रति क्षमा-याचना करते हुए विदा करें। यह एक दिन की (प्रथम दिन की) पूजन-विधि है। पहले से सङ्कल्प कर लेना चाहिए कि मैं इतने दिनों तक नियमित रूप से कुमारी-पूजन करूँगा। इसके बाद पूर्वोक्त विधि से पूजन प्रारम्भ करें। यही क्रिया, यही क्रम— उतने दिनों तक (सङ्कल्प के अनुसार 5, 7, 9, 11, 18 या 21 दिनों तक) करते रहना चाहिए। वस्त्र देना रोज सम्भव नहीं होगा, अतः प्रथम दिन ही दे दें, साथ ही उसे समझा दें कि वह नित्य स्नान करके, धुले हुए वस्त्र पहिनकर आया करे। यह भी हो सकता है कि वह प्रारम्भ से अन्तिम दिन तक अपने घर के ही कपड़े (धुले-स्वच्छ) पहिनकर आती रहे, और साधक पूजा-समाप्ति के दिन उसे नये वस्त्र अर्पित करे, (यही उचित रहता है)। आखिरी दिन का भोजन कुछ विशिष्ट रहना चाहिए। तथा दक्षिणा भी कुछ अधिक हो। अन्तिम दिन बालिका को भोजन कराने के पूर्व ही–उसी मन्त्र से 51 आहुतियाँ (या 108) देकर हवन करना चाहिए। हवनोपरान्त बालिका को भोजन करायें और सम्भव हो तो 2-4 परिवारी-जनों व मित्रों को आमन्त्रित करें।

हवन-सामग्री—कुमारी-पूजन में अन्तिम दिन पूजा-समापन के समय, हवन का विधान है। हवन के मन्त्रोच्चार में अन्तर है। प्रत्येक देवी का मन्त्र अलग-अलग है। परन्तु हवन-सामग्री सबके लिए एक ही प्रयुक्त होती है। नीचे दो प्रकार की हवन-सामग्री लिखी जा रही है, साधक अपनी सुविधा-सामर्थ्य के अनुसार कोई भी एक प्रयुक्त कर सकते हैं :—

साधारण हवन सामग्री—बाजार में मिलने वाली किसी अच्छी संस्था की हवन-सामग्री लायें। उसमें तिल (काला), जौ, चावल, शक्कर और घी मिला दें। यह उत्तम हवन-सामग्री है। इसी से वाञ्छित संख्या में आहुतियाँ देनी चाहिए।

विशेष हवन-सामग्री—जिसे सुविधा हो, जो प्राप्त कर सके, ऐसे साधक के लिए उचित होगा कि वह हवन-सामग्री के लिये, ये वस्तुएं

लायें—तिल, जौ, चावल, हवन-सामग्री (देवदारु, धूप से बनी हुई) पलाश की लकड़ी, बेल का फल, लाल चन्दन, गूगल, सरसों, सुपारी, धान का लावा, दूध, सामयिक मीठे फल, फूल और घी।

मन्त्र :

कुमारी-पूजा में जप के लिए तथा हवन के लिए—प्रत्येक देवी के अलग-अलग मन्त्र हैं। आवश्यकतानुसार इन्हीं को जपना चाहिए। जप की संख्या और पूजा के दिन पहले से निश्चित कर लें। उस सङ्कल्प का पालन अनिवार्य होता है। क्रम-भङ्ग अथवा सङ्कल्प के विपरीत आचरण करने से साधना खण्डित हो जाती है। अंत: पूजा में मानसिक-सन्तुलन, उत्साह, आस्था और संयम बनाये रहना चाहिए। प्रत्येक कुमारी देवी का मन्त्र इस प्रकार जपना चाहिए।

1. **कुमारी**—ॐ कुमारिकायै नमः। अथवा—ॐ कौमार्यै नमः।
2. **त्रिमूर्त्ति**—ॐ त्रिमूर्तयै नमः।
3. **कल्याणी**—ॐ कल्याण्यै नमः।
4. **रोहिणी**—ॐ रोहिण्यै नमः।
5. **कालिका**—ॐ कालिकायै नमः।
6. **चण्डिका**—ॐ चण्डिकायै नमः। अथवा ॐ नमश्चण्डिकायै नमः।
7. **शाम्भवी**—ॐ शाम्भव्यै नमः।
8. **दुर्गाजी**—ॐ दुर्गायै नमः।
9. **सुभद्रा**—ॐ सुभद्रायै नमः।

कुछ विद्वानों की मान्यता है कि स्त्रियों को 'ॐ' का उच्चारण नहीं करना चाहिए। ऐसी स्थिति में महिला-साधिकायें केवल मूल-मन्त्र का ही जप करें, 'ॐ' को छोड़ दें।

12

यंत्राराधना

कुछ विशिष्ट यन्त्र :

मन्त्रों की भाँति यन्त्रों के सम्बन्ध में भी विपुल साहित्य प्राप्त होता है। अनेक देवी-देवताओं से सम्बन्धित, विविध प्रकार की कामनाएं पूरी करने वाले सैकड़ों यन्त्र प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित हैं। प्रस्तुत पुस्तक का वर्ण्य विषय 'लक्ष्मी' है, अतः यहाँ उसी से सम्बन्धित यन्त्रों का वर्णन प्रासङ्गिक होगा।

जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है, शक्ति का लक्ष्मी-स्वरूप तो धन का आधिपत्य रखता ही है, अन्य देवी-देवता भी यदि कृपालु हो जायँ तो वे अपने भक्त को प्रभूत मात्रा में धन-वैभव और भौतिक-समृद्धि प्रदान कर देते हैं। देवताओं की शक्ति असीम होती हैं। वे भय-निवारण, शत्रु-पराभव, सङ्कट-नाश और भुक्ति-मुक्ति तक सब कछ कर सकते हैं। साधक जो भी कामना करे, उसे अपने इष्टदेव की कृपा से प्राप्त हो सकती है।

यहाँ कुछ विशिष्ट यन्त्रों का विवरण दिया जा रहा है। यों, शास्त्रीय-विधि विधान से इनकी साधना बहुत जटिल है, किन्तु अनुभवी-जन बताते हैं कि यदि मात्र श्रद्धा-शुचिता का सम्बल लेकर यदि कोई व्यक्ति इनकी व्यावहारिक रूप में ही साधना करले, तो चमत्कारी प्रभाव का अनुभव करता है। ये सभी (आगे वर्णित) यन्त्र अनेक कामनाओं की पूर्त्ति में सक्षम हैं। किसी भी देवता का यन्त्र पूजकर अभीष्ट की प्राप्ति की जा सकती है। धन-सम्पत्ति के अभिलाषी जन यदि दरिद्रता के पाश से मुक्त होकर सुखी और वैभव-सम्पन्न जीवन की कामना रखते हैं, तो वे भी इन यन्त्रों की उपासना से लाभान्वित हो सकते हैं।

अगले पृष्ठों में निम्न यन्त्रों का सचित्र विवरण दिया गया है—

1. श्री यन्त्र
2. श्री महालक्ष्मी यन्त्र
3. श्री महालक्ष्मी सम्पुट यन्त्र
4. श्री सिद्ध सरस्वती यन्त्र

5. श्री गायत्री यन्त्र
6. श्री दुर्गा सप्तशती यन्त्र
7. श्री लक्ष्मी बिशाङ्क यन्त्र
8. श्री लक्ष्मीदायक शिव-यन्त्र
9. श्री चण्डिका यन्त्र
10. श्री हरिद्रा गणेश यन्त्र
11. श्री विष्णु यन्त्र
12. श्री राम यन्त्र
13. श्री सिद्ध गोपाल यन्त्र
14. श्री हनुमान यन्त्र
15. श्री दत्तात्रेय यन्त्र
16. श्री सूर्य यन्त्र
17. श्री महामृत्युञ्जय यन्त्र
18. श्री नवग्रह यन्त्र
19. श्री सिद्ध महेश्वर यन्त्र
20. श्री कुबेर यन्त्र

श्री यन्त्र :

तन्त्र-शास्त्र में वर्णित ललिता, त्रिपुरा, त्रिपुर-सुन्दरी और बाला आदि सभी नाम लक्ष्मीदेवी के पर्यायवाची हैं। भौतिक-सुख, श्री-सम्पदा और वैभव प्राप्ति के लिए लक्ष्मीजी का अनुग्रह परम आवश्यक है। उनकी कृपा के बिना कुछ नहीं मिलता। और धन के अभाव में मनुष्य का जीवन घोर सङ्कटमय, असन्तुलित और दारिद्र्य से आक्रान्त हो जाता है। धन-हीन व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता। व्यावहारिक-जीवन में धन की महत्ता सर्वोपरि है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अर्थात् पुरुषार्थ चतुष्टुय के मूल में लक्ष्मी का मूर्त्त-रूप (धन का अस्तित्त्व) अनिवार्य है।

लक्ष्मी प्राप्ति के लिए आध्यात्मिक उपायों में श्री यन्त्र-साधना का विशेष महत्त्व है। अनेक सम्मानीय-ग्रन्थों में उल्लेख प्राप्त होता है, और सहस्रों साधकों का अनुभव है कि यदि श्री यन्त्र की स्थापना की जाय, तो लक्ष्मीजी की कृपा अवश्य ही सुलभ हो जाती है। देश के कितने ही तीर्थों और विशिष्ट स्थानों (मन्दिरों-भवनों) पर आज भी प्राचीन-काल के श्री यन्त्र सुरक्षित हैं। और, यह भी एक आश्चर्यजनक सत्य है कि वहाँ पर लक्ष्मी की कृपा (समृद्धि) स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

विधि—यद्यपि साधना का मूल उपादान श्रद्धा है। श्रद्धा के अभाव में सारी साधना, तपस्या और जप, तप, हवन सब व्यर्थ हो जाते हैं। किन्तु विधि का भी अपना एक महत्त्व है। श्रद्धा के साथ यदि विधिवत् साधना की जाय तो उसका परिणाम 'सोने में सुगन्ध' की भाँति प्राप्त होता है। अतः श्रद्धा-भक्ति से प्रेरित साधकों को चाहिए कि वे कोई भी साधना करते समय यथासम्भव उसे विधि-विधान के साथ ही सम्पन्न करें। इससे साधना पूर्ण फलदायिनी होती है।

जहाँ तक श्री यन्त्र की साधना-विधि का प्रश्न है, यह जटिल भी

है और सरल भी। उत्तम यही रहता है कि साधक मध्यम-मार्ग को ग्रहण करके देश-काल की परिस्थितियों के अनुसार व्यावहारिक रूप में साधना करे।

साधना प्रारम्भ करने का प्रथम बिन्दु है—मुहूर्त्त। मुहूर्त्त का प्रभाव निश्चित रूप से कार्य के परिणाम को रूपान्तरित कर देता है। श्री यन्त्र-साधना के लिए, वैसे तो साधक अपनी भावना और सुविधा के अनुसार किसी भी शुभ-मुहूर्त्त में इसका प्रारम्भ कर सकता है, किन्तु जहाँ तक शास्त्र-सम्मत समय का सम्बन्ध है, तन्त्र-ग्रन्थों में इसके लिए बताया गया है कि श्री यन्त्र की साधना हेतु, वर्ष के कुछ विशेष मुहूर्त्त अधिक प्रभावी होते हैं। वैशाख, ज्येष्ठ, कार्तिक, अगहन और माघ के महीनों में की गई साधना श्रेष्ठ फल देती है। इनमें भी कार्तिक और माघ के महीने सर्वश्रेष्ठ होते हैं। अतः जहाँ तक सम्भव हो, कार्तिक या माघ महीने की द्वितीया, पञ्चमी, सप्तमी, द्वादशी, त्रयोदशी (शुक्ल पक्ष) अथवा पूर्णिमा की तिथियों (इनमें से किसी भी एक में) में साधना प्रारम्भ करनी चाहिए। ये तिथियाँ विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण होती हैं। वायुमण्डल में इनका कुछ ऐसा प्रभाव निहित रहता है, जो साधक को शान्ति, तन्मयता और शुचिता प्रदान करता है।

तिथियों की भाँति नक्षत्र और दिनों का भी निर्देश किया गया है। इन सबका पालन करने से साधना असंदिग्ध रूप से प्रभावशाली हो जाती है। नक्षत्रों में रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, तीनों उत्तरा और रेवती श्रेष्ठ माने गये हैं। दिनों में—बुधवार, गुरुवार और शुक्रवार को वरीयता प्रदान की गई है। इस प्रकार मास, तिथि, नक्षत्र और वार का सामञ्जस्य बिठाकर प्रारम्भ की गई साधना से सफलता और इष्ट का अनुकूलन सहज सम्भव हो जाता है। किन्तु यदि किसी साधक को इतनी प्रतीक्षा अथवा विचार-विमर्श करना सम्भव नहीं है, तो उसके लिए महर्षियों द्वारा यह विकल्प सुझाया गया है कि चैत्र अथवा क्वार (आश्विन) की नवरात्र की (प्रतिपदा से नवमी तक के शुक्ल पक्षीय नौ दिन) अवधि, कार्तिक के महीने में धनतेरस से पाँच दिनों तक (कार्तिक शुक्ला द्वितीया तक) का समय श्री यन्त्र की साधना के लिए प्रत्येक स्थिति में, निर्विवाद रूप से सिद्धिदायक रहता है। उपरोक्त किसी भी मुहूर्त्त में यह साधना प्रारम्भ की जा सकती है।

साधना की शास्त्रीय-पद्धति अपेक्षाकृत जटिल है, अतः यदि सरल

और व्यावहारिक रूप में ही श्रद्धापूर्वक यन्त्र-पूजा कर ली जाय, तो भी उसका चमत्कारी परिणाम प्रत्यक्ष हो जाता है। अनेक साधकों का अनुभव है कि साधना-विधि का सरलीकृत रूप में भी निश्चित रूप से महालक्ष्मी की कृपा-प्राप्ति में सहायक होता है। यह सर्वसम्मत तथ्य है कि श्री-यन्त्र विश्व का सर्वाधिक आशु-फलदायक साधन है। भारतीय अध्यात्म का यह अमूल्य-रत्न अनेक प्रकार के सङ्कटों, विघ्न-बाधाओं का निवारण करके, साधक को विपुल सौख्य और समृद्धि प्रदान करता है।

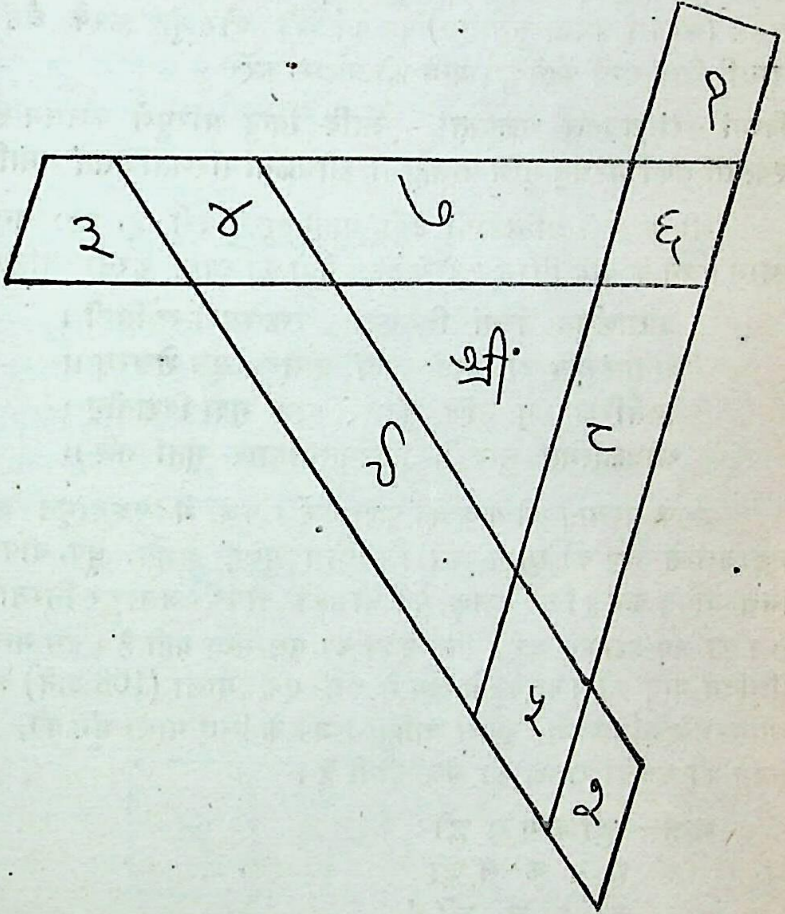

(श्री यन्त्र)

सर्वप्रथम किसी भी शुभ-मुहूर्त्त में स्वर्ण-पत्र, रजत-पत्र, ताम्र-पत्र, भोज-पत्र अथवा किसी रत्न पर, जैसी सुविधा-सामर्थ्य हो, श्री यन्त्र की रचना करें। स्वयं नहीं कर सकते, तो शुद्धतापूर्वक कोई अन्य व्यक्ति भी

कर सकता है। तदुपरान्त किसी योग्य पण्डित से उसकी प्राण-प्रतिष्ठा कराकर विधिवत् अपने पूजा गृह में स्थापित कर दें। यदि पूजा-गृह नहीं है, तो किसी भी सुरक्षित एकान्त पवित्र स्थान में स्थापित करके नियमित रूप से वहीं बैठकर साधना करें। वस्तुत: यह यन्त्र महालक्ष्मी का साकार रूप है, अत: इसकी पूजा— स्वयं लक्ष्मीजी की पूजा होती है।

दैनिक-पूजा में स्नानोपरान्त स्वच्छ शुद्ध वस्त्र धारण करें। वस्त्र लाल रङ्ग का तथा बिना सिला हुआ होना चाहिए। यन्त्र के सम्मुख आसन (कम्बल अथवा कुशासन) पर पूर्व की ओर मुँह करके बैठें और निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुए यन्त्र को प्रणाम करें—

'दिव्यां परां सुधवल चक्रयातां, मूलादि बिन्दु परिपूर्ण कलात्म रूपां।
स्थित्यात्मिकां शरधनु सृणि पाशहस्तां, श्रीचक्रतां परिणतां सततं नमामि॥'

श्री यन्त्र की अधिष्टात्री देवी महात्रिपुरसुन्दरी हैं, अत: यन्त्र को प्रणाम करने के बाद निम्न श्लोक द्वारा देवी का ध्यान करना चाहिए—

बालार्कयुत तैजसं त्रिनयनां, रक्ताम्बरोल्लासिनीं।
नानालंकृति राजमान वपुषं, बालेन्दु युत शेखरम्॥
हस्तैरिक्षु धनु: सृणि सुरशरं, पाशं मुदा बिभ्रतीम्।
श्रीचक्रस्थित सुन्दरीं, त्रिजगतामाधार भूतां भजे॥

इसके पश्चात् श्री यन्त्र की पूजा करें। पूजा में पञ्चामृत अथवा गङ्गाजल से यन्त्र को स्नान कराकर लाल पुष्प, अक्षत, धूप, दीप तथा नैवेद्य अर्पित करें। फिर कलश पर घी का दीपक जलाकर निम्नाङ्कित मन्त्र का जप प्रारम्भ करें। यन्त्र पूजा का मूल-मन्त्र यही है। इस मन्त्र को प्रतिदिन यन्त्र की पूजा करके कम से कम एक माला (108 दाने) अथवा यथासम्भव अधिक भी, जपना चाहिए। जप के लिए माला मूँगे की, लाल चन्दन की अथवा रुद्राक्ष की श्रेष्ठ होती है।

मन्त्र—'ह्रीं क ए ल ह्रीं
ह स क ल ह्रीं
स क ल ह्रीं।'

इस मन्त्र का प्रत्येक अक्षर बीज है। प्रत्येक बीज स्वयं में एक सम्पूर्ण मन्त्र और देवता का स्वरूप अर्थात् ध्वन्यात्मक श्रीविग्रह होता है। इस प्रकार वह अपने में बहुत व्यापक अर्थ तथा प्रभाव समाहित किये रहता है। अत: जप के समय मन्त्र का उच्चारण बहुत शुद्धता से मन्दतम

स्वर में (मौन स्वर में भी कर सकते हैं) करना चाहिए। जप की समाप्ति पर फिर से यन्त्र को प्रणाम करके अपने दैनिक कार्यों में लग सकते हैं।

यह दैनिक-साधना का विधान है। इसके अतिरिक्त साधक चाहे तो एक निश्चित संख्या में भी (निश्चित दिनों में) जप कर सकता है। इस अनुष्ठान को 'पुरश्चरण' कहते हैं। ऐसे विशेष जप की समाप्ति पर हवन और ब्राह्मणों को भोजन कराने का नियम है। सामान्य साधक इसके लिए समीप के किसी पुरोहित की सहायता ले सकते हैं। अनुभव बताता है कि घर में श्री-यन्त्र की स्थापना करके उसकी दैनिक-पूजा, दर्शन, मन्त्र-जप और सप्ताह या मास में कम से कम एक ब्राह्मण को भोजन-दक्षिणा देने से, यन्त्र का प्रभाव, लक्ष्मीजी की कृपा, समृद्धि का आगमन स्वयं ही दृष्टिगोचर होने लगता है।

श्री-यन्त्र को समस्त यन्त्रों का शिरोमणि और 'यन्त्रराज' कहा गया है। कारण कि यह जहाँ भी रहता है, दुःख दारिद्रय का नाश करके समृद्धि और सम्पन्नता का विस्तार करता है। यह इतना प्रभावशाली है कि यदि कहीं विधिपूर्वक निर्मित करके स्थापित कर दिया जाय, तो मात्र दर्शन-प्रणाम करके ही साधक-जन पर्याप्त लाभ प्राप्त कर लेते हैं।

श्री महालक्ष्मी यन्त्र :

धन-सम्पदा और वैभव की देवी महालक्ष्मी की कृपा पाने के लिए महालक्ष्मी-यन्त्र की उपासना बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। उपासना

श्री महालक्ष्मी यन्त्र

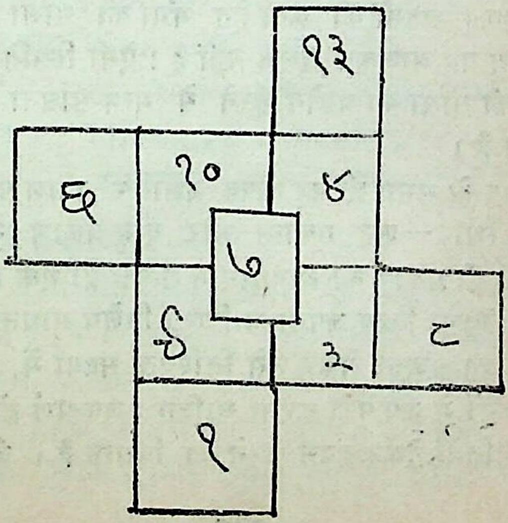

पद्धति और यन्त्रों के रूप में अन्तर होने पर भी मूल तथ्य महालक्ष्मी की की पूजा है और उसके लिए तत्सम्बन्धी किसी भी यन्त्र और मन्त्र तथा पूजन-विधि का अवलम्ब लिया जा सकता है।

विधि—किसी शुभ-मुहूर्त्त में महालक्ष्मी-यन्त्र की रचना-स्थापना करके उसकी विधिवत पूजा आरम्भ करें, निश्चय ही प्रभाव की अनुभूति होगी। सर्वप्रथम यन्त्र की व्यवस्था करनी चाहिए, कारण कि वह महालक्ष्मी की प्रतिमा के तुल्य होता है। यन्त्र की रचना अष्टगन्ध की मसि (स्याही) और अनार की लेखनी द्वारा भोजपत्र पर करनी चाहिए। यदि ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण यन्त्र है, तो उसे स्नान कराकर अष्टगन्ध का लेप कर देना आवश्यक है। यन्त्र को स्नान कराकर लाल आसन पर प्रतिष्ठित करें और तत्पश्चात् लाल चन्दन, लाल पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य अर्पित करें। इस समस्त पूजनोपचार में आदि से अन्त तक अविच्छिन्न रूप में 'ॐ श्रीं महालक्ष्म्यै नमः' मन्त्र जपते रहना चाहिए। पूजा के पश्चात् महालक्ष्मी का ध्यान करते हुए कोई स्तुति करें, यथा—

'कान्त्या काञ्चन सन्निभां हिमगिरि प्रख्यैश्चतुर्भिर्गजैः।
हस्तोक्षिप्त हिरण्मयामृत घटैरासिच्यमाना श्रियम्॥
बिभ्राणावरमब्ज युग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलाम्।
क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बललितां वन्देऽरविन्दस्थिताम्॥'

इस स्तुति द्वारा यन्त्र को प्रणाम करके, मूँगा की माला से मन्त्र-जप आरम्भ करें। ध्यान रहे कि किसी भी यन्त्र की पूजा के समय, यदि उपलब्ध हो तो उस देवता की मूर्त्ति अथवा चित्र भी यन्त्र के समीप स्थापित कर लेना चाहिए। लक्ष्मी की कृपा हेतु मूँगा की माला सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। किन्तु यह आजकल सुलभ नहीं है। ऐसी स्थिति में लाल चन्दन अथवा रुद्राक्ष की माला का प्रयोग करने से मन्त्र-साधना का पूर्ण प्रभाव प्राप्त हो जाता है।

मन्त्र-जप के समय घी का दीपक जलाकर कलश पर स्थापित कर लेना चाहिए। स्थान—शुद्ध, एकान्त और वायु-प्रकाश युक्त हो, ताकि जप-काल में किसी प्रकार का व्यवधान न उत्पन्न हो सके। दैनिक-पूजा में, सामान्यतया 1 माला नित्य जपना चाहिए। विशेष साधना के रूप में एक लाख मन्त्र-जप का सङ्कल्प लेकर उसे निश्चित संख्या में, प्रतिदिन जपते हुए इक्कीस दिनों में जप पूरा करना चाहिए। जप पूर्ण हो चुकने पर उसी मन्त्र द्वारा आहुतियाँ देकर हवन करने का विधान है। वैसे तो हवन में

आहुति संख्या जप का दसवाँ भाग होनी चाहिए, किन्तु ऐसी सामर्थ्य न होने पर श्रद्धापूर्वक 108 बार दी गई आहुतियाँ भी सफलता प्रदान करती हैं। हवन के पश्चात् कुमारी कन्याओं को भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिए।

हवन-सामग्री में शहद, शक्कर, घी और विल्व-फल का प्रयोग किया जाता है। सामान्य-पूजा में प्रचलित हवन-सामग्री से भी हवन कर सकते हैं।

साधना-काल में साधक को पूर्ण आस्था, शुचिता और संयम का पालन करना आवश्यक है।

जप-मन्त्र—
- श्रीं
- ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं
- ॐ श्रीं महालक्ष्म्यै नमः
- ॐ नमः कमल वासिन्यै स्वाहा
- ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्सौ जगत्प्रसूत्यै नमः
- ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः
- ॐ श्रीं ह्रीं कमले कमलालये
  प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः

उपरोक्त मन्त्रों में से किसी भी एक का जप देवी सान्निध्य प्राप्त करा सकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि साधक पूरी निष्ठा, आस्था और पवित्रता के साथ देवी की पूजा करे।

जप समाप्ति पर प्रतिदिन निम्नलिखित स्तुति को पढ़ते हुए यन्त्र और उसमें विराजमान देवी महालक्ष्मी को प्रणाम करना चाहिए—

अरुण कमल संस्था तद्रजः पुञ्ज वर्णा,
कर कमल धृतेष्टा भीतियुग्माम्बुजा च।
मणिमुकुट विचित्रालंकृताऽऽकल्पजालैः,
सकलभुवन माता सद्गृहे स्थैर्यमीयात्॥

श्री महालक्ष्मी सर्वतोभद्र यन्त्र :

इस यन्त्र की रचना साल में केवल एक दिन की जाती है—दीपावली की रात्रि में। इसे भोजपत्र पर अष्टगन्ध की स्याही से, अनार की कलम द्वारा लिखना चाहिए। इसके चारों ओर निम्नाङ्कित मन्त्र (जप के लिए निर्दिष्ट) भी लिखें। इस यन्त्र को पीले वस्त्र के आसन पर प्रतिष्ठित करके धूप-दीप से पूजा करें और पवित्र मन व श्रद्धा-भाव से मन्त्र—

'ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं ॐ महालक्ष्म्यै नमः' का 1008 बार जप करें। ध्यान रहे कि जप के पूर्व और पश्चात् भी, यन्त्र को धूप देने में गूगल का प्रयोग किया जाता है। जपोपरान्त गूगल से ही 108 या 1008 बार उपरोक्त मन्त्र पढ़ते हुए हवन करें।

श्री महालक्ष्मी सर्वतोभद्र यन्त्र

२२	३	९	१५	१६
१४	२०	२१	२	८
१	७	१३	१९	२५
१८	२४	५	६	१२
१०	११	१७	२३	४

इस मन्त्र के प्रभाव से साधक को यश, सम्मान, सम्पदा, सफलता सभी कुछ प्राप्त हो जाता है। लक्ष्मीजी की कृपा से वह सदैव समृद्धि और सुखमय जीवन व्यतीत करता है। यदि इस यन्त्र की रचना चाँदी के पत्र पर की जाय तो विशेष उत्तम रहता है। जैसा भी हो, यह यन्त्र जहाँ स्थापित कर दिया जाता है—दूकान, गोदाम, यन्त्रालय, कोष, कहीं भी—वहाँ सदैव प्रगति, सुरक्षा और समृद्धि रहती है। इसे यदि घर में पूजा के स्थान पर स्थापित करदें, तो सभी प्रकार की बाधाओं से मुक्ति मिल जाती है। भूत-प्रेत, अभिशाप, कुदृष्टि और पातक आदि का दुष्प्रभाव नष्ट करने में यह यन्त्र बहुत ही समर्थ सिद्ध होता है।

व्यापार-बर्द्धक लक्ष्मी-यन्त्र :

नीचे दी गई आकृति के अनुसार इस यन्त्र की रचना करें। इसको भोजपत्र पर केसर की स्याही से, अनार की कलम द्वारा अङ्कित करना

चाहिए। दीपावली की रात्रि में यह साधना सर्वाधिक लाभकारी होती है। अतः उसी रात्रि में इस यन्त्र को लिख लें। तत्पश्चात् धूप-दीप से पूजा करके 'ॐ महालक्ष्म्यै नमः' इस मन्त्र की 11 माला जप करें। जप के समय यन्त्र के सन्मुख अखण्ड दीपक जलता रहे। बाद में इस यन्त्र को दूकान या अधिष्ठान में स्थापित कर दें और नित्य धूप-दीप से पूजा करते रहें। इससे व्यापार में वृद्धि होगी और आप लक्ष्मी-कृपा का अनुभव करेंगे।

व्यापारवर्धक लक्ष्मी यन्त्र

१६	९	४	५
३	६	१५	१०
१३	१२	१	८
२	७	१४	११

यह भी स्मरणीय तथ्य है कि धन प्राप्त होने पर उसका व्यय (सदुपयोग) अवश्य करना चाहिए। व्यय न किये जाने पर धन की दुर्गति होती है। कृपणता स्वयं में भी एक पातक जैसा दुर्गुण है। कृपण व्यक्ति का धनी होना--उस धन की दुर्गति का कारण बन जाता है। उदाहरण--

जनयति हृदि खेदं मङ्गलं न प्रसूते,
परिहरत्ति यशांसि ग्लानिमाविष्करोति।
उपकृति रहितानां सर्वभोगच्युतानां,
कृपण करगतां सम्पदां दुर्विपाकः॥

श्री महालक्ष्मी सम्पुट यन्त्र :

श्री महालक्ष्मी सम्पुट यन्त्र की महिमा और इसका प्रभाव वर्णन से परे है। इस यन्त्र में आदि-शक्ति के तीन स्वरूप—श्री गणेश-शक्ति, श्री लक्ष्मी-शक्ति और श्री सरस्वती-शक्ति—निहित रहते हैं, अतः इसमें इन तीनों स्वरूपों की महाशक्तियाँ केन्द्रित रहती हैं। इस यन्त्र की पूजा

से साधक को इन तीनों शक्तियों की कृपा एक साथ प्राप्त होती है। गणेशजी विघ्न-विनाशक और ऋद्धि-सिद्धि के स्वामी हैं। लक्ष्मीजी धन-वैभव की देवी हैं और सरस्वतीजी वाणी, बुद्धि तथा ज्ञान की अधिष्ठात्री हैं। इस प्रकार इस सम्पुट-यन्त्र की साधना करने वाले को समस्त ऐश्वर्य सहज ही प्राप्त हो जाते हैं।

महा लक्ष्म्यै	×		नमः
९	श्रीं		६
ॐ	१	४	ह्रीं
	७	८	
३	क्लीं		२

(श्री महालक्ष्मी सम्पुट-यन्त्र)

विधि—किसी शुभ-मुहूर्त्त में भोजपत्र पर लाल चन्दन या अष्टगन्ध या केसर-गोरोचन से अनार की लेखनी द्वारा इस यन्त्र की रचना करके शुद्ध लाल वस्त्र के आसन पर प्रतिष्ठित करना चाहिए। इसके पश्चात् श्री गणेशजी, श्री लक्ष्मीजी और श्री सरस्वतीजी का ध्यान करते हुए यन्त्र को प्रणाम करके उसे पञ्चामृत से स्नान कराकर लाल चन्दन, लाल पुष्प, अक्षत, धूप, दीप और नैवेद्य अर्पित करना चाहिए। तदनन्तर तीनों महाशक्तियों को प्रणाम करके निम्नलिखित मन्त्रों की क्रमशः एक-एक माला जपकर अन्त में तीनों शक्तियों की स्तुति करनी चाहिए। जप के लिए श्री-यन्त्र के सन्दर्भ में वर्णित मालाओं में से कोई भी माला प्रयुक्त की जा सकती है। वैसे सर्वसम्मत रूप में रुद्राक्ष की माला सदैव, सर्वत्र प्रयोजनीय और मङ्गलकारी मानी जाती है। अतः यथा सम्भव रुद्राक्ष के

108 दानों की माला से ही इस प्रकार की साधनाएं और जप करना चाहिए। सामान्य रूप में भी रुद्राक्ष की माला धारण करने वाला व्यक्ति अनेक व्याधियों से मुक्त और श्री-समृद्धि, सुरक्षा और शान्ति का पात्र होता है।

श्री गणेश-मन्त्र—'ॐ गं गणपतये नमः।'

इस मन्त्र का जप (1 या अधिक माला, जैसी सुविधा हो) करने के पश्चात् स्तुति करें।

श्री गणेश-स्तुति—'गणेशं प्रथमाधीशं, निर्गुणं सगुणं शिवम्।
योगिनो यत् पदं यान्ति, गौरीनन्दनं भजेत्॥'

श्री लक्ष्मी मन्त्र—'ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद,
श्रीं ह्रीं श्रीं ॐ महालक्ष्म्यै नमः।'

इस मन्त्र की भी उतनी ही माला जपना चाहिए, जितनी मालाएं गणेश-मन्त्र की जपी गई हों। मन्त्र-जप के पश्चात् स्तुति पाठ करें—

श्री लक्ष्मी-स्तुति—'पद्मासनस्थिते देवी, परब्रह्म स्वरूपिणि।
परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मी नमोऽस्तुते॥'

श्री सरस्वती-मन्त्र—'ॐ ऐं सरस्वत्यै नमः।'

गणेश और लक्ष्मी-मन्त्र की जप-संख्या के बराबर, उतनी ही मालाएं इस मन्त्र की भी जपना चाहिए। जप-संख्या की समानता इस इस साधना का प्रमुख प्रतिबन्ध है। जप के पश्चात् सरस्वती की स्तुति करें—

श्री सरस्वती-स्तुति—'नमस्ते शारदा देवी, सरस्वती मतिप्रदे।
वसत्त्वं त्वं मम जिह्वाग्रे, सर्वविद्या प्रदा भव॥'

इस साधना का विशिष्ट प्रयोग यह है कि 21000 जप करके हवन और दान किया जाय। यहाँ यह तथ्य स्मरण रखना चाहिए कि तीनों ही मन्त्र और स्तुतियाँ 21-21 हजार जपने का विधान है। किन्तु दैनिक-पूजा के रूप में मात्र 1-1 माला जपने से ही कुछ समय पश्चात् साधक को सफलता की अनुभूति होने लगती है।

साधक के धैर्य की परीक्षा हेतु कभी-कभी साधना-काल में बाधाएं, प्रलोभन अथवा अन्य विक्षेप उपस्थित हो जाते हैं। उनसे विचलित न होकर अपने सङ्कल्प के अनुसार साधना में रत रहना ही कल्याणकारी होता है।

श्री सिद्ध सरस्वती (सर्व सिद्धि) यन्त्र :

जन-सामान्य में यह धारणा प्रचलित है कि सरस्वती और लक्ष्मी में परस्पर घोर विरोध है। जहाँ लक्ष्मी होगी, वह स्थान-व्यक्ति सरस्वती की कृपा से वंचित होगा, और जहाँ सरस्वती की अनुकम्पा होगी—वहाँ लक्ष्मी का वैभव-विलास नहीं रहेगा। किसी सीमा तक यह सत्य समाज में दृष्टिगत भी होता है। तथापि अधिकांश श्रद्धालु साधक दोनों महाशक्तियों की आराधना करते हैं और दोनों की कृपा भी प्राप्त करते हैं। ऐसे लोग भी हैं, जो सरस्वती की कृपा अर्थात् ज्ञान, विद्या, बुद्धि और यश को ही सर्वश्रेष्ठ सम्पदा समझते हैं, अतः इसी को वे लक्ष्मी के प्रतिरूप में पूजते हैं। फिर यह तो निश्चित है ही कि गुणी, विद्वान, ज्ञानी और प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति दरिद्र होकर भी सभ्य-समाज में सम्मानित अवश्य होता है। और तब, वह किसी न किसी रूप में लक्ष्मी की अनुकम्पा भी प्राप्त कर लेता है। महाकवि जयदेव, जायसी, तुलसी, सूर, केशव और रहीम अपने समकालीन सम्राटों द्वारा सम्मानित थे। उन्होंने जब भी कोई आर्थिक प्रश्न उठाया, उन नरेशों ने विनयपूर्वक उनकी इच्छा-पूर्ति की है। इस प्रकार सिद्ध है कि सरस्वती की कृपा होने पर व्यक्ति को लक्ष्मी भी सुलभ हो जाती है।

८	१५	२	८
७	३	१२	११
१४	९	९	१
४	६	१०	१३

श्री सर्वसिद्धि यन्त्र

सरस्वतीजो विद्या, बुद्धि और वाणी की अधीश्वरी हैं। वह समस्त ऋषि-मुनियों, विद्वानों, आचार्यों और सङ्गीतज्ञों में पूज्य हैं। स्वर-शक्ति

का नियन्त्रण उन्हीं के हाथों में है। ज्ञान, प्रतिभा और तर्क-शक्ति भी वे ही प्रदान करती हैं। अतः बौद्धिक-विकास, वाक्-चातुर्य, वाचा-सिद्धि, वाणी-सम्मोहन, कवित्व और स्मरण-शक्ति की प्राप्ति हेतु साधक-जन सरस्वती की उपासना करते हैं।

यद्यपि लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, काली, चण्डी और पार्वती—यह सब एक ही देवी (आदिशक्ति) के विभिन्न रूपान्तर हैं, तो भी अवतार-भेद से इनकी पूजा के पृथक्-पृथक् विधान निश्चित किये गये हैं। सरस्वतीजी की कृपा-प्राप्ति के लिए सरस्वती-यन्त्र की साधना परम लाभदायक होती है।

विधि—चैत्र या क्वार (आश्विन) की नवरात्र में अथवा किसी भी अष्टमी, नवमी या अन्य किसी शुभ-मुहूर्त्त में भोजपत्र पर लाल चन्दन अथवा अष्टगन्ध की स्याही तथा अनार की लेखनी द्वारा सरस्वती-यन्त्र की रचना करके उसे श्वेत वस्त्र के आसन पर स्थापित करें, तत्पश्चात् इस श्लोक से देवी की ध्यान-स्तुति करते हुए, यन्त्र को प्रणाम करें—

ध्यान-स्तुति—तरुण शकल मिन्दो विभ्रती शुभ्रकान्ति,
कुचभर नमिताङ्गी सन्निषण्णा सिताब्जे।
निज करकमलोद्यल्लेखनी पुस्तक श्रीः।
सकल विभव सिद्धयै पातु वाग्देवता नमः॥

इसके पश्चात् यन्त्र को पञ्चामृत से स्नान कराकर श्वेत पुष्प, गन्ध, धूप, दीप आदि से पूजा करें और नैवेद्य अर्पित करें। नैवेद्य भी श्वेत होना चाहिए। खीर, मिश्री जैसा कोई श्वेत पदार्थ देवी को अर्पित करें। पूजनोपरान्त कलश पर घृत-दीप जलायें और निम्नलिखित मन्त्रों में से कोई एक नियमित रूप से जपें जप के लिए 1 या अधिक जैसी सामर्थ्य-सुविधा हो, माला नित्य जपें। माला—रुद्राक्ष, चन्दन, तुलसी, स्फटिक अथवा कुश-ग्रन्थि की होनी चाहिए। रुद्राक्ष की माला सर्वश्रेष्ठ होती है। जप की संख्या में यह नियम अनिवार्य है कि प्रतिदिन एक समान संख्या में जप किया जाय। किसी विशेष उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए पहले से एक निश्चित संख्या निर्धारित करके उसे नौ दिनों में पूरी करनी चाहिए। जप पूरा होने पर उसी मन्त्र के द्वारा कम से कम 108 आहुतियाँ देकर हवन करना आवश्यक है। हवन के बाद यथा सामर्थ्य दान भी करना चाहिए। उत्तम यह होता है कि 5, 7, 9, 11, कुमारी कन्याओं को भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दी जाय।

जप-मन्त्र—● ॐ ह्रीं सरस्वत्यै नमः ।
● ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं ॐ सरस्वत्यै नमः ।
● वद् वद् वाग्वादिनि वल्लभा
● ऐं नमः भगवति वद् वद् वाग्देवि स्वाहा ।

प्रतिदिन मन्त्र-जप पूरा होने पर इस श्लोक से यन्त्र और देवी-प्रतिमा को प्रणाम करना चाहिए—

शुभ्रां स्वच्छ विलेपमाल्य वसनां शीतांशु खण्डोज्ज्वलाम् ।
वीणामक्षगुणं सुधाढ्य कलशं विद्यां च हस्ताम्बुजैः ।।

विभ्राणां कमलासनां कुचनतां वाग्देवतां स्मिताम् ।
वन्दे वाग्विभव प्रदां त्रिनयनां, सौभाग्य सम्पत्करीम् ।।

जप और साधना-काल में साधक को शारीरिक-मानसिक शुचिता के प्रति अवश्य ही सजग रहना चाहिए ।

श्री गायत्री यन्त्र :

वैदिक-संस्कृति और पौराणिक-उपासना दोनों के सन्दर्भ में गायत्री के महामन्त्र को सम्मान प्राप्त है। संसार की कोई भी समस्या हो, इस मन्त्र की साधना से दूर हो जाती है। बौद्धिक-प्रगति, अर्थ-लाभ, आरोग्य, रोग-निवृत्ति, सन्तान-सुख, वैभव-सम्मान प्राप्ति, भूतबाधा-मुक्ति, शत्रु-दमन, विष-निवारण, दुःस्वप्न-मुक्ति तथा आक्रमण-दुर्घटना आदि से रक्षा के लिए गायत्री-मन्त्र एक अद्भुत कवच है। लक्ष्मी की कृपा-प्राप्ति में यह परम सहायक सिद्ध होता है। मन्त्र-जप के रूप में इसकी साधना जितनी लाभप्रद है, यन्त्र-रूप में की गई पूजा-आराधना और भी अधिक लाभदायक सिद्ध होती है। इस यन्त्र का पूजन, दर्शन, स्पर्श और धारण सब कल्याणकर हैं। तन, मन, धन से सम्बन्धित समस्त व्याधियों के निवारण हेतु यह परम प्रभावी यन्त्र है।

विधि—अन्य यन्त्रों (पूर्व वर्णित) की भाँति इसे भी शुभ-मुहूर्त्त में ताम्रपत्र अथवा भोजपत्र पर निर्मित करना चाहिए। इसे लिखने के लिए अनार की लेखनी और चन्दन अथवा गोरोचन या अष्टगन्ध की स्याही प्रयुक्त होती है।

यन्त्र की रचना हो चुकने पर उसे श्वेत आसन पर स्थापित करें और पूजा के पूर्व इस श्लोक-द्वारा देवी गायत्री की ध्यान-स्तुति करें—

रक्तं श्वेत हिरण्य नीलं धवलैर्युक्तां त्रिनेत्रोज्ज्वलाम् ।
रक्तां रक्त नवस्रजं मणिगणैर्युक्तां कुमारी मिमाम् ॥
गायत्री कमलासनां करतल व्यानद्ध कुण्डाम्बुजाम् ।
पद्मासाक्षीं च वरस्रजं च दधतीं हंसाधिरूढ़ाभजे ॥

तत्पश्चात् पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से यन्त्र की पूजा करें और कलश पर घृत-दीप जलाकर मुख्य मन्त्र से गायत्री का जप आरम्भ करें। जप के लिए रुद्राक्ष की माला सर्वश्रेष्ठ होती है। वैसे साधक को जो भी माला सुलभ हो—तुलसी, मूँगा, लाल चन्दन—उसके माध्यम से जप किया जा सकता है।

जप संख्या सामान्यत: एक माला नित्य रखनी चाहिए। यों, साधक अपनी सुविधा और सामर्थ्य के अनुसार अधिक भी जप सकता है। प्राय: 27 हजार, 51 हजार या 100,000 जप का सङ्कल्प करके साधकजन एक निश्चित अवधि में—9 दिन, 11 दिन, 21 दिन में—उसे पूरा करते हैं। जप पूरा हो चुकने पर सामर्थ्य अनुसार हवन और दान भी करना चाहिए। दान में कुमारी कन्याओं को भोजन और दक्षिणा देना सबसे उत्तम माना गया है।

अनुष्ठान के रूप में किया जाने वाला जप और तत्सम्बन्धी तन्त्र-पूजा में संयम बहुत आवश्यक होता है। वैसे भी साधक को सात्त्विकता, सदाचार, आस्तिकता, आस्था और धर्माचरण के साथ रहने से ही साधना का लाभ प्राप्त होता है। अशुचिता, असंयम, भ्रष्टाचार, दुर्विचार और दुष्कृत्य से साधना खण्डित हो जाती है। सामान्य रूप से दैनिक-पूजा में यदि मन्त्र का 5–7 माला जप कर लिया जाय और घर में नित्य यन्त्र का पूजन-दर्शन होता रहे, तो उसका चमत्कारी प्रभाव अवश्य दृष्टिगोचर होता है।

जप-मन्त्र—'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं,
भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्।'

गायत्री देवी के सर्वशुद्ध और स्पष्ट उपरोक्त मन्त्र को स्वयं साकार रूप में यन्त्र की मान्यता भी प्राप्त है।

इन सभी साधनाओं में अनेक प्रकार के बाह्याचार और कर्मकाण्ड सम्बन्धी प्रतिबन्ध भी हैं, जैसे न्यास, शिखा-बन्धन, प्राणायामा आदि। किन्तु अनेक साधकों का अनुभव है कि यदि केवल श्रद्धा, शुचिता और

सामान्य नियम पालन के साथ ही स्थिर-चित्त होकर कोई साधना की जाय तो भी उसका फल साधक को अवश्य प्राप्त होता है।

गायत्री-मन्त्र का जप पूर्ण होने पर यन्त्र तथा देवी प्रतिमा (चित्र) को इस श्लोक के द्वारा प्रणाम करना चाहिए—

आयातु वरदां देवीं अक्षरं ब्रह्मवादिनी,
गायत्री छन्दसां माता ब्रह्मयोनें नमोस्तुते ।।

श्री दुर्गा सप्तशती यन्त्र :

श्री दुर्गाजी के प्रमुख नव अवतारों को नवदुर्गा कहा जाता है। नवरात्रि के अवसर पर इन्हीं का क्रमिक रूप से स्तवन-पूजन होता है। दुर्गा सप्तशती-यन्त्र में यह नवों अवतार प्रतिष्ठित हैं। लक्ष्मी-सरस्वती और काली—इन तीन महाशक्तियों के अन्य प्रतिरूप और अवतार भी इस यन्त्र द्वारा पूजित होते हैं। यद्यपि दुर्गासप्तशती का साधना-विधान बहुत जटिल और विस्तृत है, वह आज के अशान्त और अभाव-ग्रस्त युग में सहज-साध्य नहीं रह गया, तो भी श्रद्धा और शुचिता को वरीयता देते हुए सरल रूप में यन्त्र की साधना निम्न प्रकार की जा सकती है—

विधि—भोजपत्र अथवा ताम्रपत्र पर लाल चन्दन अथवा अष्टगन्ध की स्याही से अनार की कलम द्वारा यन्त्र की रचना करें। सुलभ हो तो कहीं से भी प्राप्त कर सकते हैं। नवरात्र अथवा अन्य किसी शुभ-मुहूर्त्त में यन्त्र की प्राण-प्रतिष्ठा करके उसे लाल आसन पर स्थापित करें। साधक को स्वयं भी लाल वस्त्र धारण करना चाहिए। पूजा में चन्दन और पुष्प भी लाल रङ्ग के ही हों। यन्त्र को आसन पर प्रतिष्ठित करने के पश्चात् सर्वप्रथम दुर्गाजी का ध्यान करें—

खड्गं चक्र गदेषु चाप परिघां शूलं भुशुण्डीं शिरः,
शंखं सन्दधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्ग भूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्य पाददशकां सेवे महाकालिकां,
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ।।

इस स्तुति द्वारा यन्त्र और देवी-प्रतिमा (अथवा चित्र) को प्रणाम करके 'ॐ नमश्चण्डिकायै' मन्त्र जपते हुए यन्त्र की चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से पूजा करें। तत्पश्चात् रुद्राक्ष अथवा लाल चन्दन की माला से मन्त्र-जप आरम्भ करें।

मन्त्र—'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डा विच्चै। ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं सः ज्वालय ज्वालय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चै ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा।'

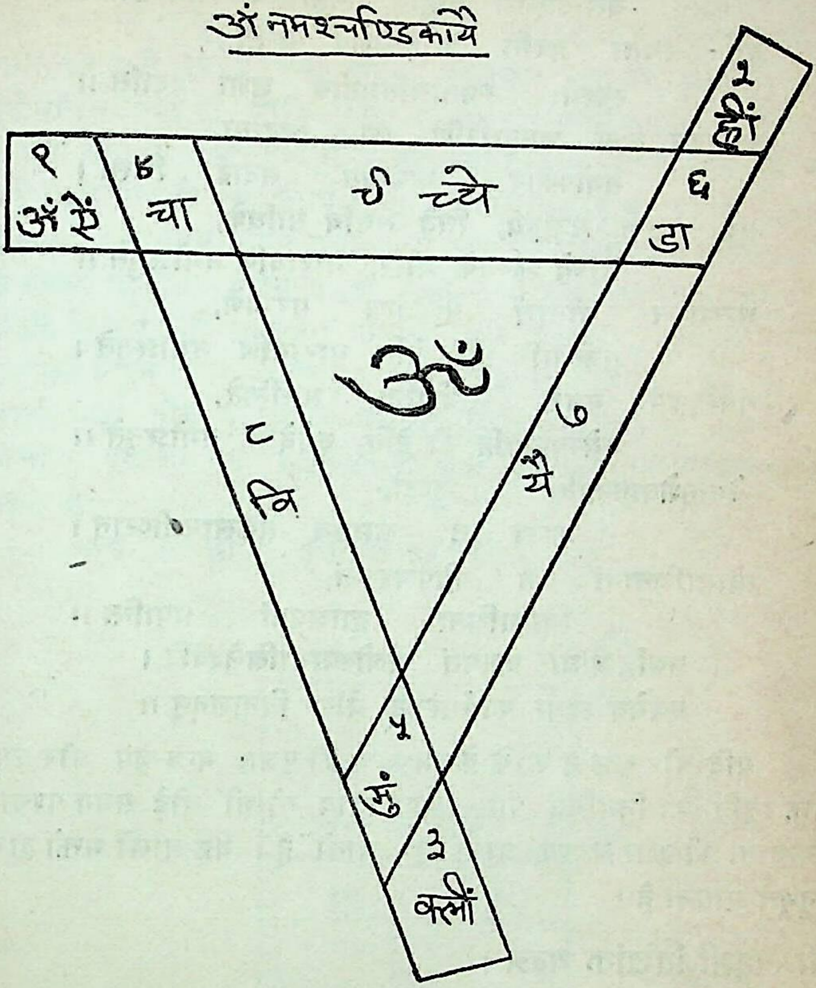
ॐ नमश्चण्डिकायै
१
ॐ ऐं
४
चा
९
च्चे
६
डा
२
ह्रीं
ॐ
८
वि
७
यै
५
मुं
३
क्लीं

(श्री दुर्गा सप्तशती यन्त्र)

इस मन्त्र का प्रतिदिन कम से कम एक माला जप करना चाहिए। यदि एक निश्चित अवधि (9, 11 अथवा 21 दिनों) में इसका 11 हजार जप करके हवन और दान किया जाय, तो शीघ्र ही निश्चित फल की प्राप्ति होती है।

जप समाप्ति के पश्चात् प्रतिदिन देवी की स्तुति में निम्न श्लोक भी पढ़ने चाहिएं—

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि, देवी भगवती हि सा,
बलादाकृष्य मोहाय, महामाया प्रयच्छति ।
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेष जन्तोः,
स्वस्थैः स्मृतामतिमतीव शुभां ददासि ॥
दारिद्र्य दुःख भयहारिणि का त्वदन्या,
सर्वोपकार करणाय सदार्द्र चित्ता ।
सर्व मङ्गल मङ्गल्ये, शिवे सर्वार्थ साधिके,
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि, नारायणि नमोऽस्तुते ॥
शरणागत दीनार्त्त परित्राण परायणे,
सर्वस्यार्ति हरे देवि नारायणि नमोऽस्तुते ।
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्ति समन्विते,
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि, दुर्गेदेवि नमोऽस्तुते ॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा,
रुष्टा तु कामान सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां,
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥
सर्वा बाधा प्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद् वैरि विनाशनम् ॥

यदि और कुछ न करके केवल यन्त्र की पूजा, मन्त्र-जप और उपरोक्त स्तुति का नियमित पाठ किया जाय, तो भी थोड़े समय पश्चात् जगन्माता की कृपा अवश्य प्राप्त हो जाती है। यह लाखों भक्तों द्वारा अनुभूत साधना है।

श्री लक्ष्मी-विंशांक यन्त्र :

विंशाङ्क-यन्त्र को बोलचाल की भाषा में 'बीसा-यन्त्र' कहते हैं। यह यन्त्र-शास्त्र की अति प्रसिद्ध, प्रभावशाली, और बहु उपयोगी देन है। इसके विभिन्न रूपाकार प्राप्त होते हैं। सभी प्रभावशाली, समृद्धिदाता और कल्याणकारी माने गये हैं। इसकी प्रभावशीलता का प्रमाण यह है कि इसे ईश्वर से भी अधिक क्षमतावान कहा जाता है। लोक-प्रचलित उक्ति है।

जाके घर हो बीसा, बाकौ कहा करै जगदीसा।

अस्तु, किसी भी आकृति में बीसा-यन्त्र की रचना करके, उसकी पूजा-आराधना की जाय—निश्चय ही कल्याण होता है।

विधि—यह लक्ष्मीजी का यन्त्र है, अतः यथासम्भव नवरात्र में, या फिर अन्य किसी शुभ-मुहूर्त्त में ताम्रपत्र पर या भोजपत्र पर अष्टगन्ध या लाल चन्दन से उसकी रचना करनी चाहिए। यन्त्र बन चुकने पर उसे पूर्व वर्णित यन्त्रों की भाँति लाल आसन पर प्रतिष्ठित करें और लाल चन्दन, लाल पुष्प, धूप-दीप आदि से उसकी पूजा करके मन्त्र का जप करें। इस यन्त्र के लिए ध्यान-स्तुति में देवी का कोई भी श्लोक पढ़ा जा सकता है। सामान्य नियम लगभग श्री-यन्त्र जैसे ही हैं, अन्तर केवल यन्त्र के स्वरूप का है। उद्देश्य-भेद से इसके लिए जप किये जाने वाले मन्त्रों में भी भिन्नता पाई जाती है। धन-सम्पदा के लिए इस यन्त्र की पूजा के उपरान्त निम्न मन्त्र विशेष रूप से श्रेष्ठ कहा गया है। वैसे, साधक अपनी श्रद्धा और सुविधा के अनुसार पूर्ववर्णित लक्ष्मी के मन्त्रों में से किसी भी एक का जप कर सकता है। सामान्यतः प्रचलित मन्त्र इस प्रकार है—

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लं ह्रां नमः।

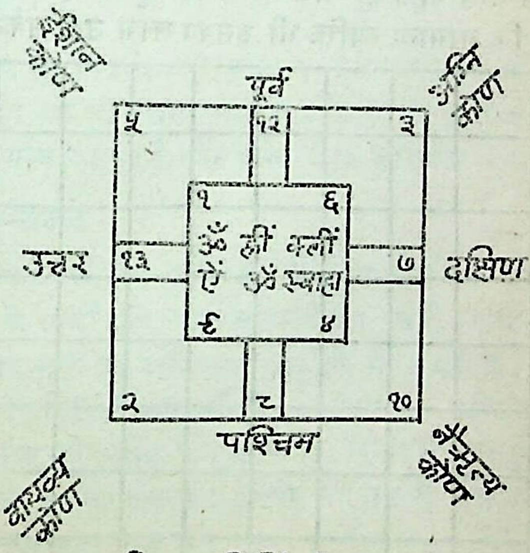
ईशान कोण
पूर्व
आग्नेय कोण
५
१२
३
१
६
ॐ ह्रीं क्लीं
ऐं ॐ स्वाहा
९
४
उत्तर
१३
७
दक्षिण
२
८
१०
पश्चिम
वायव्य कोण
नैऋत्य कोण

श्री लक्ष्मी विंशांक यन्त्र (ख)

विशेष—इस यन्त्र की साधना में साधक को यथासम्भव केसरिया रङ्ग की वस्तुओं का प्रयोग करना चहिए। देवी का आसन, चन्दन, पुष्प,

नैवेद्य सब केसरिया रङ्ग का हो। साथ ही साधक स्वयं भी इसी रङ्ग के आसन तथा वस्त्रों का उपयोग करे। यदि एक लाख मन्त्र जपकर हवन द्वारा यन्त्र सिद्ध कर लिया जाय, तो उसका दर्शनमात्र ही समस्त सङ्कटों का निवारण कर देता है। ऐसा यन्त्र जिसके घर में हो, वहाँ अमोध श्री-शक्ति विराजमान रहती है।

लक्ष्मी-दाता श्री शिव-यन्त्र :

भगवान शिव की उपासना से ज्ञान, सिद्धि, आरोग्य और लक्ष्मी-वैभव सब कुछ सुलभ हो जाता है। शिवजी सहज ही प्रसन्न हो जाते हैं। उनकी पूजा में विशेष कर्मकाण्ड या जटिलता नहीं है। किसी भी स्थान पर, कभी भी, कोई भी उनका स्मरण करके लाभान्वित हो सकता है। भारत ही नहीं, विदेशों में भी शिवजी की पूजा प्रचलित है। पुरातात्त्विक-सामग्री से प्रमाणित होता है कि विश्व के लगभग सभी देशों, भागों में कभी न कभी शिवोपासना, शैव-दर्शन का प्रचार रहा है। रूस और अमेरिका तक में, खुदाई से प्राप्त शिव-प्रतिमाएं और शिव-मन्दिर इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं। अस्तु सम्पत्तिकामी साधकों के लिए, अभाव-ग्रस्त और दारिद्रय-पीड़ित जनों के लिए लक्ष्मी प्रदान करने वाला यह शिव-यन्त्र बहुत ही प्रभावी सिद्ध हुआ है। इसकी साधना इतनी सरल है कि सामान्य व्यक्ति भी इसका लाभ उठा सकता है।

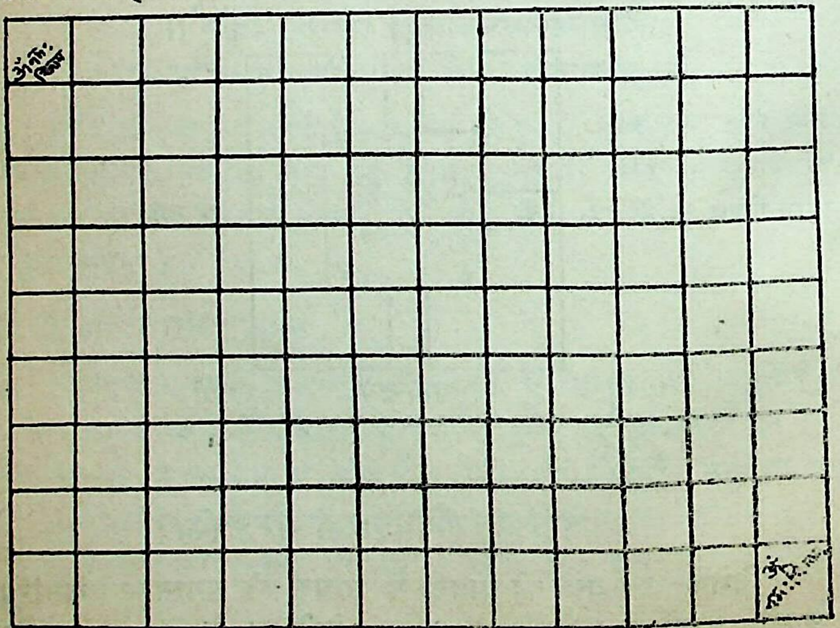

(लक्ष्मीदाता श्री शिव-यन्त्र)

विधि—भोजपत्र पर सफेद चन्दन से, अथवा नीले रङ्ग के कागज पर लाल स्याही से (लाल चन्दन विशेष उत्तम होता है) इस यन्त्र की रचना करें। किसी भी शुभ-मुहूर्त्त वाले सोमवार के दिन से साधना प्रारम्भ की जा सकती है। 108 वर्ग (चित्र के अनुसार) बनाकर प्रत्येक वर्ग में 'ॐ नमः शिवाय' लिखना चाहिए। यन्त्र बन चुकने पर उसे श्वेत वस्त्र के आसन पर (काष्ठ की चौकी पर) स्थापित करके ठीक शिव-प्रतिमा की भाँति गङ्गाजल (शुद्ध कूप-जल से भी), चन्दन, पुष्प, (धतूर-मदार), अक्षत और धूप-दीप से पूजन करना चाहिए। पूजा के उपरान्त निम्नलिखित ध्यान-स्तुति सहित मन्त्र का 5, 7, 11 माला नित्य जप करें।

ध्यान-स्तुति— वामांके च विभाति भूधर सुता देवापगा मस्तके।
भाले बाल विधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्॥
सोऽयं भूति विभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा।
सर्वा सर्वगता शिवः शशिनिभः श्रीशङ्कर पातुमाम्॥

जप-मन्त्र—'ॐ नमः शिवाय।'

जप समाप्त होने पर दाँये हाथ की अनामिका अँगुली पर कनिष्ठा को चढ़ाकर उससे यन्त्र के सबसे नीचे वाले (अन्तिम) वर्ग को स्पर्श करते हुए प्रणाम करें।

इस यन्त्र का नियमित पूजन-दर्शन चमत्कारी प्रभाव दिखाता है। सोमवार के दिन व्रत भी रखना चाहिए। किसी भी कार्य अथवा यात्रा के प्रारम्भ में इस यन्त्र का स्पर्श और दर्शन बहुत लाभदायक होता है।

श्री चण्डिका-यन्त्र :

दुर्गाजी का एक नाम 'चण्डिका' है। इस नाम को आधार बनाकर विभिन्न प्रकार के यन्त्रों की रचना की गई हैं। सभी यन्त्र अपने में पूर्ण प्रभावशाली और भक्त को वाञ्छित लाभ देने में समर्थ हैं। आवश्यकता केवल निष्ठा और विधि-विधान की है। यहाँ प्रस्तुत चण्डिका-यन्त्र बहुत सरल, सहज-साध्य और आशु-फलदायक है। किसी भी शुभ-मुहूर्त्त में इसकी रचना करके पूजा की जा सकती है। वैसे, नवरात्र में इसका निर्माण और पूजन विशेष उत्तम कहा गया है।

विधि—ताम्रपत्र पर अथवा भोजपत्र पर किसी शुभ योग में इस यन्त्र की रचना करें। भोजपत्र पर अष्टगन्ध अथवा लाल चन्दन से

लिखना चाहिए। ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण यन्त्र को स्नान कराकर उसमें अष्टगन्ध अथवा लाल चन्दन भर देना चाहिए। जो भी सम्भव हो, दोनों में से एक यन्त्र बनाकर पूजा की जा सकती है।

सर्वप्रथम यन्त्र को किसी पवित्र स्थान पर स्थापित करें। इस यन्त्र का आसन लाल रङ्ग का होना चाहिए। यन्त्र के पास दुर्गाजी का चित्र भी स्थापित करदें। तदुपरान्त चन्दन, पुष्प, धूप-दीप और नैवेद्य से यन्त्र की पूजा करें। चन्दन और पुष्प लाल होने चाहिएं। पूजा के पश्चात् कलश पर घी का दीपक जलाकर रख दें और यन्त्र को प्रणाम करते हुए दुर्गाजी का ध्यान करें।

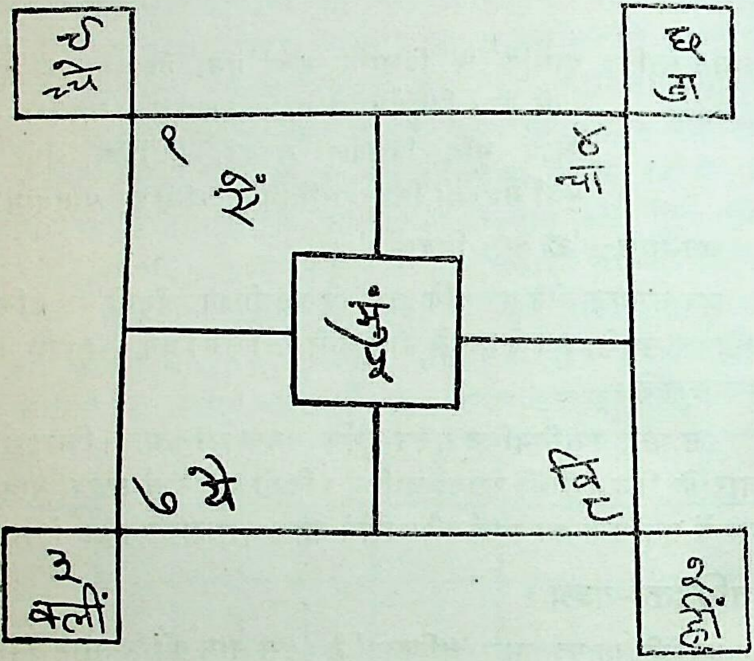

(श्री चण्डिका-यन्त्र)

ध्यान-स्तुति—अक्षस्रक्परशुं गदेषु कुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां।
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टा सुराभाजनम्॥
शूलं पाशु सुदर्शने च दधती हस्तै प्रसन्नाननां।
सेवैसैरिभ मर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥

इसके पश्चात् लाल चन्दन, मूंगे या रुद्राक्ष की माला से मन्त्र जपना चाहिए।

मन्त्र—ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।

इस मन्त्र की प्रतिदिन कम से कम 7 माला जपें और समाप्ति पर इस श्लोक द्वारा देवी की वन्दना करें—

देवी प्रपन्नार्ति हरे प्रसीद मातर्जगतोखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं, त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ।।

नियमित रूप से की गयी यह यन्त्र-साधना निश्चित रूप से फल प्रदान करती है। श्री-समृद्धि के लिए यह बहुत ही सरल और अचूक विधान है।

श्री हरिद्रागणेश सिद्धि-यन्त्र :

हिन्दू-संस्कृति में सर्वाधिक क्षमतावान, प्राचीन और सर्वपूज्य देवता ब्रह्मा, विष्णु और शिव माने जाते हैं। ये क्रमशः सृष्टि, पालन और लय की व्यवस्था करते हैं। कालान्तर में इनके विभिन्न रूप अवतीर्ण हुए और उन सबको एक पृथक् देवता (देव-शक्ति) की संज्ञा दी गई।

समस्त देवताओं में सर्वप्रथम पूजनीय श्री गणेशजी हैं। वे 'गणपति' कहे जाते हैं। जन्म-वृत्त के अनुसार वे शिवजी के पुत्र हैं और ऋद्धि-सिद्धि का स्वामित्व उन्हीं को प्राप्त है। विघ्नों का विनाश करने में वे सबसे अधिक सामर्थ्यवान देवता हैं। इसीलिए प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में उनका स्मरण-पूजन किया जाता है, ताकि सम्भावित विघ्नों का निवारण हो सके। ज्ञान, बुद्धि, लेखन-शक्ति, धन-सम्पत्ति, सुरक्षा, यश, बल, प्रतिष्ठा और तन्त्र-साधना में सफलता प्राप्ति के लिए गणेशजी की पूजा चिरकाल से प्रचलित हैं। और, यह एक अद्भुत सत्य है कि गणेशजी की पूजा से साधक को लाभ अवश्य प्राप्त होता है।

आर्ष-ग्रन्थों में गणेशजी का पूजन-विधान अनेक प्रकार से वर्णित है। स्तुति, नाम-जप, मन्त्र-जप, चित्र-मूर्ति-पूजन तथा यन्त्र-पूजन जैसे अनेक रूपों में उनकी उपासना की जाती है। यहाँ गणेश-यन्त्र का सरलतम पूजन-विधान प्रस्तुत है, श्रद्धावान साधक इससे लाभ उठा सकते हैं।

विधि—किसी भी महीने की गणेश-चतुर्थी के दिन से पूजा प्रारम्भ की जा सकती है। प्रारम्भ कर चुकने पर अपने सङ्कल्पानुसार एक निश्चित अवधि तक (और, सम्भव हो तो दैनिक-पूजा के रूप में नित्य ही) उसे विधिवत् करते रहें। शुद्ध एकान्त-स्थान को लीप-पोतकर पवित्र करें, वहाँ चौकी पर लाल वस्त्र बिछाकर उसपर गणेशजी की प्रतिमा, चित्र अथवा यन्त्र स्थापित करें। यन्त्र कहीं से भी प्राप्त किया जा सकता

है। यदि ताम्रपत्र पर हो तो अत्युत्तम है, अन्यथा लाल चन्दन की स्याही और अनार की कलम से भोजपत्र पर स्वयं ही इसकी रचना करलें। यदि ऐसा भी सम्भव न हो तो यन्त्र के चित्र का प्रयोग किया जा सकता है। यन्त्र के अभाव में एक विकल्प यह है कि भोजपत्र पर लाल चन्दन से 'ग' लिखकर अथवा स्वस्तिक चिह्न 卐 बना लिया जाय। यह दोनों ही रूप गणेशजी के प्रतीक हैं और के स्थानापन्न माने जाते हैं। यन्त्र स्थापित करने के बाद उसके टीक सामने, पूर्व की ओर मुँह करके बैठना चाहिए। साधक के वस्त्र लाल रङ्ग के हों, और उसका आसन भी लाल हो। कुशासन पर धुला हुआ पवित्र लाल कपड़ा बिछा लेने से उत्तम आसन बन जाता है। साधक को बिना सिला हुआ वस्त्र पहनना चाहिए। इसके लिए लुङ्गी, धोती, पञ्चा और उत्तरीय जैसे वस्त्र श्रेष्ठ माने गये हैं। पूजा की सामग्री पहले से ही सँजोकर रख लेनी चाहिए, ताकि बीच में उठना न पड़े। पूजन का विधान इस प्रकार है—

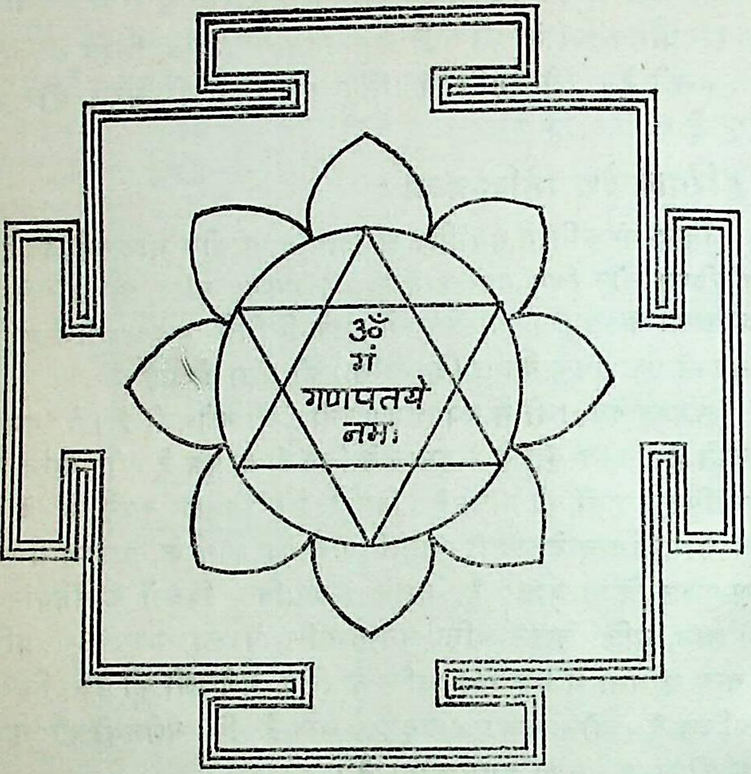

श्री हरिद्रागणेश यन्त्र

सबसे पहले निम्नलिखित श्लोक को पढ़ते हुए, हाथ जोड़कर गणेशजी का ध्यान करें—

'चतुर्भुजं रक्ततनुं त्रिनेत्रं, पाशांकुशौ मोदकपात्र दन्तौ।
करैर्दधानं सरसीरुहस्थं, गणाधिनाथं शशिचूड मीडे॥'

इसके बाद यन्त्र को पञ्चामृत अथवा गङ्गाजल (इन दोनों के अभाव में शुद्ध कूप-जल) से स्नान कराकर उसे दूर्वा, लाल चन्दन, लाल पुष्प, लाल अक्षत अर्पित करें। प्रत्येक क्रिया में 'श्री गणेशाय नमः' का उच्चारण करते रहें। धूप-दीप के पश्चात् मोदक का नैवेद्य प्रस्तुत करना चाहिए। मोदक के लिए—लाल या पीले रङ्ग के किसी भी मिष्ठान्न को लड्डू के रूप में बना लेने से काम चल जाता है।

नैवेद्य अर्पण के पश्चात् एक दीपक और (घी का) जला लें और कलश पर स्थापित करदें। तदुपरान्त यन्त्र को प्रणाम करके नीचे लिखे मन्त्रों में से किसी भी एक मन्त्र का जप आरम्भ करें। जप के लिए लाल चन्दन की माला श्रेष्ठ मानी गई है। उसके अभाव में रुद्राक्ष की माला का प्रयोग किया जा सकता है। कलश पर रखा दीपक पूरे मन्त्र-जप के समय तक प्रज्ज्वलित रहना चाहिए, उसे बीच में बुझाएं नहीं। मन्त्र-जप पूरा होने पर वह जब अपने आप बुझे, तभी उचित होता है। मन्त्र-जप के समय साधक का मन सर्वथा निर्विकार-शान्त हो और आस-पास का वातावरण भी प्रदूषण, कोलाहल, धुआँ, धूल, धूप और आँधी-तूफान से सुरक्षित होना चाहिए। यदि घर में ऐसी सुविधा न हो तो किसी मन्दिर, गुफा, नदी-तट अथवा बाग-बगीचे को भी साधना-स्थल के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

मन्त्र—● ॐ वरदाय नमः।
● श्री गणेशाय नमः।
● ॐ श्री गणेशाय नमः।
● ॐ गं गणपतये नमः।
● ॐ नमो भगवते गजाननाय।
● ॐ वक्रतुण्डाय हुम्।
● ॐ वक्रतुण्डाय नमः।
● ॐ चिन्तामणये नमः।

- ॐ सुमङ्गलाय नमः ।
- गं
- ग्लं
- ग्लौं

कम से कम एक माला (108 दाने) या फिर सुविधानुसार 5, 7, 9, 11 अथवा और अधिक भी, माला नित्य जपना चाहिए ।

साधना-काल में संयम परम आवश्यक होता है । ब्रह्मचर्य, भूमि-शयन, गणेश चिन्तन, सात्त्विक-भोजन, मित्त-भाषण, यथा-सम्भव मौन धारण, काम, क्रोध, लोभ से विरति और अहङ्कार का निरसन आवश्यक होता है । कोई भी साधना हो, बिना संयम और नियम-निर्वाह के वह फलवती नहीं होती है ।

गणेश-यन्त्र की पूजा में उपरोक्त विधि से पूजन और मन्त्र-जप के पश्चात्, अन्त में इस स्तुति का पाठ करते हुए, यन्त्र को प्रणाम करना चाहिए—

'नमो नमः सुरवर पूजितांघ्रये,
नमो नमः निरुपम मङ्गलात्मने ।
नमो नमः विपुल पदैक सिद्धये,
नमो नमः करिकलभाननाय ते ।।'

इस प्रकार गणेश-यन्त्र की पूजा करने पर साधक के समस्त सङ्कट दूर हो जाते हैं और विघ्न-बाधाओं की छाया से परे, वह विपुल वैभव और सम्पत्ति प्राप्त करता है ।

श्री विष्णु बिंशाक-यन्त्र :

विष्णु भगवान अखिल सृष्टि के पालन-कर्त्ता हैं । लक्ष्मी उनकी पत्नी हैं । समय-समय पर भगवान विष्णु ने अनेक अवतार लेकर लोक-कल्याण किया है । राम, कृष्ण, नृसिंह, वामन, परशुराम, वाराह और कूर्म आदि 24 अवतारों की कथाओं में विष्णु की लीला और महिमा जगत् विख्यात है । उनके एक हजार नामों की एक स्तुति बहुत प्रसिद्ध है । 'विष्णु सहस्र नाम' की संज्ञा से वह स्तुति पुराण-ग्रन्थ के रूप में पूज्य और मान्य है । विष्णु की पूजा से रक्षा, समृद्धि, ज्ञान, भक्ति और सतोगुण की प्राप्ति होती है । लक्ष्मी की कृपा तो सहज ही उपलब्ध हो जाती है । सांसारिक-समस्याओं के समाधान हेतु भक्तजन उनके किसी भी नाम का जप करके लाभान्वित होते हैं । यहाँ विष्णु-यन्त्र की उपासना-विधि सरल-

संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत की जा रही है। श्रद्धा और नियमपूर्वक इस यन्त्र की पूजा करने से साधक को थोड़े समय में ही इसके चमत्कारी प्रभाव की अनुभूति होती है। धन-सम्पदा के अभिलाषी जनों का दारिद्र्य दूर होकर उन्हें लक्ष्मी की कृपा का आनन्द-दायक अनुभव होता है। किसी भी रूप में (सोने, चाँदी अथवा भोजपत्र पर निर्मित) विष्णु-यन्त्र की पूजा अनेक प्रकार के सङ्कटों का निवारण करके साधक की कामना-पूर्त्ति में सहायक होती है।

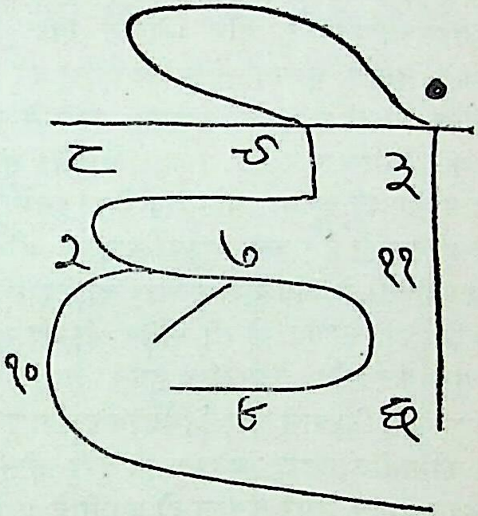

(श्री विष्णु विंशांक-यन्त्र)

विधि—किसी भी शुभ-मुहूर्त्त में इस यन्त्र की रचना की जा सकती है। सबसे सुविधाजनक विधि यह है कि अष्टगन्ध, पञ्चगन्ध, यक्षकर्दम अथवा सफेद चन्दन, इनमें से किसी भी एक की स्याही और अनार की कलम से भोजपत्र पर इस यन्त्र की रचना की जा सकती है। यन्त्र-रचना के पश्चात् उसकी प्राण-प्रतिष्ठा भी करा लेना चाहिए।

इस यन्त्र को एकान्त-पवित्र स्थान में पीले अथवा श्वेत वस्त्र के आसन पर स्थापित करें। यह यन्त्र साक्षात् विष्णु भगवान का श्री-विग्रह होता है। यन्त्र-स्थापना के पश्चात्, निम्नलिखित स्तुति पढ़ते हुए विष्णु भगवान का ध्यान-स्मरण करना चाहिए। स्तुति, जप और ध्यान के साथ ही यन्त्र को प्रणाम करें।

ध्यान-स्तुति—'सशंख चक्रं सकिरीट कुण्डलं,
सपीत वस्त्रं सरसीरुहेक्षणम्।
सहार वक्षस्थल कौस्तुभश्रियं,
नमामि विष्णु: सिरसा चतुर्भुजम् ॥'

यन्त्र को प्रणाम करने के पश्चात् उसे पञ्चामृत अथवा गङ्गाजल (किसी नदी या कूप का शुद्ध जल भी प्रयुक्त हो सकता है) से स्नान कराकर आसन पर प्रतिष्ठित करें। तदनन्तर केसरिया चन्दन, पीले पुष्प, तुलसीदल, धूप, दीप, नैवेद्य से उसकी पूजा करें। फिर, घी का दीपक जलाकर कलश पर स्थापित करें और भगवान विष्णु का स्मरण करते हुए, तुलसी, सफेद चन्दन, कुशाग्रन्थि अथवा रुद्राक्ष की माला से मन्त्र-जप प्रारम्भ करें। मन्त्र-जप की संख्या का सङ्कल्प पहले से कर लेना चाहिए। नियमित रूप से, निश्चित अवधि तक, निश्चित संख्या में प्रतिदिन, पूजनोपरान्त मन्त्र का जप करना अनिवार्य है। इसमें व्यतिक्रम होने से साधना खण्डित हो सकती है। अत: संख्या-सङ्कल्प और स्थान-निर्धारण आदि में बहुत गम्भीरता से विचार करना चाहिए। कम से कम एक माला तो नित्य ही जपें, सम्भव हो तो अधिक भी जप सकते हैं। निश्चित अवधि पर जप पूरा करें और तदुपरान्त हवन तथा कुछ दान-पुण्य भी करें। इस प्रकार श्रद्धा, विश्वास और नियमपूर्वक विष्णु-यन्त्र की साधना करने से साधक की मनोकामनाएं अवश्य ही पूरी होती हैं। विष्णु-पत्नी देवी लक्ष्मीजी स्वत: उसके ऊपर कृपालु हो जाती हैं।

मन्त्र—● ॐ विष्णवे नम:।
● ॐ नमो नारायणाय।
● ॐ अच्युताय नम:।
● ॐ लक्ष्मीपतये नम:।
● ॐ जनार्दनाय नम:।
● ॐ श्री हरे नम:।
● ॐ केशवाय नम:।

दैनिक-पूजा में, मन्त्र-जप पूजा होने पर इस स्तुति को को पढ़ते हुए विष्णु-स्वरूप विष्णु-यन्त्र को नमस्कार करना चाहिए—

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं,
विश्वाधारं गगन सदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तम् कमलनयनं योगिभिर्ध्यान गम्यं,
वन्दे विष्णं भवभयहरणं सर्वलोकैकनाथम् ॥

श्री विष्णु षोडश-यन्त्र :

श्री विष्णु बिशाङ्क-यन्त्र के अतिरिक्त श्री विष्णु-यन्त्र के एक दूसरे स्वरूप की साधना का वर्णन भी कुछ महत्त्वपूर्ण तान्त्रिक-ग्रन्थों में पाया जाता है। श्रद्धालु साधकों की ज्ञान-वृद्धि व यन्त्रों की विशद् जानकारी हेतु वह दूसरा स्वरूप भी दे रहे हैं। वैसे वास्तविक महत्त्व तो श्रद्धा, आस्था, शुचिता व नियमानुसार की गई साधना का ही है, यों किसी भी देवता के किसी भी यन्त्र या विग्रह की जप-पूजा करके आराधना की जाय, तो साधक को अभीष्ट फल की प्राप्ति हो जाती है, इसमें किंचित् मात्र भी सन्देह नहीं।

ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं
ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं
ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं
ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं

(श्री विष्णु षोडश-यन्त्र)

इस 'श्री विष्णु षोडश-यन्त्र' की जप-पूजा का विधान 'श्री विष्णु बिशाङ्क-यन्त्र' की भाँति ही है। मन्त्र-जप की संख्या तथा मन्त्र का स्वरूप भी वही मान्य है।

श्री राम यन्त्र :

विष्णु के समस्त अवतारों में राम की प्रतिष्ठा सर्वाधिक है। राम की भक्ति और स्वयं उनके सम्बन्ध में प्रभूत साहित्य प्राप्त होता है। उनकी पत्नी श्री सीताजी को श्री लक्ष्मीजी का अवतार माना जाता है। इस प्रकार राम की आराधना जहाँ साधक को ज्ञान, भक्ति और वैराग्य देती है, वहीं लौकिक-जीवन के लिए कामना रखने वालों को सांसारिक-वैभव, श्री सम्पदा भी प्रदान करती है। अपने मानव रूप में भगवान श्रीराम का चरित्र इतना पावन और आदर्श-पूरक रहा है कि वे मर्यादा-पुरुषोत्तम कहे जाते हैं। उनका यह 'राम' नाम इतना व्यापक, प्रभावशाली और प्रचलित है कि समस्त हिन्दी-भाषी जनता (अनपढ़-गँवार भी) किसी न किसी रूप में—'राम' शब्द का प्रयोग करती रहती है। यह शब्द अपने में सूक्ति, नीति-वाक्य, मन्त्र, महाकाव्य, लोकोक्ति, सौगन्ध और सम्मान सबका प्रतीक बन गया है। राम के चरित्र से प्रेरणा लेने के लिए 'राम-लीला' का अभिनय भारत से बाहर विदेशों तक में प्रचलित है। वस्तुतः राम की पूजा विष्णु की ही पूजा है और वह साधक के दुःख-दारिद्रय का नाश करके उसे समृद्धि प्रदान करती है।

श्रीराम का नाम, रूप, गुण, चरित्र, स्मरण, प्रभाव सब कुछ अत्यधिक लोक-प्रिय और सम्मान्य है। शिव, विष्णु और भगवती दुर्गा की भाँति राम के चरित्र पर भी सैकड़ों ग्रन्थ रचे गये हैं, यह उनकी महिमा का अकाट्य प्रमाण है। राम की पूजा के अनेक रूप प्रचलित हैं—नाम-जप से लेकर मूर्त्ति-पूजा तक। राम-यन्त्र भी उनकी उपासना का श्रेष्ठ माध्यम है। यहाँ श्रीराम-यन्त्र की पूजा का सरलतम विधान प्रस्तुत है।

विधि—वैसे तो अपनी आवश्यकता और श्रद्धा के अनुसार साधक कभी भी राम-यन्त्र की उपासना कर सकता है, किन्तु यदि इसे चैत्र शुक्ल नवमी (राम-नवमी) के दिन से प्रारम्भ किया जाय तो विशेष रूप से सफलता प्राप्त होती है।

सबसे पहले भोजपत्र पर सफेद चन्दन अथवा केसर की स्याही से यन्त्र की रचना करें। लेखनी के लिए सभी यन्त्रों में अनार की लकड़ी (टहनी) का प्रयोग किया जाता है। उपलब्ध हो तो ताम्रपत्र पर बना-बनाया यन्त्र भी लिया जा सकता है। चाहे जैसा यन्त्र हो, स्थापना के पूर्व किसी पण्डित-पुरोहित को बुलाकर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा अवश्य करा

लेनी चाहिए। इस प्रकार यन्त्र को शुद्ध एकान्त-स्थान में आदरपूर्वक श्वेत वस्त्र के आसन पर प्रतिष्ठित करके पूजा आरम्भ की जा सकती है।

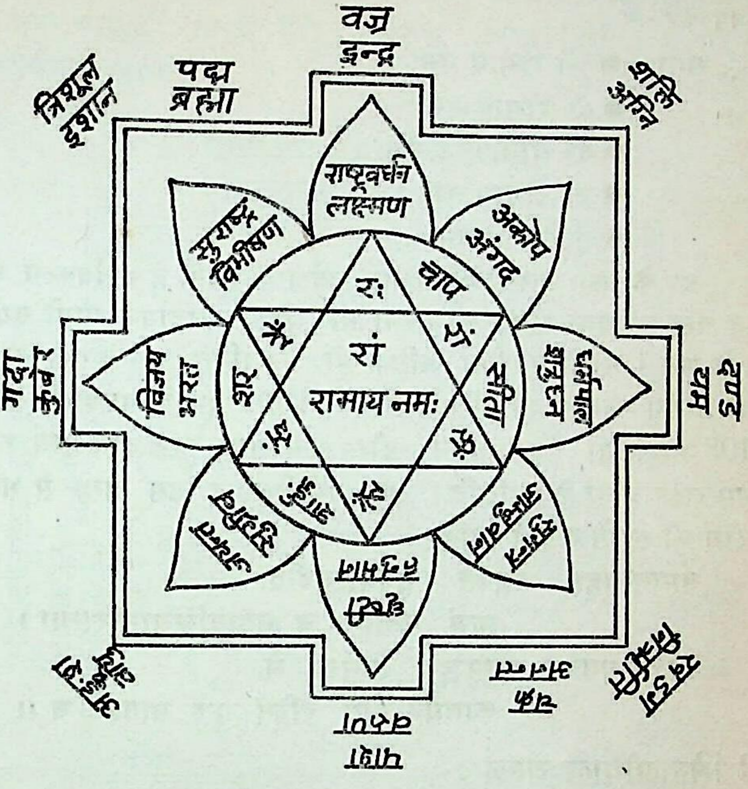
वज्र
इन्द्र
पद्म
ब्रह्मा
त्रिशूल
ईशान
शक्ति
अग्नि
गदा
कुबेर
दण्ड
यम
खड्ग
निर्ऋति
चक्र
अनन्त
पाश
वरुण
अंकुश
वायु
राष्ट्रवर्धन
लक्ष्मण
सुराष्ट्र
विभीषण
अकोप
अंगद
विजय
भरत
धर्मपाल
शत्रुघ्न
जयन्त
सुग्रीव
धृष्टी
हनुमान
सुमन्त
जाम्बवान
रः
चाप
तं
सीता
श्रीं
सौं
शार्ङ्गं
शर
रां
रामाय नमः

षड्वर्णात्मक श्री राम मन्त्र यन्त्रम्

स्नानोपरान्त श्वेत वस्त्र धारण करके (पीले भी पहने जा सकते हैं, किन्तु वस्त्र के नाम पर केवल धोती और उत्तरीय ही लेना चाहिए, सिले हुए वस्त्रों का प्रयोग वर्जित है), आसन पर बैठें और यन्त्र को नमस्कार करते हुए भगवान श्रीराम का ध्यान करें—

नीलाम्बुज श्यामल कोमलाङ्गम्,
सीता समारोपित वाम भागम्।
पाणौ महासायक चारुचापम्,
नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

इसके पश्चात् पूर्व-वर्णित यन्त्रों की भाँति इसे भी गङ्गाजल, कूप-जल अथवा पञ्चामृत से (जो भी सुलभ हो) स्नान करायें और चन्दन,

पुष्प, अक्षत, धूप, दीप से यन्त्र की पूजा करें। पूजनोपरान्त नैवेद्य अर्पित करें और पुनः यन्त्र को प्रणाम करके निम्नलिखित में से किसी एक मन्त्र का जप करें—

मन्त्र—● श्री रामाय नमः।
● ॐ रामाय नमः।
● ॐ सीतापतये नमः।
● रां रामाय नमः।
● ऐं रामाय नमः।

जप के लिए तुलसी की माला सर्वश्रेष्ठ होती है। विकल्प रूप में सफेद चन्दन अथवा रुद्राक्ष की माला भी श्रेष्ठ फलदायक मानी गयी है। कम से कम 1 माला या फिर अधिक भी, नियमित जप करना चाहिए। किसी विशेष कामना की पूर्त्ति के लिए 11000 जप के पश्चात् इसी मन्त्र से 108 आहुतियाँ देकर हवन और तत्पश्चात् कुछ दान-पुण्य करने से विशेष लाभ होता है। प्रतिदिन जप समाप्ति पर इस मन्त्र से भगवान श्रीराम की स्तुति करनी चाहिए—

नान्यास्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये,
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्ति प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे,
कामादि दोष रहितं कुरु मानसं च।।

श्री सिद्धगोपाल यन्त्र :

श्री रामचन्द्रजी की भाँति ही श्रीकृष्ण भी भगवान विष्णु के अवतार हैं। उनके भी अनेक नाम, रूप और लीला-प्रसङ्ग हैं। श्रीकृष्ण की भक्ति से न जाने कितने व्यक्ति महानता के शिखर पर पहुँच गये। ज्ञान, बुद्धि, शौर्य, यश, पराक्रम, राज-वैभव और मोक्ष सब कुछ श्रीकृष्ण की कृपा से प्राप्त हो जाता है। न जाने कितने कवि केवल इसीलिए विख्यात और वन्दनीय हो गये कि उन्होंने परम तन्मय होकर भक्ति-भाव से श्रीकृष्ण-काव्य की रचना की थी। अस्तु, श्रीकृष्ण के बालरूप 'गोपाल' से सम्बन्धित 'श्री सिद्ध-गोपाल-यन्त्र' भक्तों की कामना-पूर्त्ति का सुनिश्चित साधन है। इसकी पूजा से गोपालदेवजी प्रसन्न होकर, साधक की सभी समस्याएं दूर करके उसे श्री-समृद्धि प्रदान करते हैं। जो व्यक्ति दारिद्र्य की पीड़ा से व्याकुल होकर धन-प्राप्ति की लालसा रखते हैं, उनके लिए यह परम कल्याणकारी और सरल साधना है।

विधि—इस यन्त्र को ताम्रपत्र अथवा भोजपत्र पर निर्मित करके प्राण-प्रतिष्ठा के पश्चात् पूजा-गृह में स्थापित करलें। स्मरण रहे कि यन्त्र-रचना, स्थापना तथा पूजन प्रारम्भ—ये सभी कृत्य सदैव शुभ-मुहूर्त्त में ही किये जाने चाहिए। इसके लिए स्थानीय पण्डित-पुरोहित से पूछ लेना सुविधाजनक रहता है।

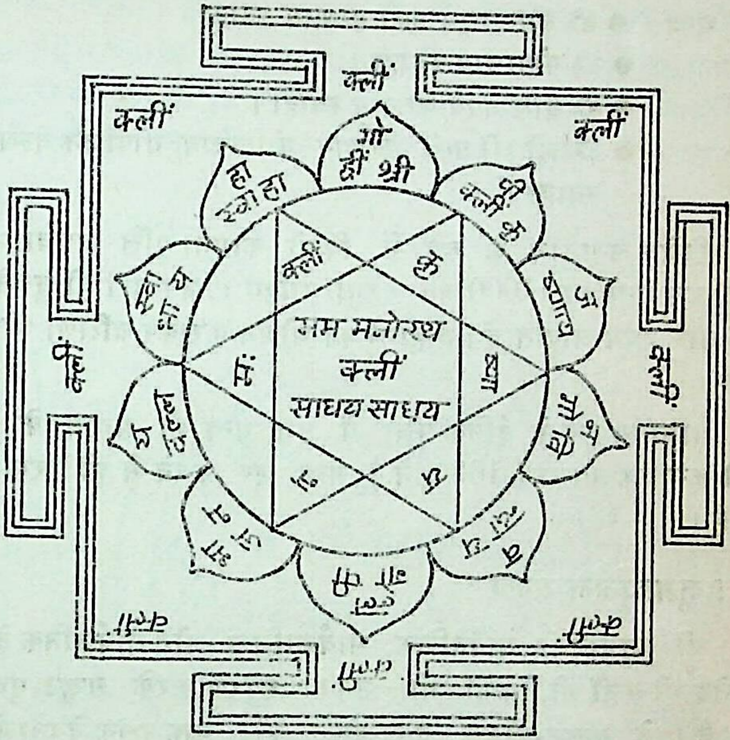

श्री सिद्ध गोपाल यन्त्र

यन्त्र-स्थापना के पश्चात् उसकी पूजा इस प्रकार की जानी चाहिए—सर्वप्रथम निम्नाङ्कित श्लोक पढ़ते हुए श्री गोपालजी का ध्यान करें और स्तुति समाप्त होने पर यन्त्र को नमस्कार करें—

नौमीड्यं तेऽभ्र वपुषे तडिताम्बराय,
गुञ्जावतंस परिपिच्छल सम्मुखाय।
वन्यस्रजे कमल वेत्र विषाण वेणु,
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय॥'

ध्यान-स्तुति के बाद यन्त्र को पञ्चामृत या गङ्गाजल से स्नान कराकर चन्दन, पुष्प, अक्षत, धूप-दीप और नैवेद्य अर्पित करें। तत्पश्चात् कलश पर घृत-दीप जलाकर, मनोयोग पूर्वक, पूर्ण श्रद्धा-विश्वास के साथ भगवान श्री बालकृष्णजी का स्मरण करते हुए इन मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र का जप प्रारम्भ करें—

मन्त्र—● ॐ बाल वपुषे क्लीं कृष्णाय स्वाहा।
● ॐ गोपालाय स्वाहा।
● ॐ बाल वपुषे कृष्णाय स्वाहा।
● ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन वल्लभाय स्वाहा।'

विशेष अनुष्ठान के रूप में, किसी कामना-पूर्त्ति अथवा सङ्कट के हेतु, इस मन्त्र का 11000 जप करना चाहिए। जप पूरा हो चुकने पर 1008 बार हवन-आहुति दें। ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा भी देनी चाहिए।

सामान्य रूप से दैनिक-पूजा में इस यन्त्र की साधना के लिए कम से कम एक माला (108 दाने) मन्त्र जप करने से भी परम लाभ होता है।

श्री हनुमत्पूजन-यन्त्र :

श्री हनुमानजी सार्वदेशिक, सार्वकालिक और सार्वजनिक देवता हैं। कोई भी कहीं भी, कभी भी—उनका स्मरण करके सङ्कट-मुक्त हो सकता है। वे सङ्कट-मोचन, दुःख-दलन और भक्त-रक्षक देवताओं की प्रथम पंक्ति में आसीन हैं। संसार में ऐसा कोई भी कार्य नहीं है, जिसे वे न कर सकें। वे शक्ति के पुञ्ज, अलौकिक गुणों के आगार, वेद-वेदाङ्गों के मर्मज्ञ-विद्वान, सङ्गीत के महारथी, अजेय-योद्धा, आजन्म-ब्रह्मचारी, महान योगी, परम सात्त्विक और आशुतोष देवता हैं। आबाल-वृद्ध उनका स्मरण करके अपने को सुरक्षित अनुभव करते हैं। साहस, पराक्रम, शौर्य और ओज-तेज के क्षेत्र में अद्वितीय होकर भी हनुमानजी बड़े सरल, दयालु और त्यागी हैं। उनकी अपनी कोई लालसा नहीं। वे सामान्य बानर-वेश में घूमते रहते हैं। किन्तु भक्त की पुकार पर वे यथा-अवसर कोई भी रूप धारण करके असम्भव को सम्भव बना देते हैं। सम्पूर्ण राम-कथा में हनुमानजी का चरित्र विजय-स्तम्भ की भाँति अपने

अस्तित्त्व से भक्तजनों को अभिभूत करता रहता है। यही नहीं, महाभारत के युद्ध में भी श्रीकृष्ण के संकेत पर उन्होंने अर्जुन की सहायता की थी। वे धन-वैभव सब कुछ प्रदान कर सकते हैं।

हनुमत-उपासना हेतु अनेक प्रकार की स्तुतियाँ, मन्त्र, कवच, काव्यात्मक भजन, पद, चालीसा, तुलसीकृत सुन्दरकाण्ड आदि प्रचलित हैं। उनकी उपासना के लिए तन्त्र-शास्त्र में हनुमत्पूजन-यन्त्र का विधान भी दिया है। यद्यपि हनुमत-उपासना की शास्त्रीय-पद्धति सहज-साध्य नहीं हैं, तो भी सामान्य साधक यदि निम्नलिखित विधि से व्यावहारिक रूप में उनकी उपासना और यन्त्र-पूजा करें, तो निश्चय ही लाभान्वित होंगे।

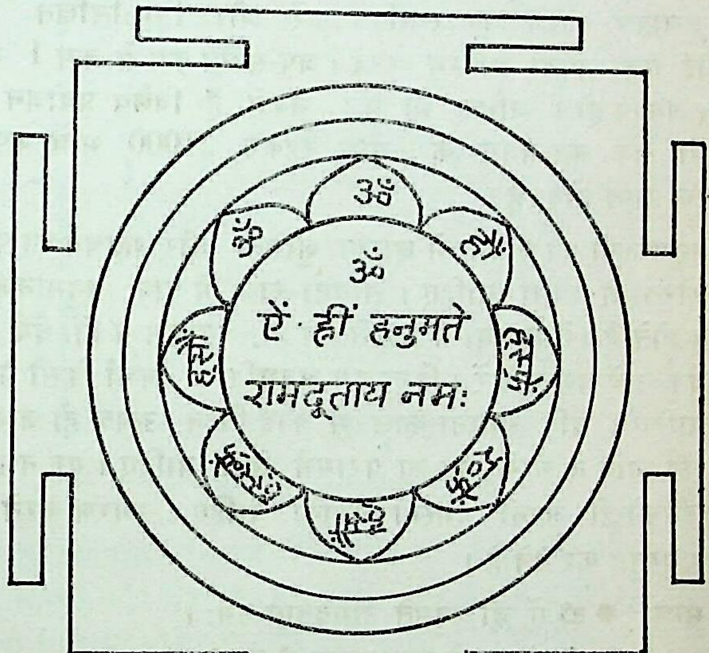

श्री हनुमत् यन्त्र

विधि—किसी भी मङ्गलवार के दिन ताम्रपत्र अथवा भोजपत्र पर हनुमानजी का यन्त्र बनाकर उसकी पूजा की जा सकती है। यन्त्र की रचना लाल चन्दन से करनी चाहिए और प्राण-प्रतिष्ठा के उपरान्त उसे

लाल वस्त्र के आसन पर ही स्थापित करना चाहिए। लाल रङ्ग हनुमानजी को बहुत प्रिय है। साधक के लिए भी आवश्यक है कि वह साधना-काल में लाल रङ्ग के वस्त्र धारण करे।

सर्वप्रथम इस स्तुति के द्वारा हनुमानजी का ध्यान करते हुए, यन्त्र को प्रणाम करें—

मनोजवं मारुततुल्यवेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठं।
वातात्मजं वानरयूथ मुख्यं, श्रीराम दूतं शरणं प्रपद्ये ॥

इसके पश्चात् गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य से यन्त्र की पूजा करें। पूजन की समस्त सामग्री लाल रङ्ग की होनी चाहिए। नैवेद्य में भी लाल मिष्ठान्न (गुड़ से बना हुआ) अर्पित करें। तदुपरान्त घी का दीपक जलाकर कलश पर स्थापित करें और निम्नलिखित मन्त्रों में से कोई एक जपना प्रारम्भ करदें। जप-संख्या कम से कम 1 माला प्रतिदिन अवश्य हो। अधिक भी कर सकते हैं विशेष प्रयोजन पर नौ दिनों तक व्रत-संयम के साथ रहकर 21000 मन्त्र जपने से तुरन्त फल प्राप्त होता है।

हनुमानजी की साधना में आस्था, शुचिता और ब्रह्मचर्य का पालन बहुत कठोरता से करना चाहिए। साधना-काल में प्रायः हनुमानजी आ उपस्थित होते हैं। ऐसी दशा में भयभीत न हों, व्याकुल न हों, धैर्य और विनयपूर्वक उन्हें प्रणाम करें। किन्तु इस अनुभूति की चर्चा किसी से नहीं करनी चाहिए। यदि साधना-काल में कोई विघ्न उत्पन्न हो जाय, तो साधना का त्याग न करके, गुरु का परामर्श लेना चाहिए। गुरु न हो तो हनुमानजी को ही अपनी समस्या बतानी चाहिए। स्मरण करते ही वे समाधान प्रस्तुत कर देते हैं।

मन्त्र—● ॐ ऐं ह्रीं हनुमते रामदूताय नमः।
● ॐ हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुँ फट्।
● ॐ हं पवननन्दाय स्वाहा।
● ॐ नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा।

प्रतिदिन जप समाप्ति पर इस स्तुति से यन्त्र को प्रणाम करना चाहिए—

नमस्ते नमस्ते महावायु सूनो, नमस्ते नमस्ते भविष्यत् विधातः।
नमस्ते नमस्ते सदाभीष्टद्वर, नमस्ते नमस्तेऽनिशं रामभक्तः ॥

श्री दत्तात्रेय यन्त्र :

भगवान दत्तात्रेय की गणना विष्णु के चौबीस अवतारों में की जाती है। पौराणिक-वृत्त के अनुसार ये महर्षि अत्रि और महासती अनुसूया के पुत्र हैं, और इनमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवताओं की शक्तियाँ केन्द्रित हैं। इस दिव्य प्रभाव के कारण दत्त स्वामी अति सामर्थ्यवान और भक्त-रक्षक देवता हैं।

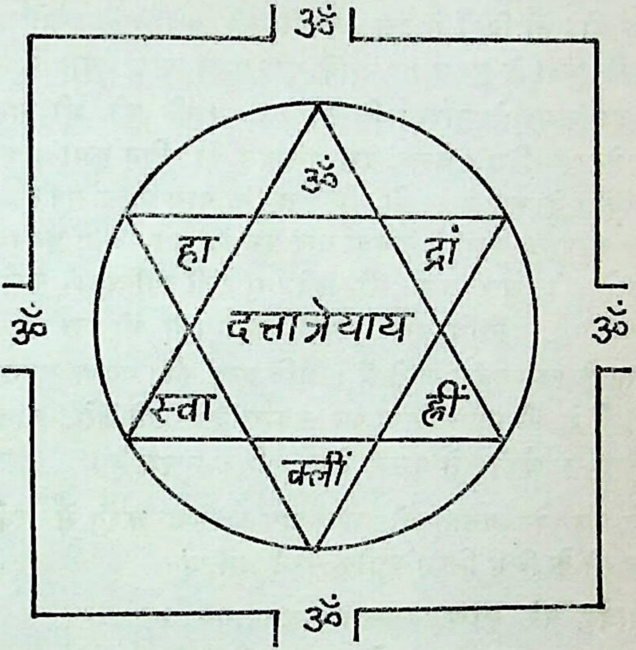

श्री दत्तात्रेय यंत्र

दत्त भगवान आडम्बर, वैभव और राजसिकता से सर्वथा परे, परम त्यागी, निस्पृह और सदा सन्तुष्ट रहने वाले हैं। वे कभी एक स्थान पर स्थिर या निष्क्रिय होकर विश्राम नहीं करते, वरन् अवधूत रूप से निरन्तर अखिल ब्रह्माण्ड में विचरण करते रहते हैं। दूरानुभूति शक्ति के माध्यम से वे भक्त की पुकार पर तत्क्षण उसके पास जा पहुँचते हैं। वे योग-विद्या के महान् ज्ञाता, अलौकिक-सिद्धियों के स्वामी और साक्षात् शिव हैं। इस तथ्य के सैकड़ों प्रमाण उपलब्ध हैं कि आस्थावान भक्तों को आज भी दत्त स्वामी के दर्शन प्राप्त होते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि वे बड़े दयालु, उदार, निस्पृह, क्षमाशील और आशुतोष देवता हैं। दत्तात्रेय-यन्त्र की साधना-उपासना करने वालों का अनुभव है कि इसके बड़े

रोचक, सुखद और चमत्कारी परिणाम थोड़ी ही अवधि में दृष्टिगोचर होनें लगते हैं।

विधि—किसी शुभ-मुहूर्त्त में ताम्रपत्र अथवा भोजपत्र पर दत्तात्रेय-यन्त्र की रचना करके उसकी विधिपूर्वक धूप-दीप से पूजा करके प्रतिदिन नीचे लिखी स्तुति और मन्त्र का पाठ करना चाहिए। यन्त्र को पूजा-स्थल पर श्वेत आसन पर प्रतिष्ठित करके नित्य उसकी आरती, पूजा और मन्त्र-जप के थोड़े ही दिनों में दत्त स्वामी की कृपा सुलभ हो जाती है। स्मरण रहे कि पूजा के समय या उसके कुछ पहले अथवा बाद में अचानक कोई कुत्ता आ जाय, तो उसका तिरस्कार न करके, जो भी सम्भव हो, उसे भोजन देना चाहिए। कुत्ता दत्त भगवान का प्रिय कृपा-पात्र है। वह उनके प्रधिनिधि के रूप में कभी भी भक्त के पास पहुँच सकता है। क्या पता कि वह सामान्य कुत्ता है अथवा दत्त प्रभु का दूत, अतः पूजा के समय आते हुए कुत्ते को भूल कर भी खदेड़ना नहीं चाहिए। कुत्ते, साधु, भिखारी, सन्यासी, अतिथि अथवा याचक के रूप में भी दत्त प्रभु साधना-काल में भक्त के पास पहुँच जाते हैं। यदि यन्त्र की रचना करना सम्भव न हो, तो कहीं से भी प्राप्त किया जा सकता है। उसे वैसे, ताम्रपत्र पर किसी कारीगर-स्वर्णकार से बनवा लेना अधिक उत्तम है।

यन्त्र-पूजा के पश्चात् और मन्त्र-जप आरम्भ करने से पूर्व दत्तप्रभु का ध्यान करने के लिए निम्न श्लोक पढ़ने चाहिएं—

दत्तात्रेय हरे कृष्ण, उन्मत्तानन्द दायकः।
दिगम्बर मुने बाल, पिशाच ज्ञानसागरः॥
दत्तात्रेय शिवं शान्तं, इन्द्रनीलनिभं प्रभुम्।
आत्मायारतं देवं, अवधूत दिगम्बरम्॥
ज्ञान योग निधिं विश्वगुरुं योगिजन प्रियम्।
भवतानुकम्पिनं सर्वं साक्षिणं सिद्ध सेवितम्॥
दत्तात्रेयो महायोगी, भगवान भूतभावनः।
चतुर्भुजो महाविष्णुः योग साम्राज्य दीक्षितः॥
जगदंकुर कन्दाय सच्चिदानन्द मूर्त्तये।
दत्तात्रेय योगीन्द्र चन्द्राय परमात्मनें॥

इन श्लोकों द्वारा दत्तप्रभु का ध्यान करने के पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों में से किसी एक का जप करना चाहिए। जप की संख्या कम से

कम एक माला प्रतिदिन (अथवा अधिक भी की जा सकती है) होनी चाहिए।

मन्त्र—● द्रां

● द्रां ॐ दत्तात्रेयाय नमः।
● द्रां दत्तात्रेयाय नमः।
● श्रीं ह्रीं क्लीं दत्तात्रेयाय स्वाहा।
● ॐ आं ह्रीं क्रौं एहि दत्तात्रेयाय स्वाहा।

जप समाप्ति के पश्चात् निम्नलिखित श्लोकों में से किसी एक को पढ़ते हुए दत्त भगवान की स्तुति करके पूजा का विसर्जन करना चाहिए।

स्तुति—आदौ ब्रह्मा मध्ये विष्णुः अन्ते देवः सदाशिवः।
मूर्त्तिमय स्वरूपाय, दत्तात्रेय नमोऽस्तुते॥
कर्पूर कान्ति देहाय, ब्रह्ममूर्त्ति धराय च।
वेद शास्त्र परिज्ञाय, दत्तात्रेय नमोऽस्तुते॥
जरा जन्म विनाशाय, देह शुद्धि कराय च।
दिगम्बर दयामूर्त्ति, दत्तात्रेय नमोऽस्तुते॥

विशेष—साधना-काल में सप्ताह में एक दिन (सोमवार को) किसी क्षुधार्त्त प्राणी को भोजन अवश्य कराना चाहिए। उसे भोजन देते समय यह स्तुति पढ़ें—

भिक्षाटनं गृहे ग्रामे, पात्रं हेममयं करे।
नाना स्वादमय भिक्षाः दत्तात्रेय नमोऽस्तुते॥

श्री सूर्य यन्त्र :

त्रिभुवन में अखिल सृष्टि को प्राण-शक्ति, चेतना, ऊर्जा और प्रकाश देने वाले एक मात्र देवता सूर्य भगवान हैं। उनकी किरणों से ही मनुष्य, जीव-जन्तु और पशु-पक्षी सब प्राणमय हैं। सूर्य-रश्मियों के अभाव में शरीर ओज-तेज से रहित, दुर्बल और रुग्ण हो जाता है। अतः शारीरिक-शक्ति और स्वस्थ-जीवन पाने के लिए सूर्य भगवान की उपासना की जाती है। प्रकारान्तर में यह भी धन-वैभव की उपासना है, कारण कि स्वस्थ-सबल शरीर ही धनार्जन कर सकता है। अतः समृद्धि-सम्पदा के लिए स्वस्थ शरीर आवश्यक है और शारीरिक स्वास्थ्य तथा शक्ति के लिए सूर्यदेव की कृपा आवश्यक है। इस प्रकार सूर्य-आराधना के द्वारा व्यक्ति तन, मन, धन, से समृद्ध हो जाता है। भारत में ही नहीं, विदेशों

में भी सूर्यदेव की महिमा सर्व-स्वीकृत है। लौकिक-दृष्टि से भी, यदि आध्यात्मिक-आस्था का अवलम्ब लेकर नियमित रूप से सूर्य-नमस्कार, धूप स्नान, अञ्जलि और अर्घ्य के साथ सूर्य-यन्त्र की उपासना की उपासना की जाय, तो निश्चित-रूपेण साधक को आरोग्य, सौन्दर्य और श्री-सम्मान की प्राप्ति होती है।

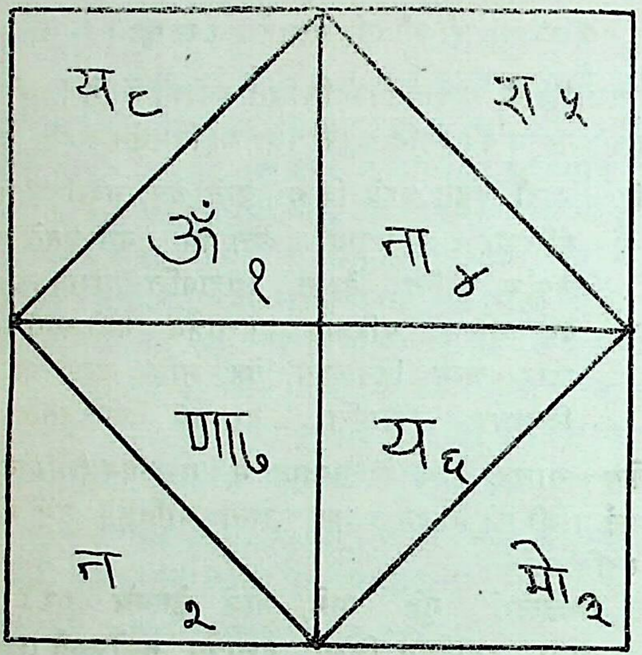

(श्री सूर्य-यन्त्र)

विधि—किसी भी रविवार को, शुभ-मुहूर्त्त में सूर्य-यन्त्र की रचना करें। यदि रवि-पुष्य योग का दिन हो तो विशेष उत्तम रहता है। सामान्यतः भोजपत्र पर लाल चन्दन से इस यन्त्र की रचना की जाती है। वैसे, ताम्र-पत्र पर भी उत्कीर्ण किया जा सकता है। कहीं से भी प्राप्त करके, उपयुक्त मुहूर्त्त में यन्त्र की प्राण-प्रतिष्टा कराकर उसको एकान्त पवित्र स्थान में स्थापित करके नियमित रूप से पूजा करनी चाहिए।

यन्त्र-पूजा का नियम यह है कि स्नानोपरान्त, पूजा-स्थल पर जाकर यन्त्र के सम्मुख आसन पर बैठें और इस श्लोक को पढ़ते हुए सूर्य-देवता का ध्यान करें—

ध्यान-स्तुति—

'भास्वद् रत्नाढ्य मौलिः स्फुरदधरश्चारु रञ्जित चारुकेशो।
भास्वानयो दिव्म तेजाः कर कमलयुतः स्वर्णवर्णः प्रभाभिः।।
विश्वाकाशावकाशो ग्रहगणसहितौ भाति यश्चोदयाद्रौ।
सर्वानन्द प्रदाता हरिहर नमितः पातु माम् विश्वचक्षुः।।'

इसके उपरान्त यन्त्र को चन्दन, पुष्प, धूप; दीप और नैवेद्य अर्पित करें। तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र का जप करें–

जप-मन्त्र— ● ॐ घृणिः सूर्य आदित्यः ॐ।
● ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः।
● ॐ आदित्याय विद्महे दिवाकराय
धीमहि तन्नो सूर्यः प्रचोदयात्।

जप की संख्या कम से कम 1 माला (108 दाना) प्रतिदिन होनी चाहिए। सुविधानुसार अधिक भी कर सकते हैं। लेकिन जो भी नियम बनाया जाय, उसका सदैव पालन करना चाहिए। साधना आरम्भ करने के पूर्व दैनिक-मन्त्र जप-संख्या, कुल जप-संख्या, निश्चित अवधि, आहुति-संख्या और दान-पुण्य का सङ्कल्प कर लेने से अनिश्चिता की स्थिति नहीं आने पाती और साधक पूरी प्रतिबद्धता के साथ साधना-रत रहता है।

जप के समय कलश पर घृत-दीप अवश्य ही जलाये रखना चाहिए। मन्त्र-जप में रुद्राक्ष, तुलसी अथवा चन्दन की माला प्रयोजनीय होती है। यदि 7000 मन्त्र जप का सङ्कल्प करके एक सप्ताह में यह साधना पूरी की जा सके, एक रविवार को जप प्रारम्भ करके अगले रविवार को हवन-पूजन के साथ उसका समापन किया जाय, तो विशेष लाभ होता है।

स्मरण रहे कि सूर्योपासना सदैव प्रातः सूर्योदय के साथ ही प्रारम्भ की जाती है। साधक को पूजा के समय पूर्व की ओर मुँह करके बैठना चाहिए। यदि खुली जगह हो, जहाँ से सूर्यदेवता के दर्शन—पूरे जप-काल में होते रहें, तो विशेष उत्तम होता है।

जप-समाप्ति के पश्चात् प्रतिदिन, पूजा-विसर्जन के समय इस स्तुति के साथ यन्त्र को सूर्यदेवता को प्रणाम करना चाहिए।

पद्मासनो पद्मकरो द्विबाहु,
पद्मद्युति सप्त तुरङ्ग वाहनः।
दिवाकरो लोक गुरुः किरीटी,
मयि प्रसादं विदधातु देवः।।

श्री महामृत्युञ्जय यन्त्र :

जैसा कि इस यन्त्र का नाम है, यह मृत्यु को जीतने की सामर्थ्य रखता है। इसे मृत्युञ्जयी नाम देने के पीछे यह भाव निहित है कि इस यन्त्र की साधना करने वाले को आरोग्य, स्वास्थ्य और दीर्घ-जीवन की प्राप्ति होती है।

महामृत्युञ्जय यन्त्रमिदम्

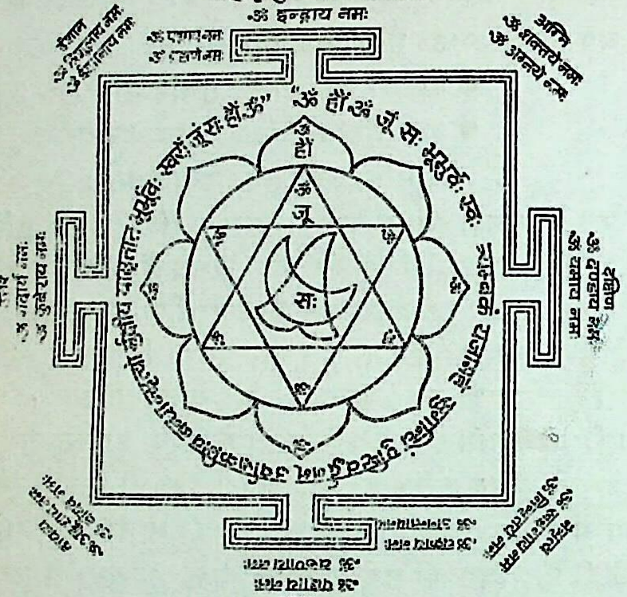
ॐ इन्द्राय नमः
ईशान
ॐ त्रिशूलाय नमः
ॐ ईशानाय नमः
अग्नि
ॐ शक्तये नमः
ॐ अग्नये नमः
"ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः ... जूं सः हौं ॐ"
हौं
जूं
सः
दक्षिण
ॐ दण्डाय नमः
ॐ यमाय नमः
ॐ कुबेराय नमः

संसार में व्यक्ति के लिए बड़े से बड़ा सुख-सौभाग्य उसका रोग-रहित शरीर है। ऐसा ही जीवन आनन्दमय होता है। रोगी शरीर न खाने-पीने का सुख पाता है, न पहनने का, न कहीं की यात्रा करने और न किसी प्रकार के सन्त-समागम का आनन्द ही ले पाता है। वह निरन्तर रोग-शैय्या पर पड़ा, तन-मन की व्यथा से जर्जर होता रहता है। ऐसी स्थिति में उसके पास चाहे जितनी सम्पदा हो, व्यर्थ ही प्रतीत होती है। अतः श्री-सम्पदा का सुखोपभोग करने के लिए स्वस्थ-नीरोग शरीर होना आवश्यक है। स्वस्थ-शरीर के लिए, रोग-मुक्ति परम आवश्यक है। अतः जटिलतम रोगों के आक्रमण से, जब प्राण-सङ्कट उत्पन्न हो जाता है, तब उससे त्राण पाने के लिए, आस्थावान ज्ञानीजन महामृत्युञ्जय-साधना की शरण लेते हैं। यद्यपि इस यन्त्र का प्रभाव केवल रोग-शमन तक ही है, किन्तु रोग-मुक्ति ही भौतिक-सुखों का प्रमुख आधार है, अतः लक्ष्मी-साधना

के अन्तर्गत इसकी चर्चा प्रासङ्गिक है। कारण कि लक्ष्मी होने पर भी, यदि व्यक्ति स्वस्थ, सबल, नीरोग और दीर्घायु नहीं है, तो वह धन-सम्पत्ति का उपभोग कर ही नहीं सकता। उसके लिए सारा वैभव व्यर्थ रहता है।

महामृत्युञ्जय-यन्त्र के देवता भगवान शिव हैं, जो संसार की समस्त औषधियों के स्वामी, मृत्यु के नियन्त्रक और आरोग्य तथा स्वास्थ्य के प्रदाता हैं। अपनी इसी महान क्षमता के कारण ये देवाधिदेव, महादेव कहे जाते हैं। अतः किसी भी शारीरिक क्लेश, रोग और भय से मुक्ति के लिए भगवान-शिव के साकार रूप इस मृत्युञ्जय-यन्त्र की साधना की जाती है।

यद्यपि शास्त्रीय-पद्धति से इस यन्त्र की साधना बहुत जटिल है। वह लगभग दुःसाध्य प्रतीत होती है। किन्तु मनीषियों ने अपने अनुभव के आधार पर प्रतिपादित किया है कि सरल व्यावहारिक विधि से इसका अनुष्ठान करने पर भी पर्याप्त लाभ होता है। इस यन्त्र की सरलतम साधना-विधि इस प्रकार है—

विधि— शिवरात्रि के दिन अथवा किसी भी सोमवार को शुभ-मुहूर्त्त में चाँदी, ताँबे अथवा भोजपत्र पर अष्टगन्ध से इस यन्त्र की रचना करें। यदि उपलब्ध हो तो कहीं से बना-बनाया यन्त्र भी प्राप्त कर सकते हैं। उसके पश्चात् यन्त्र की प्राणप्रतिष्ठा करा लें। कोई भी पण्डित-पुरोहित यह कार्य कर सकता है।

प्राण-प्रतिष्ठा के पश्चात् यन्त्र को श्वेत-चन्दन से स्नान कराकर उसे श्वेत आसन पर प्रतिष्ठित करें। तदनन्तर निम्नलिखित स्तुति द्वारा भगवान शिव का ध्यान करें—

ध्यान-स्तुति—

'चन्द्रार्काग्नि विलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वायान्तः स्थितम्,
मुद्रा पाश मृणाल सूत्र विलसत्पाणिं हिमांशु प्रभम्।
कोटीन्दु प्रगलत् सुधाप्लुत तनुं हारादिभूषोज्ज्वलम्,
कान्तं विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावये॥'

प्रणामोपरान्त चन्दन, वेलपत्र, मदार-पुष्प, धतूर-पुष्प-फल, गुग्गुल की धूप और दीप आदि से यन्त्र की पूजा करके मृत्युञ्जय-मन्त्र का जप प्रारम्भ करना चाहिए। जप संख्या सवा लाख है और जप समाप्ति पर

हवन-दान करना भी आवश्यक है। सामान्य रूप से यदि दैनिक-पूजा में भी इस मन्त्र का 5 या 11 माला नित्य जप किया जाय, तो बहुत लाभ होता है।

इस मन्त्र के जप के लिए रुद्राक्ष की माला सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। पूर्ण संयम, आस्था और शुद्धता के साथ की गई यह साधना कभी व्यर्थ नहीं होती, यह एक अनुभूत और अकाट्य सत्य है।

मृत्युञ्जय-जप के तीन सरलतम रूप इस प्रकार हैं—

मन्त्र—● ॐ ह्रौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः

● ॐ त्र्यम्बकं भजामहे सुगन्धि पुष्टि वर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

● ॐ जूं सः मा पालय पालय सः जूं ॐ।

● ॐ ह्रौं जूं सः (.... .. रोगी का नाम........) जीवय जीवय
पालय पालय सः जूं ह्रौं ॐ।

इस यन्त्र की साधना के समय (वैसे सभी यन्त्रों की साधना में) साधक को परम सात्त्विक जीवन व्यतीत करना चाहिए। काम-क्रोधादि से मुक्त परम शुचिता के साथ फलाहार अथवा अल्पाहार पर निर्वाह करते हुए, निरन्तर भगवान शिव के चिन्तन में लीन रहना चाहिए। भूमि-शयन दान-पुण्य, परोपकार और श्रद्धापूर्वक मन्त्र-जप यह सफलता के निश्चित-साधन हैं।

प्रतिदिन, जप पूरा होने के पश्चात् इस स्तुति के साथ यन्त्र को नमस्कार करना चाहिए—

अघोरेभ्यो अथ अघोरेभ्यो घोर घोर तरेभ्यः।
सर्वतः सर्व सर्वेभ्यो नमोस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥
मृत्युञ्जय त्र्यम्बक समाशिव नमस्ते नमस्ते॥

अथवा

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणम्।
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनांपतिम्॥
वन्दे सूर्य शशांङ्क वह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियम्।
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम्॥

अथवा

● ॐ अघोराय नमः।

● ॐ पशुपतये नमः।

- ॐ शिवाय नमः।
- ॐ विरूपाय नमः।
- ॐ विश्वरूपाय नमः।
- ॐ भैरवाय नमः।
- ॐ त्र्यम्बकाय नमः।
- ॐ शूलपाणये नमः।
- ॐ कपर्दिने नमः।
- ॐ ईशाय नमः।
- ॐ महेशाय नमः।

यन्त्र की पूजा प्रारम्भ करने से जप समाप्ति तक कलश पर घृत-दीप निरन्तर जलता रहना चाहिए।

श्री नवग्रह यन्त्र :

वर्त्तमान भौतिक-युग के जड़-विज्ञान ने आध्यात्मिक-मान्यताओं, पौराणिक-सन्दर्भों और प्राचीन भारतीय-सांस्कृतिक अवधारणाओं की की उपेक्षा करके सब कुछ यथार्थ की कसौटी पर परखने का अभियान चलाया है। यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र और योग-साधना को वह मनीषियों का पाखण्ड, कपोल-कल्पना और भ्रम-जाल कहता है। उसकी दृष्टि में जो कुछ सत्य है, वह यही है कि—मशीनी-सभ्यता ही यथार्थ है, इसके अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नहीं।

पिछली दो शताब्दियों से यह यथार्थवादी विचारधारा निरन्तर प्रवहमान है और अब तक देश का, विश्व का बहुत बड़ा भाग—मानव समुदाय इससे प्रवाहित हो चुका है। उसकी प्रगति का एक दुष्प्रभाव भी रहा है—भारतीय आध्यात्मिक-सन्दर्भ अविश्वसनीय माने जाते रहे हैं। किन्तु वास्तविकता का अपना पृथकक् अस्तित्त्व होता है और समय पर वह अभेद्य-आवरणों को भी चीर कर प्रकाशित हो जाता है। भारतीय-अध्यात्म ने भी अँगड़ाई ली है और आज वह कल्पनातीत रूप में लोकप्रियता और आस्था अर्जित कर रहा है। योग, गुप्त-विद्याएं तथा अध्यात्म आज सभ्य-समाज को अपनी प्रामाणिकता से चमत्कृत कर रहे हैं। इस प्रसङ्ग में नवग्रहों को भी सर्वत्र मान्यता प्राप्त हो चुकी है। आज कट्टर भौतिक-विज्ञानी भी स्वीकार कर रहे हैं कि आकाश-मण्डल में स्थित (ब्रह्माण्ड में पारस्परिक गुरुत्त्वाकर्षण-शक्ति से परस्पर सम्बद्ध और

सन्तुलित) समस्त नक्षत्र और ग्रह सृष्टि को प्रभावित करते हैं। नवग्रहों का प्रभाव मानव-जीवन पर विशेष रूप से पड़ता है और इन ग्रहों की रश्मियाँ अपने वर्ण स्पर्श के द्वारा मानव के रूप, रङ्ग, स्वभाव, स्वास्थ्य, जीवन और भाग्य-भविष्य को क्षण-प्रति-क्षण प्रभावित करती रहती हैं, यह आज का सर्व-सम्मत वैज्ञानिक तथ्य है।

८	१	६
३	ह्रीं रवये ५	७
४	९	२

(श्री सूर्य यन्त्र)

ग्रहों की संख्या 9 है—सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु। मानव-जीवन (बल्कि अखिल सृष्टि) की प्रत्येक चर्या और घटना में इन ग्रहों का विकिरणीय प्रभाव निहित रहता है। धार्मिक-दृष्टि से ये सभी ग्रह देवता हैं, अतएव इनकी पूजा-स्तुति करके इन्हें सदैव अनुकूल बनाये रखना चाहिए। ज्योतिष-शास्त्र के मतानुसार इन ग्रहों का स्थिति के अनुसार प्रभाव होता है—कभी अनुकूल, कभी प्रतिकूल। प्रतिकूल ग्रहों को अनुकूल बनाने के लिये अनेक प्रकार के पूजन-विधान तथा रत्न-धारण के परामर्श दिये गये हैं और यह आश्चर्यजनक सत्य है कि रत्न-धारण तथा पूजन से ग्रहों का प्रभाव परिवर्त्तित हो जाता है। अस्तु, ग्रहों का प्रभाव हमारे जीवन के विभिन्न पक्षों—स्वास्थ्य, यश, मान, आर्थिक-समृद्धि, मानसिक स्थिति आदि—को परिवर्त्तित करता

रहता है। व्यक्ति को सुखी, धन-सम्पन्न अथवा आपदा-ग्रस्त बनानें में ग्रहों की प्रमुख भूमिका होती है। अत: सम्पत्ति-कामी जनों को, धन-वैभव की की लालसा रखने वालों को, लक्ष्मी की कृपा चाहने वाले उपासकों को नवग्रहों की उपासना अवश्य करनी चाहिए। इन ग्रहों की अनुकूलता उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में श्री-समृद्धि-सम्पन्न और सुरक्षित रखती है। जहाँ कुपित होने पर ये ग्रह अर्थ-नाश का द्वार खोलते हैं, वहीं प्रसन्न होने पर धनागम के अनन्त स्रोत भी प्रदान करते हैं। साधक के लिए यह आवश्यक होगा कि वह किसी पण्डित-पुरोहित से अपनी जन्म-कुण्डली का विवेचन कराले और जब जिस अवधि में, जो ग्रह प्रतिकूल हो, उसकी आराधना विशेष रूप से करें। वैसे, दैनिक-पूजा में भी प्रतिदिन नवग्रह-साधना की जा सकती है। एक विकल्प यह भी है कि प्रतिदिन, उसके स्वामी-ग्रह की पूजा की जाय। दिवसानुसार ग्रहों का स्वामित्त्व-क्रम इस प्रकार है—

रविवार— यह दिन नवग्रहों के अध्यक्ष भगवान सूर्यदेव का है। यदि उनकी कृपा की कामना है, तो नवग्रह-साधना में सूर्यदेव को वरीयता देते हुए रविवार के दिन विशेष रूप से उनकी पूजा करनी चाहिए।

सोमवार—यह चन्द्रदेव का दिन है। चन्द्र-ग्रह की पूजा के लिए यह विशेष प्रभावी दिवस माना गया है।

मङ्गलवार—इस दिवस का प्रभाव मङ्गल-ग्रह की उपासना के लिए उत्तम और उपयुक्त होता है।

बुधवार—बुध-ग्रह की उपासना के लिए इस दिन को प्रमुखता दी गई है।

बृहस्पतिवार—देव-गुरु बृहस्पतिदेव की आराधना के लिए गुरुवार का दिन श्रेष्ठ माना जाता है।

शुक्रवार—श्री सम्पन्नता, कला, सौख्य, सौन्दर्य और सम्मान के स्वामी शुक्रदेव की पूजा शुक्रवार को करने से विशेष फल प्राप्त होता है।

शनिवार--शनिदेव की पूजा के लिए शनिवार का दिन उत्तम होता है।

राहु—राहु-पूजा के लिए बुधवार की रात्रि श्रेष्ठ होती है।

केतु--केतु-ग्रह की आराधना रविवार को करनी चाहिए।

मनीषियों ने जहाँ प्रत्येक ग्रह की पूजा के पृथक्-पृथक् यन्त्र और नियम बनाकर विस्तार से उनका विवेचन किया है, वहीं जन-सामान्य

की सुविधा के लिए संक्षिप्त-साधना के रूप में नवग्रह-यन्त्र की रचना की है। इस यन्त्र में सभी नवग्रहों की शक्तियाँ सन्निहित हैं, और इसकी पूजा करनें से उनकी सम्मिलित कृपा प्राप्त होती है। इनकी पूजा करते हुए, यदि प्रतिदिन ग्रहविशेष की (दिवसानुसार) पूजोपासना की जाय तो विशेष प्रभाव होता है। यह यन्त्र भी ग्रहों का शक्ति-केन्द्र है। इस यन्त्र-मन्दिर में सभी ग्रह यथास्थान विराजमान रहते हैं और यन्त्र साधक पर कृपालु होकर अपने दुष्प्रभाव का शमन कर देते हैं।

विधि—इस यन्त्र की रचना भोजपत्र अथवा ताम्रपत्र पर की जाती है। यन्त्र रचना और स्थापना के लिए रवि-पुष्य योग विशेष उत्तम रहता है, वैसे किसी भी शुभ मुहूर्त्त में यह कार्य किया जा सकता है। यन्त्र-रचना हो चुकने पर उसे प्राण-प्रतिष्ठित कराकर, कहीं एकान्त पवित्र स्थान में, स्वच्छ आसन पर स्थापित करना चाहिए। यन्त्र-स्थापना के पश्चात् नवग्रहों की स्तुति में यह श्लोक पढ़ते हुए उनका ध्यान करें—

ब्रह्मा मुरारिः त्रिपुरान्तकारी, भानुः शशिः भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनि राहु केतवः, सर्वग्रहा शान्तिकरा भवन्तु॥

इसके पश्चात् चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य से यन्त्र की पूजा करें। पूजनोपरान्त जप प्रारम्भ करना चाहिए। जप के लिए रुद्राक्ष की माला विशेष उत्तम होती है। यदि यह उपलब्ध न हो तो चन्दन अथवा तुलसी की माला भी प्रयुक्त की जा सकती है। नीचे नवग्रहों के पृथक्-पृथक् मन्त्र दिये जा रहे हैं। सामान्य स्थिति में क्रमशः सभी मन्त्रों को 1-1 बार जपकर माला की एक-एक मणि (दाना) सरकायें। विशेष स्थिति में, ग्रहविशेष की कृपा-प्राप्ति के लिए उसी के मन्त्र की एक या इससे अधिक माला जप करें। यह भी हो सकता है कि दिवस-क्रम से ग्रहविशेष के मन्त्र की एक माला नित्य जप किया जाय। ऐसी स्थिति में उस ग्रह का मन्त्र जपने के पूर्व उसका ध्यान, उसकी स्तुति कर लेनी चाहिए। पण्डित, पुरोहित अथवा ज्योतिषी-जन सरलता से बता देते हैं कि इस समय किस ग्रह की उपासना विशेष रूप से आवश्यक है। तदनुकूल साधना करने से यथेष्ट लाभ होता है। प्रत्येक ग्रह की स्तुति तथा मन्त्र इस प्रकार हैं—

सूर्य-ग्रह की ध्यान-स्तुति—

भास्वद रत्नाढ्य मौलिः स्फुरदधर चारु रञ्जित चारु केशो,
भास्वान यो दिव्य तेजाः कर कमलयुतः स्वर्ण वर्ण प्रभाभिः।

विश्वाकाशावकाशो ग्रहगण सहितो भाति यश्चोदयाद्रौ,
सर्वानन्द प्रदाता हरिहर नमितः पातु मा विश्वचक्षुः ॥

मन्त्र— ● ॐ घृणिः सूर्यं आदित्य ॐ ।
● ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः ।

जप-संख्या—7000

चन्द्र-ग्रह की ध्यान-स्तुति—

दधिशंखं तुषाराभं क्षीरोदार्णव सम्भवम् ।
नमामि शशिनं सोमं शम्भोर्मुकुट भूषणम् ॥

मन्त्र—ॐ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्राय नमः ।

जप-संख्या—11000

मङ्गल-ग्रह की ध्यान-स्तुति—

धरणी गर्भ सम्भूतं विद्युत्कान्ति समप्रभं ।
कुमारं शक्तिहस्तं च मङ्गलं प्रणमाम्यहम् ॥

मन्त्र—ॐ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः ।

जप-संख्या—10,000

बुध-ग्रह की ध्यान-स्तुति—

प्रियंगु कलिका श्यामं, रूपेणा प्रतिमं बुधं ।
सौम्यं सौम्य गुणोपेतं, तं बुधं प्रणमाम्हम् ॥

मन्त्र— ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः ।

जप-संख्या—4000

बृहस्पति-ग्रह की ध्यान-स्तुति—

देवानां च ऋषीणां च गुरुं काञ्चन सन्निभं ।
बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम् ॥

मन्त्र—ॐ ग्रां ग्रीं ग्रौं सः गुरुवे नमः ।

जप-संख्या—29000

शुक्र-ग्रह की ध्यान-स्तुति—

हिम कुन्दं मृणालाभं, दैत्यानां परमं गुरुम् ।
सर्व शास्त्र प्रवक्तारं, भार्गवं प्रणमाम्यहम् ॥

मन्त्र—ॐ द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्राय नमः ।

जप-संख्या—16000

शनि-ग्रह की ध्यान-स्तुति—

नीलाञ्जनं समाभासं, रविपुत्रं यमाग्रजम् ।
छायामार्त्तण्ड सम्भूतं, तं नमामि शनैश्चरम् ॥

मन्त्र—● ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनैश्चराय नमः ।
● ॐ शं शनैश्चराय नमः ।

जप-संख्या—33000

राहु-ग्रह की ध्यान-स्तुति—

अर्द्धकायं महावीर्यम्, चन्द्रादित्य विमर्दनम् ।
सिंहिका गर्भ सम्भूतं, तं राहु प्रणमाम्यहम् ॥

मन्त्र—● ॐ रां राहवे नमः ।
● भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः ।

जप-संख्या—18000

केतु-ग्रह की ध्यान-स्तुति—

पलाशपुष्पं सङ्काशं, तारका ग्रह मस्तकम् ।
रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं, तं केतुं प्रणमाम्यहम् ॥

मन्त्र—● ॐ कें केतवे नमः ।
● ॐ स्रां स्रीं स्रौं सः केतवे नमः ।

जप-संख्या—17000

इस प्रकार नवग्रहों की आराधना करने से जीवन की भौतिक-बाधाएं दूर हो जाती हैं । आध्यात्मिक और भौतिक-जड़-विज्ञान दोनों ने मुक्त-कण्ठ से स्वीकार किया है कि आकाश-स्थित नवग्रहों की रश्मियों का स्पर्श-प्रभाव मानव-जीवन को निरन्तर प्रभावित करता रहता है । इनकी अनुकूलता जितनी पोषक और सुखद होती है, प्रतिकूलता उतनी ही घातक, मारक और पीड़ादायिनी होती है । अतः पूजा-अर्चना के द्वारा यदि ग्रहों की कृपा-प्राप्ति करली जाय, तो जीवन में स्वास्थ्य, सौख्य और श्री-सम्पदा का अभाव नहीं रहता । लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए, धन-समृद्धि के लिए नवग्रहों की कृपा परम आवश्यक मानी जाती है । कारण कि इनका प्रकोप विश्व-वैभव को भी नष्ट कर सकता है । अतः सुरक्षा, कल्याण और समृद्धि के लिए नवग्रहों कका पूजन अवश्य करना चाहिए ।

श्री सिद्ध महेश्वर यन्त्र :

भगवान शिवजी का एक नाम महेश्वर भी है । उनके इस नाम से प्रचलित यन्त्र को बहुत ही प्रभावशाली और सिद्धि-प्रदायक माना गया

है। प्राचीन ग्रन्थों में इस यन्त्र के अन्य नाम भी प्राप्त होते हैं, किन्तु वे सभी शिव के पर्यायवाची हैं। इस प्रकार यह यन्त्र शिवोपासना से ही सम्बन्ध रखता है। इसके प्रत्येक वर्ग, अक्षर और रेखा-कोण में शिवजी का वास है। इसे विधि पूर्वक निर्मित करके पूजा की जाय तो अर्थ-सङ्कट से मुक्ति मिल जाती है। धन-सम्पदा और सफलता-सुरक्षा प्रदान करने में यह यन्त्र अत्यन्त प्रभावी माना गया है।

विधि—किसी शुभ-मुहूर्त्त में, सोमवार के दिन ताम्रपत्र पर अथवा भोजपत्र पर लाल चन्दन अथवा अष्टगन्ध से इस यन्त्र की रचना करें। ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण किया जाय, तो बाद में शुद्ध जल से धोकर उसे अष्टगन्ध अथवा केसर, गोरोचन, कपूर या लाल चन्दन से लेपित कर देना चाहिए। ध्यान रहे कि यन्त्र-रचना और पूजन यह सभी कृत्य सोमवार को ही, स्नानोपरान्त पूर्ण शुचिता और आस्था के साथ, शुद्ध एकान्त स्थान में किये जाते हैं।

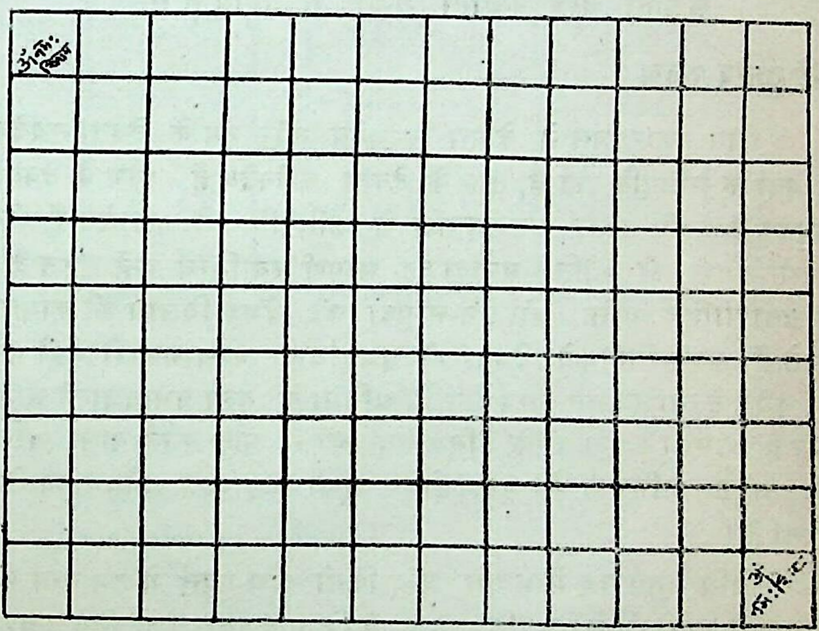

(श्री सिद्धमहेश्वर यन्त्र)

सर्वप्रथम यन्त्र को पवित्र जल (पञ्चामृत हो तो अत्युत्तम) से स्नान कराकर श्वेत आसन पर प्रतिष्ठित करें। तत्पश्चात् श्वेत चन्दन, पुष्प, धूप, दीप आदि से उसकी पूजा करनी चाहिए। पूजनोपरान्त कलश

पर घी का दीपक जला लें और मन्त्र-जप प्रारम्भ करदें। जप-संख्या कम से कम एक माला नित्य और फिर जैसी सामर्थ्य-सुविधा हो, जप नित्य नियमित रूप से करना चाहिए। यन्त्र की पूजा और मन्त्र जप दैनिक रूप में करते रहने के साथ-साथ प्रति सोमवार को व्रत रखना चाहिए। यथा-सम्भव उस दिन किसी गौ, ब्राह्मण अथवा दीन-दुखी को कुछ भोजन भी कराना चाहिए।

ध्यान-स्तुति—

कर्पूर गौरं करुणावतारं, संसारसारं भुजगेन्द्र हारं।
सदा बसन्तं हृदयारविन्दे, भवं भवानी सहितं नमामि॥

मन्त्र—ॐ नमः शिवाय शुभं कुरु नमः शिवाय ॐ।

जपोपरान्त यन्त्र को प्रणाम करते हुए यह श्लोक पढ़ना चाहिए--

यो ददाति शतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभं।
खलानां दण्ड कृद्यौसो शङ्करः शं तनोतु मे॥

श्री कुबेर यन्त्र :

जिस प्रकार जल से देवता वरुणदेव और रस के देवता सूर्यदेव हैं, वर्षा के अधिपति इन्द्र हैं, ताप के देवता अग्निदेव हैं, प्राण के देवता वायुदेव हैं, उसी प्रकार धन-सम्पत्ति के अधिपति श्री कुबेरदेव हैं और समस्त संसार की भौतिक सम्पदा का सम्पूर्ण स्वामित्त्व इन्हें प्राप्त है। दरिद्रता-पीड़ित व्यक्ति, जो धन-सम्पदा की, वैभव-विलास की कामना रखते हैं, उनके लिए कुबेर देवता की पूजा बहुत कल्याणकारी कही गई है। कुबेर देवता का यह यन्त्र उनकी प्रतिमा के तुल्य प्रभावशाली माना गया है। इसकी रचना करके, नियमित रूप से पूजा करने वाला व्यक्ति दरिद्रता के अभिशाप से मुक्त होकर सुखी व सम्पन्न जीवन व्यतीत करता है।

विधि—नवरात्र में अथवा अन्य किसी शुभ-मुहूर्त्त में इस यन्त्र की रचना की जाती है, किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि मङ्गलवार का दिन अवश्य हो। मङ्गलवार की रात्रि में (आधी रात) स्नान करके लाल वस्त्र पहन कर, भोजपत्र पर अथवा ताम्रपत्र पर, इस यन्त्र की रचना करें। रचना में लाल चन्दन, गौरोचन, कस्तूरी, आदि से युक्त अष्टगन्ध की स्याही और अनार की कलम (पारिजात हो तो अति उत्तम) प्रयुक्त होती है।

यन्त्र तैयार हो जाने पर पश्चिम की ओर मुँह करके बैठें, यन्त्र को लाल आसन पर स्थापित करें, उसे लाल चन्दन व लाल पुष्प से पूजें, फिर धूप, दीप, नैवेद्य अर्पित करें और तत्पश्चात् कुबेर-मन्त्र का जप आरम्भ करें। प्रथम रात्रि को 5000, फिर नित्यप्रति 1000 मन्त्र जपें। इस प्रकार दो लाख जप पूरा हो चुकने पर हवन और दान करें। प्रारम्भिक दिवस में भी कुमारी कन्या को भोजन कराकर दक्षिणा दें। यह मन्त्र-साधना दरिद्रता-निवारण में अति प्रभावशाली सिद्ध हुई है।

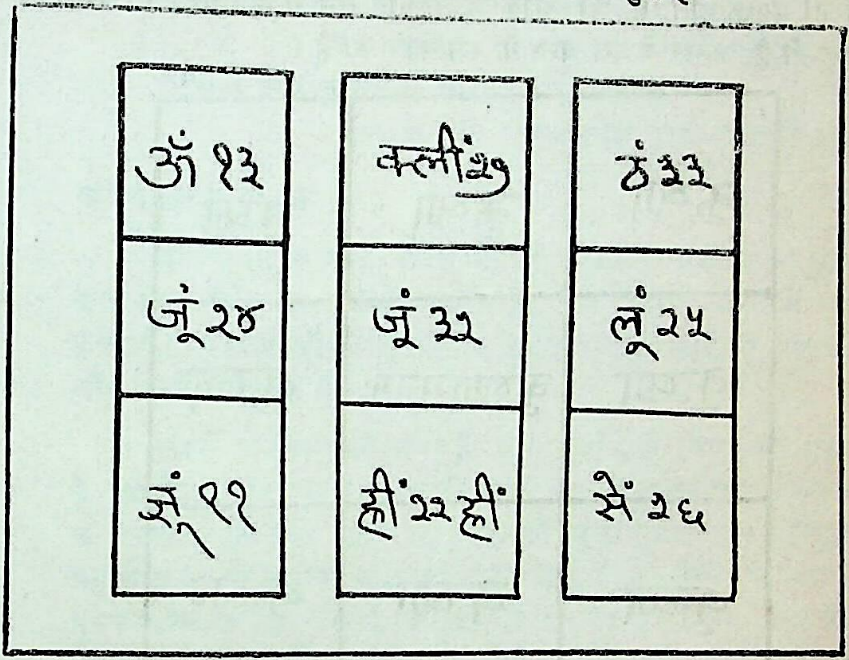

ॐ १३	क्लीं २७	ठं ३३
जूं २४	जूं ३२	लूं २५
स्रूं ११	ह्रीं २२ ह्रीं	सें २६

(श्री कुबेर यन्त्र)

ध्यान स्तुति—श्री कुबेराय नमः।

जप-मन्त्र—ॐ श्री नमः।

जप समाप्ति पर स्तुति—

कुबेर त्वं धनाधीशं, गृहे कमला स्थिता।
तां देवीं प्रेषया त्वंच, मद्गृहे ते नमो नमः॥

श्री सर्व सिद्धि यन्त्र :

यह यन्त्र भी कृष्णोपासना से सम्बन्धित है। लक्ष्मी-प्राप्ति तथा जीवन में अन्य प्रकार की भौतिक-समृद्धि के लिए यह यन्त्र साधक की

कामना-पूर्त्ति करने में प्रसिद्ध है। भौतिक अथवा आध्यात्मिक जो भी रुचि, आकांक्षा, आवश्यकता और समस्या हो, उसके समाधान में इस यन्त्र की पूजा चमत्कारी प्रभाव दिखाती है।

विधि—श्रीकृष्ण-लक्ष्मी-यन्त्र के प्रसङ्ग में वर्णित पूजन-विधि इसके लिए भी उपयोगी और अनुकूल रहती है, कारण कि दोनों ही यन्त्रों के अधिपति भगवान श्रीकृष्ण हैं। उन्हीं के प्रतीक रूप ये दोनों यन्त्र निर्मित किये जाते हैं। अतः ठीक वही सारी व्यवस्था, विधि-विधान और नियम इसमें भी प्रयुक्त होते हैं, जो श्रीकृष्ण-लक्ष्मी यन्त्र में है। मन्त्र भी दोनों का एक ही है, अन्तर केवल यन्त्र के रूपाकार का है।

कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण
कृष्ण	कृष्णायनमः	कृष्ण
कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण

(श्री सर्वसिद्धि यन्त्र)

अतएव भगवान श्रीकृष्ण के प्रति आस्था, भक्ति रखने वालों के लिए आवश्यक है कि वे श्रीकृष्ण-लक्ष्मी यन्त्र के सन्दर्भ में वर्णित ध्यान, स्तुति और मन्त्र द्वारा इस यन्त्र की पूजोपासना करें।

यन्त्र-स्थापना से लेकर नैवेद्य अर्पित करने तक, इस यन्त्र की साधना में यह मन्त्र अविराम-गति से जपते रहना चाहिए—

मन्त्र—ॐ कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्।

और जप-समाप्ति पर यन्त्र तथा प्रतिमा को नमस्कार करते हुए इस श्लोक का पाठ करके पूजा-विसर्जन करें—

अच्युतं केशवं राम नारायणम्,
कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरे।
श्रीधरं माधवं गोपिका बल्लभम्,
जानकीनायकं रामचन्द्रम् भजे ॥

असितगिरि समस्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरु वर शाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥

श्री वेंकटेश यन्त्र :

दक्षिण भारत और महाराष्ट्र में भगवान वेंकटेश की आराधना बहुत श्रद्धा-भक्ति के साथ की जाती है, जैसे उत्तरी-भारत में राम और कृष्ण की। वेंकटेश को विष्णु का एक अवतार माना जाता है, अर्थात् विष्णु और वेंकटेश एक ही हैं।

लक्ष्मीजी विष्णु की पत्नी हैं, अतः जहाँ भी विष्णु की पूजा होती है, लक्ष्मीजी स्वतः वहाँ कृपालु हो जाती हैं। सामान्य-जन वैभव-सम्पदा की कामना-पूर्त्ति हेतु प्रायः लक्ष्मीजी की पूजा करते हैं। किन्तु वस्तुतः यह साधना एकपक्षीय एकाङ्गी होती है। प्रत्येक देवी के साथ उसकी पुरुष-शक्ति कोई न कोई देवता भी अवश्य है। अतः देवी के साथ सम्बन्धित-देवता की पूजा करने से विशेष फल प्राप्त होता है। लक्ष्मीजी की उपासना में यदि भगवान विष्णु की भी आराधना की जाय तो निश्चित-रूपेण लक्ष्मीजी साधक पर कृपालु हो जाती हैं। भगवान वेंकटेश की पूजा उनके यन्त्र की साधना, नाम-स्मरण और मन्त्र-जप के प्रभाव से साधक का दुःख-दारिद्र्य दूर हो जाता है। आज भी दक्षिण-भारत के सर्वाधिक पूज्य, प्रिय और सर्वमान्य देवता श्री वेंकटेश भगवान हैं।

विधि—भोजपत्र अथवा ताम्रपत्र पर गोरोचन, अष्टगन्ध या लाल चन्दन से यन्त्र की रचना करके उसे आसन पर स्थापित करें और ठीक विष्णु-यन्त्र की भाँति उसे चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से पूजन कर नियमित रूप से प्रतिदिन मन्त्र का जप करें। जप के लिए तुलसी की

माला विशेष उत्तम होती है। वैसे जिन्हें उपलब्ध हो, वे रुद्राक्ष अथवा सफेद चन्दन की माला का प्रयोग भी कर सकते हैं। यन्त्र की पूजा के पूर्व भगवान विष्णु की स्तुति कर लेनी चाहिए।

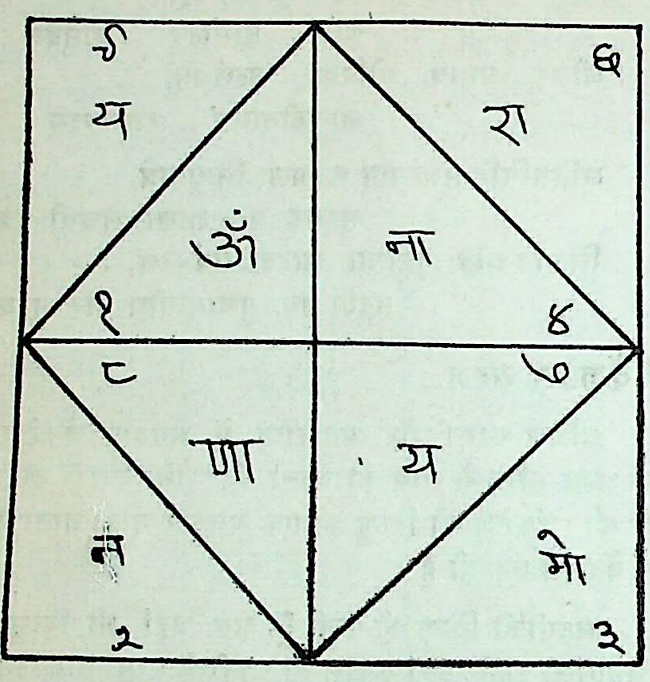

(श्री वेंकटेश-यन्त्र)

ध्यान-स्तुति—सशंख चक्रं सकिरीट कुण्डलम्,
सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम्।
सहार वक्षस्थल कौस्तुभश्रियं,
नमामि विष्णुः शिरसा चतुर्भुजम्॥

जप-मन्त्र—'ॐ नमो नारायणाय।'

विशेष—पूजन में पीले रङ्ग के चन्दन, पुष्प और वस्त्रों का प्रयोग करें। जप-संख्या प्रतिदिन 1, 5 या 7 माला होनी चाहिए।

श्री कृष्ण-लक्ष्मी यन्त्र :

भगवान श्रीकृष्ण भी विष्णु के अवतार हैं और नर-लीला करते हुए उन्होंने अपनी लौकिक-पारलौकिक क्षमता का अद्भुत-प्रदर्शन किया है। वे ज्ञान, योग, भक्ति, राजनीति, धर्म, दर्शन, सङ्गीत, नृत्य और युद्ध-

विद्या में पारङ्गत थे । मानव-जीवन की कोई भी समस्या हो, उनका नाम स्मरण करने से अवश्य ही दूर हो जाती है ।

जिन लोगों को भौतिक-पीड़ा व्यथित कर रही हो, धनाभाव से पीड़ित हों, शत्रु अथवा रोग के कारण शारीरिक व मानसिक क्लेश रहता हो, उसके लिए श्रीकृष्ण की उपासना करना अति उत्तम है । ज्ञान, विवेक, पाण्डित्य, धैर्य, सांसारिक-वैभव और प्रतिष्ठा सब कुछ श्रीकृष्ण-भक्ति से प्राप्त किया जा सकता है । धन-सम्पदा की कामना रखने वालों को इस श्रीकृष्ण-लक्ष्मी-यन्त्र की उपासना से अवश्य ही लाभ होता है ।

विधि— भोजपत्र अथवा ताम्रपत्र पर इस यन्त्र की रचना करें । तत्पश्चात् उसे पीले आसन पर प्रतिष्ठित कर विष्णु-यन्त्र की भाँति चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य से पूजा करकें, कलश पर घृत-दीप जलाकर रखलें और मन्त्र-जप आरम्भ करें ।

यह साधना (यन्त्र निर्माण से लेकर जप प्रारम्भ करने तक) किसी शुभ-मुहूर्त्त में ही करनी चाहिए । वैसे सभी शुभ-कार्यों में मुहूर्त्त की अनुकूलता अपेक्षित रहती है । जप के लिए तुलसी, वैयन्ती अथवा चन्दन की माला का प्रयोग श्रेष्ठ रहता है । जिसके पास रुद्राक्ष की माला हो, वे उसका प्रयोग कर सकते हैं ।

भगवान श्रीकृष्ण की पूजा में नैवेद्य (प्रसाद) के रूप में माखन-मिश्री अथवा खीर अर्पित करना चाहिए । पञ्च-मेवा को भी प्रस्तुत किया जा सकता है । सामर्थ्यानुसार, जो कुछ भी हो सके, श्रद्धापूर्वक अर्पित करना चाहिए ।

ध्यान-स्तुति—

करारविन्देन पदारविन्दं, मुखारबिन्देविनिवेशयन्तम् ।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं, बालमुकुन्दं मनसा स्मरामि ।।

मन्त्र—श्री कृष्णः शरणं मम ।

उपरोक्त मन्त्र को ही यन्त्र के स्वरूप की मान्यता प्राप्त है ।

जप-समाप्ति पर प्रार्थना—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्यां द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव ।।

।। सम्पूर्ण ।।

सर्वेपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात् ।।

JNANA JANGAMWADI
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No. 8611

तन्त्र, योग, ज्योतिष की अनमोल पुस्तकें

भारतीय फलित ज्योतिष : **विद्या वारिधि— आचार्य दीक्षित**

अपने तथा अपने इष्ट-मित्रों एवं परिवारी-जनों के भूत, भविष्य और वर्तमान का हाल जानने के लिए इस विशाल ज्योतिष-ग्रन्थ-रत्न का अध्ययन करके अवश्य लाभ उठायें। मूल्य 60/–

भाग्य का प्रतिबिम्ब (हस्तरेखायें) : **आचार्य— पं. शत्रुघ्नलाल शुक्ल**

यों तो हिन्दी भाषा में अनेक पुस्तकें 'सामुद्रिक-शास्त्र' पर उपलब्ध हैं, किन्तु यह पुस्तक उन सभी में श्रेष्ठ और अपने आप में सर्वाङ्गपूर्ण है। इस विद्या में रुचि रखने वाले सज्जन अवश्य मँगाकर लाभ उठायें।

मूल्य 51/–

अलौकिक शक्तियों की साधना : **आचार्य— पं. शत्रुघ्नलाल शुक्ल**

इस पुस्तक में सभी देवी-देवताओं की 'साधना' आराधना-विधि इतने सरल ढङ्ग से विवेचित है कि केवल श्रद्धा-शुचिता के बल पर ही सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। चाहिए—बटोरने वाला, मानो रत्नों की पिटारी खुली पड़ी है। मूल्य 36/–

रहस्यमयी गुप्त-विद्यायें (यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र) : **पं. शत्रुघ्नलाल शुक्ल**

जैसा कि पुस्तक के नाम से स्वतः स्पष्ट है। भारतीय तन्त्र-साधना के ऐसे-ऐसे गुप्त प्रयोग, जो लाखों रुपया खर्च करने पर भी सिद्धजन नहीं बताते, इस पुस्तक में स्पष्ट और सरल भाषा में वर्णित हैं। अवश्य पढ़ें।

मूल्य 36/–

योग के अद्भुत् चमत्कार : **स्वामी स्वयमानन्द**

बिना गुरु की सहायता के योग-विद्या में पारङ्गत बनाने का पूर्ण विश्वास के साथ दावा करने वाला—अनुपम ग्रन्थ ! अवश्य पढ़ें।

मूल्य 30/–

श्री तन्त्रम् (धनप्रदायक साधनायें) : **पं. शत्रुघ्नलाल शुक्ल**

इस पुस्तक में धनसम्पदा की प्रदायिनी देवी—श्री महालक्ष्मी की आराधना का विवेचन विद्वान लेखक ने इतने सरल और मनोहारी ढङ्ग से किया है कि आराधक पर लक्ष्मी-कृपा की सुखद-वर्षा अवश्य ही हो।

मूल्य 30/–

नवग्रह-अनुकूलन-तन्त्र : **पं. शत्रुघ्नलाल शुक्ल**

भारतीय-दर्शन की ऐसी मान्यता है कि संसार का कण-कण आकाशीय नक्षत्रों द्वारा शाशित व नियन्त्रित है—विशेषकर नवग्रहों से ! इन्हीं ग्रहों के कुपित और हर्षित होने पर मानव-जीवन का दु:ख-सुख निर्भर करता है। इसी मान्यता को लक्ष्य करके पूज्य आचार्यजी ने नवग्रहों की कृपा-प्राप्ति के लिए सरलतम साधना का वर्णन किया है। अनेकों पाठकों द्वारा प्रशंसित पुस्तक है। मूल्य 30/-

सूर्य तन्त्रम् : **लेखक—पं. आचार्य शत्रुघ्नलाल शुक्ल**

नवग्रहों के अधिपति, जगन्नायक, विश्वसंचालक भगवान भास्कर की महिमा अनन्त है। विश्व के सभी धर्म, सभी विद्वान एक स्वर से सूर्य के तेज, प्रताप को स्वीकार करते हैं। सूर्य की पूजा-आराधना करते हैं। सूर्याराधन की जानकारी हेतु उत्तम ग्रन्थ। मूल्य 25/-

शाबर मन्त्र विद्या : **लेखक— पं. शत्रुघ्नलाल शुक्ल**

यह पुस्तक वस्तुत: ग्राम्यजनों (ग्रामीणों) के उपयोग की है। यों कौतूहल और ज्ञान-वर्द्धन के लिए कोई भी पढ़ें, किन्तु मुख्यत: साबर मन्त्रों के चमत्कारी प्रभाव से ग्राम्य जन ही परिचित हैं। साबर मन्त्र को महादेव शंकर के डमरू वाद्य से प्रस्फुटित माना जाता है, अत: उनके तेज और चमत्कार का कहना ही क्या ! ये मन्त्र रोगों को दूर करने में वह अपना जादुई प्रभाव दिखाते हैं। मूल्य 25/-

शक्ति तन्त्रम् : **लेखक—पं. शत्रुघ्नलाल शुक्ल**

यह पुस्तक माँ भगवती दुर्गा की साधना, आराधना पर विस्तार से प्रकाश डालती है। माँ के विभिन्न रूपावतारों देश-विदेश में फैले भगवती के शक्तिपीठों के विषय में प्रामाणिक जानकारी तथा विभिन्न अन्तर्कथाओं से सुसज्जित पं. शत्रुघ्नलाल जी की लेखनी से प्रसूत यह ग्रन्थ माँ दुर्गा के भक्तों के लिए अनमोल वरदान है। मूल्य 30/

चमत्कारी रत्न-साधना : **लेखक--आचार्य पं. शत्रुघ्नलाल शुक्ल**

प्रस्तुत ग्रन्थ में रत्नों एवं उपरत्नों की उत्पत्ति, उत्पत्ति-स्थल, उन पर पड़ने वाला ग्रह-प्रभाव, धारण करने से धारक को मिलने वाले लाभ, धारण करने की शास्त्रोक्त विधि, रत्नों के आयुर्वेदिक एवं ज्योतिषीय प्रभाव का मनोहारी और साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया है। मूल्य 40/-

ग्रह-नक्षत्र-तन्त्रम् : **लेखक—पं. शंकर दयालु त्रिवेदी**

प्रस्तुत ग्रन्थ त्रिवेदी जी के गहन अध्ययन एवं ज्योतिष ज्ञान का साकार रूप है।

इस ग्रन्थ में ज्योतिष विद्या के प्रमुख अङ्ग—द्वादश भाव, द्वादश राशि, लग्न, ग्रह एवं नक्षत्रों की समुचित जानकारी के साथ इन तत्त्वों के मानव-स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव का भी विशद वर्णन है। मूल्य 36/

वृहद् होम्योपैथिक-चिकित्सा : **लेखक—डा. राजेश दीक्षित**

यह पुस्तक 'होम्योपैथी' का समग्र दर्पण तो है ही, विद्वान् लेखक ने इसे एक विशेष ढङ्ग से भी लिखा है। इसमें आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुषों के सभी रोगों की चिकित्सा का वर्णन इस ढङ्ग से किया है कि सामान्य शिक्षित व्यक्ति भी अपने परिवारी-जनों व परिचितों का उपचार आसानी से स्वयं कर सके। होम्योपैथी के छात्र-छात्राओं तथा होम्यो-चिकित्सकों के लिए भी यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा—ऐसी आशा है। बड़े आकार और लगभग 1300 पृष्ठों में पूर्ण इस विशद ग्रन्थ का मूल्य भी अत्यन्त कम रखा गया है। मूल्य 150/

कम्पलीट बायोकैमी **लेखक—डा. राजेश दीक्षित**

यह तथ्य सर्वविदित हैं कि बायोकैमी अत्यन्त सरल, सस्ती एवं निरापद चिकित्सा-पद्धति है। बायोकैमी-पद्धति से चिकित्सा करने वालों को न तो किसी 'डिग्री-डिप्लोमा' की आवश्यकता होती है और न सरकारी मान्यता पाने की! इस विषय का यथेष्ठ ज्ञान होने पर धड़ल्ले से चिकित्सा कार्य प्रारम्भ किया जा सकता है।

किन्तु—

बायोकैमी का सर्वांग ज्ञान कराने वाले हिन्दी-ग्रन्थ का अब तक चिकित्सा-जगत् में सर्वथा अभाव था। डा. दीक्षित के इस ग्रन्थ के प्रकाशन ने इस अभाव की पूर्त्ति करके यह ज्ञान सर्व-सुलभ कर दिया है। प्रत्येक घर में रहने योग्य अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है। मूल्य 60/

डाक व्यय अतिरिक्त

पुस्तकें मँगानें का पता

हिन्दी सेवा सदन, वैरागपुरा, मथुरा।

S.J.V.J. PRATISHTHAN
LIBRARY
Jangamawadimath, Varanasi
Acc. No.

भारतीय तन्त्र-विद्या के तीनों प्रमुख अङ्गों-(यन्त्र, मन्त्र तथा तन्त्र) के व्यावहारिक प्रयोग एवं साधना का सरलतम, प्रामाणिक, वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करना ही ग्रन्थ का उद्देश्य है।

आध्यात्मिक साधना के जिज्ञासु-जनों के लिए अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ।
